

अनुवादक—

आरोग्यसुधाकरसम्पादक—फरुखनगरनिवासी—

पण्डित—मुरलीधरजीशर्मा.



गुरोरधीताखिलवैद्यवियः पीयूषपाणिः कुशलः क्रियासु ।  
गतरूपुहो धैर्यधरः कपालुः शुद्धोऽधिकारी निपगद्दशः स्यात् ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीविष्णुदेव" मुद्रणालयाध्यक्ष-मुम्बई.

श्रीः ।

## इदमत्र रहस्यम् ।

“शरीरसाध्यं खलु धर्मसाधनम्” इत्युक्तीत्या शरीरस्य नाम प्रकृते मानुषशरीर-  
स्यादौ धर्मसाधकावम् । धर्मश्च सर्वपुरुषार्थमूलमिति तत्साधनाय सर्वैरपि यतितव्यमि-  
त्यपिहितमेव । श्रीपतञ्जलिश्रीधन्वन्तरितीर्थचरणा योगशास्त्रायुर्वेदौ नानाजन्मान्धननुभूयैव  
सचेतनेन मानुषशरीरेणैव लोकास्स्वस्वधर्माचरणद्वारा शाश्वतसुखसंपादानाय प्रबोभव-  
त्विति दीनानुजिघृक्षया प्रकाशयामासुः ।

पापिनि कलावस्मिन् पूर्वमधिकारिणः निर्वीर्यान् दुर्बोधदुरभिमानपरिपूर्णप्रज्ञान्  
परिचिन्त्य श्रीभगवद्धन्वन्तरिगुरुचरणोपदिष्टायुर्वेदरहस्यतत्त्वार्थविदा महाप्रतिभावता  
सर्वज्ञेन श्रीसुश्रुताचार्येण तत्कालानुसारेण सुश्रुताभिधं महामहितसकलहिततमाग-  
णितविषयगुणगणसमलङ्कृतं महानिबन्धरत्नं व्यरचि लोकहितैषिणा ।

ततः महापापिभूयिष्ठे कलावस्मिन्नर्तावं सहस्रांतरशाखोपशाखाविस्तृतासु महागम्भी-  
रहृदयाकुटिहृदयङ्गमचतुरहृदयगोचरमार्मिकार्थासु गीर्वाणवाणीसमद्भूतशास्त्रोपशा-  
स्त्रादिकृतिषु महतीष्वल्पासु च दुराशादुर्नयादिचण्डमारुतचक्रचङ्क्रम्यमाणतूललवायि-  
तदुर्मनोवृत्तिशतानां प्रायः पल्लवाग्रपण्डित्यमात्रेण पण्डितम्मन्यानां स्तुषाश्चश्रून्यायानुयायि-  
सहजगुर्वन्तेवोसिभावानां देवानाम्प्रियाणां निर्गल्गां सारासारविवेचनाप्रभविष्णुं प्रवृत्तिं  
शशविष.णायितां पर्यालोच्यातीव क्लेशेन चिरन्तनपूर्वकर्माजितपुण्यवशेन च स्वाचार्या-  
दुपलब्धतत्तद्रहस्यार्थतत्त्वेन श्रीमुरलीधरराजवैद्येन हिन्दुस्थान्याख्यभाषाटीकां  
विरचय्य तं महाशयं सम्मान्य सन्तोष्य च धर्मप्रचारैषिणा दुर्भैषज्यप्रचारपरम्पराप्र-  
तिबन्धाय सुभैषज्यामृतासारप्रचारपरम्पराभिवृद्धये गीर्वाणभाषामात्रज्ञानां हिंद्याख्यभाषा  
मात्रज्ञानां किञ्चित्किञ्चिदुभयभाषाज्ञानां च तदर्थज्ञानसंपत्तये च दीनलोकहितादृतेन मयो-  
क्तभाषाटीकायुक्तस्तोत्रमेतद्घटकसपरिशिष्टोत्तरतन्त्राख्यप्पष्टो महानिबन्धभाग उत्तम  
पत्रेषूत्तमसीसकाक्षरैः व्ययोपक्षेयापि न्यूनमूल्यः मुद्रयित्वा परिकृत्य च प्रकाशितः  
सदनुग्रहकौतुकिना मया ।

अनेन चास्मत्कुलाभिमानो जगदानन्ददायी “श्रीवेङ्कटेश्वरः” सर्वेषां कल्याणनिरन्तरं  
कुरुतादिति शिवमिति ।

विद्वज्जनकृपाकाङ्क्षी-

खेमराज श्रीकृष्णदास “श्रीवेङ्कटेश्वर” यन्त्रालयाध्यक्ष-मुंबई.





श्रीः ।

# अथ सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रानुक्रमणिका प्रारभ्यते ।

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
<b>प्रथमोऽध्यायः १.</b>		इनके नाम ... .. १३४७	
औपद्रविक अध्यायका व्याख्यान... १३३५		उत्संगिनी और कुंभिकाके लक्षण... .. १३४८	
नेत्रका स्वरूप ... .. १३३६		पोथकी और वर्त्मशर्करा ... .. १३४८	
दृष्टिका वर्णन ... .. १३३७		अशोवर्त्म और शुष्कार्श ... .. १३४९	
नेत्रके भाग ... .. १३३८		अंजननामिका और बलवर्त्म ... .. १३४९	
सन्धि ... .. १३३८		वर्त्मबन्ध और क्लिष्टवर्त्म ... .. १३५०	
पटल ... .. १३३८		वर्त्मकर्दम और श्याववर्त्म ... .. १३५०	
नेत्रगोलकके ४ पटल ... .. १३३९		क्लिन्नवर्त्म और अक्लिन्नवर्त्म ... .. १३५०	
नेत्रबन्धनउत्पत्ति ... .. १३३९		वाताहतवर्त्म और वर्त्मावृद्ध... .. १३५१	
नेत्ररोगोंकी मुख्यसंप्राप्ति ... .. १३४०		निमिष ( यानिमेष ) और रक्तार्श... .. १३५१	
नेत्ररोगोंका पूर्वरूप ... .. १३४०		लगण और बिसवर्त्म ... .. १३५१	
पूर्वरूपमें कर्तव्य यत्न... .. १३४०		परिशिष्ट ... .. १३५२	
नेत्ररोगोंके हेतु ... .. १३४०		कुंचनके लक्षण... .. १३५२	
दोषभेदसे नेत्ररोगोंकी पृथक् २		पद्मशातके लक्षण ... .. १३५२	
संख्या ... .. १३४१			
नेत्ररोगोंकी साध्यासाध्यता वातज		<b>चतुर्थोऽध्यायः ४.</b>	
साध्यासाध्य... .. १३४१		शुक्लगत रोगोंके विज्ञानकी व्याख्या ... .. १३५३	
पित्तज साध्यासाध्य नेत्ररोग... .. १३४२		शुक्लभागके रोगोंकी संख्या और	
कफज साध्यासाध्य नेत्ररोग ... .. १३४२		नाम ... .. १३५३	
रक्तज साध्यासाध्य नेत्ररोग ... .. १३४३		प्रस्तार्थर्म और शुक्लार्थर्म... .. १३५३	
सन्निपातज साध्यासाध्य नेत्ररोग ... १३४३		लोहितार्थर्म अधिमांसार्थर्म और स्नायुवर्त्म ... .. १३५३	
स्थानभेदसे नेत्ररोगोंकी संख्या ... १३४४		शुक्तिका और अर्जुन ... .. १३५४	
		षिष्टक और शिराजाल ... .. १३५४	
<b>द्वितीयोऽध्यायः २.</b>		शिरपिडिका और बलासग्रथित ... .. १३५४	
संधिगत रोगोंके विज्ञानकी व्याख्या १३४४			
नेत्रसंधिके ९ रोग ... .. १३४४		<b>पञ्चमोऽध्यायः ५.</b>	
पूयालस और उपनाहके लक्षण ... १३४५		कृष्णगत रोगोंके विज्ञानकी व्याख्या ... .. १३५५	
चारों प्रकारके स्त्रावोंके लक्षण ... १३४५		कृष्णगत रोगोंके नाम ... .. १३५५	
पर्वणी और अलजीके लक्षण ... .. १३४६		सव्रण शुक्रके लक्षण ... .. १३५५	
कृमिग्रन्थिके लक्षण ... .. १३४६		इसकी कदाचित्साध्यता ... .. १३५५	
वर्त्मगत रोगोंकी व्याख्या ... .. १३४६		अव्रण शुक्र ... .. १३५५	
		असाध्य फूले ... .. १३५६	
<b>तृतीयोऽध्यायः ३.</b>		पाकांत्यय रोग ... .. १३५६	
वर्त्मरोगोंकी उत्पत्ति ... .. १३४७		अजका जात ... .. १३५७	

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
<b>षष्ठोऽध्यायः ६.</b>		कफविदग्ध दृष्टि ... ..	११
सर्वगत रोगोंके विज्ञानकी व्याख्या ..	११	धूमदर्शी ... ..	१३७१
सर्वगत रोगोंके नाम और संख्या...	११	ह्रस्वजात्य ... ..	११
अभिष्वन्दकी मुख्यता ... ..	१३५८	नकुलान्ध्य ... ..	११
वातादि अभिष्वन्द ... ..	११	गंभीरिका ... ..	११
अधिमन्थ... ..	१३५९	वाह्यगत आगंतुकरोग ... ..	१३७२
वातादि मन्थ ... ..	११		
पित्ताधि मन्थ ... ..	१३६०	<b>अष्टमोऽध्यायः ८.</b>	
कफका अधिमन्थ ... ..	११	नेत्ररोगोंकी चिकित्साके विभागके	
रक्तका अधिमन्थ ... ..	१३६१	विज्ञानकी व्याख्या ... ..	१३७३
अधिमन्थोंमें दृष्टिनाशकी अवधि ... ..	११	नेत्ररोगोंकी चिकित्सा विभागका	
सशोफ नेत्रचाक ... ..	११	निर्देश... ..	११
निःशोथ नेत्रपाक और हताधिमन्थ १३६२		छेद्यरोग... ..	१३७४
वातपर्याय और शुष्काक्षिपाक ... ..	११	लेख्यरोग ... ..	११
अन्यतो वात और अम्लाधुषित ... ..	११	भेद्यरोग... ..	११
शिरोत्पात और शिराहर्ष ... ..	१३६३	व्याध्य अर्थात् शिरावेध साध्यरोग	११
		शस्त्रकर्मसे वर्जित नेत्ररोग... ..	१३७५
<b>सप्तमोऽध्यायः ७.</b>		याप्य नेत्ररोग ... ..	११
दृष्टिरोगोंके विज्ञानकी व्याख्या ... ..	११	असाध्य नेत्ररोग... ..	११
दृष्टिरोगोंकी संख्या ... ..	१३६४		
प्रथमपटलगत दोष ... ..	११	<b>नवमोऽध्यायः ९.</b>	
द्वितीयपटलगत दोष ... ..	११	वात अभिष्वन्दके प्रतिषेधका	
तृतीयपटलगत दोष ... ..	१३६५	व्याख्यान ... ..	१३७६
चतुर्थपटलगत दोष ... ..	१३६६	वाताभिष्वन्द और अधिमन्थकी	
वातज तिमिर और पित्तज तिमिर		चिकित्सा ... ..	११
लक्षण ... ..	१३६७	तर्पणादि... ..	१३७७
कफजतिमिर ... ..	११	अन्यतो वात और वातपर्यायकी	
रक्ततिमिर ... ..	११	चिकित्सा ... ..	१३७८
सन्निपातज तिमिर ... ..	१३६८	शुष्काक्षिपाक चिकित्सा ... ..	१३७९
परिम्लायी ... ..	११		
लिंगनाश ... ..	११	<b>दशमोऽध्यायः १०.</b>	
लिंगनाशमें राग ( अर्थात् दृष्टिमें		पित्ताभिष्वन्दादि पैत्तिक नेत्ररोगोंकी	
मंडल ) मालूम होना ... ..	११	चिकित्साका व्याख्यान ... ..	१३८०
वातादि दोषसे राग ... ..	१३६९	तर्पणादि... ..	११
रोगोंका निर्धार ... ..	११	अम्लाधुषित और शुक्तिका	
पित्तविदग्धदृष्ट्यादि छः रोग ... ..	१३७०	चिकित्सा ... ..	१३८२
पित्तविदग्ध दृष्टि ... ..	११		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
<b>एकादशोऽध्यायः ११.</b>		✓ विसग्रंथिपर भेद्य कर्म ... .. "	
कफके अभिष्यंददि रोगोंकी चिकित्साका व्याख्यान ... .. १३८३		✓ लगणका यत्न ... .. "	
कफके अभिष्यंद और अधिमंथ चिकित्सा ... .. "		<b>पञ्चदशोऽध्यायः १५.</b>	
बलासग्रथितका यत्न ... .. १३८५		छेद्य (छेदनेसे साध्य होनेवाले)	
पिष्टकका यत्न ... .. "		रोगोंकी व्याख्या ... .. १४०१	
पिष्टक और प्रक्लिन्नवर्त्मका अञ्जन ... १३८६		इसमें शूलका यत्न ... .. १४०३	
<b>द्वादशोऽध्यायः १२.</b>		शेषरहे अर्मका प्रतीकार ... .. "	
रक्ताभिष्यंद आदि चिकित्साका व्याख्यान ... .. १३८७		शिराजाल और शिरापिडिकाका यत्न ... .. १४०४	
रक्तज अधिमंथ आदि चार व्याधियोंकी चिकित्सा ... .. "		पर्वणिकाका यत्न ... .. "	
प्रलेप ... .. "		<b>षोडशोऽध्यायः १६.</b>	
अन्य यत्न ... .. १३८८		पक्ष्मकोपके प्रतिषेधकी व्याख्या ... १४०६	
अंजन ... .. "		<b>सप्तदशोऽध्यायः १७.</b>	
शिरोत्पातका यत्न ... .. १३८९		दृष्टिगत रोगों ( निगाहसे संबंध रखनेवाले रोगों ) की चिकित्सा ... १४०८	
शिराहर्षका यत्न ... .. "		कफपित्तविदग्ध दृष्टिका यत्न ... १४०९	
✓ अर्जुनका यत्न ... .. १३९०		दिनरात्र्यन्धके लिये अंजन ... .. १४१०	
अवसादनगण ... .. १३९१		रतोंधेकी चिकित्सा ... .. १४११	
लेख्यांजन ... .. "		नक्तांध्य अर्थात् कफविदग्ध दृष्टिके अन्य यत्न ... .. १४१२	
अव्रणशुक्र ( फूले ) का यत्न ... .. "		दिवांधका यत्न ... .. १४१३	
अजका जातकी चिकित्सा ... .. १३९३		छः याप्य दृष्टि रोगोंका यत्न ... .. "	
सशोथ और शोथरहित पाकका यत्न ... .. "		शोधन ... .. "	
✓ पूयालसका यत्न ... .. १३९४		पित्ततिमिरका यत्न ... .. १४१५	
प्रक्लिन्न वर्त्मका यत्न ... .. १३९५		तिमिरनाशक आहार ... .. १४१७	
<b>त्रयोदशोऽध्यायः १३.</b>		दृष्टिहितकारक शाक ... .. १४१८	
लेख्य ( अर्थात् खुरचकर साध्य होने वाले ) रोगोंकी चिकित्सा ... १३९६		रक्ततिमिरमें शिरामोक्षका निषेध ... .. "	
सम्यक् लिखित दुर्लिखित तथा अति लिखितके लक्षण ... .. १३९७		वेध्यकर्मका निर्देश ... .. १४१९	
लेखनमें विशेष उपदेश ... .. १३९८		सम्यक् विद्धका पश्चात्कर्म ... .. १४२०	
<b>चतुर्दशोऽध्यायः १४.</b>		सम्यक् लिखितके लक्षण ... .. १४२१	
भेद्य ( भेदन करनेसे साध्य होने वाले ) रोगोंकी चिकित्सा ... १३९९		वेध्यकर्ममें दूषण और उनका यत्न ... १४२२	
		नवीन दोषमें वेधनका निषेध ... १४२३	
		शलाकाके दोष ... .. १४२४	
		उत्तम शलाका ... .. "	
		वेधदोषसे उपद्रव ... .. "	
		उपद्रवोंके यत्न ... .. १४२५	

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
<b>अष्टादशोऽध्यायः १८.</b>		<b>एकोनविंशोऽध्यायः १९.</b>	
क्रियाकल्पका व्याख्यान ... ..	१४२७	नेत्रोंमें अभिघात अर्थात् चोट आदि	
तर्पणकी विधि ... ..	"	लग जानेसे उत्पन्न हुई वेदना	
सम्यक् तर्पित ... ..	१४२९	आदिकी चिकित्सा ... ..	१४४९
अतितर्पित और हीनतर्पित... ..	"	कुकूणकके लक्षण और यत्न ... ..	१४५१
इनका प्रतिकार... ..	१४३०	कुकूणक रोगमें अंजनोंका विधान... ..	१४५२
तर्पणके योग्य रोग ... ..	"	परिशिष्ट... ..	१४५३
तर्पणमें वर्जित ... ..	"		
पुटपाकका विषयाविषय ... ..	१४३१	<b>विंशतितमोऽध्यायः २०.</b>	
स्नेहन लेखन और रोपण पुटपाक	"	कर्णगत रोग विज्ञानका व्याख्यान... ..	१४५४
पुटपाकमें मिथ्याचार और उसका		कर्णरोगोंकी संख्या और उनके नाम	"
यत्न ... ..	१४३३	कर्णशूल लक्षण ... ..	१४५५
सम्यक् योग अतियोग और हीन-		कर्णनाद और बाधिर्यके लक्षण ... ..	"
योग ... ..	"	कर्णक्ष्वेद और कर्णस्त्राव ... ..	१४५६
पुटपाकसाधनकी विधि ... ..	"	कर्णकंदू कर्णगूथ और प्रतिनाह ... ..	"
अति शीतोष्णके दोष... ..	१४३५	कृमिकर्ण और कर्णविद्रधि ... ..	१४५७
हीनातिमात्राके दोष ... ..	"		
आश्च्योतन और सैक ... ..	१४३६	<b>एकविंशोऽध्यायः २१.</b>	
शिरोवस्ति ... ..	१४३७	कर्णरोगोंकी चिकित्साका व्याख्यान	१४५८
अंजनोंका निर्देश ... ..	"	कर्णरोगोंका सामान्य यत्न ... ..	"
लेखन अंजन ... ..	१४३८	कर्णशूलादिकी चिकित्सा ... ..	१४५९
रोपण अंजन ... ..	"	नाडीस्वेद ... ..	"
प्रसाद अंजन ... ..	"	कर्णशूलपर पिंडस्वेद ... ..	"
अंजनका प्रमाण... ..	१४३९	अन्य यत्न ... ..	१४६०
परिशिष्ट ... ..	१४४०	कर्णपूरण ... ..	"
अंजन लगानेकी विधि ... ..	१४४१	पित्तयुत कर्णशूलका यत्न ... ..	१४६३
अंजनका निषेध ... ..	"	बाधिर्यमें कर्णपूरण ... ..	१४६४
अंजन लगानेमें उपदेश ... ..	१४४२	कर्णस्त्रावादिकी चिकित्सा ... ..	१४६५
नेत्रविरेकका सम्यक् योग और अति		कर्णस्त्रावके लिये अन्ययोग ... ..	"
योग हीनयोग ... ..	१४४३	पञ्चकषाय चूर्ण ... ..	१४६६
प्रसादनका योगायोग ... ..	"	तैलसाधन ... ..	"
भक्षोदयांजन ... ..	१४४६	प्रतिकर्णका यत्न ... ..	"
अन्य अंजन ... ..	१४४७	कृमिकर्णका यत्न ... ..	१४६७
अन्य अंजन गुटिका ... ..	"	कर्णक्ष्वेद कर्णविद्रधि और कर्ण-	
अन्य गुटिकांजन ... ..	१४४८	विद्रके यत्न ... ..	"
अन्यवर्ती ... ..	"	कर्णकंदू और प्रतिनाहके यत्न ... ..	१४६८
		परिशिष्ट ... ..	१४६९

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
<b>द्वाविंशतितमोऽध्यायः २२.</b>		कफजप्रतिश्यायका यत्न ... .. १४८२	
नासिकाके रोगोंके विज्ञानकी		सन्निपातके प्रतिश्यायका यत्न ... .. "	
व्याख्या ... .. "		( परिशिष्ट ) नजूल या नजलेका	
नासारोगोंकी संख्या और उनके नाम		बयान ... .. १४८४	
पीनसके लक्षण ... .. १४७०		<b>पञ्चविंशोऽध्यायः २५.</b>	
पूतिनस्य और नासापाकके लक्षण		शिरके रोगोंके विज्ञान विषय अध्या-	
शोणित पित्त ( नकसीर ) और		यका व्याख्यान ... .. १४८५	
पूयरक्त ... .. "		शिरके रोगोंकी संख्या और नाम ... .. "	
क्षयधु ( छींक अधिक आने ) के		वातज शिरोरोग ... .. १४८६	
लक्षण ... .. १४७१		पित्तका शिरोरोग ... .. "	
भ्रंशधु दीप्त और नासाप्रतिनाह ... .. "		कफका शिरोरोग और सन्निपातका	१४८७
नासार्शादिके सामान्य लक्षण ... १४७२		क्षयका शिरोरोग ... .. "	
<b>त्रयोविंशोऽध्यायः २३.</b>		कृमिज शिरोरोग ... .. "	
नासिकाके रोगोंकी चिकित्सा ... १४७३		सूर्यावर्त ... .. १४८८	
पूतिनस्यका यत्न ... .. "		अनन्तवातके लक्षण ... .. "	
नासापाकका यत्न ... .. १४७४		अर्द्धावभेदक ( आधाशीशी ) के लक्षण	१४८९
रक्तपित्त और पूयरक्तका यत्न ... .. "		शंखाख्य शिरोरोग ... .. "	
क्षयधु और भ्रंशधुका यत्न ... .. "		<b>षड्विंशोऽध्यायः २६.</b>	
दीप्त और नासानाहका यत्न ... १४७५		शिरके रोगोंकी चिकित्साका	
<b>चतुर्विंशोऽध्यायः २४.</b>		व्याख्यान ... .. १४९०	
प्रतिश्याय ( अर्थात् जुखाम ) की		वातज शिरोरोगका यत्न ... .. "	
चिकित्सा ... .. १४७६		पित्तज और रक्तज शिरोरोगका यत्न	१४९१
प्रतिश्यायका हेतु ... .. "		कफज शिरोरोगका यत्न ... .. १४९२	
इसकी संप्राप्ति ... .. "		त्रिदोषज शिरोरोगका यत्न ... .. १४९३	
पूर्वरूप ... .. "		क्षयज शिरोरोगका यत्न ... .. "	
वातप्रतिश्याय और पित्तप्रतिश्यायके		शिरोरोगत कृमियोंका यत्न ... .. १४९४	
लक्षण ... .. १४७७		सूर्यावर्त और अर्द्धावभेदकके यत्न	"
कफज और सन्निपातज प्रतिश्यायके		अनन्तवातका यत्न ... .. १४९५	
लक्षण ... .. "		शंखाख्यका यत्न ... .. १४९६	
प्रतिश्यायकी कष्टसाध्यता ... .. १४७८		अन्य निर्देश ... .. "	
वृद्धप्रतिश्यायका परिणाम ... .. १४७९		<b>सप्तविंशोऽध्यायः २७.</b>	
प्रतिश्याय पकानेकी विधि ... .. "		नवग्रहों ( बालकोंके पीडक नवग्रहों )	
पक्कप्रतिश्यायमें पथ्य ... .. १४८०		की आकृतिके विज्ञानकी व्याख्या	१४९८
प्रतिश्यायकी आवस्थिक चिकित्सा	"	स्कंदग्रहपीडित बालकके लक्षण ... १४९९	
वातप्रतिश्यायका यत्न ... .. १४८१		स्कंदापस्मारके लक्षण ... .. "	
पित्तजप्रतिश्यायका यत्न ... .. "		शकुनी और रेवतीग्रहके लक्षण ... .. "	
		पूतना और अंधपूतनाके लक्षण ... १५००	



विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
शीतपूतना और मुखमंडिकाके लक्षण	१५००	<b>षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३६.</b>	
नैगमेयके लक्षण	१५०१	नैगमेय ग्रहके प्रतिषेधका व्याख्यान	१५१५
साध्यता और असाध्यता	"	परिषेकादि यत्न	"
ग्रहजुष्टका सामान्य यत्न	"	उपहार	१५१६
<b>अष्टाविंशोऽध्यायः २८.</b>		<b>सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३७.</b>	
स्कंदग्रहके प्रतिषेध ( अर्थात् स्कंदग्रह पीडित बालककी चिकित्सा ) का व्याख्यान	१५०२	ग्रहोंकी उत्पत्तिकी व्याख्या	१५१७
परिषेक और अभ्यंग	"	ग्रहोंका वृत्तिपाचन	१५१९
पान धूपन और धारण	१५०३	ग्रहों की वृत्ति	१५२०
<b>एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः २९.</b>		ग्रहपीडित की कष्ट साध्यता	"
स्कंदापस्मार ग्रहपीडितकी चिकित्सा	१५०४	<b>अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३८.</b>	
परिषेचन और अभ्यंग तथा पान	"	स्त्रियों के योनि रोगों की चिकित्सा का व्याख्यान	१५२१
बलिदान और स्नान	१५०५	योनि रोगोंके नाम	१५२२
<b>त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३०.</b>		वातलायोनियोंके लक्षण	"
शकुनी ग्रहकी चिकित्साका व्याख्यान	१५०६	पित्तदूषित योनियोंके लक्षण	१५२३
परिषेचनादि	"	कफदूषितयोनि	"
<b>एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३१.</b>		त्रिदोष दूषित योनियोंके लक्षण	१५२४
वर्तीग्रहके प्रतिषेधका व्याख्यान	१५०७	योनि रोगोंकी चिकित्सा	१५२५
परिषेकादि	१५०८	वातादि दूषित योनियोंकी चिकित्सा	"
<b>द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ३२.</b>		<b>एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ३९.</b>	
पूतनाके प्रतिषेधकी व्याख्या	१५०९	<b>अथ कायचिकित्सा ।</b>	
परिषेकादि यत्न	"	ज्वरके प्रतिषेधकी अध्याय का व्याख्यान	१५२७
बलिदानादि	१५१०	सुश्रुतादिका यत्न	"
<b>त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३३.</b>		श्रीधन्वंतरिजी का उत्तर	१५२८
अंधपूतनाके प्रतिषेधकी व्याख्या	१५११	ज्वरका सामान्यरूप	१५३०
परिषेकमर्दनादि	"	ज्वरकी संख्या	"
<b>चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३४.</b>		ज्वरका समय और हेतु	१५३१
शीतपूतनाके प्रतिषेधका व्याख्यान	१५१२	ज्वरकी संग्राप्ति	"
परिषेचनादि	"	ज्वर के कारण	१५३२
<b>पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३५.</b>		शरीर गरम होने का कारण	१५३३
मुखमंडिकाके प्रतिषेधकी व्याख्या	१५१४	ज्वरके सामान्य पृथक्पृथक्	"
परिषेकादि और उपहार	"	विशेष पृथक्पृथक्	१५३४
		वात ज्वरके लक्षण	"
		पित्तज्वरके लक्षण	१५३५

विषय.	पृष्ठांक.
कफज्वरके लक्षण ....	१५३६
सन्निपात ज्वरके लक्षण ....	"
इसके विशेष लक्षण ....	१५३७

### परिशिष्ट ।

सन्निपातज्वरके भेद और विस्तार- पूर्वक वर्णन ....	१५३८
चरकोक्त १३ प्रकार का सन्निपात	१५३९
इनके लक्षण ( एकोल्वणके ३ भेद )	"
द्विदोषोल्वणके ३ भेद ....	"
हीनमध्याधिकके ६ भेद ....	१५४०
त्रिदोषोल्वण सन्निपातके लक्षण ....	१५४१
भावप्रकाश में इन वातोल्वणादिक १३ सन्निपातों के जो नाम लिखे हैं वे इस प्रकार हैं ....	१५४२
प्रकारांतरसे सन्निपात १३ प्रकारके यूभी लिखे हैं ...	"
प्रकारांतरसे सन्निपातके १३ भेद और उनके नाम, लक्षण ...	१५४३
शीतांग सन्निपातके लक्षण ...	"
तंद्रिकके लक्षण ...	१५४४
प्रलापकके लक्षण ...	"
रक्तष्ठीवीके लक्षण ...	"
भुग्ननेत्रके लक्षण ...	"
अभिन्यासके लक्षण ...	१५४५
जिह्वकके लक्षण ...	"
संधिकके लक्षण ...	"
अंतकके लक्षण ...	१५४६
रुग्दाहके लक्षण ...	"
चित्तभ्रमके लक्षण ...	"
कर्णकके लक्षण ...	"
कंठकुब्जके लक्षण ...	१५४७
इनकी साध्यासाध्यता ...	"
इनकी अवधि ...	"

### परिशिष्ट ।

धातुपाक और मलपाकके लक्षण ( भा० प्र० ) ...	१५४८
धातुपाक ...	"

विषय.	पृष्ठांक.
मलपाक ...	१५४९
द्वंद्वज वातपित्त वातकफ और कफ फिक्त ज्वर ...	"
विषमज्वरका वर्णन ...	१५५०
इनके विपर्यय विषमज्वर ...	१५५१
इसपर अन्यमत ...	१५५२

### परिशिष्ट ।

वातबलासकके लक्षण ( भा० प्र० )	१५५३
ज्वरके आदिमें शीत उष्णका लक्षण	१५५४
विषमज्वरोंका शरीरमें रहना ...	"
विषमज्वरोंका अन्य हेतु ...	१५५५
इस प्रकारसे विषमज्वरोंका होना...	"
संततज्वरके लक्षण ...	१५५६
संतत आदिके लक्षण ...	"
ज्वरके वेगपर दृष्टांत ...	१५५७
आगंतुकज्वरका वर्णन ...	"
धातुगतज्वरके लक्षण...	१५५९
गंभीर और असाध्यज्वर ...	१५६१

### परिशिष्ट ।

जीर्णज्वरके लक्षण ( भा० प्र० )	१५६२
ज्वरकी चिकित्साका आरम्भ ...	"
ज्वरके पूर्वरूपमें कर्तव्य ...	"
ज्वरके प्राकट्यमें चिकित्सा...	१५६३
लंघन का निषेध ....	१५६४
लंघनके गुण ....	"
सम्यक् लंघन और अतिलंघनके लक्षण ....	"
उष्णजल और शृतका उपयोग ....	"

### परिशिष्ट ( कषायभेदः )

हम ग्रंथांतर से कुछ काथोंके भेद और विधि कहते हैं ....	१५६५
स्वरस ....	"
कल्क ....	१५६६
काथ ....	"
हिम ....	१५६७
फांट ....	"

विषय.	पृष्ठांक.
क्वाथभेद ( हारीतमतात् )....	१५६८
<b>इति परिशिष्ट ।</b>	
भोजन के समय पेया का निर्देश	१५६९
पाचन की आवश्यकता ....	१५७०
दोषपक्व के लक्षण ....	१५७१
आमज्वर अर्थात् अपक्वज्वरके लक्षण	"
औषधका समय ....	१५७२
विनापके ज्वरमें औषधके अवगुण	"
ज्वरसे प्रेरित मलका यत्न ....	"
ज्वरमें वमन विरेचनादिकी व्यवस्था	१५७३
इसमें उपदेश ....	"
लेप और वस्तीका उपयोग ....	१५७४
अनुलोमनीयवागू ....	"
ज्वरमें अन्य उपदेश और पथ्यादि	१५७५
ज्वरमें दूधपान की विधि और निषेध	१५७६
ज्वरमें भोजन का समय और व्यवस्था	१५७७
ज्वर में मांसकी व्यवस्था...	१५७८
ज्वरवाले और ज्वरमुक्त के पथ्य....	१५७९
ज्वरमें परिश्रम का निषेध ....	"
ज्वरशांत पर शोधन....	१५८०
ज्वरनाशक क्वाथों का निर्देश ....	"
वात ज्वरके क्वाथ ....	१५८१
पित्तज्वरके क्वाथ ....	१५८२
पित्तके उपद्रवोंके यत्न ....	"
कफज्वरका यत्न ....	१५८३
वातकफ ज्वर का यत्न ....	१५८४
कफ पित्त ज्वर का यत्न ....	१५८५
वात पित्त ज्वर का यत्न ....	"
त्रिदोष ज्वरकी चिकित्सा ....	१५८६
विषमज्वरकी चिकित्सा ....	१५८७
विषम और जीर्ण ज्वरनाशक घृत	१५८८
जीर्णज्वर पर घृत साधन....	१५८९
अन्य घृत १. ....	"
अन्य घृत २. ....	१५९०
कल्याण घृत ....	"
पंचगव्य घृत ....	१५९१
अन्य घृत ....	१५९२
अन्य घृत ...	१५९३
अन्य घृत ...	१५९४
अभ्यंगार्थ तेलसाधन ...	"

विषय.	पृष्ठांक.
ज्वरमें अन्य उपदेश ...	१५९५
ज्वरघ्न धूपन ...	"
अंजन ...	१५९६
शीतज्वरका यत्न ...	१५९७
ज्वरके दाहका यत्न ...	१५९९
ज्वरके उपद्रवोंका यत्न ....	१६०१

## परिशिष्ट ( भा० प्र० )

धातुगत ज्वरकी चिकित्सा....	१६०४
ज्वरघ्नवस्तिकर्मका निर्देश ....	"
हतावशेष ज्वरकी चिकित्सा ...	१६०६
घृतपानकी अवधि ....	"
दोषोंका शांतहोनेमें क्षोभ ....	१६०७
ज्वरमुक्तके लक्षण ....	"

## परिशिष्ट ।

मोतीज्वरका वर्णन ....	१६०८
मसूरिकाके लक्षण और भेद ....	"
असाध्य मसूरिकाके लक्षण....	१६११
इसकी संक्षिप्त चिकित्सा ....	"
मुखपाकमें कुल्ले ....	"

## चत्वारिंशोऽध्यायः ४०.

अतिसारके प्रतिषेधका व्याख्यान...	१६१२
अतिसारकी उत्पत्ति....	"
अतिसारकी संप्राप्ति और निरुक्ति	१६१३
अतिसारके भेद ...	१६१४
अतिसारका पूर्वरूप....	"
वातजपित्तज और कफज अतिसारके लक्षण ....	"
सन्निपातातिसारके लक्षण....	१६१५
शोकातिसार ....	१६१६
आम और पक्व अतिसारके लक्षण	"
असाध्य अतिसारके लक्षण....	१६१७
अन्यभेदोंका अन्तर्भाव ....	१६१८
अतिसारमें चिकित्सा कर्मका निर्देश	"
पूर्वरूपमें चिकित्सा....	"
आमातिसारकी चिकित्सा ....	१६१९
आमपाचनके २० योग ....	१६२०
आमपकानेके अन्य प्रयोग ....	१६२२

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
पित्तातिसारमें पाचन... ..	: १६२४	राजयक्ष्माका पूर्वरूप ....	१६५५
पित्तातिसारनाशक योग ... ..	"	असाध्यताके लक्षण ....	"
आमयुक्त पित्तातिसारका यत्न ....	१६२५	राजयक्ष्माकी चिचित्साका आरम्भ ..	"
पक्कअतिसारपर स्तंभन ....	"	अतिमैथुन जन्यशोषकी चिकित्सा	१६५६
निरामअतिसारका यत्न ....	१६२६	क्षयनाशक अन्यप्रयोग ....	१६५७
पुटपाकका निर्देश ....	१६२७	क्षयनाशक घृत ....	१६५८
अतिसारमें दुग्धकी व्यवस्था ....	१६३०	क्षयरोगमें पथ्यापथ्य ....	१६६१
अतिसारकी चिकित्सामें अन्य			
उपदेश ....	१६३१		
अतिसारमें आहार ....	१६३३	गुल्मके चिकित्साकी व्याख्या ....	१६६१
रक्तातिसारकी उत्पत्ति ....	"	गुल्मकी संप्राप्ति और रूप ....	"
रक्तातिसारका यत्न ....	१६३४	गुल्मके स्थान और निरुक्ति ....	१६६२
मलक्षीणका यत्न ....	१६३६	वातगुल्म और पित्तगुल्मके लक्षण ..	"
प्रवाहिकाकी निरुक्ति और लक्षण...	१६३७	कफज सन्निपातज और रक्तज गुल्म-	
प्रवाहिकाकी चिकित्साका क्रम ....	१६३८	के लक्षण ....	१६६४
यवागू भोजन....	१६४२	गुल्मकी चिकित्सा ....	१६६५
अन्य उपदेश ....	"	वातगुल्मपर घृत ....	१६६६
अतिसार मुक्तके लक्षण ....	१६४३	चित्रकादि घृत ....	"
कर्मजादि तीनप्रकारकी व्याधि ....	"	गुल्मनाशक अनेक घृतोंका उपदेश	१६६७
संग्रहणीरोगका विवेचन ....	१६४४	क्षारविधान ....	१६६९
ग्रहणीरोगका पूर्वरूप ....	१६४६	गुल्मनाशक अन्यप्रयोग ....	१६७०
ग्रहणीरोगका रूप ....	"	गुल्ममें खानपान ....	१६७१
वातादिकी ग्रहणीके लक्षण ....	१६४७	दस्त और वायुरुकनेपर यत्न ....	"
ग्रहणीकी चिकित्सा....	"	गुल्मका उपद्रव शूल और इसके	
		लक्षण ....	१६७३
		इसके यत्न ....	"
		गुल्ममें पथ्य ....	१६७५
		अथ शूलरोग ....	"
		शूलका हेतु और संप्राप्ति ....	१६७६
		शूलकी निरुक्ति ....	"
		शूलके लक्षण....	"
		शूलकीचिकित्सा ....	१६७८
		वायुकेशूलका यत्न ....	"
		पित्तकेशूलका यत्न ....	१६८०
		कफशूलका यत्न ....	१६८१
		पार्श्वशूलके सक्षण ....	१६८२
		पार्श्वशूलका यत्न ....	१६८३

### एकचत्वारिंशोऽध्यायः ४१.

शोषरोग ( जिसमें सब शरीरकी	
धातु उपधातु सूखकर मनुष्य	
अतिक्षीण होजाता है ) की	
चिकित्सा ....	१६४९
शोषक्षय राजयक्ष्मा इन नामोंका	
हेतु ....	"
यक्ष्माका विवेचन ....	१६५०
अनुलोम और प्रति लोमक्षय ....	"
राजयक्ष्माका रूप और लक्षण ....	१६५१
इसके लक्षण वात आदि भेदसे ....	"
अन्यप्रकारका शोषरोग ....	१६५२
शोषके कारणानुरूप लक्षण ....	"
उरक्षत....	१६५४

विषय.	पृष्ठांक.
कुक्षिशूलकी चिकित्सा ....	१६८४
हृच्छूल ....	"
वस्तिशूल और मूत्रशूल ....	१६८५
विट्शूल ....	१६८६

### त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ४३.

हृद्रोगकी चिकित्साकीका व्याख्यान	१६८८
हृद्रोगका हेतु और संप्राप्ति ....	"
हृद्रोगके लक्षण ....	"
वायुके हृद्रोगकायत्न ....	१६९०
पित्तकेहृद्रोगका यत्न ....	"
कफकेहृद्रोगका यत्न ...	१६९१

### चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४४.

पांडुरोगकी चिकित्साका व्याख्यान	१६९२
पांडुरोगकेकारण और संप्राप्ति ...	"
पांडुके भेद और निरुक्ति ...	"
पांडुका पूर्वरूप ...	१६९३
पांडुकेभेद और कामलाआदि ....	"
पांडुकेलक्षण ....	"
पांडुरोगके उपद्रव ....	१६९५
कामलाका यत्न ....	१६९८
कुंभिकाका यत्न ....	"
लाघरकका यत्न ....	१६९९
पांडुपरपथ्य ....	१७००
पांडुकी साध्यता ...	"
पांडुकी असाध्यता ....	"

### पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ४५.

रक्तपित्तकी चिकित्साका व्याख्यान	१७०१
रक्तपित्तका पूर्वरूप ....	१७०२
रक्तपित्तकी संख्या ....	१७०३
रक्तपित्तके उपद्रव ....	"
रक्तपित्तकीअसाध्यता ....	"
रक्तपित्तकीचिकित्सामें उपदेश ...	१७०४
रक्तपित्तकी चिकित्सा ...	"
नाकसे अधिरनिकलानेपर यत्न ...	१७०७
अधिकरक्तनिकलेपर यत्न ...	"
रक्तपित्तपर अन्ययोग ...	१७०८

विषय.	पृष्ठांक.
-------	-----------

### परिशिष्ट ।

श्लेष्मपित्तकावर्णन ग्रन्थान्तरसे ....	१७११
अम्लपित्तका हेतु और लक्षण ....	;;
श्लेष्मपित्तके लक्षण ...	"
अम्लपित्तका यत्न ...	१७१२
श्लेष्मपित्तका यत्न ....	"

### षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४६.

मूर्च्छाकीचिकित्साका व्याख्यान ...	१७१३
मूर्च्छाका हेतु ....	"
इसका पूर्वरूप... ..	१७१४
मूर्च्छाका स्वरूप ....	"
सूचनेसे मूर्च्छा... ..	१७१५

### परिशिष्ट ।

मूर्च्छाका उग्रभेद संन्यास... ..	१७१६
वातादि मूर्च्छाके लक्षण ...	"
मूर्च्छाकीचिकित्सा	१७१७

### सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४७.

पानात्यय ( मदात्यय ) के प्रतिबेध	
की व्याख्या ...	१७२०
मद्यकेगुण और कर्म ...	"
युक्तिपूर्वकसेवित मद्यके गुण ...	१६२१
अयुक्तिपूर्वकसे हानि ...	"
मदकी तीन अवस्था ...	"
मदसात्य मनुष्य ...	१७२२
मद्यसे विकार ...	"
पानात्ययादिक... ..	१७२३
पानात्ययके लक्षण ...	"
परमद पानार्जर्ण और पानविभ्रम	
के लक्षण ...	"
असाध्यमदात्यय ...	१७२४
वातजपानात्ययका यत्न ...	"
पित्त कफादि मदात्ययके यत्न ....	१७२५
मदात्ययके अन्ययत्न ....	१७२६
मदात्ययमें शीतविधान ....	१७२७
द्राह्रोगका विवेचन ....	१७२८
तृष्णा निरोधज दाह ....	१७२९
उदरमें रक्त भरजानेसे दाह ....	१७३०

विषय.	पृष्ठांक.
धातुक्षयका दाह ....	१७३५
शोच आदिसे दाह ....	"
मर्माभिघातज दाह ....	"

### अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ४८.

तृष्णा ( अतितृष्णा ) की चिकित्सा-	
का व्याख्यान ....	१७३७
तृष्णाका स्वरूप ....	"
तृष्णाके हेतु और संप्राप्ति ....	"
तृष्णाकी संख्या ....	"
तृष्णाका पूर्वं रूप ....	१७३८
वातादिकी तृष्णाके लक्षण ....	"
कफकी तृष्णाके लक्षण ....	"
आमज और भुक्तज तृष्णा ....	१७३९
तृष्णाकी चिकित्साका आरंभ ....	१७४०
पित्तज तृष्णाका यत्न ....	१७४१
कफकी तृष्णाका यत्न ....	"
तृष्णाकी साधारण विधि ....	"
क्षतकी तृष्णाके यत्न ....	१७४२
क्षयादिकी तृष्णाके यत्न ....	"

### एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ४९.

छर्दि ( वमन अर्थात् कै ) के प्रतिषेध-	
की व्याख्या ....	१७४४
छर्दिका हेतु और संप्राप्ति ....	"
छर्दिका स्वरूप ....	१७४५
कृमि दोषकी छर्दि ....	१७४६
असाध्य छर्दिके लक्षण ....	"
छर्दिकी चिकित्सा ....	"
वायुकी छर्दिका यत्न ....	१७४७
पित्तकी छर्दिका यत्न ....	"
कफकी छर्दिका यत्न ....	१७४८
तीनों दोषों की छर्दिका यत्न ....	"
बीभत्स जनितादि छर्दिकी चिकित्सा ....	"

### पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५०

हिक्का ( हिचकी या हुचकी ) के प्रति-	
षेध का व्याख्यान ....	१७५०
हिक्का ( हुचकी ) के हेतु ....	"
हिक्काकी संख्या ....	१७५२

विषय.	पृष्ठांक.
हिक्का का पूर्वरूप ....	"
पाँचों हिक्काओं के लक्षण ....	"
हिक्काकी असाध्यता ....	१७५३
हिक्काकी चिकित्सा का आरंभ ....	१७५४

### एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५१.

श्वासरोगके प्रतिषेधका व्याख्यान ....	१७५७
श्वासरोग की संख्या और पूर्वरूप ....	१७५८
क्षुद्रश्वास ....	"
तमक श्वास ....	"
इसकी कष्टता ....	"
प्रतमक श्वास ....	१७५९
छिन्नश्वास ....	"
महाश्वास और ऊर्द्धश्वास ....	"

### परिशिष्ट ।

तमक और प्रतमक के विशेष लक्षण ....	१७६०
श्वासरोग की चिकित्सा का आरंभ ....	१७६१
श्वासके अन्य प्रयोग ....	१७६४
श्वासमें पथ्य और स्नेह स्वेदादि ....	१७६६

### द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५२.

कास ( खाँसी ) के प्रतिषेधनामक-	
अध्याय का व्याख्यान ....	१७६८
कासरोग की संख्या ....	१७६९
कासका पूर्वरूप ....	"
वातकी खाँसी के लक्षण ....	१७७०
पित्त की खाँसी के लक्षण ....	"
कफकी खाँसीके लक्षण ....	"
क्षतजकास ....	"
क्षयजखाँसी ....	१७७२
इसके लक्षण ....	"
खाँसीके सामान्य प्रयोग ....	"
खाँसी में धूमपान ....	१७७४
वायुकी खाँसी का यत्न ....	१७७५
कफजखाँसी का यत्न ....	"
पित्तजखाँसी के यत्न ....	१७७६
क्षतज और क्षयज खाँसी के यत्न ....	१७७७
कल्याण गुड ....	"
अगस्त्यावलेह ....	१७७८



विषय.	पृष्ठांक.
<b>त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५३.</b>	
स्वरभेद ( आवाज बैठजाने ) के प्रति-	
षेधकी अध्यायका व्याख्यान ...	१७७९
स्वरभेद के हेतु और संख्या ....	"
वातादि स्वरभेद के लक्षण ...	१७८०
स्वरभेदकी असाध्यता ...	"
स्वरभेद की चिकित्सा का आरम्भ १७८१	
वायुके स्वरभंग का यत्न ...	"

<b>चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५४.</b>	
कृमिरोगकी अध्याय का व्याख्यान १७८३	
कृमिरोग के कारण ...	"
कृमियोंके भेद ...	"
पुरीषजकृमि ...	१७८४
कफजकृमि ...	"
रक्तजकृमि ...	१७८५
पथ्य ...	१७८९

<b>पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५५.</b>	
उदावर्त के प्रतिषेधकी अध्यायका	
व्याख्यान ....	"
उदावर्तका हेतु ...	१७९०
उदावर्त की संख्या ...	"
अपान वायु के रोकने का उदावर्त ..	"
मल रोकने का उदावर्त ...	१७९१
मूत्ररोकने का उदावर्त ...	"
जंभारोकने का उदावर्त ...	"
अश्रुनिरोधज उदावर्त और क्षवथुनि-	
रोधज... ..	१७९२
उद्गार छर्दि और शुक्रज उदावर्तों	
के लक्षण ...	"
क्षुधा तृषा श्वास और निद्रा रोकने	
के उदावर्तों के लक्षण ! ...	१७९३
उदावर्त की असाध्यता ...	"
उदावर्तकी चिकित्सा ...	"
अधोवायु और पुरीष के उदावर्त की	
चिकित्सा ...	१७९४
मूत्रोदावर्त की चिकित्सा ...	"

विषय.	पृष्ठांक.
जंभाके उदावर्तादिकी चिकित्सा ...	१७९५
शुक्रज उदावर्त का यत्न ...	१७९६
क्षुधारोकने आदिके उदावर्तोंकी	
चिकित्सा ...	"
अपथ्य भोजनका उदावर्त ...	१७९७
इसकी चिकित्सा ...	"

<b>षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५६.</b>	
विषूचिका ( हैजे ) के प्रतिषेधका	
व्याख्यान ...	१८००
विषूचिका हेतु और निरुक्ति ...	"
विषूचिकाके उपद्रव सहित लक्षण ..	"
अंसल के लक्षण ...	"
विलंबिकाके लक्षण : ...	१८०१
इसकी असाध्यता ...	"
इसकी चिकित्साका निर्देश ...	"
भोजन का उपदेश ....	१८०३
इसकी चिकित्सा ...	"

<b>सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५७.</b>	
अरुचिके प्रतिषेध की अध्याय का	
व्याख्यान ...	१८०५
अरुचि के लक्षण ...	१८०६
अरुचि की चिकित्सा ...	"
अरुचिमें पथ्य ...	१८०८

<b>अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५८.</b>	
मूत्राघात ( मूत्रवन्द होजाने ) के प्रति-	
षेध की अध्यायका व्याख्यान ...	१८१०
वातकुंडलिकाके लक्षण ...	"
वाताष्टीला के लक्षण ...	"
वातवस्ति के लक्षण ...	१८११
मूत्रातीत ...	"
मूत्र जठर और मूत्रोत्सङ्ग ...	१८१२
मूत्रक्षय और मूत्रग्रन्थि ...	"
मूत्रशुक्र और उष्णवायुके लक्षण १८१३	
पित्तज और कफज मूत्रों कसाद के	
लक्षण ...	"
मूत्राघात में चिकित्सा का निर्देश १८१४	
मूत्रदोष में चिकित्साका क्रम इसके	
अन्य प्रयोग ...	१८१४

विषय.	पृष्ठांक.
<b>एकोनषष्टितमोऽध्यायः ५९.</b>	
मूत्रदोषके प्रतिषेधकी अध्यायका	
व्याख्यान ... ..	१८२०
वातज और पित्तज मूत्रदोषके	
लक्षण ... ..	"
कफके और सन्निपातके मूत्रदोषके	
लक्षण ... ..	१८२१
चोटआदिसे तथा शकृतसे और	
पथरीके मूत्रदोष ... ..	"
शर्कराज नितमूत्रकृच्छ्र ... ..	"
चिकित्साका निर्देश ... ..	१८२२
वातके मूत्रकृच्छ्रका यत्न ... ..	१८२३
पित्तके मूत्रकृच्छ्रका यत्न ... ..	"
कफकृच्छ्रादिकी चिकित्सा ... ..	१८२४

## अथ भूतविद्या ।

### षष्टितमोऽध्यायः ६०.

अमानुष ( देवग्रहादिके उपद्रव ) के	
प्रतिषेधकी अध्यायका व्या-	
ख्यान ... ..	१८२५
देवताजुष्ट और दैत्यजुष्टके लक्षण...	१८२६
गन्धर्व और यक्षसे पीडितके लक्षण	१८२७
पितृ और भुजङ्गपीडितके लक्षण...	"
राक्षस और पिशाचसे पीडितके	
लक्षण... ..	१८२८
भूतविद्याकी निरुक्ति...	१८३०
देवादिपीडितकी चिकित्सा...	"
अपराजितवर्ग ... ..	१८३३
इसके गुण ... ..	१८३४

### एकषष्टितमोऽध्यायः ६१.

अपस्मार ( मृगीरोग ) के प्रतिषेध-	
की अध्यायका व्याख्यान ... ..	१८३५
अपस्मारकी निरुक्ति ... ..	"
अपस्माररोगके कारण ... ..	"
अपस्मारकी संप्राप्ति और भेद ... ..	१८३६

विषय.	पृष्ठांक.
अपस्मारका पूर्वरूप ... ..	१८३७
वातादि अपस्मारके लक्षण ... ..	"
अन्यमत ... ..	१८३८
उसका समाधान ... ..	१८३९
मृगीकी सामान्य चिकित्सा ... ..	१८४०
वातादिके अपस्मारकी चिकित्सा ... ..	"
सिद्धार्थकघृत ... ..	१८४१
पञ्चगव्यघृत ... ..	"

### द्विषष्टितमोऽध्यायः ६२.

उन्मादके प्रतिषेधकी अध्यायका	
व्याख्यान ... ..	१८४२
उन्मादके भेद ... ..	१८४३
उन्मादका पूर्वरूप ... ..	"
वातोन्मादके लक्षण ... ..	१८४४
पित्तोन्मादके लक्षण ... ..	"
कफोन्माद और सन्निपातोन्माद ... ..	"
शोकादिका और विषका उन्माद	१८४५
उन्मादकी चिकित्सा ... ..	१८४६
अन्य यत्न ... ..	"
महाकल्याणघृत ... ..	१८४७
फलघृत ... ..	१८४८
अन्यप्रयोग ... ..	"
इसमें विशेष उपदेश ... ..	१८४९

### त्रिषष्टितमोऽध्यायः ६३.

रसके भेद कल्पनाकी अध्यायका	
व्याख्यान ... ..	१८५०
दोदो रसोंके योगसे भेद ... ..	१८५१
तीन २ रसोंके योगसे २० भेद ... ..	१८५२
चारचार रसोंके योगसे १५ भेद ... ..	१८५३
पांचपांचरसोंके योगसे ६ भेद ... ..	१८५४

### चतुषष्टितमोऽध्यायः ६४.

स्वस्थवृत्त ( अर्थात् तंदुरुस्त मनु-	
ष्योंके वर्ताव ) की अध्यायका	
व्याख्यान ... ..	१८५५
स्वास्थ्य रक्षाका निर्देश ... ..	१८५६

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक
ऋतुओंके भेदसे आहार विहारादि- का विस्तारसे वर्णन वर्षाऋतुका वर्ताव ... .. १८५८		अपवर्ग और वाक्यशेष ... .. १८७७	
शरदऋतुका वर्ताव .... १८६०		अर्थापत्ति और विपर्यय ... .. "	
हेमन्तऋतुका वर्ताव ... .. १८६१		प्रसंग ... .. १८७८	
वसन्तऋतुका वर्ताव ... .. १८६३		एकांत और अनेकांत... .. "	
ग्रीष्मऋतुका वर्ताव ... .. १८६४		पूर्वपक्ष और निर्णय ... .. १८७९	
प्रावृष्टऋतुका वर्ताव... .. १८६५		अनुमत और विधान ... .. "	
बारहप्रकारके भोजनभेद ... .. १८६७		अनागतावेक्षण और अतिकांतावेक्षण १८८०	
शीत और उष्ण अन्नका उपयोग ... .. "		संशय और व्याख्यान ... .. "	
स्निग्ध और रूक्षका उपयोग ... .. "		स्वसंज्ञा उदाहरण निर्वचन और निदर्शन ... .. "	
औषध देनेके १० समय ... .. १८६८		नियोगसंमुच्चय और विकल्प ... १८८१	
निर्भक्त ... .. १८६९		उह्य ... .. १८८२	
प्राग्भक्त ... .. "			
अधोभक्त ... .. १८७०			
मध्यभक्त ... .. "			
अंतराभक्त ... .. "			
सभक्त ... .. "			
सामुद्र ... .. १८७१			

### पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ६५.

तंत्रयुक्तिकी अध्यायका व्याख्यान १८७२	
तंत्रयुक्तियोंका प्रयोजन ... .. १८७३	
अधिकरण और भोगके लक्षण ... १८७४	
पदार्थ ... .. १८७५	
हत्वर्थ और उद्देश ... .. १८७६	
निर्देश उपदेश और अपदेश ... .. "	
प्रदेश और अतिदेश ... .. "	

### षट्षष्टितमोऽध्यायः ६६.

दोषभेद विकल्पनामक अध्यायका व्याख्यान ... .. १८८३	
सुश्रुत ऋषिकाप्रश्न ... .. "	
धन्वंतरिजीका उत्तर ... .. "	
त्रिदोषोंके बांसठभेद ... .. १८८४	

### परिशिष्ट ।

दोषोंकीवृद्धिके २५ भेद ... .. १८८६	
ऐसेही दोषोंकी क्षीणतके २५ भेद ... .. "	
वृद्धिक्षयके १२ भेद .... १८८७	
दोषोंका वृद्धिक्षय ... .. "	
दोषोंकीवृद्धिक्षयादिकेसंक्षिप्तलक्षण ... .. "	
पूर्तिःग्रन्थसमाप्तिः ... .. १८९१	

इति सुश्रुतसंहिताया उत्तरतन्त्रानुक्रमणिका समाप्ता ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवद्वंश्वर" छापाखाना—बंबई.

# सुश्रुतसंहितायाः

## उत्तरतन्त्रम् ।

तत्र प्रथमं शालाक्यम् ।

प्रथमोऽध्यायः १.

अथात औपद्रविकमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहाँसे अगाड़ी ( १२० अध्यायों के अगाड़ी ) अब हम औपद्रविक अध्यायका व्याख्यान करते हैं—

अध्यायानां शते विंशे यदुक्तमसंकृन्मया॥ वक्ष्यामि बहुधा सम्य-  
गुत्तरेऽर्था निरानिति ॥ १ ॥ इदानीं तत्प्रवक्ष्यामि तन्त्रमुत्तरमु-  
त्तमम् ॥ निखिलेनोपदिश्यन्ते यत्र रोगाः पृथग्विधाः ॥ २ ॥

इससे पहले वर्णन किये हुए एकसौवीस अध्यायोंमें ( जो सूत्र निदान शारीरक चिकित्सित और कल्पस्थान वर्णन किये गये हैं उनमें ) बारबार ऐसा कहा है कि यह आशय उत्तर तन्त्रमें हम कहेंगे इन रोगोंका ठीक विवेचन इस उत्तरतन्त्रमें करेंगे ॥ १ ॥ सोई उस उत्तम उत्तर तन्त्र को अब हम वर्णन करते हैं जिसमें बहुत प्रकारके अनेक रोगोंका पूर्ण विस्तारपूर्वक उपदेश किया जावेगा ॥ २ ॥

शालाक्यशास्त्राभिहिता विदेहाधिपकीर्तिताः ॥ ये च विस्तरतो  
दृष्टा कुमारबाधहेतवः ॥ ३ ॥ षट्सु कायचिकित्सासु ये चोक्ताः

( श्लो० १ ) सविंशमध्यायशतं परिसमाप्य परिशिष्टभूतं उत्तरतन्त्रं प्रतिपाद्यं भवति इदानीमारभ्यमाणस्य उत्तरतन्त्रस्य संबंधं दर्शयन्नाह। विंशत्यधिकेऽध्यायशते पुनः पुनरुक्तं मया इमानर्थानुत्तरे वक्ष्यामीति तस्मादधुना उत्तरतन्त्रं प्रवक्ष्यामीति संबंधः ।

( श्लो० ३ ) विदेहाधिपकीर्तिता जनकवर्णिता ये च विस्तरतो दृष्टा निमिषणीताः षट्सप्ततिनेत्ररोगाः । करालभट्टशौनकादिप्रणीताश्च पार्वतकजीवकबंधकप्रभृतिभिश्च कुमारबाधहेतवः स्कंदग्रहप्रभृतयः ।

परमर्षिभिः ॥ उपसर्गादयो रोगा ये चाप्यागंतवः स्मृताः ॥ ४ ॥  
 त्रिषष्टी रससंसर्गाः स्वस्थवृत्तं तथैव च ॥ युक्तार्था युक्तयश्चैव दोष-  
 भेदास्तथैव च ॥ ५ ॥ यत्रोक्ता विविधा अर्था रोगसाधनहेतवः ।  
 महत्तस्तस्य तंत्रस्य दुर्गाधस्यांबुधेरिव ॥ ६ ॥ आदावेवोत्तमां-  
 गस्थान् रोगानभिदधांम्यहम् ॥ संख्याया लक्षणैश्चापि साध्यासा-  
 ध्यक्रमेण च ॥ ७ ॥

इस उत्तरतन्त्रमें शालाक्यशास्त्रके आशय जैसे विदेह राजा जनकने कहे हैं तथा अन्यत्र जहां विस्तार पूर्वक देखे हैं ( जैसे ) निमि राजर्षिने ७६ नेत्र रोग कहे हैं इत्यादि और बालरोगोंके हेतु स्कंद आदिग्रह ( इन सबका वर्णन होगा ) ॥ ३ ॥ और छह प्रकार ( छह अंगों ) की कायचिकित्सा जो महर्षियोंने वर्णन करी है तथा उपसर्गादि रोग और आगंतुक रोग ( अमानुष-उन्मादादिक ) ॥ ४ ॥ तथा त्रिरेसठ प्रकार से रससंसर्ग के भेद और स्वस्थवृत्त तथा युक्ताऽयुक्तार्थ ( प्रमाणोपपन्नयुक्तार्थलक्षण ) एवं दोषोंके क्षीणमध्याधिक संसर्गसे ६२ भेद ॥ ५ ॥ और रोगोंके साधन के लिये अनेक प्रकारकी बातों का वर्णन ये सब आशय इसमें वर्णन किये जावेंगे और अगाध समुद्र जैसे विशाल इस तन्त्र के आदिमें उत्तमांग अर्थात् चेहरेके रोगों का वर्णन हम संख्या लक्षण और साध्यासाध्य क्रम पूर्वक करते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

### नेत्रका स्वरूप ।

विद्याद्व्यंगुलंबाहुल्यं स्वांगुष्ठोदरसंमितम् ॥ व्यंगुलं सर्वतः सार्द्धं  
 भिषग्नयनबुद्बुदम् ॥ ८ ॥ सुवृत्तं गोस्तनाकारं सर्वभूतगुणोद्भवम्  
 ॥ ९ ॥ पलं भुवोऽग्नितो रक्तं वातात्कृष्णं सितं जलात् ॥ आका-  
 शादश्रुमार्गाश्च जायन्ते नेत्रबुद्बुदे ॥ १० ॥

नेत्रका बुद्बुद अर्थात् गोला दो अंगुल लंबा और अपनेही अंगूठेके उदर जितना चौड़ा तथा चारोंतरफसे अढ़ाई अंगुल मोटा इस अनुमानका होता

( श्लो० ७ ) उत्तमांगस्थान्छिरोभवान्नेत्रकर्णनासाभवांश्च ।

( श्लो० ८ ) तत्रापि सर्वेन्द्रियाणां मध्ये नयनस्य प्रधानत्वान्नेत्ररोगाणां प्रथममेव वर्णनं कियते । विद्यादिति सार्द्धं व्यंगुलं सर्वतः आयामतो विस्तारतश्च नयनबुद्बुदं अक्षिगोलकः ।

है ऐसा वैद्योंको जानना चाहिये॥८॥और यह गोल तथा गौंके थन ( या गो-  
स्तन अर्थात् अंगूर जैसा अंडाकृति ) के आकारका होता है और इसमें  
पांचों पृथिव्यादि भूतों के गुण हैं॥९॥इसमें मांस पृथिवीका गुण है और रक्त  
अग्निका गुण तथा कृष्णता वायुसे और शुक्लता जलसे तथा अश्रुओंके मार्ग  
आकाशसे बने हैं ॥ १० ॥

## दृष्टिका वर्णन ।

दृष्टिं चात्र तथा वक्ष्ये यथा ब्रूयाद्विशारदः । नेत्रायामत्रिभागं तु  
कृष्णमंडलमुच्यते॥कृष्णात्सप्तममिच्छंति दृष्टिं दृष्टिविशारदाः ११

जैसे विदेहाचार्यने कहा है उसी प्रकार हम दृष्टिका वर्णन करते हैं । नेत्रों-  
के विस्तारका तीसरा भाग तो काली पुतली होती है और काली पुतलीका  
सातवां भाग दृष्टि अर्थात् तिल होता है नेत्रविद्याके जानने वाले  
ऐसे कहते हैं ॥ ११ ॥

## नेत्रके भाग ।

मंडलानि च संधींश्च पटलानि च लोचने ॥

यथाक्रमं विज्ञानीयात्पांच षट् च षडेव च ॥ १२ ॥

नेत्रोंमें मंडल संधि और पटल ये यथाक्रम पांच छह और छह जानने  
चाहियें अर्थात् पांच मंडल और छह संधि तथा छहही पटल ॥ १२ ॥

पक्ष्मवर्त्मश्चेतकृष्णदृष्टीनां मंडलानि तु ॥

अनुपूर्वं तु ते मध्याश्चत्वारोऽन्त्या यथोत्तरम् ॥ १३ ॥

नेत्रोंमें ये पांच मंडल हैं, १ पक्ष्म, २ वर्त्म, ३ श्वेतमंडल ४ कृष्णमंडल  
५ दृष्टिमंडल इनमेंसे पूर्व पूर्व क्रमसे ४ एकसे भीतर दूसरे ऐसे हैं और  
उत्तरोत्तर क्रमसे एक के आगे दूसरा है ( अर्थात् पूर्वक्रमसे पक्ष्मके परे  
वर्त्म, वर्त्मके परे श्वेत, श्वेतके भीतर कृष्ण और कृष्णके भीतर दृष्टि, इस भांति

( श्लो० ११ ) विशारदः विदेहः कृष्णात्सप्तमं दृष्टिरिति कृष्णभागात्सप्तमांशं  
दृष्टिरित्यर्थः। तस्य सप्तमांशस्य किं ममाणं स्यादिति कथनाय मसूरदलमात्रमित्यग्रे निर्देशः।



हैं तथा उत्तरोत्तर क्रमसे चार एक दूसरेके अंतमें अर्थात् अगाड़ी जैसे सबसे पहले दृष्टि उसके अगाड़ी कृष्ण उसके अगाड़ी शुक्ल इत्यादि ( इनमें एक तौ वह जिसकी आदि ले गिने और चार फिर यथाक्रम ) ॥ १३ ॥

## संधि ।

पक्ष्मवर्त्मगतः संधिवर्त्मशुक्लगतोऽपरः ॥ शुक्लकृष्णगतस्त्वन्यः  
कृष्णदृष्टिगतोऽपरः ॥ ततः कनीनकगतः षष्ठश्चापांगगः स्मृतः ॥ १४ ॥

नेत्रोंमें छः संधि इस प्रकारसे हैं कि १ पक्ष्म और वर्त्मके बीचमें, २ वर्त्म और शुक्लभाग ( सुपेदपुतली ) के बीचमें, ३ सुपेद और काली पुतलीके बीचमें, ४ काली पुतली और दृष्टि ( तिल ) के बीचमें और ५ कनीनकमें एवं ६ छठी संधि अपांग ( कनपटी और नेत्रकी कोर ) की संधि होती है ॥

## पटल ।

द्वे<sup>२</sup> वर्त्मपटले विद्याच्चत्वार्यन्यानि चाक्षिणि ॥

जायन्ते<sup>१२</sup> तिमिरं<sup>११</sup> तेषु व्याधिः परमदारुणः ॥ १५ ॥

दो पटल तो वर्त्म ( नेत्राच्छादक ) में होते हैं और चार पटल ( परदे ) नेत्रगोलकमें होते हैं इन्हीं नेत्र गोलकके पटलोंमें तिमिर नामक परमदारुण व्याधि होती है ॥ १५ ॥

## नेत्रगोलकके ४ पटल ।

तेजोजलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यत्पिशिताश्रितम् ॥ मेदस्तृतीयं पटलं  
माश्रितं त्वस्थिं चापरम् ॥ १६ ॥ पंचमांशसमं दृष्टेस्तेषां बाहु-  
ल्यमिष्यते ॥ १७ ॥

उन गोलक गतचार पटलोंमेंसे प्रथम ऊपरका पटल तेज सूक्ष्म सिरा-  
वोंमें प्राप्त रक्त ( आलोचकपित्त ) और जल अर्थात् त्वग्गत रस इनके आश्रित  
हैं और अन्यत् ( दूसरा ) पटल मांसके आश्रित है तीसरा मेदके और  
चौथा अस्थिके आश्रित है ॥ १६ ॥ इनकी मुटाई दृष्टिके पंचभागके तुल्य  
होती है ॥ १७ ॥

## नेत्रबंधन ( उत्पत्ति ) ।

शिराणां कंडराणां च मेदसः कालकस्य च ॥

गुणाः कालात्परः श्लेष्मा बंधनेऽक्ष्णोः शिरायुतः ॥ १८ ॥

शिराओं कंडराओं और मेदाके जो गुण हैं ( प्रसाद हैं या अति सूक्ष्म सूत्र समान रंगें हैं ) उनसे नेत्रका कृष्णभाग बंधा हुआ है और कृष्णभागसे अपर शुक्ल भाग यह शिराओं सहित श्लेष्मसे बंधा ( अर्थात् बना ) हुआ है, दूसरा यहभी अर्थ होता है कि शिराओं कंडराओं मेदा और कालक अर्थात् जत्रु इनके गुण ( प्रसाद ) तथा शिराओं सहित श्लेष्म ये नेत्रोंके बंधन ( बनने ) में कालात् ( अर्थात् उत्तरोत्तर ) पर अर्थात् उत्कृष्ट हैं ॥ १८ ॥

## नेत्ररोगोंकी मुख्य संप्राप्ति ।

शिरानुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरुद्धमार्गतैः ॥ जायंते नेत्रभागेषु रोगाः  
परमदारुणाः ॥ १९ ॥

जब दोष कुपित होकर उद्धगामी होते हैं यदि वे नेत्र संबंधी शिराओंके अनुगत हो जावें तौ उनसे नेत्रोंके भागों ( श्वेत कृष्ण दृष्टि आदि ) में बड़े २ दारुण रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १९ ॥

## नेत्र रोगोंका पूर्वरूप ।

तत्राविलं ससरंभमश्रुपूर्णोपदेहवत् । गुरुषचोषरागाद्यैर्जुष्टं चा  
व्यक्तलक्षणैः ॥ २० ॥ सशूलं वर्त्मकोषेषु शूकपूर्णभमेव च ॥

विहन्यमानं रूपे वा क्रियास्वक्षि यथापुरा ॥ २१ ॥

नेत्र मैलेसे हों सरंभ युक्त हों अर्थात् कुछ कोपयुक्तसे ( या सूजेसे ) हों अश्रु भर २ आवें ( पानी आने लगे ) उपदेह ( मलवृद्धि हो गीठ जियादह आवें )

( श्लो० १८ ) शिरादीनां मेदः पर्यंतानां गुणाः प्रसादाः अक्ष्णोः कालकस्य कृष्णभागस्य बंधनेऽधिकृताः, तथा कालकात् कृष्णभागात् परः यः शुक्लो भागः तस्य बंधने शिरायुतश्लेष्मा इति पिंडार्थः । एतदर्थानुकूलेनैवात्र केचिदिति पाठांतरं पठति “ शिराणां कंडराणां च मेदसः कृष्णबंधने ॥ गुणाः कालात्परः श्लेष्मा बंधनेऽक्ष्णोः शिरायुतः ” इति ( नि० सं० ) अन्ये चान्यप्रकारेण व्याख्यानयन्ति यथा शिरादीनां कालकपर्यंतस्य गुणाः प्रसादाः तथा शिरायुतः श्लेष्मा च अक्ष्णोर्वंधने कालात् यथोत्तरं परः उत्कृष्टः कालकः जत्रुः ( इति शब्दस्तोमः )

भारी हो जावे ऊष ( जलनसी हो ) चोष ( चोषण जैसी पीड़ा ) ( और कई चोषकी जगह " तोद " पाठ मानते हैं ) और राग ( सुरखी ) हो ये सब लक्षण अव्यक्त बहुतही सूक्ष्मतासे हों ॥ २० ॥ और शूलभी हो तथा पलकोंमें या कोइयों में सुसभरासा माछूम हो और पहले स्वस्थता जैसे रूप और क्रिया ( आखोंके खोलने मीचने ) में हानि पाई जावे ( तौ जानना कि कोई भयंकर नेत्ररोग होनेवाला है ) ॥ २१ ॥ ( वक्तव्य- ) इसमें कई गुरुत्वादि कफरोगोंका पूर्वरूप तथा ऊष चोष पित्त रोगोंका और तोद शूलादिक वायुरोगोंका और राग ( सुरखी ) रक्तरोगोंका पूर्वरूप जाने ऐसा कहते हैं ॥

### पूर्वरूपमें कर्तव्य यत्न ।

दृष्ट्यैव धीमान्बुध्येत दोषेणाधिष्ठितं च तत् ॥ तत्र संभवमासाद्य  
यथादोषं भिषग्जितम् ॥ विदध्यान्नेत्रं रोगं बलवतः स्युर-  
न्यथा ॥ २२ ॥ संक्षेपतः क्रियायोगो निदानपरिवर्जनम् ॥ वाता-  
दीनां प्रतीयातः श्रोक्तो विस्तरतः पुनः ॥ २३ ॥

इन उपरोक्त बातोंको जिस दोषसे जो जो उपद्रव होते हैं या होनेवाले होते हैं उन्हें बुद्धिमान् वैद्य दृष्टिहीसे समझ ले और उसमें जिस दोषका संभव समझे उसी दोषके अनुसार औषधका उपयोग करें आरंभहीमें ऐसा न करनेसे नेत्रके रोग बढ़कर बलवान् हो जाते हैं ॥ २२ ॥ सबसे प्रथम निदानके बिनाही किये संक्षेपसे ( जो किसी दोषकेभी विरुद्ध न हो ) ऐसा क्रियायोग करें ( शमन संशोधनादि करें ) और वातादि रोगोंका प्रतिकार विस्तार पूर्वक फिर अगाड़ी कहा है ( वह प्रगटरूपसे वातादि रोगोंके लक्षण प्रतीत होनेपर करने योग्य हैं ) ॥ २३ ॥

### नेत्ररोगोंके हेतु ।

उष्णाभितप्तस्य जले प्रवेशादूरे क्षणात्स्वप्नविपर्ययाच्च ॥ प्रसक्त-  
संरोदनशोककोपक्लेशाभिवातादतिमैथुनाच्च ॥ २४ ॥ शुक्ता-  
नालाम्लकुलत्थमाषनिषेवणाद्वेगविनिग्रहाच्च ॥ स्वेदाद्रजोधर्मनि-

( श्लोक २२ ) भिषग्जितं औषधं प्रतिकारश्च ॥

( श्लोक २५ ) रजोधर्मनिषेवणात् इति । रजः धूलिः, धर्मः आतपः, तयोर्निषेवणात् । केचिदत्र रजोधर्मनिषेवणादिति पाठांतरं मत्वा रजस्वलास्त्रीसेवनादिति व्याख्यानयन्ति ॥

षेवणाच्च छर्देर्विधाताद्वमनातियोगात् ॥ २५ ॥ बाष्पग्रहात्सू  
क्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकाराञ्जनयन्ति दोषाः ॥ २६ ॥

गरमीसे तपायमान शरीर होनेपर एका एक ठंढे जलमें घुस जानेसे ( या तपायमान शिरपर ठंढा पानी डालनेसे ) दूरकी वस्तुको अधिक ध्यान करके देखनेसे, दिनमें सोने रातको जागनेसे, अत्यंत रोनेसे, शोकसे, क्रोधसे, क्रेशसे, अभिघात ( चोट आदि लगजाने ) से, अत्यंत मैथुन करनेसे ॥ २४ ॥ शुक्त ( सिरका ) आरनाल ( एकभाँतकी कांजी ) तथा खटाई कुलथी उड़द इनके अधिक खानेसे, बेगोंके रोकनेसे, जादा स्वेद जादे धूल जादे धूप इनसे वमन रोकनेसे, अत्यंत वमन करनेसे ॥ २५ ॥ बाष्पग्रहण करने ( अश्रुपात रोकने या किसी वस्तुकी भाफ लेने ) से, और बहुत बारीक वस्तु देखनेसे ( इत्यादिकारणोंसे कुपितहुए वातादि ) दोष नेत्रोंमें अनेक प्रकारके विकार ( रोग ) पैदा करते हैं ( इस लिये इनसे बचना नेत्रोंको हितकारक है ) ॥ २६ ॥

**दोषभेदसे नेत्ररोगोंकी पृथक् २ संख्या ।**

वातादृश तथा पित्तात्कफाच्चैव त्रयोदश । रक्तात्षोडश विज्ञेयाः  
सर्वजाः पञ्चविंशतिः ॥ तथा बाह्यौ पुनर्द्वौ च रोगाः षट्सप्ततिः  
स्मृताः ॥ २७ ॥

नेत्रोंमें वायुसे दश रोग होते हैं; तथा पित्तसेभी दशही होते हैं; कफसे तेरह रोग होते हैं एवं रुधिरसे सोलह और सबसे ( सन्निपातसे ) पच्चीस रोग होते हैं और दो रोग बाह्य ( जिनमें अभिघातसे दूसरा देव ऋषि गंधर्वादि दर्शन तथा छाया कोप आदिजन्य ) ऐसे सब मिलकर नेत्रोंमें छिहत्तर रोग होते हैं ॥ २७ ॥

**नेत्ररोगोंकी साध्यासाध्यता-वातजसाध्यासाध्य ।**

हताधिमंथो निमिषो दृष्टिगंभीरिका च या ॥ यच्च वार्तहतं वर्त्म  
न ते सिद्धयन्ति वार्तजाः ॥ २८ ॥ योऽप्योऽर्थं तन्मयः काचः

( श्लो० २७ ) भावमकाशे तु नेत्ररोगा अष्टसप्ततिर्लिखिताः-तथा चोक्तम् द्वादशव्याधयो दृष्टौ तत्रैवान्यौगदाबुधौ ॥ कृष्णभागे तु चत्वारो दशैकाः शुक्लभागजाः ॥ वर्त्मन्येकोविंशतिश्च पद्मजौ द्वौ प्रकीर्तितौ ॥ नवसंधिषु सर्वस्मिन् नेत्रे सप्तदशोदिताः ॥ एवं नेत्रसमस्ताः स्युरष्टसप्ततिरामयाः इति ।

साध्याः स्युः सान्यमारुताः । शुष्काक्षिपाकाधिमंथस्पंदमारुत-  
पर्ययाः ॥ २९ ॥

वातज नेत्ररोगोंमें हताधिमंथ निमिष दृष्टिगंभीरिका तथा वात हतवर्त्म  
य ४ असाध्य होते हैं ॥ २८ ॥ तथा एक वातज काच याप्यहै और शुष्क  
अक्षिपाक अधिमंथ और स्पंद मारुत ये साध्य हैं २ ॥ २९ ॥

### पित्तजसाध्यासाध्य नेत्ररोग ।

असाध्यो ह्रस्वजात्यो यो जलस्रावश्च पैत्तिकः ॥ परिम्लायी च  
नीलश्च याप्यः काँचोऽथ तन्मयः ॥ ३० ॥ अभिष्यंदोऽधिमन्थो  
ऽम्लाध्युषितं शुक्तिकाह्वया ॥ दृष्टिः पित्तविदग्धा च पोथक्यो  
लगणश्च यः ॥ ३१ ॥

पित्तज नेत्र रोगोंमें ह्रस्वजात्य और पैत्तिक जलस्राव ये दो असाध्य हैं  
और परिम्लायी तथा पैत्तिक नीलकाच ये दो याप्य हैं ॥ ३० ॥ और अभि-  
ष्यंद अधिमंथ अम्लाध्युषित शुक्तिका पित्तविदग्धदृष्टि पोथकी और लगण  
ये साध्य हैं ॥ ३१ ॥

### कफज साध्यासाध्य नेत्ररोग ।

असाध्यः कफजः स्रावो याप्यः काँचोऽथ तन्मयः ॥ अभिष्यंदो  
ऽधिमन्थश्च बलासग्रंथितं च यत् ॥ ३२ ॥ दृष्टिः श्लेष्मविदग्धा च  
पोथक्यो लगणश्च यः । किमिग्रंथिपरिक्लिन्नवर्त्मशुक्लार्मपिष्ट-  
काः ॥ ३३ ॥ श्लेष्मोपनाहः साध्यास्तु कथिताः श्लेष्मजेषु तु ॥ ३४ ॥

कफके नेत्ररोगोंमें एक कफज स्राव असाध्य होता है तथा कफ, काच  
याप्य हैं और अभिष्यंद अधिमंथ बलासग्रंथि ॥ ३२ ॥ श्लेष्मविदग्ध दृष्टि  
पोथकी लगण कृमिग्रंथि परिक्लिन्नवर्त्म शुक्लार्म पिष्टक ॥ ३३ ॥ और श्ले-  
ष्मोपनाह ये ११ साध्य वर्णन किये हैं ॥ ३४ ॥

### रक्तजसाध्यासाध्य नेत्ररोग ।

रक्तस्रावोऽजकाजातं शोणिताशौऽवलंबितम् । शुक्रं न साध्यं  
काचैश्च याप्यस्तर्जः प्रकीर्तितः ॥ ३५ ॥ मंथस्यंदौ क्लिष्टवर्त्म

हर्षोत्पातौ तथैव च ॥ शिराजावज्जनाख्या च शिराजालं च  
यत्स्मृतम् ॥ ३६ ॥ पर्वण्यथाव्रणं शुक्रं शोणितामार्जुनश्च यः ।  
एते साध्यो विकारेषु रक्तजेषु भवन्ति हि ॥ ३७ ॥

रक्तज नेत्ररोगोंमें रक्तस्त्राव अजकाजात शोणितार्श और अवलंबित  
शुक्र ये असाध्य होते हैं और रक्त काच एक याप्य है ॥ ३५ ॥  
और मंथ स्यंद क्लिष्टवर्त्म और हर्षोत्पात ( शिराहर्ष-शिरोत्पात तथा ) अंज-  
नाख्या और शिराजाल ॥ ३६ ॥ पर्वणी अव्रण शुक्र शोणितार्म और अर्जुन  
ये साध्य होते हैं ॥ ३७ ॥

## संनिपातज साध्यासाध्यनेत्ररोग ।

पूयस्त्रावो नाकुलाध्यमक्षिपाकात्ययोऽलजी ॥ असाध्याः सर्वजा  
याप्याः काचः कोर्पश्च यक्ष्मणः ॥ ३८ ॥ वर्त्मावबंधो यो व्याधिः  
शिरासु पिडका च या ॥ प्रस्तार्यर्माधिमांसार्मस्नाय्वर्मोत्संगिनी  
च या ॥ ३९ ॥ पूयालसश्चावुदं च श्यावकदर्मवर्त्मनी ॥  
तथाशोवर्त्म शुक्रार्शः शर्करावर्त्म यच्च वै ॥ ४० ॥ सशोफश्चा-  
प्यशोफश्च पाको बहलवर्त्म च ॥ अक्लिन्नवर्त्म कुंभीका विसवर्त्म  
च सिध्यति ॥ ४१ ॥

संनिपातके नेत्ररोगोंमेंसे पूयस्त्राव नाकुलाध्य अत्यक्षिपाक और अलजी  
ये चार असाध्य हैं और सन्निपात काच तथा पक्ष्मकोप ये याप्य हैं ॥ ३८ ॥  
और वर्त्मावबंध शिराकी पिडका प्रस्तार्यर्म अधिमांसार्म स्नाय्वर्म उत्संगिनी  
॥ ३९ ॥ पूयालस अवुद श्याव और कर्दमवर्त्म तथा अशोवर्त्म शुक्रार्श  
शर्करावर्त्म ॥ ४० ॥ सशोफअक्षिपाक अशोफअक्षिपाक बहलवर्त्म अक्लिन्न  
वर्त्म कुंभीका और विसवर्त्म ये १९ साध्य हैं ॥ ४१ ॥

सनिमित्तोऽनिमित्तश्च द्वावसाध्यौ तु बाह्यौ । षट्सप्ततिवि-  
काराणामेषा संग्रहकीर्तना ॥ ४२ ॥

सनिमित्त ( अभिघातसे नेत्र नष्ट होना ) तथा अनिमित्त ( जिसका नि-  
मित्त जाना नहीं जावे देव यक्षादि दोषसे नेत्र नष्ट हो जावे ) ये दोनों बाह्य



आगंतुक रोग असाध्य होते हैं। बस, इस प्रकार ७६ रोगोंके संग्रहकी व्याख्या हुई ॥ ४२ ॥

## स्थानभेदसे नेत्ररोगोंकी संख्या ।

नव सन्ध्यश्रयास्तेषु वर्त्मजास्त्वेकविंशतिः ॥ शुक्लभागे दशैकं  
श्च चत्वारः कृष्णभागजाः ॥ ४३ ॥ सर्वाश्रयाः सप्तदश दृष्टिजा  
द्वादशैव तु ॥ बाह्यजौ द्वौ समाख्यातौ रोगौ परमदारुणौ ॥ ४४ ॥  
भूय एतान्प्रवक्ष्यामि संख्यारूपचिकित्सितैः ॥ ४५ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ये ऊपर जो दोष भेदसे ७६ नेत्रके रोग वर्णन किये इनमेंसे ९ संधिमें होते हैं और २१ रोग वर्त्म ( कोये ) में होते हैं, नेत्रके सुपेद भागमें ११ और कृष्णभागमें ४ रोग होते हैं ॥ ४३ ॥ समस्त नेत्रमें होनेवाले १७ रोग हैं और दृष्टिमें होनेवाले १२ रोग हैं तथा दो परम दारुण रोग बाहरसे होते हैं ( अर्थात् आगंतुक हैं ) ऐसे ये सब ७६ हो गये ॥ ४४ ॥ संख्यारूप और चिकित्सा पूर्वक फिर इनको यथाक्रम हम अगाड़ी वर्णन करेंगे ॥ ४५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां भाषाटीकायां उत्तरतन्त्रे शालाक्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः २.

अथातः संधिगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहाँसे अगाड़ी अब हम संधिगत ( नेत्रकी संधियोंमें होनेवाले ) रोगोंके विज्ञानकी अध्यायका व्याख्यान करते हैं-

### नेत्रसंधिके ९ रोग ।

पूयालसः सोपनाहः स्रावाः पर्वणिकाऽलजी । कृमिग्रंथिश्च विज्ञेयौ  
रोगौः सन्धिगता नव ॥ १ ॥

नेत्रकी संधियोंमें ये ९ रोग होते हैं। पूयालस, उपनाह, चार प्रकारके स्राव ( कफज स्राव, पित्तज स्राव, रक्तज स्राव, तथा सन्निपातज स्राव ) वायुमें

( श्लो० १ ) स्रावाश्चत्वारः-पित्तज-कफज-रक्तज-सन्निपातजाः-इति । वाते रूक्षत्वा-  
न्नातज स्रावइत्यर्थः ।

रुक्षता होनेसे वातज स्राव नहीं होता ) ७ पर्वणिका ८ अलजी और ९ कृमिग्रंथि ॥ १ ॥

## पूयालस और उपनाहके लक्षण ।

पर्कः शोफः सन्धिजः संस्रवेद्यः सांद्रं पूयं पूतिं पूयालसः सः ।  
ग्रंथिर्नालपो दृष्टिसंधावपाकः कंडूपायो नीरुजस्तूपनाहः ॥ २ ॥

नेत्रकी कनीनक ( नाकके पासकी ) संधिमें जो सोथ होता है और पकनेपर गाढ़ा दुर्गंधित राध निकले यह पूयालस रोग समझो । और जो नेत्रकी संधिमें बड़ी गांठ होजावे और पके नहीं कुछ पीडाभी नहीं हो केवल खाज विशेषकर आयाकरे तो उसे उपनाह रोग कहते हैं ॥ २ ॥

## चारों प्रकारके स्रावोंके लक्षण ।

गत्वां संधीनश्रुमांगेण दोषाः कुर्वुः स्रावान् रुग्निहीनान्स्वलिंगान् ।  
तान्वै<sup>१३</sup> स्रावान्नेत्रनाडीमथैके तस्यां लिंगं कीर्तयिष्ये चतुर्था ॥  
॥ ३ ॥ पाकः संधौ संस्रवेद्यश्च पूयं पूयांस्रावो नैकरूपः प्रदिष्टः ।  
श्वेतं सांद्रं पिच्छलं यः स्रवेच्च श्लेष्मास्रावो नीरुजः संप्रदिष्टः ॥ ४ ॥  
रक्तास्रावः शोणितोत्थः सरक्तं कोष्णं नालपं संस्रवेत्नातिसान्द्रम् ।  
पीताभासं नीलमुष्णं जलाभं पित्तस्रावं संस्रवेत्सन्धिर्मध्यात् ॥ ५ ॥

अश्रुसंधि शिराओंमें प्राप्त हुए पित्तादि दोष जब वे नेत्रकी संधियोंमें प्राप्त होते हैं तब वे वेदना रहित अपने २ लक्षणोंवाले स्राव उत्पन्न करते हैं इनको कई आचार्य नेत्रनाडी कहते हैं, हम इसके चार प्रकारके लक्षण कहते हैं ॥ ३ ॥ यदि संधिमें पकाव होकर अनेक रूपकी पूय ( पीप ) झिरने लगे तो इसे पूयस्राव या सन्निपातज स्राव कहते हैं । और यदि सुषेद गाढ़ा मैला और पीड़ा रहित स्राव हो तो वह कफस्राव होता है ॥ ४ ॥ यदि रक्त या रक्तयुक्त गरम गरम बहुतसा स्राव हो और बहुत गाढ़ा न हो तो वह रुधिरसे उपजा हुआ रक्तस्राव होता है । और जो पीला या नीला सा जलवत् गरम स्राव हो तो वह पित्तका स्राव होता है. यह संधिके मध्यसे होता है ॥ ५ ॥

( श्लो० ३ ) तान् स्रावान् एके नेत्रनाडीं वदन्तीति शेषेणान्वयः ।

( श्लो० ४ ) नैकरूपः सान्निपातिकः ।

## पर्वणी और अलजीके लक्षण ।

ताम्रा तन्वी दाहशूलोपपन्ना रक्ताज्ज्ञेया पर्वणी वृत्तशोफा ।  
जाता सन्धौ कृष्णशुक्लेऽलजी स्यात्तस्मिन्नेवाख्यापिता पूर्व-  
लिङ्गैः ॥ ६ ॥

जो ताम्रके रंगकी छोटी ( फुन्सीसी ) हो जिसमें दाह और शूल हो तथा चारों तरफ आसपासमें फैला हुआ शोथ भी हो तो वह रक्तसे उपजी पर्वणी जाननी चाहिये और कृष्ण और शुक्ल भागकी संधिमें जो पूर्वोक्त लक्षणों-वाली हो तो वह अलजी नाम रोग है ( इनका भेद टिप्पणीमें देखो ) ॥ ६ ॥

## कृमिग्रन्थिके लक्षण ।

कृमिग्रन्थिः वर्त्मनः पक्ष्मणश्च कंडू कुर्युः कर्मयः सन्धिजाताः ।  
नानारूपा वर्त्मशुक्लस्य सन्धौ चरन्तोन्तर्नयनं दूषयन्ति ॥ ७ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

वर्म और पक्ष्मकी संधिमें तथा वर्म और शुक्लकी संधिमें अनेक प्रकारके कृमि खाज पैदा करते हैं और अंदर विचरते हुए नेत्रोंको दूषित कर देते हैं इसे कृमि ग्रन्थि कहते हैं ( इसमें गांठसीभी होजाती है ) ( देखो टिप्पणी ) ॥ ७ ॥

इति सुश्रुतटीकायां उत्तरतन्त्रे शालाक्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## तृतीयोऽध्यायः ३.

अथातो वर्त्मगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी हम अब वर्त्मगतरोग अर्थात् वरोनी ( आखोंके कोये ) के रोगोंके विज्ञानकी अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

( श्लोक ६ ) पर्वणी वर्त्मशुक्लसंधौ भवति । तदुक्तं वृद्धवाग्भटे-वर्त्मसंध्याश्रयाशुक्ले पिटिका दाहशुलिनी ॥ ताम्रामुद्रोपमा भिन्ना रक्तं स्रवति पर्वणी ॥ इति सुनरलजी तु कृष्णशुक्ल-संधौ अयमेवभेदः । इल्लनस्तु इत्याह पर्व-ण्यलज्योः स्थानस्य लक्षणस्य चैक्येपि तनुत्वस्थूलत्वा-भ्यां भेदः-ख्यापिता पूर्वलिङ्गैरित्यत्र प्रमेहापिटिकान्तर्गतालजी लक्षणैः ख्यापिता इति भाव-मिश्रेणोक्तम् ।

( श्लोक ७ ) कृमिग्रन्थि विषये वृद्धवाग्भट इत्याह-“अपांगवान्कनीनवान्कंदूपापक्ष्म पाटवान् ॥ पृथग्विधी कृमिग्रन्थिः कृमियुतोऽर्निमान्” ।

## वर्त्म रोगों की उत्पत्ति ।

पृथग्दोषाः समस्ताश्च यदा वर्त्मव्यपाश्रयाः । शिरा व्याप्या-  
वतिष्ठन्ते वर्त्मस्वधिकमूर्च्छिताः ॥ १ ॥ विवर्ध्य मांसं रक्तं च  
तदा वर्त्मव्यपाश्रयान् । विकाराञ्जनयन्त्याशु नामतस्तांनि-  
बोधेत ॥ २ ॥

जब वातादि दोष कुपित होकर एक २ या अधिक मिलकर वर्त्म संबंधी शिराओंमें प्राप्तहोकर वर्त्म ( कोयों ) में पहुँचके स्थित होते हैं तब रुधिर या मांस आदि को बढाकर वर्त्मगत रोगोंको शीघ्रही उत्पन्न करदेते हैं उनके नाम ( लक्षण ) श्रवण करो ( ये वर्त्मगत रोग २१ प्रकारके होते हैं ) ॥ १ ॥ २ ॥

## इनके नाम ।

उत्संगिन्यथ कुंभीका पोथक्यो वर्त्मशर्करा ।

तथाशोवर्त्म शुष्कार्शस्तथैवाञ्जननामिका ॥ ३ ॥

बहलं वर्त्म यच्चापि व्याधिर्वर्त्मावबन्धकः ।

क्लिष्टकर्मवर्त्माख्यौ श्याववर्त्म तथैव च ॥ ४ ॥

प्रक्लिन्नमपरिक्लिन्नं वर्त्म वातहतं तु यत् ।

अर्बुदं निमिषश्चापि शोणितार्शश्च यत्स्मृतम् ॥ ५ ॥

लगणो विषनामा च पक्ष्मकोपस्तथैव च ।

एकविंशतिरित्येते विकारा वर्त्मसंश्रयाः ॥ ६ ॥

उत्संगिनी कुंभीका पोथकी वर्त्मशर्करा अशोवर्त्म शुष्कार्श तथा अंजन नामिका ॥ ३ ॥ बहलवर्त्म वर्त्मावबन्धक क्लिष्टवर्त्म कर्मवर्त्म और श्याववर्त्म ॥ ४ ॥ प्रक्लिन्न अपरिक्लिन्न वाताहतवर्त्म अर्बुद निमिष तथा शोणितार्श ॥ ५ ॥ लगणविषनाम और पक्ष्मकोप ये २१ रोग वर्त्म ( कोये ) में होनेवाले हैं ॥ ६ ॥

## उत्संगिनी और कुंभीकाके लक्षण ।

नामभिस्ते समुद्दिष्टा लक्षणैस्तान्प्रचक्ष्महे ॥ ७ ॥

( श्लोक १ ) अधिक मूर्च्छिता अतिशयकुपिताः ( इति नि० सं० )

पिंडिकाभ्यंतरमुखी बाह्याधोवर्त्मसंश्रया ।

विज्ञेयोत्संगिनी नाम तद्रूपपिडिकान्विता ॥ ८ ॥

कुंभीकबीजप्रतिमाः पिडिकाः पक्ष्मवर्त्मनोः ।

आध्मायन्ते तु भिन्नायाः कुंभीकपिडिकास्तु ताः ॥ ९ ॥

वर्त्मरोगोंके नाम तो सब वर्णन कियेगये अब उनके लक्षणोंका वर्णन करते हैं ॥ ७ ॥ नीचेके कोयेमें बाहर उभरी हुई ऐसी फुन्सी हो जिसका मुहँ भीतरको ( आँखकी तरफ ) हो तो उसे "उत्संगिनी" कहते हैं तथा इसके आसपासमें ऐसीही और फुन्सियांभी होती हैं ॥ ८ ॥ जो कोये और पलकोंके बीचमें कुम्हेरके बीजकी आकृतिवाली फुन्सी हो और उसके फूटने पर शोथ होवे तो इसे "कुंभीका" नाम पिडिका कहते हैं ॥ ९ ॥

## पोथकी और वर्त्मशर्करा ।

कंडूस्त्रावान्विता गुर्व्यो रक्तसर्पसन्निभाः ।

पिंडिकाश्च रुजावत्यः पोथक्य इति संज्ञिताः ॥ १० ॥

पिडिकाभिः समूक्ष्माभिर्धनाभिरभिः संवृताः ।

पिडिका या खरा स्थूला सा ज्ञेया वर्त्मशर्करा ॥ ११ ॥

जो फुन्सी खाज और सावसे युक्त हों और लाल सरसोंके बराबर हों उनमें पीडाभी हो तो इन्हें पोथकी कहते हैं ॥ १० ॥ यदि कोया भीतरसे छोटी छोटी गहरी बहुतसी खरदरी फुन्सियोंसे युक्त बड़ा फैले वा फुन्सीसे व्याप्त होजावे तो उसे वर्त्मशर्करा जानो ॥ ११ ॥

## अशोवर्त्म और शुष्कार्श ।

सूक्ष्माः खराश्च वर्त्मस्थास्तदशोवर्त्म कर्त्तव्यते ॥ १२ ॥

दीर्घाङ्कुरः खरस्तब्धो दारुणो वर्त्मसंभवः ।

व्याधिरेष समाख्यातः शुष्कार्श इति संज्ञितः ॥ १३ ॥

यदि कोयेमें छोटे छोटे खरदरे अङ्कुरसे होवें तो उन्हें अशोवर्त्म कहते हैं ॥ १२ ॥ और यदि अङ्कुर बड़ा खरदरा करड़ा और दारुण हो तो इस व्याधिको शुष्कार्श ( वर्त्मगत शुष्कार्श ) कहते हैं ॥ १३ ॥

## अंजननामिका और बहलवर्त्म ।

दाहतोदवती ताम्रा पिडिका वर्त्मसंभवा ।

मृद्वी मंदरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया सांजननामिका ॥ १४ ॥

वैर्त्मोपंचीयते यस्य पिडिकाभिः समंततः ।

सवर्णाभिः समाभिश्च विद्याद्बहलवर्त्म तत् ॥ १५ ॥

यदि कोयेमें ताम्र वर्णकी दाह और तोदवाली नरम मंद वेदनावाली छोटी फुन्सी होवे तो उसे अंजननामिका कहते हैं ॥ १४ ॥ जिसका कोया सब तरफसे सवर्ण और समान फुन्सियोंसे व्याप्त होजावे तो उसे बहलवर्त्म रोग जानियें ॥ १५ ॥

## वर्त्मबंध आर क्लिष्टवर्त्म ।

कंडूर्मतालपंतोदेन वर्त्मशोफेन यो नरः ।

न समाच्छादयेदक्षिर्भवेद्वर्धः सं वर्त्मनः ॥ १६ ॥

मृद्वलपवेदनं ताम्रं यद्वर्त्मसममेवं च ।

अकस्माच्च भवेद्रक्तं क्लिष्टवर्त्म तदादिशेत् ॥ १७ ॥

जिसका कोया खाजयुक्त अल्प पीडावाले शोथके कारण नेत्रको समान भावसे ठीक नहीं टांक सके तो उसे वर्त्मका बंध कहते हैं ॥ १६ ॥ जिसका कोया अकस्मात् अल्प वेदना युक्त नरम तांबेके वर्णका सुख होजावे और समानही रहे ( शोथ आदि कुछ न हो ) तो उसे क्लिष्टवर्त्म कहते हैं ॥ १७ ॥

## वर्त्मकर्दम और श्याववर्त्म ।

क्लिष्टं पुनः पित्तयुक्तं विदहेच्छोर्णितं यदा ।

तदा किंनत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमम् ॥ १८ ॥

यद्वर्त्म बाह्यतोन्तश्च श्यावं शूनं सवेदनम् ।

दाहकंडूपरिक्लेदि श्याववर्मेति तन्मृतम् ॥ १९ ॥

उपरोक्त क्लिष्ट वर्त्म रोग जब विशेष कर पित्तयुक्त होवे और रुधिर दग्ध कर दे तब उसमें अत्यंत छेदनता ( कीचड़सी ) हो जावे उसे वर्त्म कर्दम

( श्लोक १७ ) अकस्मात् कारणं विना ।

कहते हैं ॥ १८ ॥ यदि कोया बाहर और भीतरसे काला पड़जावे मूज जावे पीडाभी हो दाह खाज और क्लेदभी होवे तो वह श्वाववर्त्म नामक रोग कहलाता है ॥ १९ ॥

### क्लिन्नवर्त्म और अक्लिन्नवर्त्म ।

अरुजं बाह्यतः शून्यमन्तः क्लिन्नं स्रवत्यपि ।

कंडूनिस्तोदभूयिष्ठं क्लिन्नवर्त्म तदुच्यते ॥ २० ॥

यस्य धौतानि धौतानि संबध्यन्ते पुनः पुनः ।

वर्त्मन्यपरिपक्वानि विद्यादक्लिन्नवर्त्म तत् ॥ २१ ॥

कोयेमें बाहरको वेदना रहित सोजा होवे और भीतरसे क्लेदित ( गीला ) और पानीसा भी टपके खाज और चुभने जैसी पीडा हो उसे क्लिन्नवर्त्म कहते हैं ॥ २० ॥ जिसके कोये धोते रहनेपरभी बार २ चिपक जावें और पकें नहीं उसे अक्लिन्नवर्त्म नाम रोग जानो ॥ २१ ॥

### वातहतवर्त्म और वर्त्मावुद ।

विमुक्तसन्धि निश्चेष्टं वर्त्म यत्र निमील्यते ।

एतद्वातहतं विद्यात्सरुजं यदि वारुजम् ॥ २२ ॥

वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् ।

विज्ञेयमवुदं पुंसां सरक्तमवलंबितम् ॥ २३ ॥

यदि कोयेकी संधि खुल जावे ( बिगड़ जावे ) चेष्टा जातो रहे कोया खुले मिचे नहीं चाहे उग्र वेदना युक्त हो या वेदना रहितहो इसे वात-हतवर्त्म कहते हैं ॥ २२ ॥ कोयेके भीतर विषम वेदना रहित गांठनसी हो जावे और वह गांठन रुधिर युक्त अवलंबित ( वर्त्मके आश्रित ) होवे तो उसे अवुद ( वर्त्मावुद ) कहते हैं ॥ २३ ॥

### निमिष ( यानिमेष ) और रक्ताश ।

निमेषणीः शिरा वायुः प्रविष्टो वर्त्मसंश्रयाः ।

चालयेदति वर्त्मानि निमेषः स गर्दो मत्तः ॥ २४ ॥

छिन्नाश्छिन्ना विवर्द्धन्ते वर्त्मस्था मृदवोऽङ्कुराः ।

दाहकंडूरुजोपेतास्तेऽशः शोणितसंभवाः ॥ २५ ॥



निमेषणी ( खोलने मीचनेवाली ) शिरा जो कोयोंमें हैं उनमें वायु प्रविष्ट होकर कोयोंको अत्यंत चलायमान करे ( कोये जल्दी २ खुलें मिचें या फरकें ) तो इसे निमेष नाम रोग कहते हैं ॥ २४ ॥ कोयोंमें मृदु अंकुर ऐसे हो जावें जो बार बार काटनेपरभी बढें उनमें दाह खाज वेदना भी होवे तो ऐसे अंकुर शोणितार्श कहलाते हैं ॥ २५ ॥

## लगण और विसवर्त्म ।

अपाकः कठिनः स्थूलो ग्रन्थिर्वर्त्मभवोऽरुजः ।

सकंडूः पिच्छिलः कोलप्रमाणो लगणस्तु संः ॥ २६ ॥

शूनं यद्वर्त्म बहुभिः सूक्ष्मैश्चिद्रैः समन्वितम् ।

विसमंतर्जलमिव विसवर्त्मैति तन्मर्तम् ॥ २७ ॥

यदि कोयेमें पाकरहित करड़ी मोटी विना पीडावाली खाजयुक्त गाढी छोटे बरेके बराबर गांठसी पड़जावे तो उसे लगण कहते हैं ॥ २६ ॥

( वक्तव्य ) लगण कफजभी होता है और पित्तजभी ऐसा प्रथमाध्याय साध्यासाध्य विषयमें लिखचुके हैं श्रीडल्लन मिश्रजीने यह कफ जनित और साध्य है ऐसा ही लिखा है ( देखो इसपर टिप्पणी ) विसवर्त्म रोग वह है जिसमें कोया सूज जावे और बहुतसे बारीक छिद्र उसमें ( भीतरको ) होजावें जैसे विस अर्थात् कमलकी जड़ पानीसे भरी होती है ऐसेही यहभी हो ( तो उसे विसवर्त्म कहते हैं ) ॥ २७ ॥

पक्ष्माशयर्गता दोषास्तीक्ष्णाग्राणि खराणि च ।

निर्वर्तयन्ति पक्ष्माणि तैर्जुष्टं चाक्षि दूयते ॥ २८ ॥

उत्पाटितैः पुनः शान्तिः पक्ष्मभिश्चोपजायते ।

वातातपानलद्वेषी पक्ष्मकोपः स उच्यते ॥ २९ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

पक्ष्म ( पलकों ) के आशयमें प्राप्त हुए वातादि दोष पलकोंको तीक्ष्ण नोकवाली खुरदरी कर देते हैं उनसे नेत्रोंमें पीडा होती है ॥ २८ ॥ तथा उन पलकोंके उखाड़ डालनेसे शान्ति होजाती है और वायु धूप तथा अग्नि नेत्रोंको ठुरी लगे इस रोगको पक्ष्मकोप कहते हैं ॥ २९ ॥

( वक्तव्य ) पहले प्रथम अध्यायमें सब नेत्र रोगोंके विषयमें ऐसा लिख ( श्लो० २६ ) क्षेप्मजोयं साध्यः ( इति डल्लनः )

चुके हैं कि अमुक रोग इस दोषसे पैदा होकर साध्य है या याप्य या अ-साध्य ( इसीसे हरेकके संग इस बातको हमने नहीं लिखा ) फिर हरेकके साथ लिखनेमें वृथा लेख बढ़ता और पुनरुक्ति होती ॥

## परिशिष्ट ।

यद्यपि वृद्ध वाग्भटमें वर्त्मरोग २४ लिखे हैं उनके लक्षणोंमें बहुत अंतर है परंतु भावमिश्रने वर्त्मगत रोग २१ लिखे हैं और २ पक्ष्मरोग ऐसे २३ हुये जिनमेंसे २१ तो ऊपर वर्णन होचुके और दो रोग ( १ ) कुंचन ( २ ) पक्ष्म शात आवश्यक जानकर हम परिशिष्टरूपसे लिखते हैं ॥

### कुंचनके लक्षण ।

वाताद्या वर्त्मसंकोचं जनयन्ति मला यदा ।

तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुंचनं नाम तद्विदुः ॥ १ ॥

यदि वात आदिक मल कोयोंमें प्राप्त होकर कोयेको सुकड़ा देवें ( अर्थात् खुलने न दें ) तो सदा आंख मिची रहे जिससे प्रायः मनुष्य कुछ देख नहीं सके इसे कुंचन नाम रोग कहते हैं ॥ १ ॥

### पक्ष्मशातकेलक्षण ।

करोति कंडूं दाहं च पित्तं पक्ष्मांतमाश्रितम् ।

पक्ष्मणां शातनं चानु पक्ष्मशातं वदन्ति तम् ॥ २ ॥

यदि ( दूषित ) पित्त पक्ष्मांत ( पलकोंकी जड़ ) में प्राप्त होकर खाज और जलन पैदाकरे और फिर पलकें गल कर गिरजावें तो उसे पक्ष्मशात कहते हैं ॥ २ ॥

इति सुश्रुतटीकायामुत्तरतंत्रे शालाक्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

## चतुर्थोऽध्यायः ४.

अथातः शुक्लगतरेगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम शुक्लगत ( आंखकी सुपेदीके ) रोगों के विज्ञान की अध्याय का व्याख्यान करते हैं ॥

शुक्लभागके रोगोंकी संख्या और नाम ।

प्रस्तारिशुक्लक्षतजाधिमांसस्नाय्वर्मसंज्ञाः खलु पंच रोगाः ॥

स्युः शुक्तिका चार्जुनपिष्टकौ च जालं शिराणां पिडिकाश्चयाः स्युः॥  
रोगां बलासग्रथितेन सार्द्धमेकादशाक्ष्णोः खलु शुक्लभागे ॥ १ ॥

नेत्रके शुक्लभागमें निम्न लिखित ग्यारह रोग होते हैं; जिनमें पांचप्रकारके अर्म जैसे प्रस्तार्थर्म, शुक्लार्म, क्षतज, (लोहितार्म) अधिमांसार्म, और स्नाय्वर्म, ऐसे ये पांच भांतिके अर्म रोग हैं तथा शुक्तिका, अर्जुन, पिष्टक, शिराजाल, शिरापिडिका, और बलासग्रथित ॥ १ ॥ ( अगाड़ी प्रत्येकके लक्षण लिखतेहैं )

## प्रस्तार्थर्म और शुक्लार्म ।

प्रस्तारि ग्रथितमिहार्म शुक्लभागे विस्तीर्णं तनुं रुधिरप्रभं सनीलम्॥  
शुक्लख्यं मृदु कथयन्ति शुक्लभागे सथेतं सममिह वर्द्धते चिरेण॥२॥

नेत्रके शुक्ल भागमें यदि फैलवां पतली रक्त और नीलेसे रंगकी गाँठसी ( उँचाईसी ) होजावे तो उसे प्रस्तार्थर्म कहते हैं ॥ और जो शुक्लभागमें सुपेद और देरसे बढनेवाली समान गाँठसी हो और कोमल हो उसे शुक्लार्म कहते हैं ॥ २ ॥

## लोहितार्म अधिमांसार्म और स्नाय्वर्म ।

यन्मांसं प्रचयमुपैति शुक्लभागे पद्माभं तदुपदिशन्ति लोहितार्म ॥  
विस्तीर्णं मृदु वहलं यकृत्प्रकाशं श्यावं वा तदधिकमांसजार्म  
विद्यात् ॥ ३ ॥ शुक्ले यत्पिशितमुपैति वृद्धिमेतत्स्नाय्वर्मैत्यभि  
पठितं खरं प्रपांडु ॥ ४ ॥

यदि शुक्ल भागमें ( चोटआदि ) लगजानेसे रक्तकमलके समान मांस संचित होजावे तो उसे क्षतज लोहितार्म कहतेहैं और जो नेत्रके शुक्लभागमें फैलाहुआ कोमल गाढा यकृतके रंगका या श्यामवर्णका मांससा मालूम हो तो वह अधिमांसजार्म जानना ॥ ३ ॥ और यदि खरदरा कुछ पीलापन लिये सुपेद मांससा नेत्रोंके शुक्लभागमें वृद्धिको प्राप्त होवे तो उसे स्नाय्वर्म कहतेहैं ( यह शुक्लभागमें स्नायुके फूलजानेसे होताहै ) ॥ ४ ॥

## शुक्तिका और अर्जुन ।

इयावाःस्युःपिशितनिभास्तुर्विद्वोये शुक्तिर्वीसितनयने संशुक्तिःसंज्ञः  
एको यः शशरुधिरोपमः सुविंदुः शुक्लस्थो भवति तमर्जुनं वदन्ति ५

नेत्रके सुपेदभागमें कालेरमांस जैसे बहुतसे बिंदु अथवा सीपके आकार एक जगहही हों तो उसे शुक्तिका संज्ञक रोग जानो और यदि एकही शशाके रुधिरके समान रक्तबिंदु शुक्लभागमें हो तो उसे अर्जुनरोग कहतेहैं ॥ ५ ॥

## पिष्टक और शिराजाल ।

उत्सन्नः सलिलनिभोथ पिष्टशुक्लो विंदुर्यः स भवति पिष्टकः सुवृत्तः  
जालाभः कठिनशिरो महान्सरक्तः संतानः स्मृत इह जालसंज्ञितस्तु ॥

उभराहुआ जलके समान ( बुलबुलासा ) और पिष्टीके तुल्य सुपेद गोल जो बिंदु हो वह पिष्टकरोग कहलाताहै और करड़ीशिराओं ( रगों ) का जालसा फैला हुआ रुधिरयुक्त विस्तृत हो उसे शिराजाल कहतेहैं ॥ ६ ॥

## शिरापिडिका और बलासग्रथित ।

शुक्लस्थाः सितपिडिकाः शिरावृता यास्तां विद्यादसितस  
मीपजाः शिराजाः ॥ कांस्योभो भवति शिरावृतः सितो यो  
विंदुर्वा स तुनिरुजो वलासकाख्यः ॥ ७ ॥

इत्युत्तरतंत्रेशालाक्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

यदि नेत्रके शुक्ल भागमें सुपेद फुन्सी शिराओंसे घिरी हुई होवे और कृष्णभागके पास होवे उन्हें शिरापिडिका जानो और जो नेत्रके सुपेद भागमें कांसीके रंगका सुपेद बिंदुसा शिराओंसे घिरा हुआ और वेदना रहित होवे उसे बलासग्रथित कहते हैं ॥ ७ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायाभाषाटीकायामुत्तरतंत्रे शालाक्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## पंचमोऽध्यायः ५.

अथातः कृष्णगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम कृष्णगत ( आंखकी काली पुतलीके ) रोगोंके विज्ञानके अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

( श्लोक ५ ) सितनयन नेत्रस्य शुक्लभागे ।

( श्लोक ६ ) संतानः विस्तृतः ।

## कृष्णगत रोगोंके नाम ।

यत्सर्वणं शुक्रं मथर्वणं वा पाकात्ययश्चाप्यञ्जकां तथैव ।

चत्वार एतेऽभिहिता विकाराः कृष्णाश्रयाः संग्रहतः पुरस्तात् १

पहले जो हम यह कह चुके हैं कि नेत्रके कृष्ण भागमें ४ रोग होते हैं, सो वे इस प्रकारसे हैं कि १ व्रणयुक्त शुक्र, २ व्रणरहित शुक्र, ३ पाकात्यय, ४ अञ्जका, ( शुक्र फुलीया फूलेको कहते हैं ) ॥ १ ॥

## सर्वण शुक्रके लक्षण ।

निमग्नरूपं हि भवेत्तु कृष्णे सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यद्वै ।

स्त्रावं स्रवेदुष्णमतीव रुक् च तत्सर्वणं शुक्रमुदाहरन्ति ॥ २ ॥

जो काली पुतलीमें निचाई लिये हुवे मूईसे बिंधा हुआ सा मालूम हो जिसमेंसे गरम गरम आंसू ( स्त्राव ) निकलें और बहुत दर्द होवे तो ऐसा फूला सर्वण शुक्र कहलाता है ( यह रक्तज असाध्य होता है ) ॥ २ ॥

## इसकी कदाचित्साध्यता ।

दृष्टेः समीपे न भवेत्तु यच्च न चावगाढं न च संस्रवेद्धि ।

अवेदनावन्न च युग्मशुक्रं तत्सिद्धिर्माप्नोति कदाचिदेव ॥ ३ ॥

दृष्टिके समीपमें जोन हो ( तिलसे दूर हो ) नीचेको गड़ा हुआ नहीं हो और जिसमेंसे पानीसाभी नहीं झिरे पीडाभी न हो दो मिले हुवे भी नहीं ऐसा शुक्र ( फूला ) कभी कभी सिद्धिको प्राप्त होता है (आराम होता है) ॥ ३ ॥

## अव्रणशुक्र ।

सितं यदा मात्यसितप्रदेशे स्यंदात्मकं नातिरुग्मश्रुयुक्तम् ।

विहायसीवाभ्रदर्लानुकारि तद्व्रणं सार्ध्यतमं वदन्ति ॥ ४ ॥

( श्लोक १ ) पुरस्तात् संग्रहतः अभिहिताः । पूर्व रोगसंग्रहे कथिताः ।

( श्लोक २ ) सर्वणं सक्षतमिति डल्लनः । अत्र विदेहः । रक्तराजोनिभं कृष्णो विदु-  
माभं प्रलक्ष्यते । सूच्येयैव तच्छुक्रमुष्णांशु स्त्रावि सर्वणम् ॥ रक्तजमिदमसाध्यम् ।

( श्लोक ३ ) इदानीं तस्यैवावस्थादारेण कदाचित्साध्यत्वं दर्शयन्नाह दृष्टेरिति ।  
संस्रवेदित्यत्र संशब्दोऽतिशयार्थः ।

( श्लो० ४ ) स्यंदात्मकं किञ्चिज्जलनात्मकं अथवा अभिप्यंदकारणम् । असितप्रदेशः कृष्णो

गंभीरजातं बहलं च शुक्रं चिरोत्थितं चापि वदन्ति कृच्छ्रम् ॥५॥

यदि नेत्रके कृष्णभागमें सुपेदरंगका चलायमान और अतिपीड़ा और अश्रुओंसे व्याप्त न हो जैसे आकाशमें बादल होते हैं ऐसा हो उसे अव्रण ( व्रणरहित ) शुक्र ( फूला ) कहते हैं और यह बहुतही साध्य होता है ( झट आराम हो जाता है ) ॥ ४ ॥ और यदि यही फूला गंभीर और गाढ़ा होवे बहुत दिनका होजावे तो उसे कष्टसाध्य कहते हैं ॥ ५ ॥

### असाध्य फूले ।

विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा चलं शिरासक्तमदृष्टिकृच्च ।

द्वित्वग्गतं लोहितमंततश्च चिरोत्थितं चापि विवर्जनीयम् ॥ ६ ॥

उष्णाश्रुपातः पिडिका च कृष्णे यस्मिन्भवेन्मुद्गनिभं च शुक्रम् ।

तदप्यसाध्यं प्रवदन्ति केचिदन्यच्च यत्तित्तिरिपक्षतुल्यः ॥ ७ ॥

जो बीचमेंसे कटा या बिधाहुआसा होवे, मांससे आच्छादित हो अथवा चल हो, शिराओंके आश्रित हो, दृष्टिको रोकनेवाला हो, दूसरी त्वचा ( अर्थात् दूसरे पटल ) में हो, आसपाससे रक्त हो, बहुत दिनका होगया हो ऐसा फूला त्यागने योग्य ( असाध्य ) होता है ॥ ६ ॥ जिसमेंसे गरम आंसू निकलें ऐसी फुन्सीसी काली पुतलीमें होजावे तथा मूंगके बराबर फूला होजावे या तीतरके पंख जैसा हो ऐसे फूलेको भी कई असाध्य कहते हैं ॥ ७ ॥

### पाकात्यय रोग ।

संछाद्यते श्वेतनिभेन सर्वं दोषेण यस्यासितमंडलं तु ॥

तमक्षिपाकात्ययमक्षिकोपसमुत्थितं तीव्ररुजं वदन्ति ॥ ८ ॥

( श्लोक ६ ) विच्छिन्नमध्यमिति । विदीर्णमांसत्वात् मध्ये सच्छिद्रमिव । अथवा विशब्दो विगतार्थः । अच्छिन्नमध्यं चेति । वा चलं इति चलवदित्यर्थः । ननु साक्षाच्चलमेव । अदृष्टिकृच्चेति दर्शनावरोधकृदित्यर्थः । द्वित्वग्गतम् । द्विपटलाश्रितम् । लोहितमंततश्चेति । मांतेषु लोहितमित्यर्थः ।

( श्लोक ७ ) ' पिडिका च कृष्णे ' इत्यत्र ' पिडिका च पीता ' इति वा कुत्रचित्पाठांतरम् । तन्न संगम्यते । तथा हि विदेहः—चोपकृत् न्नावदाही च कृष्णत्वे पिडिकोद्गमः । ' व्यक्तमुद्रफलाकारं शुक्रं द्वित्वाश्रितं भवेत् ' इति ।

जिसके नेत्रोंकी काली पुतली सब दोषोंसे उत्पन्न सुपेदाईसे आच्छादित हो जावे और उसमें तीव्रपीडा होवे तो उसे अक्षिकोपसे उत्पन्न हुआ अत्यन्त नेत्र पाक ( या पाकात्यय ) कहते हैं ॥ ८ ॥

## अजका जात ।

अजापुरीषप्रतिमो रुजावाँन्सलोहितो लोहितपिच्छिलास्रः ॥  
विदार्य कृष्णं प्रचयोभ्युपैति तं चाजकाजातमिति व्यव  
स्येत् ॥ ९ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे शालाक्ये पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

बकरीकी मँगनी जैसा पीडावाला रुधिरयुक्त रक्त और गाढे रुधिरवाला ऐसा संचय कृष्णभागको विदीर्ण करके उत्पन्न होवे तो उसे अजकाजात नामक रोग कहते हैं ॥ ९ ॥

( वक्तव्य ) इसमें यह है कि चौथे और पांचवें श्लोक “सतं यदा भात्य-  
सितप्रदेशे” इत्यादि तथा “गंभीरजातम्” इत्यादि । अत्रणशुक्रके लक्षण इनको कई सातवें श्लोक “तित्तिरिपक्षतुल्यः” इसके पीछे पढ़ते हैं अर्थात् असाध्य शुक्रके लक्षणात्मक दो श्लोकोंको “विच्छिन्न मध्यम्” और “उष्णाक्षुपातः” इनके सत्रणशुक्रके साथही तीसरे श्लोक से अगाड़ी पढ़ते हैं और सत्रणशुक्रहीको असाध्यमानते हैं. यह मत पंजिकाकारका है परन्तु जैजटाचार्यके मतसे उप-  
रोक्त श्लोक क्रमके ही अनुसार है और डल्लनमिश्रजीने पंजिकाकारके अनुक्रम से लिखा है ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## षष्ठोऽध्यायः ६.

अथातः सर्वगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम सर्वगत ( समस्त आंखके ) रोगोंके विज्ञानके अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

## सर्वगत रोगोंके नाम और संख्या ।

स्यंदास्तु चत्वार इहोपदिष्टास्तावंत एवेह तथाऽधिमंथाः ।

शोफान्वितोऽशोफयुतश्च पाकावित्येवमेते दश संप्रदिष्टाः ॥ १ ॥

( श्लो० १ ) शोफान्वितः अशोफयुतश्च पाको द्विविधः ।



गंभीरजातं बहलं च शुक्रं चिरोत्थितं चापि वृद्धं कृच्छ्रम् ॥५॥

यदि नेत्रके कृष्णभागमें सुपेदरंगका चलायमान और अतिपीडा और अश्रुओंसे व्याप्त न हो जैसे आकाशमें बादल होते हैं ऐसा हो उसे अव्रण ( व्रणरहित ) शुक्र ( फूला ) कहते हैं और यह बहुतही साध्य होता है ( झट आराम हो जाता है ) ॥ ४ ॥ और यदि यही फूला गंभीर और गाढ़ा होवे बहुत दिनका होजावे तो उसे कष्टसाध्य कहते हैं ॥ ५ ॥

### असाध्य फूले ।

विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा चलं शिरासक्तमदृष्टिकृच्च ।

द्वित्वग्गतं लोहितमंततश्च चिरोत्थितं चापि विवर्जनीयम् ॥ ६ ॥

उष्णाश्रुपातः पिडिका च कृष्णे यस्मिन्भवेन्मुद्गनिभं च शुक्रम् ।

तदप्यसाध्यं प्रवृद्धं केचिदन्यच्च यत्तित्तिरिपक्षतुल्यः ॥ ७ ॥

जो बीचमेंसे कटा या बिंथाहुआसा होवे, मांससे आच्छादित हो अथवा चल हो, शिराओंके आश्रित हो, दृष्टिको रोकनेवाला हो, दूसरी त्वचा ( अर्थात् दूसरे पटल ) में हो, आसपाससे रक्त हो, बहुत दिनका होगया हो ऐसा फूला त्यागने योग्य ( असाध्य ) होता है ॥ ६ ॥ जिसमेंसे गरम आंसू निकलें ऐसी फुन्सीसी काली पुतलीमें होजावे तथा मूंगके बराबर फूला होजावे या तीतरके पंख जैसा हो ऐसे फूलेको भी कई असाध्य कहते हैं ॥ ७ ॥

### पाकात्यय रोग ।

संछाद्यते श्वेतनिभेन सर्वं दोषेण यस्यासितमंडलं तु ॥

तमक्षिपाकात्ययमक्षिकोपसमुत्थितं तीव्ररुजं वृद्धं ॥ ८ ॥

( श्लोक ६ ) विच्छिन्नमध्यमिति । विदीर्णमांसत्वात् मध्ये सच्छिद्रमिव । अथवा विशब्दो विगतार्थः । अच्छिन्नमध्यं चेति । वा चलं इति चलवदित्यर्थः । नतु साक्षाच्चलमेव । अदृष्टिकृच्चेति दर्शनावरोधकृदित्यर्थः । द्वित्वग्गतम् । द्विपटलाश्रितम् । लोहितमंततश्चेति । प्रांतेषु लोहितमित्यर्थः ।

( श्लोक ७ ) ' पिडिका च कृष्णे ' इत्यत्र ' पिडिका च पीता ' इति वा कुत्रचित्पाठांतरम् । तन्न संगम्यते । तथा हि विदेहः—चोपकृत् श्रावदाही च कृष्णत्वे पिडिकोद्गमः । शुक्रं द्वित्वाश्रितं भवेत् इति ।

जिसके नेत्रोंकी काली पुतली सब दोषोंसे उत्पन्न सुपेदाईसे आच्छादित हो जावे और उसमें तीव्रपीडा होवे तो उसे अक्षिकापसे उत्पन्न हुआ अत्यन्त नेत्र पाक ( या पाकात्यय ) कहते हैं ॥ ८ ॥

## अजका जात ।

अजापुरीषप्रतिमो रुजावांसलोहितो लोहितपिच्छिलास्रः ॥  
विदार्य कृष्णं प्रचयोभ्युपैति तं चाजकाजातमिति व्यव  
स्येत् ॥ ९ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे शालाक्ये पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

चकरीकी मँगनी जैसा पीडावाला रुधिरयुक्त रक्त और गाढे रुधिरवाला ऐसा संचय कृष्णभागको विदीर्ण करके उत्पन्न होवे तो उसे अजकाजात नामक रोग कहते हैं ॥ ९ ॥

( वक्तव्य ) इसमें यह है कि चौथे और पांचवें श्लोक “सतं यदा भात्य-  
सितप्रदेशः” इत्यादि तथा “गंभीरजातम्” इत्यादि । अव्रणशुक्रके लक्षण इनको कई सातवें श्लोक “तित्तिरिपक्षतुल्यः” इसके पीछे पढ़ते हैं अर्थात् असाध्य  
शुक्रके लक्षणात्मक दो श्लोकोंको “विच्छिन्न मध्यम्” और “उष्णाशुपातः” इनके  
सव्रणशुक्रके साथही तीसरे श्लोक से अगाड़ी पढ़ते हैं और सव्रणशुक्रहीको  
असाध्यमानते हैं. यह मत पंजिकाकारका है परन्तु जैजटाचार्यके मतसे उप-  
रोक्त श्लोक क्रमके ही अनुसार है और डल्लनमिश्रजीने पंजिकाकारके  
अनुक्रम से लिखा है ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

## षष्ठोऽध्यायः ६.

अथातः सर्वगत रोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम सर्वगत ( समस्त आंखके ) रोगोंके विज्ञानकी  
अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

## सर्वगत रोगोंके नाम और संख्या ।

स्यंदास्तु चत्वार इहोपदिष्टास्तावंत एवेह तथाऽविमंथाः ।

शोफान्वितोऽशोफयुतश्च पाकावित्येवमेते दश संप्रदिष्टाः ॥ १ ॥

( श्लो० १ ) शोफान्वितः अशोफयुतश्च पाको द्विविधः ।

हताधिमंथोऽनिलपर्ययश्च शुष्काक्षिपाकोऽन्यत एव वातः ।

दृष्टिस्तथाऽम्लाध्युषिता शिराणामुत्पातहर्षावपि सर्वभागा ॥२॥

समस्त नेत्रमें चार प्रकारके अभिष्यंद रोग और इतने ही अधिमंथ रोग ( ४ ही भांतिके अधिमंथ ) तथा शोथ युक्त पाक और शोथ रहित पाक इसप्रकारसे दश रोग तो ये हुए ॥ १ ॥ और हताधिमंथ, वातपर्यय, शुष्काक्षिपाक, अन्यतोवात, अम्लाध्युषित दृष्टि, शिराओंका उत्पात, और शिराहर्ष ( सात ये हुए इसप्रकार नेत्रके सर्वगत रोग १७ होते हैं ) ॥ २ ॥

## अभिष्यंदकी मुख्यता ।

प्रायेण सर्वे नयनमयास्ते भवन्त्यभिष्यंदनिमित्तमूलाः ॥

तस्मादभिष्यंदमुदीर्यमाणमुपाचरेदाशु हितार्य धीमान् ॥ ३ ॥

प्रायः सभी नेत्ररोगोंका मूल अभिष्यंद हुआ करता है अर्थात् सभीमें प्रायः थोड़ा बहुत अभिष्यंद ( पानी आना ) अवश्य होता है; या अभिष्यंदसे प्रायः सब रोग होते हैं. इस कारण बुद्धिमानोंको चाहिये कि बड़े हुए अभिष्यंदको बहुत शीघ्र उपचार करना चाहिये यही हितकारक है ( अभिष्यंद पानी आने अर्थात् ढलकेको कहते हैं ) ॥ ३ ॥

## वातादिअभिष्यंद ।

निस्तोदनं स्तंभनरोमहर्षसंघर्षपारुष्यशिरोभितापाः ।

विशुष्कभावाः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ४

दाहप्रपाकौ शिशिराभिनंदा धूमायनं बाष्पसमुश्रयश्च ।

उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥५॥

उष्णाभिनंदा गुरुताऽक्षिशोफः कंडूपदेहौ शितताऽतिशैत्यम् ।

स्त्रावो मुहुः पिच्छिल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥६॥

( श्लो० २ ) शिराणामुत्पातः शिराणां हर्षश्च ।

( श्लोक ४ ) संघर्षः कर्करिका । शिरोभितापः शिरोव्यथा । निस्तोदनं सूच्येवव्यथनम् । विशुष्कभावः दूषिकाराहित्यम् । दूषिका नेत्रमलम् ।

( श्लोक ५ ) बाष्पसमुश्रयोऽश्रुबाहुत्यम् ( इतिनि०सं० )

( श्लोक ६ ) उपदेहो मलवृद्धिः । सर्वेऽभिष्यंदाः साध्याः ।

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः समंतादतिलोहिताश्च ।

पित्तस्य लिङ्गानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥

चभका स्तंभन ( अकड़ाव ) ( रोमहर्ष संघर्ष ( रड़का ) करड़ापन और शिरमें व्यथा सुखापन अर्थात् गीढ़ कम आना और ठंडे आँसू निकलना ये लक्षण वात अभिष्यंदवाले नेत्रोंमें होते हैं ॥ ४ ॥ दाह पकाव ठंडक प्यारी लगना, नेत्रोंमें धूवाँसा उठना और अधिक अश्रुपात होना, और आँसू गरम निकलना नेत्रोंमें पीलापन होना, पित्तके अभिष्यंद रोगयुक्त नेत्रोंमें ये लक्षण होते हैं ॥ ५ ॥ यदि नेत्रोंमें कफका अभिष्यंद होवे तो ये लक्षण होते हैं कि-गरमाई प्यारी लगे, नेत्रोंमें भारी पन होवे, और शोथ होवे खाज आवे गीढ़ बहुत आवे नेत्रोंका रंग सुपेद हो स्पर्श करनेसे शीतल मालूम पड़े वारंवार बहुत गाढ़ा २ मल आँसूमें आवे ॥ ६ ॥ यदि रक्ताभिष्यंद नेत्रोंमें हो तो ये लक्षण होते हैं कि-ताँबेके रंगके आँसू निकलें, नेत्र लाल हों और उनमें बहुत ही लाल रेखा हों और जितने पित्ताभिष्यंदके लक्षण हैं वे भी हों ॥ ७ ॥

### अधिमंथ ।

वृद्धैरेतैरभिष्यंदैर्नराणामक्रियावताम् ।

तावन्तस्त्वाधिमंथाः स्युर्नयने तीव्रवेदर्नाः ॥ ८ ॥

उत्पाद्यत ईवात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यन्ते तथा ।

शिरसोर्द्धिर्तु तं विद्यादधि मंथं स्वलक्षणेः ॥ ९ ॥

इन अभिष्यंदोंके बढ़नेपर उपाय और पथ्य नहीं करनेवाले मनुष्योंके नेत्रमें तीव्रपीडा करनेवाले उतनेही प्रकारके अधिमंथ रोग अर्थात् घूबे उत्पन्न होजाते हैं ॥ ८ ॥ इस अधिमंथ रोगमें नेत्र जैसे अत्यंत उखाड़े या बींधे जाते हों ऐसी पीडा होती है और आधाशिर मथासा जाताहो ऐसा मालूम देवे उसे अधिमंथ जानो. यह अधिमंथ वातादि दोषोंके लक्षणयुक्त चारही प्रकारका होता है ॥ ९ ॥

### वाताधिमंथ ।

नेत्रमुत्पाद्यत इव मथ्यतेऽरणिवच्च यत् ।

संघर्षतोदनिर्भेदमांससंरब्धमाविलम् ॥ १० ॥

कुंचनास्फोटनाध्मानवेपथुव्यथनैर्युतम् ।

शिरसोऽर्द्धं च येन स्यादधिमंथः स मारुतात् ॥ ११ ॥

नेत्र जैसे उपाड़ा जाता हो अरणीके भांति मथाजाता हो और जिसमें रगड़का चभक भेदन तथा मांससंरंभ ( मांस इकट्ठा हुआसा मालूम हो ) और मैलापन होवे ॥ १० ॥ नेत्र मिचाही रहे फोटन जैसी पीड़ा होवे नेत्रोंमें अफारा अर्थात् फुलावट होवे कंप और व्यथन सहित आधेशिरमें पीड़ा हो तो वायुका अधिमंथ रोग जानना चाहिये ॥ ११ ॥

## पित्ताधिमंथ ।

रक्तराजिचितं स्रावि वह्निर्नेत्रे विदह्यते ।

यकृत्पिण्डोपमं दाहि क्षारेणोक्तमिर्व क्षतम् ॥ १२ ॥

प्रपक्वोच्छूनवर्णातं सस्वेदं पीतदर्शनम् ।

मूर्च्छाशिरोर्दाहयुतंपित्तेनाक्ष्यधिमंथितम् ॥ १३ ॥

रक्त रेखाओंसे व्याप्त हो आँसू गिरें नेत्रोंमें अग्निसी लगी रहे यकृत् पिण्डके रंगकीसी सुरखी हो; जैसे क्षार ( तेजाब ) से दग्ध किया हो ऐसा जानपड़े ॥ १२ ॥ पाक हो, आसपासमेंसे सोजा हो, पसीनासहित पीलापन दीखे मूर्च्छा और शिरमें दाहभी हो. ये लक्षण पित्ताधिमंथके हैं ॥ १३ ॥

## कफका अधिमंथ ।

शोफवन्नातिसंरब्धं स्रावकंडूसमन्वितम् ॥ रूपं पश्यन्ति दुःखेन  
पांशुपूर्णमिवाविलम् ॥ नासाध्मातशिरोदुःखयुतं श्लेष्माधि-  
मंथितम् ॥ १४ ॥

सोजा होवे अत्यन्त संरंभ न हो ( बहुत तेजी नहीं हो ) स्राव और खाज युक्त हो, दुःखसे रूपको देखसके नेत्रोंमें धूलसी भरी मालूम पड़े मैलापन होवे, नाकमें धोंकनीसी लगी रहे और शिरमें दरद हो. ये लक्षण श्लेष्माधि-मंथके हैं ॥ १४ ॥

( श्लो० १४ ) नातिसंरब्धः, संरंभो वेगः ।

## रक्तका अधिमंथ ।

बंधुजीवप्रतीकाशं ताम्यति स्पर्शनाक्षमम् ॥ रक्तास्त्रावं सनि-  
स्तोदं पश्यत्यग्निनिभा दिशः ॥ १५ ॥ रक्तमग्नारिष्टवच्च  
कृष्णभागश्च लक्ष्यते ॥ यदीतरक्तपर्यंतं तद्रक्तेनाधिमंथितम् १६ ॥

बंधुजीव ( दुपहरिया ) के समान हो, अंधेरीसी आवे स्पर्शका सहन न हो, रक्तस्त्राव हो, चभक भी हो और सब दिशा अग्निके समान दीखें ॥ १५ ॥ रुधिर में भरे हुए रीठे की गुठलीके तुल्य काली पुतली दिखाई देवे और आस पासमें दीप्तरक्तवर्ण हो उसे रक्ताधिमंथ कहते हैं ॥ १६ ॥

## अधिमंथोंमें दृष्टिनाशकी अवधि ।

हन्याद्दृष्टिं सतरात्रात्कफोत्थोधीमंथोऽसृक्संभवः पंचरात्रात् ॥

षडरात्राद्वा मारुतोत्थो निहन्यान्मिथ्याचारात्पैत्तिकः सर्व एव १७

मिथ्या आचरण करनेसे कफका अधिमंथ सात दिनमें दृष्टिको नाश करता है और रुधिरका अधिमंथ पांच दिन में तथा वायुका अधिमंथ छः दिनमें दृष्टिको नष्ट करता है और पित्तका अधिमंथ बहुतही शीघ्र दृष्टिको नाश कर देता है ॥ १७ ॥

## सशोफ नेत्रपाक ।

कंडूपदेहाश्रुयुतः पक्वोद्वंरसन्निभः ।

दाहसंहर्षताम्रत्वशोफनिस्तोदंगौरवैः ॥ १८ ॥

जुष्टो मुहुः सवेद्वाधुमुष्णशीतांबु पिच्छिलम् ।

संरंभी<sup>१०</sup> पच्यते यश्च<sup>१३</sup> नेत्रपाकः स<sup>११</sup> शोफजः ॥ १९ ॥

खाज हो गाढ़ आवे आंमू वहे, पक्के हुए गुलरके समान दीखें, दाह संहर्ष ( रोमांच ) हो, तांबेकीसी रंगत हो, सोजा चभक और भारीपन भी हो ॥ १८ ॥

( श्लो० १५ । १६ ) बंधुजीवो मध्याह्नपुष्पकः । अरिष्टवदित्यत्र अरिष्टफलमध्य-  
जातं कृष्णबीजम् ॥

( श्लो० १७ ) वाताद्यधिमंथानां सम्यगुपचारसाध्यानामपि वैद्यातुरयोर्मिथ्याचारा-  
दृष्टिनाशावधि यथादोषं दर्शयन्नाह । हन्यादिति । अत्र मिथ्याचारादिति पदं श्लेष्मोद्भवा-  
द्यधिमंथेषु सर्वेषु संबध्यते ॥

( श्लोक १९ ) संरंभी शोफयुक्तः ( इति डल्लनः ) अन्यत्तु संरंभः वेगस्तदानित्यर्थः

वारंवार गरम कभी ठंढा गाढा स्राव हो और तीक्ष्णता युक्त पाक हो तो इसे शोथयुक्त नेत्रपाक ( आंख दूखना ) कहते हैं ॥ १९ ॥

## निःशोथ नेत्रपाक और हताधिमंथ ।

शोफहीनानि लिंगानि नेत्रपाके त्वशोणजे ॥ २० ॥

प्रातः शिराणां श्वसनः स्थितो दृष्टिं प्रतिक्षिपन् ।

हताधिमंथं जनयेत्तमसाध्यं विदुर्बुधाः ॥ २१ ॥

जो उपरोक्त शोथयुक्त नेत्रपाकसे हीन लक्षणवाला और जादे सुरखी नहीं हो ऐसे नेत्रपाक को शोथरहित नेत्रपाक जानो ॥ २० ॥ नेत्रकी शिराओंके भीतर वायु प्राप्त होकर दृष्टिको निकालता हुआ जो हताधिमंथ को उत्पन्न करे इसे वैद्य असाध्य कहते हैं ॥ २१ ॥

## वातपर्याय और शुष्काक्षिपाक ।

पक्ष्मद्वयाक्षिभ्रुर्वमाश्रितस्तु यत्रानिलः संचरति प्रदुष्टः ।

पर्यायशश्चापि रुजः करोति तं वातपर्यायमुदाहरन्ति ॥ २२ ॥

यत्कूणितं दारुणरूक्षवर्त्म विलोचने वा विलिदंशनं यत् ।

सुदारुणं यत्प्रतिबोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि ॥ २३ ॥

जो दुष्ट वायु दोनों कोयों और नेत्रमंडल तथा भ्रुकुटीके आश्रित हुआ विचरे और विशेष करके पीडा करे तो उसे वातपर्याय कहते हैं ॥ २२ ॥ यदि दारुण कुणकसा हो कोये रूखे हों और देखनेमें मैला दीखे और खोलनेमें कठिनता हो तो नेत्रमें शुष्काक्षिपाक जानना ॥ २३ ॥

## अन्यतोवात और अम्लाध्युषित ।

यस्यावटूकर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाऽप्यनिलोऽन्यतो वा ।

कुर्व्यादुजोऽति भ्रुवि लोचने वा तमन्यतो वातमुदाहरन्ति ॥ २४ ॥

( श्लोक २० ) शोकहीनानि लिंगानि सशोफपाकहीनानि लक्षणानि ।

( श्लोक २१ ) श्वसनः वायुः दृष्टिं प्रतिक्षिपन् निष्कासयन्नित्यर्थः ।

( श्लोक २२ ) पर्यायशश्च रुजः करोति इति कदाचित्पक्ष्मद्वये कदाचिदक्षिणि कदाचिद्वि इति पर्यायशब्दार्थः ( असाध्योऽयम् ) ।

( श्लोक २३ ) प्रतिबोधने उन्मेये ।



अम्लेन भुक्तेन विदाहिना वा संछाद्यते सर्वत एव नेत्रम् ।

शोफान्वितं लोहितकं सनीलैरेतादृगम्लाव्युपितं वदन्ति ॥ २५ ॥

जिसके अवदुस्थान ( कनपटीके पीछे ) कान शिर और ठोड़ी तथा मन्या ( ग्रीवाके पश्चाद्भागकी स्नायु ) इनमें व्याप्त हुवा वायु अथवा अन्यस्थानमें स्थित होकर भुक्तो और नेत्रोंमें वेदना करे उसे अन्यतो वात रोग कहते हैं ॥ २४ ॥ अधिक खटाई खाने या विदाही पदार्थ खानेसे सारा नेत्र शोयसे आच्छादित होजावे और सुख या नीली झलक मारे इसे अम्लाव्युपित कहते हैं ॥ २५ ॥

### शिरोत्पात और शिराहर्ष ।

अवेदना वापि सवेदना वा यस्येक्षिणं शज्यो हि भवन्ति ताम्राः ।

मुहुर्विरज्यन्ति च ताः सप्ततद्व्याधिः शिरोत्पात इति प्रदिष्टः ॥ २६ ॥

मोहाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगस्तु शिराप्रहर्षः ।

ताम्राच्छमसं स्रवति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिर्वीक्षितुं च ॥ २७ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे शालाक्ये पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

पीडारहित हो, चाहो पीडायुक्त हो, जिसके नेत्रोंमें ताम्रवर्णकी रेखासी होवें और कभी कभी जादे सुख होजावे, कभी कम होजावे तो इस व्याधिको शिरोत्पात कहते हैं ॥ २६ ॥ यदि मूढतासे शिरोत्पात रोगका यत्न नहीं किया जावे तो उससे शिराहर्ष नाम रोग होजाता है इसमें ताम्रवर्णके स्वच्छ गाढ़े आँसू झिरने लगते हैं और किसी वस्तुकी देखनेकी समर्थ नहीं होती ॥ २७ ॥

इति सुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे शालाक्ये पष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

### सप्तमोऽध्यायः ७.

अथातो दृष्टिरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम दृष्टिके रोगोंके विज्ञानकी अध्यायका व्याख्यान करते हैं-

मसूरदलमात्रां तु पंचभूतप्रसादजाम् ।

खद्योतविस्फुलिगाभ्यां सिद्धां तेजोभिरव्ययैः ॥ १ ॥

( श्लो० १।२ पंचभूतप्रसादजां पंचभूतानां साराज्जातामित्यर्थः । पंचभूतमध्येपि एकस्य प्राधान्येन तेजोभिरव्ययैः सिद्धां तेजोमयीमित्युक्तम् । खद्योतविस्फुलिगाभ्यामिव प्रदीप्तमित्यर्थः ।

आवृत्तां पटलेनाक्ष्णोर्बोह्येन विवरौकृतिम् ।

शीतसात्म्यां नृणां दृष्टिमाहुर्नयनचिंतकाः ॥ २ ॥

मसूरकी दालके समान पंचभूतों ( पृथिव्यादि ) के प्रसादसे उत्पन्न हुई पटबीजना और अग्निके चितगारेसी अक्षय तेजसे सिद्ध हुई ( बनी हुई ) ॥ १ ॥ नेत्रके बाहरले पटल ( परदे ) से आच्छादित छिद्रके आकार और शीतलता प्रिय ऐसी दृष्टिका प्रमाण नेत्रविद्याके जाननेवाले ( विदेहादिक ) वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

## दृष्टिरोगोंकी संख्या ।

रोगांस्तदाश्रयान्वोरान्षट् च षट् च प्रचक्ष्महे ।

पटलानुप्रविष्टस्य तिमिरस्य च लक्षणम् ॥ ३ ॥

उस दृष्टिके आश्रयभूत घोर छः छः रोग कहे जाते हैं तथा पटलोंमें प्राप्त हुए तिमिरके लक्षण भी कहते हैं ॥ ३ ॥

## प्रथमपटल गतदोष ।

शिराभिरभिसंप्राप्य विगुणोऽभ्यंतरे भृशम् ।

प्रथमे पटले दोषो यस्य दृष्टौ व्यवस्थितः ॥

अव्यक्तानि स रूपाणि सर्वाण्येव पश्यति ॥ ४ ॥

विगुणताको प्राप्त हुआ दोष शिराओं करके दृष्टिके प्रथम पटलमें स्थित होवे तो मनुष्य सब प्रकार अव्यक्त रूपोंको देखे ॥ ४ ॥

## द्वितीयपटलगतदोष ।

दृष्टिर्भृशं विह्वलति द्वितीयं पटलं गते ।

मक्षिका मशकान्केशाञ्जालकानि च पश्यति ॥ ५ ॥

मंडलानि पताकाश्च मरीचीः कुंडलानि च ।

परिप्लवांश्च विविधान्वर्षमभ्रं तमांसि वा ॥ ६ ॥

( श्लो० ५। ६ ) मक्षिका मशकान् केशांश्च जालकानि च असंत्यापि संतीव पश्यति । मरीचीः मरीची वा मृगतृष्णा इति दल्लनः । वानस्पत्ये तु मरीचिः फिरणे । परिप्लवान् अस्थिरान्पक्षिगणान् नक्षत्राणि वा ।

दूरस्थान्यापि रूपाणि मन्यते च समीपतः ।

समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् ॥ ७ ॥

यत्नवानपि चाऽत्यर्थं सूचीपाशं न पश्यति ॥ ८ ॥

यदि विगुणताको प्राप्त हुआ दाप दृष्टिके दूसरे पटलमें प्राप्त होवे तो दृष्टिको अत्यन्त विह्वल कर दें और मक्खी मच्छर बालजाल इत्यादिक मिथ्या दिखाई दें ॥ ५ ॥ और मंडल ( चक्रसे ) तथा पताका और किरण तथा कुंडल और अनेक प्रकारके पक्षीसे उड़ते दीखें तथा मिथ्या वर्षा हो तीसी अभ्रसा और अंधेरासा दीखें ॥ ६ ॥ और दृष्टिके भ्रमसे दूरके रूप निकट दीखें और निकटके दूर दीखें ॥ ७ ॥ तथा यत्न करने ( गौरकरने ) से भी अर्थात् बहुत निगाहकरके देखने से भी सूईका छिद्र नहीं दीखे ॥ ८ ॥

### तृतीयपटलगत दोष ।

ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते ।

महान्त्यपि च रूपाणि छादितानीव वाससां ॥ ९ ॥

कर्णनासाक्षियुक्तानि विपरीतानि वीक्षते ॥

यथादोषं च रज्येत दृष्टिर्दोषे बलीयसि ॥ १० ॥

अधःस्थिते समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थिते ।

पार्श्वस्थिते तथा दोषे पार्श्वस्थानि न पश्यति ॥ ११ ॥

दृष्टिमध्यगतेदोषे स एकं मन्यते द्विधा ।

द्विधास्थिते त्रिधा पश्येद्बहुधा चानवस्थिते ॥ १२ ॥

यदि दुष्ट दोष तीसरे पटलमें प्राप्त होवे तो मनुष्य ऊपरकी वस्तुको देख सकता है; नीचेकी नहीं देख सकता, बड़े पदार्थोंकोभी वस्त्रसे आच्छादितसे देखता है ॥ ९ ॥ दूसरेके चेहरेपर कान नाक आंख इन युक्तोंकोभी विपरीत देखता है और जब दोष बलवान् हो तो उनके अनुसारही वर्णप्रतीत हो ( जैसे कफकी प्रधानतामें शुक्लता पित्तकी प्रधानतामें पीतता वायुकी प्रधानतामें भैलापन और रक्तकी प्रधानतामें सुरखी ) ॥ १० ॥ नीचेके भागमें

( श्लो० ७।८ ) दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् इत्यत्र गोचरविभ्रमात् इन्द्रियार्थविभ्रमात् इतिङ-  
हनः । भावमिश्रस्तु गोचरोऽत्ररूपं तस्य विभ्रमात् अयथार्थग्रहणादित्याह ।

दोष स्थित होतो निकटकी वस्तु नहीं दीखे और ऊपरके भागमें दोष हो तो दूरकी वस्तु नहीं दीखे तथा बराबरमें दोषस्थित हो तो बराबरकी वस्तु नहीं दीखे ॥ ११ ॥ और जो दृष्टिके मध्यमें दोषस्थित हो तो एक वस्तु दो दिखाई दें और दो हों तो तीन दिखाई दें और जो दोष एक जगह-स्थित न हो तो बहुतप्रकारके रूप दीखें ॥ १२ ॥

## चतुर्थपटलगत दोष ।

तिमिराख्यः स वै दोषश्चतुर्थपटलं गतः ।

रूपाद्धि सर्वतो दृष्टिं लिङ्गनाशः सं उच्यते ॥ १३ ॥

तस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महोगदे ।

चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावन्तरिक्षे च विद्युतः ॥ १४ ॥

निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णूनि च पश्यति ।

स एव लिङ्गनाशस्तु नीलिकाकाचसंज्ञितः ॥ १५ ॥

यदि वह तिमिरनामक दोष ( रोग ) चौथे ( सबसे बाहरके ) पटलमें प्राप्त होतो सर्वतोभावसे दृष्टिको रोक लेता है, इसे लिङ्गनाश ( दृष्टि शक्तिका नाश ) कहते हैं ॥ १३ ॥ जब यह महारोग अत्यंत नहीं बढ़ता है तब अंधकारसा मालूम देता है और चंद्रमा सूर्य और आकाशके तारे तथा विजली और निर्मल तेजवाले चमकते पदार्थ ( मणि अग्नि आदि ) तो अच्छीतरह कुछ दीखें और बिना चमककी वस्तु अँधेरसी ( बहुत धूँधली ) दीखे इस लिङ्गनाश रोगको नीलिका और कांच भी कहते हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥

( वक्तव्य ) इसमें आरंभमें तो चमकती चीज अच्छी दीखें बाकी धूँधली । परंतु बढ़ते जानेपर चमकती वस्तुभी नहीं दीखे ॥

( श्लो० १३ । १४ । १५ ) चतुर्थपटलं बाह्यपटलं इति भावमिश्रः । लिङ्गनाश इति, लिङ्गं चक्षुरिन्द्रियशक्तिस्तस्यानाशः ( इतिनि० सं० ) । तिमिराख्यः तिमिरदर्शनन तिमिरमस्यास्तीति तिमिरः “ अर्श आदित्वात् अच् ” इत्यनेन तिमिराख्यो दोषः तिमिरनामकोरोगः । दोषोऽत्र रोगः ( इति भा० मि० ) तमोभूत इत्यत्र भूतशब्दः उपमाने इति ढल्लनः । भावमिश्रस्तु भूतशब्दस्तुल्यायं “ भूतं प्राण्यसिते समे त्रिषु ” इत्यमरात् । नातिरूढे अप्रीदे नवे चन्द्रादित्यौ नक्षत्राणि च पश्यति अस्मिन् प्रीदे निरजे चन्द्रादीन्यपि न पश्यतीत्याशयः ( इति भा० मि० ) ।

## वातजतिमिर और पित्तजतिमिर ल० ।

तत्र वातेन चारूणि भ्रमन्तीव स पश्यन्ति ॥

आविलान्यरुणाभाणि व्याविद्धानि च मानवः ॥ १६ ॥

पित्तेनादित्यखद्योतशक्रचापतडिद्गणान् ॥

शिखिवर्हविचित्राणि नीलकृष्णानि पश्यति ॥ १७ ॥

वायुका तिमिर होवे तो रूप भ्रमते हुएसे हलके और भेले लाली लिये हुए और व्याविद्ध अर्थात् टेढ़े दिखाई दें ॥ १६ ॥ और जो पित्तका तिमिर हो तो मूर्य पटवीजना ( अमिक्रुमि ) तथा इन्द्रधनुष और बिजली जैसे चमकते दीखें और मोरको पंख जैसे चित्रविचित्र तथा नीले काले रूप दीखें ॥ १७ ॥

## कफजतिमिर ।

गौरचामरगौराणि श्वेताभ्रप्रतिमानि च ॥

पश्येदसूक्ष्माण्यत्यर्थं व्यभ्रे चैवाभ्रसंघुवम् ॥ १८ ॥

सलिलप्लावितानीव परिजाड्यानि मानवः ॥

कफेन पश्येद्वृषाणि स्निग्धानि च सितानि च ॥ १९ ॥

यदि कफका तिमिर हो तो सुपेद चँवरके समान गोरे रूप दीखें सुपेद बादलेसे और फैले हुएसे रूप खाली आकाशमें दीखें और फिरते हुए बादल से दीखें ॥ १८ ॥ जैसे सब पदार्थ पानीमें डूबे हुएसे और स्थिरसे चिकनेसे तथा सुपेदसे दिखाई दें ॥ १९ ॥

## रक्त तिमिर ।

तथा रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च ।

हरितश्यावकृष्णानि धूमधूमाणि चेक्षते ॥ २० ॥

यदि रक्तका तिमिर हो तो रूप सुरख दीखें, अँधेरासा दीखें, अनेक प्रका रके हरे ऊदे काले धूंधलेसे रूप दिखाई दें ॥ २० ॥

( श्लोक १६ ) व्याविद्धानि वक्राणि ।

( श्लोक १८ । १९ ) अत्यर्थं असूक्ष्माणि स्थूलानीत्यर्थः । परिजाड्यानि अप्रकाशितानि ।

( श्लोक २० ) यद्यपि तिमिरस्य रक्तान्तर्गतदोषजन्यत्वात् रक्तजसंज्ञा न स्यात् तथापि रक्तबाहुल्यात् उपचाराद्वा रक्तजन्यपदेशः ।

( वक्तव्य ) यद्यपि तिमिर रक्तांतर्गत दोषजन्य होनेसे रक्तजतिमिर नहीं होता तथापि रुधिरकी बाहुल्यता और रक्त शांतिकारक उपचार सात्त्व्य होनेसे रक्तज तिमिर कह सकते हैं. देखो टिप्पणी ॥

## सन्निपातज तिमिर ।

सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानीव पश्यति ।

बहुधा वा द्विधा वाऽपि सर्वाण्येव समंततः ॥

हीनाधिकांगान्यथवा ज्योतींष्यपि च पश्यति ॥ २१ ॥

सन्निपातके तिमिरमें चित्रविचित्र तथा विपरीतसे रूप दीखें, एक रूपके दो अथवा बहुत दीखें सबको हीन या अधिक देखे तथा प्रकाश दिखाई देवे ॥

## परिम्लायि ।

पित्तं कुर्यात्परिम्लायि मूर्च्छितं रक्ततेजसा ।

पीता दिशस्तथोद्यंतमादित्यमिव पश्यति ॥ २२ ॥

विकीर्यमाणान्खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव च ।

वक्ष्यामि षड्विधै रागैर्लिङ्गनाशमतः परम् ॥ २३ ॥

रक्तके तेजसे मूर्च्छित हुआ पित्त परिम्लायि रोग उत्पन्न करता है इसमें सब दिशा पीली दीखें और सूर्यके उदयके समान दीखें, तथा वृक्ष ऐसे दीखें जैसे उसपर अनेक चमकते हुये पटवीजने या प्रकाशित अग्निके दीपक आच्छादित हों इसके अगाड़ी छः प्रकारके रागोंसे लिङ्गनाशका वर्णन करते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

## लिङ्गनाश ।

रागोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टः पित्तात्परिम्लाय्यथवापि नीलः ।

कफात्सितः शोणितजस्तु रक्तः समस्तदोषोऽथ विचित्ररूपः ॥ २४ ॥

वायुसे अरुण वर्ण होता है पित्तसे परिम्लायी ( म्लानतायुक्त ) अथवा नीला होता है कफसे सुपेद और रुधिरसे रक्त तथा सब दोषोंसे विचित्र ( चित्र विचित्र ) रूप समझना चाहिये ॥ २४ ॥

लिङ्गनाशमें राग ( अर्थात् दृष्टिमें मंडल ) मालूम होना ।

रक्तजं मंडलं दृष्टौ स्थूलकाधारुणप्रभाम् ।

( श्लोक २३ ) लिङ्गनाशो नीलिकापटलमांघ्यमिति पर्यायाः ( इति वृ० वा० )

परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लायि नीलं च मंडलम् ॥ २५ ॥

दोषक्षयात्कदाचित्स्यात्स्वयं तत्र च दर्शनम् ॥ २६ ॥

नेत्रोंकी दृष्टिमें रक्तसे उत्पन्न हुआ मोटे काच जैसा लाली लिये मंडल होता है परिम्लायी रोगमें वह म्लायी ( म्लानतायुक्त ) और नीला होजाता है ॥ २५ ॥ कभी कभी दोषोंके क्षय होजानेपर इसमें स्वयं दीखने लग जाता है ॥ २६ ॥

### वातादिदोषसे राग ।

अरुणं मंडलं वार्ताच्चंचलं परुषं तथो ।

पितान्मंडलमानीलं कांस्याभं पीतमेव वा ॥ २७ ॥

श्लेष्मणा वहलं स्निग्धं शंखकुंदेदुपांडुरम् ।

चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लविंदुरिवांभसः ॥ २८ ॥

मृद्यमाने च नयने मंडलं तद्विसर्पति ।

प्रवालपद्मपत्राभं मंडलं शोणितात्मकम् ॥ २९ ॥

वायुसे रक्त और चंचल खर्दरा मंडल होता है; पित्तसे नीला कांसीके वर्णका या पीला होता है ॥ २७ ॥ कफसे मोटा चिकना शंखकुंद व चंद्रमा जैसा सुपेद होता है जैसे कमलके पत्रपर जलका सुपेद विंदु हो और चलायमान होवे ॥ २८ ॥ नेत्रोंके मसलनेपर वह मंडल ( चकदा ) फैले तथा सरक जावे, और रुधिरका मंडल मूंगा और रक्त कमलके पत्रके समान होता है ॥ २९ ॥

दृष्टिरागो भवेच्चित्रो लिंगनाशो त्रिदोषजे ।

यथास्वदोषलिंगानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि ॥ ३० ॥

त्रिदोषके लिंगनाशमें दृष्टिका रंग चित्र विचित्र होता है, और सबमेंसे जौनसा दोष जहाँ प्रधान होता है, वहाँ उसी केसे विशेष लक्षण होते हैं ॥ ३० ॥

### रोगोंका निर्धार ।

षट् लिंगनाशा षडिमे च रोगा दृष्ट्याश्रयाः षट् च षडेव च स्युः ३१

( श्लो० ३१ ) रागैररुणादिकैः षड्विधं लिंगनाशमभिधाय अपरान्पित्तविदग्ध-दृष्ट्यादिकान् षडेव निर्दिशन्नाह षट् लिंगनाशा इति । षड्विधं रागैर्लिंगनाशानां पूथक् संख्याकरणं न गणनीयम् । एतेनैतदुक्तं भवति । षट् लिंगनाशाः षट् पित्तविदग्धदृष्ट्या-दयः । एवं दृष्ट्याश्रया द्वादश ( इति नि० सं० )



लिंगनाश छः प्रकारका होता है और ये वक्ष्यमाण ( पित्तविदग्धदृष्ट्यादिक रोग ) भी छही प्रकारके होते हैं; इससे दृष्टिगत रोग छः और छः ( अर्थात् बारह ) ही होते हैं ( और जो छः प्रकारके राग ( वर्ण ) जो लिखे वे ये लिंग नाशहीके अंतर्गत हैं. जुदे नहीं हैं. ( देखो टिप्पणी ) ॥ ३१ ॥

## पित्तविदग्धदृष्ट्यादि छः रोग ।

तथा नरः पित्तविदग्धदृष्टिः कफेन चान्यस्त्वथधूमदर्शी ।

यो ह्रस्वजात्यो नकुलांधता च गंभीरसंज्ञा च तथैव दृष्टिः॥३२॥

वे वक्ष्यमाण छः रोग इस भांति हैं कि पित्तविदग्ध दृष्टि, कफविदग्ध दृष्टि, धूमदर्शी, ह्रस्वजात्य, नकुलांधता और गंभीरिका, ( ये छः लिंगनाशसे पृथक् दृष्टिगत रोग हैं ) ॥ ३२ ॥

## पित्तविदग्धदृष्टि ।

पित्तेन दुष्टेन गतेन दृष्टिं पीता भवेद्यस्य नरस्य दृष्टिः ।

पीतानि रूपाणि च मन्यते यः स मानवः पित्तविदग्धदृष्टिः॥३३॥

यदि दुष्टापित्त दृष्टिमें प्राप्त होवे तो उस मनुष्यकी दृष्टि पीली मालूम होवे और सब रूपोंको पीलेही देखे उस मनुष्यको पित्तविदग्धदृष्टि समझिये ( अर्थात् वह मनुष्य पित्तसे दग्ध हुई दृष्टिवाला है, ऐसा जानना चाहिये ३३

प्राप्ते तृतीयं पटलं तु दोषे दिवा न पश्येन्नृशि वीक्षते च॥३४॥

यदि यह दोष ( पित्त ) तीसरे पटलमें प्राप्त हो तो दिनमें मनुष्य को दिखाई नहीं देवे और रातको दिखाई देवे ॥ ३४ ॥

( वक्तव्य ) रातको स्वभावसे पित्त शांत होता है. इससे दिखाई देता है ।

## कफविदग्ध दृष्टि ।

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि हि मन्यते तु ।

त्रिषु स्थितोऽल्पः पटलेषु दोषो नक्ताध्यमापार्दयति प्रसह्य ॥

दिवा स सूर्यानुगृहीतदृष्टिर्वीक्ष्यते रूपाणि कफाल्पभावात्॥३५॥

जैसे पित्तसे मनुष्यकी दृष्टि विदग्ध होती है वैसे ही कफसे भी दृष्टि विदग्ध हो जाया करती है कफसे विदग्ध दृष्टि होनेमें मनुष्य सब रूपोंको सुपेद

( श्लोक ३५ ) अल्पदोषोऽत्र कफस्तस्योपक्रांतत्वात् नक्ताध्यस्य श्लेष्मविदग्धदृष्टा वतर्भूतत्वान्न पृथक्गणना ।

ही देखता है और वह कफ अल्प तीन पटलोंमें प्राप्त होके स्थित होवे तो रातको मनुष्यको दिखाई नहीं देवे ( रतोंधा होजावे ) और दिनमें सूर्यकी तेजी और कफकी अल्पतासे सब रूप दिखाई देते हैं ॥ ३५ ॥

### धूमदर्शी ।

शोकज्वरायासशिरोभितापैरभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः ।

सधूमकान्पश्यति सर्वभावनस्तं धूमदर्शी<sup>३३</sup>ति वदन्ति रोगम् ३६॥

शोक ज्वर परिश्रम शिरका दरद इत्यादि कारणोंसे हतहुई जिस मनुष्य की दृष्टि हो वह सब पदार्थोंको धुंधला देखे ( अर्थात् उसे सब धुंधले दिखाई देवें ) इस रोगको धूमदर्शी कहते हैं ॥ ३६ ॥

### ह्रस्वजात्य ।

सं ह्रस्वजात्यो दिवसेषु कृच्छ्राद्भ्रस्वाणि रूपाणि च यो न पश्येत् ।

रात्रौ च शीतानुगृहीतदृष्टिः पित्तलपभावादपि<sup>३४</sup> तानि पश्येत् ३७॥

जिसको दिनमें छोटे पदार्थ बड़ी कठिनतासे भी नहीं दीखें और रात्रिमें शीतानुगृहीत दृष्टि होनेसे ( ठंडक पहुँचनेसे ) तथा पित्तकी अल्पतासे उनको ( छोटे रूपोंको ) भी देख सके तो उसे ह्रस्व जात्यरोग कहते हैं ॥ ३७ ॥

### नकुलांध्य ।

विद्योतते येन नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत् ।

चित्राणि रूपाणि दिवा स पश्ये<sup>३५</sup> त्स वै<sup>३६</sup> विकारो नकुलांध्यसंज्ञः ३८

जिस मनुष्यकी दृष्टि दोषसे व्याप्त होकर नकुलके समान द्योतित होवे और दिनमेंभी चित्र विचित्र रूप दिखाई देवें ( रात्रिमें नहीं दीखे ) इस विकारको नकुलांध्य रोग कहते हैं ॥ ३८ ॥

### गंभीरिका ।

दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपमृष्टा संकुच्यतेऽभ्यन्तरतश्च याति ।

रुजावगाढा च तंमक्षिरो<sup>३७</sup> गं गंभीरिकेति<sup>३८</sup> प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ३९॥

जिसकी दृष्टि विकृतरूपवाली वायुसे व्यपहत होकर ( वायुसे हत होकर )

( श्लोक ३८ ) दिवा स पश्येदिति वचनात् रात्रौ न पश्यतीति अवगम्यते ( इतिटल्लनः )

मुकड़कर भीतरको घुसी हुईसी होजावे और जिसमें गंभीर वेदना होवे ( अंदरको ओंड़ी पीडा होवे ) उस नेत्ररोगको वैद्य गंभीरिका कहते हैं ॥ ३९ ॥

## बाह्यगत आगंतुक रोग ।

बाह्यौ पुनर्द्वाविह संप्रदिष्टौ निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च ।

निमित्ततस्तत्र शिरोभितापाज्ज्ञेयस्त्वभिष्यंदनिदर्शनैश्च ॥ ४० ॥

सुरर्षिगंधर्वमहोरगाणां संदर्शनेनापि च भासुराणाम् ।

हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य यस्य सं लिङ्गनाशस्त्वेनिमित्तसंज्ञः ॥ ४१ ॥

नेत्रोंमें बाह्यगत रोग दो होते हैं. एक निमित्तसे ( जिसका हेतु मालूम हो ) और दूसरा विना निमित्त ( जिसका हेतु मालूम नहीं हो ) सो पहले लिखचुके हैं उनमेंसे शिरके अभिताप या अभिष्यंदके निदर्शनसे जो हो वह निमित्तपूर्वक जानियें ॥ ४० ॥ और देवता, ऋषि, गंधर्व, महाउरग, इत्यादिके दर्शनोंसे तथा अति प्रकाशित ( सूर्यमणि आदि ) के देखनेसे मनुष्यकी दृष्टि मारी जावे तो उसे अनिमित्त लिङ्गनाश कहते हैं ॥ ४१ ॥

तत्राक्षि विस्पष्टमिवावभाति वैडूर्यवर्णा विमला च दृष्टिः ।

विदीर्यते सीदति हीयते वा नृणामभीघातहता तु दृष्टिः ॥ ४२ ॥

इस उपरोक्त अनिमित्तक लिङ्ग नाशमें नेत्र स्पष्ट मालूम पड़े और दृष्टि वैडूर्य मणिके समान निर्मल होवे ( पर दीखे नहीं ) और अभिघात ( चोट आदि लगने ) के बाह्य कारणसे दृष्टि भारी हो जावे ( नेत्रोंमें चोटलगजावे ) तो विदीर्यमाण होवे ( आँख फट जावे या फटी सी जावे ) और पीडा होवे तथा छोटी पड़ जावे ॥ ४२ ॥

इत्येते नयनगता महाविकाराः संख्याताः पृथग्निह पटं च सप्त तिश्च । एतेषां पृथग्निह विस्तरेण सर्वं वैक्ष्येऽहं तदनु चिकित्सितं च तावत् ॥ ४३ ॥

इत्युत्तरतंत्रे शालाक्ये सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इसप्रकार छिहत्तर ( संख्यात्मक ) नेत्रगत महाविकार ( नेत्ररोग ) वर्णन किये अब विस्तारपूर्वक इनकी जुदी जुदी चिकित्साका वर्णन करेंगे ॥ ४३ ॥

( वक्तव्य ) इस अध्यायके ३५ वें श्लोकमें जो कफविदग्ध दृष्टिसे नक्तांध लिखा है वही नक्तांध ( रतोंधा ) कभी अति गरमीकी तीक्ष्णधूपमें विशेष रहने या जादे प्रकाश देखनेसँभी होताहै ॥

नेत्र रोगोंको साधारणतासे घुनानी करनेवाले हकीम अमराज ऐन कहते हैं और डाक्टर आइडिजीज कहते हैं उनके मतसे उनके रूप और कारण अनेक हैं जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन हम ग्रंथके विस्तार बाहुल्य भयसे नहीं करते; क्योंकि यह आशय बहुत सूक्ष्म विचार योग्य है बिना पूरा २ समझे नहीं आसकता ॥ इति नेत्ररोग विज्ञानम् ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

## अष्टमोऽध्यायः ८.

अथातश्चिकित्सित विभागविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम नेत्र रोगोंकी चिकित्साके विभागके विज्ञानके अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

नेत्ररोगोंकी चिकित्सा विभागका निर्देश ।

पट्सप्ततिर्येऽभिहिता व्याधयो नामलक्षणैः ।

चिकित्सितमिदं तेषां समासाद्व्यासृतं शृणु ॥ १ ॥

छेद्यास्तेषु दशैकं च नव लेख्याः प्रकीर्तिताः ।

भेद्याः पंच विकाराः स्युर्व्यध्याः पंचदशैव तु ॥ २ ॥

द्वादश शस्त्रकृत्याश्च याप्याः सप्त भवन्ति हि ।

रोगा वर्जयितव्याश्च दश पंच च जानता ॥ ३ ॥

असाध्यौ वा भवेतां तु याप्यो वाऽऽगंतुसंज्ञितौ ॥ ४ ॥

जो छिहत्तर प्रकारके नेत्ररोग नाम और लक्षणों सहित पहले अध्यायमें वर्णन किये हैं, अब उन सबकी चिकित्साको संक्षेप और विस्तारसे श्रवण करो ॥ १ ॥ उन छिहत्तर रोगोंमेंसे ग्यारह रोग तो छेद्य ( छेदने योग्य ) होते हैं और नौ लेख्य ( खुरचने योग्य ) होते हैं और पांच भेद्य ( भेदन योग्य ) और पंदरह व्यध्य ( वेधन योग्य ) होते हैं ॥ २ ॥ और बारह शस्त्र विना ( औषधादिसे ) सिद्ध होने योग्य हैं और सात याप्य होते हैं, तथा पंदरह वर्जने योग्य ( असाध्य ) होते हैं ॥ ३ ॥ और दो बाह्य ( आगंतुक भी ) असाध्य अथवा याप्य होते हैं ॥

(श्लो० ३) द्वादश शस्त्रकृत्याश्चेति चकारात् द्वौ बाह्यजावप्यशस्त्रकृत्याविति (नि० सं०)

## छेद्यरोग ।

अशोऽन्वितं भवति वर्त्म तु यत्तथाऽर्शुशुष्कं तथाऽर्बुदमथो  
पिडिका शिराजाः ॥ जालं शिराजमपि पंचविधं तथाऽर्म  
छेद्या भवंति सह पर्वणिकामयेन ॥ ५ ॥

अशोवर्त्म, शुष्कार्शु, अर्बुद, शिरापिडिका, शिराजाल, और पांच प्रकारका  
अर्म, तथा पर्वणिका ये ग्यारह नेत्र रोग छेदन करने ( काटने ) योग्य होते  
हैं अर्थात् इनको काट देनेसे आराम होता है ॥ ५ ॥

## लेख्यरोग ।

उत्संगिनी बहलकर्दमवर्त्मनी च श्यावं च यच्च पठितं त्विह  
बद्धवर्त्म ॥ क्लिष्टं च पोथकियुतं खलु यच्च वर्त्म कुंभीकिनी  
च सह शर्करया च लेख्याः ॥ ६ ॥

उत्संगिनी, बहलवर्त्म, कर्दमवर्त्म, श्याववर्त्म, बद्धवर्त्म ( वर्त्मबन्ध )  
क्लिष्टवर्त्म, पोथकी, कुंभीका, और वर्त्मशर्करा, ये नेत्ररोग लेख्य अर्थात् खुर-  
चने योग्य होते हैं ( इनमें शस्त्र या औषधसे खुरचे या छीले जाने पर  
आराम होता है ) ॥ ६ ॥

## भेद्यरोग ।

श्लेष्मापनाहलगणौ च विसं च भेद्या ग्रंथिश्च यः कृमिकृतां  
ऽजननामिका च ॥ ७ ॥

श्लेष्मापनाह लगण विस कृमिकृतग्रंथि तथा अंजननामिका ये पांच नेत्र  
रोग भेदन करने योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

## व्याध्य अर्थात् शिरावेध साध्य रोग ।

आदौ शिरा निगदिताश्च ययोः प्रयोगे पाकौ च यौ नयनयोः  
पवनोन्यतश्च ॥ पूयालसानिलविपर्ययमथसंज्ञास्यंदास्तु  
यान्त्युपैशमं हि शिराव्यधेन ॥ ८ ॥

जिनके प्रयोगके आदिहीमें शिरा कही हैं ऐसे दो रोग ( शिरोत्पात और

( श्लो० ६ ) कुंभीकिनी कुंभिका इत्यर्थः ।

( श्लो० ८ ) ययोः प्रयोगे आदौ शिरा निगदिता । तौ व्यध्यौ कौ तौ शिरोत्पात-  
शिराहर्षौ ( इति नि० सं० )

शिराहर्ष ) और दो प्रकारका नेत्रपाक, अन्यतोवात, प्यालस, वातविपर्यय, और चारोंप्रकारका अधिमंथ तथा चार प्रकारका अभिप्यंद ये १५ रोग शिराविधन करनेसे शांत होते हैं ॥ ८ ॥

### शस्त्रकर्मसे वर्जितनेत्ररोग ।

शुष्काक्षिपाककफपित्तविदग्धदृष्टिष्वम्लाख्यशुक्रसहितार्जुन  
पिष्टकेषु । अक्लिन्नवर्त्महुतभुग्ध्वजदर्शिशुक्तिप्रक्लिन्नवर्त्मसु  
तथैव बलाससंज्ञे ॥ आगंतुनामययुगेन च दूषितायां दृष्टौ न  
शस्त्रपतनं प्रवदंति तज्ज्ञाः ॥ ९ ॥

शुष्कअक्षिपाक, कफविदग्धदृष्टि, पित्तविदग्धदृष्टि, अम्लाध्युषित, शुक्र  
( नखूना ), अर्जुन, पिष्टक, अक्लिन्नवर्त्म, धूमदर्शी, शुक्तिका, क्लिन्नवर्त्म,  
बलास, चारह ये और दो आगंतुक अर्थात् आगंतुकोंसे दूषितदृष्टि ( इस  
प्रकारसे ये, चारह और दो १४ नेत्ररोग शस्त्रकर्मके योग्य नहीं हैं इनमें वेद्य  
शस्त्रपात करना नहीं कहते किंतु अन्य औषधोंसे सिद्ध करना कहतेहैं ॥ ९ ॥

### याप्यनेत्ररोग ।

संपश्यतः पंडपि येऽभिहितास्तु कार्चास्ते पक्ष्मकोपसहि-  
तास्तु भवन्ति याप्याः ॥ १० ॥

देखनेवाले ( मनुष्यों ) के छःप्रकारके काचरोग जो पहले कहे और सात-  
वां पक्ष्मकोप ये सात नेत्ररोग याप्य होतेहैं ॥ १० ॥

### असाध्य नेत्ररोग ।

चत्वार एव पवनप्रभवास्त्वसाध्या द्वौ पित्तजौ कफनिमित्तज  
एक एव । अष्टार्द्धका रुधिरजाश्च गदाघ्रिदोषास्तावन्त एव  
गदितावपि बाह्यजौ द्वौ ॥ ११ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे शालाक्येऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

चार वायुरोग ( हताधिमंथ, निमिष, गंभीरिका और वातहतवर्त्म ) दो  
पित्तरोग ( ह्रस्वजात्य और जलघ्राव ) कफका एक रोग ( कफघ्राव ) अष्टार्द्ध  
अर्थात् चार रक्तके रोग ( रक्तघ्राव, अजकाजात, शोणितादं, और व्रणान्वित-  
शुक्र ) और चारही त्रिदोषके नेत्ररोग ( प्याघ्राव, नकुलाध्य, अक्षिपाक,  
त्यय, और अलजी ) ये पंद्रह असाध्यरोग हैं और दो आगंतुक बाह्यरोग  
कभी २ असाध्य होजातेहैं ॥ ११ ॥

इति मुमुक्षुसंज्ञायामुत्तरतन्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## नवमोऽध्यायः ९.

अथातो वाताभिष्यन्दप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम वातके अभिष्यंद ( आदि नेत्ररोगों ) के प्रतिषेध का व्याख्यान करते हैं ॥

**वाताभिष्यंद और अधिमंथकी चिकित्सा ।**

पुराणसर्पिषा स्निग्धौ स्यंदाधीमंथपीडितौ ।

स्वेदयित्वा यथान्यायं शिरामोक्षेण योजयेत् ॥ १ ॥

संपादयेद्द्वंस्तिभिश्च सम्यक्स्नेहविरेचितौ ।

तर्पणैः पुटपाकैश्च धूमैराश्र्योतनैस्तथा ॥ २ ॥

नस्यस्नेहपरीषेकैः शिरोवस्तिभिरेव च ।

वाताघ्नानूपजलजमांसाम्लकाथसेचनैः ॥ ३ ॥

स्नेहैश्चतुर्भिरुष्णैश्च तत्पीतांबरधारणैः ।

पयोभिर्वैसवारैश्च साल्वणैः पायसैस्तथा ॥ ४ ॥

भिषक् संपादयेदेतानुपनोहैश्च पूजितैः ।

तथा चोपरि भुक्तस्य सर्पिःपानं प्रशंस्यते ॥ ५ ॥

त्रिफलाकाथसंसिद्धं केवलं जीर्णमेव वा ।

सिद्धं वातहरैः क्षीरं प्रथमेन गणेन वा ॥ ६ ॥

वायुके अभिष्यंद और अधिमंथसे पीडित मनुष्योंको पुराने घृतसे स्निग्ध कराके उचित रीतिसे स्वेद कराकर शिरामोक्षणका उपयोग करना चाहिये ॥ १ ॥ और स्नेह विरेचन कराकर वस्तिकर्म करावे और फिर तर्पणों, पुटपाकों, धूनियों, आश्र्योतनों, स्नेहके परिसेकों और शिरोवस्तियोंसे यथा-

( श्लोक १ ) वाताभिष्यंदप्रतिषेधमित्यत्रादिशब्दो लुप्तो द्रष्टव्यः । इत्यनेन वाताभिष्यंदादिप्रतिषेधं व्याख्यास्याम इत्यर्थः । प्रतिषेधं चिकित्सितं पुराणं सर्पिः संवत्सरोपितम् । यथान्यायं स्वेदयित्वा इत्यत्र दृष्टिस्वेद्या तेन दृष्टेः समीपं उत्तमांगमास्यं स्वेदयेत् । तत्र विदेहवचनम् । “प्रागेवास्यामये भक्तं त्रिरात्रमगुरु स्मृतम् ॥ उपवासरूपहं वा स्यान्नक्तं वाप्यशनं हितम् ॥ ततश्चतुर्यदिवसे व्याधौ संजातलक्षणे ॥ यथोक्तास्तु क्रियाः कार्या नस्यसेकांजनादिकाः ।



योग्य उपचार करें तथा वायुनाशक द्रव्यों आनूप और जलजंतुओंके मांस और आम्ल काथोंके सेचनसे उपचार करें ॥ २ ॥ ३ ॥ तथा चारों प्रकारके स्नेहोंसे पीले वस्त्र धारणसे दुग्धोंसे वेसवारों ( हलदी आदिकी पिट्टी ) से सालनों ( एक प्रकारके शोरवों ) से पायस आदिसे इनमेंसे जो पूजित ( उचित ) हो उनसे उपनाह स्वेद करावें ( अल्प गरम नेत्रोंपर बांधे ) और भोजन करके ऊपरसे घृतपान करना श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ ५ ॥ वह घृत त्रिफलाके काथसे सिद्ध किया हुआ होवे अथवा केवल पुरानाही होवे अथवा वायुनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ या प्रथम गण ( विदारिगंधादिगण ) से सिद्ध किया हुआ दुग्ध पान करावे ॥ ६ ॥

### तर्पणादिक ।

स्नेहास्तैलाद्विनां सिद्धां वातघ्नैस्तर्पणे हिताः ।

स्नेहिकः पुटपाकश्च धूमो नस्यं च तद्विधम् ॥ ७ ॥

नस्यादिषु स्थिराक्षीरमधुरैस्तैलमिष्यते ।

एरंडपल्लवे मूले त्वचि वाऽऽजं पयः शृतम् ॥ ८ ॥

कंटकार्याश्च मूलेषु सुखोष्णं सेचने हितम् ।

सैधवोदीच्ययष्ट्याह्वपिप्पलीभिः शृतं पयः ॥ ९ ॥

हितमर्द्धोदकं सेके तथाऽश्व्योतनमेव च ।

द्विवेरचक्रमंजिष्टोदुंबरत्वक्षु साधितम् ॥ १० ॥

सांभश्छागं पयो वाऽपि शूलाश्व्योतनमुत्तमम् ॥ ११ ॥

तर्पणके लिये तैलके विना स्नेह वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए हित हैं अर्थात् वायुनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए घृतसे तर्पण करना चाहिये और नेत्र तर्पणमें तैलका निषेध है तैलके शिवाय और चिकनाई घृत वसा मज्जा ठीक है पर घृत उत्तम है और इसीप्रकार स्नेहका पुटपाक और धूम तथा नस्य हित है ॥ ७ ॥ परंच नस्यादिके लिये शालपर्णी मधुरगण और दुग्ध इनसे सिद्ध किया तैल ( तिलका तैल ) भी स्वेष्ट है और अरंडके पत्ते जड़ या छालसे सिद्ध किया हुआ बकरीका दूध

( श्लो० ७ से ११ तक ) अर्द्धोदकं अर्द्धमुदकं यस्मिन् क्षीरे तत् आश्व्योतनं अक्षि-  
पूरणमिति डल्लनः । सांभः इति चतुर्गुणोदकम्, अर्द्धोदकमिति केचित् ।

निवाया सेचनके लिये हित है. अथवा कटेलीकी जड़से सिद्ध किया दूध भी श्रेष्ठ है अथवा सेंधव नेत्रवाला मुलेठी पीपल इनसे आधापानी मिला दूध सिद्ध किया सेचनमें हित है तथा आश्व्योतन ( टपकाने ) के अर्थ नेत्रवाला तगर मंजीठ गूलरकी छाल इनसे साधन किया हुआ जलयुक्त दूध शूलनिवारण उत्तम आश्व्योतन है ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

मधुकं रजनीं पथ्यां देवदारुं च पेषयेत् ।

आजेनं पयसा श्रेष्ठमाभिष्यंदे तदंजनम् ॥ १२ ॥

गैरिकं सेंधवं कृष्णां नागरं च यथोत्तरम् ॥

द्विगुणं पिष्टमद्भिस्तु गुटिकांजनमिष्यते ॥ १३ ॥

स्नेहांजनं हितं चात्र वक्ष्यते तद्यथाविधि ॥ १४ ॥

मुलेठी, हलदी, हरीतकी, और देवदारु इन्हें बकरीके दूधसे पीस ले यह अभिष्यंदके लिये श्रेष्ठ अंजन है ॥ १२ ॥ गेरू इससे दूना सेंधव इससे दूनी पीपल और पीपलसे दूनी सोंठ इन्हें जलसे पीस गोली बना रखें यह गुटिकांजन है ( और अभिष्यंदमें हित है ) ॥ १३ ॥ और यहाँ यथाविधि स्नेहांजनभी हित कहा है ( स्नेहांजनकी क्रिया टीकाकारने यों लिखी है कि-ताम्र पात्रमें घृत सेंधव मांस युक्त कर रखनेसे स्नेहांजन होता है. कई अगाड़ी कहे ' सेंधवेन समा युतम् ' इत्यादिको स्नेहांजन मानते हैं ॥ १४ ॥

अन्यतोवात और वातपर्यायकी चि० ।

रोगो यश्चान्यतो वातो यश्च मारुतपर्ययः ।

अनेनैव विधानेन भिषक् तावपि साधयेत् ॥ १५ ॥

अन्यतोवात नामक नेत्र रोग तथा मारुतपर्यय इनको भी वैद्य इसी अभिष्यंदके विधानसे सिद्ध करें ॥ १५ ॥

( श्लो० १३ ) यथोत्तरद्विगुणमिति गैरिकाद्विगुणं सेंधवम्, सेंधवाद्विगुणा पिप्पली, तद्विगुणं नागरम् ' इति डल्लनः ।

( श्लो० १४ ) स्नेहांजनं यथाविधि इति विधेरनतिक्रमाद् एतेनापतर्पणशिराव्य-  
यादिकुपितवातेऽभिष्यंदे हितमित्यर्थः । अत्रैके ताम्रपात्रस्थितं मांसं सर्पिः सेंधवसंयुत-  
मिति स्नेहांजनमाहुः । अन्ये च सेंधवेन समायुतमित्यादिना वक्ष्यमाणेन स्नेहांजनं कथ-  
यन्ति ( नि० सं० ) ।

पूर्वभक्तं हितं सर्पिः क्षीरं वाप्यथ भोजने ॥ १६ ॥

वृक्षादन्यां कपित्थे च पंचमूले महत्यापि ।

सक्षीरं कर्कटरसे सिद्धं चात्र घृतं पिबेत् ॥ १७ ॥

सिद्धं वा हितमत्राहुः पचूरातगलाग्निकैः ।

सक्षीरं मेघशृंग्या वा संपिपीरितरेण वा ॥ १८ ॥

भोजनके अनन्तर या भोजनके साथ घृत तथा दूध हितकारक है ॥ १६ ॥  
बंदा, कैथ तथा महत्पंचमूल और कर्कट ( काकड़ा सींगीका वृक्ष या कर्कट )  
इनमेंसे बंदादि सातद्रव्योंका काथ और कर्कटका रस लेकर दूध युक्तकर इस  
में घृत सिद्धकरके पान करें ॥ १७ ॥ अथवा पचूर ( सिर्यायी ) आर्तगल  
( ककुभ ), और अमिक ( अजमोद ) इनसे सिद्ध किया दूधयुक्त घृत अथवा  
मेघशृंगी या वीरतरुसे सिद्धकिया घृत भी इसमें हित है ॥ १८ ॥

### शुष्काक्षिपाक चिकित्सा ।

सैधवं दारु शुंठी च मातुलुंगरसे घृतम् ॥

स्तन्योदकाभ्यां कर्तव्यं शुष्कपाके तदंजनम् ॥ १९ ॥

पूजितं सर्पिपश्चात्र पानमक्ष्णोश्च तर्पणम् ॥

घृतेन जीवनीयेन नैस्यं तैलेन चाणुना ॥ २० ॥

सैधव दारुदलदी सोंठ विजोरेका रस घृत इन्हें दूध और पानीसे घिसकर  
शुष्क नेत्रपाकमें अंजन करना चाहिये ॥ १९ ॥ और इसमें घृतका पान और  
नेत्रोंका तर्पण करनाभी श्रेष्ठ है तथा जीवनीयगणसे सिद्ध घृतकी या अणु-  
तैलकी नस्य लेनी हित है ॥ २० ॥

परिषेके हि तं चात्र पर्यः शीतं ससैधवम् ॥

रजनीदारुसिद्धं वा सैधवेन समायुतम् ॥ २१ ॥

परिषेकके लिये सैधवयुक्त शीतल दूध श्रेष्ठ है अथवा हलदी देवदारुसे  
सिद्ध किया हुआ सैधवयुक्त ( दुग्ध परिषेकार्थ हित है ) ॥ २१ ॥

( श्लो० १९ ) स्तन्येन स्त्रीदुग्धमित्यभिप्रायः ।

( श्लोक २१ ) रजनीदारुसिद्धं वेत्यत्र क्षीरमिति संबध्यते । सैधवेन समायुतं ईषव  
सैधवम् ( इति नि० सं० )

सर्पियुतं स्तन्यघृष्टमंजनं च महौषधम् ।

वसा वाऽऽनूपजलजा सैधवेन समायुता ॥

नागरोन्मिश्रिता किञ्चिच्छुष्कपाके तदंजनम् ॥ २२ ॥

और स्त्रीके दूधमें घृत मिलाकर घिसकर अंजन करना परम औषध है अथवा अनूप और जलजंतुओंकी वसा सैधव युक्त कर किञ्चित् सोंठ मिलाकर शुष्क नेत्रपाकमें अंजन करना श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥

पवनप्रभवा रोगा ये केचिद्वृष्टिनाशनाः ।

बीजेनानेन मेधावी तेषु कर्म प्रयोजयेत् ॥ २३ ॥

इत्युत्तरतंत्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

जितने दृष्टिके नाश करनेवाले वायुके नेत्ररोग हैं उन सबमें बुद्धिमान् वैद्य इसी बीजके अनुसार क्रियाका उपयोग करे ॥ २३ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतंत्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## दशमोऽध्यायः १० ।

अथातः पित्ताभिष्यंदप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहाँसे अगाड़ी अब हम पित्ताभिष्यंदादिपैत्तिक नेत्ररोगोंकी चिकित्साका व्याख्यान करतेहैं ॥

पित्तस्यंदे पैत्तिके चाधिमंथे रक्तास्रावः संसनं चापि कार्यम् ।

अक्ष्णोः सेकालेपनस्यांजनानि पैत्ते च सूर्याद्यद्विर्सेपे विधानम् ॥ १ ॥

पित्तकेअभिष्यंद तथा पित्तके अधिमंथमें रक्तमोक्षण ( फस्द ) कराना तथा विरेचन देना उचितहै; तथा पित्तविसर्पके विधानोक्त द्रव्योंसे नेत्रोंका सेचन लेपन और नस्य तथा अंजन करने चाहिये ॥ १ ॥

तर्पणादि ।

गुन्द्रां शालिं शैवलं शैलभेदं दावीमेलामुत्पलं रोध्रमभ्रम् ।

पद्मात्पत्रं शर्करा दर्भमिक्षुं तालं रोध्रं वेतसं पद्मकं च ॥ २ ॥

( श्लोक २२ ) घृतं स्त्रीस्तन्ययुक्तं पापाणघृष्टम् । महौषधं परमौषधमित्यर्थः । अथवा महौषधं शृंटी ।

द्राक्षा क्षौद्रं चंदनं यष्टिकाह्वं योपित्क्षीरं रात्र्यनन्ते च पिष्ट्वा ।  
 सर्पिः सिद्धं तर्पणे सेकनस्ये शस्ते क्षीरं सिद्धमेतेषु वाजम् ॥ ३ ॥  
 योज्यो वैर्गो व्यस्तं एपोन्यथा वा सम्यङ्नस्येष्टार्द्धसंख्ये  
 ऽर्पितित्यम् । क्रियाः सर्वाः पित्तहर्यः प्रशस्तारुयहाच्चोद्धै  
 क्षीरसर्पिश्च नस्यम् ॥ ४ ॥

प्रियंगु, शालि, ( तंदुल ) शिवाल, पाषाणभेद, दारुहलदी, इलायची, कमल, लोध, नागरमोथा, कमलके पत्ते, खांड, डाम, ईख, ताडलोध, वेतस पद्माख, मुनक्का, शहद, चंदन, मुलेटी, स्त्रीका दूध, हलदी और अनन्ता इन्हें पीसकर इनमें घृत सिद्ध करके तर्पण और नस्यमें हित है तथा इनमें सिद्ध किया बकरीका दूधभी हितकारक है ॥ २ ॥ ३ ॥ ये उपरोक्त औषधें सब या कुछ कम जितनी मिल सकें लेवे और अष्टार्द्ध संख्य नस्य अर्थात् चार प्रकारकी ( प्रतिमर्श, अवपीड, नस्य और शिरोविरेचन ) नस्यके उपयोगमें लावे और नित्य पित्तहरी क्रिया करनी श्रेष्ठ होती है तथा तीन दिन पीछे दूध घृतका नस्य करे ( अर्थात् रोगारंभ होतेही घृत दूधका बृंहण नस्य नहीं करे किंतु तीनदिन पीछे करे ) ॥ ४ ॥

पालाशं स्याच्छोणितं चांजनार्थं शल्लक्या वा शर्कराक्षौद्रयुक्तम् ।

रसक्रियां शर्कराक्षौद्रयुक्तां पालिद्यां वा मधुके वापि कुर्यात् ॥ ५ ॥

मुस्ता फेनः सागरस्योत्पलं च कृमिघ्नैलाधात्रिवीजाद्रसश्च ।

तालीशैलमैरिकोक्षीरं शंखैरेवं गुंज्यादंजनं स्तन्यपिष्टैः ॥ ६ ॥

ढाकके पुष्पोंका रस अथवा शल्लकी ( सेह ) का शोणित शर्करा शहद-युक्त कर अंजन करना अथवा शर्करा शहदयुक्त कर निसोथ या मुलेटीसे

( श्लो० ३ ) 'शस्ते' इति द्विवचनं, सर्पिः क्षीरं च एते द्वे शस्ते इत्यर्थः ।

( श्लो० ४ ) अष्टार्द्धसंख्ये नस्ये चतुर्विधे नस्ये इत्यर्थः, चतुर्विधं नस्यं प्रतिमर्शाव-पीडनस्य शिरोविरेचनभेदेन ॥

( श्लो० ५ ) रसक्रिया फाणिताः कृताः । तथाचोक्तम्—“गृहीत्वा काथं कल्केन काथं पूतं पुनः पुनः ॥ काथयेत्फणिताकारमेषा मोक्षा रसक्रिया ( इति नि० सं० ) छंदसि आर्पत्वान्न दोषः ।

( श्लो० ६ ) बीजः पीतसारबीजक इति यावत् । मुस्तादीनां रसे रसक्रिया कार्या इति डल्लनः ।

रसक्रिया करनी चाहिये ( शल्लकीका अर्थ कई सेह नामक दीर्घकंटक जीव करते हैं, कई वृक्षविशेष करते हैं ) ॥ ५ ॥ नागरमोथा, समंदरफेन, कमल, विडंग, इलायची, आंवले, विजेशारका रस, तालीशपत्र, दूसरी इलायची, गेरू, खस और शंख इन्हें स्त्रीके दूधसे पीसकर अंजन उपयोग करे ॥ ६ ॥

चूर्ण कुर्यादंजनार्थे रसो वा स्तन्योपेतो धातकी स्यंदनाभ्याम् ।  
 योषित्स्तन्यं शातकुंभं विघृष्टं क्षौद्रोपेतं कैशुकं चापि पुष्पम् ॥ ७ ॥  
 रोध्रं द्राक्षां शर्करामुत्पलं च नार्याः क्षीरे यष्टिकाह्वं वचां च ।  
 पिष्ट्वा क्षीरं वर्णकस्य त्वचं वा तोयोन्मिश्रे चंदनोदुंबरे च ॥ ८ ॥  
 कार्यः फेनः सागरस्यांजनार्थे नारीस्तन्ये माक्षिके चापि घृष्टः ।  
 योषित्स्तन्ये स्थापितं यष्टिकाह्वं रोध्रं द्राक्षां शर्करामुत्पलं च ॥ ९ ॥  
 क्षौमाबद्धं पथ्यमाश्र्योतने वा सर्पिघृष्टं यष्टिकाह्वं सलोध्रम् ॥  
 तोयोन्मिश्राः काश्मरीधात्रिपथ्यास्तद्वच्चाहुः कटफलं चांबुनैव ॥ १० ॥

नीचे लिखे हुए योगोंका अंजनके लिये चूर्ण बनाले या रस अर्थात् द्रव रहने दे और रस क्रिया करे, जैसे धायके फूल और तिनिशको स्त्रीके दूधमें मिलाके नेत्रांजन करे ( या इनसे रसक्रिया करे ) अथवा स्त्रीके दूधके संग सुवर्ण ( सुवर्णके बरक ) घिसकर नेत्रोंमें डाले अथवा केमूके फूल शहदके संग मिलाके डाले ॥ ७ ॥ अथवा लोध दाख मिसरी कमल इन्हें स्त्रीके दूधमें मिलाकर डाले अथवा मुलेटी बचा इन्हें स्त्रीदुग्धमें डाले अथवा वर्णककी छाल दूध पीसके डाले अथवा चंदन और गूलर इन्हें जलसे घिसकर डाले ॥ ८ ॥ समुद्र फेनको स्त्रीके दूधमें या शहदमें घिसकर अंजन करे अथवा स्त्रीके दूधमें मुलेटी लोध दाख मिसरी कमल इन्हें महीन बखमें बांधकर रखे और इससे आश्र्योतन करे अथवा मुलेटी लोध इन्हें घृतसे पीसकर डाले अथवा काश्मरी आंवले हरड़े इन्हें पानोंमें घिसकर लगावे ( अथवा काय-फल और नेत्रवाला इनसे आश्र्योतन करे ॥ ९ ॥ १० ॥

**अम्लाध्युषित और शुक्तिका चि० ।**

एषोऽम्लारूयेऽनुक्रमश्चापि शुक्तौ कार्यः सर्वः स्याच्छरामोक्ष  
 वज्र्यः । सर्पिः पेयं त्रैफलं तैल्वकं वा पेयं वा स्यात्केवलं  
 यत्पुराणम् ॥ ११ ॥

अम्लाधुषित और शुक्तिका रोगमें भी यही सब अनुक्रम करना चाहिये परंतु शिरामोक्ष नहीं करना और त्रिफला अथवा लोधासे सिद्ध किया हुआ घृत या केवल पुराना घृत पीवे ॥ ११ ॥

दोषेऽधस्ताच्छुक्तिकार्यामथास्ते शीतैर्द्रव्यै रञ्जनं कार्यमाशु ।

यद्वैडूर्यं स्फाटिकं वैद्रुमं च मौक्तं शाखं राजतं शातकुम्भम् ॥

॥ १२ ॥ सूक्ष्मं चूर्णं शर्कराक्षौद्रयुक्तं शुक्तिं हन्यादंजनं

चैतदाशु ॥ १३ ॥

शुक्तिकामें दोष नीचे होते हैं ( उन्हें शोधन करे ) और शीघ्र शीत द्रव्योंका अंजन करे वैडूर्य ( पन्ना ) स्फाटिक ( बिलोर ) मूंगा, मोती, शंख, चांदी और शातकुंभ ( सुवर्ण ) इनको ( शुद्ध कर ) बारीक चूर्ण करके मिसरी और शहद मिलाकर अंजन करे यह अंजन शीघ्रही शुक्तिकाको नष्ट कर देता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

युञ्ज्यात्सर्पिर्धूमदर्शी नरस्तु शेषं कुर्याद्रक्तपित्ते विधानम् ।

यच्चैवा<sup>११</sup>न्यतिपित्तहृत्त्रा<sup>१२</sup>पि<sup>१३</sup> सर्वं यद्वी<sup>१४</sup>सर्पे<sup>१५</sup>पैत्तिके<sup>१६</sup> वैविधानम् १४

इत्युत्तरतन्त्रे शालाक्ये दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

धूमदर्शीमनुष्य घृतका उपयोग करे और शेष रक्तपित्तके विधानोक्त तथा जो पित्तनाशक योग हैं उन्हें करे अथवा पित्तविसर्पके विधानमें जैसा है वैसे उपयोग करे ॥ १४ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे शालाक्ये दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## एकादशोऽध्यायः ११.

अथातः श्लेष्माभिष्यंदप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अंगाड़ी अब हम कफके अभिष्यंदादि रोगोंकी चिकित्साका व्याख्यान करतेहैं ॥

कफके अभिष्यंद और अधिमंथ चि० ।

स्यंदाधिर्मंथौ कफजौ प्रवृद्धौ जयेच्छिराणामर्थं मोक्षणेन ।

स्वेदावपीडांजनधूमसेकप्रलेपयोगैः कवलग्रहैश्च ॥ १ ॥

( श्लोक १२ ) शातकुंभं सौवर्णम्, शातकुंभः स्वर्णखनिपर्वतभेदः ( इति श०स्तो० )

शातकुंभे भवं शातकुंभम् ।



रूक्षैस्तथाऽऽश्रयोतनसंविधानैस्तथैव रूक्षैः पुटपाकयोगैः ।

त्र्यंहात्र्यंहाच्चाप्यपतर्पणान्ते प्रातस्तयोरस्तिर्क्तघृतं प्रशस्तम् ॥ २ ॥

तदन्नपानं च समाचरेद्धि<sup>१</sup> यच्छ्लेष्मणो नैव<sup>२</sup> करोति वृद्धिम् ॥ ३ ॥

यदि कफके अभिष्यंद और अधिमंथरोग बढ़ जावें तौ उन्हें शिरामोक्षण-  
करके जीतना चाहिये ( और जबतब बढ़े न हों ) रूक्षस्वेद अवपीडन धूम सेक प्रलेप  
और कवलग्रहके योगोंसे शांत करे ॥ १ ॥ और रूक्ष आश्रयोतनके संविधानसे  
तथा रूक्षपुटपाकोंके योगसे शांत करे और अपतर्पणके तीन तीन दिन पीछे  
( अथवा तीन तीन दिनमें अपतर्पण करके ) प्रातःकाल तित्कघृत ( तित्क  
औषधोंसे सिद्धघृत ) का सेवन करना इन दोनों रोगवालोंको श्रेष्ठ है ॥ २ ॥  
और अन्न पानभी ऐसेही करनेचाहियें जो कफकी वृद्धि नहींकरें ॥ ३ ॥

कुटनटास्फोटफणिज्झबिल्वपत्तूरपील्वर्ककपित्थभंगैः ।

स्वेदं विदध्यादथवाऽनुलेपं बर्हिष्ठशुंठीसुरकाष्टकुष्ठैः ॥ ४ ॥

सिंधूत्थहिंशुत्रिफलामधूकप्रपौंडरीकांजनतुत्थताम्रैः ।

पिष्टैर्जलेनांजनवर्तयः स्युः पथ्याहरिद्रामधुकांजनैर्वा ॥ ५ ॥

त्रीण्यूषणानि त्रिफला हरिद्रा विडंगसारश्च समानि च स्युः ।

बर्हिष्ठकुष्ठामरकाष्टशंखपाठानलव्योषमनःशिलाश्च ॥ ६ ॥

पिष्ट्वाऽम्बुना वा कुसुमानि जातकीकरंजशोभांजनजानि गुंज्यात् ।

फलं प्रकीर्यादर्थंवापि शिग्रोः पुष्पं च तुल्यं बृहतीद्वयस्य ॥ ७ ॥

रसांजनं चंदनसैधवं च मनःशिलाले लशुनं च तुल्यम् ।

पिष्ट्वांजनार्थं कफजेषु धीमान्वर्ततीविदध्यान्नयनामयेषु ॥ ८ ॥

तगर, आस्फोता, फणिज्ज ( मरुवा ), बिल्व, सिरयाई, पीलू, आक और  
कैथ इनके पत्तोंसे स्वेद करावे अथवा नेत्रवाला सोंठ, देवदारु, और कूट  
इनका लेप करे ॥ ४ ॥ सैधव, हींग, त्रिफला, महुवा, प्रपौंडरीक, रसांजन,

( श्लो० ३ ) “तदन्नपानं च समाचरेत्” इत्यत्र “तत्प्रातरन्नं च समाचरेत्” इति  
वा पाठांतरं केचित् पठन्ति । अत्र प्रातर्ग्रहणं स्विन्नकालनिषेधार्थमिति व्याख्यानयन्ति  
इति दलनः ।

( श्लो० ४ ) फणिज्झकः फणिजको वा मरुचकः । पत्तूरः सिरवाली । बर्हिष्ठं बालकमा

( श्लो० ७ ) प्रकीर्यः करंजभेदः ।

नीलाथोथा, और तांबा इन्हें जलसे पीसकर अंजन करनेके लिये गुठी या बत्ती बनावे अथवा हरीतकी, मुलेठी, हलदी और अंजन इनकी बत्तीसी बनाकर अंजन करे ॥ ५॥ त्रिकटु, त्रिफला, हरिद्रा, विडंगसार इनको समभाग लेकर अंजन करे तथा नेत्रवाला, कूट, देवदारु, शंख, पाठा, चित्रक, त्रिकटु और मैनासिल इन्हें जलसे पीसकर इसमें जाती, करंजवा, सोहंजना इनके पुष्प ढाले और अंजन बनावे तथा प्रकीर्य ( पूतिकरंज ) के फल अथवा सोहंजनेके फल और दोनों कटेलीके फूल, रसोत, चंदन, सैंधव, मैनासिल, हरताल लहसुन इनको समान लेकर पीस ले और कफके नेत्ररोगोंके लिये बुद्धिमान वैद्य वक्तियां बनाकर सुखा ले और उनका अंजन करे ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

### बलासग्रथितका यत्न ।

रोगे बलासग्रथितेऽर्जनज्ञैः कर्तव्यमेतत्सुविशुद्धकाये ॥ ९ ॥

नीलान्यवान्गव्यपयोनुपीताच्छलाकिनः शुष्कतनून्विदह्यः ॥

तथाऽर्जकारुफोतकपित्थविल्वनिर्गुडिजातीकुसुमानि चैव १०॥

तत्क्षारवत्सैंधवतुत्थरोचनं पक्वं विदध्यादथ लोहनाड्या ॥

एतद्बलासग्रथितेऽजनं स्यादेपोनुर्कल्पस्तु फणिज्झकादौ ॥ ११ ॥

बलासग्रथित रोगोंमें अंजनोंके ज्ञाता वैद्योंको ऐसा करना चाहिये कि, प्रथम रोगीकी कायाको विरेचनादिसे शुद्ध करे ॥ ९ ॥ फिर हरे यवोंको गौके दूधमें भिगोवे और फिर उनको सुखाकर छोटरे समेत जलाले और फिर क्षार साधनके विधानकी भांति उन्हें धोलकर चुवालें और अर्जक ( फणिज्झक अर्थात् वनतुलसी ), आरुफोता, कपित्थ, संभालू, विल्व, चमेलीके फूल, युक्त करे और सैंधानमक, नीलाथोथा, गोरोचन येभी डालकर क्षार की विधिसे पकाले और रख छोड़े फिर उसे लोहकी सलाईसे लगावे यह फणिज्झकादि कल्प ( क्षारांजन ) नामक अंजन बलासग्रथित रोगमें हितकारक है ॥ १० ॥ ११ ॥

### पिष्टकका यत्न ।

महौषधं मागधिकां च मुस्तां ससैंधवं यन्मरिचं च शुक्लम् ॥

तन्मातुलुंगस्वरसेन पिष्टं नेत्रांजनं पिष्टकमाशु हन्यात् १२

सोंठ, पीपल, नागरमोथा, सैंधानमक, और सुपेद मिरच इन्हें विजोरिके रसमें पीसके नेत्रोंमें अंजन करे यह पिष्टक रोगको शीघ्र हरता है ॥ १२ ॥

## पिष्टक और प्रक्लिन्नवर्त्मका अञ्जन ।

फलं बृहत्यां मर्गधोद्भवानामादाय कलकं फलपाककाले ॥  
 स्रोतो जयुक्तं खलु सप्तरात्रात्तदुद्धृतं स्यात्तु तथैव पथ्यम् १३ ॥  
 वार्ताकुशिग्विद्रसुरापटोलकिराततित्तामलकीफलेषु ॥  
 कासीससामुद्ररसांजनानि जात्यास्तथा कोरकमेव चापि ॥  
 प्रक्लिन्नवर्त्मन्युपदिश्यते तु योगांजनं तन्मधुनाऽवघृष्टम् १४ ॥

बृहतीका फल और पीपल इन्हें पकनेके समय लावे और सौवीरांजन मिलाकर सात दिनतक रहने दे फिर निकालकर अंजन करे यह पिष्टक को हित है ॥ १३ ॥ बृहतीफल, सोहंजना, इंद्रायन, पटोल, चिरायता, आवलेके फल इनमें कासीस, समुद्रफेन, रसवंती तथा चमेलीकी कली इन्हें मिलाकर शहदमें घिसकर अंजन करे यह योगांजन प्रक्लिन्नवर्त्म रोगमें श्रेष्ठ कहा है १४ ॥

नादेयमग्र्यं मरिचं च शुक्रं नेपालजाता च समप्रमाणा ।

समातुलुंगद्रव एष योगः कंडू निहन्यात्सकृदंजनेन ॥ १५ ॥

सशृंगवेरं सुरदारु मुस्तं सिंधुप्रसूतं मुकुलानि जात्याः ।

सुरासु पिष्टं त्विदमंजनं हि कंडू च शोफे च हितं वदन्ति ॥ १६ ॥

स्यंदाधिमंथक्रममाचरेच्च सर्वेषु चैतेषु सदाऽप्रमत्तः ॥ १७ ॥

इत्युत्तरतंत्रे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

सैंधानमक, सुपेद मिरच व मेनसिल, समान भाग लेकर बिजोरेके रसमें मिलाकर एकवारही अंजन करनेसे यह योग खाजको दूर करता है ॥ १५ ॥ सोंठ, देवदारु, मोथा, सैंधानमक, चमेलीकी कली इन्हें सुरानामक मद्यसे पीसकर नेत्रोंमें अंजन करनेसे खाज और शोथके लिये श्रेष्ठ कहा है ॥ १६ ॥ इस अभिष्यंद और अंधिमथके क्रमसेही सब कफके रोगोंकी सावधान वैद्य सदा चिकित्सा करें ॥ १७ ॥

( वक्तव्य ) नेत्ररोगोंमें बहुत जगह मिरच तथा सुपेद मिरच ऐसे ग्रहण करी हैं. वहाँ सर्वत्र कालीमिरचोंमें जो सुपेद होती हैं जिन्हें दखनी स्याहमिर्च कहते हैं वे लेनी चाहियें ॥

इति सुश्रुतटीकायामुत्तरतंत्रे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

( श्लो० १४ ) जात्याः कोरकं जात्याः कलिका ( इति नि० सं० ) कोरकं कलिक।  
 ( इति श० नि० )

( श्लो० १५ ) नदी सिंधुः तद्भवं नादेयं सैंधवमित्यर्थः ।

## द्वादशोऽध्यायः १२.

अथातो रक्ताभिष्यंदप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥

यहांसे अगाड़ी अब हम रक्ताभिष्यंदआदिकी चिकित्साका व्याख्यान करतेहैं-

**रक्तज अधिमंथ आदि चार व्याधियोंकी चिकित्सा ।**

मन्थं स्यंदं<sup>१</sup> शिरोत्पातं शिरार्हपं च रक्तजम् ।

एकैकेन विधानेन चिकित्से<sup>२</sup> चतुरो गर्दान् ॥ १ ॥

रक्तका अधिमंथ, तथा अभिष्यंद, शिरोत्पात एवं शिरार्हप, इनचारों रोगोंकी एक एक विधानसे चिकित्सा करे ॥ १ ॥

व्याध्यात्तार्श्चतुरोऽप्येतांस्निग्धान्कौभेन सर्पिषा ।

रसरुदरैरथवा शिरामोक्षेण योजयेत् ॥ २ ॥

विरक्तानां प्रकामं च शिरास्येषां विशोधयेत् ।

वैरेचनिकसिद्धेन सितायुक्तेन सर्पिषा ॥ ३ ॥

इन चारों व्याधियोंसे पीडित रोगीको कुंभसर्पिसे अथवा अति स्निग्ध मांसके रससे स्निग्ध करके शिरामोक्ष करे ॥ २ ॥ परंतु शिरामोक्षणसे पहले विरेचनद्रव्योंसे सिद्ध किये हुये घृतमें मिश्री मिलाकर उससे विरेचन देवे फिर शिरावोंका शोधन करे ॥ ३ ॥

ततः प्रदेहाः परिषेचनानि नस्यानि धूमाश्च यथास्वमेव ।

आश्रयोतनाभ्यंजनतर्पणानि स्निग्धाश्च कार्याः पुटपाकयोगाः ॥

इसके पीछे प्रदेह, परिषेक, नस्य और यथायोग्य धूम तथा आश्रयोतन अभ्यंजन और तर्पण और पुटपाकके योग सब स्निग्धही करने उचित हैं ॥ ४ ॥

### प्रलेप ।

नीलोत्पलोशीरकटंकटेरीकालीययष्टीमधुमुस्तरोध्रैः ।

सपद्मकैधौतघृतप्रदिग्धैरक्ष्णोः प्रलेपं परितः प्रकुर्यात् ॥ ५ ॥

नीलकमल, खस, कटंकटेरी ( दारुहलदी ) कालीयक ( पीतकाष्ठ ) मुलेठी नागरमोथा, लोध, और पद्माख इन सबको धोये हुये घृतमें मिलाकर नेत्रोंके ऊपर आस पास लेप करदे ॥ ५ ॥

( श्लो० २ ) उदारै रसैः अतिस्निग्धमांसरसैरित्यर्थः ( इति डल्लनः )

## अन्ययत्न ।

रुजायां चाप्यति<sup>१</sup> भृशं स्वेदाश्च मृदवो हिताः ।  
 अक्ष्णोः समंततः कार्यं पातनं च जलौकसाम् ॥ ६ ॥  
 घृतस्य महती मात्रा पीता चार्तिं नियच्छति ।  
 पित्ताभिष्यंदशमनो विधिश्चाप्युपपादितः ॥ ७ ॥  
 कसेरुमधुकाभ्यां वा चूर्णमंबरसंवृतम् ।  
 न्यस्तमप्स्वन्तरिक्षासु हितमश्न्योतनं भवेत् ॥ ८ ॥

यदि अधिक होवे तो मृदु स्वेद करना हित है तथा नेत्रोंके आसपास जलौका लगाकर रुधिर निकाले ॥ ६ ॥ तथा घृतकी अधिक मात्रा पीना भी वेदनाको शांत करता है अथवा पित्ताभिष्यंदोक्त विधि करना श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥ तथा कसेरु और मुलेठीके चूर्णको महीन वस्त्रमें बांधकर ( पोटली बनाकर ) मेहके पानीमें भिगो भिगोकर उससे आभ्योतन कर्म करे ( पोटलीका जल नेत्रोंपर लगावे ) ॥ ८ ॥

## अंजन ।

पाटल्यर्जुनश्रीपर्णीधातकीधात्रिविल्वतः ।  
 पुष्पाण्यथ बृहत्योश्च विम्बीलोटाच्च तुल्यशः ॥ ९ ॥  
 समंजिष्ठानि मधुना पिष्टानीक्षुरसेन वा ।  
 रक्ताभिष्यंदशांत्यर्थमेतदंजनमिष्यते ॥ १० ॥

पाटल, अर्जुन, काश्मरी, धायके फूल, आंवले, विल्व, दोनों कटेलीके पुष्प, विम्बीलोटा ( एक प्रकारका वृक्ष हिमालयमें होता है ) इन सबको समान ले ॥ ९ ॥ और मंजीठ मिलाकर शहद और ईखके रससे पीसकर रक्ताभिष्यंदकी शांतिके लिये इसका अंजन करना श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

चंदनं कुमुदं पत्रं शिलाजतु सकुंकुमम् ।  
 अयस्ताम्ररजस्तुत्थं निवनिर्यासमंजनम् ॥ ११ ॥

( श्लो० ९ । १० ) श्रीपर्णी काश्मरी विम्बीलोटाख्यः हिमाद्रिजोवृक्षः । ( इति उल्लेखः ।

( श्लो० ११ ) पत्रं पत्रकम् । अंजनं रसांजनम् ।

त्रपुकांस्यमलं चापि पिष्ट्वा पुष्परसेन तु ।

विपुलायाः कृता वर्त्यः पूजिताश्चांजनैः सदा ॥ १२ ॥

चंदन, कुमुद, पत्रज, शिलाजीत और केसर, लोहेकाचूर्ण, और ताम्र का चूर्ण, नीलाथोथा और नींवका गोंद और रसांजन ॥ ११ ॥ सीसे और कासी का मेल इन सबको शहदमें पीसकर अच्छी बत्तीसी बना ले इसका अंजन करना श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

शिरोत्पातका यत्न ।

स्यादञ्जनं घृतं क्षौद्रं शिरोत्पातस्य भैषजम् ।

तद्वत्सैन्धवकासीसं स्तन्यघृष्टं च पूजितम् ॥ १३ ॥

मधुना शंखनैपालीतुत्थदाव्यः ससैन्धवाः ।

रसः शिरीषपुष्पाच्च सुरामरिचमाक्षिकैः ॥

युक्तं तु मधुना वाऽपि गैरिकं हितमञ्जनम् ॥ १४ ॥

शिरोत्पातमें रसांजन घृत और शहद मिलाकर लगाना इसकी औषध है इसीभांति सैन्धव व कसीस इन दोनोंको स्त्रीके दूधमें घिसकर लगाना श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥ तथा शंख और मैनसिल नीलाथोथा दारुहलदी और सैन्धव इन्हें शहदके संग लगावे अथवा शिरसके फूलोंका रस सुरा और मिरच इनको शहदमें मिलाकर लगावे अथवा गेरूको शहदके संग पीसकर अंजन करे ॥ १४ ॥

शिराहर्षका यत्न ।

शिराहर्षेञ्जनं कुर्यात्फाणितं मधुसंयुतम् ।

मधुना ताक्ष्यजं वापि कासीसं वा ससैन्धवम् ॥ १५ ॥

वेत्राम्लस्तन्यसंयुक्तं फाणितं तु ससैन्धवम् ॥ १६ ॥

शिराहर्षमें फाणित ( रात्र ) में शहद मिलाकर अंजन करना चाहिये अथवा रसांजनको शहदमें मिलाकर लगावे अथवा कसीस और सैन्धव दोनोंको मि-

( श्लो० १२ ) पुष्परसेन मधुना ( इति दल्लनः ) "वर्तिप्रमाण" हरेणुमात्रा वर्तिः स्याल्लेखनस्य प्रमाणतः ॥ प्रसादनस्य चार्द्धा च द्विगुणा रोपणस्य च ( इति नि० सं० ) ।

( श्लो० १३।१४ ) एतानि अंजनानि अर्द्धश्लौकिकान्यप्युक्तानीति ।

( श्लो० १५ ) ताक्ष्यजं रसांजनम् । कासीसं ससैन्धवं मधुयुक्तं तृतीयमंजनमिति ( नि० सं० )

लाकर शहद युक्त करके अंजन करे ॥ १५ ॥ तथा अम्लवेत दुग्धयुक्त अथवा फाणित ( राव ) सेंधव युक्तकर अंजन करे ॥ १६ ॥

## अर्जुनका यत्न ।

पैतृ विधिर्मशेषेण कुर्यादर्जुनशांतये ।

इक्षुक्षौद्रसितास्तन्यदावीमधुकंसैन्धवैः ॥ १७ ॥

सेकांजनं चात्र हितमम्लैराश्र्योतनं तथा ।

सितामधुकंकटुंगमस्तुक्षौद्राम्लसैन्धवैः ॥ १८ ॥

बीजपूरककोलाम्लदाडिमाम्लैश्च युक्तितः ।

एकशो वा द्विशो वापि योजितं वा त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १९ ॥

अर्जुन रोगकी शांतिके लिये पित्तशामक विधि करनी चाहिये. ईख, शहद, मिश्री, स्त्रीका दुग्ध, मुलेठी, और सेंधव इनका उपयोग करे अर्थात् सेचन तथा अंजन करे और धान्याम्लसे ( कई फलाम्लसे अर्थ करतेहैं ) आश्र्योतन करना चाहिये तथा मिश्री, मुलेठी, कटुंग ( अरळ ), नागरमोथा, शहद, अम्ल ( खटाई ), व सेंधव इनको तथा विजोरा बेरकी खटाई व अनारकी खटाई युक्तिपूर्वक लेवें इनमेंसे एक एक या दोदो या तीन तीनको मिलाकर उपयोग करे ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

स्फटिकं विद्रुमं शंखो मधुकं मधु चैव हि ।

शंखक्षौद्रसितायुक्तः सामुद्रः फेन एव च ॥

द्राविमौ विहितौ योगावर्जनेऽर्जुनशांतये ॥ २० ॥

सेंधवक्षौद्रकतकाः सक्षौद्रं वा रसाञ्जनम् ।

कासीसं मधुना वापि योज्यमत्राञ्जने सदा ॥ २१ ॥

स्फटिक ( विल्लोर ) मूंगा, शंख, मुलेठी और शहद एक तो यह और दूसरा यह कि शंख, शहद, मिश्री और समुद्रफेन ये दोनों योग अर्जुन रोगके नाश करनेके लिये विहित हैं ॥ २० ॥ तथा सेंधव शहद और कैथके बीज अर्थात् ( निर्मली ) इनको उपयोग करे अथवा रसोतमें शहद मिलाकर लगावे अथवा कसीसको शहदमें मिलाकर अंजन करे ॥ २१ ॥



## अवसादन गण ।

लोहचूर्णानि सर्वाणि धातवो लवणानि च ।

रत्नानि दंताः शृंगाणि गणश्चाप्यवसादनः ॥ २२ ॥

लोह अर्थात् सुवर्णादि सब धातुओंका चूर्ण, मैनासिल आदि सब धातु, सेंध-  
वादि लवण, वैडूर्यादि सब रत्न सब सींग यह सब द्रव्य समूह अवसादन हैं  
अर्थात् ( उँचाईको लेखन करनेवाला अर्जुनादिको नष्ट करनेवाला है ) ॥ २२ ॥

## लेख्यांजन ।

कुकुटाण्डकपालानि लशुनं कटुकत्रयम् ।

करंजबीजमेलाश्च लेख्याञ्जनमिदं स्मृतम् ॥ २३ ॥

मुरगेके अंडेका छिलका, लहसन, त्रिकटु, करंजके बीज और इलायची इनका  
अंजन लेखन करनेवाला है (अर्थात् अर्जुनादिको खुरचके साफ करनेवाला है) २३

## अव्रणशुक्र ( फूले ) का यत्न ।

पुटपाकावसानेन रक्तविस्रावणादिना ।

संपादितस्य विधिना कृत्स्नेन स्यन्दधातिना ॥ २४ ॥

अनेनार्पहेरच्छुक्रमव्रणं कुशलो भिषक् ।

उत्तानमवगाढं वा कर्कशं वापि<sup>१३</sup> सर्व्वणम् ॥ २५ ॥

शिरीषबीजमरिचपिप्पलीसैन्धवैरपि<sup>१४</sup> ।

शुक्रस्य वर्षणं कार्यमथवा सैन्धवेन तु<sup>१५</sup> ॥ २६ ॥

जिसको अभिप्यंदके नाश करनेवाले रक्त स्रावकी आदि लेंके पुटपाक  
पर्यंत विधानोंसे संपादित किया जा चुका हो उसके अव्रण शुक्र ( फूले ) को  
इसी योगसे दूर करे, तथा कुशल वैद्य उभरे हुए तथा नीचेको गढ़े हुए करड़े  
अथवा व्रणयुक्त शुक्रोंकोभी इसीसे साधन करे ॥ २४ ॥ २५ ॥ अथवा शिर-  
सके बीज मिरच पीपल सैन्धव इनसे शुक्र ( फूले ) को घिसे अथवा केवल  
सैन्धवही से घिसे ( तो वह कटजाता है ) ॥ २६ ॥

( श्लो० २४ । २५ ) अनेन विधानेन उपरोक्त, अवसादनगणेन अथवा लेख्यां-  
जनेन । अत्र केचित् अनेन वक्ष्यमाणं शिरीषबीजादिना इति वदन्ति ।

कुर्यात्ताम्ररजःशंखशिलांमरिचसैन्धवैः ।

अंत्याद्विगुणितैरेभिरञ्जनं शुक्रनाशनम् ॥ २७ ॥

कुर्यादञ्जनयोगौ वा सम्यक्श्लोकाद्धकाविमौ ।

शंखकोलास्थिकतकद्राक्षामधुकमाक्षिकैः ।

क्षौद्रदंतार्णवमलशिरीषकुसुमैरपि ॥ २८ ॥

क्षौराञ्जनं वा विरेद्वलसग्रथितापहम् ॥ २९ ॥

तांबिका चूर्ण, शंख, मैनसिल, स्याहमिरच, व सैन्धव इनमेंसे अंतिमसे पूर्व पूर्वकी दवा दुगुनी २ लेकर अंजन बनावे यह फूलेको नाश करता है ॥ २७ ॥ अथवा अगाड़ी लिखे हुवे आधे २ श्लोकोक्त दो अंजन करे जैसे शंख, बेरकी गुठली, कैथके बीज, दाख, मुलेठी, और शहद अथवा शहद, दांत, समुद्रफेन, व शिरसके फूल ॥ २८ ॥ अथवा बलासग्रथितनाशक जो क्षारांजन कहा उसका उपयोग करे २९ ॥

मुद्गान्वा निस्तुपान्भृष्टाच्छंखक्षौद्रसितायुतान् ।

मधूकसारं मधुना योजयेच्चांजने सदा ॥ ३० ॥

बिभीतकास्थिमज्जा वा संक्षौद्रः शुक्रनाशनः ।

शंखशुक्तिमधुद्राक्षा मधूककतकानि च ॥ ३१ ॥

अथवा मूंगोंको भूनकर छिलका दूर करके शंख, शहद और मिश्री मिलाकर अंजन करे अथवा महुवेका सार शहद मिलाकर अंजन करे ॥ ३० ॥ अथवा बहेडोंकी गुठलीके भीतरकी गिरीको शहद मिलाकर अंजन करनेसे फूला दूर होता है अथवा शंख, साँप, शहद, दाख, महुवा और कैथके बीज इनका अंजन करे ( मधुकका अर्थभी कई मुलेठी करते हैं ) ॥ ३१ ॥

द्वित्वगते सशूले वा वातघ्नं तर्पणं हितम् ।

वंशजार्ण्वकरो तालं नारिकेलं च दाहयेत् ॥ ३२ ॥

विस्त्राव्यं क्षारवच्चूर्णं भावयेत्करंभास्थिजम् ।

बहुंशोऽञ्जनमेतत्स्योच्छुक्रवैवर्ण्यनाशनम् ॥ ३३ ॥

( श्लो० ३० ) मधूकशब्देन 'महुवा' वृक्षस्य ग्रहणं परंतु केचित् मधुयष्टीति वदन्ति ।  
( श्लो० ३२ । ३३ ) वंशजा वंशकरीरः । तेषां भस्मक्षारविधिना विस्त्राव्य तेन करं भास्त्रिचूर्णं सप्ताहं भावयित्वा आतपे शोषयेत् । तच्चूर्णितमध्वाक्तेनांगुल्यग्रेण शलाकया वा संगृह्य शुक्रदेशमात्रं घर्षयेत् । ततस्त्रिफलोदकेनाक्षि प्रक्षालयेत् । शुक्रस्य वैवर्ण्यं विनाशयति नतु शुक्रम् । एतेन शुक्रस्य कृष्णत्वमुत्पादयतीति ( नि० सं० )

यदि दूसरे पटलमें शूलयुक्त शुक्र हो तो वायुनाशक तर्पण करना हित है और वंशका अग्र मिलावे तालफल और नारियल इन्हें जलाकर क्षारकी भाँत चुवाकर उससे उँटकी हड्डीके चूर्णकी भावना दे ( बहुतवार भिगो भिगो कर ) फिर इसका अंजन करे यह शुक्र और विवर्णताका नाश करता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

## अजकाजातकी चिकित्सा ।

अजंकां पार्श्वतो विद्धां सूच्यां विस्राव्य चोदकम् ।

व्रणं गोमांसचूर्णेन पूरयेत्सर्पिषां सह ॥ ३४ ॥

बहुंशोऽर्बलिखेच्चर्पिं वर्त्मास्योपगतं यदि ॥ ३५ ॥

अजकाजातको बराबरकी तरफ सूईसे बाँधकर उसका पानी निकाल दे और व्रणको गोमांसमें घृत युक्त करके उससे भरदे और यदि उसके किनारे ऊँचे हों तो कईवार जराजरा खुरचकर साफकर दे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

## सशोथ और शोथ रहित पाकका यत्न ।

सशोफश्चाप्यशोफश्च द्वौ पाकौ यौ प्रकीर्तितौ ।

स्नेहस्वेदोपपन्नस्य तत्र विद्धां शिरा भिषक् ॥

सेकाश्र्योतननस्यानि पुटपाकांश्च कारयेत् ॥ ३६ ॥

सर्वतश्चापि शुद्धस्य कर्तव्यमिदमञ्जनम् ।

ताम्रपात्रस्थितं मांसं सर्पिः सैन्धवसंयुतम् ॥ ३७ ॥

मैरेयं वापि दध्यैवं दध्युत्तरकमेव च ।

वृतं कांस्यमलोपेतं स्तन्यं वापि ससैन्धवम् ॥ ३८ ॥

मधूकसारं मधुना तुल्यांशं गैरिकेण वा ।

सर्पिः सैन्धवताम्राणि योषित्स्तन्ययुतानि च ॥ ३९ ॥

शोथ सहित अथवा बिना शोथ दो प्रकारका जो नेत्रपाक पहले कहा गया है उनमें वैद्यको चाहिये कि स्नेहन स्वेदन करके शिरा वेधन करे और फिर सेचन आश्र्योतन नस्य और पुटपाक सब करे ॥ ३६ ॥ और जब सब तरहसे शुद्ध हो जावे तब यह अंजन करना चाहिये कि ताम्रपात्रमें मांस घृत और सैन्धव रख दे ॥ ३७ ॥ अथवा मैरेयक नाम मदिरा या दही या

( श्लो० ३८ ) कांस्यमलं कांस्यवर्षणादुद्धृतं मसिवर्णम् ।

दहीका सर इनको जो ताम्रपात्रमें रक्खे हुए हो अंजन करे अथवा कांसीका मैल और घृत मिलाके अंजन करे या स्त्रीके दूधमें सैंधव मिलाकर अंजन करे ॥ ३८ ॥ अथवा मधूकसारमें शहद मिलाकर बराबरका गेरू मिलावे और अंजन करे अथवा घृत सैंधव ताम्र चूर्ण इनको स्त्रीके दुग्धसे युक्त कर अंजन करना चाहिये ॥ ३९ ॥

दाडिमारेवताश्मंतकोलाम्लैश्च ससैन्धवम् ।

रसक्रियां वा विर्तरेत्सम्यक्पाकंजिवांसया ॥ ४० ॥

मांसं सैन्धवसंयुक्तं स्थितं सर्पिषि नागरम् ।

आश्र्योतनाञ्जनं योज्यमर्बलाक्षीरसंयुतम् ॥ ४१ ॥

अनार, आरेवत वृक्ष, अश्मंतक, बेरकी खटाई और सैंधव इससे ठीक नेत्र पाकके नष्ट करनेकी बांछासे रसक्रिया करे ॥ ४० ॥ और मांसमें सैंधव युक्त करके रक्खा हुआ हो और उसमें घृत तथा सोंठभी हो इनमें स्त्रीका दूध मिलाकर इससे आश्र्योतनाञ्जनका उपयोग करे ॥ ४१ ॥

जात्याः पुष्पं सैधवं शृंगवेरं कृष्णाबीजं कीटशत्रोश्च सारम् ।

एतत्पिष्टं नेत्रपाकेजनार्थं क्षौद्रोपेतं निर्विशकं प्रयोज्यम् ॥ ४२ ॥

चमेलीके फूल सैंधव सोंठ पीपलके बीज विडंगसार इन सबको पीसके शहद मिलाकर नेत्रपाकमें निःसंदेह अंजन करना योग्य है ॥ ४२ ॥

## पुयालसका यत्न ।

पूयालसे शोणितमोक्षणं च हितं तथैवाप्युपनाहनं च ।

कृत्स्नो विधिश्चेक्षणपाकघाती तथा विधानं भिषजा प्रयोज्यः ४३

कासीससिंधुप्रभं वार्द्रकैस्तु हितं भवेदञ्जनमेव चार्त्रं ।

क्षौद्रान्वितैरेभिर्गुणैर्युज्यादन्त्यं तु ताम्रायसचूर्णयुक्तैः ॥ ४४ ॥

पूयालस रोगमें शिरामोक्षण करना हित है तथा उपनाहन करना और नेत्रपाकके नष्ट करनेवाली सब विधि इसमें वैद्य उपयोग कर सकते हैं ॥ ४३ ॥ तथा कासीस, सैंधव और अदरक इनको शहदमें मिलाकरभी वहाँ हित है अथवा इन्हींमें ताम्र और लोहका चूर्ण मिलाकर अंजन करनाभी उचित है ( पहलेवाला मृदु और यह पिछला उग्र है ) ॥ ४४ ॥

## प्रक्लिन्नवर्त्मका यत्न ।

स्नेहादिनां सम्यग्गपास्यं दोषांस्तृप्तं विधायार्थं यथास्वमेवं ।

प्रक्लिन्नवर्त्मानमुपक्रमेत सेकाञ्जनांश्च्योतननस्यधूमैः ॥ ४५ ॥

मुस्ताहारिद्रामधुकप्रियंगुसिद्धार्थरोध्रोत्पलसारिवाभिः ।

क्षुण्णाभिराश्च्योतनमेवं कार्यमत्राञ्जनं चाञ्जनमाक्षिकं स्यात् ४६

प्रक्लिन्नवर्त्म रोगवालेको स्नेहन रेचनादिसे दोषशुद्ध करके यथायोग्य तर्पण करके सेचन अंजन आश्च्योतन नस्य और धूम इनसे उपचार करे ॥ ४५ ॥ नागरमोथा, हलदी, मुलेठी प्रियंगु, सफेद सरसों, लोध, उत्पल, सारिवा, इनको कूटकर आश्च्योतन करे तथा इस रोगमें अंजन ( रसांजन अर्थात् रसोत ) और शहद मिलाके अंजन करना भी श्रेष्ठ है ॥ ४६ ॥

पत्रं फलं चामलकस्य पक्त्वा क्रियां विदध्यादर्थवाञ्जनार्थं ॥

वंशस्य मूलेन रसक्रियां वा वांति कृतां ताम्रकपालपक्वाम् ॥ ४७ ॥

रसक्रियां वा त्रिफलाविपक्वां पलाशपुष्पैः खरमंजरीभिः ॥

पिष्ट्वा छगल्याः पर्यसामलं वा कासस्य दग्ध्वा सह तातवेन ॥

प्रत्यञ्जने तन्मरिचैरुपेतं चूर्णेन ताम्रस्य सहोपयोज्यम् ॥ ४८ ॥

आँवलेके पत्र और फल इनको पकाकर रसक्रिया करे अथवा अंजनके काममें लावे अथवा वांसकी जड़से रसक्रिया करे अथवा उपरोक्त औषधको ताम्रके टेकरेमें गाढीपकाकर बत्ती बनाले ॥ ४७ ॥ अथवा त्रिफलाको पकाकर उससे रसक्रिया करे अथवा ढाकके फूलोंसे अथवा अपामार्गसे रसक्रिया करे अथवा कांसीके भैलको रुईके संग जलाकर उसमें मिरच मिलाकर और ताम्रचूर्ण युक्त करके उन्हें बकरीके दूधमें पीसकर प्रत्यंजन करे ॥ ४८ ॥

समुद्रफेनं लवणोत्तमं च शंखोऽथ मुद्गो मरिचं च शुक्लम् ॥

चूर्णाञ्जनं योज्यमथापि कंडूमक्लिन्नवर्त्मान्युपहन्ति शीघ्रम् ४९

( श्लो० ४६ ) क्षुण्णाभिरिति आंतरिक्षोदके तद्गुणे वा आश्च्योतनं कार्यम् । अंजनमित्यत्र रसांजनमाक्षिकं अंजनं स्यादिति ( डल्लनः )

प्रक्लिन्नवर्त्मन्यपि चैत एव योगाः प्रयोज्यांश्च समीक्ष्य दोषान् ॥  
सकज्जलं ताम्रघटे च घृष्टं सर्पिर्गुतं तु तथैकमञ्जनं च ॥ ५० ॥

इत्युत्तरतन्त्रे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

समंदरफेन संधानमक शंख मूंग सुपेद मिर्च ( काली ) इन सबका चूर्ण करके अंजन करनेसे कंडू और अक्लिन्नवर्त्म शीघ्र नष्ट होजातेहैं ॥ ४९ ॥ और प्रक्लिन्नवर्त्मरोगमेंभी दोषोंको देखकर ये प्रयोग उपयुक्त करने उचित हैं तथा ताम्रके कलशपर कज्जल नीलाथोथा और घी तीनों मिलाकर घिसे और इसका अंजन करे ॥ ५० ॥

इति सुश्रुतसंहितायाभाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे शालाक्ये द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

### त्रयोदशोऽध्यायः १३.

अथातो लेख्यरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम लेख्य ( अर्थात् खुरचकर साध्य होनेवाले ) रोगोंकी चिकित्सा अर्थात् लेखनकी विधिका व्याख्यान करते हैं ॥

नवै येऽभिहिता लेख्याः सामान्यस्तेष्वयं विधिः ।

स्निग्धवातविरिक्तस्य निवातातपसद्भानि ॥ १ ॥

सुखोदकप्रतप्तेन वाससां सुसमाहितः ।

स्वेदयेद्वर्त्मनिर्भुज्यं वामांगुष्ठांगुलिस्थितम् ॥ २ ॥

अंगुल्यंगुष्ठाभ्यां तु निर्भुज्यं वर्त्म यत्नतः ।

प्लोतांतरीकृतं नैव चलति संसतेऽपि वा ॥ ३ ॥

ततः प्रमृज्य प्लोतेन वर्त्म शस्त्रपदांकितम् ।

लिखेच्छस्त्रेण पत्रैर्वा ततो रक्ते स्थिते पुनः ॥ ४ ॥

स्विन्नं मनोज्ञाकासीसव्योषांजनकसंधवैः ।

श्लक्ष्णपिष्टैः समीक्षीकैः प्रतिसार्योष्णवारिणो ॥ ५ ॥

प्रक्षाल्य हविषा सिक्तं व्रणवत्समुपाचरेत् ।

( श्लो० ४ ) शस्त्रपदांकितं शस्त्रस्य पदेन अंकितयोग्यस्थानं लेखनयोग्यस्थानमित्यर्थः अथवा शस्त्रपदांकितं नैव चलति न संसते वा इति पूर्वेष्वन्वयः । अथवा शस्त्रपदांकितं यथा भवति तथा लिखेदित्यन्वयः ।

स्वेदावपीडप्रभृतीर्यहादूर्ध्वं प्रयोजयेत् ॥ ६ ॥

व्यासतस्ते समुद्दिष्टं विधानं लेख्यकर्मणि ॥ ७ ॥

पहले जो ९ लेख्य रोग कहे हैं उन सबमें सामान्य लेखनकी यही विधि है कि-रोगीको स्नेहन वमन विरेचनादिसे शुद्ध करके ऐसे स्थानमें बिठावे जहां तेजवायु और धूप नहो ॥ १ ॥ फिर निवाये पानीसे भीगा वस्त्र लगा लगाकर नेत्रोंके आसपास स्वेद करे और फिर बायें हाथकी अंगुली और अंगूठेसे पलकको पकड़कर उंची करे ॥ २ ॥ और अंगुली अंगूठेसे यत्नपूर्वक पकड़े रहे और रुई-का मृदुवस्त्र या फोहा बीचमें लगादे जिससे खुरची हुई जगह छिल न जावे या हट न जावे फिर रुईसे पोंछकर शस्त्रसे अथवा खुरदरे पत्रसे युक्तिपूर्वक खुरचे (छोलेदे) जब रुधिर निकले फिर स्वेदनकरके मैनसिल कसीस त्रिकटु अंजन और सैंधव इन्हें पीसकर शहद मिलाकर वहां रगड़दे और फिर गरम जलसे धोकर घृतसे सेवन करे और व्रणकासा उपचार करे फिर तीन दिनके पीछे कुछ स्वेद अवपीडन आदि करना हो जो करे संक्षेपसे लेखन कर्मका विधान तेरे प्रति वर्णन करादिया इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये ( ऐसे श्रीधन्वन्तरिजी सुश्रुतसे कहते भये ) ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

सम्यक्लिखित दुर्लिखित तथा अतिलिखितके लक्षण।

असृगास्त्रावरहितं कंडूशोफविवर्जितम् ।

समं नखनिभं वर्त्मलिखितं सम्यगिष्यते ॥ ८ ॥

रक्तमक्षि स्रवेत्स्कन्नं क्षताच्छस्त्रकृताङ्गुवम् ।

रागशोफपरिस्त्रावस्तिमिरं व्याध्यनिर्जयः ॥ ९ ॥

वर्त्म श्यावं गुरुस्तब्धं कंडूहर्षोपदेहवत् ।

नेत्रपाकमुदीर्णं वा कुर्वीताप्रतिकारिणः ।

एतद्दुर्लिखितं ज्ञेयं स्नेहयित्वा पुनर्लिखेत् ॥ १० ॥

व्यावर्तते यदा वर्त्म यक्ष्म चापि विमुञ्चति ।

स्यात्सम्यक्स्त्रावभूयिष्ठं तदतिस्त्रावितं विदुः ॥ ११ ॥

( श्लोक ९ ) स्कन्नं च्युतं गलितं क्षरितं शुष्कं गतं चेति ( शब्द-शेखरः ) ।



स्नेहस्वेदादिरिष्टः स्यात्कर्मस्तत्रानिलापहः ॥ १२ ॥

यदि रुधिरका स्राव न हो खाज और शोथ भी नहीं हो समान नखून के समान वर्त्म ( कोया ) खुरचा जावे तो उसे सम्यक् लिखित ( ठीक लेखनकर्म हुवा ) जानियें ॥ ८ ॥ और यदि शस्त्रके किये घावमेंसे नेत्रमें रुधिर निकलता रहे सुरखी सोजा स्राव तिमिर ये सब उपद्रव हो जावें और मुख्य व्याधिका नाश न हो ॥ ९ ॥ कोया काला पड़ जावे भारी हो स्तम्भित होजावे खाज हर्ष ( झन्नाटा ) और उपदेह ( मलवृद्धि ) ये भी हों अथवा प्रतिक्रिया नहीं करनेवालेके दारुण नेत्रपाक होजावे ये लक्षण हों तो उसे दुर्खिलित ( अर्थात् अयोग्य लेखन कर्म हुवा ऐसा ) जाने. ऐसा होनेमें उसे स्नेहन करके फिर ठीक लेखन कर्म करे ॥ १० ॥ यदि कोया कट जावे ( छिद जावे ) तथा पलके छूट जावे और बहुत स्राव होवे तो उसे अति लिखित ( अधिक छीला गया ऐसा ) जाने ॥ ११ ॥ एसो हो जावे तो उसपर स्नेह स्वेदादि करके ( त्रणवत् उपचार करे ) और वायु नाशक विधियोंका उपयोग करे ॥ १२

### लेखनमें विशेष उपदेश ।

वर्त्मावबन्धं क्लिष्टं च बहलं यच्च कीर्तितम् ।

पोथकीं चाप्यवलिखेत्प्रच्छादयित्वाऽग्रतः शनैः ॥ १३ ॥

समं लिखेत्तु मेधावी श्यावकर्दमवर्त्मनी ।

कुंभीकिनीं शर्करां च तथैवोत्संगिनीमपि ।

कर्त्तयित्वा तु शस्त्रेण लिखेत्पश्चादतन्द्रितः ॥ १४ ॥

भवेद्युर्वर्त्मसु चयाः पिडिकाः कठिना भृशम् ।

ह्रस्वास्ताम्राश्च ताः पक्वा भिद्यद्भिन्ना लिखेदपि ॥ १५ ॥

वर्त्मावबन्ध क्लिष्टवर्त्म बहलवर्त्म तथा पोथकी इनमें प्रथम पछने लगावे फिर अगाड़ीसे धीरे धीरे लेखन करे ॥ १३ ॥ श्याववर्त्म और कर्दमवर्त्म इन दोनोंको बुद्धिमान वैद्य सम ( इसप्रकार ) छीले और कुंभीकिनी वर्त्म शर्करा तथा उत्संगिनी इनमें सम लेखन करे परंतु पहले शस्त्रसे काट फिर सावधानीसे लेखन कर्म करे ॥ १४ ॥ और जो कोयोंमें बहुतसी करड़ी इकट्ठी छोटी २ ताँबेके वर्णकी फुन्सियां होती हैं उनको पकाकर भेदन करे और फिर लेखन करे ( खुरच डाले ) ॥ १५ ॥

तरुणीश्चाल्पसंरम्भाः पिडिका बाह्यवर्त्मजाः ।

विदित्वैतां प्रशमयेत्स्वेदालेपनशोधनैः ॥ १६ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

जो कौयेके बाहरकी तरफ ( या पलकोंपर ) नवीन और अल्पशोथवाली ( या अल्पवेदनावाली ) फुन्सी होजाया करती हैं उन्हें विचारकर स्वेद लेपन और शोधन आदिसे शांत करे ( उसपर शस्त्र कर्म करे ) ॥ १६ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

### चतुर्दशोऽध्यायः १४.

अथातो भेद्यरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम भेद्य ( भेदन करनेसे साध्य होने वाले ) रोगोंकी चिकित्सा अर्थात् भेदन विधिके उपदेश की व्याख्या करते हैं ॥

बिसग्रंथि पर भेद्यकर्म ।

स्वेदयित्वा विसग्रंथि छिद्राण्यस्य निराश्रयम् ।

पक्वं भित्त्वा तु शस्त्रेण सैन्धवेनावर्चयित् ॥ १ ॥

कासीसमागंधीपुष्पनेपाल्येलायुतेन तु ।

ततः क्षौद्रघृतं दत्त्वा सम्यग्बंधमुपाचरेत् ॥ २ ॥

बिसग्रंथिको स्वेदन करके जब वह पकजावे (या पकाकर) उसके छिद्रोंको निराश्रय हो जैसे शस्त्र से भेदन करके उसपर सैन्धानमक बुरकादेवे ॥ १ ॥ तथा कसीस, पीपल, पुष्पांजन, मैनसिल, इलायची मिलाकर शहद और घृतमें युक्तकर लगा देवे फिर ठीक ठीक बंध बांधदे ( निराश्रयसे यह अभिप्राय है कि जिससे उँचाई निचाई बराबर होजावे ) ( कई ऐसा अर्थ करते हैं कि सैन्धवमें कसीस, पीपल, पुष्पांजन, मैनसिल, इलायची मिलाकर बुरका देवे और ऊपरसे शहद घृत लगाके पट्टी बांधदे ) ॥ २ ॥

लगणका यत्न ।

रोचनाक्षारतुत्थानि पिप्पल्यः क्षौद्रमेव च ।

प्रतिसारणमेकैकं भिन्ने लग्णे इष्यते ॥ ३ ॥

महंत्यपि च युज्यते क्षाराग्निविधिकोविदः ॥ ४ ॥

लगण रोग होतो उसे भेदन करके उसपर गोरोचन क्षार नीलाथोथा पीपल शहदमें मिलाकर रगड़ दे ॥ ३ ॥ और महालगणमें भी इसी प्रकार करे परंतु क्षार अथवा अग्निकी विधि भी करे अर्थात् भेदन करके क्षार या अग्निसे दग्ध करके गोरोचनादि लगादे परंतु क्षार या अग्नि बहुत होश्या-रीसे काममें लावे ॥ ४ ॥

खिन्नां भिन्नां विनिष्पीड्य भिषगञ्जननामिकाम् ।

शिलैलानतसिन्धूत्थैः संक्षौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥ ५ ॥

रसाञ्जनमधुभ्यां वा भिन्नां वा शस्त्रकर्मवित् ।

प्रतिसार्याञ्जनैर्युञ्ज्यादुष्णेदीपशिखोद्भवैः ॥ ६ ॥

अंजननामिकाको वैद्य स्वेदन करके भेदन करे और फिर मैनासिल इलायची तगर सैंधव और शहद उसपर रगड़ दे ॥ ५ ॥ अथवा शस्त्र कर्म-का जाननेवाला वैद्य उसे भेदन करके रसौत और शहदका प्रतिसारण करके दीवेकी लोयसे पैदा हुवा गरम २ काजल लगावे ॥ ६ ॥

सम्यक्स्विन्ने कृमिग्रंथौ भिन्ने स्यात्प्रतिसारणम् ।

त्रिफलातुत्थकासीससैंधवैस्तु रसक्रियाम् ॥ ७ ॥

भित्तोपनाहं कफजं पिप्पलीमधुसैंधवैः ।

लेखयेन्मंडलाग्रेण समन्तात्प्रच्छयेदपि ॥ ८ ॥

संस्नेह्य पत्रभंगैश्च स्वेदयित्वा यथासुखम् ॥

आपाकाद्विधिर्नोक्तेन पंच भेद्यानुपाचरेत् ॥ ९ ॥

कृमिग्रंथि रोगमें यथायोग्य स्वेद कराकर भेदन करे और फिर त्रिफला नीलाथोथा कसीस सैंधव इनसे प्रतिसारण करे तथा रसक्रिया करे ॥ ७ ॥ और कफका उपनाह हो तो उसे भेदन करके पिप्पली शहद सैंधव लगावे तथा मंडलाग्र शस्त्रसे लेखन करे तथा आसपासमें पछनेभी लगावे ॥ ८ ॥ स्नेहन करके पत्तोंसे सुखपूर्वक स्वेदन करे जबतक पके नहीं तबतक स्वेदन कर्म करे इसी प्रकारसे पांचों भेद्य कर्मोंमें उपचार करे ॥ ९ ॥

सर्वेष्वेतेषु विहितं विधानं स्नेहपूर्वकम् ।

सम्पर्के प्रयतो भूत्वा कुर्वीत व्रणरोपणम् ॥ १० ॥

इत्युत्तरतन्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इन सब भेद्य कर्मोंमें स्नेहन पूर्वक कर्म करना चाहिये और जब पक जावे ( फूट जावे या भेदन किया जावे ) तब व्रण रोपणकी क्रिया करे ॥ १० ॥  
इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे शालाक्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

## पंचदशोऽध्यायः १५.

अथातश्छेद्यरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम छेद्य ( छेदनेसे साध्य होनेवाले ) रोगों के प्रतिषेध अर्थात् छेदनकी विधि का व्याख्यान करते हैं ॥

स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नमुपविष्टस्य यत्नतः ।

सरोपं येत्तुं नयनं भिषक् चूर्णैस्तुं लावणैः ॥ १ ॥

ततः संरोषितं तूष्णं सुस्विन्नं परिचर्दितम् ।

अर्म यत्र वलीजातं तत्रैतल्लेगयेद्विषक् ॥ २ ॥

अपांगं प्रेक्ष्यमाणस्य वडिशेन समौहितः ।

मुचंडया गृह्य मेधावी सूचीसूत्रेण वा पुनः ॥ ३ ॥

छेद्यरोगोंमें से प्रथम अर्म रोगमें छेद्य कर्मका उपदेश किया जाता है कि रोगीको स्निग्ध भोजन कराकर यत्नपूर्वक बिठावे फिर वैद्य सेंधवके चूर्णको लगाकर नेत्रको रोषित ( रुष्ट ) करे ( इससे अर्म शिथिल होजाताहै अर्थात् फूल जाता है ) ॥ १ ॥ जब वह फूल जावे तब उसे स्वेदित करे और जहां वह गाढा और इकट्ठा हुवा मालूम हो वहां उसपर शस्त्र लगावे ॥ २ ॥ ( और रोगीसे नेत्रकोणकी तरफ देखनेको कहै ) जब वह टेढा देखे तब वह अर्मस्थान वैद्यके ठीक सन्मुख होजाता है तब उसे वडिश यंत्रसे सावधान होकर उठावे और फिर बुद्धिमान् वैद्य नकचिमटीसे अथवा डोरे समेत मुईसे उसे पकड़ले ( धीरे धीरे अलग करले ) ॥ ३ ॥

नचोत्पातयता क्षिप्रं कार्यमत्युन्नतं तु तत् ।

शस्त्रपातभयाच्चस्य वर्त्मनी ग्रहयेद्दृढम् ॥ ४ ॥

उस अर्मको एकवारही जियादह ऊंचा न उठावे इससे टूट जाता है और शस्त्र लग न जावे इस भयसे दोनों तरफकी पलकोंको मजबूत पकड़ ले ॥ ४ ॥

( श्लो० ३ ) मुचंडया सूचीसूत्रेण वा गृह्य उद्धरेत् इति शेषेणान्वयः ।

ततः प्रशिथिलीभूतं त्रिभिरेव विलंबितम् ।

उल्लिखन्मंडलाग्रेण तीक्ष्णेन परिशोधयेत् ॥ ५ ॥

विमुक्तं सर्वतश्चापि कृष्णाच्छुक्लाच्च मंडलात् ।

नीत्वा कनीनिकोपांतं छिद्यन्नाति कनीनिकम् ॥ ६ ॥

चतुर्भागस्थिते मांसे नाक्षि व्यापत्तिमर्हति ।

कनीनिकवधादस्रं नाडीचाप्युपजायते ॥ ७ ॥

हीनच्छेदात्पुनर्वृद्धिं शीघ्रमेवाधिगच्छति ॥ ८ ॥

जब वह शिथिल हुवा अर्म विलंबित होवे ( विशेषलंबित हो अर्थात् खींचा जावे ) तब उसे तीन बडिशोंसे उठावे ( एकसे उठानेमें टूट जाता है ) और फिर अवशिष्टको तीक्ष्ण मंडलाग्र शस्त्रसे लेखन करके शुद्ध करे ॥ ५ ॥ नेत्रके कृष्णभाग तथा शुक्लभागमें जहाँ अर्म हो वहाँसे हटा हटाकर कनीनिक ( नेत्रके कोण ) के समीप लेआवे ( और यहां लाकर उठा ले ) परंतु कनीनिक स्थानको ज्यादा छेदन न करे ॥ ६ ॥ ( नेत्र गोलक के ) मांस अर्थात् गोलकके चतुर्थ भागमें स्थित करके उठावे ऐसा करनेसे नेत्रमें पीडा नहीं होती यदि कनीनिक स्थान छेदाजावे तो उससे रुधिरस्राव होजाता है अथवा नाड़ी ( नासूर ) होजाता है ॥ ७ ॥ और अल्प छेदनसे वह रोग फिर शीघ्रही बढ जाता है ( इससे यथोक्त छेदन कर्म करना चाहिये ) ॥ ८ ॥

अर्म यज्जाल्वद्वापि तदप्युन्मार्ज्यं लंबितम् ॥

छिद्याद्वक्रेण शस्त्रेण वर्त्मशुक्लांतमाश्रितम् ॥ ९ ॥

प्रतिसारणमक्ष्णोस्तु ततः कार्यमनंतरम् ।

यवनालस्य चूर्णेन त्रिकटोर्लवणस्य च ।

स्वेदयित्वा ततः पश्चाद्दधीयात्कुशलोभिषेक् ॥ १० ॥

जो अर्म जालकी भांति व्याप्त हो उसे जब वह लंबायमान हो अर्थात् उठाय जावे तब ऊपरको उठा उठाकर शस्त्रसे छेदन करे और जो शुक्लभागके पास अर्म हो उसे टेढ़े शस्त्रसे छेदन करे ॥ ९ ॥ फिर यवक्षार त्रिकटु और सेंधवसे नेत्रोंको प्रतिसारण करे फिर उसके पीछे स्वेदन करके बुद्धिमान वैद्य पट्टी बांध देवे ॥ १० ॥

( श्लो० ५. ) त्रिभिः बडिशादिभिः न तु एकेन नुटनभयात् विलंबितं घृतम् ( इति डल्लनः )

देशर्तुवलकालज्ञः स्नेहं दत्वा यथाहितम् ।

व्रणवत्संविधानं तु तस्य कुर्यादतः परम् ॥ ११ ॥

अहान्मुक्त्वा करस्वेदं दत्वा शोधनमाचरेत् ॥ १२ ॥

देश ऋतु रोगीका बल और काल ( अवस्था ) इत्यादिका जाननेवाला वैद्य इन बातों को विचारकर जैसा हित हो वैसा स्नेह उपयुक्त करके फिर व्रणका सा विधान करे फिर तीन दिनमें पट्टी खोलके हाथसे स्वेदकरके शोधन करे॥

## इसमें शूलका यत्न ।

करंजबीजामलकमधुकैः साधितं पर्यः ।

हितमाश्र्योतनं शूले द्विरहः क्षौद्रसंयुतम् ॥ १३ ॥

मधुकोत्पलकिंजल्कदूर्वाकल्कैश्च मूर्द्धनि ।

प्रलेपः सर्वतः शीतः क्षीरपिष्टः प्रशस्यते ॥ १४ ॥

यदि शूल हो तो करंज के बीज आंवले मुलेठी इनसे साधन कियाहुवा दूध शहद मिलाकर दिनमें दोवार ( दोनों वखत ) आश्र्योतन करना हित होता है ॥ १३ ॥ और मुलेठी कमलकिंजल्क ( कमलकी केसर ) द्रव इनका कल्क बनाकर घृत मिलाकर दूधमें पीसकर आथे पर लेप करदेना ( शूलकी शांतिको ) श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

## शेषरहे अर्म का प्रतीकार ।

लेख्याञ्जनैरपहरेदर्मशेषं भवेद्यदि ॥ १५ ॥

और यदि छेद्य कर्म करने पर कुछ अर्म का भागशेष रहजावे तो उसे लेखन करनेवाले अंजनोसे सिद्ध करे ॥ १५ ॥

अर्म चाल्पं दधिनिभं नीलं रक्तमथापि वा ।

धूसरं तनुं थञ्चापि शुक्रवर्तदुर्पाचरेत् ॥ १६ ॥

चर्माम्बं बहलं यत्तु स्नार्थुमांसवनावृतम् ।

छेद्यमेव तदर्म स्यात्कृष्णमण्डलगं च यत् ॥ १७ ॥

जो अर्म छोटा हो दही जैसाहो नीला अथवा रक्त हो धूमरे वर्णका हो पतलाहो उसे शुक्रके भांति ( लेख्यांजनोंसे ) उपचार करे ॥ १६ ॥ और जो

चर्म जैसा हो मोटाहो जो स्नायु मांस इनके घनसे आच्छादित हो और जो काली पुतलीमें हो ऐसा अर्म छेदन करने योग्य होता है ॥ १७ ॥

विशुद्धवर्णमक्लिष्टं क्रियास्वक्षि गतकुर्मम् ।

छिन्नेऽर्मणि भवेत्सम्यग्यथास्वमनुपद्रवम् ॥ १८ ॥

नेत्रका वर्ण शुद्ध होजावे और नेत्रोंके खोलने मीचनेमें कुछ कष्ट न हो तथा कुछ परिश्रमभी न रहे और कोई उपद्रवभी न हो यदि छेदन कर्ममें ये लक्षण हों तो उसे यथायोग्य सम्यक् छेद कर्म हुवा जानना चाहिये ॥ १८ ॥

शिराजाल और शिरापिडिकाका यत्न ।

शिराजाले शिरा यास्तु कठिनास्ताश्च बुद्धिमान् ।

उल्लिखेन्मंडलाग्रेण बडिशेनावलंबिताः ॥ १९ ॥

शिरासु पिडिका जाता या न सिध्यति भेषजैः ।

अर्मवन्मंडलाग्रेण तासां छेदनमिष्यते ॥ २० ॥

रोगयोश्चैतयोः कार्यममोक्तं प्रतिसारणम् ।

विधिश्चापि यथादोषं लेखनद्रव्यसम्भृतः ॥ २१ ॥

शिराजालमें जो करड़ी शिरायें हों उन्हें बुद्धिमान् वैद्य अवलंबित करके ( अर्थात् बडिशसे उठाकर ) मंडलाग्र शस्त्रसे उल्लेखन करे काटले ॥ १९ ॥ और जो शिराओंमें पिडिका हों और वे औषध लगानेसे सिद्ध न हों तो अर्म रोगकी भांति मंडलाग्र शस्त्रसे उनका छेदन कर देना चाहिये ॥ २० ॥ और इन दोनों रोगों ( शिराजाल और शिरापिडिका ) में अर्म रोगकी कहीं हुई प्रतिसार विधि दोषोंके अनुसार लेखन द्रव्योंसे करनी चाहिये ( अथवा अमोक्त प्रतिसारण करे और दोषोंके अनुसार लेखन द्रव्योंसे लेखनादि विधि करे ) ॥ २१ ॥

पर्वणिकाका यत्न ।

संधौ संस्वेद्यं शस्त्रेण पर्वणीकां विचक्षणः ।

उत्तरे च त्रिभागे च बडिशेनावलंबिताम् ॥ २२ ॥

छिद्यत्ततो ह्यर्मग्रे स्यादधुनाडीह्यतोऽन्यथा ।

प्रतिसारणमत्रापि सैन्धवक्षौद्रमिष्यते ॥ २३ ॥

( श्लोक २२ । २३ ) संधौ कृष्णशुक्रसंधौ ( इति उल्लेखः ) ।



पर्वणिका हो तो संधिमें स्वेदन करके चतुर वैद्य उत्तर त्रिभागमें बडिशसे उठाके शस्त्रसे छेदन करे ॥ २२ ॥ उसके पीछे ऊपरला अर्द्धभाग छेदन करे इससे अगाड़ी कदापि छेदन नहीं करना क्योंकि इसके अगाड़ी अश्रुनाड़ी होती है और यहां भी सैंधव शहदका प्रतिसारण करे ( संधि यहां कृष्ण शुक्लकी समझनी ) ॥ २३ ॥

लेखनीयानि चूर्णानि व्याधिशेषस्य भेषजम् ।

शंखं समुद्रफेनं च मंडूकीं च समुद्रजाम् ॥ २४ ॥

स्फटिकं कुरुविंदं च प्रवालाश्मन्तकं तथा ।

वैडूर्योपलकं मुक्तामयस्ताम्ररजांसि च ॥ २५ ॥

समभागानि संपिष्य सार्द्धं स्रोतोऽजनेन तु ।

चूर्णाञ्जनं कारयित्वा भाजने मेघशृंगजे ॥ २६ ॥

संस्थाप्योभयंतः कालं मर्जयेत्सर्ततं बुधः ।

अर्माणि पिडिका हन्याच्छिराजालानि तेन वै ॥ २७ ॥

अर्शस्तथा यच्च नाम्ना शुष्कार्शोऽर्बुदमेव च ।

अभ्यंतरं वर्त्मशया विधानं तेषु वक्ष्यते ॥ २८ ॥

यदि शस्त्र कर्म करनेपर भी व्याधि शेष रहजावे तो उसके लिये लेखनीय चूर्ण ही औषध हैं जैसे शंख समुद्रफेन समुद्रकी सीप ॥ २४ ॥ स्फटिक ( बिल्लोर ) कुरुविंद ( पद्मराग अर्थात् माणिक्य ) मूंगा अश्मन्तक ( बेसन जैसी माणि ) वैडूर्य ( पत्रे ) उपलक ( स्फटिकका भेद ) मोती लोहेका चूर्ण और तांबेका चूर्ण ॥ २५ ॥ इन सबको समान भाग लेकर खूब बारीक खरल करे और इसमें स्रोतोऽजन ( सुरमा ) भी मिलावे इनका चूर्णाञ्जन बनाकर हिंगोटमें भरकर रक्खे ॥ २६ ॥ फिर इसको दोनों वस्त्र नित्य डाले यह अंजन अर्मरोग पिडिका शिराजाल नेत्रार्श तथा शुष्कार्श अर्बुद इतने रोगों को नष्ट करता है अब अभ्यंतर वर्त्म आशय ( पडवाल ) का विधान इनमेंसे अगाड़ी कहते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

( श्लो० २४ ) समुद्रमंडूकी मुक्ताशुक्तिः ।

( श्लो० २६ ) मेघशृंगः 'इंगुदीभेदः' इति डल्लनः । केचित् मेघविषाणरचित-  
भाजनं मन्यन्ते ।

वर्त्मोपस्वेद्यं निर्भुज्यं सूच्योत्क्षिप्य प्रयत्नतः ।

मंडलाग्रेण तीक्ष्णेन मूले छिद्याद्भिषग्वरः ॥ २९ ॥

ततः सैन्धवकासीसकृष्णाभिः प्रतिसारयेत् ।

स्थिते च रुधिरं वर्त्म दहेत्सम्यक् शलाकया ॥ ३० ॥

क्षारेणोवल्लिखेच्चापि व्याधिशेषो भवेद्यादि ।

तीक्ष्णैरुभयतो भागैस्ततो दोषमधिकक्षिपेत् ॥ ३१ ॥

वितरेच्च यथादोषमभिष्यंदक्रियाविधिम् ।

शस्त्रकर्मण्युपरते मांसं च स्यात्सुर्यन्त्रितः ॥ ३२ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

वर्त्म ( कोये ) को स्वेदन करके यत्नपूर्वक मूर्ईसे बांधकर जरा उभारेदे फिर तीक्ष्णमंडलाग्र शस्त्रसे जड़मेंसे वैद्य छेदनकर ( छील ले ) ॥ २९ ॥ फिर सैन्धव और कसीस तथा पीपल इनका प्रतिसारण करे और जब रुधिर बंद होजावे तब शलाका गरम करके उसे दग्ध कर दे ॥ ३० ॥ और इतना करने परभी यदि व्याधि शेष रहजावे तो उसे क्षारसे अवलेखन करे और फिर तीक्ष्णवमन विरेचन देकर दोनों तरफसे दोषोंको निकालदे ॥ ३१ ॥ तथा दोषोंके अनुसार अभिष्यंदकी क्रिया की जो विधि कही वह करे और शस्त्र कर्म होले-ने के एक महीना पीछेतक सावधानीसे आहार विहारादिका यथायोग्य नियम रखे ॥ ३२ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे शालाक्ये पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

## षोडशोऽध्यायः १६.

अथातो पक्ष्मकोपप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम पक्ष्मकोपके प्रतिषेधकी व्याख्या करते हैं ( वर्त्मके अग्रभागमें जो रोममालिका होतीहै उसे पक्ष्म कहते हैं भाषामें इन्हें पलक कहते हैं )

यार्प्यस्तु यो वर्त्मभवो विकारः पक्ष्मप्रकोपोऽभिहितः पुरस्तात् ।

तत्रोपविष्टस्य नरस्य चर्म वर्त्मपरिष्ठादनु ति र्यगेव ॥ १ ॥

( श्लो० १ ) पक्ष्म वर्त्मरोममालिका ।

भ्रूवोरधर्स्तात्परिमुच्य भोगौ पक्ष्माश्रितं चैकर्म तोऽर्वकृतेत् ।  
 कनीनिकायांगसमं समंताद्यवाकृतिः स्निग्धतनोर्नरस्य ॥ २ ॥  
 उत्कृत्य शस्त्रेण यवप्रमाणं बालेन सीव्येद्विषगप्रमत्तः ।  
 दत्त्वा च सर्पिर्मधुनावशेषं कुर्याद्विधानं विदितं व्रणे यत् ॥ ३ ॥  
 ललाटदेशे च निबद्धपट्टं प्राक्स्यूतमत्राप्यपरं च बद्धा ।  
 स्थैर्यगते चाप्यर्थं शस्त्रमार्गे बालान्विमुचेत्कुशलोऽभिवीक्ष्य ॥ ४ ॥

जब वर्त्मरोग याप्य होजाताहै तब पक्ष्मकोप होताहै यह पहले कहा जा-  
 चुकाहै ( इसके लिये शस्त्रकर्मका विधान प्रथम कहते हैं ) रोगीको ठीक  
 बिठाकर वर्त्मके ऊपरको नीचे जरा तिरछी तरफ ॥ १ ॥ भ्रुकुटीसे नीचेके दो  
 भाग और पलकोंके पासका एक भाग इन्हें छोडकर कनीनिका और अपांगके  
 पास समान यवकी आकृति ( रूप विकारका मूल होताहै उसे ) काटदेवे  
 परंतु इस कर्मके करनेसे पहले रोगीके शरीरको स्निग्ध करदे फिर शस्त्रकर्म  
 करे ॥ २ ॥ शस्त्रसे यवके प्रमाण काटकर सावधान वैद्य बालसे सीमदे और ऊपर  
 घृत शहद लगादे और शेष सब विधान व्रणके अनुसार करे ॥ ३ ॥ उनवालोंसे  
 माथेपर स्यूतवस्त्रकी पट्टी बांधदेवे और जब शस्त्रका छिद्र बंद होजावे तब  
 चतुर वैद्य देखकर उनवालोंको अलगकरले ( स्यूतवस्त्र मोजेकीसी जालीदार  
 सूईकी बुनावटका होताहै यह खैचनेसे बढताभीहै जैसे गुलूबंद ) इससे प्रयो-  
 जन यह है कि कोया पुतलीसे भिड़े नहीं ॥ ४ ॥

एवं न चेच्छाम्यति तस्य वर्त्म निर्भुज्य दोषोपहतां बलिं च ।  
 ततोऽग्निना वा प्रतिसारयेत्तां क्षारेण वा सम्यगवेक्ष्य धीरः ॥ ५ ॥  
 छित्त्वा समं वाप्युपपक्ष्ममालां सम्यग्गृहीत्वा बडिशैस्त्रिभिर्वा ।  
 पथ्याफलेन प्रतिसारयेत्तु पिष्टेन वा तौवरकेण सम्यक् ॥ ६ ॥

( श्लो० ४ ) शस्त्रव्रणे कठिनीभूते संरुद्धे बालान् विमुचेत् स्यूतवस्त्रात् क्रमेण  
 अपकर्षेत् ॥

( श्लो० ५ ) एवं न शाम्यति चेत् तस्य वर्त्म निर्भुज्य उत्तानं कृत्वा दोषोपहतां बलिं  
 अङ्कुरादिकं मांसपिंडं वा सम्यक् अवेक्ष्य धीरो भिषक् तां अग्निना क्षारेण वा प्रतिसारये-  
 दित्यर्थः । बलिर्गुह्यस्थे अङ्कुराकारे मांसपिंडे च स्त्री, इति ( शब्दस्तोमः )

यदि शस्त्र कर्म करने परभी वर्त्मरोग ( पक्ष्म रोग ) शांत न हो तो कोये को ऊंचा उठाकर दौष दूषित बलि ( अथात् अंकुरादि ) को धीर वैद्य खूब गौरसे देखकर उस पर अग्निसे या क्षार ( तेजाब ) से प्रतिसारण करे ( अग्नि से लाल शलाकादि या क्षार रगड़ दे ) ॥ ५ ॥ अथवा पक्ष्ममालिकाको समान ( बराबर ) छेदन करके तथा तीन बडिशोंसे उसे पकड़कर उस पर हरीतकी का फल या तुवरक पीसकर यथायोग्य रगड़ दे ॥ ६ ॥

चत्वार एते विधयो विहंतुं पक्ष्मोपरोधं पृथगेव शस्ताः ।

विरेचनाश्च्योतननस्यधूमलेपाञ्जनस्नेहरसक्रियाश्च ॥ ७ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

पक्ष्मकोपके नाश करने के लिये ये जो चार उपाय ( शस्त्र अग्नि क्षार और भेषज ) कहे सब जुदे २ करनेही श्रेष्ठ हैं तथा विरेचन आश्च्योतन नस्य धूम लेप अंजन स्नेह और रसक्रिया ये भी यथा अवसर करने उचित हैं ॥ ७ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे शालाक्ये षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

## सप्तदशोऽध्यायः १७.

अथातो दृष्टिगतरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम दृष्टिगत रोगों ( निगाहसे संबंध रखनेवाले रोगों ) की चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

त्रयः साध्यास्त्रयोऽसाध्या याप्या षट् च भवंति हि ।

तत्रैकस्य प्रतीकारः कीर्तितो धूमदर्शिनः ॥ १ ॥

पहले जो दृष्टिगत १२ रोग लिखे गये हैं, उनमेंसे तीन ( धूमदर्शी, पित्त-विदग्धदृष्टि, और कफविदग्धदृष्टि ) साध्य हैं और तीन ( ह्रस्वजात्य, नकु-लांध्य, और गंभीरिका ) ये असाध्य हैं तथा ६ याप्य हैं. इनमेंसे एक धूम-दर्शीका यत्न पहले कहदिया गया है (शेषका प्रतीकार अब यहां कहते हैं) ॥१॥

( श्लो० ७ ) चत्वार एते शस्त्राग्निक्षारभेषजानि । पक्ष्मोपरोधं-पक्ष्मकोपम् । तथा अभिप्यंदोक्ता विरेचनादयो यथायथमुपयुक्ताः पृथगेव विहंतुं समर्थाः चकारात् उपपक्ष्मो-त्पादनमपीति ( नि० सं० )

( श्लो० १ ) धूमदर्शिनः प्रतीकारः पित्ताभिप्यंदप्रतिषेधे प्रकीर्तितः ।

## कफ पित्तविदग्ध दृष्टिका यत्न ।

दृष्टौ पित्तविदग्धायां विदग्धायां कफेन च ।  
 पित्तश्लेष्महरं कुर्याद्विधिं शस्त्रक्षतादृते ।  
 नस्यसेकांजनालेपपुटपाकैः संतर्पणैः ॥ २ ॥  
 आद्यं तु त्रैफलं पथ्यं सर्पिस्त्रिवृतमुत्तरे ।  
 तैल्वंकं चोभयोः पथ्यं केवलं जीर्णं मेवं वा ॥ ३ ॥  
 गैरिकं सैधवं कृष्णां गोदंतस्य मसी तथा ।  
 गोमांसं मरिचं बीजं शिरीषस्य मनःशिला ॥ ४ ॥  
 वृतं कपित्थान्मधुना स्वयंगुप्ताफलानि च ।  
 चत्वार एते योगाः स्युरुभयोरजने हिताः ॥ ५ ॥

पित्तविदग्ध दृष्टिमें तथा कफविदग्ध दृष्टिमें यथाक्रम पित्त हारी और कफ हारी क्रिया करे और शस्त्र कर्म नहीं करे तथा नस्य सेक अंजन लेप और पुटपाक तथा तर्पण कर्म करे ॥ २ ॥ आद्य ( पित्त विदग्ध दृष्टि ) में त्रिफला घृत पीना और उत्तर ( कफविदग्धदृष्टि ) में त्रिवृतासे सिद्ध घृत पीना तथा लोध्रका सिद्ध तथा केवल पुराना घृत दोनोंमें श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ गेरू सैधव पीपल गौके दांतकी काली भस्म तथा गोमांस मिरच शिरसके बीज मैनसिल तथा कैथका डंकल शहदके संग तथा केवांचके बीज शहदके संग ये चार योग दोनों व्याधियोंमें अंजन करने हित हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

कुब्जकाशकशालाम्रप्रियंगुनलिनोत्पलैः ।

पुष्पैर्हरेणुकृष्णाह्वापथ्यामलकसंयुतैः ॥ ६ ॥

सर्पिर्मधुयुतैश्चूणैर्वैणुनाड्यामवस्थितैः ।

अंजयेद्वापि भिषक् पित्तश्लेष्मविभावितौ ॥ ७ ॥

( श्लो० २ ) शस्त्रक्षतादृते शिराव्यधं वर्जयित्वा ।

( श्लो० ४ । ५ ) गैरिकादौ गोदंतमसी यावदेको योगः । मांसादिकं मनःशिला यावत् द्वितीयो योगः । वृतं कपित्थान्मधुना इति तृतीयो योगः । स्वयंगुप्ताफलानि मधुनेति चतुर्थो योगः ( इति नि० सं० ) ।

( श्लो० ६ ) नलिनं ईषद्वक्तपत्रम् । उत्पलं नीलोत्पलम् । ( इति नि० सं० ) ।

( श्लो० ७ ) पित्तश्लेष्मविभाविताविति पित्तश्लेष्मविदग्धदृष्टौ ।

आम्रजंबूद्रवं पुष्पं तद्रसेन हरेणुकाम् ।

पिष्ट्वा क्षौद्राज्यसंयुक्तां प्रयोज्यमथवांजनम् ॥ ८ ॥

कुब्जक ( कूजा ), अशोक, शाल, आम्र, प्रियंगु, नलिन ( गुलाबी कमल ) और उत्पल ( नीलकमल ) इनके पुष्प लेवे और रेणुका, पीपल, हरीतकी, और आंवले इन सबको पीसकर इस चूर्णमें घृत और शहद मिलावे फिर इसको बांसकी नलकीमें भरदे, इसमेंसे वैद्य दोनों रोगों ( पित्त विदग्ध और कफ विदग्ध दृष्टि ) में अंजन करावे ॥ ६ ॥ ७ ॥ आम्र और जामुनके पुष्प लेकर उसके रसमें रेणुकाको पीस लेवे और उसमें शहद घृत मिलाकर अंजन करे ॥ ८ ॥

दिनरात्र्यंधके लिये अंजन ।

नलिनोत्पलकिंजल्कगैरिकैर्गोशकृद्रसैः ।

गुटिकांजनमेतद्वा दिनरात्र्यंधयोर्हितम् ॥ ९ ॥

रसांजनरसक्षौद्रतालीसस्वर्णगैरिकम् ।

गोशकृद्रससंयुक्तं पित्तोपहतदृष्टये ॥ १० ॥

नलिन ( गुलाबी कमल ) उत्पल ( नीलकमल ), कमल केसर और गेरू इनको गौके गोबरके रसमें पीसकर गोलियां बनाले इनका अंजन करना दिनांध तथा रात्र्यंधके लिये भी हित है ॥ ९ ॥ रसोत तथा आमलके पत्तोंका रस इनमें शहद और तालीसपत्र स्वर्णगेरू इनको गोबरके रसमें खरल करके अंजन करना पित्तोपहतदृष्टि ( दिनांध ) के लिये श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

शीतं सौवीरकं वापि पिष्ट्वाथ रसभावितम् ।

कूर्मपित्तेन मतिर्मान्भावयेद्रौहितेन वा ।

चूर्णांजनमिदं नित्यं प्रयोज्यं पित्तं शांतये ॥ ११ ॥

शीत ( कपूर ) या सौवीर ( सुरमा ) इनको पीसकर रस ( दार्वारस ) की भावना देवे फिर कछुबेके पित्तकी और रोहित मत्स्यके पित्तकी भावना देके चूर्णांजन करले यह पित्तकी शांतिके लिये नित्य अंजन करना चाहिये ११

( श्लो० १० ) अधुना दिवांध्ये वैशेषिकं चूर्णमाह । रसांजनेत्यादि । रस इति नातिपत्ररस इत्यर्थः । आमलकीपत्र इत्यन्ये ( इति नि० सं० ) ।

( श्लो० ११ ) रसभावितं मांसरसभावितम् । केचिद् रसांजनरसभावितं वदन्ति ।

## रतोंधेकी चिकित्सा ।

काश्मरीपुष्पमधुकदावीरोध्ररसांजनैः ।

सक्षौद्रमंजनं तद्वद्धितं नेत्रामये सदा ॥ १२ ॥

स्रोतोर्जं सैधवं कृष्णां रेणुकां चापिपेषयेत् ।

अजमूत्रेण ता वर्तयः क्षणदांध्यांजने हिताः ॥ १३ ॥

खंभारीके पुष्प, मुलेठी, दारुहलदी, लोध, और रसोत इनमें शहद मिलाकर नेत्र रोगोंमें नित्य अंजन करना हित है ॥ १२ ॥ सुरमा, सैधव, पीपल और रेणुका इनको बकरेके मूत्रमें पीसकर बत्ती बनाले, यह राज्यंधके लिये अंजन करना हित है ॥ १३ ॥

कालानुसारिवां कृष्णां नागरं मधुकं तथा ।

तालीसपत्रं क्षणदे गांगेयं च सकृद्रसे ॥ १४ ॥

कृतास्ता वर्तयः पिष्टाश्छायाशुष्काः सुखावहाः ॥ १५ ॥

मनःशिलाभयाव्योषवलाकालानुसारिवाः ।

सफेना वर्तयः पिष्टाश्छागक्षीरसमन्विताः ॥ १६ ॥

गोमूत्रपित्तमदिराशकृद्धात्रीरसैः पचेत् ।

क्षुद्रांजनं रसे चान्यद्यकृतस्त्रैफलेऽपिवा ॥ १७ ॥

गोमूत्राज्यार्णवमलपिप्पलीक्षौद्रकट्फलम् ।

सैधवोपहितं गुंज्यान्निर्हितं वेणुगह्वरे ॥ १८ ॥

कालानुसारिवा, पीपल, सोंठ, मुलेठी, तालीसपत्र, दोनों हलदी, मोथा, और गोबरका रस इनको पीसकर बत्ती बना छायामें सुखाले ये नेत्रोंको सुख देनेवाली हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ मैनशिल, हरडे, त्रिकटु, खरेटी, तगर, और समुद्रफेन इनको बकरीके दूधमें मिला कर बत्ती बनाले तथा गोमूत्र, पित्ता, मद्य इनमें तथा गोबरके रस और आंवलोंके रसमें पकावे इस क्षुद्रांजनको यकृतके रसमें और त्रिफलाके रसमें भी पकावे ॥ १६ ॥ १७ ॥ और गोमूत्र, घृत, समुद्रफेन, पिप्पली, शहद और कायफल इनमें शहद मिलाकर बांसकी नलीमें भरदे फिर इसका अंजन करे ॥ १८ ॥

( श्लो० १३ ) क्षणदा रात्री इति ( श० स्तो० ) ।



मेदोयकृद्घृतं चाजं पिप्पल्यः सैधवं मधु ।

रसमामलकं चापि पक्वं सम्यङ्निधापयेत् ॥

को शे खदिरनिर्माणे तद्वत् क्षुद्रांजनं हितम् ॥ १९ ॥

बकरीकी चरबी और यकृत ( जिगर ) और बकरीका घृत पीपल सैधव शहद आंवलेका रस इनको पकाकर खैरके पात्र ( डिब्बी ) में यथायोग्य रखदे यह भी क्षुद्रांजन हितकारक है ॥ १९ ॥

हरेणुमगधाजास्थिमज्जैला यकृदन्वितम् ।

शकृद्रसेनांजनं वा श्लेष्मोपहतदृष्टये ॥ २० ॥

हरेणुका पिप्पलीके बीजोंकी गिरी इलायची इनमें यकृत ( बकरीका जिगर ) मिलाकर गोबरके रसमें पीसकर कफ विदग्ध दृष्टिके लिये अंजन करे ॥ २० ॥

नक्तांध्य अर्थात् कफविदग्धदृष्टिके अन्ययत्न ।

विपाच्य गोधायकृद्द्वैपातितं सुपूरितं मागधिकाभिरग्निना ।

निषेवितं तत्सकृदंजनेन तु निहन्ति नक्तांध्यमसंशयं खलु २१

तथा यकृच्छागभवं हुताशने विपाच्य सम्यङ्मगधासमन्वितम् ।

प्रयोजितं पूर्ववदार्थसंशयं जयेत्क्षपांध्यं सकृदंजनान्नृणाम् ॥ २२ ॥

ग्रीहां यकृच्चार्प्युपभक्षिते उभे प्रकल्प्य शूलये घृततैलसंयुतम् ।

तेसार्पपस्नेहसमायुतेऽंजनं नक्तांध्यमाश्वेव हतः प्रयोजिते ॥ २३ ॥

गोहके यकृत ( जिगर ) को बीचमेंसे चीरकर उसमें पीपल भर देवे और ( कपड़ मिट्टी करके ) अग्निमें पका लेवे. फिर उन पीपलोंको निकालकर ( शहदसे ) एक वरत अंजन करे यह अवश्य नक्तांध्य ( रतोंधे ) को नष्ट करता है. ( रात्र्यंध कफ विदग्ध दृष्टिकाही दूसरा नाम है ) ॥ २१ ॥ इसी

( श्लो० २१ ) नक्तांध्ये कफविदग्धदृष्ट्यपरपर्याये प्रयोगमाह, विपाच्येति । गोधा यकृद्द्वैपातितं पिप्पलीभिः पूरितं कृत्वा शुचि मृदा लिप्तं अग्निना विपाच्य तत्सकृदंजनेन तथा तदंतः स्विन्ना पिप्पलीमधुनांजनेन निःसंदेहं नक्तांध्यं निहन्तीति ( निबंध संग्रहे ) ।

( श्लो० २२ ) पूर्ववदिति सकृदंजनात् । विधिना प्रयोजितपिप्पली पुनरंजनविधित्वार्थः ।

प्रकार बकरेका जिगर ( पिप्पलीयुक्त करके अग्निमें पकाले और पहल्लेके अनुसार एक वरत अंजन करनेसे मनुष्योंका रतोंधा नष्ट हो जाता है ॥ २२ ॥ अथवा इनके यकृत और ग्रीहा इन दोनोंको घृत और तेलयुक्त करके शूल पर पकाके ( कबाब बनाके ) खानेसे तथा उनमें सरसोंका तेल युक्त करके अंजन करनेसे रतोंधा नष्ट होता है ॥ २३ ॥

### दिवांधका यत्न ।

नदीजशिंबीकटुकान्यथांजनं मनःशिला द्वे च निशे यकृद्रसे ॥

सचंदनेयं गुटिकाथवांजनं प्रशस्यते वै दिवसेष्वपश्यताम् २४ ॥

नदीज ( सैंधव ), शिंबी ( हरीमूंग ), त्रिकटु, सुरमा, मेनसिल, दोनों हलदी और चन्दन इनको यकृत ( छागादिके यकृत ) के रसमें घोट कर गोली बनाले या चूर्णांजन रहने दे यह दिनमें नहीं दीखने वालोंके लिये श्रेष्ठ है ( पित्तविदग्धदृष्टिहीका दूसरा नाम दिवांध है ) ॥ २४ ॥

### छः याप्यदृष्टि रोगों का यत्न ।

भवंति याप्याः खलु ये षडभया हरेदसूक्तेषु शिराविमोक्षणैः ॥

विरेचयेच्चापि पुराणसर्पिषा विरेचनांगोपहितेन सर्वदा ॥ २५ ॥

जो छः दृष्टि रोग याप्य हैं उनमें पहले शिरामोक्षण करके रुधिर निकलवा देना चाहिये और विरेचनीय द्रव्योंसे युक्त पुराने घृतसे विरेचन कराना उचित है ॥

### शोधन ।

पयोभिर्मिश्रं पवनोद्भवे हितं वदन्ति पंचांगुलतैलमेव तु ॥

भवेद्घृतं त्रैफलमेव शोधने विशेषतः शोणितपित्तरेगयोः ॥ २६ ॥

त्रिवृद्धिरेकैः कफजे प्रशस्यते त्रिदोषजे तैलमुंशन्ति तत्कृतम् २७

वायुके याप्य दृष्टि रोगमें किरमालेके तैल में दुग्ध मिलाके उससे शोधन करे ( विरेचन दे ) तथा रुधिरके अथवा पित्तके रोगों में त्रिफलाके घृतसे शोधन करे ॥ २६ ॥ कफके रोगमें निशोथके घृतसे विरेचन करावे और त्रिदोष के रोगमें उसी निशोथसे सिद्ध किये तैलसे विरेचन देवे ॥ २७ ॥

( श्लो० २४ ) दिवांध्ये पित्तविदग्धदृष्ट्यपरपर्यायांजनमाह, नदीजेत्यादि । नदीजं सैंधवम् । शिंबीशब्देनात्र हरितमुद्गश्चक्षुष्यत्वात् । अंजनं सौवीराजनम् । चंदनं रक्तम् । विपाच्यगोधेत्यादिकं योगचतुष्टयं निबंधकारैरस्वीकृतम्, अन्यैश्च सुभाषितत्वात् उपयोगार्हत्वाच्च व्याख्यातम् ( इति नि० सं० )

## तिमिरका यत्न ।

पुराणसर्पिस्तिमिरेषु सर्वतो हितं भवेदायसभाजनस्थितम् ।  
 हितं च विद्यात्रिफलार्घृतं सदा कृतं च यन्मेषविषाणनामभिः २८  
 सदाऽवलिह्यात्रिफलां सुचूर्णितां घृतप्रगाढां तिमिरेथ पित्तजे ।  
 समीरजे तैलयुंतां कफात्मके मधुप्रगाढां विदधीत युक्तिः २९॥

तिमिर रोगके शमन करनेको लोहके पात्रमें रक्खाहुवा पुराना घृत हित कारक है तथा सदा त्रिफलाघृत या काकड़ासींगीसे सिद्धकियाहुवा घृत सेवन करना हित होता है ॥ २८ ॥ यदि पित्तका तिमिर हो तो त्रिफला के चूर्णको घृतसे सानकर चाटना और जो वायुका तिमिर हो तो तैलयुक्त करके और जो कफका हो तो शहदमें सानकर चाटना चाहिये २९॥

गवांशकृत्काथविषकमुत्तमं हितंतु तैलं तिमिरेषु लावणम् ।  
 हितं घृतं केवलमेव पित्तिके ह्यजाविकं यन्मधुरैर्विपाचितम् ॥ ३० ॥  
 तैलं स्थिरादौ मधुरे च यद्गुणे तथाऽणुतैलं पवनासृगुत्थयोः ।  
 सहाश्वगंधातिबलावरीशृतं हितं च नस्ये त्रिवृतं यदीरितम् ।  
 जलोद्भवानूपजमांससंस्कृताद्घृतं विधेयं पर्यसो यदुत्थितम् ॥ ३१ ॥

तिमिर रोगोंमें गौके गोबरके काथसे पकाया हुवा तैल लवण युक्त नस्य लेनेमें हित है ( इस योगको कई कफके तिमिरार्थ कहते हैं ) और पित्तके तिमिरमें भेड या बकरीका घृत मधुर द्रव्योंसे सिद्धकरके केवलनस्य लेना उचित है ॥ ३० ॥ और वायुके तथा रुधिरके तिमिरमें शालपर्णी आदिसे सिद्ध किया हुवा या मधुर द्रव्योंसे सिद्ध किया हुवा तैल तथा अणुतैल नस्य लेनेमें हित है तथा सुद्रपर्णी अश्वगंधा अतिबला शतावरी इनसे सिद्ध किया हुवा घृत नस्यके लिये हित है अथवा त्रिवृत जो वात व्याधिमें कहा है ( घृत वसा मज्जा युत स्नेह ) सो हित है तथा जल जीवोंके मांस और जलकिनारेके जीवोंके मांससे सिद्ध किये हुए दूधमेंसे निकाला हुवा घृत नस्यके लिये श्रेष्ठ है ॥ ३१ ॥

## वाततिमिरका यत्न ।

सर्पैर्वैः क्रव्यभुगेणमांसयोर्हितः सर्पिः समधुः पुटाह्वयः ।  
 वसांश्च गृध्रोरगताम्रचूडजा सदा प्रशस्ता मधुकान्विताजने ३२

प्रत्यञ्जनं स्रोतसि यत्समुत्थितं क्रमाद्रसक्षीरघृतेषु भावितम् ॥  
 स्थितं<sup>३३</sup> दशार्हत्रयमेतदञ्जनं कृष्णोरंगास्ये कुंशसंप्रवेष्टिते ॥३३॥  
 तन्मालतीक्षारकसैधवायुतं सदाञ्जनं स्यात्तिमिरऽथ रागिणि ।  
 सुभावितं वा पयसा दिनत्रयं काचापहं शास्त्रविदः प्रचक्षते ॥३४॥

गिद्धका मांस और हिरणका मांस इनमें सैधव और घृत तथा शहद मिलाकर पुटपाक करले ( इसका विधान अगाड़ी क्रिया कल्पाध्यायमें कहा जावेगा ) तथा गिद्ध सर्प और मुरगा इनकी चरबी मुलेठी मिलाकर ( शहद युक्त कर ) अञ्जन करना ( यह वायुके तिमिरमें हित है ) ॥ ३२ ॥ स्रोतो-जन ( सुरमामें ) क्रमसे मांसरस दूध घृत इनमें भावना देवे फिर काले सर्पके मुखमें भरकर कुशासे लपेटकर ३० दिनतक रहने दे ॥ ३३ ॥ फिर निकालकर चमेलीके पुष्पोंके क्षार और सैधव युक्त करके रक्खे इसे तिमिर तथा नेत्रोंकी सुरखी में प्रत्यञ्जन करे अथवा इसीको तीन दिन दुग्धकी भावना देकर अञ्जन करे तो इससे काचरोग नष्ट होजाता है ऐसे शास्त्रज्ञ वैद्य कहते हैं ॥ ३४ ॥

## पित्त तिमिरका यत्न ।

हविर्हितं क्षीरं भवं तु पैत्तिकं वदन्ति नस्ये मधुरौषधैः कृतम् ।  
 तत्तर्पणे चैवहितं प्रयोजितं सजांगलस्तेषु च यः पुटाह्वयः ॥३५॥  
 रसाञ्जनक्षौद्रसितामनश्शिला क्षुद्राञ्जनं तन्मधुकेन संयुतम् ।  
 समाञ्जनं वा कनकाकरोद्भवं सुचूर्णितं श्रेष्ठमुशन्ति तद्विदः ॥३६॥

पित्तका तिमिर हो तो उसमें दूधसे निकाला घृत मधुर द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ नस्यके लिये कहा है और जो उसे जंगली जीवोंके मांसमें युक्तकर पुटपाक किया जाय तो तर्पणमें हित है ॥ ३५ ॥ रसौत शहद मिश्री मेनशिल इन्हें शहदके संग पीसकर लगावे यह भी क्षुद्राञ्जन है तथा अञ्जन ( सुरमा ) और सुवर्णकी खानसे पैदा हुआ ( खपरिया ) इनको सम लेकर शुद्ध खरलकर अञ्जन करना वैद्योंने श्रेष्ठ कहा है ( इसे समाञ्जन कहते हैं ) ॥ ३६ ॥

( श्लो० ३६० ) कनकाकरोद्भवं तुत्यकं इति डल्लनः । अन्ये तु खर्परकमाहुः ।

भिल्लोटगंधोदकसेकसेवितं प्रत्यंजनं चात्र हितं तु तुत्थकम् ॥

समेषशृंगांजनभागसंमितं जलोद्भवं काचमलं व्यपोहति ॥ ३७॥

पालाशरोहीतमधूकजा रसाः क्षौद्रेण युक्ता मदिराग्र्यमिश्रिताः ॥

उशीरलोध्रत्रिफलाप्रियंगुभिः पचेत्तु नस्यं कफरोगं शांतये ॥ ३८॥

भिल्लोटक ( हिमालय पर्वतके समीप कुहाके आकारका वृक्ष ) एलादि गणके काथमें भिगोकर नीलेथोथेका प्रत्यंजन करना यहां श्रेष्ठ है तथा मेढा-सींगी और अंजन समान भाग लेकर शंखका अंजन करनेसे काचका मैल दूर होजाताहै ( अर्थात् पित्तकाच रोग दूर होजाता है ) ॥ ३७ ॥ ठाक रोहेड़ा और महुवा इनके रसमें शहद और मद्यका ऊपरका भाग मिलावे तथा खस लोध्र त्रिफला और प्रियंगु इनसे पकाकर नस्य करना कफरोगकोभी शांत करता है ॥ ३८ ॥

विडंगपाठाकिणिहीगुदीत्वचः प्रयोजयेद्धूममुशीरसंयुतम् ।

वनस्पतिक्वाथविपाचितं घृतं हितं हरिद्रानलदेपतर्पणे ॥ ३९ ॥

समागंधो माक्षिकसैधवाढ्यः सजांगलः स्यात्पुटपाक एव च ।

मनःशिलात्र्यूषणशंखमाक्षिकैः ससिंधुकासीसरसांजनैः क्रियाः ४०

विडंग पाठा किणिही ( अपामार्ग ) इंगुदी की छाल ( अथवा हिंगोट आर तज ) इनमें खस मिलाकर धूम लेना तथा क्षीर वृक्षोंके काथमें सिद्ध किया घृत जिसमें हलदी और खसका कल्क डाला हुआ हो तर्पणमें हित है ॥ ३९ ॥ पीपल शहद सैधव इनमें जंगली जीवोंका मांस मिलाकर पुटपाक बनाकर सेवन करे तथा मनशिल त्रिकटु शंख और शहद सैधव कसीस और रसौत इनसे रसक्रिया करे ( ये कफतिमिरमें हित हैं ) ॥ ४० ॥

हितं च कासीसरसांजने तथा वदन्ति पथ्ये गुडनागैर्युते ।

तदंजनं वा बहुशो निषेवितं समूत्रवर्गे त्रिफलोदके शृते ४१ ॥

निशाचरास्थिस्थितमेतदंजनं क्षिपेच्च मांसं सलिले स्थिरे

पुनः । मेघस्य पुष्पैर्मधुकेन संयुतं तदंजनं सर्वकृते प्रयो-

जयेत् ॥ ४२ ॥

( श्लो० ३७ ) भिल्लोटकः हिमवदासन्नभूमिजः ककुभानुकारिफलो वृक्षः । गंधा एलादिगणोक्ता । उदकमत्र कषायः । तत्सेकसेवितं भावितं तुत्थकम् ( इति नि० सं० जलोद्भवं पित्तकाचं व्यपोहति अन्ये जलोद्भवं शंसं वदन्ति इति ( नि० सं० )

कसीस रसौत तथा हरड़े गुड़ सोंठ इनसे युक्त मूत्रवर्गमें तथा त्रिफलाके काठेमें सुरमेको कईवार औटाकर ( इसका अंजन करना ) ॥ ४१ ॥ और इसी अंजनको गिद्धकी हड्डीमें भरकर एक महीनेतक ठेरेहुये पानीमें रहने दे फिर मेढासींगीके पुष्प और मुलेठी मिलाकर इसका अंजन सब प्रकारके अथवा सब दोषोंके तिमिरमें उपयोगकरे ॥ ४२ ॥

क्रियाश्च सर्वाः क्षतजोद्भवे हिताः क्रमैः परिम्लायिनि चापि पित्तहृत् ॥  
क्रमो हितः स्थन्दहरः प्रयोजितः समीक्ष्य दोषेषु यथास्वमेव च ॥ ४३ ॥  
दोषोदये नैव च विप्लुति गते द्रव्याणि नस्यादिषु योजयेद्बुधैः ॥  
पुनश्च कल्पेर्जनविस्तरः शुभः प्रवक्ष्यते न्यस्तमपीह योजयेत् ॥ ४४ ॥

सन्निपातका तिमिर हो तो उसमें सब क्रिया ( सब दोषोक्त क्रिया ) करनी चाहिये ( अर्थात् जौनसा दोष प्रबल हो उसीके अनुसार करे ) तथा क्षतजमें जो क्रिया हित है वह करनी चाहिये तथा परिम्लायी रोगमें पित्त नाशक क्रियाभी हित है तथा अभिष्यंदकी क्रिया भी उपयोग करनी हित है दोषोंको देखकर यथोचित उपचार करना हित है ॥ ४३ ॥ तिमिर रोगमें दोषोंके उदय होतेही अथवा फैलतेही नस्यादिकमें औषधोंका उपयोग नहीं करे ( किंतु स्नेह पान रेचनादि खाद्य पेय उपचार करे ) फिर इसके अनंतर क्रियाकल्प अध्यायमें अंजनोंका विस्तार कहेंगे उनका उपयोग करे या अन्य उपचार करे ॥ ४४ ॥

## तिमिरनाशक आहार ।

घृतं पुराणं त्रिफलां शतावरीं पटोलमुद्रामलकं यवानपि ॥  
निषेवमाणस्य नरस्य यत्नतो भयं सुघोरांतिमिरात्रं विद्यते ॥ ४५ ॥  
शतावरीपायस एव केवलस्तथा कृतो वामलकेषु पायसः ।  
प्रभूतसर्पिस्त्रिफलोदकोत्तरो यवौदनो वा तिमिरं व्यपोहाति ॥ ४६ ॥

पुराना घृत त्रिफला शतावरी परवल मूंग आंवले और यव यत्नसे इन वस्तुओंको सेवन करनेवाले मनुष्यको घोर तिमिरसे भय नहीं होता ( अर्थात् ये चीजें खानी चाहियें ) ॥ ४५ ॥ शतावरी की खीर बनाकर

( श्लो० ४३ ) अस्य श्लोकस्योक्तानि आद्यपदानि "क्रियाश्च सर्वाः" एतानि पूर्वेण पूर्वश्लोकोक्तेन "सर्वकृते" इत्यनेन सहान्वेतव्यानि ।



खाना अथवा आंवलोंकी खीर खाना ( कई ऐसा अर्थ करते हैं कि शतावरीसे सिद्ध किये दूधकी खीर खाना या आंवलों से सिद्ध दुग्धकी खीर खाना ) अथवा त्रिफलाके काथमें बनाया हुआ यवका भात खूब घृत युक्त करके खाना यह तिमिरको नष्ट करता है ॥ ४६ ॥

## दृष्टिहितकारक शाक ।

जीवंतिशाकं सुनिषण्णकश्च सतंडुलीयं वरवास्तुकं च ।

चिल्ली तथा मूलकपोतिका च दृष्टेर्हितं शाकुनजांगलं च ॥४७॥

पटोलककौटककारवेल्हवार्ताकुतर्कारिकरीरजानि ।

शाकानि शिवातगलानि चैव हितानि दृष्टेर्घृतसाधितानि ॥४८॥

जीवंती ( डोंडीका शाक ) सुनिषण्णक ( चौपतिया वा सिरयाई ) चौलाई श्रेष्ठ बथुवा चिल्लीका शाक नरममूली इतने शाक तथा लवादि पक्षियोंका तथा जंगलीजीवोंका मांस ये दृष्टिको हितकारक हैं ॥ ४७ ॥ तथा परवल ककोड़े करेले बैंगन अरनी कैरकेपुष्प और फल सेम फलीके शाक आर्तगल ( नीले पुष्पका सहचर ) इतने शाक घृतसे साधन कियेहुए दृष्टिको हित होते हैं ॥ ४८ ॥

## रक्ततिमिरमें शिरामोक्षका निषेध ।

विवर्जयेच्छिरामोक्षं तिमिरे रागमागते ।

यन्त्रेणोत्पीडितो दोषो निहन्यादाशुं दर्शनम् ॥ ४९ ॥

जब तिमिररोगमें लाली आजावे ( नेत्र रक्त हो ) उस अवस्थामें शिरामोक्षण नहीं करना क्योंकि यंत्रसे पीडित हुवा दोष ( रुधिर ) शीघ्रही दृष्टिको नष्ट करदेताहै ॥ ४९ ॥

अरागे तिमिरं साध्यमाद्यं पटलमाश्रितम् ।

कृच्छ्रं द्वितीये रागिस्यात्तृतीये याप्यमुच्यते ॥ ५० ॥

रागप्राप्तेष्वपि हितस्तिमिरेषु तथैव क्रियाः ।

यापनार्थं यथोद्दिष्टाः सेव्याश्चापि जलौकैः ॥ ५१ ॥

प्रथम पटलमें रक्तता रहित जो तिमिर होताहै वह साध्य है और दूसरे पटलमें रक्ततायुक्त कष्टसाध्य है तथा तीसरे पटलमें याप्य होताहै ॥ ५० ॥ रक्तता प्राप्त हुए तिमिरोंमें भी पूर्वोद्दिष्ट क्रिया यापनके अर्थ ( दवे रहनेके



लिये ) करनी हित है तथा रुधिर निकालनेकी आवश्यकता होती है. वहाँ जलौका लगाकर रुधिर निकालना चाहिये ॥ ५१ ॥

## वेध्यकर्मका निर्देश ।

श्लेष्मिके लिङ्गनाशे तु कर्म वक्ष्यामि सिद्धये ।

न चेदद्धेन्दुवर्माबुबिन्दुमुक्ताकृतिः स्थिरः ॥ ५२ ॥

विषमो वा तनुर्मध्ये राजिमान्वा बहुप्रभः ।

दृष्टिस्थो लक्ष्यते दोषः सरुजो वा सुलोहितः ॥ ५३ ॥

स्निग्धस्विन्नस्य तस्याथ कालेनात्युष्णशीतले ।

यन्त्रितस्योपविष्टस्य स्वान्नासां पश्यतः समम् ॥ ५४ ॥

मतिमाञ्छुकृभागौ द्वौ कृष्णान्मुक्त्वा ह्यपांगतः ।

उन्मील्य नयने सम्यक्छिराजालविवर्जिते ॥ ५५ ॥

नाधो नोद्धे च पार्श्वभ्यां छिंद्रे दैवकृते ततः ।

शलाकया प्रयत्नेन विश्वस्तं यववक्रया ॥ ५६ ॥

मध्यप्रदेशिन्यंगुष्ठस्थिरहस्तगृहीतया ।

दक्षिणेन भिषक्संख्यं विध्येत्संख्येन चैतरेत् ॥ ५७ ॥

श्लेष्मिके लिङ्गनाशमें ( अर्थात् कफसे दृष्टिनाश हुई में ) सिद्धिके लिये शस्त्र कर्मको कहते हैं जब दृष्टिमें अर्थात् आंखके बीचके तिलमें आधे चंद्रमा पसीनेकी बूंद मोती इनकी आकृतिका स्थिर चिह्न विषम ( कहीं मोटा कहीं पतला ) अथवा बीचसे पतला धारीदारसा या बहुत टुकड़े टुकड़ेसा पीडा-

( श्लो० ५२ । ५३ ) न चेदद्धेन्दुवर्माबुमुक्ताकृतिरित्यत्र आकृतिशब्दः अद्धेद्वादिभिः प्रत्येकं संबध्यते । अद्धेद्वादिकाकृतिर्न चेत्तदा शस्त्रकर्म कार्यमिति प्रयोजनम् । शस्त्रकर्मात्र शलाकया वेधनमेव ।

( श्लो० ५७ ) भिषगक्षिमुखबाष्पस्विन्नं मीलितमीषदंगुष्ठोदरविमृदिततारकया परि-  
कृतदोषं संख्यंगुष्ठप्रदेशिनीभ्यामुन्मील्य दक्षिणमध्यमाप्रदेशिन्यंगुष्ठैर्निष्कंपं गृहीतया  
शलाकया कृष्णाद्भागद्वयस्यापांगादेकभागस्य च संगमे दृष्टेरार्जवं नात्यूर्ध्वमधो वा  
नेत्रं सजं मतिसंधौ वा विध्येत् । एवमेव दक्षिणांगुष्ठप्रदेशिन्युन्मीलितमितरेण  
( इति वृ० वा० ) ।

युक्त या रक्त वर्णका दोष दिखाई न दे, तब शस्त्रसे वेध्यकर्म करना चाहिये अन्यथा नहीं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

( अर्थात् दोष जलरूप होनेमें वेध्य कर्म ठीक होता है और जब वह गाढ़ा पड़कर आकृतिवाला होजाता है तब वेध्यकर्म ठीक नहीं वहां अन्ययत्न करना ) अब उस शस्त्र कर्मकी विधि कहते हैं कि रोगीको स्नेहनस्वेदनादि यथायोग्य कराकर ऐसे समयमें जब न अधिक गरमी हो न विशेष सरदी हो ( निर्वात प्रकाशयुक्त स्थानमें ) बिठाकर यंत्रित करे और रोगी से कहे कि तू अपने नाककी तरफ समान देखे जा ( इधर उधर आंखें न फेरने दे ) ॥ ५४ ॥ तब शुक्ल भागको और दो भाग कृष्ण मंडलको छोड़कर अपांगकी तरफसे खुले हुए नेत्रमें शिराजालसे रहित न ऊपरको न नीचेको न टेढ़े तरफसे किंतु दैव कृत छिद्रके किनारे पर ( तिलके पास ) यवमुख शलाकासे यत्न पूर्वक रोगीको विश्वास देता हुआ वैद्य मध्यमा प्रदेशिनी और अंगूठेसे नेत्रको स्थिर करके वेधन कर्म करे और यहभी ध्यान रखे कि वाम नेत्रमें दाहने हाथसे और दाहने नेत्रमें बायें हाथसे वेध्य कर्म करना उचित होता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

( वक्तव्य ) यह है कि 'अपांगतः' का प्रयोजन यहां यह है कि, मसूर दल तुल्य दृष्टिके मध्य दैवकृत छिद्रमें अपांगकी तरफ वेध कर्म करे किंतु नासिकाकी तरफ या ऊपर नीचेको कहीं नहीं करे इस लिये दाहने नेत्रमें बायें हाथसे और बायेंमें दाहने हाथसे वेध्य कर्म होनेसे जलका दूषित बिंदु दृष्टि स्थानसे निकलता है अन्यथा नहीं यह अति सूक्ष्म बहुत विचार का स्थल है इसेही आंख बनाना कहते हैं ॥

## सम्यक्विद्धका पश्चात्कर्म ।

वारिबिद्वागमः सम्यग्भवेच्छब्दस्तथा व्यधे ।

संसिच्य विद्धमात्रं तु योपितस्तन्येन कोविदः ॥ ५८ ॥

स्थिरे दोषे चले वापि स्वेदयेदक्षि बाह्यतः ।

सम्यक्छलांकां संस्थाप्य भंगे रनिलनाशनैः ॥ ५९ ॥

वेधन कर्म होने पर जलकी बूंद निकले और कुछ शब्दभी होतो ठीक वेध समझे ( ठीक वेध होनेमें ही ये दोनों बातें होती हैं ) वेध कर्म होतेही स्त्रीके दूधसे चतुर वैद्य सेचन करे ॥ ५८ ॥ दोष स्थिर हो या चल हो नेत्रोंको बाहरसे स्वेदित करना चाहिये फिर शलाकाको रखकर वायु नाशक पत्ते बांध देने चाहियें ॥ ५९ ॥

शलाकाश्रेण तु ततो निर्लिखेद्वृष्टिमंडलम् ।  
 विध्यतो योऽन्यपार्श्वेऽक्ष्णस्तं रुद्ध्वा नासिकापुटम् ।  
 उच्छिद्यनेन हर्तव्यो दृष्टिमंडलजः कफः ॥ ६० ॥

यदि दोष स्थिर हो ( जमा हुआ हो ) तो शलाईके अग्र भागसे दृष्टि मंडल को लेखन करे ( जमे हुए दोषको खुरच दे ) ( और जो दोष चल हो जमा हुआ न हो ) तो जिधरकी दृष्टिमें वेध किया हो उससे दूसरा तरफ के नासा छिद्रको रोककर उस तरफके नासिका छिद्रमें छींक दिलानेकी औषधकी नस्य देकर दृष्टिका कफ ( मल ) हटा देना उचित है ॥ ६० ॥

### सम्यक् लिखितके लक्षण ।

निर्भ्र इव चर्माश्रित्यर्द्धा दृष्टिः प्रकाशते ।

तदाऽसौ लिखिता सम्यक् ज्ञेया या चापि<sup>३</sup> निर्व्यर्था ॥ ६१ ॥

बिना बादलोंके सूर्यके समान जो दृष्टि प्रकाशित होजावे और उसमें कोई व्याधि न रहे तब उसे ठीक लिखित ( अच्छी साफ खुरची गई ) जानिये ॥ ६१ ॥

ततो दृष्टेषु रूपेषु शलाकामाहरेच्छनैः ॥

घृतेनाभ्यज्य नयनं वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् ॥ ६२ ॥

ततो गृहे निराबाधे शयीतोत्तान एव च ॥

उद्गारकासक्षवथुष्ठीवनोज्जृम्भणानि च ॥ ६३ ॥

तात्कालं नाचरेदूर्ध्वं विधिश्च स्नेहपीतवत् ।

त्र्यहात्र्यहाच्च धावेत् कषायैरनिलापहैः ॥ ६४ ॥

वायोर्भयात्र्यहादूर्ध्वं स्वेदयेदक्षि पूर्ववत् ।

दशाहमेवं संयम्यं हितं दृष्टिप्रसादनम् ॥ ६५ ॥

पश्चात्कर्म च सेवेत लघ्वन्नं चापि मात्रया ॥ ६६ ॥

जब सब वस्तुओंका रूप दीखने लग जावे तब धीरे २ शलाकाको हटाले और नेत्रको घृतसे चुपड़कर वस्त्रकी पट्टी बांध देवे ॥ ६२ ॥ और बिना वायु बिना धूप ऐसे स्थानमें सीधा मुलादे और डकार खांसी छींक थूकना जँभाई लेना ऐसे काम तात्कालही नहीं करे ॥ ६३ ॥ इसके उपरांत स्नेह

पियेहुए कीसी विधि करे और तीन तीन दिनमें वायु नाशक कषायोंसे धोता रहे ॥ ६४ ॥ और तीन दिन पीछे वायुके भयसे आंखोंको पहलेकी भांति स्वेदित करे ( सेंके ) दश दिन तक ऐसे नियम रखकर फिर दृष्टिके निर्मल करनेवाले कर्म करे तथा हलका अन्न अल्प भोजन करता रहे ॥ ६५ ॥ ६६

## वेध्यकर्ममेंदूषणऔर उनका यत्न ।

शिराव्यधविधौ पूव नरा ये च विवर्जिताः ।

न तेषां नीलिकां विध्येदन्यत्राभिहिताद्विषकं ॥ ६७ ॥

पूर्यते शोणितेनाक्षि शिरावेधाद्विसर्पता ।

तत्र स्त्रीस्तन्ययष्ट्याद्वपकं सेके हितं घृतम् ॥ ६८ ॥

जिन मनुष्योंकी शिरावेधन करना पहले वर्जित कहागया है उनकी नीलिकाको भी वैद्य नहीं वेधे ( चाहो और कहीं ऐसा कहा भी गयाहो ) ( ऐसा भी अर्थ है कि अभिहित दैवकृत छिद्रसे अन्यत्र नहीं वेधे ) ॥ ६७ ॥ शिरावेधनसे या नेत्रकी शिरा बिंध जानेसे ( या अन्यत्र वेधनसे ) रुंधिर फैलकर नेत्रमें पूयमाण होजाता है यदि दैव योगसे ऐसा हो भी जावे तो स्त्रीका दूध मुलेठी इनसे पकाये हुए घृत का सेक ( सेचन करना हित होताहै ) ॥ ६८ ॥

अपांगासन्नविद्धेतु शोफशूलाश्रुक्तता ।

तत्रोपनाहं भ्रूमध्ये कुर्याच्चोष्णाज्यसेचनम् ॥ ६९ ॥

व्यधेनासन्नकृष्णेन भागः कृष्णश्च पीड्यते ।

तत्राधः । शोधनं सेकः सर्पिषा रक्तमोक्षणम् ॥ ७० ॥

अथाप्युपरि विद्धे तु कष्टा रुक्संप्रवर्तते ।

तत्र कोष्णेन हविषा परिषेकः प्रशस्यते ॥ ७१ ॥

शूलाश्रुरागास्त्वत्यर्थमधोविद्धे भवंति हि ।

विदधीत भिषग्धीमास्तत्र पूर्वचिकित्सितम् ॥ ७२ ॥

रागाश्रुवेदनास्तंभहर्पाश्चातिविघट्टिते ।

स्नेहस्वेदौ हितौ तत्र हितं वाप्यनुवासनम् ॥ ७३ ॥

( श्लो० ६७ ) अभिहितात् दैवकृतच्छिद्रादन्यत्र न विध्येत् । अथवा अन्यत्र अभिहितादन्यत्र कथनादपि न विद्धेत् ।

अपांग ( नेत्रकोण ) के पास बिंध जानेसे शोथ शूल आंसू बहना रक्तता ये उपद्रव होतेहैं ऐसा होनेमें भ्रूमें ( भ्रुकुटीपर ) उपनाह करना और घृतका सेचन करना चाहिये ॥ ६९ ॥ और कृष्णभाग के पास बिंधनेसे कृष्ण भागमें पीडा होती है इसमें विरेचन देना घृतसे सेक करना और रक्तमोक्षण हितहै ॥ ७० ॥ और जो ऊपरको वेध होजावे तो दारुण कष्ट होवे इसमें निवाये घृतसे सेकना श्रेष्ठ है ॥ ७१ ॥ यदि नीचेको वेधा जावे तो शूल आंसूबहना रक्तता अधिक होना ये उपद्रव होते हैं इसमें भी वैद्य पूर्वोक्त निवाये घृतसे सेक करावे ॥ ७२ ॥ और आनि विघटन या अतिलेखनसे रक्तता आंसूबहना पीडा होना स्तंभ हर्ष ( चमक ) ये होते हैं इसमें स्नेहन और अनुवासन हित हैं ॥ ७३ ॥

## नवीनदोषमें वेधनका निषेध ।

दोषस्तथोपकृष्टोपि तरुणः पुनरुद्ध्वगः ।

कुंर्याच्छुक्रारुणं तत्तु तीव्ररुद्धनष्टदर्शनम् ॥ ७४ ॥

मधुरैस्तत्र सिद्धेन घृतेनाक्ष्णोः प्रसेचनम् ।

शिरोवस्ति च तं नव दद्यान्मांसश्च भोजनम् ॥ ७५ ॥

दोषस्तुसंजातबलो घनः संपूर्णमंडलः ।

प्राप्य नश्येच्छलाकाग्रं तन्वभ्रमिवं मारुतम् ॥ ७६ ॥

मूर्द्धाभिघातव्यायामव्यवायवमिमूर्च्छनैः ।

दोषः प्रत्येति कोर्पाच्च विद्धोति तरुणश्च यः ॥ ७७ ॥

जबतक दृष्टिगत दोष पक नहीं जावे ( पुरालिंगनाशको प्राप्त न होजावे ) और कच्चा हो उसे वेधकर्मसे निकाल भी देवे तो भी फिर ऊर्द्धगामी होकर शुक्र रक्तता तीव्र वेदना और अंधापन इतने उपद्रव करदेताहै ॥ ७४ ॥ यदि ऐसा भी होजावे तो मधुर द्रव्यासे सिद्ध किये घृतसे आंखोंको सेचन करे और उसीघृतसे शिरोवस्ति करे और सिग्ध मांसका भोजन करावे ॥ ७५ ॥ जब दोष बलवान् होताहै और घनरूप गाढा होकर सम्पूर्ण दृष्टिमंडलमें होताहै वह शलाकाकी नोकके लगतेही निकलकर नष्ट होजाता है जैसे छोटा बादल पवनसे नष्ट होजाता है ॥ ७६ ॥ और जो तरुण ( नया अथात् कच्चा ) दोष वेधन कियाजावे तो वह शिरपर चोट लगनेसे परिश्रम करनेसे

मैथुन करनेसे वमनसे गिरपड़नेसे ( इत्यादि कारणोंसे ) कुपित होकर फिर होजाताहै ॥ ७७ ॥

## शलाकाके दोष ।

शलाका कर्कशा शूलं खरां दोषपरिप्लुतम् ।

व्रणं विशालं स्थूलाया तीक्ष्णा हिंस्यादनेकधा ॥ ७८ ॥

जलास्त्रावं तु विषमा क्रियासंगमर्थास्थिरा ।

करोति वर्जिता दोषैस्तस्मादेभिर्हिता भवेत् ॥ ७९ ॥

नेत्रमें वेधकर्मकी शलाका यदि कठोर हो तो शूल उत्पन्न करती है और खुरदरीसे दोष छुत होजातेहैं ( अर्थात् और तरफसे झिरने लगते हैं ) मोटी नोककीसे चौड़ा घाव होजाता है और तीक्ष्णसे कई ठौर व्रण होते हैं ॥ ७८ ॥ विषम ( टेढ़ी ) से पानी आने लगता है जो स्थिर न हो तो क्रिया रुक जाती है इस लिये इन दोषोंसे रहित उत्तम सलाई होनी चाहिये ॥ ७९ ॥

## उत्तम शलाका ।

अष्टांगुलायता मध्ये सूत्रेण परिवेष्टिता ।

अंगुष्ठपर्वसमिता वत्क्रयोर्मुकुलाकृति ॥

ताम्रायसी शार्तकौभी शलाका स्यादनिदिता ॥ ८० ॥

आठ अंगुल लंबी बीचमेंसे सूत लिपटी हुई ( अर्थात् तक्की पींदकी तरह बीचमें गोंदके पानीसे सूत लपेट देना चाहिये जिससे हाथमेंसे रिपटे नहीं ) और अंगुठके पोरवे जैसी मोटी होजावे और दोनों नोक वारीक तथा पुष्पकी कलीके आकारकी होनी चाहिये यह सलाई ताँबेकी या लोहेकी या सुवर्णकी होवे तो श्रेष्ठ है ॥ ८० ॥

## वेध दोषसे उपद्रव ।

रागः शोफोऽर्बुदं चोषो बुद्बुदं सूकराक्षिता ।

अधिमंथादयश्चान्ये रोगाः स्युर्व्यधदोषजाः ॥ ८१ ॥

अहिताचारतो वापि यथास्वं तानुपाचरेत् ॥ ८२ ॥

अयोग्य वेधनके दोषसे राग ( रक्तता ) शोथ अर्बुद ( गांठसी ) चोप बुलबुलासा सूकरकीसी लोटी और चिड़पड़ी आंख हो जाना तथा अधिमंथका

( श्लो० ७८ ) कर्कशा शलाका शूलं कुर्यादिति शेषणान्वयः ।

आदि ले अनेक और उपद्रव होजाया करते हैं ॥ ८१ ॥ तथा अयोग्य आहार विहार आदिसेभी अनेक उपद्रव होजाते हैं इनमें जैसे २ उपद्रव हों उनकी यथायोग्य चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८२ ॥

## उपद्रवोंके यत्न ।

रुजायामक्षिरागे वा योगान्धूयो निबोध मे ॥ ८३ ॥

गैरिकं सारिवा दूर्वा यवपिष्टं घृतं पयः ।

सुखालेपः प्रयोज्योयं वेदनारागशांतये ॥ ८४ ॥

मृदुभ्रष्टैस्तिलैर्वापि सिद्धार्थकसमायुतैः ।

मातुलंगरसोपेतैः सुखालेपस्तदर्थकृत् ॥ ८५ ॥

वेदना तथा आंखोंमें रक्तता हो उसके लिये औषधोंके योग फिर श्रवण करो ॥ ८३ ॥ गेरू सारिवा दूब यवकी पिष्टी घृत दूध इन्हें मिलाकर सुहाता निवाया लेप करनेसे वेदना और सुरखी शांत होजाती है ॥ ८४ ॥ अथवा तिलोंको थोड़ा सेककर उनमें सुपेद सरसों मिलाकर बिजोरेके रससे पीसके सुहाता हुवा लेप करनाभी इसी प्रयोजनके लिये है ॥ ८५ ॥

पयस्यासारिवापत्रमंजिष्ठामधुकैरपि ।

अजाक्षीरान्वितैर्लेपः सुखोष्णः पथ्य उच्यते ॥ ८६ ॥

दारुपद्मकशुंठीभिरेवमेष कृतोपि वा ।

द्राक्षामधुकुष्ठैर्वा तद्वत्सैधवसंयुतैः ॥ ८७ ॥

ससैधवैः शृतं क्षीरं रुजारागनिवर्हणम् ॥ ८८ ॥

शतावरीपृथक्पर्णीमुस्तामलकपद्मकैः ।

अजाक्षीरैः शृतं सर्पिर्दाहशूलनिवर्हणम् ॥ ८९ ॥

वातघ्नसिद्धे पयसि सिद्धं सर्पिश्चतुर्गुणे ।

काकोल्यादिप्रतीवापं तद्युज्यात्सर्वकर्मसु ॥ ९० ॥

शाम्यत्येवं न चेच्छूलं स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत् ।

ततः शिरां दहे द्वापि मतिमान्कीर्तितं तथैव ॥ ९१ ॥

( श्लो० ९१ ) दहेद्वा कीर्तितं तथेति भूललाटशंखप्रदेशेषु दहेदिति ( डल्लनः )



क्षीरकाकोली सारिवा ( उत्पलसारिवा ) पत्रज मँजीठ मुलेठी इनको बकरीके दूधमें पीस सुहाता हुवा निवाया लेप करना पथ्यहै ( अर्थात् वेदना और सुरखीमें हित है ) ॥ ८६ ॥ दारुहलदी पद्माख सोंठ इनका लेप करनेसे भी वही गुण होता है अथवा दाख मुलेठी कूट इनमें सैंधव मिलाकर लेप करना भी वही गुण करता है ॥ ८७ ॥ अथवा सैंधव सहित दुग्ध औटाकर लगाना भी वेदना और रक्तताको नष्ट करता है ॥ ८८ ॥ शतावरी पृथक्पर्णी मोथा आँवले पद्माख और बकरीका दूध इनसे पकाया हुवा घृत दाह और शूलको नष्ट करता है ॥ ८९ ॥ तथा वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए चौगुने दूधमें घृत सिद्धकरे और इसमें पकते समय काकोल्यादिगणकी प्रतीवाप देवे ( डाल देवे ) तो यह घृत सब कामोंमें अर्थात् नेत्रके सब उपद्रवोंमें उपयुक्त किया जासकता है ॥ ९० ॥ और यदि इन यत्नोंसे शूलशांत नहीं होतो स्नेहन स्वेदन कराकर रोगीकी शिरामोक्षण करनी चाहिये अथवा जैसे वर्णन किया गया है ( कि भू ललाट शंख इन प्रदेशोंमें ) बुद्धिमान वैद्य अग्निसे दाग देवे ॥ ९१ ॥

दृष्टेरतः प्रसादार्थमंजने शृणु मे शुभे ।

मेषशृंगस्य पुष्पाणि शिरीषध्वयोरपि ॥ ९२ ॥

सुमनार्याश्च पुष्पाणि मुक्तावैडूर्यमेवं च ।

अर्जाक्षीरेण संपिष्यं ताम्रे सप्ताहमावपेत् ॥ ९३ ॥

प्रविधाय च तद्वर्ति योजयेच्चांजने भिषक् ॥ ९४ ॥

स्रोतोर्जं विद्रुमं फेनं सागरस्य मनःशिलाम् ।

मरिचानि च तद्वर्तीः कारयेच्चापि पूर्ववत् ।

दृष्टिस्थैर्यार्थमेतत्तु विदध्यादंजने हितम् ॥ ९५ ॥

श्रीधन्वंतरिजी कहतेहैं कि इसके आगे दृष्टिके प्रसन्न करनेके लिये मुझसे दो अंजन श्रवण करो मेढ़ा सींगीके फूल सिरसके फूल और धौके फूल ॥ ९२ ॥ तथा चमेलीके फूल और मोती पत्रा इन सबको बकरीके दूधमें खूब खरलकरके सात दिन तक तांबेके पात्रमें धर रखवे ॥ ९३ ॥ फिर इसकी वत्तीसी बना लेवे इसे वैद्य अंजनके लिये उपयोग करावें ॥ ९४ ॥ अथवा सुरमा मूंगा समुद्रफेन मेनसिल और ( स्याह मुपेद ) मिरचा इनको पूवाक्त रीतिसे बकरीके दूधमें खरल करके वत्ती बनावे इनको दृष्टि स्थिर करनेके वास्ते अंजन करना हित है ॥ ९५ ॥

भूयो वक्ष्यामि मुख्यानि विस्तरेणांजनानि च ।  
कल्पे नानाप्रकाराणि तान्यपीहं प्रयोजयेत् ॥ ९६ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अगाड़ी क्रियाकल्प नामक अध्यायमें मुख्य २ अंजनोंको हम फिर वर्णन करेंगे वे नाना प्रकारके अंजन भी यहां दृष्टिके स्थिर करनेके लिये उपयोग करने उचित हैं ॥ ९६ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे शालाक्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

## अष्टादशोऽध्यायः १८.

अथातो क्रियाकल्पं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम क्रियाकल्प ( अर्थात् तर्पण आश्व्योतन पुटपाकादि जो पहले कहे गये हैं उनके करनेकी विधि ) का व्याख्यान करते हैं ॥

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञस्तपोदृष्टिरुदारधीः ।

वैश्वामित्रं शशांसार्थं शिष्यं काशिपतिर्मुनिः ॥ १ ॥

तर्पणं पुटपाकश्च सेकश्चाश्व्योतनाञ्जने ।

तत्र तत्रोपदिष्टानि तेषां व्यासं निबोध मे ॥ २ ॥

सब शास्त्रोंके अर्थके तत्त्व जाननेवाले तपोदृष्टि और उदारबुद्धि ऐसे काशीके पति श्रीधन्वंतरिजी मुनि अपने शिष्य विश्वामित्रात्मज सुश्रुतको शिक्षा करते भये ॥ १ ॥ कि, हे वत्स ! तर्पण पुटपाक सेक आश्व्योतन और अंजन जहां तहां कहे हैं अब उन की विधि का विस्तार मुझसे श्रवण करो ॥ २ ॥

## तर्पणकी विधि ।

संशुद्धदेहशिरसो जीर्णोन्नस्य शुभे दिने ।

पूर्वाह्णे चार्पणह्णे वा कार्यमर्क्षणोश्च तर्पणम् ॥ ३ ॥

वातातपरजोहीने वेश्मन्युत्तानशायिनः ।

आधारौ माषचूर्णेन कृत्रेण परिमंडलौ ॥ ४ ॥

समौ दृढावसंवाधौ कर्तव्यौ नेत्रकोशयोः ।

पूरयेद्धृतमण्डस्य विलीनस्य सुखोदकैः ॥ ५ ॥

आपक्षमाग्रात्ततः स्थाप्यं पंच तद्वाक्छतानि च ।

स्वस्थे कफे षट् पित्तेऽष्टौ दश वाते तदुत्तमम् ॥ ६ ॥

वमन रेचनादिसे देह शुद्ध करके और शिरोविरेचनी नस्यादिसे शिरः शुद्ध करके शुभदिनमें भोजनके पचजानेपर पूर्वाह्णमें (दो पहर पहले) या पराह्णमें (दो पहर पीछे) नेत्रोंका तर्पण (अर्थात् तृप्तिकारक विधि) करना चाहिये ॥ ३ ॥ जहां वायु धूप धूल नहीं हों ऐसे स्थानमें रोगीको सीधा मुलाकर उड़दका आटा गूंदकर नेत्रोंके चारों तरफ उसकी बाड़सी बनादे ॥ ४ ॥ वह बाड़ (या डाली) ऐसी बनावे जो सब ठौरसे बराबर हो और उसमें छिद्र आदि न हो फिर गरम जलमें घृतका मण्ड (उपरिभाग) डालकर उससे उन गोलकोंको पलकतक भरदेवे ॥ ५ ॥ और स्वस्थ मनुष्यके नेत्रोंमें तर्पण करना हो तो ५०० मात्राके उच्चारणके समयतक उसे भरा रहने देवे और जो कफकी व्याधिमें तर्पण करे तो ६०० मात्रातक और पित्तकी व्याधिमें ८०० मात्रातक तथा वायुकी व्याधिमें १००० मात्रातक रहनेदे ॥ ६ ॥

रोगस्थानविशेषेण केचित्कालं प्रचक्षते ।

यथाक्रमोपदिष्टेषु त्रीण्येकं पंच सप्त च ॥ ७ ॥

दशदृष्ट्यामथाष्टौ च वाक्छतानि विभावयेत् ।

ततश्चापांगतः स्नेहं स्नावयित्वाक्षि शोधयेत् ॥ ८ ॥

स्विन्नेन यवपिष्टे स्नेहन वीर्यैरितं ततः ।

यथास्वं धूमपानेन कफमस्यै विशोधयेत् ॥ ९ ॥

एकाहं वा त्र्यहं वापि पंचाहं चेप्यते परम् ॥ १० ॥

( श्लो० ५ ) पूरयेद्धृतमण्डस्य विलीनस्य सुखोदकैः इति निदर्शनमात्रं अन्यैर्यथोचितघृतादिभिरपि पूरयेदित्यर्थः । तथाचोक्तं भावप्रकाशे 'पूरयेद्धृतमण्डेन विलीनेन सुखोदकैः । सर्पिणा शतधौतेन क्षीरजेन घृतेन वा' इति । मीलिते उन्मीलिते वा नेत्रे कथं पूरयेदित्याह । 'पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनः' इति ( भा० प्र० )

( श्लो० ७ ) संधिवर्त्मशुक्लकृष्णरोगेषु यथाक्रमं त्रीणि एकं पंच सप्त वाक्छतमेव ।

( श्लो० १० ) एकाहमित्यादि एकाहं न्यूनदोषे त्र्यहं मध्यदोषे पंचाहमधिकदोषे इति जैज्जटः । पंचाहं तु परमित्युत्कृष्टप्रमाणम् ( इति नि० सं० )

कोई कोई आचार्य रोगके स्थानविशेषके भेदसे तर्पणके समयका भेद करते हैं और कहते हैं कि, संधिगत रोगमें तीनसौ मात्रा, वर्त्मगतमें सौमात्रा, शुक्लगतमें पाँचसौ मात्रा और कृष्णगतमें सातसौ मात्रातक यथाक्रम तर्पण करना ॥ ७ ॥ और दृष्टि रोगमें दशसौ मात्रा या आठसौ मात्रा तक तर्पण स्नेह रखना, फिर अपांगकी तरफसे स्नेहको निकाल देना और नेत्रोंको शुद्ध करना ॥ ८ ॥ भुने जौके उबटन ( पिट्टी ) से स्नेहके पराक्रम और चिकनाई के अनुसार शुद्ध करना फिर यथायोग्य धूमपान कराकर नेत्रोंके कफको शोधन करे ॥ ९ ॥ “तर्पण करनेके दिनोंकी अवधि” इस प्रकारसे है कि न्यून दोषमें १ दिन और मध्यम दोषमें ३ दिन और अधिक दोषमें ५ दिन तर्पण करना चाहिये ॥ १० ॥

( वक्तव्य ) पहले पाँचवें श्लोकमें उष्ण जलमें घृत मंडयुक्त करके अक्षि पूरण लिखा है वह निदर्शन मात्रहै किंतु अन्य घृतादिसे पूरित करकेभी तर्पण करना और नेत्र बंद करके स्नेह भरना फिर धीरे २ खोल देना ( उस श्लोककी टिप्पणी देखो )

## सम्यक्तर्पित ।

तर्पणे तृप्तिर्लिंगानि नेत्रस्येर्मानि लक्षयेत् ।

सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं वर्णपाटवम् ।

निर्वृतिव्याधिविध्वंसः क्रियालाघवमेव च ॥ ११ ॥

तर्पण कर्ममें सम्यक् तृप्ति नेत्रमें हुई इन लक्षणोंसे जाननी चाहिये. सुख पूर्वक ठीक निद्रा आना और समयपर जाग उठना, नेत्रोंमें हलकापन उजलापन और वर्ण निर्मल होना ( नेत्रोंमें यथायोग्य वर्ण होना ) क्लेश न होना तथा रोगका नाश हो जाना और खोलने मीचने आदि क्रियाओंमें हलकापन होना ॥ ११ ॥

## अतितर्पित और हीनतर्पित ।

गुर्वाविलमतिस्निग्धमश्रुकण्डूपदेहवत् ।

ज्ञेयं दोषसमुत्क्रिष्टं नेत्रमत्यर्थतर्पितम् ॥ १२ ॥

रूक्षमाविलमस्राव्यमसहं रूपदर्शने ।

व्याधिवृद्धिश्च तज्ज्ञेयं हीनतर्पितमाक्षि च ॥ १३ ॥

यदि नेत्र अत्यंत अधिक तर्पित होजावें तो उनके ये लक्षण हैं भारी हो जावें, मैले, अति चिकने, आँसू, खाज और गीठ बहुत हो तथा दोष उत्केशित होजावे ॥ १२ ॥ जो हीनतर्पित नेत्र रहें अर्थात् अल्प तर्पण हों तो ये लक्षण होते हैं नेत्र रूक्ष रहें, मैले दीखें, रक्तयुक्त हों, और रूप देखनेमें असमर्थ हों ( अर्थात् दिखाई न दे ) और व्याधि घटे नहीं किंतु बढ जावे १३ ॥

## इनका प्रतिकार ।

अनयोर्दोषैर्बाहुल्यात्प्रयतेतं चिकित्सितं ।

धूमनस्यांजनैः सेकैरूक्षैः स्निग्धैश्च योगवित् ॥ १४ ॥

\* इन दोनोंमें जिस दोषकी बहुलता हो उसीके अनुसार रूक्ष तथा स्निग्ध धूम नस्य अंजन सेक आदिसे चिकित्सा करनेमें प्रयत्न करे ( अर्थात् अति तर्पित हो तो रूक्ष और हीन तर्पित हो तो स्निग्ध धूम नस्य अंजन आदिका उपयोग करे ) ॥ १४ ॥

## तर्पणके योग्य रोग ।

ताम्यत्यतिविशुष्कं च यद्रूक्षं चातिदारुणम् ।

शीर्णपक्ष्माविलं जिह्वं रोगक्लिष्टं च यद्रूक्षम् ।

तदक्षिं तर्पणादेव लभेतोर्जामसंशयम् ॥ १५ ॥

जिनको अंधेरीसी आती हो, अत्यंत सूखेसे नेत्र हों रूक्ष हों अत्यंत दारुण ( करड़े पड़गये ) हों, पलकें गिरपड़ी हों, मैले रहते हों, तथा जिह्व ( टेढ़े ) हों ( या रूपादिग्रहणमें जड़ हों ) तथा रोगसे बहुत क्लेशित हों ऐसे नेत्र तर्पणसे बलको प्राप्त होते हैं ( अर्थात् इतने जगह तर्पण कराना योग्य है ) ॥ १५ ॥

## तर्पणमें वर्जित ।

दुर्दिनात्युष्णशतिषु चिंतायां संभ्रमेषु च ।

अशांतोपद्रवे चाक्षिण तर्पणं न प्रशस्यते ॥ १६ ॥

मेघके दिन अतिगर्मी अतिशीतकाल चिंता और भ्रम इनमें तथा उपद्रव शांत न हुवा हो अर्थात् उपद्रवके जोरके समय नेत्रोंमें तर्पण करना श्रेष्ठ नहीं ॥ १६ ॥

( श्लोक १५ ) उर्जा लभेत बलं लभेत ( इति डल्लनः ) ।

( श्लो० १६ ) अशांतोपद्रवे इति । अशांता अस्वल्पभूता उदीर्णवेदनादय उपद्रवा यत्र तस्मिन् ।

## पुटपाकका विषयाविषय ।

पुटपाकस्तथैतेषु नस्यं येषु च गर्हितम् ।

तर्पणार्हा न ये प्रोक्ताः स्नेहपानक्षमाश्च ये ॥ १७ ॥

जिनको तर्पण कराना योग्य है उन्हींको पुटपाकका उपयोग कराना उचित है तथा जिनको नस्य वर्जित है उनको पुटपाकभी वर्जित है जो मनुष्य तर्पणके योग्य नहीं हैं उनको पुटपाकभी नहीं चाहिये तथा जो स्नेह पानके योग्य नहीं हैं ( दुर्बल अरुचि पीडितादि ) वे पुटपाक योग्य भी नहीं ॥ १७ ॥

ततः प्रशान्तिं दोषेषु पुटपाकक्षमेषु च ।

पुटपाकः प्रयोक्तव्यो नेत्रेषु भिषजा भवेत् ॥ १८ ॥

स्नेहनो लेखनीयश्च रोपणीयश्च स त्रिधा ॥ १९ ॥

हितः स्निग्धोतिरूक्षस्य स्निग्धस्यापि च लेखनः ।

दृष्टेर्बलार्थमितरः पित्तासृग्व्रणवार्तनुत् ॥ २० ॥

दोषोंके शांत होनेपर ( मंद पड़नेपर ) पुटपाक योग्य रोगीको नेत्रोंमें वैद्यको पुटपाकका उपयोग कराना चाहिये ॥ १८ ॥ वह पुटपाक तीन प्रकार का होता है एक स्नेहन दूसरा लेखन और तीसरा रोपण ॥ १९ ॥ इनमेंसे स्नेहन पुटपाक तो अतिरूक्षको करना चाहिये और स्निग्धको लेखन पुटपाक करना तथा तीसरा रोपण पुटपाक यह दृष्टिको बल देनेके लिये तथा पित्त रक्त विकार व्रण और वायुनाशक होता है ॥ २० ॥

## स्नेहन लेखन और रोपण पुटपाक ।

स्नेहमांसवसामज्जामेदःस्वादद्रौषधैः कृतः ।

स्नेहनः पुटपाकस्तु धार्यो द्वे वार्वच्छते तु सः ॥ २१ ॥

जाङ्गलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसम्भृतैः ।

कृष्णलोहरजस्ताम्रशंखविद्रुमसिन्धुजैः ॥ २२ ॥

(श्लो० १७) पुटपाकस्तथैतेष्विति एतेषु पूर्वोक्तेषु तर्पणादिषु पुटपाकस्तथार्हति इत्यर्थः । तथा नस्यं येषु गर्हितं तेषु पुटपाकोपि गर्हितः । तथा ये तर्पणार्हा न, चिन्ताभ्रमगृहीतास्ते पुटपाकमपि नार्हन्ति । तथा स्नेहपानाक्षमाश्च ये दुर्बलारोचकिमभृतयः स्नेहपानं न क्षमन्ते ते पुटपाकमपि न क्षमन्ते इत्यर्थः । ( इति नि० सं० )

समुद्रफेनकासीसस्रोतोंजदधिमस्तुभिः ।

लेखनो वाक्छतं तस्य परं धारणमुच्यते ॥ २३ ॥

स्तन्यजाङ्गलमध्वाज्यतिक्तद्रव्यविपाचितः ।

लेखनात्रिगुणो धार्यः पुटपाकस्तु रोपणः ॥ २४ ॥

स्नेहनपुटपाक-स्नेह मधुर द्रव्यों काकोल्यादिसे सिद्ध किया घृत और मांस, चरबी, मज्जा, और मेद इनसे बनाया हुआ स्नेहन पुटपाक होता है इसको दोसौ मात्राके उच्चारण कालतक धारण करना उचित है ॥ २१ ॥ लेखनपुटपाक-जंगली जीवोंका यकृत ( कलेजा ) और मांस उसमें लेखन द्रव्य मिलाकर कृष्णलोह ( पोलाद ) का चूर्ण ताम्र का चूर्ण शंख मूंगा और सैंधानमक ॥ २२ ॥ समुद्रफेन कसीस सुरमा दहीकापानी इनको मिलाकर बनायाहुवा पुटपाक लेखन होता है इसके धारण करनेका समय ज्यादासे ज्यादा सौ मात्राके उच्चारणका समय होता है ॥ २३ ॥ रोपणपुटपाक-स्त्रीका दूध जंगली जीवोंका मांस शहद घृत और तिक्त ( कड़वे ) द्रव्य इनसे बनाया हुआ पुटपाक रोपण होता है इसको लेखनसे तिगुने तीनसौ मात्रा उच्चारणके समयतक धारण करना चाहिये ॥ २४ ॥

वितरेत्तर्पणोक्तं तु धूमं हित्वा तु रोपणम् ।

स्नेहस्वेदौ द्वयोः कार्यौ कार्यौ नैव च रोपणे ॥ २५ ॥

रोपण पुटपाकको छोड़कर शेष दोनोंमें तर्पणोक्त धूमका उपयोग करना उचित है और इन दोनोंमें ही स्नेहन स्वेदन भी करने चाहियें तथा रोपणमें ये कदापि करने योग्य नहीं ॥ २५ ॥

एकाहं वा द्व्यहं वापि त्र्यहं वाप्यवचारणम् ।

यंत्रणां तु क्रियाकालाद्विगुणं कालमिष्यते ॥ २६ ॥

एक दिन दो दिन और तीनदिन पुटपाकका उपयोग करे ( अर्थात् व रोगमें १ दिन, पित्तमें २ दिन, और वायुमें तीन दिन करे तथा ऐसव अर्थ करते हैं कि-लेखन पुटपाक १ दिन, स्नेहन २ दिन, और रोपण ३ दिन, करना चाहिये ) तथा क्रियाकाल ( तर्पण या स्नेहपानसे द्विगुण

( श्लो० २६ ) एकाहमित्यादि । एकाहं श्लेष्मिके द्व्यहं पित्तिके त्र्यहं वातिके । एकाहं लेखनीयस्य द्व्यहं स्नेहनस्य त्र्यहं रोपणीयस्य पुटपाकस्यावचारणम् । द्रवा नि० सं० ) यंत्रणा नियमने रक्षणे वेति ( श० स्तो० )



तक यंत्रणा करना ठीक है यंत्रणाका अर्थ यहां यथोक्त आहार विहार पूर्वक पथ्यादिका है ) ॥ २६ ॥

**पुटपाकमें मिथ्याचार और उसका यत्न ।**

तेजांस्यर्निलमाकांशमादर्शम्भास्वराणि च ।

नेक्षेत तर्पिते नेत्रे पुटपाककृते तथा ॥ २७ ॥

मिथ्योपचारादनयोर्न व्याधिरुपजायते ।

अञ्जनाश्रयोतनस्वेदैर्यथास्वं तमुपाचरेत् ॥ २८ ॥

तर्पण कियेजानेपर तथा पुटपाक उपयोग होनेपर रोगीको चाहिये कि प्रकाशित पदार्थ ( अग्नि दीपक मणि इत्यादि ) को न देखे वायु नेत्रोंमें न लगने दे आकाशकी तरफ न देखे दर्पण न देखे तथा चमकीले पदार्थ काच आदि न देखे ॥ २७ ॥ और यदि इन दोनों ( तर्पण और पुटपाक ) के किये जानेपर मिथ्याचार होजानेसे कोई व्याधि पैदा होजावे तो यथा योग्य अंजन आश्रयोतन स्वेद आदिसे उपचार करे ॥ २८ ॥

**सम्यक् योग अतियोग और हीनयोग ।**

प्रसन्नवर्णं विशदं वातातपसहं लघु ।

सुखस्वप्नावबोध्यक्षि पुटपाकगुणान्वितम् ॥ २९ ॥

अतियोगाद्भुजः शोफः पिडिकास्तिमिरोद्गमः ।

पाकोश्रुहर्षणं चाऽपि हीने दोषोद्गमस्तथा ॥ ३० ॥

यदि ठीक गुणकारी पुटपाकका उपयोग हुवा हो तो उससे नेत्रोंका वर्ण अच्छा हो उज्ज्वलता होवे तथा वायु और धूप आदि सहनेकी शक्ति हो और आंखें हलकी रहें और निद्रा तथा जागना सुखपूर्वक होवे ये लक्षण सम्यक् युक्त पुटपाकके हैं ॥ २९ ॥ यदि पुटपाकका अतियोग हो तो उससे पीड़ा शोथ हो तथा फुन्सियां होजावें और अँधेरी आने लगे ( ये लक्षण अतियोगके हैं ) और यदि पुटपाकका हीनयोग हो तो उससे पाक आंसू बहना हर्ष ( चमक ) तथा दोषोंका उद्गम ये उपद्रव होते हैं ॥ ३० ॥

**पुटपाक साधनकी विधि ।**

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पुटपाकप्रसाधनम् ।

द्रौ बिल्ममात्रौ श्लक्ष्णस्य पिंडौ मांसस्य पेष्ठितौ ॥ ३१ ॥

द्रव्याणां बिल्वमात्रं तु द्रवाणां कुडवो मतः ।  
 तदैकत्र समालोडय पत्रैः सुपरिवेष्टितम् ॥ ३२ ॥  
 काश्मरीकुमुदैरण्डपद्मिनीकदलीभवैः ।  
 मृदावलिप्तमंगारैः स्वादिरैरवकूलयेत् ॥ ३३ ॥  
 कतकाश्मंतकैरंडपाटलावृषबादरैः ।  
 सक्षीरद्रुमकाष्ठैर्वा गोमयैर्वापि युक्तितः ॥ ३४ ॥  
 स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीड्य रसमादाय तं नृणाम् ।  
 तर्पणोक्तेन विधिना यथावदवचारयेत् ॥ ३५ ॥  
 कनीनिके निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ।  
 रक्ते पित्ते च तौ शीतौ कोष्णौ वातकफापहौ ॥ ३६ ॥

इससे अगाड़ी हम पुटपाकके साधन करनेकी विधि कहते हैं मांसको पीसकर पिट्टीसी बनाके बिल्वके बराबर बनावे ॥ ३१ ॥ उनमें जैसा पुटपाक बनाना हो अर्थात् स्नेहन तो उसमें वैसेही द्रव्य १ पल और मांस रस आदि ४ पल डाले इसी भाँति लेखनमें वैसेही लेखनद्रव्य १ पल और द्रव शहद मस्तु त्रिफला का जल ये ४ पल डाले इसी प्रकार रोपणमें रोपण द्रव्य १ पल और द्रव तित्ते कषाय ४ पल डाले इन सबको मिलाकर खंभारी कमोदनी अरंड कमल या केला इनमेंसे जिनके पत्र जहाँ उचित हों उनसे लपेट दे और ऊपर मिट्टी चारोंतरफ लगाकर खैरके अंगारोंमें पकाले ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ अथवा कैथ अश्मंतक अरंड पाटल वासा बेरी तथा दूधवाले वृक्ष पीपल आदि इनकी लकाड़ियोंकी अग्निमें या उपलोंकी अग्निमें युक्तिसे पकाले ( कच्चाभी न रहे और जल न जावे ) ॥ ३४ ॥ ठीक पकजावे तब उसे निकालकर ( मिट्टी पत्ते दूर करके ) उसे निचोड़के रस निकाल लेवे उस रसको तर्पणकी विधिके अनुसार मनुष्योंके ( नेत्रोंमें यथायोग्य उपयुक्त करे ) ॥ ३५ ॥ इस पुटपाकके इसको कनीनिका ( नेत्रकोण ) में सेचन करना चाहिये और सेचनके समय मनुष्यको सीधा सुलाया रखना चाहिये यह पुटपाकका रस तथा तर्पण दोनों रक्त और पित्तमें शीतल उपयुक्त करने और जरा निवाये वायु और कफके शांत करनेवाले होतेहैं ( अर्थात् वायु और कफमें निवाये उपयोग करने चाहिये ) ॥ ३६ ॥

## अतिशीतोष्णके दोष ।

अत्युष्णतीक्ष्णौ सततं दाहपाककरौ स्मृतौ ।

आप्तौ शीतलौ चाश्रुस्तंभरुग्घर्षकारकौ ॥ ३७ ॥

ये पुटपाक और तर्पण यदि अति गरम तथा तीक्ष्ण हों तो निरंतर दाह और पाककारक होते हैं तथा आश्रुत ( मंद ) और अतिशीतल उपयोग किये जावें तो आंसुस्तंभ वेदना और हर्ष इन दोषोंको करनेवाले होते हैं ( इस लिये इन दोषोंसे रहितका उपयोग करना उचित है ) ॥ ३७ ॥

## हीनातिमात्राके दोष ।

अतिमात्रौ कषायत्वसंकोचस्फुरणावहौ ।

हीनप्रमाणौ दोषाणामुत्क्लेशजननौ भृशम् ॥ ३८ ॥

युक्तौ कृतौ दाहशोफरुग्घर्षस्त्रावनाशनौ ।

कंडूपदेहदूषीकारक्तराजिविनाशनौ ॥ ३९ ॥

तस्मात्परिहरन्दोषान्विदध्यात्तौ सुखावहौ ।

व्यापदश्च यथादोषं नस्यधूमांजनैर्जयेत् ॥ ४० ॥

पुटपाक तथा तर्पणकी अतिमात्रा कषायत्व ( नेत्रोंमें रक्तपीतता ) संकोच तथा फरकना पैदा करती है और हीन मात्रा दोषोंको उत्क्लेश करती है अर्थात् दबे हुये दोषोंको उखाड़ देती है ॥ ३८ ॥ और जो ठीक इनकी मात्राका उपयोग कियाजावे तो दाह सोजा वेदना हर्ष स्त्राव इनका तथा खाज गीठ आना और नेत्रदूषिका ( छोटी फुन्सियां ) ( या मैल ) और लाल धारीसी ये सब उपद्रव नष्ट होकर नेत्र निर्मल होजाते हैं ॥ ३९ ॥ इस लिये इन दोषोंको दूर करके इन दोनोंको ठीक सुखकारक बनाना चाहिये और यदि कोई तरहकी व्यापत् ( उपाधि ) होजावे तो उसे दोषोंके अनुसार नस्य धूम अंजन आदिसे शांत करे ॥ ४० ॥

आद्यं तयोश्चाप्यनयोः स्वेद उष्णांबुचैलिकः ।

तथा हितौऽवसाने च धूमः श्लेष्मसमुच्छ्रितौ ॥ ४१ ॥

( श्लो० ३८ ) कषायत्वं कषायवर्णता ।

( श्लो० ४१ ) केषुचित् पुस्तकेषु स्वेद उष्णांबुचैलिकः । इत्यत्र । ' स्वेदमुष्णांबुचैलिकः ' इति पाठो दृश्यते तत्तु लेखनभ्रमादेव जात इति प्रतीयते । निबंधसंग्रहेऽपि "उष्णांबुचैलिकः" इति लिखित्वा उष्णांबु सिकेन कर्पटेन स्वेदः कार्य इति व्याख्यातम् । तस्मादर्धवशादुष्णांबुचैलिक इति पाठो योग्य एव ।

इन दोनों तर्पण और पुटपाकके आदि और अंतमें गरम जलसे कपडा भिगोकर निचोडके उस गरम गरम भीगे वस्त्रसे स्वेद कराना चाहिये और अंतमें कफके नष्ट करनेके लिये धूमका उपयोग करना चाहिये ॥ ४१ ॥

## आश्र्योतन और सेक ।

यथादोषोपयुक्तं तु नातिप्रबलमोजसा ।

रागमाश्र्योतनं हन्ति सेकस्तु बलवर्त्तरम् ॥ ४२ ॥

जो दोष अति प्रबल नहीं हुवा हो उस रागको दोषोंके अनुसार उपयुक्त किया हुवा आश्र्योतन कर्म अपने पराक्रमसे नष्ट करसकता है और जो बढ़कर बलवान् हो गया हो उसको सेक अर्थात् सेचन कर्म नष्ट करता है ॥ ४२ ॥

तौ त्रिधैवोपयुज्येते रोगेषु पुटपाकवत् ।

लेखने सप्त चाष्टौ वा बिंदवः स्नेहिके दश ॥ ४३ ॥

आश्र्योतने प्रयोक्तव्या द्वादशैव तु रोपणे ।

सेकस्य द्विगुणः कालः पुटपाकात्परो मतः ॥ ४४ ॥

अथवा कार्यनिर्वृत्तेरुपयोगो यथाक्रमम् ।

पूर्वापराह्णे मध्याह्णे रुजाकालेषु चोभयोः ॥ ४५ ॥

आश्र्योतन और सेक ये दोनों तीन तीन प्रकारके हैं ( १ लेखन २ स्नेहिक ३ रोपण ) लेखन आश्र्योतनकी सात या आठ बूंद नेत्रमें डालनी चाहिये और स्नेहनकी १० बूंद ॥ ४३ ॥ तथा रोपण आश्र्योतनकी १२ बूंद डालनी और सेक ( सेचन ) का परम समय पुटपाकसे दूना समझना ॥ ४४ ॥ अथवा कार्यकी निर्वृत्तितक उपयोग करना और दोनोंके करनेका समय पूर्वाह्न अपराह्न और मध्याह्न यथा क्रम जानना ( कफजव्याधिमें लेखन पूर्वाह्नमें करना तथा वातजमें स्नेहन अपराह्नमें करना तथा रक्त या पित्तजमें रोपण मध्याह्नमें ) अथवा जिस समय वेदना हो वही दोनोंके करनेका समय समझिये ॥ ४५ ॥

( श्लो० ४३ ) तौ आश्र्योतनसेकौ चतुर्थेहनि गतरोगेऽक्षिण प्रयोक्तव्यौ । अत्र विदेहः—“ प्रागेवाक्ष्यामये कार्यं त्रिरात्रं लघुभोजनम् । उपवासख्यहं वा स्यान्नक्तं वाप्यशनं त्र्यहम् ” ततश्चतुर्थे दिवसे व्याधिं संजातलक्षणम् ॥ समीक्ष्याश्र्योतनैः सेकैः यथास्वमुपपादयेत् । ( इति नि० सं० ) ।

## शिरोवस्ति ।

योगायोगान्स्नेहसेके तर्पणोक्तान्प्रचक्षते ॥ ४६ ॥

रोगाञ्छिरसि संभूतान्हत्वातिप्रबलान्गुणान् ।

करोति शिरसो वस्तिरुक्ता ये मूर्द्धतैलिकाः ॥ ४७ ॥

शुद्धदेहस्य सायान्ने यथा व्याध्यशितस्य तु ।

ऋज्वासीनस्य बध्नीयाद्वस्तिंकोशं ततो दृढम् ॥ ४८ ॥

यथाव्याधिश्चृतस्नेहपूर्णं संयम्य धारयेत् ।

तर्पणोक्तं दशगुणं यथादोषं विधानवित् ॥ ४९ ॥

और स्नेह और सेकमें तर्पणोक्त योगायोग समझने चाहियें ॥ ४६ ॥  
( इससे अगाड़ी शिरोवस्ति कहते हैं ) शिरोवस्ति शिरके प्रबल रोगोंको नष्ट करके गुणोंको करती है जो मूर्द्धतैलिक पहले कहे हैं उन्हींका उपयोग करना चाहिये प्रथम रोगीकी देहको वमन रेचनादिसे शुद्ध करले फिर व्याधिके अनुकूल भोजन करावे और सायंकालमें सीधे बैठे हुवे रोगीको शिरोवस्ति करे वस्तिमें व्याधिके अनुकूल स्नेहभरके उसको मजबूत बांधकर सावधानीसे उपयुक्तकरे ॥ ४७॥४८॥ और इसको तर्पणके कहे दूये समयसे दशगुणे समयतक धारण करना दोषोंके अनुसार विधानज्ञ वैद्यको जानना चाहिये ॥ ४९ ॥

## अंजनोंका निर्देश ।

व्यक्तरूपेषु दोषेषु शुद्धकायस्य केवले ।

नेत्रे एवस्थिते दोषे प्राप्तमंजनमाचरेत् ॥ ५० ॥

लेखनं रोपणं चापि प्रसादनमथापि वा ॥ ५१ ॥

जब दोषका रूप प्रगट होजावे ( पूर्ण रोगका रूप दीख जावे ) और वह दोष केवल नेत्रहीमें स्थित हो तब रोगीका शरीर विरेचनादिसे शुद्ध कराके अंजनका उपचार करना उचित होता है ॥ ५० ॥ अंजनभी प्रायः तीन प्रकारके होते हैं एक लेखन दूसरा रोपण और तीसरा प्रसादन अर्थात् दृष्टिको प्रसन्न करनेवाला ॥ ५१ ॥

## लेखन अंजन ।

तत्र पंचरसान् व्यस्तानाद्यैकरसवर्जितान् ।

पंचधा लेखनं गुंज्याद्यथादोषमतांद्रितः ॥ ५२ ॥

नेत्रवर्त्मशिराकोशस्रोतःशृंगाटकाश्रितम् ।

मुखनासाक्षिभिर्दोषमोजसा स्रावयेत्तु तत् ॥ ५३ ॥

लेखन अंजनमें पांचरस ( एक एक या दो दो करके ) होते हैं जिसमें आद्य का एक रस मधुर नहीं होता है ऐसे पांच प्रकारसे दोषोंके अनुसार सावधान वैद्य लेखनांजनका उपयोग करे ( जैसे वायुके दोषमें अम्ल लवण रसवाले द्रव्योंकी प्रधानतावाला तथा पित्तमें कषाय कफमें कटु तिक्त कषाय रक्तमें पित्तके तुल्य और संसर्ग और सन्निपातमें दो तीन मिलाकर लेखनांजन बनावे ) ॥ ५२ ॥ यह अंजन नेत्र वर्त्म शिराकोश स्रोत और शृंगाटक इन स्थानोंके दोषोंको अपने पराक्रमसे मुख नासिका और नेत्रोंके द्वारा निकाल देता है ॥ ५३ ॥

## रोपण अंजन ।

कषायतिक्तकं चापि स्नेहं रोपणं मतम् ।

तत्स्नेहशैत्याद्वर्ण्य स्याद्वृष्टैश्च बलवर्द्धनम् ॥ ५४ ॥

कसैले और तिक्त ( कड़वे ) द्रव्योंमें स्नेह युक्त करके रोपण अंजन होता है यह स्निग्धता तथा शीतलतासे वर्णकारकभी होता है और दृष्टिके बलको बढ़ाता है ॥ ५४ ॥

## प्रसादन अंजन ।

मधुरं स्नेहसंपन्नमंजनं तु प्रसादनम् ।

दृष्टिदोषप्रसादार्थं स्नेहनार्थं च तद्धितम् ॥ ५५ ॥

मधुर रस प्रधान द्रव्योंमें स्नेहका संयोग करनेसे प्रसादन अंजन होता है; यह दृष्टिके दोषोंको प्रसादके लिये ( अर्थात् दृष्टिगत शुद्ध वात पित्त

( श्लो० ५२ ) आद्यैकरसवर्जितान् । मधुरवर्जितान् पंचरसान् अम्ललवणकटुतिक्त कषायान् । तद्रसद्रव्याणीत्यर्थः । व्यस्तानिति यथादोषम् । एकतो द्वाभ्यां त्रिभिर्वा न तु समस्तान्समाहृत्य कारयेदित्यर्थः । यथादोषं दोषानुसारेण यथा वातेऽम्ललवणरसद्रव्यप्रधानमित्यादि ।

कफादिके प्रसादके लिये ) तथा स्निग्धता करनेके लिये उपयोग करना हितकारक है ॥ ५५ ॥

यथादोषं प्रयोज्यानि तानि दोषविशारदैः ।

अंजनानि यथोक्तानि प्राहसायाह्वरात्रिषु ॥ ५६ ॥

दोषोंके जाननेवाले वैद्य इन अंजनोंको दोषोंके अनुसार उपयोग करें लेखनांजनको प्रातःकाल रोपणको सायाह ( संध्याको ) और प्रसादनको प्रायःरात्रिमें लगावें ॥ ५६ ॥

### अंजनका प्रमाण ।

गुटिकारसचूर्णानि त्रिविधान्यंजनानि तु ।

यथापूर्वं बलं तेषां श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥ ५७ ॥

हरेणुमात्रा वर्तिः स्याल्लेखनस्य प्रमाणतः ।

प्रसादनस्य चाध्यर्द्धा द्विगुणा रोपणस्य च ॥ ५८ ॥

रसांजनस्य मात्रा तु पिष्टवर्तिमिता मता ।

द्वित्रिचतुःशलाकाश्च चूर्णस्याप्यनुपूर्वशः ॥ ५९ ॥

गुटिका ( गोली या बत्ती ) रस ( द्रव्य अंजन ) तथा चूर्ण इस भांति अंजन तीन प्रकारके होतेहैं इनमेंसे पूर्व पूर्व वाले यथाक्रम श्रेष्ठ कहे हैं अर्थात् चूर्णसे उत्कृष्ट रसांजन ( रस क्रिया द्रवांजन ) रसांजनसे उत्कृष्ट गुटिकांजन कहा है ॥ ५७ ॥ लेखन अंजनकी बत्ती या गुटिका प्रमाण हरेणु ( छोटीमटर ) के समान होताहै और प्रसादन अंजनकी बत्ती या गुटी उससे टेढी और रोपणांजन का प्रमाण दो मटरके समान जानना चाहिये यह प्रमाण पिष्टवर्ति अर्थात् बत्ती या गुटिका काहै ॥ ५८ ॥ रसांजन ( द्रव अंजन रसक्रिया अर्थात् गाढी घुली हुई द्रव औषधका अंजन ) की मात्रा इस गुटिकाहीके समान जाननी चाहिये और चूर्णांजनकी मात्रा दो तीन या चार सलाई भरके लगाना अर्थात् लेखन चूर्णकी दो सलाई भर प्रसादनकी तीन सलाई और रोपणकी चार सलाई जाननी ॥ ५९ ॥

( श्लो० ५६ ) प्राहसायाह्वरात्रिष्विति श्लेष्मरोगे पूर्वाह्ने, वातजे सायाह्ने, पित्तजे रात्रौ ( इति ढल्लनः ) तथा चान्ये एवमाहुः लेखनांजनं प्राह्णे, रोपणं सायाह्णे प्रसादनं, रात्रौ ।



तेषां तुल्यगुणान्येवं विदध्याद्भ्रान्तान्यपि ।

सौवर्णं राजतं शार्ङ्गं ताम्रं वैडूर्यकांस्यजम् ॥ ६० ॥

आयसानि च योज्यानि शलाकाश्च यथाक्रमम् ।

वक्रयोर्मुकुलाकारा कलायपरिमण्डला ॥ ६१ ॥

अष्टांगुलातनुर्मध्ये सुकृता साधुनिग्रहा ।

औदुम्बर्यश्मजातापि शारीरी वा हिता भवेत् ॥ ६२ ॥

इन अंजनोंके गुणके अनुसारही इनके रखनेके पात्र ( सुरमादानि डिब्बी आदि) बनवाना चाहिये सुवर्ण चाँदी सींग तांबा वैडूर्य तथा कांसी इनमेंसे जिसके योग्य जैसा पात्र उचित हो वैसा बनावे ॥ ६० ॥ तथा लोहके पात्र बनवावे और सलाईभी यथाक्रम उन्हींके अनुसार बनवाना चाहिये सलाई दोनों किनारोंपरसे फूलकी कलीके आकारकी और छोटी मटर जैसी गोल साफ नोक होनी चाहिये ॥ ६१ ॥ यह आठ अंगुल लंबी और पतली बीचसे अच्छी तरह पकड़ी जाने योग्य चाहिये उपरोक्त सुवर्णादिके सिवाय औदुम्बरी तांबेकी या गूलरकी डालीकी पत्थर ( मृदुपाषाणकी ) तथा शरीरसंबंधी अंगुली या शृंगादिकी बनाई हुईभी श्रेष्ठ होती है ॥ ६२ ॥

## परिशिष्ट ।

भावमिश्र शलाकाके विषयमें इसप्रकारसे लिखतेहैं कि-

ताम्रलोहाश्मसंजाता शलाका लेखने मता ।

सुवर्णरजतोद्भूता स्नेहने समुदाहृता ।

अंगुली च मृदुत्वेन रोपणे संप्रयुज्यते ॥ १ ॥

लेखनांजनके लिये तांबे लोह या पत्थरकी सलाई बनानी चाहिये और स्नेहन ( प्रसादन ) के लिये सुवर्ण या चाँदीकी बनानी और रोपण के लिये मृदुताके कारणसे अंगुलीहीसे रोपणांजन उपयोग करना ॥ १ ॥

( श्लो० ६० ) तेषां तुल्यगुणानीति तेषां अंजनानां तुल्यगुणानि यथा सौवर्णे मधुरं राजते अम्लं शार्ङ्गं मेषशृंगमये लवणं ताम्रे लोहमये वा कषायम्, वैडूर्यं कटुकम्, कांस्ये तिक्तमित्यादि ( इति नि० सं० ) ।

( श्लो० ६१ ) शलाकाश्रेषां भाजनद्रव्यगुणेन समाना यथाक्रमं संपादनीयाः । औदुम्बरी ताम्रमयी । अन्ये उदुम्बरवृक्षशाखाजनिता इत्याहुः । शारीरी शृंगादिना अंगुली च निबन्ध संग्रहेऽत्र तंत्रांतरादिति लिखितम् । “आयसी रोपणे ताम्रा लेख्ये हैमा प्रसादने । श्लेषा अपि यथादोषं प्रयोज्या रसकोविदैः” इति ।

## अंजन लगानेकी विधि ।

वामेनाक्षिं विनिर्भुज्य हस्तेन सुसमाहितः ।

शलाक्या दक्षिणेन क्षिं पेटकानीनमंजनम् ॥ ६३ ॥

अपांग्यं वा यथायोग्यं कुर्याच्चोपि गतागतम् ।

वर्त्मोपले पि वा यत्तदंगुल्यैव प्रयोजयेत् ॥ ६४ ॥

बायें हाथसे आंखको ठीक खोलकर सावधान होकर दाहने हाथमें अंजनकी भरी सलाई लेकर कनीनिकाकी तरफसे अथवा अपांगकी तरफसे यथायोग्य अंजन लगावे और सलाईको इधर उधर फेरकर सर्वत्र अंजन लगजावे ऐसा करे अथवा अंगुलीसे कोयोंके किनारोंपर लगावे अर्थात् जो कोयोंके किनारोंपर लगाने योग्य हो उसे अंगुलीसे वहां लगावे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

अक्षि नांत्यंतयोरंज्याद्बाधमानोपि वा भिषक् ।

न वा निर्वान्तदोषेक्षिण धार्वनं संप्रयोजयेत् ॥ ६५ ॥

दोषः प्रतिनिवृत्तः सन्हन्यादृष्टिर्बलं तथा ।

गतदोषमपेताश्रु पश्य यत्सम्यग्गंभसा ।

प्रक्षाल्याऽक्षिं यथांदोषं कार्यं प्रत्यंजनं ततः ॥ ६६ ॥

नेत्रोंके अंतभाग कनीनिका और अपांग इनमें विशेष अंजन नहीं लगावे ( यहां सलाई ज्यादा नहीं फेरना क्योंकि यहां क्षत न होजावे ) अथवा जिसमें पीडा हो इस प्रकारसेभी वैद्य अंजन नहीं लगावे ( या कोई बाधा होजावे सलाई घुस जावे रोगी हिल जावे इन बातोंका विचार रखे ) और जो अंजन लगाये पीछे पानी गीठ आदि आंखोंमेंसे निकले ( या अंजनसे रड़का वसा हो ) तोभी तत्काल धो नहीं डाले ॥ ६५ ॥ धोनेसे उलटा दोष प्रवृत्त होकर दृष्टिके बलको नष्टकर देताहै इस लिये आये हुये दोषके जल आंसू आदिको पोंछ डाले धोवे नहीं हां अंजन डाले पहले सम्यक् प्रकारसे आंखोंको धोवे और धोनेके पीछे दोषोंके अनुसार फिर अंजन डाले ॥ ६६ ॥

## अंजनका निषेध ।

श्रमोदावर्तरुदितमद्यक्रोधभयज्वरैः ।

वेगाघातशिरोदोषैश्चातानां नेर्ष्यतेजनम् ॥ ६७ ॥

( श्लो० ६५ ) अंतयोः कनीनिकापांगयोः अतिनांज्यादित्यर्थः । बाधमानोऽपि वा बाधकुर्वन्नपि भिषक् नांज्यात् ( इति नि० सं० )

रागरुक्षितमिरास्त्रावशूलसंरंभसंभ्रमान् ।

निद्राक्षयं च कुरुते निषिद्धे युक्तमंजनम् ॥ ६८ ॥

श्रम उदावर्त रोदन मद्य क्रोध भय ज्वर वेगाघात शिरोरोग इनसे पीडित मनुष्योंको अंजन नहीं लगाना चाहिये ॥ ६७ ॥ इन वर्जित मनुष्योंको अंजन लगानेसे नेत्रोंमें लाली वेदना तिमिर स्त्राव शूल संरंभ और संभ्रम तथा निद्रानाश इतने उपद्रव करता है ॥ ६८ ॥

अंजनलगानेमें उपदेश ।

निद्राक्षये क्रियाशक्तिं प्रवाते दृग्बलक्षयम् ।

रजोधूमहते रागस्त्रावाधीमन्थसंभवम् ॥ ६९ ॥

संरंभशूलौ नस्यांते शिरोरुजि शिरोरुजम् ।

शिरस्त्रातेऽतिशीते च रवावनुदितेपिच ॥ ७० ॥

दोषस्थैर्यादपार्थ स्यादोषोत्क्लेशं करोति च ।

अजीर्णैप्येवमेवस्यात्स्रोतोमार्गावरोधनात् ॥ ७१ ॥

दोषवेगोदये दत्तं कुर्यात्तांस्तानुपद्रवान् ।

तस्मान्परिहरन्दोषानंजनं सांधु योजयेत् ॥ ७२ ॥

निद्राक्षय (निद्राभंग हुई) में (अंजन लगाये जानेसे) क्रिया (खोलने मीचनेमें या दर्शन) में अशक्ति होती है (अर्थात् खोलने मीचनेमें भारीपना होजाता है) प्रचंडवायुमें दृष्टिके बलका नाश होताहै तथा धूल धुवां इनसे व्याकुल होनेमें रक्तता आंसू आना तथा अधिमन्थ होजानाभी संभव है ॥ ६९ ॥ तथा नस्यके पीछे तात्काल अंजन लगाये जानेसे संरंभ (शोथ) और शूल होता है शिरकी पीडामें वह पीडा बढती है शिरभिगोकर न्हाये हुंको अथवा अतिशीत अवस्थामें अथवा सूर्य उदय हुये पहले अंजन लगाना दोषोंकी स्थिरता के कारण निरर्थक होता है किंतु उलटा और दोषोंको उखाड़ देता है तथा स्रोतमार्गोंके रुके होनेसे अजीर्णमें भी अंजन लगाना दोषोंको उत्क्लेशित करता है ॥ ७० ॥ ७१ ॥ और दोषोंके वेगके उदय अर्थात् दोषोंके चढावके समय अंजन लगाये जानेसे उन्हींके उपद्रव करताहै (जैसे वातजनेत्र दोषके चढावमें अंजन करनेसे वायुके उपद्रव होते हैं ऐसे ही पित्तके चढावमें पित्तके और कफके चढावमें कफके उपद्रव होते हैं) इस लिये इन दोषोंको बचाकर श्रेष्ठ रीतिसे अंजन का उपयोग करना चाहिये ७२

लेखनस्य विशेषेण काल एष प्रकीर्तितः ।

व्यापदश्च जयेदेताः सेकाश्च्योतनलेपनैः ।

यथास्वं धूमकवलैर्नस्यैश्चापि समुत्थिताः ॥ ७३ ॥

काल इत्यादिक विशेष करके लेखनांजनके लिये कहे हैं ( औरोंमें विशेष इतना विचार नहीं ) और जो कदाचित् कालादिके व्यतिक्रमसे कुछ व्यापद होजावें तो उनको यथायोग्य सेक आश्च्योतन लेप धूम कवल और नस्य इनके उपयोगसे शांत करना उचित है ॥ ७३ ॥

**नेत्रविरेककासम्यक्योगऔर अतियोग हीनयोग ।**

विशदं लघु नास्त्रावि क्रियापटु सुनिर्मलम् ।

संशांतोपद्रवं नेत्रं विरिक्तं सम्यगादिशेत् ॥ ७४ ॥

जिह्वं दारुणदुर्वर्णं स्रस्तं रूक्षमतीव च ।

नेत्रं विरेकातियोगे स्यंदंते चातिमात्रशः ।

तत्र संतर्पणं कार्यं विधानं चानिर्लापहम् ॥ ७५ ॥

अक्षि मंदविरिक्तं स्यादुदग्रतरदोषवत् ।

धूमनस्यांजनैस्तत्र हितं दोषावसेचनम् ॥ ७६ ॥

यदि लेखन अंजनसे नेत्रोंकाठीक विरेचन होगया हो तो उसके ये लक्षण होते हैं नेत्र उज्ज्वल हलके स्त्राव रहित खोलने मीचनेमें पटु और निर्मल होजावें उपद्रव सब शांत होजावें ॥ ७४ ॥ यदि वक्र तथा कठोर वर्ण बिगड़े हुए थके हुएसे और अति रूखे नेत्र होजावें और अत्यंत पानी बहने लगे तो जाने कि लेखनांजनके अतियोगसे नेत्रोंमें अत्यंत अति विरेचन हुआ है ऐसा होजानेमें नेत्रोंमें तर्पण कर्म करना चाहिये तथा वायुनाशक यत्न करना ॥ ७५ ॥ यदि लेखनांजनकी हीन योगतासे नेत्रोंमें मंद विरेचन हो तो उसके ये लक्षण होते हैं कि उनमें दोषोंकी उदग्रता मालूम होवे इसमें धूम नस्य अंजन आदिसे दोषोंको निकाल देना हितकारक है ॥ ७६ ॥

**प्रसादनका योगायोग ।**

स्नेहवर्णवलोपेतं प्रसन्नं दोषवर्जितम् ।

ज्ञेयं प्रसादने सम्यगुपयुक्तेऽक्षि निर्वृत्तम् ॥ ७७ ॥

क्वचिद्धीनविकारं स्यात्तर्पणाद्विकृतादिति ।

तत्र दोषहरं रूक्षं भेषजं शस्यते मृदु ॥ ७८ ॥

यदि प्रसादनांजनका सम्यक् योग हो तो उसके ये लक्षण हैं कि नेत्र स्निग्ध बल और वर्ण युक्त प्रसन्न और दोष ( रोग ) रहित और निर्वृत ( सब क्रियामें समर्थ ) होजावें ॥ ७७ ॥ और इसके हीनयोग तथा अतियोगके विकार तर्पण के हीनातियोगसे कुछ न्यून होते हैं इसमें हीनयोगमें दोषहर और अतियोगमें रूक्ष और मृदु भेषज का उपयोग करना उचित है ॥ ७८ ॥

साधारणमपि ज्ञेयमेवं रोपणलक्षणम् ।

प्रसादनवृद्धाचष्टे तस्मिन्नुक्तेति भेषजम् ॥ ७९ ॥

स्नेहनं रोपणं वापि हीनयुक्तमपार्थक्यम् ।

कर्तव्यं मात्रया तस्मादंजनं सिद्धिमिच्छतां ॥ ८० ॥

पुटपाकक्रियाद्यासु क्रियास्वेकैव कल्पना ।

सहस्रशश्चांजनेषु बीजेनोक्तेन पूजिता ॥ ८१ ॥

रोपणांजनके योगायोग साधारण रीतिसे प्रसादनांजनके समानही जानने चाहियें और उसीके अतियोग आदिके समान ही औषध करनी चाहिये ॥ ७९ ॥ स्नेहन या रोपण अंजनहीन उपयोग किये हुये निरर्थक होते हैं इसलिये सिद्धिकी इच्छावाले वैद्यको मात्रा युक्त प्रमाणसे अंजनोंका उपाय करना चाहिये ॥ ८० ॥ पुटपाकको आदि लेकर जो क्रिया कही उन पुटपाकादिकी प्रायः एकही प्रकारकी कल्पना है और इसी उक्त बीज के अनुसार अंजनोंकी हजारों कल्पना हैं ( अथवा कई ऐसा अर्थ करते हैं कि पुटपाकको आदि लेकर जो क्रिया हैं उनमें एकही कल्पना निदर्शन रूपसे कहीगई है इसी उक्त बीजसे हजारों कल्पना की जासकती हैं और इसी प्रकार अंजनोंकीभी हजारों कल्पना इसी बीजसे करी जासकती हैं ) ( यहां आदि शब्दसे आभ्योतन तर्पण सेकादि सबका ग्रहण है ॥ ८१ ॥

दृष्टेर्बलविवृद्धयर्थं याप्यरोगक्षयाय च ।

राजार्हाण्यंजनाग्याणि निर्वोधैतान्यतः परम् ॥ ८२ ॥

( श्लो० ७८ ) तर्पणाद्विकृतात्सकाशादिति कृते प्रसादांजने किंचिद्धीनविकारं चक्षुः स्यादिति तात्पर्यार्थः । ( इति दल्लनः )

दृष्टिकाबल बढानेके लिये तथा याप्यरोगोंके क्षय करनेके लिये राजाओंके योग्य श्रेष्ठ अंजनोंको यहांसे अगाड़ी श्रवण करो ॥ ८२ ॥

अष्टौ भागानंजनस्य नीलोत्पलसमत्विषः ।

औदुंबरं शातकुंभं राजतं च समासतः ॥ ८३ ॥

एकादशैतान्भागान्स्तु योजयेत्कुशलो भिषक् ।

मूषाक्षितं तदाध्मातमावृतं जातवेदसि ॥ ८४ ॥

खदिराश्मन्तकांगारैः गोशकृद्भिर्रथापि वा ।

गवांशकृद्रसे मूत्रे दधि सर्पिषि माक्षिके ॥ ८५ ॥

तैलमद्यवसामज्जसर्वं गंधोदकेषु च ।

द्राक्षारसेक्षु त्रिफलारसेषु च हिमेषु च ॥ ८६ ॥

सारिवादिकेषाये च केषाये चोत्पलादिके ।

निषेचयेत्पृथक् चैनं ध्मातं ध्मातं पुनः पुनः ॥ ८७ ॥

नीलेकमलकीसी कांतिवाले श्रेष्ठ सुरमेके आठ भाग और तांबा १ भाग सुवर्ण १ भाग चांदी १ भाग लेवे ॥ ८३ ॥ ये सब ग्यारह भाग हुए इन सबको इकट्ठा करके मूसामें रखकर धोकनीसे धमकर लालकर ले ॥ ८४ ॥ इसके तपानेके लिये खैर अश्मन्तकके कोयले या गोबरके अरनेकी अग्नि चाहिये फिर उसे लाल कर करके गोबरका रस गोमूत्र दही घृत शहद ॥ ८५ ॥ तैल और मदिरा चरबी मज्जा सर्व गंधका जल दाखका रस ईखका रस त्रिफलाका रस ठंढा ॥ ८६ ॥ सारिवादिके काथ और उत्पलादिके काथसे जुदे जुदे बुझावे फिर धमाता जावे और बुझाता जावे ॥ ८७ ॥

ततोऽन्तरिक्षे सप्ताहं प्लुतबद्धं स्थितं जले ।

विशोष्य चूर्णयेन्मुक्तां स्फटिकं विद्रुमं तथा ॥ ८८ ॥

कालानुसारिवां चैवं शुचिरावाप्य योगतः ।

एतच्चूर्णाजनं श्रेष्ठं निहितं भाजने शुभे ॥ ८९ ॥

( श्लो० ८८ ) मुक्तामित्यादि । योगतः अल्पमात्रया अन्ये च सौवीरांजनादीनां चतुर्थांशेन मुक्तादिचूर्णं प्राक्षिप्येति व्याख्यानयंतीति ( नि० सं० )

दंतस्फटिकवैडूर्यशंखशैलासनोद्भवे ।

शातकुंभेऽथ शार्ङ्गे वा राजते वा सुसंस्कृते ॥ ९० ॥

सहस्रपाकवत्पूजां कृत्वा राज्ञः प्रयोजयेत् ।

तेनांजितोक्षो नृपतिर्भवेत्सर्वजनप्रियः ।

अधृष्यस्सर्वभूतानां दृष्टिरोगविवर्जितः ॥ ९१ ॥

फिर उस पिंडेको निर्मल वस्त्रमें बांधकर मेघके जलमें सात दिनतक रहने दे फिर सुखाकर खरल करे इसमें मोती स्फटिक ( विल्लोर ) और मूंगा ॥ ८८ ॥ कालानुसारिवा (तगर मूल या पीत चंदन) इनको मिलावे (इसमें इनकी मात्रा कई सुरमेसे चतुर्थांश कहतेहैं) इस प्रकार इसको श्रेष्ठ रीतिसे खूब महीन खरल कराकर उत्तम पात्रमें भरले ॥ ८९ ॥ इसके रखनेको हाथी-दाँत या विल्लोर या वैडूर्य ( जमुरद ) या शंखका पात्र ( सुरमादानी ) बनवानी चाहिये या संगमरमर आदि उत्तम पाषाणकी या बिजैसारकी लकड़ी की या सुवर्ण की या मेषशृंगादिकी अथवा चाँदीकी बनानी ॥ ९० ॥ फिर सहस्रपाक स्नेहके विधानोक्त पूजाकराकर राजाओं अमीरों को इसका उपयोग करावे इसे नेत्रोंमें लगानेसे राजा ( या राजपुरुष या धनी मनुष्य ) सब संसारको प्रिय लगता है और सब भूतों ( प्राणियों ) से दीप्तिमान् ( या यक्षराक्षसादिसे अगम्य ) होता है और सब भांतिके दृष्टि रोगोंसे रहित होजाता है ॥ ९१ ॥

## भद्रोदयांजन ।

कुष्ठं चंदनमेलाश्च पत्रं मधुकमंजनम् ।

मेषशृंगस्य पुष्पाणि चक्रं रत्नानि सप्त च ॥ ९२ ॥

उत्पलस्य बृहत्योश्च पद्मस्यापि च केशरम् ।

नागपुष्पमुशीराणि पिप्पली तुत्थमुत्तमम् ॥ ९३ ॥

कुक्कुटाण्डकपालानि दावीं पथ्यां सरोचनाम् ।

मरिचान्यक्षमज्जानं तुल्यां च गृहगोधिकाम् ॥ ९४ ॥

कृत्वा सूक्ष्मं शुचिंश्चूर्णं न्यसेदभ्यर्च्य पूर्ववत् ।

एतद्भद्रोदयं नाम सदैवार्हति भूमिपः ॥ ९५ ॥



कूट चंदन इलायची पत्रज मुलेठी सुरमा मेढासींगीके फूल तगर साता रत्न(माणिक्य मोती मूंगा वैडूर्य पुष्पराग नीलम और मरकत)और (कई सुवर्ण कोभी रत्नोंमें मानते हैं) ॥ ९२ ॥ नीले कमलकी केसर दोनों कटेलियोंकी केसर गुलाबी कमलकी केसर नागकेशर खस पीपल उत्तम नीलाथोथा ॥ ९३ ॥ मुरगेके अंडेकी सुपेदी दारुहलदी हरीतकी गोरोचन स्याहमिर्च बहेड़ेकी गिरी और इनके बराबरही छिपकली ॥ ९४ ॥ इनको डालकर खूब खरल करावे और अच्छा महीन चूर्ण कराकर पूर्वोक्त पात्रोंमेंसे किसीमें भरले यह भद्रोदय नामक अंजन है राजोंको सदैव लगाने योग्य है ॥ ९५ ॥

### अन्य अञ्जन ।

चक्रं समरिचं चैव मांसी शैलेयमेव च ।

तुल्यांशानि समानैस्तैः समग्रैश्च मनःशिला ॥ ९६ ॥

पत्रस्य भागांश्चत्वारो द्विगुणं सर्वतोऽञ्जनम् ।

तावच्च यष्टीप्रथुकं पूर्ववच्चैतदंजनम् ॥ ९७ ॥

तगर स्याह मिरच जटामांसी शैलेय (शिलारस) इन सबको समान भागले मैनसिल सबके बराबर लेवे ॥ ९६ ॥ पत्रज चार भाग (तगर आदि एकसे चौगुने) और सबसे दुगुणा शुद्ध सुरमा लेवे और उतनीही मुलेठी खूब महीन खरल करावे यह अंजनभी पूर्वके समान श्रेष्ठ है ॥ ९७ ॥

### अन्य अंजन (गुटिका) ।

मनःशिला देवकाष्ठं रजन्यौ त्रिफलोषणम् ।

लाक्षालशुनमंजिष्ठासैधवैलाः समाक्षिकाः ॥ ९८ ॥

रोध्रं सावरकं चूर्णमायसं ताम्रमेव च ।

कालानुसारिवां चैव कुङ्कुटांडदलानि च ॥ ९९ ॥

तुल्यानि पयसा पिष्ट्वा गुटिकां कारयेद्दुधैः ।

कंडूतिमिरशुक्लार्मरक्तराज्युपशान्तये ॥ १०० ॥

मैनसिल देवदारु दोनों हलदी त्रिफला त्रिकटु लाख लहसन मँजीठ सेंधा नमक इलायची सोनामाक्षिक ॥ ९८ ॥ सावर लोध लोहचूर्ण ताम्रका चूर्ण कालानुसारिवा मुरगेके अंडेके छिलके ॥ ९९ ॥ इन सबको समान भाग लेकर स्त्रीके दूधमें घोट बारीक पीसकर गोलीसी बना लेवे इसका अंजन खाज तिमिर शुक्लार्म और लाल रेखा इन सबको शांत करता है ॥ १०० ॥

## अन्यगुटिकांजन ।

कांस्यापमार्जनमसी मधुकं सैधवं नतम् ।

एरण्डमूलं च समं बृहत्यंशद्वयान्वितम् ॥ १०१ ॥

आजेन पयसा पिष्ट्वा ताम्रपात्रं प्रलेपयेत् ।

सप्तकृत्वस्तु ता वत्यैश्छायाशुष्का रुजापहाः ॥ १०२ ॥

काँसीके पात्रके रगड़नेसे जो स्याही पैदा हो वह और मुलेठी सैधव तगर एरण्डकी जड़ इन सबको बराबर ले और इनमेंसे एकसे दूनी बड़ी कटेली मिलावे ॥ १०१ ॥ इनको बकरीके दूधसे पीसकर तांबेके पात्रपर लेप दे इसी प्रकार सात बार बकरीके दूधमें पीस पीसके तांबेके पात्रमें लेप करे और छायामें सुखाकर बटी बनाले इनसे नेत्रकी वेदना नष्ट होवे ॥ १०२ ॥

## अन्यवर्ती ।

पथ्यातुत्थकयष्ट्याह्वैस्तुल्यैर्मरिचषोडशा ।

पथ्यां सर्वाविकारेषु वर्ती शीतांबुपेशिता ॥ १०३ ॥

हरीतकी नीलाथोथा मुलेठी इनको समान भाग लेवे और सोलह भाग मिरच ( स्याहमिरच ) डालकर शीतल पानीसे धोकर बटी बना लेवे यह नेत्रके सब विकारोंमें श्रेष्ठ है ॥ १०३ ॥

रसक्रियाविधानेन यथोक्तविधिकोविदः ।

पिंडांजनानि कुर्वीत यथायोगमंतद्रितः ॥ १०४ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

जहां जहां नेत्रांजनोंके लिये वर्ती ( वत्ती या बटी या गोली ) कही हैं वे यों की यों सूखी नहीं लगाई जाती हैं सूखी फेरने या लगानेसे नेत्रोंमें क्षत-होजानेका भय है इस लिये यथोक्त विधिवेत्ता वैद्य उन पिंडांजनों ( वत्ती गुटी आदि ) को रस क्रिया जैसी द्रव बनालें अर्थात् जल स्तन्यादि जहाँ जो योग्य हो उसमें रगड़कर गाढ़ी द्रव बनालें जो सलाई या अंगुलीसे लगसके फिर सावधान होकर अंजन करे ॥ १०४ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकाया उत्तरतन्त्रेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

( श्लो० १०३ ) मरिचषोडशा मरिचषोडशभागा इत्यर्थः ( इति डल्लनः ) । तनु शुष्कावर्तीरंजनेऽवचार्यमाणा नयने क्षतादि जननी इत्याशङ्क्याह । रसक्रिया विधानेन नातितनु नातिघनं शलाकोपलेपक्षमां कृत्वांजनं कुर्यादिति ( नि० सं० ) ।

## एकोनविंशोऽध्यायः १९.

अथातो नयनाभिघातप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम नेत्रोंमें अभिघात अर्थात् चोट आदि लगजानेसे उत्पन्न हुई वेदना आदिकी चिकित्साका व्याख्यान करतेहैं ॥

अभ्याहते तु नयने बहुधा नराणां संभ्रमार्गतुमुलासु रुजांसु धीमान् । तस्य प्रलेपपरिषेचनतर्पणाद्यमुक्तं पुनः क्षतजपित्तं जशूलपथ्यम् ॥ १ ॥ दृष्टिप्रसादजननं विधिमाशु कुर्यात्सिग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः । स्वेदाग्निधूमभयशोक रुजाभिघातैरभ्याहतामपि तथैव भिषक् चिकित्सेत् ॥ २ ॥

बहुधा मनुष्योंके आंखोंमें चोट आदि लगजानेकी वेदनासे शोथ रक्तता व्याकुलता आदि होते हैं इनमें नस्य लेप सेचन तर्पण इत्यादि उपाय करने उचित हैं और क्षतज ( रक्तके ) अभिमंथ तथा पित्ताधिमंथके अनुसार पथ्य करने चाहियें ॥ १ ॥ और शीघ्रही दृष्टिके प्रसन्न करनेवाली विधि स्निग्ध शीतल मधुरपदार्थोंके यथायोग्य प्रयोगोंसे करनी चाहियें और स्वेद ( पसीने या आंसू ) अग्नि धुवां भय शोक तथा वेदनाके अभिघातसे घातित दृष्टिमें भी वैद्यको इसी प्रकार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २ ॥

सद्यो हते नयन एष विधिस्तदूर्ध्वं स्यंदेरितो भवति दोषमवेक्ष्य कार्यः । अभ्याहतं नयनमीषदथास्य वास्य संस्वेदितं भवति तन्निरुजं क्षणेन ॥ ३ ॥

तात्काल चोट लगेहुए नेत्रोंमें ऊपर कहीहुई विधि करनी चाहियें अथवा दोषोंको देखकर अभिष्यंदोक्त विधि करनी और यदि आंखमें थोड़ीसी चोट लगी होतो उसे मुखकी भाँफसे सेकदेनेसेही तुरन्त आराम होजाता है ॥ ३ ॥

साध्यं क्षतं पटलमेकमुभे तु कृच्छ्रे त्रीणि क्षंतानि पटलानि विवर्जयेत्तु । स्यात्पिच्चितं च नयनं ह्यतिचावसन्नं स्रस्तं च्युतं

( श्लो० १ ) तुमुलासु व्याकुलासु तुमलो व्याकुले ( इति शब्दस्तो० ) । नयने बहुधा अभ्याहते मूर्तानां दंडादीनामभिघाते । क्षतजशूलः रक्ताभिष्यंदः ( इति डल्लनः ) अन्ये रक्ताधिमंथमाहुः ।

( श्लो० ४ ) स्रस्तं शिथिलम् । च्युतं अवलंबितम् ।

च हतदृक् च भवेत्तु याप्यम् ॥ ४ ॥ विस्तीर्णदृष्टितनुरागम  
सत्प्रदर्शिं साध्यं यथास्थितमननाविलदर्शनं च । प्राणोपरोधव  
मनक्ष्वकंठरोधैरुन्नम्यमाशु नयनं यदतिप्रविष्टम् ॥ ५ ॥

एक पटलका घाव या चोट साध्य होता है दो पटलका घाव कष्टसाध्य और  
तीनों पटलोंमें पहुँचा हुआ घाव त्यागने योग्य ( असाध्य ) होता है और जो  
नेत्र पिचक गया हो या जो विशेष भीतरको घुस गया हो या स्तम्भित होगया  
हो या निकलपड़ा हो या जिनकी दृष्टि मारीगई हो ये याप्य होते हैं ( सिद्ध  
हो भी सकें और न भी हों ) ॥ ४ ॥ तथा जिनकी दृष्टि फैलगई हो थोड़ी  
रक्तता हो और मिथ्या दृष्टि होगई हो ( वे भी याप्य ही होते हैं ) और यथा-  
स्थित गोढ रहित तथा दृष्टियुक्त साध्य होते हैं और जो अत्यंत भीतरको  
घुस गया हो उसके उभारनेके लिये ऐसे यत्न करे कि श्वास रोककर नेत्रकी  
तरफ वायुका जोर दें या वमन करावें छाँक दिलावें या कंठको जरा रोकें  
( ऐसा करनेसे भीतरको घुसाहुवा नेत्र गोलक बाहरको आजाता है ) ॥ ५ ॥

नेत्रे<sup>१</sup> विलंबिनि विधिर्विहितः पुरस्तादुच्छिद्धनं शिरसि वार्य-  
वसेचनं च ॥ ६ ॥ षट्सप्ततिर्नयनजां य ईमे प्रदिष्टा रोगा  
भवन्त्यमहतां महतां च तेभ्यः । स्तन्यप्रकोपकफमारुतपि-  
त्तरक्तैर्वालाक्षिर्वर्त्मभव एव कुकूर्णकोऽन्यः ॥ ७ ॥

और जो नेत्रगोलक बाहरको निकल आता है ( लटक पड़ता है ) उस-  
की विधि पहले चिकित्सित स्थानमें कह ही चुके हैं इसके सिवाय उच्छिद्धन  
अर्थात् वायुको जोरसे बाहर निकालना और शिरपर ठंढा पानी डालना ये  
भी करे ॥ ६ ॥ ( कुकूर्णक का वर्णन ) ऊपर जो ७६ प्रकारके नेत्ररोग कहे  
वे तो बालकों जवानों तथा वृद्धों सभीके होते हैं परंतु दुग्धके विकारसे कफ  
वायु पित्त रक्त इनसे बालकोंकी आंखोंके कोरोंमें एक कुकूर्णक रोग हो जाता  
है वह इन ७६ से पृथक् है ॥ ७ ॥

( वक्तव्य ) कुकूर्णकको भाषामें रोहे फूलना कहते हैं यह प्रायः बालकोंके  
तो बहुधा होता है परंतु किसी २ बड़ी अवस्थावालेके भी होना संभव है  
यह अभिप्यंद ही के अंतर्गत भेद है ॥

( श्लो० ५ ) विस्तीर्ण दृष्टिमंडलं तनुरागं च यद् असत् प्रदर्शि स्यात् तदपि  
याप्यमिति ( डल्लनः )

( श्लो० ७ ) स्तन्यप्रकोपजनितैः इत्यस्याग्रे पिशितोच्छ्रयाद्वा इति वा पाठांतरम् ।

## कुकूणकके लक्षण और यत्न ।

मृद्राति नेत्रमतिकंडुमथाक्षिकूटनां साललाटमर्पितेन शिशुः स  
नित्यम् । सूर्यप्रभां न सहते स्रवति प्रवृद्धं तस्याहरेदुधिरमाशु  
विनि लिखेच्च ॥ ८ ॥

जिसके यह रोग होजाता है वह बालक नेत्रोंको बहुत मसलता है और नेत्रोंमें खाज बहुत होती है तथा नाक और शिरमेंभी खाजसी होती है जिससे बालक उन्हें रगड़ता है और सूर्यकी चमक ( रोशनी ) नहीं सुहाती और पानी गीठ बहाकरते हैं इस रोगके बढनेपर जोंक आदिसे रुधिर निकलवाना या उन कुकूणकोंको शीघ्र खुरच देना ( किसी लेखन अञ्जन या गोजी पत्रादिसे उन रोहोंको जरा रगड़ देना जिससे वहांका बढा और दूषित रक्त निकल जावे ) ॥ ८ ॥

क्षौद्रायुतैश्च कटुभिः प्रतिसारयेत्तु मातुः शिशोरभिहितं च  
विधिं विदध्यात् । तं वार्मयेत्तु मधुसैधवसंप्रयुक्तैः पीतं पयः  
खलुं फलैः खरमंजरीणाम् ॥ ९ ॥ स्यात्पिप्पलीलवणमाक्षेक-  
संयुतैर्वा नैनं वमंतमपि वामयितुं यतेत । दत्त्वा वचामशनदु-  
ग्धभुजे प्रयोज्यमूर्द्धं ततः फलयुतं वर्मनं विधिज्ञैः ॥ १० ॥

लेखनके पीछे शहद और त्रिकटु मिलाकर रगड़ देवे और बालक तथा उसकी माताको हितकारक आहार विहारादिकी विधि करावे तथा बालकको शहदमें सैधानमक मिलाकर इसमें आंगेके बीज मिलाकर दूधके संग पिलाकर वमन करावे ॥ ९ ॥ अथवा पीपल शहद सैधव इनके योगके दुग्धसे वमन करावे और यदि इनसे वमन नहीं हो तो वचको भोजन या दूधमें मिलाकर देवे परंतु यह उस समय करे जब बालक दूधभी पीताहो और अन्नभी खाता हो और इससे भी बड़ी अवस्था हो तो मैनफल युक्त करके विधिज्ञ वैद्य वमन करावे ॥ १० ॥

जंब्वाम्रधात्र्यणुदलैः परिधावनार्थं कार्यं कषायमवसेचनमेव  
चापि । आश्रयोतने च हितमत्र घृतं गुडूचीसिद्धं तथाहुरपि  
च त्रिफलाविपक्वम् ॥ ११ ॥

इसके धोनेके लिये जामुन आंब और आंवलेके कोमल पत्तोंका काथ

करना चाहिये और इसीसे परिषेचन करना चाहिये ( इसमें अणु शब्दका अर्थ कई अश्मंतक करते हैं ) और आभ्योतनके लिये गिलोय अथवा त्रिफलासे सिद्ध किया हुआ घृत श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥

## कुकूणक रोगमें अंजनोंका विधान ।

नेपालजामरिचशंखरसांजनानि सिंधुप्रसूतगुडमाक्षिकसंयु-  
तानि । स्यादंजनं मधुरसामधुताम्रकैर्वा कृष्णायसं घृतपयो-  
मधु वापि दग्धम् ॥ १२ ॥ व्योषं पलांडु मधुकं लवणोत्तमं  
च लाक्षां च गैरिकयुतां गुटिकांजनं वा । निम्बच्छदं मधुक-  
दार्पिसताम्रलोध्रमिच्छंति चात्रं भिषजोऽननमंशतुल्यम् ॥ १३ ॥  
स्रोतोऽजशंखदधिसैधवंमर्द्धपक्षं शुक्रं शिशोर्नुदति भावितमंज-  
नेन । स्यंदे कर्फादभिहितं क्रममाचरेच्च बालस्य रोगकुशलोऽ-  
क्षिगंदं जिघांसुः ॥ १४ ॥

मैनसिल मिरच शंख रसौत सैधनामक गुड और शहद इन सबको महीन पीसकर अंजन करे अथवा मूर्वा शहद और तांबेका चूर्ण इनका अंजन बनाकर लगावे अथवा लोहेका चूर्ण घृत दूध और शहद इनको इकट्ठाकरके जलालेवे और इसका चूर्ण महीन पीस अंजन करे ॥ १२ ॥ अथवा त्रिकटु प्याज मुलेठी सैधव लाख गेरू इनको इकट्ठाकर महीन पीसके वटी बनाले और अंजन करे अथवा नींबकी कांपल मुलेठी दारुहलदी तांबेका चूर्ण और लोथ इन सबको बराबर लेकर महीन खरल करके वटी बनालेवे और नेत्रोंमें अंजन करे ॥ १३ ॥ अथवा सुरमा शंख दही सैधानमक इनको आधेपक्ष ( सातदिन ) लगानेसे बालकका फूला कटजाता है ( इसकी क्रिया निबंधसंग्रहमें वृद्ध वैद्योपदेशसे यों लिखी है कि गोदधिमें शंख और सैधानमक रगड़कर रसौत मिलाकर अंजन करना ) तथा कर्फके अभिष्यंदमें जो क्रिया कही है उनको भी बालरोग जाननेवाले वैद्य बालकोंके इस नेत्ररोगके नष्ट करनेको उप-योगकरें ॥ १४ ॥

( वक्तव्य ) अंजनोंमें जहांतहां मिरच का योग लिखा वहां सब जगह पर स्याहमिर्च या सुपेद हों उन्हींका ग्रहण करना चाहिये ॥

( वक्तव्य दूसरा ) यह है कि इस रोग कुकूणक ( रोहे फूलने ) में चाकस का अंजन बहुतही गुण करता है हमारा सैकड़ों बारका अनुभव किया हुआ है ॥

समुद्रं इव गंभीरं नैव शक्यं चिकित्सितुम् ।  
 वक्तुं निर्वशेषेण श्लोकानामयुतैरपि ॥ १५ ॥  
 सहस्रैरपि च प्रोक्तमर्थमल्पमतिनरैः ।  
 तर्कग्रन्थार्थरहितो नैव गृह्णात्यपंडितः ॥ १६ ॥  
 तदिदं बहुगूढार्थं चिकित्साबीजमीरितम् ।  
 कुशलेनाभिपन्नं तद्बहुधाभिप्ररोहति ॥ १७ ॥  
 तस्मान्मतिमतां नित्यं नानाशास्त्रार्थदर्शिना ।  
 सर्वमूढमगार्थार्थं शास्त्रमार्गमबुद्धिना ॥ १८ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे शालाक्ये एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

यह चिकित्सा शास्त्र ( विशेषकर नेत्रचिकित्सा का विधान ) समुद्र की भाँति गंभीर ( अगाध ) है. दश हजार श्लोकोंकरके भी निःशेष वर्णन नहीं किया जासकता है ॥ १५ ॥ और हजारों बार इसके अर्थ कहेजाने पर भी अल्पबुद्धिवाले तर्क और शास्त्र के अथास अनभिज्ञ मूख मनुष्य नहीं समझ सकते ॥ १६ ॥ सो वह बहुत गूढार्थवाला चिकित्साका बीजरूप थोड़ासा आशय यहां वर्णन किया गया है चतुर वैद्यों के पास प्राप्त होकर यही अनेक प्रकारसे वृद्धि करसकता है ॥ १७ ॥ इसी लिये बुद्धिमान् शास्त्रार्थके जाननेवाले आगमबुद्धिवाले वैद्योंको यह अगाधार्थवाला शास्त्र सर्वतोभावसे ज्ञेय और गम्य होता है ॥ १८ ॥

## परिशिष्ट ।

दृष्टि रक्षार्थं साधारण उपयोगः वृद्ध वाग्भटात् ॥

अविधारितवेगस्य भजतोऽंजननावनम् ।

त्यजतः क्रोधशोकौ च तिमिरं नाश्नुते नरम् ॥ १ ॥

वेगोंके नहीं रोकनेवाले अंजन और नस्य का यथायोग्य अभ्यास रखने वाले और क्रोध व शोक इनको त्यागनेवाले मनुष्योंको तिमिर नहीं व्याप्त होता अर्थात् उनकी दृष्टि स्थिर और निरोगी रहती है ॥ १ ॥

त्रिफलामश्रतो रात्रौ संस्कृतं पिबतो घृतम् ।

भुक्त्वा वा पिबतस्तोयं तिमिरं लघु शाम्यति ॥ २ ॥



रातको त्रिफला खानेसे त्रिफला या और चक्षुष्य औषधोंसे संस्कार किये घृत पीनेसे ( या वैसेही ताजा घृत पीनेसे ) तथा भोजनके अंतमें थोड़ासा पानी पीनेका अभ्यास रखनेसे हलका तिमिर हो तो वहभी नष्ट होजावे ( और तिमिर होवे भी नहीं ) ॥ २ ॥

चक्षूरक्षायां सर्वकालं मनुष्यैर्यत्नः कर्तव्यो जीविते यावदिच्छा ।

व्यर्थो लोकोयं तुल्यरात्रिदिवानां पुंसामंधानां विद्यमानेषु वित्ते ३

मनुष्योंको जबतक जीव है तबतक सदा सर्वदा नेत्रोंकी रक्षाके लिये यत्न करते रहना चाहिये. क्योंकि, अंधे होजानेपर दिनरात्र बराबर है उनको द्रव्य होनेपर भी सब संसार वृथा और दुःखरूप है ॥ ३ ॥

त्रिफला रुधिरस्रुतिर्विशुद्धिमनसो निर्वृतिरंजनं च नस्यम् ।

शयनासनता सपादपूजा घृतपानं च सदैव नेत्ररक्षा ॥ ४ ॥

त्रिफलाका सेवन-शिरामोक्षादिद्वारा दुष्ट रुधिर निकलवाना और वमन रेचनादिसे शरीरकी शुद्धि रखना तथा मनको जियादह उपाधियोंसे निवृत्त रखना कोई उत्तम अंजन आदिका अभ्यास रखना इसी भाँति कभी २ नस्य लेते रहना और सोने जागनेका यथायोग्य व्यवहार रखना ( अर्थात् न जियादह सोते या पड़े ही रहना और न विशेष जागरण ही करना तथा पावोंको सदा निर्मल और स्निग्ध रखना और उपानह आदि पहरे रहना नंगे न फिरना और बने तो नित्य नहीं तो कभी २ घृत पान करना इतने बरताव रखनेसे सदैव नेत्रोंकी रक्षा रहतीहै ) ॥ ४ ॥

इति नेत्ररोगाधिकारः ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतंत्रे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

## विंशतितमोऽध्यायः २०.

अथातः कर्णगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम कर्णगतरोग विज्ञान ( कानमें होनेवाले रोगोंके विज्ञान ) के विषयमें अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

कर्ण रोगोंकी संख्या और उनके नाम ।

कर्णशूलं प्रणादश्च वाधिर्यं क्ष्वेड एव च ।

कर्णस्त्रावः कर्णकंडूः कर्णगूथस्तथैवच ॥ १ ॥

कृमिकर्णः प्रतीनाहो विद्रधिर्द्विविधस्तथा ।

कर्णपाकः पूतिकर्णस्तथैवार्शश्चतुर्विधम् ॥ २ ॥

तथार्बुदं सप्तविधं शोफश्चापि चतुर्विधः ।

एते कर्णगता रोगा अष्टाविंशतिरीरिताः ॥ ३ ॥

कर्णशूल प्रणाद बाधिर्य ( बहरा होजाना ) कर्णक्ष्वेड कर्णस्त्राव कर्णकंडू कर्णगूथ ॥ १ ॥ कृमिकर्ण प्रतीनाह और दो प्रकारकी कर्णविद्रधि कर्णपाक ( कान पकजाना ) पूतिकर्ण ( कानमें दुग्ध होना ) और चार प्रकारका कर्णार्श ॥ २ ॥ और सात प्रकारका कर्णार्बुद और चार प्रकारका कर्णशोथ इसप्रकारसे कानमें होनेवाले ये २८ रोग हैं ॥ ३ ॥

### कर्णशूल लक्षण ।

समीरणः श्रोत्रगतोन्यथाचरः समंततः शूलमंतीव कर्णयोः ।

करोति दोषैश्च यथा स्वर्मावृतः संकर्णशूलः कथितो दुराचरः ॥ ४ ॥

जब वायु दूषित विमार्गगामी होकर कर्णगत होता है तब कानोंमें तथा उनके आसपासमें अति दारुण शूल पैदा करता है और यदि वह वायु अन्य दोषों ( पित्त कफ रक्त ) से मिश्रित होकर शूलकारक होवे तो वह शूल दुःसाध्य होता है ( ऐसे वैद्योंने कहा है ) ॥ ४ ॥

### कर्णनाद आर बाधिर्यके लक्षण ।

यदा तु नाडीषु विमार्गमागतः स एव शब्दाभिर्वहासु तिष्ठति ।

शृणोति शब्दान्विविधोऽस्तदा नरः प्रणादमेनं कथयन्ति चामर्यम् ५

स एव शब्दाभिर्वहा यदा शिराः कफानुयातो व्यनुसृत्य तिष्ठति ।

तदा नरस्याप्रतिकारसेविनो भवेत्तु बाधिर्यमसंशयं खलु ॥ ६ ॥

और यदि प्रतिलोम मार्गसे गमन करता हुआ वायु शब्दवाहिनी नाडियोंमें प्राप्त होकर वहां स्थित होजावे तो उससे मनुष्यकी अनेक प्रकारके शब्द सुनाई देते हैं इस रोगको “प्रणाद” या “कर्णनाद” कहते हैं ॥ ५ ॥ ( यूनानी हकीम इसे तनीन कहते हैं ) ॥

( श्लो० ४ ) अन्यथाचरः विमार्गगः ( इतिङलनः ) भावमिश्रस्तु अन्यथाचरन् इति पाठांतरमाह अन्यथाचरन्समंततः प्रतिलोमं चरन्नित्यस्यार्थमाह । दोषैः कफपित्तरक्तैः दुराचरः दुरुपचारः ।

और यदि वह दूषित वायु कफ को लेकर शब्दवाहिनी शिराओंमें प्राप्त होवे और वहां जाकर स्थिर हो और इस अवस्थामें मनुष्य प्रतिकार नहीं करे, ( किंतु अप्रतिकारक सेवन करे ) तो उससे अवश्य वह बहरापन होजाता है इसे “बाधिर्य” कहते हैं ॥ ६ ॥

## कर्णक्ष्वेड और कर्णस्त्राव ।

श्रमात्क्षयाद्रूक्षकषायभोजनात्समीरणं शब्दपथे व्यवस्थितः ।

विरिक्तशीर्षस्य च शीतसेविनः करोति हि क्ष्वेडमतीव कर्णयोः ७

शिरोभिर्वातादथवा निमज्जतो जले प्रपांकादथवापि विद्रव्येः ।

स्त्रवेत्तु पूयं श्रवणोऽनिलावृतः स कर्णसंस्त्राव ईति प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥

श्रम करने से धातु क्षयसे रूखे और कसैले भोजन करने से तथा शिरो-विरेचन किये पर शीतल आहार विहार करनेसे वायु शब्दके मार्गमें व्याप्त होजाता है और कानोंमें अत्यन्त क्ष्वेड ( अर्थात् शब्द ) करता है ( कर्णनाद में और इसमें यह अंतर है कि, कर्णनादमें अनेक प्रकारके शब्द सुनाई देवें और इसमें एक प्रकारका बांसुरीकासा शब्द होता है ) ॥ ७ ॥ शिरमें चोट लगनेसे अथवा जलमें डुबकी खानेसे अथवा कानके भीतर पकजाने से अथवा फुन्सी होजानेसे वायुसे व्याप्त होकर कानसे पीप बहता रहता है इसे “कर्णस्त्राव” कहते हैं ॥ ८ ॥

## कर्णकंडू कर्णगूथ और प्रतिनाह ।

कफेन कंडूः प्रचितेन कर्णयोर्भृशं भवेत्स्रोतसि कर्णसंज्ञिते ।

विशोषि ते श्लेष्मणि पित्ततेजसा नृणां भवेत्स्रोतसि कर्णगूथकः ९ ॥

यदि कानोंमें दुष्ट कफ संचित होकर उससे कानोंमें बहुत खाज होवे तो उसे “कर्णकंडू” कहते हैं और यदि पित्तके तेजसे कानमें कफ शुष्क होजावे तो उससे मनुष्योंके कानमें “कर्णगूथ” रोग होजाता है ( इससे कानमें गूथनसी होती है ) ॥ ९ ॥

( श्लो० ७ ) क्ष्वेड क्ष्वेड शब्दे इत्यस्माद्धातोः क्ष्वेडः शब्दविशेषः ध्वना इति श० स्तो० । अत्र निबन्धसंग्रहे विदेहवचनं क्ष्वेडनं वेणुघोषवत् इति । भावमिश्रस्तु अत्रेत्याह “ वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषसमं घनम् । करोति कर्णयोः क्ष्वेडं कर्णक्ष्वेडः स उच्यते ” इति ।

( श्लो० ९ ) प्रचितेन संचितेन । गूथकः गुंफाकारः ।

स कर्णगूथो द्रवतां यदा गतो<sup>१</sup> विलयितो घ्राणमुखं प्रपद्यते ॥  
तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोऽभिर्तापनः ॥ १० ॥

और यदि वह कणगूथ ( शुष्क कफकी गूथन ) द्रवताको प्राप्त होजावे और पिंघलकर नासिका तथा मुखकी तरफ प्राप्तहो ( बहने लगे ) तो इसको “प्रतिनाह” कहते हैं और इस विकारसे शिरमें वेदनाभी होती है ॥ १० ॥

### कृमिकर्ण और कर्णविद्रधि ।

यदा तु मूर्च्छत्यथवापि जंतवः सृजंत्यपत्यान्यपि वापि<sup>१</sup> मक्षि-  
काः ॥ यदंजनत्वाच्छ्रवणो निरुद्धते भिषग्भिर्वाद्यैः कृमिकर्णक-  
स्तु सः ॥ ११ ॥ क्षताभिवातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दोष-  
कृतोऽपरः पुनः ॥ स रक्तपीतारुणमस्रमास्रवेत्प्रतोदधूमायन-  
दाहचोषवान् ॥ १२ ॥

यदि कानमें जीव पड़जावे अथवा मक्खियां कानमें ( घाव युक्त कानमें ) घुसकर अंडे देदेवे ( जिनसे कृमि पैदा होजाते हैं और बढनेपर मक्षिकासे होकर निकलते मालूम पड़ते हैं ) उन कृमियोंके अंजनत्व ( प्रकटी भाव ) से कर्ण रुक जाता है आद्य वैद्य इसे “कृमिकर्ण” रोग कहते हैं ( निरुद्धते, के स्थानमें निरुच्यते ऐसा भी पाठांतर है उसका अर्थ है कि आद्यवैद्य कृमिकर्ण कहते हैं ) ॥ ११ ॥ कर्णविद्रधि अर्थात् कानमें फुन्सी होना यह यहाँ दो तरहसे होता है एक तो कानमें चोट आदिके क्षतसे हो दूसरे दोष कुपित होकर होवे इसमेंसे लाल पीला गुलाबी रुधिर निकलता है वेदना धूमसा निकलना दाह और चोष ये भी होते हैं इसे “कर्णविद्रधि” कहते हैं ॥ १२ ॥

भवेत्प्रपाकः खलुपित्तकोपतो विकोर्थविक्लेदकरश्च कर्णयोः ।  
स्थिते कंफे स्रोतसि पित्ततेजसा विलप्यमाने भृशसंप्रताप-  
वान् ॥ १३ ॥ अवेदनो वाप्यथवा सवेदनो घनं स्रवेत्पूति स

( श्लो० १० ) घ्राणं च मुखं च घ्राणमुखं एकत्वं द्रष्टे । शिरसोभिर्तापनः सकल शिरोविकारकारीत्यर्थः ( इति डल्लनः ) भावमिश्रस्तु शिरसोभिर्तापन इत्यस्य स्थाने शिरसोर्द्धभेदकृदिति पाठांतरमाह ।

( श्लो० ११ ) निरुद्धते इत्यत्र निरुच्यते इति वा पाठांतरम् ।

( श्लो० १२ ) धूमायनं धूमोद्गमनमिव वेदना विशेषः ( इति नि० सं० )

पूतिकर्णकः ॥ १४ ॥ प्रदिष्टलिङ्गान्यर्शांसि तत्त्वतस्तथैव  
शोर्फार्बुदलिङ्गमीरितम् । मर्या पुरस्तात्प्रसमीक्ष्य योजये  
दि<sup>११</sup> हैवं तांनि प्रयतो भिषग्वरः ॥ १५ ॥

इत्युत्तरतंत्रे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

कानमें दुष्ट पित्तके कोपसे पाक होजाता है अर्थात् कान पकजाता है उससे कानमें सड़ांध तथा क्लेद होता है और जो पित्तके तेजसे कानके स्रोतमें स्थित हुवा कफ विलायमान होजावे ( पिघलजावे ) तो बड़ी वेदना होती है इसे “कर्णपाक” कहते हैं ॥ १३ ॥ और वेदना रहित या वेदना सहित गाढा और दुर्गन्धितमल ( राध ) कानसे बहे तो उसे “पूतिकर्ण” कहते हैं ॥ १४ ॥ अर्श ( मस्से ) के लक्षण विस्तारसे हम पहले कहचुके हैं तथा शोथ और अर्बुदके लक्षण भी पहले कहचुके हैं उन्हींके अनुसार कर्णार्श और कर्णशोथ तथा कर्णार्बुदके लक्षण भेद पूर्वक वैद्यको जानने चाहिये और उन्हीं के दोषोंके अनुसार यत्न करने चाहिये ॥ १५ ॥

यूनानी हकीम कर्णशूलको “वज्रउलअज़न्” और अल्पबाधिर्यको “तरश” और पूर्ण बाधिर्यको “कुर” और कर्णस्त्रावको “कुरहअज़न्” कहते हैं और कर्णकंडूको “हक़तुल अज़न्” और कर्णनादको “तनीन” कहते हैं ॥

और डाक्टरोंमें कर्णशूलको “ओटालजिया” या “कैलजिया” Otitis और कर्णस्त्रावको “ओटोरिया” Otorrhoea कहते हैं इत्यादि-

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतंत्रे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

## एकविंशतितमोऽध्यायः २१.

अथातः कर्णगतरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम कर्ण रोगोंकी चिकित्साका व्याख्यान करतेहैं ।

## कर्णरोगोंका सामान्ययत्न ।

सामान्यं कर्णरोगेषु घृतपानं रसायनम् ।

अव्यायामोऽशिरःस्नानं ब्रह्मचर्यमकत्थनम् ॥ १ ॥

( श्लो० १५ ) प्रदिष्टलिङ्गान्यर्शांसि तत्त्वत इत्यत्र छंदो विकृतिरपि त्वान्न दूषणाया ।

( श्लो० १ ) रसायनं इत्यत्र रसाशनं इति वा पाठः । तत्र रसेन मांसरसेन सह भोजनमित्यर्थः अकत्थनं अकथनं अमभाषणमित्यर्थः ( इति डल्लनः ) कत्थनमिति कत्य श्लाघायामित्यस्य धातोः ॥

सब प्रकारके कर्ण रोगोंमें सामान्यरूपसे घृतपान करना श्रेष्ठ है और रसा-  
यन है तथा परिश्रम करना उचित नहीं और शिरपर जल डाल डालकर स्नान  
नहीं करना तथा ब्रह्म चर्यसे रहना और विशेष बोलना नहीं चाहिये ( ये  
उपाय कर्ण रोगोंमें हितकारक हैं ) ॥ १ ॥

## कर्णशूलादिकी चिकित्सा ।

कर्णशूले प्रणादे च बाधिर्यक्ष्वेडयोरपि ।

चतुर्णामपि रोगाणां सामान्यं भेषजं विदुः ॥ २ ॥

स्निग्धं वातहरैः स्वेदैर्नरं स्नेहविरेचितम् ।

नाडीस्वेदैरुपचरेत्पिण्डस्वेदैस्तथैव च ॥ ३ ॥

कर्णशूल और कर्णनाद बधिरता और कर्णक्ष्वेड इन चारों रोगों की प्रायः  
एकही भाँतिकी चिकित्सा है ॥ २ ॥ इन रोगोंमें रोगीको स्निग्ध करके वायु  
नाशक द्रव्योंसे स्वेदित करके स्नेह युक्त विरेचन देना चाहिये तथा नाडीस्वेद  
से अथवा पिण्ड स्वेदके विधानसे स्वेदका उपचार करे ॥ ३ ॥

## नाडीस्वेद ।

विल्वैरंडार्कवर्षाभूदधित्थोन्मत्तशिशुभिः ।

बस्तगंधाश्वगंधाभ्यां तर्कारीयववेणुभिः ॥ ४ ॥

आरनालैः शृतैरेभिर्नाडीस्वेदः प्रयोजितः ।

कफवातसमुत्थानं कर्णशूलं निरस्यति ॥ ५ ॥

विल्व अरंड आक पुनर्नवा कैथ धतूरा सोहँजना बस्तगंधा असगंध  
अरणी यव और बांस ॥ ४ ॥ इनको आरनाल ( एक प्रकारकी कांजीमें  
पकाकर उस गरम भाँफसे नाडीस्वेद करावे इससे कफ वायुका कर्णशूल  
नष्ट होजाता है ॥ ५ ॥

## कर्णशूलपर पिण्डस्वेद ।

मीनकुक्कुटलावानां मांसजैः पयसापि वा ।

पिण्डः स्वेदं च कुर्वीत कर्णशूलनिवारणम् ॥ ६ ॥

( श्लो० ६ ) मीनादिमांसपिण्डैः पृथक् समस्तैर्वा स्वेदः कार्यः । पयसापि वा  
इति धनकृतक्षीरपिण्डेनेत्यर्थः । ( इति डल्लनः ) ।

मछली मुरगा और लवा इनके मांसके पिंडेको गरम कर करके उससे अथवा दुग्धके मावेको गरम करके उसके पिंडेसे कानको स्वेदित करनेसे शूल नष्ट होजाता है ॥ ६ ॥

## अन्ययत्न ।

अश्वत्थपत्रखलं वा विधाय बहुपत्रकम् ।

तैलाक्तमस्तुसंपूर्णं निदध्याच्छूर्वणोपरि ॥ ७ ॥

यत्तलं च्यवते तस्मात्खल्लादंगारसाधितात् ।

तत्प्राप्तश्रवणं श्रोतः सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ ८ ॥

पीपलके बहुतसे पत्ते ( गीले ) इकट्ठे करके उनको तैलमें भिगोकर दहीके पानीसे छुत करके कानपर रख देवे ॥ ७ ॥ फिर उसपर अंगारे किसी पात्र में भरकर रख देवे जब अंगारोंकी गरमीसे उनका तेल टपककर कानके छिद्रमें पहुँचे तब शीघ्रही कानके दर्दको नष्ट करदेता है ॥ ८ ॥

क्षौमगुग्गुल्वगुरुभिः सधृतैर्धूपयेच्च तम् ।

भक्तोपरि हितं सर्पिर्वस्तिकर्म च पूजितम् ।

निरत्रो निशि तत्सर्पिः पीत्वोपरि पयः पिबेत् ॥ ९ ॥

मूर्द्धवस्तिषु नस्ये च मस्तिष्के परिषेचने ।

शतपाकं बलातैलं प्रशस्तं चापि भोजने ॥ १० ॥

क्षौम ( अतसीका वस्त्र ) गुग्गुल और अगर इनमें घृत मिलाकर कानमें धुनी देना और भोजन करके घृत पीना और वस्तिकर्म ( शिरोवस्ति ) करना ये हित हैं अथवा राततक निरत्र रहकर घृत पीवे और ऊपरसे दूध पीवे यह भी हित है ॥ ९ ॥ तथा शिरोवस्तिमें नस्यमें मस्तिष्क ( शिर ) पर सेचनमें और भोजनमें बला तैल जो शतपाक विधिसे बना हो उपयोग करना श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

## कर्णपूरण ।

कंटकारीमजाक्षीरे पक्त्वा क्षीरेण तेन च ।

विषचेत्कुट्वसां कर्णयोस्तत्प्रपूरणम् ॥ ११ ॥

( श्लोक ७ ) खलं द्विकर्णिकाकारम् ।

( श्लोक ९ ) क्षौमं अतसीवस्त्रं वस्तिकर्मात्रं शिरोवस्तिरिति ( नि० सं० ) ।



तंदुलीयकमूलानि फलमंकोटजं तथा ।

अहिंसा केंद्रकामूलं सरलं देवदारु च ॥ १२ ॥

लशुनं शृंगवेरं च तथा वंशावलेखनम् ।

कल्कैरेषां तथाम्लैश्च पचेत्स्नेहं चतुर्विधम् ।

वेदनायाः प्रशान्त्यर्थं हि तं तत्कर्णपूरणम् ॥ १३ ॥

कटेली कीजड़को ( क्षीरपाककी विधिसे ) बकरीके दूधमें पकालेवे फिर उस दूधमें सुरगेकी चरबी पकावे उसे कानमें डाले ॥ ११ ॥ अथवा चौलाई की जड़ और अंकोटका फल अहिंसा ( हिंस ) और केंदुका मूल सरल ( तारपीन ) और देवदारु ॥ १२ ॥ लहसन अदरक तथा बांसका छिलका इनसबको अम्ल द्रव्यों ( कांजी या बिजौरा रस इत्यादि ) से युक्त करके ( अर्थात् खटाईसे पीसकर ) घृत तैल वसा मज्जा इसप्रकारके चारों स्नेहोंको मिलाकर पकालेवे कानकी वेदना शांत होनेके लिये इससे कर्णपूरण करना हित है ॥ १३ ॥

लशुनाद्रकशिग्रूणां मुरंग्या मूलकस्य च ।

कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे ॥ १४ ॥

शृंगवेररसः क्षौद्रं सैधवं तैलमेव च ।

कदुष्णं कर्णयोर्देयमेतद्वा वेदनापहम् ॥ १५ ॥

वंशावलेखसंयुक्ते मूत्रेचाजाविके भिषक् ।

सर्पिः पचेत्तेन कर्णं पूरयेत्कर्णशूलिनः ॥ १६ ॥

लहसन अदरक सोहँजने मुरंगी ( रक्तसोहँजने ) मूली या केला इनका रस निवाया करके कानमें डालना ॥ १४ ॥ अथवा अदरकका रस और शहद गरम करके या तैल और सैधानमक गरमकरके कानमें डालनेसे कानकी शूल को नाश करताहै ॥ १५ ॥ अथवा बांसके छिलके युक्त बकरी तथा भेडके मूत्रमें घृतपका लेवे और जिसके कानमें शूल हो उसके कानमें इसमेंसे डाले ॥ १६ ॥

महतः पंचमूलस्य कण्डमष्टादशांगुलम् ।

क्षौमेणावेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः ॥ १७ ॥

यत्तैलंच्यवते तेभ्यो घृतेभ्यो भाजंमोपरि ।

जेयं तद्दीपिकातैलं संघो गृह्णाति वेदनाम् ॥ १८ ॥

कुर्यादेवं भद्रकाष्ठे कुष्ठकाष्ठे च सारले ।

मतिमान्दीपिकातैलं कर्णशूलनिवर्हणम् ॥ १९ ॥

बृहत्पंचमूलकी डाली ( किसी एककी या उन पाचवोंकी ) अठारह अंगुल लंबी लेकर ( १२ अंगुल उसके अग्र भागको ) अतसीके वस्त्रसे लपेट देवे और तैलमें भिगोकर ( बत्तीकी तरह जलावे ) ॥ १७ ॥ और उनको किसी पात्रपर नीची नोक करके रखदेवे फिर उनमेंसे जो तैल टपक २ कर पात्रमें गिरे उसे दीपिकातैल कहते हैं इसको कानमें डालनेसे शीघ्रही कर्ण वेदना शांत होजाती है ॥ १८ ॥ इसी प्रकार बुद्धिमान् वैद्य देवदारुकी लकड़ीपर तथा कूटकी लकड़ी पर या सरल ( तारपीन ) की लकड़ी पर भी क्षौम वस्त्र लपेट तैलमें भिगोकर जलावे और कर्णशूल का शांत कारक दीपिका तैल बनालेवे ॥ १९ ॥

अर्काकुरानम्लपिष्टास्तैलात्काल्वणान्वितान् ।

संनिदध्यात्सुहीकांडे कोरिते तच्छदावृते ॥ २० ॥

पुटपाकक्रमस्विन्नान्पीडयेदारसागमात् ।

सुखोष्णं तद्रसं कर्णे दार्पयेच्छूलशांतये ॥ २१ ॥

आककी कोंपलोंको अम्लरस ( बिजोरे आदिके रस ) से पीसकर उसमें तैल और सेंधानमक मिलाकर थूहरकी गीली लकड़ीको थोथी करके उसमें भरदेवे और ऊपरसे उसीके पत्ते लपेट देवे ॥ २० ॥ फिर पुटपाककी रीतिसे पकाकर उसको निचोड़कर रस निकाल लेवे उस रसको जरा गरम २ कानमें डाल इससे कानका शूल शांत होजाता है ॥ २१ ॥

कपित्थमातुलुंगाम्लशृंगवेररसैः शुभैः ।

सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णं तच्छूलविनिवृत्तये ॥ २२ ॥

कर्णं कोष्णेन चुक्रेण पूरयेत्कर्णशूलिनः ।

समुद्रफेनचूर्णेन युक्त्यावाऽप्यवचूर्णयेत् ॥ २३ ॥

अष्टानामिह मूत्राणां मूत्रेणान्यतमेन वा ।

कोष्णेन पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशांतये ॥ २४ ॥

मूत्रेष्वम्लेषु वार्तघ्ने गणे चैक्यथिते भिषक् ।

पंचचतुर्विधं स्नेहं पूरणं तच्चैव कर्णयोः ॥ २५ ॥

कैथ बिजोरा अदरख इनका रस निकालकर जरा गरम करके कर्णशूलके नाश होनेके लिये कानमें डालना चाहिये ॥ २२ ॥ अथवा जिसके कानमें शूलहो उसके कानमें चूकेका रस जरा गरम करके डाले तो शूल नाश होवे अथवा समुद्रफेनका चूरा कानमें डुरकावे ॥ २३ ॥ अथवा आठ मूत्रोंमेंसे कोई से मूत्रको जरा गरम करके कानमें डालनेसे शूल दूर होजाता है ( आठ प्रकारके मूत्र गोमूत्र उष्ट्रमूत्र अजमूत्रादि पहले मूत्र वर्गमें कहे जाचुके हैं ) ॥ २४ ॥ अथवा इन मूत्रोंमें या अम्लवर्गमें या वात नाशक गणके काथमें वैद्य चारों स्नेहों ( घृत तैल वसा मज्जा ) को पकाले और कर्णशूलकी शांति के लिये कानमें डाले ॥ २५ ॥

### पित्तयुत कर्णशूलका यत्न ।

एता एव क्रियाः कुर्यात्पित्तघ्नैः पित्तसंयुते ।  
काकोल्यादौ दशक्षीरं तिक्तं चात्र हि तं हविः ॥ २६ ॥  
क्षीरवृक्षप्रवालेषु मधुके चंदने तथा ।  
कल्ककाथे परं पक्वं शर्करामधुकैः सरैः ॥ २७ ॥

यदि पित्तयुक्त कर्णशूल हो तो पित्तघ्न द्रव्योंसे यही क्रिया करनी चाहिये तथा काकोल्यादि गणमें दशगुना दूध डालकर सिद्ध कियाहुवा तिक्त घृत भी यहां हितकारक है ॥ २६ ॥ अथवा दूधके वृक्षों ( गूलर आदि ) की कोंपल मुलेठी चंदन इनके कल्क और काथमें पकायाहुवा घृत तथा खांड और मुलेठी और विरेचनीय द्रव्योंमें पकायाहुवा घृत श्रेष्ठ है ॥ २७ ॥

इंगुदीसर्पपस्नेहौ सकफे पूरणे हितौ ।  
तिक्तौषधानां यूषाश्च स्वेदाश्च कफनाशनाः ॥ २८ ॥  
सुरसादौ कृतं तैलं पंचमूले महत्यपि ।  
मातुलंगरसः शुक्तं लशुनार्द्रकयो रसः ॥ २९ ॥  
एकैकः पूरणे तथ्यस्तैलं तेष्वथवा कृतम् ।  
तीक्ष्णमूर्द्धि विरेकाश्च कवलाश्चात्र पूजिताः ॥ ३० ॥

यदि कफ युक्त कर्णशूल हो तो उस में हिंगोट या सरसों के तैल पूरण करने हित हैं तथा तिक्त औषधोंके यूष और कफ नाशक स्वेद भी हित हैं ॥ २८ ॥ अथवा सुरसादिगण का सिद्ध किया तैल अथवा बृहत् पंचमूल का सिद्ध

तैल डालना हित है अथवा बिजौरे का रस और सिरका तथा लहसन का रस या अदरक का रस इनमेंसे एक २ डालना हित है ॥ २९ ॥ अथवा इन्हीं में पकायाहुआ तैल हित है तथा तीक्ष्ण शिरोविरेचन और कवल धारण करने श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥

( वक्तव्य ) ऊपर पित्तयुक्त कफयुक्त ऐसा कहा इससे प्रयोजन यह है कि मुख्य शूलकारक वायु तो सर्वत्र ही होता है उस में पित्त कफादि युक्त हो तो ऐसा करे ॥

कर्णशूलविधिः कृत्स्नः पित्तघ्नः शोणितवृते ॥ ३१ ॥

शूलप्रणादबाधिर्यक्ष्वेडानां तु प्रकीर्तितम् ।

सामान्यतो विशेषेण बाधिर्ये पूरणं शृणु ॥ ३२ ॥

यदि शोणित युक्त कर्णशूल हो तो उसमें सम्पूर्ण विधि पित्तनाशकके अनुसार करनी चाहिये ॥ ३१ ॥ कर्णशूल प्रणाद ( कर्णनाद ) बधिरता और कर्णक्ष्वेड इन सबकी सामान्यतासे यही विधि है जो वर्णन करीगई है अब अगाडी विशेष करके बधिरतामें कर्णपूरणकी विधि और सुनो ॥ ३२ ॥

**बाधिर्यमें कर्णपूरण ।**

गवां मूत्रेण बिल्वानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ।

सजलं च सदुग्धं च बाधिर्ये कर्णपूरणम् ॥ ३३ ॥

सितामधुकविंबीभिः सिद्धं वाजे पयस्यथ ।

सिद्धं वा बिल्वानिःकाथे शीतीभूतं तदुद्धृतम् ॥ ३४ ॥

पुनः पचेदशक्षीरं सितामधुकचंदनैः ।

बिल्वांबुगाढं ततैलं बाधिर्ये कर्णपूरणम् ॥ ३५ ॥

वक्ष्यते यः प्रतिश्याये विधिः सोऽप्यत्र पूजितः ।

वातव्याधिषु यश्चोक्तो विधिः स च हि तो भवेत् ॥ ३६ ॥

बिल्वको गोमूत्रमें पीसकर उसमें जल और दूध मिलाकर तैल पकावे यह तैल बाधिर्य ( बहरापन ) में कानमें डालना चाहिये ॥ ३३ ॥ अथवा मिश्री मुलेठी कंदूरीफल इनसे सिद्ध किये हुए बकरीके दूधको या

( श्लो० ३३ ) सजलं च सदुग्धं च इत्यत्र पंजिकाकारः पादिकं जलदुग्धाभ्यामिति पठति ।

बेलगिरीके काथसे सिद्ध किये बकरीके दूधको ठंडा करके फिर उस दश गुने दूधसे सिद्ध किया हुआ तैल लेकर उसमें खांड मुलेठी चंदन मिलाकर थोड़ा बिल्वका काथ मिलाकर गाढ़ा २ मथकर बाधिर्य रोगवाले रोगीके कानमें डालना हित है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अथवा जो विधि हम अगाड़ी प्रतिश्याय रोगमें कहेंगे वह भी यहां श्रेष्ठ है अथवा जो वातव्याधिमें पहले कही गई हैं वे विधि भी करनी यहांपर हितकारक होती हैं ॥ ३६ ॥

## कर्णस्रावादिकी चिकित्सा ।

कर्णस्रावे पूतिकर्णं तथैव कृमिकर्णके ।

समानं कर्म कुर्वीत योगान्वैशिषिकानपि ॥ ३७ ॥

शिरोविरेचनं चैव धूपनं पूरणं तथा ।

प्रमार्जनं धावनं च वीक्ष्य वीक्ष्यावचारयेत् ॥ ३८ ॥

राजवृक्षादितोयेन सुरसादिगणे न वा ।

कर्णप्रक्षालनं कार्यं चूर्णैरेषां च पूरणम् ॥ ३९ ॥

चूर्णं पंचकषायोत्थं कपित्थरसयोजितम् ।

कर्णस्रावे प्रशंसन्ति पूरणं मधुना सह ॥ ४० ॥

कर्णस्राव ( कान बहने ) पूतिकर्ण ( कान सड़जाने ) और कानमें जीव पड़ जानेमें समानही कर्म करना चाहिये तथा जिस जिस रोगमें जो जो विशेष योग हैं उन्हेंभी करे ॥ ३७ ॥ शिरको किसी नस्यसे विरेचित करना तथा धूनी देना कर्णपूरण करना ( कानमें औषध डालना ) प्रमार्जन ( उसे छांटना ) तथा धावन ( धोना ) इन सब यत्नोंको देख देख कर जैसा जहां योग्य हो वैसा करे यह सामान्य विधि है ॥ ३८ ॥ ( अब विशेष करके “ कर्णस्राव ” की विधि कहते हैं ) राजवृक्षादिगणके अथवा सुरसादि गणके काथसे कानको धोना चाहिये और इन नीचे लिखे द्रव्योंके चूर्णसे पूरण करना चाहिये ॥ ३९ ॥ पंचकषायके चूर्णमें कैथका रस और शहद मिलाकर कानमें डाले यह कर्णस्रावके लिये श्रेष्ठ है ॥ ४० ॥

## कर्णस्रावके लिये अन्ययोग ।

सर्जत्वक्चूर्णसंयुक्तः कर्पासीफलजो रसः ।

योजितो मधुना वापि कर्णस्रावे प्रशस्यते ॥ ४१ ॥

लाक्षासर्जरसौ वापि चूर्णितौ कर्णपूरणम् ॥ ४२ ॥

सशैवलमहावृक्षजम्बाम्रप्रसवायुतम् ।

कुलीरक्षौद्रमण्डूकीसिद्धं तैलं च पूजितम् ॥ ४३ ॥

सर्ज ( रालके वृक्ष ) की छालका चूर्ण और कपासके फलका रस इनमें शहद मिलाकर कर्णस्त्रावमें पूरण करना श्रेष्ठ है ॥ ४१ ॥ अथवा लाख और राल इनको पीसकर कानमें डालनाभी श्रेष्ठ है ॥ ४२ ॥ अथवा सिवाल तथा थोहर जामुन आंव इनके पत्ते कुलीर ( कर्कटक ) और छोटी सीपी इनसे सिद्ध किया हुआ तैल भी डालना श्रेष्ठ है ( कई इसका ऐसा अर्थ करते हैं कि शैवल दूब और कुलीर काकड़ासींगी तथा क्षौद्र शहद और मण्डूकी ब्राह्मी ) ४३ ॥

### पंचकषायचूर्ण ।

तिंदुकान्यभयारोध्रं समंगामलकं मधु ।

पूरणं चात्र पथ्यं स्यात्कपित्थरसयोजितम् ॥ ४४ ॥

तेंदू हरीतकी लोध मँजीठ और आंवले इन पांचोंको पंचकषाय कहते हैं इनके चूर्ण शहद और कैथ का रस मिलाकर कानमें डाले ॥ ४४ ॥

### तैल साधन ।

रसैमाम्रकपित्थानां मधूकधवशालजम् ।

पूरणार्थं प्रशंसन्ति तैलं वा तैर्विपाचितम् ॥ ४५ ॥

प्रियंगुमधुकांबष्ठाधातकीशीतपर्णिभिः ।

मंजिष्ठालोध्रलाक्षाभिः कपित्थस्य रसेन वा ॥

पचेत्तैलं तदास्त्रावमवगृह्णाति पूरणार्त् ॥ ४६ ॥

आंव और कैथका रस तथा मधुवे धव और शालका रस इनको कानमें डालना अथवा इनसे पकाया हुआ तैल कानमें डालना ॥ ४५ ॥ अथवा प्रियंगु मुलेठी अंबष्ठा धाय और शीतपर्णी ( अर्क पुष्पी या क्षुद्रजंबू ) मँजीठ लोध लाख इनको कैथके रसमें मिलाकर या इनमें तैल पकाकर कानमें डालनेसे कर्ण स्त्रावको रोकदेता है ॥ ४६ ॥

### पूतिकर्णका यत्न ।

घृष्टं रसांजनं नार्याः क्षीरेण क्षौद्रसंयुतम् ।

प्रशंस्यते चिरोत्थेऽपि सास्त्रावे पूतिकर्णके ॥ ४७ ॥

निर्गुडीस्वरसे तैलं सिंधुधूमरजोगुडः ।

पूरणः पूतिकर्णस्यै शमनो मधुसंयुतः ॥ ४८ ॥

रसौतको स्त्रीके दूधमें घिसकर उसमें शहद मिलाकर कानमें डालनेसे बहुत दिनका स्नावयुक्त भी पूतिकर्ण ( कानका सड़ना ) अच्छा होता है ॥ ४७ ॥ निर्गुडी ( सिम्हालू ) के स्वरसमें सिद्ध किया हुआ तैल सैधव धूमसार और गुडयुक्त कर शहद मिलाकर कानमें डालना कानकी दुर्गंधका नाश करनेवाला है ॥ ४८ ॥

**कृमिकर्णका यत्न ।**

कृमिकर्णकनाशार्थं कृमिघ्नं योजयेद्विधिम् ।

वार्ताकुधूमश्च हितः सार्षपस्नेह एव च ॥ ४९ ॥

कृमिघ्नं हरितालेन गवां मूत्रयुतेन च ॥ ५० ॥

गुग्गुलुः कर्णदौर्गंध्ये धूपनं श्रेष्ठमुच्यते ।

छर्दनं धूमपानं च कवडस्य च धारणम् ॥ ५१ ॥

कृमिकर्ण ( कान में कीड़े पड़ जाने ) में उन के नाश के लिये कृमिनाशक विधि करनी चाहिये तथा बृहतीफल सुखाकर उनकी धूनी देना ( या धूमपान कराना ) तथा सरसोंका तैल डालना हित है ॥ ४९ ॥ अथवा विडंग का चूर्ण हरताल और गोमूत्र मिलाकर कान में डालनेसे कीड़े मरजाते हैं ॥ ५० ॥ और कानमें दुर्गंध हो उस के नष्ट करने को गुग्गुलुकी धूनी देनी श्रेष्ठ है तथा वमन कारना धूमपान और कवल धारण कराना ये भी उचित हैं ५१

**कर्णक्ष्वेड कर्णविद्रधि और कर्णविट्के यत्न ।**

कर्णक्ष्वेडे हितं तैलं सार्षपं चैव पूरणम् ।

विद्रधौ वापि कुर्वीत विद्रध्युक्तं चिकित्सितम् ॥ ५२ ॥

( श्लो० ४८ ) धूमरजः गृहधूमसंजातधूलिः ।

( श्लो० ५१ ) कवडस्येत्यत्र डलयोः सावर्ण्यात् कवलस्येत्यर्थः ।

( श्लो० ५२ ) विद्रधावापि कुर्वीत इति वातजे सवेदने विद्रधौ तिलतैलेन सेकः कफ जे पुनः सार्षपतैलेन ( इति डल्लनः ) अन्ये तु आमविद्रधौ तैलस्य निषेधमेवेच्छन्ति किन्तु विद्रधावापि कुर्वीत विद्रध्युक्तं चिकित्सितम् । तेन विद्रधौ तु विद्रध्युक्तचिकित्सितमपि कुर्वीत इति । न तु तैलप्रयोजनमिति मन्यन्ते ॥



प्रक्षेद्य धीमान्तैलेन स्वेदेन प्रविलाप्य च ।

शोधयेत्कर्णविट् तु भिषक्सम्यक्छलांकया ॥ ५३ ॥

कर्णक्षेडमें सरसों का तैल कान में डालना हितकारक है । और जो कर्ण विद्रधि ( कान में फुन्सी ) हो तो उस में विद्रधिमें कही हुई चिकित्सा करें ॥ ५२ ॥ और जो कानमें मैल जमगया हो तो उसे पहले ( तैलादिसे ) छेदित ( मुलायम ) करके और स्वेदनसे ढीला करके वैद्य यथायोग्य सलाई से उस मैलको निकाल लेवे ॥ ५३ ॥

कर्णकण्डू और प्रतिनाह के यत्न ।

नाडीस्वेदोथ वमनं धूमो मूर्द्धविरेचनम् ।

विधिश्च कफहृत्सर्वः कर्णकण्डूमपोहति ॥ ५४ ॥

अथ कर्णप्रतीनाहे स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत् ।

ततोऽतिरिक्तशिरसः क्रियां प्राप्तां समाचरेत् ॥ ५५ ॥

कर्णकण्डू ( कानमें खाज ) हो तो उसमें नाडीस्वेद वमन धूम शिरका विरेचन इत्यादि सब विधि कफनाशक करनी चाहियें ॥ ५४ ॥ और कर्ण प्रतिनाह रोग हो तो स्नेहन स्वेदन का उपयोग करे और जब शिर अत्यन्त खाली हो तब यथायोग्य क्रिया करे ॥ ५५ ॥

कर्णपाकस्य भैषज्यं कुर्यात्पित्तविसर्पवत् ।

कर्णच्छिद्रे वर्तमानं कीटं कुट्टमलादि वा ॥ ५६ ॥

शृगेणापहरेद्धीमान्थवाऽपि शैलांकया ।

शेषाणां तु विकाराणां प्राक्चिकित्सितमोरितम् ॥ ५७ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

यदि कान पक गया हो तो उसकी चिकित्सा पित्तविसर्पके अनुसार करनी चाहिये और जो कानके छेदमें कोई जानवर ( कानसलाई आदि ) घुस जावे या क्लेदता हो या मैल हो तो उसे सींगीसे खेंचकर या सलाईसे बुद्धिमान् वैद्य निकाल लेवे ( आदि शब्दसे चणक धान्य गुंजाफल पत्थरका टुकड़ा आदि पड़जावें तो उसे भी इसी भांति निकाल लेवे ) और शेष रोगों ( कर्णार्श और कर्णशोथ कर्णावुद आदिकी चिकित्सा पहले उन रोगोंके विधानमें कहीजा चुकी है उसीके अनुसार यथायोग्य यहांभी करनी चाहिये तथा कर्णपालीके रोग और उनकी चिकित्सा भी पहले कहीजा चुकी है ) ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

## परिशिष्ट ।

स्वर्जिकाचूर्णसंयुक्तबीजपूररसं क्षिपेत् ।

कर्णस्रावरुजादाहास्ते नश्यन्ति न संशयः ॥१॥ भा० प्र०

काली सज्जिका चूर्ण बहुत बारीक पीसकर कानमें डाले और बिजौरे नींबूका रस उसमें मिचोड़ देवे इससे कानका बहना दरद और दाह निःसंदेह नष्ट होजाते हैं ( यह प्रयोग कईवारका हमारा अनुभव कियाहुवा है और अतिश्रेष्ठ है कर्णस्रावमें बहुतही गुणकारक है ) ॥ १ ॥

इति कर्णरोगाधिकारः ।

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे एकविंशोऽध्यायः ।

## द्वाविंशतितमोऽध्यायः २२.

अथातो नासारोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम नासिकाके रोगोंके विज्ञानकी अध्यायका व्याख्यान करते हैं—

नासारोगोंकी संख्या और उनके नाम ।

अपीनसः पूतिनस्यं नासापाकस्तथैव च ।

तथा शोणितपित्तं च पूयशोणितमेव च ॥ १ ॥

क्षवथुर्भ्रंशथुर्दीप्तो नासानाहः परिस्रवः ।

नासाशोषेण सहिता दशैकाश्चैरिता गदाः ॥ २ ॥

चत्वार्यर्शांसि चत्वारः शोफाः सप्तार्बुदानि च ।

प्रतिश्यायाश्च ये पंच वक्ष्यन्ते सचिकित्सिताः ।

एकत्रिंशन्मितास्ते तु नासारोगाः प्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥

अपीनस पूतिनस्य नासापाक तथा शोणितपित्त और पूयशोणित ॥ १ ॥ क्षवथु भ्रंशथु दीप्त नासानाह परिस्रव और नासाशोष ग्यारह रोग तो ये हुए ॥२॥ और चार प्रकारका नासार्श चारही प्रकारका नासाशोथ सात प्रकारका नासार्बुद और पांचप्रकारका प्रतिश्याय ये सब रोग चिकित्सा सहित वर्णन किये जायेंगे इस प्रकारसे नासिकाके सब रोग ३१ भांतिके कहे हैं ॥ ३ ॥

## अपीनसके लक्षण ।

आनह्यते यस्य विधूप्यते च पापच्यते क्लिद्यति चापि नासा ।

न वेति यो गंधरसांश्च जंतुजुष्टं व्यवस्येत्तमपीनसेन ॥ ४ ॥

तं चानिलश्लेष्मभवं विकारं ब्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिङ्गम् ॥ ५ ॥

नाक रुकीहुईसी हो धुंवांसे घुटाहुईसी हो पकीहुई औरक्लेशित गीलीसी हो और सुगंध दुर्गंधके भावको नहीं जाने ( अर्थात् जिसे सुगंध दुर्गंध मालूम न हो ) उस मनुष्यको पीनसका रोगी जानो ॥ ४ ॥ तथा यह विकार कफवायुसे होता है और प्रायः लक्षण प्रतिश्यायकेसे होतेहैं ॥ ५ ॥

## पूतिनस्य और नासापाकके लक्षण ।

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूलैः संवासितो यस्य समीरणस्तु ।

निरेति पूतिमुखनासिकाभ्यां तं पूतिनस्यं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ६ ॥

घ्राणाश्रितं पित्तमरूपि कुर्याद्यस्मिन्विकारे बलवांश्च पाकः ।

तं नासिकापाकमिति व्यवस्येद्विक्लेदकोथोवपि यत्र दृष्टौ ॥ ७ ॥

यदि वायुपित्त कफरक्त ये दोष विदग्ध ( मूर्छित या दग्ध ) होकर गले और तालुके मूलमें स्थित हों तो उनकी दुर्गंधसे गंधित वायु मुख या नासिकासे निकलने लगती है और इस रोगको “पूतिनस्य” कहते हैं गलतालुमूलका यह भी अर्थ है कि गलका मूल श्वास नलका और आहार नलकाके पास फुफ्फुसोंमें दोष मूर्छित हो या तालुमूल (दिमाग ) में मूर्छित दोष होवें जिनसे उत्पन्न दुर्गंध श्वास द्वारा मालूम होवे ॥ ६ ॥ और नासिकापाक उसे कहते हैं कि नासिकामें व्याप्त हुवा पित्त छोटी २ बहुतसी फुन्सियां उत्पन्न करदेवे और बड़ा भारी नाकमें पकाव होजावे और इसमेंभी क्लेदता तथा कोथ ( सड़ांध अर्थात् दुर्गंध ) मालूम होती है ॥ ७ ॥

## शोणितपित्त ( नकसीर ) और पूयरक्त ।

चतुर्विधं द्विप्रभवं द्विमार्गं वक्ष्यामि भूर्यः खलु रक्तपित्तम् ॥ ८ ॥

( श्लो० ४ ) गंधरसान् इति । गंधस्य रसाः गंधरसाः तान् गंधरसानित्यत्र रसं शब्दो प्रभाववाचकः । अन्ये इत्याहुः ॥ गंधाश्च रसाश्च गंधरसाः तान् गंधरसान् नवेति । गंधान् न वेत्ति रसांश्चापि न वेत्तीत्यर्थः । नासायुक्तान् कटुकादिरसानपि न वेत्तीतिभावः ॥

दोषैर्विदग्धैरर्थवापि जंतोर्ललाटदेशेभिहतस्य तैस्तु ।

नासा संवेत्पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ९ ॥

रक्तपित्त ( नाकसे रुधिर आना ) यह चार प्रकारका और दो ( स्थानों या प्रधान दोषों ) से होनेवाला और दो मार्गों ( अधोगत लिंगगुदाकी तरफ दूसरा ऊर्ध्वगत मुखनासिका द्वारा प्रवर्त होनेवाला ) विस्तारसे अगाड़ी रक्त-पित्तरोगके वर्णनमें कहा जायगा ॥ ८ ॥ और “पूयशोणित” उसे कहते हैं कि दोषोंके विदग्ध होनेसे अथवा शिरमें चोट आदि लगनेसे नाकमेंसे रुधिर मिलाहुवा पीप बहे ( तो उसे पूयशोणित कहते हैं ) ॥ ९ ॥

**क्षवथु ( छींक अधिकआने ) के ल० ।**

ब्राणाश्रिते मर्मणि संप्रदुष्टे यस्यानिलो नासिकया निरेति ।

कफानुर्यातो बहुर्शः सशब्दस्तं रोगमाहुः क्षवथुं विधिज्ञाः ॥ १० ॥

तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा भावान्कटून्कनिरीक्षणाद्वा ।

सूत्रादिभिर्वा तरुणास्थिमर्मण्युद्धाटिते यः क्षवथुर्निरेति ॥ ११ ॥

नासिकाके मर्मस्थानमें जिसके वायु दुष्ट होता है उसके नाकसे कफसे मिला हुआ शब्दयुक्त वायु निकलता है यदि ये अधिक निकले अर्थात् अधिक छींक आया करें तो इसे वैद्य क्षवथु रोग कहते हैं ॥ १० ॥ विशेष तीक्ष्ण पदार्थके अधिक सूंघनेसे तथा चरफरी वस्तु सूंघनेसे सूर्यकी तरफ देखनेसे अथवा नाकके वरीक अस्थिमर्मको सूतकी बत्तीआदिसे छूनेसे मनुष्योंके छींक आजाया करती हैं वे साधारण होती हैं ॥ ११ ॥

**भ्रंशथु दीप्त और नासाप्रतिनाह ।**

प्रभ्रंश्यते नासिकयैव यश्च सांद्रो विदग्धो लवणः कफैस्तु ।

प्राक्संचितो मूर्ध्नि च पित्ततप्तं प्रभ्रंश्यं व्यधिमुदाहरन्ति ॥ १२ ॥

( श्लो० ९ ) चतुर्विधं इति । वातपित्तकफसन्निपातात्मकम् । द्विभवं द्वौ भवौ यकृत्प्लीहे यस्य तम् । अन्ये द्विभवं आमाशयपक्वाशयभभवमाहुः ( इति डल्लनः ) अपरे द्विभवं द्विदोषभवं रक्तपित्ततः संजातमित्याहुः । द्विमार्गं अधोगं ऊर्ध्वगं चेति ।

( श्लो० ११ ) आगंतुजक्षवथुमाह, तीक्ष्णोपयोगादित्यादि । तरुणास्थिमर्म नासा-वंशास्थिमर्म शृंगाटकसंज्ञम् ( इति नि० सं० )

घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिःसरेद्धूम ईवेह वायुः ।

नासां प्रदीप्तेष्वेवं च यस्य जंतो व्याधिं तु तं दीप्तमुदाहरन्ति ॥ १३ ॥

कफावृतो वायुरुदानसंज्ञो यदा स्वमार्गे विगुणः स्थितः स्यात् ।

घ्राणं वृणोतीव तदा सं रोगो नासाप्रतीनाह इति प्रदिष्टः ॥ १४ ॥

जिसके नाकसे गाढा दग्ध हुवा ( पकाहुवा ) खारी कफ जो पहले मूर्द्धामें संचित हुवा और पित्तसे तप्त होकर निकले उस व्याधिको “भ्रंशथु” कहते हैं ॥ १२ ॥ नासिकामें अति दाहसा होवे और धूवां की तरह वायु निकले और नाक भी गरम हो तो इसे “दीप्त” नामक रोग कहते हैं ॥ १३ ॥ और यदि कफसे मिला हुवा उदानवायु अपने मार्गसे विगुण होकर स्थित हो और नाकको जैसे रोकता हो ( अर्थात् नाक रुका हुवासा होवे ) तो यह रोग “नासाप्रतीनाह” कहलाता है ॥ १४ ॥

अजस्रमच्छं सलिलप्रकाशं यस्याऽविर्वर्णं संवतीह नासा ।

रात्रौ विशेषेण हि तं विकारं नासापरिस्रावमिति व्यव-

स्येत् ॥ १५ ॥ घ्राणाश्रिते श्लेष्मणि मारुतेन पित्तेन गाढं

परिशोषिते च । समुच्छ्वसित्यूद्धमं धश्च कृच्छ्राद्यस्तस्य नासा-

परिशोष उक्तः ॥ १६ ॥

जिसके नाकसे निरंतर निर्मल जलके समान बिना किसी रंगका पानी सा बहे और विशेष करके रातमें अधिक बहे उस रोगको “नासापरिस्राव” कहते हैं ॥ १५ ॥ यदि नासिकाका कफ वायुसे तथा पित्तसे गाढा होकर मूख जावे और बड़े कष्टसे ऊपर या नीचेको श्वास लिया जावे तो इसे “नासापरिशोष” कहते हैं ॥ १६ ॥

### नासार्शादिके सामान्य लक्षण ।

दोषैस्त्रिभिस्तैः पृथगेकशश्च ब्रूयात्तथाशांसि तथैव शोफान् ।

शालाक्यसिद्धान्तमवेक्ष्य वापि सर्वात्मकं सप्तममर्बुदं तु ।

रोगः प्रतिश्याय ईह प्रदिष्टः स वक्ष्यते पंचविधः पुरस्तात् ॥ १७ ॥

शोफाश्च शोफविज्ञाने नासास्त्रांतोव्यवस्थिताः ।

निदाने शांसि निर्दिष्टान्येवं तानि विभावयेत् ॥ १८ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

नासार्श ( नाकमें मस्से ) चार प्रकारके होते हैं; वायुके पित्तके कफके और सन्निपातके. और इसी प्रकार चार प्रकारके शोथ होते हैं तथा अर्बुद रोगके निदानमें पहले अर्बुदके भेद और लक्षण कहे गये हैं उसी प्रकार नासार्बुदको भी जाने परंतु शालाक्य सिद्धांतके देखनेसे सन्निपातका अर्बुद और होता है ( वहां अर्बुद छः प्रकारके कहे हैं परंतु सन्निपातके सहित नासार्बुद सात प्रकारके होते हैं और प्रतिश्याय जो पांच प्रकारका होता है वह यहां ही अगाड़ी वर्णन किया जावेगा ) ॥ १७ ॥ नासा शोथके लक्षण पूर्वोक्त शोथ रोगोक्तके अनुसार जानने और अर्श ( मस्से ) के लक्षण पहले अर्श रोगमें कह दिये गये उसी प्रकार यहां भी जानने चाहिये ॥ १८ ॥

यूनानी हकीम गंधज्ञानको "खश्म" कहते हैं. और नकसीर ( शोणित पिन ) को "रिआफ" और नासानाड़ी को "करहबीनी" और क्षवथुको "अतास" कहते हैं और पूतिनस्यको "बुखरुलअनफ" कहते हैं. इसमें कहते हैं कि दुर्गंधित अणु फुफ्फुससे या आमाशयसे बढ़कर हलकू या तालूमें जमा हो या दिमागमें दुर्गंधित मादा हो और डाक्टरीमें नकसीरको "एप्सटैकसिस" कहते हैं और पीनसको "ओजीना" कहते हैं इत्यादि ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

## त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

अथातो नासारोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम नासिकाके रोगोंकी चिकित्साका व्याख्यान कहते हैं ॥

### पूतिनस्यका यत्न ।

पूर्वोद्दिष्टे पूतिनस्ये च जन्तोः स्नेहस्वेदौ छर्दनं स्रंसनं च ।

युक्तं भक्तं तीक्ष्णमल्पं लघु स्यादुष्णं तोयं धूमपानं च काले ॥

हिगुव्योषं वत्सकारुण्यं शिवाटी लाक्षा बीजं सौरभं कट्फलं च ।

उग्रा कुष्ठं तीक्ष्णगंधा विडंगं श्रेष्ठं नित्यं चावपीडे करञ्जम् ॥२॥

एतैर्द्रव्यैः सार्षपं मूत्रयुक्तं तैलं धीमान्नस्यहेतोः पंचैश्च ॥ ३ ॥

( श्लो० २ ) शिवाटी श्वेतपुनर्नवा ( इति डल्लनः ) सुरभिः तुलसी तस्या बीजं सौरभं बीजं अथवा सौरभं बोलनामकं द्रव्यम् । तत्र बीजं पीतकाष्ठम् । वस्तुतस्तु सौरभं बोलनामकद्रव्यमेव शिरोविरेचनकत्वात् ।



अपीनस और पूतिनस्य रोगोंमें मनुष्यको स्नेहन स्वेदनकर तीक्ष्ण वमन विरेचन देना योग्य है और भोजन हलका भात थोड़ा २ देना तथा गरम पानी पिलाना और समयपर धूमपान कराना ( इसमें "भक्तं तीक्ष्णं" की जगह तीक्ष्णं भक्तं ऐसा पाठांतर है सो ठीक है ) ॥ १ ॥ और हींग त्रिकटु इंद्रजों और शिवाटी ( सुफेदसाटी ) लाख तुलसीके बीज और कायफल वच कूट तीक्ष्णगंध ( सोहंजना ) और विडंग तथा करंज इनका नित्य अवपीडन करना ( नस्य लेना ) ॥ २ ॥ अथवा इन्हीं सब द्रव्योंसे गोमूत्र युक्तकर सरसोंका तैल सिद्धकर नस्यके लिये काममें लावे ॥ ३ ॥

### नासापाकका यत्न ।

नासापाके पित्तहृत्संविधानं कार्यं सर्वं बाह्यमाभ्यन्तरं च ।

हृत्वा रक्तं क्षीरवृक्षत्वचश्च सांज्याः सेकां योजनीयांश्च लेपाः ४॥

नासापाक ( नाक पकजाने ) में पित्तनाशक विधि बाह्य और अभ्यन्तर करनी चाहिये और रक्तस्त्राव कराकर दूधके ( गूलर आदि ) वृक्षोंकी छाल को घृत युक्त करके सेचन और लेप करना चाहिये ॥ ४ ॥

### रक्तपित्त और पूयरक्तका यत्न ।

वक्ष्याम्यूर्ध्वं रक्तपित्तोपशान्तिं नाडीवैत्स्यात्पूयरक्ते चिकित्सा ।

वांते सम्यक् चार्वापीडं वदन्ति तीक्ष्णं धूमं शोधनं चात्र नस्यम् ५

रक्तपित्त ( नाकसे रुधिर आने ) की शांतिका यत्न अगाड़ी रक्तपित्त की अध्यायमें कहा जावेगा और पूयरक्त रोगकी चिकित्सा नाडी रोग ( नासूर ) की भांति करनी चाहिये. सम्यक् प्रकारसे वमन कराकर अवपीडन नस्यका उपयोग करना और तीक्ष्ण धूमपान और शोधन तथा नस्य कर्म यहां हित कहे हैं ॥ ५ ॥

( नाडी रोगकी चिकित्सा चिकित्सित स्थानकी सतरहवीं अध्यायमें कही जा चुकी है उसे देखलेवे ) ॥

### क्षवथु और भ्रंशथुका यत्न ।

क्ष्येप्यं नस्यं मूर्ध्वैरेचनीयैर्नाड्या चूर्णं क्षावथौ भ्रंशथौ च ।

कुर्यात्स्वेदान्मूर्ध्नि वार्तामयघ्नान्निग्धान्धूमान्यद्यदन्यद्विद्विद्वत् ६॥

क्षवथु रोग ( विशेष छींक आने में ) और भ्रंशथु रोगमें शिरो विरेचन कराने वाली औषधोंसे नस्य कर्म करावे चूर्ण को नाडीसे धारण करावे ( अथवा-



नाड्यां" ऐसा पाठांतर है उससे नाडी रोगमें भी अर्थात् पूयरक्तमें भी मूर्द्ध विरेचन देना यह अर्थ होता है ) और शिरपर वायु नाशक ( द्रव्यों से या वात शामक विधिसे ) स्वेद करावे और स्निग्ध धूमपान तथा अन्य हितकारक यत्न करावे ॥ ६ ॥

## दीप्त और नासानाहका यत्न ।

दीप्ते रोगे पित्तिकं संविधानं कुर्यात्सर्वं स्वादु यच्छीतलं च ॥७॥

नासानाहे स्नेहपानं प्रधानं स्निग्धा धूमा मूर्द्धबस्तिश्च नित्यम् ।

बलातैलं सर्वथैवोपयोज्यं वातव्याधावन्यदुक्तं च यद्यत् ॥ ८ ॥

दीप्त रोगमें पित्तनाशक सब क्रिया मधुर और शीतल करनी चाहियें ॥ ७ ॥ और नासानाहमें स्नेहपान कराना प्रधान है और स्निग्ध धूम और नित्य मूर्द्धाकी बस्ति ( स्नेहबस्ति ) सब प्रकारसे बलातैलका उपयोग करना तथा अन्य वातव्याधिके कहे उपाय करने ॥ ८ ॥

नासास्त्रावे घ्राणतश्चूर्णमुक्तं नाड्यां देयं योव पीडश्च तीक्ष्णः ।

तीक्ष्णं धूमं देवदार्वग्निकाम्भ्यां मांसं वाजं युक्तमत्रादिशन्ति ॥९॥

नासाशोषे क्षीरसर्पिः प्रधानं सिद्धं तैलं चाणुकल्पे च नस्ये ।

सर्पिःपानं भोजनं जांगलैश्च स्नेहः स्वेदः सैहिकश्चापि धूमः ॥१०॥

नासास्त्राव ( नाकसे विशेष पानी टपकने ) में उपरोक्त ( हिंग्वादि ) चूर्ण को नाडी द्वारा उपयोग करें तथा तीक्ष्ण अवपीड करावे और देवदारु चित्रक इनका तीक्ष्ण धूम उपयुक्त करे और बकरेका मांस भोजनमें देवे ॥ ९ ॥ और नासा शोषमें दूध घृतका ( नस्य कर्म ) प्रधान है तथा अणु तैल की नस्य भी उचित है और घृतका पान करना और जंगली जीवों के मांससे भोजन कराना तथा स्नेहन स्वेदन कराना और स्निग्ध धूम पान कराना श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

शेषान् रोगान् घ्राणजान्सन्निधौ च्छेदुक्तं तेषां यद्यथा संविधानम् ११॥

इत्युत्तरतन्त्रे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

और जो शेष रोग ( नासाशोथ नासार्श और नासाबुद इत्यादि ) हैं उन की चिकित्सा उन्हीं उन रोगों की मुख्य चिकित्साध्याय के विधान से करनी चाहिये ॥ ११ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

## चतुर्विंशोऽध्यायः २४.

अथातः प्रतिश्यायप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम प्रतिश्याय ( अर्थात् जुखाम ) की चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ।

### प्रतिश्यायका हेतु ।

नाडीप्रसंगः शिरसोभितापो धूमो रजः शीतमतिप्रतापः ।

संधारणं मूत्रपुरीषयोश्च सद्यः प्रतिश्यायनिदानमुक्तम् ॥ १ ॥

नाडीप्रसंग ( नासिकांतरगत नाडीके विकार ) से शिरके अभिताप ( गरमी जादा पहुँचने ) से धूवाँ धूल आदिके लगनेसे अतिशीतके लगनेसे अतिप्रताप ( अग्निआदिके अधिक तापसे मलमूत्रादिके वेग रोकनेसे प्रतिश्यायरोग होता है अर्थात् सद्यः प्रतिश्याय होनेके ये आदिकारण कहे हैं ॥ १ ॥

( वक्तव्य ) नाडीप्रसंगका कई ऐसा अर्थ करते हैं कि अतिस्त्रीप्रसंग करनेसे प्रतिश्याय होता है और वे "नारीप्रसंगः" ऐसा पाठ मानते हैं ॥

### इसकी संप्राप्ति ।

चयंगतां मूर्द्धनि मारुतादयः पृथक्समस्तुतश्च तथैव शोणितम् । प्रकोप्यमाना विविधैः प्रकोपनैर्नृणां प्रतिश्यायकरा भवन्ति हि ॥ २ ॥

मूर्द्धा ( दिमाग ) में वातादिक दोष जुदे जुदे ( तथा दो ) या सब तथा रक्त ये संचित होकर अनेकों कोपकारक कारणोंसे कोपको प्राप्त होकर मनुष्योंको प्रतिश्याय करनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

### पूर्वरूप ।

शिरोगुरुत्वं क्षवथोः प्रवर्तनं तथांगमर्दः परिहृष्टरोमता ।

उपद्रवैश्चाप्यपरे पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसराः स्मृताः ॥ ३ ॥

( श्लो० १ ) वातं प्रति अभिमुखं श्यायो गमनं कफादीनां यत्र स प्रतिश्यायः । नारीप्रसंगः नारीषु स्त्रीषु अतिशयेन प्रवृत्तिरिति नारीप्रसंगः ( इति डल्लनः ) अन्ये तु नाडी नासानाडी तत्प्रसंगः तद्विकारः नाडीप्रसंगः इत्याहुः । प्रसंगः । व्यापद-इति वाचस्पतिः ।

शिरमें भारीपन छीके आना अंग टूटनासा होना रोमहर्ष तथा अनेक प्रकारके अन्य उपद्रव ( खासी आदि ) होना ये लक्षण होनेवाले जुखामसे पहले होते हैं ॥ ३ ॥

## वातप्रतिश्याय और पित्तप्रतिश्यायके लक्षण ।

आनद्धा पिहिता नासा तनुस्त्रावप्रवर्तिनी ।

गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शंखयोस्तथा ॥ ४ ॥

स्वरोपघातश्च भवेत्प्रतिश्यायेऽनिलात्मके ।

उष्णः सपीतकः स्रावो घ्राणात्स्त्रवति पैत्तिके ॥ ५ ॥

कृष्णोतिपांडुः संतप्तोभवेत्तृष्णाभिपीडितः ।

सधूमं सहसा वह्निं वर्मतीव च मानवः ॥ ६ ॥

जिसमें नाक फूली हुई सी हो और गीले मलसे भरी हुईसी हो थोड़ा २ पतला पानीसा टपके गल तालू होंठ इनमें सूखापन हो और कनपटी ( तथा शिर ) में दरद हो ॥ ४ ॥ आवाज बैठ जावे ( गलघंघायासा होजावे ) ये लक्षण वायुके प्रतिश्यायमें होते हैं. और पित्तके प्रतिश्यायमें नाकसे गरम पीलापन लिये स्राव होता है ॥ ५ ॥ मनुष्य दुबला और पीला पड़जावे संताप ( गरमी ) रहे और तृषाभी जियादह लगे और धूँवाँ युक्त अग्नि जैसा श्वास नाकसे निकले ॥ ६ ॥

## कफज और संनिपातजप्रतिश्याय लक्षण ।

कफः कफकृते घ्राणाच्छुक्लः शीतः स्रवेन्मुहुः ।

शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद्गुरुशिरोमुखः ॥

शिरोगलौष्ठतालूनां कंडूयनमतीव च ॥ ७ ॥

भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो योऽकस्माद्विनिवर्तते ।

संप्रको वाप्यपको वा स सर्वप्रभवः स्मृतः ॥ ८ ॥

लिंगानि चैव सर्वेषां पीनसानां च सर्वजे ॥ ९ ॥

( श्लो० ४ ) अनद्धा आध्माता । पिहिता रजश्चयपूर्णा ।

( श्लो० ९ ) सर्वजं प्रतिश्याये सर्वेषां वातादीनां प्रतिश्यायानां पीनसानां च लिंगानि भवंतीति योज्यम् । सान्निपातिकः प्रतिश्यायोऽसाध्यः विदेहोक्तत्वादिति ( नि० सं० )

कफके प्रतिश्यायमें नाक से सुपेद ठंडा ( कुछ गाढ़ा ) बार बार स्राव होवे मनुष्यका वर्ण सुपेद दीखने लगे और नेत्रोंके डौले सूजेसे मालूम पड़े और शिर और मुख भारी मालूम हों तथा शिर गला होंठ और तालु इनमें खाजसी होवे ॥ ७ ॥ और सन्निपात का प्रतिश्याय वह होता है जो बार बार हो होकर कच्चा या पक्का अकस्मात् बंध होजावे ॥ ८ ॥ इसमें सब दोषोंके तथा पीनसके लक्षण होते हैं ॥ ९ ॥

रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्तते ।

ताम्राक्षश्च भवेज्जंतुरुरोधातप्रपीडितः ॥ १० ॥

दुर्गंधोच्छ्वासवदनस्तथा गंधान्न वेत्ति च ।

मूर्च्छति चात्र कृमयः श्वेताः कृष्णास्तथाऽणवः ।

कृमिर्मूर्द्धविकारेण समानं चास्य लक्षणम् ॥ ११ ॥

रक्तदोषके प्रतिश्यायमें आस्राव रक्त होताहै ( कोई इसमें लाल पानीसा बहना मानते हैं और कोई रुधिर बहना मानते हैं ) नेत्रोंका वर्ण तांबे जैसा होजाता है और उरःक्षतभी इसमें होताहै ॥ १० ॥ श्वास लेनेमें तथा मुहमें दुर्गंध आने लगती है और सुगंध दुर्गंधका बोध नहीं होता तथा इस व्याधिमें सुफेद या काले बहुतही सूक्ष्म कृमि नाकके मलमें पाये जाते हैं और कृमिके शिरोरोगके समान इसके और लक्षण होते हैं ॥ ११ ॥

प्रतिश्यायकी कष्टसाध्यता ।

प्रकृियति पुनर्नासा पुनश्च परिशुष्यति ।

मुहुरानद्यते चापि मुहुर्विव्रियते तथा ॥ १२ ॥

निश्वासोच्छ्वासदौर्गन्ध्यं तथा गंधान्न वेत्ति च ।

एवं दुष्टप्रतिश्यायं जानीयात्कृच्छ्रसाधनम् ॥ १३ ॥

बारबार नाक कभी गीला हो जावे फिर सूख जावे बारबार कभी नाक रुक जावे कभी खुल जावे ( अथवा कभी नाक फूल जावे कभी बंद हो

( श्लो० १० । ११ ) उरोधातप्रपीडित इति उरःक्षतप्रपीडितत्वाच्चापि रक्तप्रतिश्यायो भवतीति तल्लक्षणं तंत्रांतरोक्तम् “उरःक्षतं गुरुस्तत्र पूतिकर्णकयो रसः ॥ सकासः सज्वरो ज्ञेय उरोधातः सपीनसः इति । मूर्च्छति पतति । केचिद् अत्रेति सर्वेषु वृद्धप्रतिश्यायेषु कृमयो मूर्च्छति सूक्ष्मः इति वदन्ति ।

जावे ) ॥ १२ ॥ श्वास लैने और छोड़नेमें दुर्गंध आवे तथा गंधका ज्ञान नष्ट होजावे ऐसे दुष्ट प्रतिश्यायको कष्टसाध्य जानना चाहिये ॥ १३ ॥

### बृद्धप्रतिश्यायका परिणाम ।

सर्व एव प्रतिश्याया नरस्योप्रांतिकारिणः ।

कालेन रोगजनना जायंते दुर्घृपीनसाः ॥ १४ ॥

बाधिर्यमांघ्रमघ्राणं घोरांश्च नयनामयान् ।

कासाग्निसादंशोफांश्च वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः ॥ १५ ॥

सब प्रकारके प्रतिश्याय विना प्रतिकार करनेवाले मनुष्योंके काल पाकर अनेक रोग पैदा करनेवाले दुष्ट पीनसरोग होजाते हैं ॥ १४ ॥ फिर वह पीनस बढकर बहरापन अंधापन गंधाज्ञान और भारी नेत्ररोग तथा खांसी शोथ आदि बडे बडे रोग पैदा करते हैं ॥ १५ ॥

नवं प्रतिश्यायमपास्य सर्वमुपाचरेत्सर्पिष एव पानैः ।

स्वेदैर्विचित्रैर्वमनैश्च युक्तैः कालोपपन्नैरवपीडनैश्च ॥ १६ ॥

नये प्रतिश्यायको छोडकर सब प्रकारके प्रतिश्यायोंको घृतपानसे उपचार करे तथा स्वेदसे और विचित्र वमनोंसे और समयानुसार अवपीडनोंसे प्रतिकार करना ( सबमें सामान्य यत्न है ) ॥ १६ ॥

### प्रतिश्यायपकानेकी विधि ।

अपच्यमानस्य हि पाचनार्थं स्वेदो हितोऽम्लैरहिमं च भोज्यम् ।

निषेव्यमाणं पयसाद्रकं वा संपाचयेदिक्षुविकारयोगैः ॥ १७ ॥

जो नवीन कच्चा प्रतिश्याय हो उसके पकानेके लिये अम्लपदार्थोंसे स्वेद कराना हित है तथा गरम भोजन कराना उचित है अथवा दूधमें अदरख पकाकर उसमें ईखके विकार गुड या खांड यथायोग्य युक्त करके पिलावे ( और कई ऐसा अर्थ करते हैं कि स्वेद करावे और खटाई युक्त गरम भोजन करावे ) ॥ १७ ॥

पक्वं घनं चाप्यवलंबमानं शिरोविरेकैरपकर्षयेत्तम् ।

विरेचनास्थापनधूमपानैरवेक्ष्य दोषान्कर्वलग्रहैश्च ॥ १८ ॥

जब प्रतिश्याय अर्थात् जुखाम पकजावे और स्राव गाढा पड़जावे लंबा-यमान होजावे तब उसे शिरोविरेचनसे कर्षण करना चाहिये ( अर्थात्

शिरोविरेचनीय नस्य देकर निकाल देना चाहिये ) और विरेचन आस्थापन बस्ति और धूमपानों से तथा कवलग्रहोंसे दोषों को देखकर उस के अनुसार प्रतिकार करे ॥ १८ ॥

निवातशय्यासनचेष्टितानि मूर्ध्नो गुरुष्णं च तथैव वासः ।

तीक्ष्णा विरेकाः शिरसः सधूमा रूक्षं पलान्नं विजया च सेव्या १९

वायु रहित ( बंद ) मकान में सोना बैठना आदि करना और शिरपर भारी और गरम कपड़ा पहनना या बांधना तथा तीक्ष्ण विरेचन ( शिरोविरेचन ) देना धूमपान कराना रूक्ष मांस भोजन कराना और हरीतकी सेवन कराना उचित है ॥ १९ ॥

पक्वप्रतिश्यायमें पथ्य ।

शीतांबुयोषिच्छिशिरावगाहचिंतातिरूक्षाशनं वेगरोधान् ।

शोकं च मद्यानि नवानि चैव विवर्जयेत्पीनसरागजुष्टः ॥ २० ॥

ठंडापानी पीना, स्त्रीसंग, ठंडेपानीसे नहाना, चिंताकरना, अतिरूक्ष भोजन करना, वेगोंको रोकना, शोक करना, और नवीन मदिरा इतनी वस्तु पीनसके रोगीको ( और जुखामके रोगीको ) त्यागनी चाहिये ॥ २० ॥

प्रतिश्यायकी आवस्थिक चिकित्सा ।

छर्द्यगसादुज्वरगौरवार्तमरोचकारत्यतिसारयुक्तम् ।

विलंघनैः पाचनदीपनीयैरुपांचरेत्पीनसिनं यथावत् ॥ २१ ॥

बहुद्रवैर्वार्तकफोपमृष्टं प्रच्छर्दयेत्पीनसिनं वयस्थम् ।

उपद्रवांश्चापियथोपदेशं स्वैर्भेषजैर्भोजनसंविधानैः ॥

जयेद्विदित्वा मृदुतां गतेषु प्राग्लक्षणेष्वादिशेच्च ॥ २२ ॥

यदि वमन ( या हल्लास ) थकान ज्वर गुरुता ( शरीरका भारीपन ) अरुचि वेचैनी और अतिसार इतने उपद्रवोंसे युक्त प्रतिश्याय हो तो उसे लंघनों और दीपनपाचनोंसे यथावत् उपचार करे ॥ २१ ॥ यदि कफ वायुका प्रतिश्याय हो तो उसे पतले पदार्थोंसे और बड़ी अवस्था-वालेके ऐसा प्रतिश्याय हो तो उसे वमन कराकर शांत करें और जो जो उसमें उपद्रव हो उनको उपदेशके अनुसार अपने अपने औषधों और भोज-

( श्लो० २१ ) केचिदत्र एवं योजयन्ति मृदुतां विदित्वा प्राग्लक्षणेपु गतेषु उक्तं आदिशेत् ।

नौके विधानसे जितना चाहिये और जब मृदु (नरम) होजावे अर्थात् पककर मुलायम होजावे तब पहले कहीहुई विधियोंसे उसका उपचार करें ॥ २२ ॥

### वातजप्रतिश्यायका यत्न ।

वातिके तु प्रतिश्याये पिबेत्सर्पि र्यथाक्रमम् ।

पंचभिर्लवणैः सिद्धं प्रथमेन गणेन च ॥

नस्यादिषु विधिं कृत्स्नमवेक्षेतादितेरितम् ॥ २३ ॥

वायुके प्रतिश्यायमें घृतका पान यथाक्रम करना चाहिये यह घृत पाँचों लवण और प्रथम गण (विदारिगंधादि) से सिद्ध किया हुआ चाहिये और नस्यादिके लिये समस्त विधि अर्दित वायुके अनुसार करना उचित है ॥ २३ ॥

### पित्तज प्रतिश्यायका यत्न ।

पित्तरक्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः शृतम् ।

परिषेकान्प्रदेहांश्च कुर्यादपि च शीतलान् ॥ २४ ॥

श्रीसर्जरसपत्तंगप्रियंगुमधुशर्करा ।

द्राक्षामधूलिकागोजीश्रीपर्णीमधुकैस्तथा ॥ २५ ॥

युज्यन्ते कवलाश्चात्र विरेको मधुरैरपि ।

धवत्वक्त्रिफला श्यामा बिल्वकैर्मधुकेन च ॥ २६ ॥

श्रीपर्णीरजनीमिश्रैः क्षीरे दशगुणे पचेत् ।

तैलं कालोपपन्नं तन्नस्य स्याद्वनयोर्हितम् ॥ २७ ॥

यदि पित्तका अथवा रुधिरका प्रतिश्याय हो तो उसमें मधुर द्रव्योंसे पकाया हुआ घृत पान करे तथा परिषेक और प्रदेह (लेप) ये भी शीतलही करने चाहियें ॥ २४ ॥ श्री (कमल) और सर्जरस (रालका वृक्ष और तथा बोल. अथवा श्रीसर्जरसका अर्थ कई गूगल करते हैं) पत्तंग प्रियंगु (गोंदी अर्थात् सिपिस्ता) शहद और खांड दाख (मुनक्का) मधूलिका (गोधूम

(श्लोक २५) अस्य श्लोकस्यान्वयः अग्रिमश्लोकोक्त 'युज्यन्ते कवलाः' इत्यनेन सह कार्यः । श्रीः कमलं, सर्जः पीतशालः, रसो बोलः, अन्ये श्रीसर्जरसः गुग्गुलुः इत्याहुः, मधूलिका गोधूमभेदः, अन्ये गुडूचीमाहुः, गोजी गोजिह्वानामौषधं श्रीपर्णी काश्मीरी (कवलाश्च गंडूपभेदाः इति डल्लनः)



अर्थात् गेहूं या गेहूंका चापट. मधूलिकाका अर्थ कई गिलोय करते हैं ) गोजी ( गोजिह्वा अर्थात् गाजुवां ) और काश्मरी तथा मुलेठी इनका कवल धारण करे ( यहां कवलका अभिप्राय एक प्रकारका गंडूष है अर्थात् गुटकी मुंहमें भर भरकर पीलेवे ) और मधुर द्रव्योंके योगसे विरेचन देवे धवकी छाल त्रिफला निसोथ तिल्वक ( लोध ) और मुलेठी इनमें खंभारी और हलदी मिलाकर दश गुने दूधमें तैल सिद्ध करे वह तैल उस समयका ताजा बना होवे इसकी नस्य देना इन दोनों प्रतिश्यायोंमें हित है ॥ २५।२६।२७ ॥

### कफज प्रतिश्यायका यत्न ।

कफजे सर्पिषा स्निग्धं तिलमाषविपक्रया ।

यवाग्वा वामयेद्वातः कफघ्नं क्रममाचरेत् ॥ २८ ॥

उभे बले बृहत्यौ च विडंगं सत्रिकंटकम् ।

श्वेतामूलं सहां भद्रां वर्षाभूं चात्र संहरेत् ॥ २९ ॥

तैलमेभिर्विपक्वं तु नस्यमस्योपकल्पयेत् ॥ ३० ॥

सरलाकिणिहीदारुनिकुंभेंगुदिभिः कृताः ।

वैतयश्चोर्पयोऽय्यास्स्युर्धूमपाने यथाविधि ॥ ३१ ॥

कफके प्रतिश्यायमें रोगीको घृतसे स्निग्ध करके तिल उडद इनसे पकाई हुई यावागूसे ( उसमें वामक द्रव्य डालकर ) वमन करावे और वमन कराये पीछे कफ नाशक यत्न करने चाहियें ( कफ नाशक भोजनादिक ) देने चाहियें ॥ २८ ॥ दोनों बला ( बला और अतिबला ) तथा छोटी बड़ी दोनों कटेली विडंगं गोखरू श्वेत स्यंदकी जड़ सहा ( शालपर्णी ) भद्रा ( इसे कोई काश्मरी और कोई पीपली कहते हैं ) और सांटी इनको लेकर ॥ २९ ॥ इनसे तैल पकावे उस तैलकी नस्य देवे ॥ ३० ॥ तथा सरला ( निशोथ ) कटभी देवदारु दंती और हिंगोट इनकी बत्ती बनाकर उससे यथाविधि धूमपान करावे ॥ ३१ ॥

### सन्निपातके प्रतिश्यायका यत्न ।

सर्पींषि कटुतिक्तानि तीक्ष्णा धूमाः कटूनि च ।

भेषजान्युपयुक्तानि हन्युः सर्वप्रकोपजम् ॥ ३२ ॥

रसांजने सातिविषे मुस्तायां भद्रदारुणि ।

तैलं विपक्वं नस्यार्थे विदध्याच्चात्र बुद्धिमान् ॥ ३३ ॥

कटुतिक्त द्रव्योंसे सिद्ध किये घृत, तीक्ष्ण धूमपान तथा कटुक औषध उपयोग किये हुये सन्निपातके प्रतिश्यायको नष्ट करनेवाले होते हैं ॥ ३२ ॥  
रसोत अतीस नागरमोथा व देवदारु इनसे तैल पकाकर इससे बुद्धिमान वैद्य यहां नस्य देवे ॥ ३३ ॥

मुस्ता तेजोवती पाठा कटफलं कटुका वचा ।

सर्षपाः पिप्पलीमूलं पिप्पल्यः सैधवाग्निकौ ॥ ३४ ॥

तुत्थं करंजबीजं च लवणं भद्रदारु च ।

एतैः कृतं कषायं तु कवले संप्रयोजयेत् ॥ ३५ ॥

हितमूर्द्धविरेकेण तैलमेभिर्विपाचितम् ॥ ३६ ॥

नागरमोथा तेजबल पाठ कायफल कुटकी वच सरसों पीपलामूल पीपल सैधानमक चित्रक ॥ ३४ ॥ नीलाथोथा करंजके बीज लवण ( यहां कई 'लवंग' ऐसा पाठांतर मानते हैं ) और देवदारु इनका काथ करके उससे कवल धारण करे ( मुखमें रखकर कुरले कर दें, इसमें अमिकका अर्थ कई अजमोद करते हैं ) ॥ ३५ ॥ और इन्हीं औषधोंसे पकायाहुवा तैल शिरो विरेचनके लिये हितकारक है ॥ ३६ ॥

क्षीरमूर्द्धजले क्वाथ्यं जांगलैर्मृगपक्षिभिः ।

पुष्पैर्विमिश्रं जलजैर्वातघ्नैरौषधैरपि ॥ ३७ ॥

हिमे क्षीरावशिष्टेऽस्मिन्घृतमुत्पाद्य यत्नतः ।

सर्वगंधा सिताऽनंता मधुकं चंदनं तथा ॥ ३८ ॥

अवाप्य विपचेद्भूयो दशक्षीरं तु तद्घृतम् ।

नस्यप्रयुक्तमुद्रिक्तान्प्रतिश्यायान् व्यपोहति ॥ ३९ ॥

यथार्स्वं दोषैश्चामनैस्तैलं कुर्याच्च यत्नतः ॥ ४० ॥

दूधमें दूधके बराबर या उससे आधा जल और जंगली जीवों और पक्षियोंका मांस और कमलके पुष्प तथा वायुनाशक औषधें डालकर पकावे ॥ ३७ ॥ जब दूध मात्र रहजावे तब ठंढा करके उसे मथकर घृत निकाल

( श्लो० ३७ ) क्षीरमित्यादि क्षीरं जांगलमांसादिभ्योऽष्टगुणं अर्द्धजलेन समजलेन वा क्षीरार्द्धजलं जांगलैर्मृगपक्षिभिः एणादिभिर्लावादिभिश्च ।

( श्लो० ३८ ) सर्वगंधा एलादिपरिपठिता । ( इति नि० सं० )

लेवे फिर उस घृतमें सर्वगंधा ( एलादिगण ) मिश्री उत्पल सारिवा मुलेठी और चंदन ॥ ३८ ॥ इन सबको डालकर और दशगुना दूध डालकर फिर पकावे घृत मात्र शेष रहे उतार लेवे इसकी नस्य देनेसे बड़ेहुए प्रतिश्यायों-को भी यह नष्ट करदेता है ॥ ३९ ॥ अथवा जिस दोषका जहां उद्वेक देखे उसी दोषकी शांति करनेवाली औषधोंसे तैल सिद्ध करके उपयोगमें लाया करे ॥ ४० ॥

**समूत्रपित्तास्तूदिष्टाः क्रियाः कृमिषु योजयेत् ।**

**यापनार्थं कृमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धिमान् ॥ ४१ ॥**

इत्युत्तरतन्त्रे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

यदि सूक्ष्म कृमि उत्पन्न होगये हों तो उनके यापन ( दबने ) के लिये गोमूत्र और पित्त ( गोरोचन ) तथा कृमिनाशक औषधें इन्हीं उपरोक्त योगों-में मिलाकर बुद्धिमान् वैद्य उपयोग करे ॥ ४१ ॥

( वक्तव्य ) कृमियुक्त प्रतिश्याय पहले असाध्य कहचुके हैं इस लिये यह यत्न यापनार्थ कहागया है ॥

डाक्टरीमें प्रतिश्यायको “ कैटराह ” ( Cattarrh ) कहतेहैं और यूनानी हकीम नजूल के भेदसे “ जुकाम ” कहते हैं ॥

**( परिशिष्ट ) नजूल या नजले का बयान ।**

नजूल का अर्थ टपकना या गिरना है और नजलाभी इसीका नाम है जो मनुष्य खाता पीता है वह भेदे में पकता है उसमेंसे जो अवखरे ( परमाणु ) उठते हैं वे ऊपर को हलक और शिरकी तरफ चढते हैं. यदि उनका ठीक गाढामल बनकर बराबर नाकसे निकल जाया करे तो ठीक है नहीं तो यह अनेक बीमारी पैदा करनेवाला होता है जैसे जियादह खींचकर नाक की तरफ बहना जुकाम कहलाता है और छातीकी तरफ गिरे तो सिल ( उरःक्षत ) करता है अर्थात् फेंफड़ोंमें जखम पैदा करदेता है. इस के सिवाय जिस जिस जगह यह गिरता है या रुजू होता है वहां ही कुछ बीमारी पैदा करता है जैसे आखोंकी तरफ रुजू होनेसे नजूलुलमा ( पानी उत्तर आना ) कहते हैं पैदाकरे और हलक की तरफ रुजू हो तो खराश ( खांसी ) वगैरह पैदाकरे इत्यादि. और यह नजूल सरद और रगम दोनों भांति का प्रायः होसकता है. वल्कि कइयों की राय है कि यह नजूल के अवखरेही तिरछे फैल कर मसामोंकी तरफ रुजू होते हैं तब खुखार पैदा करते हैं. प्रयोजन यह कि

ये नजूल के अवखरे ( परमाणु या बाष्प ) अवश्य अनेक रोग करते हैं. इन का नीचे मलकी तरफ रुजू होना या नाकसे निर्विकार निकलनाही ठीक है और वैद्यकोभी ऐसेही यत्न करने चाहिये जिसे या तो ये अवखरे उठें ही कम और जो उठें वे ठीक नाकसे निकल जावें-परंतु कम उठनेमें ऐसी तजवीज़ करें जिससे हाज़मेंमें फ़ितूर न पड़े हमारे वैद्यकशास्त्रमें जहांतहां वातानुलोमन करना लिखा है उसका यही अभिप्राय है. वैद्यकके मतसे त्रिफला अर्थात् हरी-तकी बहेड़ा और आंवले यह इसके अनुलोमन करनेके लिये उत्तम है यूना-नीके कायदेसे धनियां नागकेसर गुलकंद बनफशा सोंफ वगैरा नजूलके अव-खरे ऊपर दिमागकी तरफ चढ़नेसे रोकनेवाली हैं-और दिमागको इससे साफ करनेके लिये उस्तखदूस बहुत अच्छा है ।

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

## पंचविंशोऽध्यायः २५.

अथातः शिरोरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम शिरके रोगोंके विज्ञान विषयक अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

### शिरके रोगोंकी संख्या और नाम ।

शिरो रुजति मर्त्यानां वातपित्तकफैस्त्रिभिः ।

सन्निपातेन रक्तेन क्षयेण कृमिभिस्तथा ॥ १ ॥

सूर्यावर्तानंतवातार्द्धावभेदकशंखकैः ।

एकादशप्रकारस्य लक्षणं संप्रवक्ष्यते ॥ २ ॥

मनुष्योंके शिरमें रोग वायुसे पित्तसे कफसे तथा तीनों दोषोंके सन्निपातसे रुधिरसे और कृमियोंसे होता है ॥ १ ॥ तथा एक रोग सूर्यावर्त और एक अर्द्धावभेदक एक अनंत वात और एक शंखक इस भांति ११ प्रकारके शिरो रोग होते हैं इनके लक्षण अगाड़ी कहेजाते हैं ॥ २ ॥

लेवे फिर उस घृतमें सर्वगंधा ( एलादिगण ) मिश्री उत्पल सारिवा मुलेठी और चंदन ॥ ३८ ॥ इन सबको डालकर और दशगुना दूध डालकर फिर पकावे घृत मात्र शेष रहे उतार लेवे इसकी नस्य देनेसे बड़ेदुए प्रतिश्यायों-को भी यह नष्ट करदेता है ॥ ३९ ॥ अथवा जिस दोषका जहां उद्रेक देखे उसी दोषकी शांति करनेवाली औषधोंसे तैल सिद्ध करके उपयोगमें लाया करे ॥ ४० ॥

समूत्रपित्तास्तूदिष्टाः क्रियाः कृमिषु योजयेत् ।

यापनार्थं कृमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धिमान् ॥ ४१ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

यदि सूक्ष्म कृमि उत्पन्न होगये हों तो उनके यापन ( दबने ) के लिये गोमूत्र और पित्त ( गोरोचन ) तथा कृमिनाशक औषधें इन्हीं उपरोक्त योगों-में मिलाकर बुद्धिमान् वैद्य उपयोग करे ॥ ४१ ॥

( वक्तव्य ) कृमियुक्त प्रतिश्याय पहले असाध्य कहचुके हैं इस लिये यह यत्न यापनार्थ कहागया है ॥

डाक्टरीमें प्रतिश्यायको “ कैटराह ” ( Cattarrh ) कहतेहैं और यूनानी हकीम नजूल के भेदसे “ जुकाम ” कहते हैं ॥

( परिशिष्ट ) नजूल या नजले का बयान ।

नजूल का अर्थ टपकना या गिरना है और नजलाभी इसीका नाम है जो मनुष्य खाता पीता है वह भेदे में पकता है उसमेंसे जो अवखरे ( परमाणु ) उठते हैं वे ऊपर को हलक और शिरकी तरफ चढते हैं. यदि उनका ठीक गाढामल बनकर बराबर नाकसे निकल जाया करे तो ठीक है नहीं तो यह अनेक बीमारी पैदा करनेवाला होता है जैसे जियादह खींचकर नाक की तरफ बहना जुकाम कहलाता है और छातीकी तरफ गिरे तो सिल ( उरः क्षत ) करता है अर्थात् फेंफड़ोंमें जखम पैदा करदेता है. इस के सिवाय जिस जिस जगह यह गिरता है या रुजू होता है वहां ही कुछ बीमारी पैदा करता है जैसे आखोंकी तरफ रुजू होनेसे नजूलुलमा ( पानी उत्तर आना ) कहते हैं पैदाकरे और हलक की तरफ रुजू हो तो खराश ( खांसी ) वगैरह पैदाकरे इत्यादि. और यह नजूल सरद और रगम दोनों भांति का प्रायः होसकता है. बल्कि कइयों की राय है कि यह नजूल के अवखरेही तिरछे फैल कर मसामोंकी तरफ रुजू होते हैं तब खुमार पैदा करते हैं. प्रयोजन यह कि



## वातज शिरोरोग ।

यस्यानिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम् ।  
बन्धोपतापैश्च भवेद्विशेषः शिरोभित्तापः स समीरणेन ॥ ३ ॥

जिसके बिना किसी कारणहीके ( अकस्मात् ) शिरमें पीडा ( दरद ) हो-  
जाया करे और रातको विशेष करके अधिक वेदना होवे तथा बांधने और  
तपानेके यत्नोंसे विशेष होवे ऐसा शिरोरोग वायुका होता है ॥ ३ ॥

( वक्तव्य ) इसमें जो “बन्धोपतापैश्च भवेद्विशेषः” पाठ है तिसमें विशेष  
पदके अर्थमें बड़ी गड़बड़ है क्योंकि प्रत्यक्षमें तथा अन्य आर्ष पुस्तकोंसे यह  
नहीं पायाजाता कि वातिक शिरोरोग बंध और उपतापसे विशेष होता है  
इसीसे डल्लनमिश्र विशेषका अर्थ यहां “उपशम” करते हैं और भावमिश्र  
अपने भावप्रकाशमें “बन्धोपतापैः प्रशमो भवेच्च” ऐसा पाठांतर मानते हैं  
और कई “भवेद्विशेषः” ऐसा पाठ मानते हैं ॥

## पित्तका शिरोरोग ।

यस्योष्णमंगारंचितं यथैव भवेच्छिरो धूमवन्ती च नासा ।

शीतेन रात्रौ च भवेद्विशेषः शिरोभित्तापः स तु पित्तकोपात् ॥ ४ ॥

जिसका शिर गरम हो अंगारोंके ढेर जैसा हो और नाकसे धुवाँसा  
घुटा रहे और शीतसे तथा रातको विशेष होजावे ऐसा शिरोरोग पित्तके  
कोपसे होता है ॥ ४ ॥

( वक्तव्य ) यहां भी वही शंका होती है कि पित्तका शिरोरोग शीतसे और  
रात्रिमें विशेष कैसे होवे? अस्तु यहां भी पूर्वोक्त प्रकारसे विशेषका अर्थ उपशम  
अर्थात् शांति जानना चाहिये अथवा “ भवेत् हि शेषः ” ऐसा मान लेना  
और ‘भवेद्विशेषः’ का लेखभ्रमसे “भवेद्विशेषः” ऐसा पाठ होगया हो यही  
समझ लेना. अथवा किसी अवस्थामें ऐसा भी होता हो कि पित्तिक शिर दरद

( श्लो० ३ ) अनिमित्तं अकस्मात्, विशेषः उपशमः ( इति डल्लनः ) भावमिश्रस्तु ‘बन्धो  
पतापैश्च भवेद्विशेषः’ इत्यत्र ‘बन्धोपतापैः प्रशमो भवेच्च’ इति पाठांतरमकरोत् । केचित्  
भवेद्विशेषः, इत्यत्र ‘भवेद्विशेषः’ इति मन्यन्ते, तल्लेखभ्रमादेव ‘भवेद्विशेषः’ इति संजायते  
इति मन्यन्ते । अत्र शेषः अवशिष्टः अल्पो भवेदित्यर्थः ।

( श्लो० ४ ) ‘शीतेन रात्रौ च भवेद्विशेषः’ इत्यत्र ‘शीतेन रात्रौ च भवेच्छमश्च’ इति  
पाठांतरं भावमिश्रेण कृतमस्ति ।



शीतसे बढ जावे और वातिक बंध उपतापादिसे बढ जावे क्योंकि यदि यह पाठ शुद्ध और सरलार्थक ऋषि धन्वंतरिजी प्रणीत है तो इसपर और कल्पनाही अनुचित है परंतु यदि ऐसा होता तो अन्य ग्रंथकार अवश्य इसका अनुसरण करते. यहांभी भावमिश्रजीने पाठांतर किया है ॥

## कफकाशिरोग और सन्निपातका ।

शिरो गलं यस्य कफोपदिग्धं गुरुप्रतिष्ठ्वमथो हिमं च ।

शूनाक्षिकूटं वर्द्धनं च यस्य शिरोभितापः स कफप्रकोपात् ॥ ५ ॥

शिरोभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिंगानि समुद्भवन्ति ।

रक्तात्मकः पित्तसमानलिंगः स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च ॥ ६ ॥

जिसके शिर व गल ये कफसे भरेहुयेसे मालूम हों और भारीसे रुके हुयेसे हों और छूनेमें शीतलता मालूम हो, नेत्रके डौले और मुँह सूझसे दिखाई देवें तो ऐसा शिरका दरद कफके कोपसे होता है ॥ ५ ॥ “ त्रिदोषके शिर दरदमें ” सब दोषोंके लक्षण मिले झुले होते हैं । और रक्तजशिरोग ( शिरके दरद ) में पित्तके शिरोगके समान लक्षण होते हैं. विशेष करके शिरको स्पर्श नहीं सुहाता यह बात अधिक होती है ॥ ६ ॥

## क्षयका शिरोग ।

वसाबलासक्षयसंभवानां शिरोगतानामिह संक्षेपेण ।

क्षयप्रवृत्तः शिरसोभितापः कंष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् ।

संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्निमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ॥ ७ ॥

जिनके शरीर ( या शिर ) की चरबी या कफ क्षीण होगये हों उनके क्षयसे जो शिरका दरद होताहै उसमें तीक्ष्ण वेदना होतीहै और वह कष्टसाध्य होताहै तथा यह दरद स्वेद न वमन धूमपान नस्य और रक्तस्रावादिसे वृद्धिको प्राप्त होताहै ( क्योंकि इन कर्षणयत्नोंसे क्षीणता उलटी अधिक होजाती है ) ॥ ७ ॥

## कृमिज शिरोग ।

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं संभक्ष्यमाणं स्फुरतीव चांतः ।

प्राणाच्च गच्छेत्सलिलं सरक्तं शिरोभितापः कृमिभिः संघोरः ॥ ८ ॥

जिसका शिर बहुतही वेदनाको प्राप्त हो और भीतरसे खाये जानेकी भांति फरके ( अर्थात् जैसे कोई नोचकर खाता हो और कुछ फरक २ करता हो ऐसा मालूम हो ) और नाकमेंसे रुधिरयुक्त पानीसा निकले तो ऐसा शिरोरोग कृमियोंसे जानना ( इसके मगजमें कीड़े हैं ऐसा जानना ) और यह व्याधि बोर होती है ॥ ८ ॥

## सूर्यावर्त ।

सूर्योदयं वा प्रतिमंदमंदमक्षिभ्रुवं रुक्समुपैति गाढम् ।

विवर्धते चांशुमता सहैव सूर्यापवृत्तौ विनिवर्तते च ॥ ९ ॥

शीतेन शान्तिं लभते कदाचिदुष्णेन जंतुः सुखमाप्नुयाच्च ।

तं भास्करावर्तमुदाहरन्ति सर्वात्मकं कष्टतमं विकारम् ॥ १० ॥

सूर्योदयके साथ ही जिसके आंखके ऊपरकी भ्रुकुटीपर मंद मंद वेदना होवे और ज्यों ज्यों सूर्य ( दिन ) चढता जावे त्यों त्यों वह वेदनाभी बढती जावे और दिन ढलनेपर वहभी कम होती चलीजावे ॥ ९ ॥ कभी यह व्याधि शीतसे शान्त होती है कभी मनुष्यको उष्ण ( गरमवस्तु या गरमी ) से सुख होता है इस रोगको “सूर्यावर्त” कहते हैं और यह सब दोषोंसे उपजा हुआ कष्टसाध्य विकार होता है ॥ १० ॥

( वक्तव्य ) सूर्यावर्तका विपरीत रोगभी होता है जो मध्याह्नमें शान्त हो जावे और सूर्यके ढलनेके साथ बढे रातको और प्रभातमेंभी हो यह उष्णसे शान्तिको प्राप्त होता है ।

## अनन्तवातके लक्षण ।

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां संपीड्य घाटां सहजां सुंतीवाम् ।

कुर्वति साक्षिभ्रुवशंखदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ॥ ११ ॥

गंडस्य पार्श्वेषु करोति कंपं हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान् ।

अनंतवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ॥ १२ ॥

( श्लो० १० ) उष्णेन जंतुः सुखमाप्नुयाच्चेति योगात्सूर्यावर्तविपर्ययः कथितो बोद्धव्यः ( इति डल्लनः )

( श्लो० ११ ) घाटा ग्रीवायाः पश्चाद्भागे ( इति श० स्तो० ) स्थितिं करोतीत्यत्रैकवचनेन त्रिषु कश्चिदेकः स्थितिं करोतीति भावः । विशेषतो वायुः स्थितिं करोतीति सिद्धान्तः ।

तीनों दोष दुष्ट होकर मन्या नामक प्रदेशको पीडित करके घाटा (ग्रीवा-  
के पिछाड़ीके भाग) को तीव्र वेदना युक्त कर देते हैं और विशेष करके नेत्र  
भ्रुकुटी और कनपटी इन स्थानोंमें वे दुष्ट दोष स्थिति करते हैं ॥ ११ ॥ और  
गंडस्थलके पिछाड़ी को यह व्याधि कम्प पैदा करदेती है तथा हनुग्रह और  
नेत्रों के अनेक विकार करदेती है. इस व्याधिको "अनंतवात" कहते हैं. यह  
त्रिदोषसे उपजाहुआ शिरोरोग है ॥ १२ ॥

## अर्द्धावभेदक (आधाशीशी) के लक्षण ।

यस्योत्तमांगार्द्धमतीव जंतोः संभेदतोद्भ्रमशूलजुष्टम् ।

पक्षादशाहादर्थवाप्येकस्मात्तस्यार्द्धभेदं त्रितयाद्यवस्येत् १३॥

जिसका शिर आधाशिर पंदरह दिनके अन्तरसे अथवा दश दिनके  
अंतरसे अथवा अकस्मात् (बेकारण चाहे जब) दुखने लगे भेदनकीसी  
पीडा और चमक भ्रम तथा शूल ये शिरमें होजावें तो इसे अर्द्धावभेदक  
रोग कहते हैं और यह तीनों दोषोंसे होता है ॥ १३ ॥

## शंखाख्यशिरोरोग ।

शंखाश्रितो वायुरुदीर्णवेगः कृतानुयात्रः कफपित्तरक्तैः ।

रुजः सुतीव्राः प्रतनोति मूर्च्छि विशेषतश्चापि हि शंखयोस्तु १४

सुकष्टमेन खलु शंखोरुख्यं महर्षयो वेदविदः पुराणैः ।

व्याधिं वदंत्युद्गममृत्युकल्पं भिषक्सहस्रैरपि दुर्निवारम् ॥ १५ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

यदि वायु कफ पित्त और रक्त के अनुगत उदीर्ण वेग होकर शंख कनप-  
टियों में प्राप्त हो और शिरमें विशेषकर कनपटियों में तीव्र वेदना करे तो इसे  
वेदवित् पुराने महर्षि वैद्य कष्ट साध्य शंख रोग कहते हैं यह व्याधि दारुण मृत्यु  
के समान होती है हजारों वैद्योंसे भी दुस्तरतासे निवारण होवे तो होवे १४।१५

डाक्टरोंमें शिरके दरदको "सेफेलिलजिया" Cephalalajia कहते हैं.  
और अनंतवातके लक्षण कुछ "क्लॉस्सहिस्ट्रीक्स" Clawus Hystericus  
से मिलते हैं और अर्द्धावभेदक को "हेमिक्रीमिया" Hemicrama कहते हैं  
और क्षयजशिरोरोग को "वर्टीगो" Verti Go कहते हैं ॥

( श्लो० १४ ) कृता अनुयात्रा अनु गमनं येन स वायुरित्यर्थः ।

और यूनानी हकीम शिर के दर्दको सदाभ कहते हैं. इन के यहां भी इस की बहुत किस्म हैं जैसे क्षयजको "जोफदिमागी" पित्तजको "दर्दसर सफ़रावी" और वातजको "सौदावी" व "रीही" कहते हैं रक्तज को "दमवी" कहते हैं इत्यादि इन के यहां शिरदर्द सतरा प्रकार का लिखा है. सब यहां पर लिख नहीं सकते उन की किताबोंसे देखो ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायाभाषाटीकाया मुत्तरतन्त्रे पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५॥

## षड्विंशोऽध्यायः २६.

अथातः शिरोरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम शिरके रोगोंकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

### वातजशिरोरोगका यत्न ।

वातव्याधिर्विधिः कार्यः शिरोरोगेऽनिलात्मके ।

पेयानुपानं सेवेत घृतं तैलमथापि वा ॥ १ ॥

मुद्गान्कुलार्थान्मांषांश्च खादेच्च निशि केवलान् ।

कटूष्णांश्च ससर्पिष्कानुष्णं चानु पिबेत्पर्यः ।

पिबेद्वा पर्यसा तैलं तत्कल्कं वापि मानवः ॥ २ ॥

वातके शिरोरोगमें वातव्याधिकी विधि करनी चाहिये और ऊपरसे पतली पेया पीना चाहिये और घृत अथवा तैल पीना उचित है ॥ १ ॥ मूंग कुलार्थी उड़द इनको केवलही रातको खाना चाहिये. हाँ उनमें कटुक और गरम पदार्थ तथा घृत मिलाना उचित है इनको खाकर ऊपरसे गरम दूध पीना तथा दूध तैल पीवे या दूधके संग तिलोंका कल्क पीवे ॥ २ ॥

वातघ्नसिद्धैः क्षीरैश्च सुखोष्णैः सेकर्मादिशेत् ।

तत्सिद्धैः पायसैर्वापि सुखोष्णैर्लेपयेच्छिरः ॥ ३ ॥

स्विन्नैर्वा मत्स्यपिशितैः कृसरैर्वा ससंधवैः ।

चंदनोत्पलकुष्ठैर्वा सुशुष्णैर्मगधायुतैः ॥ ४ ॥

स्निग्धस्य तैलं नस्य स्यात्कुलारिरससाधितम् ।

( श्लो० २ ) तत्कल्कं तिलकल्कमित्यर्थः । अत्र तच्छब्देन तैलस्य कारणीभूतस्य तिलस्यैव ग्रहणम् ।

वरुणादौ गणे क्षुण्णे क्षीरमर्द्धोदकं पचेत् ॥ ५ ॥  
 क्षीरशेषं च तन्मध्यं शीतं सारमुपाहरेत् ।  
 ततो मधुरकैः सिद्धं नस्ये तत्पूजितं हविः ॥ ६ ॥  
 तस्मिन्विपक्वे क्षीरे च पेयं सर्पिः सशर्करम् ।  
 धूमं चास्य यथाकालं स्नैहिकं योजयेद्विषक् ॥ ७ ॥  
 पानाभ्यञ्जननस्येषु वस्तिकर्मणि सेचने ।  
 विदध्यात्त्रैवृतं धीमान्बलातैलमथापि वा ॥ ८ ॥  
 भोजयेच्च रसैः स्निग्धैः पेयाभिर्वा सुसंस्कृतैः ॥ ९ ॥

वायुनाशक द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए निवाये दूधसे सेवन करना अथवा  
 उन्हींसे सिद्ध करेहुए दूधका पायस ( खीर या मावा ) शिरपर निवाया २  
 लेप करना ॥ ३ ॥ अथवा मछलीके मांसको पकाकर उसका या खिचड़ी ( तिल  
 तंदुलकी ) सैधा नमक डालकर उसे शिरपर लेप करे ( या बांध दे ) अथवा  
 चंदन कमल कूट और पीपल इनको गीला पीसकर लेप करे ॥ ४ ॥ कुलीर  
 ( केकडे ) के रससे सिद्ध किया तैल नस्यमें उपयोग करे अथवा वरुणादि  
 गणको थोड़ा कूटकर उसे दूध और दूधसे आधा पानी डालकर पकावे ॥ ५ ॥  
 जब दूध मात्र रहजावे तब मथकर घृत निकाल ले फिर उस घृतको मधुर  
 ( काकोल्यादि ) गणसे सिद्ध करले और इसकी नस्य देवे ( यह श्रेष्ठ है ) ॥  
 ६ ॥ अथवा इन्हींसे सिद्ध किये दूधमें घृत और खांड मिलाकर पीना  
 चाहिये तथा समय के अनुसार स्नेहका धूमपान करे ॥ ७ ॥ तथा पीने मर्दन  
 करने और नस्य लेने तथा वस्तिकर्म इनमें त्रैवृत ( निशोथ का स्नेह अथवा  
 घृत वसा मज्जा इन युक्त त्रैवृत तैल ) उपयोग करे, अथवा बलातैलका उपयोग  
 करे ॥ ८ ॥ और स्निग्ध रसोंके संग अथवा पेयावों करके संस्कार कियेहुए  
 भोजन करावे ॥ ९ ॥

**पित्तज और रक्तज शिरोरोगका यत्न ।**

पित्तरक्तसमुत्थानौ शिरोरोगौ निवारयेत् ।

शिरोलेपैः सर्पिष्कैः परिपेकैश्च शीतलैः ॥ १० ॥

क्षीरेक्षुरसंधान्याम्लमस्तुक्षौद्रसिताजलैः ।

नलवज्जुलकलहारचंदनोत्पलपद्मकैः ॥ ११ ॥

क्षयकासापहं चात्र सर्पिः पथ्यतमं विदुः ॥ २४ ॥

क्षयसे उपजेहुए शिरोरोगमें उसी क्षीणताको नष्ट करके बृंहण ( बलदायक ) विधि करनी चाहिये और वायुनाशक तथा मधुर द्रव्योंसे सिद्ध किये घृतका पान कराना श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥ अथवा क्षयज खांसीके नाश करनेवाला जो घृत कहा जायगा वह भी यहां बहुत ही हितकारक है ॥ २४ ॥

( वक्तव्य ) इसमें बदामका हलवा हरीरा तथा खसखसका हरीरा इत्यादि बहुत गुण करते हैं हमारे अनुभव कियेहुए हैं ॥

**शिरोगतकृमियोंका यत्न ।**

कृमिभिर्भक्ष्यमाणस्य वक्ष्यंते शिरसः क्रियाः ।

नस्य हि शोणितं दद्यात्तेन मूर्च्छति जंतवः ॥ २५ ॥

मत्ताः शोणितगंधेन समायांति यतस्ततः ।

तेषां निर्हरणं कार्यं ततो मूर्द्धविरेचनैः ॥ २६ ॥

ह्रस्वशिशुकबीजैर्वा कांस्यनीलीसमायुतैः ।

कृमिघ्नैरवपीडैश्च मूत्रपिष्टैरुपाचरेत् ॥ २७ ॥

पूतिमत्स्ययुतान्धूमान्कृमिघ्नांश्चप्रयोजयेत् ।

भोजनानि कृमिघ्नानि पानानि विविधानिच ॥ २८ ॥

कीड़ोंसे खायेहुए शिरोरोगकी क्रिया अगाड़ी कहते हैं अर्थात् जिसके मगजमें कीड़े पड़गये हों उसको पहले रुधिरकी नस्य देवे जिससे वे कीड़े सब इकट्ठे होजावे ॥ २५ ॥ और रुधिरकी गंधसे मतवाले होकर इधर उधर घूमने लगें तब उनको शिरोविरेचनी नस्य देकर निकाल देना चाहिये ॥ २६ ॥ अथवा छोटे सोहंजनेके बीजोंमें नीलाथोथा मिलाकर या कृमिनाशक ( वायाविडंग ) को गोमूत्रमें पीसकर इनसे अवपीडन नस्य देवे ॥ २७ ॥ तथा सड़ीहुई मच्छीमें कृमिनाशक ( विडंग ) मिलाकर उसका धूमपान करावे और भोजन भी कृमिनाशक कराना तथा अनेक प्रकारके पान भी कृमिघ्नही करे ॥ २८ ॥

**सूर्यावर्त और अर्द्धावभेदकके यत्न ।**

सूर्यावर्ते विधातव्यं नस्यकर्मादिभेषजम् ।

भोजनं जांगलंप्रायं क्षीरात्रविकृतैर्घृतम् ॥ २९ ॥

( श्लो० २४ ) क्षयकासापहं चात्र सर्पिः पथ्यतमं विदुरित्यत्र कुलीरशुक्लिचटकेण-  
लावान् निक्वाथ्य साधितमिति पठन्तीति ( नि० सं० ) ।

तत्रार्द्धभेदके व्याधौ प्राप्तमन्यच्च यद्रवेत् ।  
 शिरीषमूलकफलैरवपीडोनयोऽर्हितः ॥ ३० ॥  
 वंशमूलककर्पूरैरवपीडं प्रयोजयेत् ।  
 अवपीडो हितश्चात्र वचामागाधेकायुतः ॥ ३१ ॥  
 मधुकेनावपीडो वा मधुना सह संयुतः ।  
 मनःशिलावपीडो वा मधुना चंदनेन वा ॥ ३२ ॥  
 तेषामंते हितं नस्यं सर्पिर्मधुरसान्वितम् ।  
 सारिवोत्पलकुष्ठानि मधुकं चाम्लपेषितम् ॥ ३३ ॥  
 सर्पिस्तैलयुतो लेपो द्वयोरपि सुखावहः ।  
 एष एव प्रयोक्तव्यः शिरोरोगे कफात्मके ॥ ३४ ॥

सूर्यावर्त रोगमें नस्यादि कर्मादिक भेषज करें और जंगली जीवोंके  
 स प्रधान भोजन करें तथा दूध और अन्नोसे युक्त घृत सेवन करें (और  
 सूर्यावर्त विपर्ययमें भी प्रायः यही विधि करनी उचित होती है) ॥ २९ ॥  
 या अगाड़ी कही हुई अर्द्धावभेदक व्याधिकी अन्य औषधें भी यहां उपका-  
 क होती हैं अर्द्धावभेदक रोगमें तथा सूर्यावर्त इन दोनोंमें सिरस और मूली  
 बीजोंका अवपीडन नस्य देना हित है ॥ ३० ॥ बांस मूली और कपूर इनकी  
 नस्य देना अथवा वच और पीपल मिलाकर नस्य देना ॥ ३१ ॥ अथवा  
 मुलेठी और शहद मिलाकर नस्य देना अथवा मैनसिलमें शहद या चंदन  
 मिलाकर अवपीडन नस्य देना ॥ ३२ ॥ फिर अवपीडन नस्योके पीछे  
 मधुरसा ( काकोल्यादि ) से सिद्ध किये घृतकी नस्य देना उचित है तथा  
 सारिवा कमल कूट मुलेठी खटाई में पीसकर घृत तैल मिलाकर लेप करना  
 दोनों (सूर्यावर्त और अर्द्धावभेदक) को सुखकारक है तथा कफके शिरोरोगमें  
 इसका उपयोग हित है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

**अनंतवातका यत्न ।**

अनंतवाते कर्तव्यः सूर्यावर्तरितो विधिः ।

शिराव्यधश्च कर्तव्योऽनंतवातप्रशांतये ॥ ३५ ॥

( श्लो० ३० ) अनयोः सूर्यावर्तार्द्धावभेदकयोः ।

( श्लो० ३३ ) एषां अंते अवपीडनानां अंते ।



आहारश्च विधातव्यो वार्तपित्तविनाशनः ।

मधुमस्तकसंयावधृतपूरैश्च भोजनैः ॥ ३६ ॥

अनंतवात नाम शिरके दरदमें सूर्यावर्तकी कही हुई विधि भी क श्रेष्ठ है तथा विशेषकर अनंतवातकी शांतिके लिये शिरावेध कराना उचित ॥ ३५ ॥ और वात पित्त नाशक भोजन करने चाहिये जैसे मधुमस्तक ( म पूवे ) और हलवा या हरीरा तथा घेवर ऐसे भोजन (अग्निबलके अनुसार) करें ( वक्तव्य ) ऊपर कहे हुए भोजन क्षयज शिरोरोगमें भी श्रेष्ठ हैं ॥

शंखाख्यका यत्न ।

क्षीरसर्पिः प्रशंसति नस्ये पाने च शंखके ।

जांगलानां रसैः स्निग्धैराहारश्चात्र शस्यते ॥ ३७ ॥

शतावरीं तिलान्कृष्णान्मधुकं नीलमुत्पलम् ।

दूर्वा पुनर्नवां चैव लेपे साध्ववचारयेत् ॥ ३८ ॥

महासुगंधामथवा पालिंदी चाम्लपेपिताम् ।

शीतांश्चात्र परीषेकान्प्रदेहानत्र योजयेत् ॥ ३९ ॥

अवपीडश्च देयोत्र सूर्यावर्तनिवारणः ॥ ४० ॥

शंख ( कनपटी ) के रोगमें नस्य और पानमें दूध धृत उपयोग करना श्रेष्ठ है और जंगली जीवोंके मांसरस युक्त स्निग्ध भोजन करना हि है ॥ ३७ ॥ शतावरी काले तिल मुलेठी नीलकमल दूब और साँठी इ को पीसकर लेप करे ॥ ३८ ॥ तथा महासुगंधा ( उत्पल सारिवा ) निशो पालिंदी ( कालवल्ली या निशोथ ) इनको कांजीमें पीसकर ठंडा लेप करना या परिषेक करना योग्य है ॥ ३९ ॥ और इस रोगमें सूर्यावर्त नाशक अव पीड ( नस्य ) देना भी हितकारक होसकताहै ॥ ४० ॥

अन्यनिर्देश ।

कृमिक्षयकृतौ हित्वां शिरोरोगेषु बुद्धिमान् ।

मधुतैलसमायुक्तैः शिरांस्यति विरेचयेत् ॥ ४१ ॥

पश्चात्सर्पपतैलेन ततो नस्यं प्रयोजयेत् ।

न चेच्छांतिं व्रजत्येवं स्निग्धस्विन्नास्ततो भिर्षक् ।

पश्चादुपाचरेत्सम्यक्किंकराणांमथ मोक्षणैः ॥ ४२ ॥

कृमियोंके और क्षयके शिरोरोगोंको छोड़कर सब प्रकारके शिरके रोगोंमें बुद्धिमान् वैद्य शहद और तैलयुक्त द्रव्योंसे शिरको खूब ही विरेचन करें (छाटें) ॥ ४१ ॥ फिर सरसोंके तैलकी नस्य दें और यदि इन सब क्रियाओं से शांत न हो तो फिर स्नेहन स्वेदन कराकर पीछे सम्यक् रीतिपूर्वक शिरामोक्ष कर (शोणित साव करके) उसका उपचार करे ॥ ४२ ॥

षट्सप्ततिर्नेत्ररोगा दशाष्टादश कर्णजाः ।

एकत्रिंशद्घ्राणगताः शिरस्येकादशेह तु ॥ ४३ ॥

इति विस्तरतो दृष्टाः सलक्षणचिकित्सिताः ।

संहितायामभिहिताः सप्तषष्टिर्मुखामयाः ॥ ४४ ॥

एतावन्तो यथास्थूलमुत्तमांगगता गदाः ।

अस्मिञ्छास्त्रे निर्गदिताः संख्यारूपचिकित्सितैः ॥ ४५ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इति शालाक्यं समाप्तम् ॥

छिंहत्तर नेत्रके रोग और अट्टाईस कानके रोग इकतीस नाकके रोग और ग्यारह शिरके रोग ॥ ४३ ॥ ऐसे ये सब १४६ रोग लक्षण और चिकित्सा सहित यहां वर्णन किये गये हैं और इनके सिवाय ६७ सरसठ मुखके रोग पहले कहे जा चुके हैं ( वे भी वास्तवमें शालाक्य ही के अंतरगत हैं ) ॥ ४४ ॥ इस प्रकारसे उत्तमांग ( चेहरे ) के मोटे मोटे रोग इस शास्त्रमें संख्या रूप और चिकित्सापूर्वक वर्णन किये गये हैं ॥ ४५ ॥

( वक्तव्य ) यथा स्थूलसे प्रयोजन यह है कि रोगोंके सूक्ष्म भेद तो अनंत हैं कहां तक कहे जावें परंतु जो स्थूल भेद हैं वेही कहे जा सकते हैं जब स्थूलही कहें तभी १४६ और ६७ सब २१३ रोग केवल चेहरे ही के होते हैं तो फिर सूक्ष्म भेद और समस्त शरीरके रोगोंके सूक्ष्म भेद असंख्य हैं कदापि कहे और लिखे नहीं जासकते और जब वे कहे ही नहीं जासकते तो उनकी चिकित्सा कैसे हो बस केवल ईश्वरकी प्रेरणासे जैसी जहां विद्वान् वैद्यकी बुद्धिमें फुरे वहां वही वैसा ही यत्न करें ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे शालाक्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इति शालाक्यं समाप्तम् ॥

# अथ कौमारभृत्यम् ।

## सप्तविंशोऽध्यायः २७.

अथातो नवग्रहाकृतिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम नवग्रहों ( बालकोंके पीडक नवग्रहों ) की आकृतिके विज्ञानकी अध्यायका व्याख्यान करते हैं-

बालग्रहाणां विज्ञानं साधनं चाप्यनंतरम् ।

उत्पत्तिं कारणं चैव सुश्रुतैकमनाः शृणु ॥ १ ॥

श्रीधन्वंतरिजी कहते हैं हैं सुश्रुत तुम एकाग्रचित्त होकर बालग्रहोंके विज्ञान और साधन तथा उत्पत्ति और कारण इन सबको श्रवण करो ॥ १ ॥

स्कंदग्रहस्तु प्रथमः स्कंदापस्मार एव च ।

शकुनी रेवती चैव पूतना चांधपूतना ॥ २ ॥

पूतना शीतनामा च तथैव मुखमंडिका ।

नवमो नैगमेयश्च यः पितृग्रहसंज्ञितः ॥ ३ ॥

इनमेंसे प्रथम ( प्रधान ) ग्रह स्कंद है फिर स्कंदापस्मार शकुनी रेवती पूतना अंधपूतना ॥ २ ॥ शीतपूतना तथा मुखमंडिका और नवां नैगमेय ग्रह यह पितृसंज्ञक है ( यह मातापिताके समान बालककी रक्षा करता है इससे इसे पितृसंज्ञक कहा है ) ॥ ३ ॥

धात्रीमात्रोः प्राक्प्रदिष्टापचाराच्छौचभ्रष्टान्मंगलाचारहीनान् ।

त्रस्तान्हृष्टांस्तर्जितान्क्रंदितान्वा पूजाहेतोर्हिंस्युरेते कुमारान् ॥ ४ ॥

ऐश्वर्यस्थास्तेन शक्या विशंतो देहं द्रष्टुं मानुषैर्विश्वरूपाः ।

आप्तं वाक्यं तत्समीक्ष्याभिधास्ये लिङ्गान्येषां यानि देहे भवन्ति ५

धात्री ( धाय ) या माता के पूर्वकथित अपचार ( जो शारीरिक स्थान में कहे जाचुके हैं ) उनके होनेसे बालकोंको तथा जो शौचसे भ्रष्ट बालक हों उन्हें और मंगलाचारसे हीन हों उन्हें तथा डराये हुओंको और हृष्ट बालकों को तथा ताडनादिसे हुओंको और जो क्रंदित हों ऐसे बालकोंको ये ग्रह पूजा और बलि मिलनेके लोभसे मारते हैं ( अर्थात् ये इस लिये बालकोंको पीडा देते हैं कि ऐसा करनेसे इनको पूजा और बलि मिले ) ॥ ४ ॥ ये ग्रह विश्वरूप ( व्यापक ) हैं इससे ऐश्वर्यमें स्थितहुए ये उसीके बलसे मनुष्यों

( बालकों ) के देहमें दृष्टिमात्रसे प्रविष्ट होसकतेहैं इसमें आप ऋषियोंके वाक्योंको देखकर जो जो लक्षण इनके कारणसे देहमें होतेहैं उनको हम वर्णन करतेहैं ॥ ५ ॥

## स्कंदग्रह पीडित बालक के लक्षण ।

शूनाक्षः क्षतजसगंधिकस्तनद्विद्वक्रास्यो हतचलितैकपक्ष्मनेत्रः ।

उद्विग्नः सुलुलितचक्षुरल्परोदो स्कंदातौ भवति च गाढमुष्टिवर्चाः ६

जिसकी आंखके डोले सूजे हों रुधिरकीसी गंध आवे स्तनपान नहीं करे मुँहको विशेषकर टेढ़ा रखे एकनेत्रकी पलकें और नेत्र ज्यादा फरके उद्विग्न रहे आंखें झपीसी रहें कम रोवे मुट्टी बंद रखे और मल गाढ़ा हो ये लक्षण होनेसे स्कंदग्रह पीडित बालक है ऐसा जाने ॥ ६ ॥

## स्कंदापस्मार के लक्षण ।

निःसंज्ञो भवति पुनर्भवेत्संज्ञः संरब्धः करचरणैश्च नृत्यतीव ।

विण्मूत्रे सृजति विनद्य जृम्भमाणः फेनं च प्रसृजति तत्सखाभिपन्नः ७

कभी बालक बेहोश होजावे और फिर होशमें आजावे शरीर मूझासा हो हाथपावोंको नचाता रहे चिल्लाकर या रोकर मलमूत्र करे और जंभाई ज्यादा ले और मुँहसे झाग आवें ये लक्षण स्कंदापस्मारके हैं ॥ ७ ॥

## शकुनी और रेवतीग्रहके लक्षण ।

स्रस्तांगो भयचकितो विहंगगंधिः संस्त्रावित्रणपरिपीडितः समं-

तात् । स्फोटैश्च प्रतर्ततनुः सदाहपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः

क्षतः शकुन्या ॥ ८ ॥ रक्तास्यो हरितमलोऽतिपांडुदेहः श्यावो

वा ज्वरमुखपाकवेदनार्तः । रेवत्या व्यथितर्तनुश्च कर्णनासं

मृद्नाति ध्रुवमभिपीडितः कुमारः ॥ ९ ॥

बालकका अंग शिथिल होजावे भयसे चकितसा हो और शरीरमें पक्षीकी-सी गंध आवे और शरीर स्त्रावयुक्त व्रणोंसे पीडित हो और दाह और पाक वाले फोड़े फुन्सियोंसे शरीर व्याप्त होवे ये लक्षण शकुनीग्रहसे क्षत हुए

( श्लो० ६ ) क्षतजसगंधिकः रक्तगंधिः ।

( श्लो० ७ ) विनद्येति । शब्दं कृत्वा विण्मूत्रे सृजतीत्यर्थः । फेनं मुखात्प्रसृजतीति भावः । तत्सखा स्कंदस्य सखा स्कंदापस्मार एव ।

( पीडित हुये ) बालकके होतेहैं ऐसा जानना ॥ ८ ॥ बालकका मुँह लाल रहे और मल हरे रंगका होवे और शरीरका रंग अति पांडु ( सुपेदी लिये पीला ) हो अथवा श्याम हो और ज्वर मुखपाक वेदना इनसे पीडित हो और कान नाक इन्हें विशेष रगड़े ऐसा बालक रेवतीग्रहसे पीडित होताहै ९

### पूतना और अंधपूतना के ल० ।

स्रस्तांगः स्वर्पति मुखं दिवा न रात्रौ विड्विन्नं सृजति च का-  
कतुल्यगंधिः । छर्द्यातो हृषिततनूरुहः कुमारस्तृष्णालुर्भवति  
च पूतनागृहीतः ॥ १० ॥ यो द्वेष्टि स्तनमतिसारकासहिक्का-  
छर्द्दीभिर्ज्वरसहिताभिरर्द्यमानः । दुर्वर्णः सततमधःशयोऽम्ल-  
गंधिस्तंबूयुर्भिषजोऽन्धपूतनार्तम् ॥ ११ ॥

शिथिल शरीर हो दिन और रात मुखसे नींद नहीं आवे फटे मलका दस्त हो कागकीसी गंध शरीरमें हो वमन भी हो रोमांच हों तृषा अधिक हो ये लक्षण पूतनाग्रहजुष्ट बालक के होतेहैं ॥ १० ॥ जो बालक स्तनसे द्वेष रखे ( अर्थात् माताके स्तन नहीं पीवे ) और अतिसार खांसी हिचकी वमन और ज्वर इनसे पीडित हो वर्ण बिगड जावे सोते समय नीचेको मुँह करके सोवे खट्टी २ गंध आवे ऐसे बालकको अंधपूतनासे पीडित कहते हैं ॥ ११ ॥

### शीतपूतना और मुखमंडिकाके लक्षण ।

उद्विग्नो भृशमतिवेपते प्ररुघात्संलीनः स्वपिति च यस्य चात्र-  
कूजः । विस्रांगो भृशमतिसार्यते च यस्तं जानीयाद्विषगिहै  
शीतपूतनार्तम् ॥ १२ ॥ म्लानांगः सुरुचिरपाणिपादवक्रो  
बह्वाशी कलुषशिरावृतो दरो यः । सोद्वेगो भवति च मूत्रतु-  
ल्यगंधिः स ज्ञेयः शिशुरथ वक्रमंडिकार्तः ॥ १३ ॥

बालक उद्विग्न रहे बारबार खूब कांपे बहुत रोवे कुम्हलायासा रहे और सोते समय पेटकी आँत गुडगुड शब्द करें शरीरमें कच्चे ( रक्त ) कीसी गंध आवे बारबार अतिसार हो ऐसे बालकको शीतपूतना नामक ग्रहसे पीडित जानना चाहिये ॥ १२ ॥ यदि बालकका अंग मलीन हो और हाथ पांव मुँह

सुंदर हों तथा बहुत भोजन करे (या खूब स्तनपान करे) और पेटपर नीलीर-  
नसें चमकें और उद्वेगयुक्त हो मूत्रकीसी गंध आवे ऐसा बालक मुखमंडिका  
नामक ग्रहसे पीडित जानना ॥ १३ ॥

### नैगमेयके लक्षण ।

यः फेनं वमति विनम्यते च मध्ये सोद्वेगं विलपति चोद्ध-  
मीक्ष्यमाणः । ज्वर्येत प्रततमथो वसासुगंधिर्निःसंज्ञो भवति  
हि नैगमेयजुष्टः ॥ १४ ॥

जो बालक मुँहसे झाग डाले बीचमेंसे नवनव जाय उद्वेग युक्त विलाप करे  
( रोवे ) ऊपरको देखे बराबर ज्वर बना रहे और चरबीकीसी गंध आवे  
कभी बेहोशभी होजावे ऐसा बालक नैगमेय नाम ग्रहसे पीडित होताहै ॥ १४ ॥

### साध्यता और असाध्यता ।

प्रस्तब्धो यः स्तनद्वेषी मुह्यते चाविशन्मुहुः ।

तं बालं न चिराद्धंति ग्रहः संपूर्णलक्षणः ॥ १५ ॥

विपरीतमतः साध्यं चिकित्सेदचिरार्दितम् ॥ १६ ॥

जो बालक अकड़ा हुवासा होजावे ( अर्थात् देह कड़ा पड़जावे ) और  
दूध नहीं पीवे और बेहोश होजावे और बार बार आवेश ( वेग ) होवे और  
सब पूरे लक्षण हों वह असाध्य होता है उसे ग्रह शीघ्र मृत्यु करताहै ॥ १५ ॥  
और इनसे विपरीत साध्य होताहै ग्रहजुष्टकी शीघ्र चिकित्सा करनी चाहिये  
( जादे दिनका रोग नहीं होने देवे ) ॥ १६ ॥

### ग्रहजुष्टका सामान्य यत्न ।

गृहे पुराणहविषाऽभ्यर्ज्य बालं शुचौ शुचिः ।

सर्वपांश्रप्रकिरेत्तेषां तैलैर्दीपं च कारयेत् ॥ १७ ॥

सदा सन्निहितं चापि जुहुयाद्व्यवाहनम् ।

सर्वगंधौषधीबीजैर्गंधमाल्यैरलंकृतम् ॥ १८ ॥

( श्लो० १५ ) मुह्यते मूर्च्छां प्राप्नोति तं न चिरात् हंति शीघ्रमेव हंतीत्यर्थः ।

( श्लोक १८ ) सर्वगंधौषधीबीजैः तैः । सर्वगंधा एलादिगणे परिपठिता औषधीनां  
बीजानि यवादयः तैर्जुहुयादित्यर्थः ॥

अग्नये कृतिकाभ्यश्च स्वाहा स्वाहेति संस्मरन् ।

नमः स्कंदाय देवाय ग्रहाधिपतये नमः ॥ १९ ॥

शिरसा त्वाऽभिवंदेऽहं प्रतिगृह्णीष्व मे बलिम् ।

निरुजो निर्विकारश्च शिशुर्मे जायतां ध्रुवम् ॥ २० ॥

इत्युत्तरतन्त्रे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

मनुष्य स्वयं पवित्र होकर और घरको पवित्र करके वहां सुपेद सरसों बखेर देवे और बालकको पुराने घृतसे चुपड़कर मर्दन करे और घरमें सरसोंके तैलका दीपक जलावे ॥ १७ ॥ और सदा ( नित्य ) गंधमालावोंसे अलंकृत होकर सावधानीसे अग्निमें हवन करे सर्वगंधा और औषधीके बीजों यवादिके आहुति देवे ॥ १८ ॥ और आहुति देते समय यह मंत्र पढ़े कि अग्नये स्वाहा कृतिकाभ्यः स्वाहा ऐसे बोलता जावे और स्मरण करता जावे और नमः स्कंदाय यह मंत्र पढ़ पढ़ कर प्रार्थना करे और बलिदान देवे मंत्रक अर्थकी वहां आवश्यकता नहीं परंतु अर्थ उसका यह है कि स्कंद जो सब ग्रहोंके अधिपति हैं उनको नमस्कार हो हे स्कंद तुमको मैं शिर झुकाकर नमस्कार करता हूं आप मेरी बलिको ग्रहण करो और मेरा बालक रोग आर विकारसे रहित हो जावे ( ऐसी कृपा करो ) ॥ १९ । २० ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे कौमारभृत्ये सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

## अष्टाविंशोऽध्यायः २८.

अथातः स्कंदग्रहप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम स्कंदग्रहके प्रतिषेध ( अर्थात् स्कंदग्रहपीडित बालककी चिकित्सा ) का व्याख्यान करते हैं ॥

### परिषेक और अभ्यंग ।

स्कंदग्रहोपसृष्टानां कुमारैणां च शस्यते ।

वार्तग्रद्रुमपत्राणां निःकार्थः परिषेचने ॥ १ ॥

तेषां मूलेषु सिद्धं च तैलमभ्यंजने हितम् ।

सर्वगंधासुरामंडकैटय्यावापमिष्यते ॥ २ ॥

स्कंदग्रहसे पीडित बालकोंको वायुनाशक वृक्षोंके पत्तोंके काथसे परिषेक ( स्नान ) कराना श्रेष्ठ होता है ॥ १ ॥ और उन्हींके मूलसे तैल सिद्ध करे



सिद्ध होनेमें सर्वगंधा मुराका मंड और कैटर्य ( महानिंब ) इनको डाले फिर इस तैलका मर्दन करना हित है ॥ २ ॥

## पान धूपन और धारण ।

देवदारुणि रास्नायां मधुरेषु दुमेषु च ।

सिद्धं सर्पिश्च सक्षीरं पानमस्मै प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥

सर्षपाः सर्पनिर्मोको वचा काकादनी घृतम् ।

उष्ट्राजाविगवां चैव रोमाण्युद्धूपनं शिशोः ॥ ४ ॥

सोमवल्लीमिंद्रवल्ली शमी बिल्वस्य कंटकान् ।

मृगादन्याश्च मूलानि ग्रथितान्येव धारयेत् ॥ ५ ॥

देवदारु रास्ना और मधुरद्रव्य ( काकोल्यादि ) इनमें सिद्ध किया हुआ घृत दूधयुक्त पिलावे ॥ ३ ॥ और सरसों साँपकी काँचली वच काकादनी घृत तथा ऊंट बकरी भेड़ और गौके रोम इन सबको मिलाकर “धूनी देना” ( बालकको इनका धुँवाँ लगाना ) ॥ ४ ॥ सोमवल्ली ( सोमलता ) इंद्रवल्ली ( इंद्रवृक्ष ) जांट बिल्ववृक्षके कांटे और इंद्रायनकी जड़ इनको गूथकर ( या गांठम बांधकर ) गले या हाथमें धारण करे ॥ ५ ॥

रक्तानि माल्यानि तथा पताका रक्ताश्च गंधा विविधाश्च  
भक्ष्याः । घंटा च देवाय बलिर्निवेद्यः सकुक्कुटः स्कंदग्रहे हि-  
ताय ॥ ६ ॥ स्नानं त्रिरात्रं निशि चत्वरेषु कुर्यात्पुनः शालि-  
यवैर्नवैस्तु । अद्भिश्च गायत्र्यभिमंत्रिताभिः प्रज्वालनं चाहुति-  
भिश्च बह्वैः ॥ ७ ॥

रक्तपुष्पोंकी माला ( या रक्तपुष्प ) तथा लाल झंडियां और अनेक प्रकारकी मुगंध ( लोंग इलायची इतर इत्यादि ) तथा कई प्रकारके भक्ष्य ( बड़पु आदि ) तथा घंटा और एक मुरगा इन सबको स्कंदके स्थान ( चौराहे ) में बालकके हितके लिये बलि ( भेंट ) देना चाहिये ॥ ६ ॥ और तीन दिन रातके समय चौराहेमें स्नान करना और गायत्रीसे अभिमंत्रित जल तथा नये यव और चावलसे प्रज्वलित अग्निमें हवन करना चाहिये ॥ ७ ॥

रक्षामृतः प्रवक्ष्यामि बालानां पापनाशिनम् ।

अहन्यहनि कर्तव्या या भिषक्भरतंद्रितैः ॥ ८ ॥

तपसां तेजसां चैव यशसां वपुषां तथा ।  
 निधानं योव्ययो देवः स ते स्कंदः प्रसीदतु ॥ ९ ॥  
 ग्रहसेनापतिर्देवो देवसेनापतिर्विभुः ।  
 देवसेनारिपुहरः पातु त्वां भगवान्गुहः ॥ १० ॥  
 देवदेवस्य महतः पावकस्य च यः सुतः ।  
 गंगोमाकृत्तिकानां च स ते शर्म प्रयच्छतु ॥ ११ ॥  
 रक्तमाल्यांबरः श्रीमात्रक्तचंदनभूषितः ।  
 रक्तदिव्यवपुर्देवः पातु त्वां क्रौंचसूदनः ॥ १२ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे अष्टाविंशोऽध्यायः २८.

बालकोंके ( बालग्रहोंके ) दोष दूर करनेवाली रक्षाका विधान अब हम कहते हैं जो वैद्यको सावधान होकर नित्य करनी चाहिये ॥ ८ ॥ तप तेज और यश तथा शरीर इन सबके निधान और अविनाशी जो स्कंद ( कार्ति केय ) देव हैं सो रक्षा करें ॥ ९ ॥ ग्रहोंकी सेनाके पति और देवताओंकी सेनाक पति और देवसेनाके वैरीके नाशक ऐसे स्कंददेव तुम्हारी रक्षा करें ॥ १० ॥ देवोंके देव ( शिव ) और अग्नि इनके तथा गंगा पार्वती और कृत्तिका इनके पुत्र स्कंद रक्षा करें ॥ ११ ॥ रक्तपुष्पमाला धारण करनेवाले रक्तवस्त्रधारी रक्तचंदनसे भूषित और रक्तदिव्यशरीरवाले स्कंद देव जा क्रौंचके विदारण करनेवाले हैं सो हे बालक तुम्हारी रक्षा करें ॥ १२ ॥

इति सुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

## एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः २९.

अथातः स्कंदापस्मारप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम स्कंदापस्मारग्रहपीडितकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

परिषेचन और अभ्यंग तथा पान ।

विल्वः शिरीषो गोलोमी सुरसादिश्च यो गणः ।

परिषेके प्रयोक्तव्यः स्कंदापस्मारं शांतये ॥ १ ॥

सर्वगंधविपक्रं तु तैलमभ्यंजने हितम् ॥ २ ॥

श्रीरवृक्षकषाये च काकोल्यादौ गणे तथा ।

विपक्तव्यं घृतं वापि पानीयं पयसान्वितम् ॥ ३ ॥

बिल्व शिरस गोलोमी ( सुपेद दूब ) और मुरसादिगण इनका जल स्कंदापस्मारकी शांतिके लिये बालकके परिषेकमें उपयुक्त करें ( अर्थात् इनके काथसे बालकको स्नान करावे ) ॥ १ ॥ तथा सर्वगंधा ( एलादि-गण ) से पकाया हुआ तैल मर्दन करे ॥ २ ॥ और दूधके वृक्षों ( गूलर-आदि ) के काथमें तथा काकोल्यादिगणमें पकाये हुए घृतमें दूध मिलाकर पिलाना उचित है ॥ ३ ॥

उत्सादनं वचाहिंशुयुक्तं स्कंदग्रहे हितम् ।

गृध्रोल्कपुरीषाणि केशा हस्तिनखा घृतम् ॥ ४ ॥

ऋषभस्य च रोमाणि योज्यान्धूपनोपि च ।

अनंतां कुक्कुटीं बिंबीं मर्कटीं चापि धारयेत् ॥ ५ ॥

वच और हींग मिलाकर उबटन करना और गीध उल्क इनकी बीट और पर हाथीके नख घृत बैलके बाल इनको मिलाकर धूनी देना और अनंता ( उत्पल सारिवा ) कुक्कुटी ( शालमली अर्थात् सेमल ) तथा किवाँच ( इनकी जड़को गले या हाथमें ) बांधे ॥ ४ ॥ ५ ॥

बलिदान और स्नान ।

पक्वापक्वानि मांसानि प्रसन्नं रुधिरं पयः ।

भूतौदनो निवेद्यश्च स्कंदापस्मारिणोऽवटे ॥ ६ ॥

चतुष्पथे च कतव्यं स्नानमस्य यतात्मना ॥ ७ ॥

स्कंदापस्मारसंज्ञो यः स्कंदस्य दयितः सखा ।

विशाखसंज्ञश्च शिशोः शिवोस्तु विकृताननः ॥ ८ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

पकाये हुए और कच्चे मांस और स्वच्छ रुधिर ( अजादिका ) तथा दूध और भूतौदन ( उड़दके वाकले ) ये सब स्कंदापस्मार ( ग्रहकी शांतिके लिये ) गतम बालदान करे ( अर्थात् उद्यानमें कोई खड्डा हो उसमें रखवा देवे ) ॥ ६ ॥ और नियमित होकर चौराहेमें रोगी बालकको स्नान करावे ॥ ७ ॥ स्नान कराते

( श्लो० ६ ) अवटे गते इति डल्लनः । केचित् वटे वटवृक्षस्य समीपे इति वदन्ति ।

समय तथा बलि रखते समय यह मंत्र पढ़े स्कंदापस्मारसंज्ञो य इत्यादि इसका अर्थ यह है कि स्कंदका प्यारा मित्र स्कंदापस्मार संज्ञक ग्रह और विकृतमुखवाला विशाख संज्ञक ग्रह बालकको आनंद करनेवाला हो ॥ ८ ॥

( वक्तव्य ) कई विशाखसंज्ञक इसी स्कंदापस्मारको मानते हैं और कई पृथक् मानते हैं वृद्धवाग्भट पृथक् मानते हैं परंतु पृथक् मानें तो भी उसकी शांतिका यही मंत्र और यही विधि समझनी चाहिये ॥

इति सुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

## त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३०.

अथातः शकुनीप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम शकुनीग्रहकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

### परिषेचनादि ।

शकुन्यभिपरीतस्य कार्यो वैद्येन जानता ।

वेतसाम्रकपित्थानां निःकाथः परिषेचने ॥ १ ॥

कषायमधुरैस्तैलं कार्यमभ्यंजने शिशोः ।

मधुकोशीरह्वीवरसारिवोत्पलपद्मकैः ॥ २ ॥

रोध्रप्रियंगुमंजिष्ठागैरिकैः प्रदिहेच्छिशुम् ।

व्रणेषूक्तानि चूर्णानि पथ्यानि विविधानि च ॥ ३ ॥

स्कंदग्रहे धूपितानि तानीहापि प्रयोजयेत् ।

स्कंदग्रहोपशमनं घृतं तच्चेह पूजितम् ॥ ४ ॥

शतावरीमृगैर्वाहनागदंतीनिदिग्धिकाः ।

लक्ष्मणां सहदेवां च बृहतीं चापि धारयेत् ॥ ५ ॥

शकुनीग्रहसे पीडित बालकका यत्न जानकार वैद्यको इस भांति करना चाहिये वेतस आंव कैथ इनके पत्र और जटाका काथ करके बालकको परिषेक करावे ( छोट्टे देवे या स्नान करावे ) ॥ १ ॥ और कषाय ( वटादिक ) और मधुर ( काकोल्यादि ) इनसे सिद्ध किये तैलका बालकके मर्दन करे । तथा मुलेठी खस नेत्रवाला सारिवा कमल और पद्माख ॥ २ ॥ लोध्र प्रियंगु मंजीठ और गेरू इनको पीसकर लेप करे और इन्हींका सूखा चूर्ण व्रणोंपर चुरकावे

तथा सब तरहके पथ्यभी करे ॥ ३ ॥ और स्कंदग्रहके विधानमें कही हुई धूप से यहांभी धूनी देवे तथा स्कंद ग्रह शांति कारक ( स्कंदग्रहके विधानमें कहा हुआ ) घृत पान करनेमें यहांभी श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ और शतावरी इंद्रायन नागदंती ( दांतनी ) छोटी कटेली लक्ष्मणा ( स्वेदकंटकारी ) सहदेवी तथा बड़ी कटेली इनको मिला पोदली बना गले या हाथमें धारण करे ( बांध दे ) ५

तिलतंडुलकं माल्यं हरितालं मनःशिला ।

बलिरेष करंजेषु निवेद्यो नियतात्मना ॥ ६ ॥

निकुंजे च प्रयोक्तव्यं स्नानमस्य यथाविधि ।

कुर्याच्च विविधां पूजां शकुन्याः कुसुमैः शुभैः ॥ ७ ॥

अंतरिक्षचरा देवी सर्वालंकारभूषिता ।

अधोमुखी तीक्ष्णतुंडा शकुनी ते प्रसीदतु ॥ ८ ॥

दुर्दर्शना महाकाया पिंगाक्षी भैरवस्वरा ।

लंबोदरी शंकुकर्णी शकुनी ते प्रसीदतु ॥ ९ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

तिल और चावल पुष्प हरिताल और मैनासिल इनकी बलि करंजके वृक्षके नीचे सावधान होकर देना चाहिये ॥ ६ ॥ और निकुंजमें ( वनमें जहां गहरे झुके वृक्ष हों ) विधि पूर्वक बालकको स्नान करावे और सुंदर पुष्पोंसे शकुनी ग्रहकी विविध प्रकार पूजा करे ॥ ७ ॥ और अंतरिक्षचरा देवी इत्यादि मंत्र पढ़े अर्थ इनका यह है कि आकाशके विचरनेवाली सब आभूषणोंसे भूषित अधो-मुख और तीक्ष्ण तुंडवाली शकुनी देवी तेरी रक्षा करे ॥ ८ ॥ भयंकर रूपवाली बड़े शरीरवाली पिंग नेत्रोंवाली भयानक शब्दवाली लंबे पेटवाली शंकु जैसे खड़े कानवाली शकुनी देवी ( हे बालक ! ) तेरी रक्षा करे ॥ ९ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

## एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३१.

अथातो रेवतीप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम रेवतीग्रहके प्रतिषेधका व्याख्यान करते हैं—

## परिषेकादि ।

अश्वगंधाजशृंगी च सारिवा सपुनर्नवा ।

सहे विदारी च तथा कषायाः सेचने हिताः ॥ १ ॥

तैलमभ्यंजने कार्यं कुष्ठे सर्जरसेऽपि वा ।

धवाश्वकर्णककुभधातकीतिंदुकीषु च ॥ २ ॥

काकोल्यादिगणे चैव पानीयं सर्पिरिष्यते ।

कुलत्थाः शंखचूर्णं च प्रदेहाः सर्वगंधिकाः ॥ ३ ॥

गृध्रोलूकपुरीषाणि यवा यवफलो घृतम् ।

संध्ययोरुभयोः कार्यमेतदुद्धूपनं शिशोः ॥ ४ ॥

वरुणारिष्टकमयं रुचकं सेंदुकं तथा ।

सततं धारयेच्चापि कृतं वा पौत्रजीविकम् ॥ ५ ॥

असगंध मेढासींगी सारिवा सांठी दोनों सहा ( मुद्रपर्णी माषपर्णी ) और विदारी इनका काथ करके सेचन करे ( छिड़के या तरड़े दे या स्नान करावे ) ॥ १ ॥ और कूट तथा रालसे सिद्ध किये तैलका अथवा धव अश्वकर्ण ( शाल-भेद ) कुहा धायके फूल और तिंदुकी ( तेंदू ) इनसे सिद्ध किये तैलका मर्दन करे ॥ २ ॥ और काकोल्यादिगणसे सिद्ध किये घृतका पान करावे और कुलत्था शंखका चूर्ण और सर्वगंधा इनका प्रदेह करे ( शरीरपर लेपन या उब टन करे ) ॥ ३ ॥ गीध और उलूकी बीट यव और बांसके बीज घृत इन्हें मिलाकर दोनों वस्तु संध्याको बालकके धूनी देवे ॥ ४ ॥ और वरना नींव इनका तथा सेंदुक ( सिम्हालू ) का अथवा जीयेपोतेके वृक्षका रुचक ( अर्थात् मणियाँसा ) बनवाकर गलमें धारण करावे ॥ ५ ॥

शुक्लाः सुमनसो लाजाः पयः शाल्योदनं तथा ।

बलिर्निवेद्यो गोतीर्थे रेवत्यै प्रयतात्मना ॥ ६ ॥

( श्लो० २ ) धवाश्वकर्णककुभधातकीतिंदुकीषु कृतं तैलमभ्यंजनार्थमिति ।

( श्लो० ३ ) सर्वगंधिकाः एलादिगणपठिताः ।

( श्लो० ४ ) यवफलो वेशः ।

( श्लो० ५ ) रुचकं ग्रीवाभरणं माणिकसंज्ञकम् । सेंदुकं सिंदुको निर्गुंडी तद्भवमिति ( नि० सं० )

संगमे च भिषक् स्नानं कुर्याद्वात्रीकुमारयोः ॥ ७ ॥

नानावस्त्रधरा देवी चित्रमाल्यानुलेपना ।

चलत्कुंडलिनी श्यामा रेवती ते प्रसीदतु ॥ ८ ॥

लंबा कराला विनता तथैव बहुपुत्रिका ।

रेवती सततं माता सा ते देवी प्रसीदतु ॥ ९ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

मुपेद फूल धानकी खील दूध और पकाये हुये चावल ( भात ) इनकी बलि गोतीर्थमें ( गांवके अगाड़ी जहां गाये खड़ी होती हैं गोबर गोमूत्र करें उस स्थानमें ) उपवास किये हुए मनुष्य रेवतीकी शान्तिके लिये देवे ॥ ६ ॥ और जहां दो या अधिक रस्ते मिलें वहां बालक और धाय ( या माता ) दोनों को स्नान करावे ॥ ७ ॥ और नानावस्त्रधरा देवी इत्यादि मंत्र पढ़े अर्थ इनका यह है कि नाना प्रकारके वस्त्र धारण करनेवाली चित्र विचित्र पुष्प और अनुलेपन धारण करनेवाली चलायमान कुंडलोंवाली श्यामवर्ण रेवती देवी तेरी रक्षा करे ॥ ८ ॥ लंबी कराल झुकीहुई और बहुत संतानों-वाली जो रेवती माता है सो वह देवी ( हे बालक और बालककी धाय या माता ) तुम्हारी रक्षा करे ( तुमपर प्रसन्न हो ) ॥ ९ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

## द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ३२.

अथातः पूतनाप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम पूतनाके प्रतिषेधकी व्याख्या करते हैं ॥

पेकादि यत्न ।

कपोतवंकारलुकौ वरुणः पारिभद्रकः ।

आस्फोता चैव योज्याः स्युर्बालानां परिपेचने ॥ १ ॥

वचा वयस्था गोलोमी हरितालं मनःशिला ।

कुष्ठं सर्जरसं चैव तैलार्थे वर्ग इष्यते ॥ २ ॥

( श्लो० ७ ) कुर्यादिति प्यन्तार्थे । कारयेदिति भावः । भिषक् धात्रीकुमारयोः स्नानं कारयेदिति प्रयोजनम् ।



हितं घृतं तुगाक्षीर्यां सिद्धं मधुरकेषु च ।

कुष्ठतालीसखादिरं चंदनस्यंदने तथा ॥ ३ ॥

देवदारु वचा हिंगु कुष्ठं गिरिकदंबकः ।

एला हरेणवश्चापि योज्या उद्धूपने सदा ॥ ४ ॥

गंधनाकुलिकुंभीका मज्जनो बदरस्य च ।

कर्कटास्थि घृतं चैव धूपनं सर्षपैः सह ॥ ५ ॥

काकादनीं चित्रफलां बिंबीं गुंजां च धारयेत् ॥ ६ ॥

कपोतवंका ( ब्राह्मी ) अरळ वरना नींब आस्फोता ( गिरिकर्णी ) इनको ( इनके काथको ) बालकोंके परिषेक करनेके लिये योजना करना चाहिये॥ वच वयस्था ( गिलोय ) दूब हरताल मैनसिल कूट आर राल इनका तेल बनाकर मर्दन करना ॥ २ ॥ और वंशलोचन तथा मधुर ( काकोल्यादि ) इनमें सिद्ध किया हुआ घृत तथा कूट तालीसपत्र खैर चंदन और स्यंदन ( तिनिश ) इनसे सिद्ध घृत पान करानेमें हित होता है ॥ ३ ॥ देवदारु वच हींग कूट पहाड़ीकदंब इलायची और हरेणु इनका धूप देना ॥ ४ ॥ अथवा गंधनाकुली कुंभीका ( जलकुंभी या गोमा ) और बेरकी मींगी और केकड़ेकी हड्डी और घृत इनको मिलाकर धूनी देना ॥ ५ ॥ तथा काकादनी चित्रफला ( इंद्रायन ) बिंबी और चिरमिठी इनकी पोटली बनाकर धारण करना चाहिये ॥ ६ ॥

## बलिदानादि ।

मत्स्यौदनं च कुर्वीत कृसरां पललं तथा ।

शरावसंपुटे कृत्वा बलिं शून्यगृहे हरेत् ॥ ७ ॥

उच्छिष्टेनाभिषेकेण शिरसि स्नानमिष्यते ।

पूज्या च पूतना देवी बलिभिः सोपहारकैः ॥ ८ ॥

मलिनांबरसंवीता मलिना रूक्षमूर्द्धजा ।

शून्यागाराश्रिता देवी दारकं पातु पूतना ॥ ९ ॥

( श्लो० ९ ) दारकमिति । दृणाति दारणं करोति उदरमिति दारकः बालकः ( इति श० स्तो० )

दुर्दर्शना सुदुर्गथा कराला मेघकालिका ।

भिन्नागाराश्रया देवी दारकं पातु पूतना ॥ १० ॥

इत्युत्तरतन्त्रे द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

मल्लोका मांस तिल तंडुलकी खिचड़ी पल्ल ( तिलकी पिट्टी ) इनको शरावेमें रखकर ऊपर शरावा ढककर शून्य स्थानमें बलि दें ॥ ७ ॥ और आचमनके जूटे पानीसे बालकको शिर समेत स्नान करावे और पूतनादेवीकी बलियों और उपहारोंसे पूजा करे ॥ ८ ॥ और मलिनांबरसंवीता इत्यादि मंत्र पढ़ें अर्थ इनका यह कि मैल वस्त्र पहने हुए मैले और रूखे बालों-वाली शून्यस्थानोंमें बहनेवाली पूतनादेवी दारक ( बालक ) की रक्षा करे ॥ ९ ॥ तथा भयंकर दर्शनवाली दुर्गधवाली कराल और मेघ जैसी काली फूटे मकानोंमें रहनेवाली पूतना देवी बालककी रक्षा करे ॥ १० ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

### त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३३.

अथातोऽधपूतनाप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम अधपूतनाके प्रतिषेधकी व्याख्या करते हैं-

परिषेकमर्दनादि ।

तिक्तकटुमपत्राणां कार्यः क्राथोऽवसेचने ।

सुरासौवीरकं कुष्ठं हरितालं मनःशिला ।

तथा सर्जरसश्चैव तैलार्थमुपदिश्यते ॥ १ ॥

पिप्पल्यः पिप्पलीमूलं वर्गो मधुरको मधु ।

शालपर्णी बृहत्यौ च घृतार्थमुपदिश्यते ॥ २ ॥

सर्वगंधैः प्रदेहंश्च गात्रेष्वर्क्षोश्च शीतलैः ॥ ३ ॥

पुरीषं कौकुटं केशांश्चर्म सर्पत्वचं तथा ।

जीर्णां च भिक्षुसंघाटीं धूपनांयोपकल्पयेत् ॥ ४ ॥

( श्लो० १ ) तिक्तकटुमा निबादयः ।

( श्लो० ४ ) पुरीषं कौकुटं केशांश्चर्म इति कुकुटस्य पुरीषं तस्यैव केशान् चर्म च ।

जीर्णां च भिक्षुसंघाटीमिति भिक्षुरत्र शाक्यभिक्षुः बौद्धाख्यपरिव्राजकः तयोर्जीर्णसंघाटी जीर्णवस्त्रं तदेकदेशो गृह्यते ( नि० सं० ) कुकुटी स्फटिकरचितकुकुटांडसदृश कंदा कुकुटीशरीरवत् कुसुमचित्रवल्ली अनंता सारिवा ( इति दृष्टनः )

कुक्कुटीं मर्कटीं शिबीमनंतां चापि धारयेत् ॥ ५ ॥

तिक्त वृक्षों ( निंबादि ) के पत्तोंके काथको परिषेकके लिये बनावें और मदिरा कांजी कूट हरताल मैनाशिल राल इनको तैल साधन के लिये कहा है ( और इन्हींके तैलका मर्दन करना ) ॥ १ ॥ तथा पीपल पीपलामूल और काकोल्यादिगण शहद शालपर्णी दोनों कटेली इन्हें घृत साधनके लिये उपदेश किया है अर्थात् इनसे घृत सिद्ध करके पान करावे ॥ २ ॥ और सर्वगंध ( एलादिगण ) के शीतल जलको शरीर और नेत्रोंपर लगावे ॥ ३ ॥ मुरगेकी बीट बाल और चर्म तथा सर्पकी कांचली और पुराना ( शाक्यमती संन्यासीका ) वस्त्र ( अर्थात् वस्त्रकी कत्तर या सूत ) इनकी धूनी देना ॥ ४ ॥ और कुक्कुटी ( एकभांतिका सुपेद मुरगेके अंडे जैसा कंद होताहै ) केवांच और सेम तथा अनंता ( सारिवा ) इनको धारण करें ॥ ५ ॥

मांसमामं तथा पक्वं शोणितं च चतुष्पथे ।

निवेद्यमंतश्च गृहे शिशो रक्षानिमित्ततः ॥ ६ ॥

शिशोश्च स्तूपनं कुर्यात्सर्वगंधादिकैः शुभैः ॥ ७ ॥

कराला पिंगला मुंडा कषायांबरवासिनी ।

देवी बालमिमं पीता संरक्षत्वंधपूतना ॥ ८ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

कच्चा और पक्का मांस तथा रुधिर इनकी बलि चौराहेमें देवें और बालककी रक्षाके निमित्त घरके भीतर बालकको ( और दाय या माताको भी ) सर्वगंधा ( एलादिगण ) के सुंदर जलसे स्नान करावे ॥ ६ ॥ ७ ॥ और कराला पिंगला मुंडा इत्यादि मंत्र पढ़ें अर्थ यह है कि करालरूप पिंगवर्णवाली शिरमुंडी हुई कषायवस्त्रधारण करनेवाली अंधपूतना देवी प्रसन्न होकर इस बालककी रक्षा करे ॥ ८ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३४.

अथातः शीतपूतनाप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम शीतपूतनाके प्रतिषेधका व्याख्यान करते हैं-

## परिषेचनादि ।

कपित्थं सुवहां बिंबीं तथा बिल्वं प्रचीवलम् ।  
 नंदीं भल्लातकीं चापि परिषेके प्रयोजयेत् ॥ १ ॥  
 वस्तमूत्रं गवां मूत्रं मुस्तं च सुरदारु च ।  
 कुष्ठं च सर्वगंधां च तैलार्थमवचारयेत् ॥ २ ॥  
 रोहिणीसर्जखदिरपलाशककुभत्वचः ।  
 निःकाथ्य तस्मिन्निःकाथे संक्षीरं विषेचेद्घृतम् ॥ ३ ॥  
 गृध्रोलूकपुरीषाणि वस्तगंधामहेस्त्वचः ।  
 निंबपत्राणि मधुकं धूपनार्थं प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥  
 धारयेदपि लंबां च गुंजां काकादनीं तथा ।  
 नद्यां मुद्गकृतैश्चान्नैस्तर्पयेच्छीतपूतनाम् ॥ ५ ॥  
 देव्यै देयश्चोपहारो वारुणी रुधिरं तथा ।  
 जलाशयांते बालस्य स्नपनं चोपदिश्यते ॥ ६ ॥  
 मुद्गौदनाशना देवी सुराशोणितपायिनी ।  
 जलाशयालया देवी पातु त्वां शीतपूतना ॥ ७ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

कैथ सुवहा ( रास्ना ) बिंबी तथा बिल्व प्राचीवल नंदीवृक्ष और भिलावे  
 इनके काथसे परिषेक करे ॥ १ ॥ बकरीका मूत्र गोमूत्र नागरमोथा और  
 देवदारु कूट और सर्वगंधा इनका तैल साधन करे ॥ २ ॥ रोहिणी ( मंजीठ )  
 सर्ज ( रालका वृक्ष ) खैर ढाक व कुहा इन सबकी छाल लेकर काथ बनावे  
 और उस काथमें दूध युक्तकर घृत पकाले ( और पान करावे ) ॥ ३ ॥ गीध  
 उल्लू इनकी बीट वस्तगंधा ( शालपर्णी या तुलसी ) और सर्पकी कांचली  
 नींबूके पत्ते और मुलेठी इनकी धूनी देवे ॥ ४ ॥ और लंबा ( कटु तुंबी )  
 चिरमिठी और काकादनी ( काक तिंदुकी ) इन्हें धारण करे ॥ ५ ॥ और  
 नदीके किनारे मूंगोंके भोजनसे शीतपूतनाकी वृत्ति करे और देवीके लिये  
 मदिरा और रुधिर इनसे बलि देवे और जलाशयके किनारे बालकको  
 स्नान करावे ॥ ६ ॥ ७ ॥ मुद्गौदनाशना देवी इत्यादि मंत्र पढ़े अर्थ यह

है कि मूंग चावल ( या रंधे मूंग ) खानेवाली और मदिरा और रुधिर पीनेवाली जलाशयमें रहनेवाली शीतपूतना देवी तुम्हारी रक्षा करो ॥ ८ ॥

( वक्तव्य ) इसमें परिषेकके काथमें भिलावे लिखे हैं इन्हें शुद्धकर सावधानीसे उपयोग करें ऐसा न हो यूँही डालकर काथ करनेमें उसके धुवाँसे बनानेवाला मनुष्य सूज जावे स्नान करानेसे स्नान करानेवाला तथा बालक सब सूज जावें इसका विचार रखें ।

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतंत्रे चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

### पंचत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३५.

अथातो मुखमंडिकाप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम मुखमंडिकाके प्रतिषेधकी व्याख्या करते हैं-

### परिषेकादि और उपहार ।

कपित्थविल्वतर्कारीवांशीगंधर्वहस्तकाः ।

कुबेराक्षी च योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने ॥ १ ॥

स्वरसैर्भृगवृक्षाणां तथाजहरिगंधयोः ।

तैलं वसां च संयोज्य पंचेदभ्यंजने शिशोः ॥ २ ॥

मधूलिकायां पयसि तुगाक्षीर्यां गणे<sup>२</sup> तथा ।

मधुरे पंचमूले च कनीयसि घृतं पचेत् ॥ ३ ॥

वचा सर्जरसः कुष्ठं सर्पिश्चोद्धूपने हितम् ।

धारयेदपि जिह्वाश्च चाषचीरल्लिप्तर्पजाः ॥ ४ ॥

वर्णकं चूर्णकं माल्यमंजनं पारदं तथा ।

मनःशिलां चोपहरेद्रोष्ठमध्ये वलिं तथा ॥ ५ ॥

( श्लो० १ ) वांशी वंशलोचनः ।

( श्लो० २ ) अजहरिगंधयोः अजगंधा हरिगंधा अश्वगंधा तयोः ।

( श्लो० ४ ) चाषः पक्षी 'पपीहा' इति लोके विख्यातः चिरल्ली 'चीले' इति ख्यातः ।

( श्लो० ५ ) वर्णकं हरितालं इति शब्दस्तोमः। डल्लनस्तु रोचनिका कपिल्लक इत्याह ।

पायसं सपुरोडाशं बल्यर्थमुपहारयेत् ।

मंत्रपूताभिरद्भिश्च तत्रैव स्नपनं हितम् ॥ ६ ॥

अलंकृता रूपवती सुभगा कामरूपिणी ।

गोष्ठमध्या लयरता पातु त्वा मुखमंडिका ॥ ७ ॥

कैथ बिल्व अरनी वंशलोचन एरंड कुबेराक्षी ( पाटला ) इनका काथ बालकके परिषेकमें उपयोग करे ॥ १ ॥ भंगरेके वृक्षोंका स्वरस तथा अज-गंधा और हरिगंधा ( अश्वगंधा ) इनमें वसायुक्त तैल पकाकर बालकके मर्दन करे ॥ २ ॥ मूर्वा दूध वंशलोचन तथा मधुरगण ( काकोल्यादि ) और लघु पंचमूल इनमें घृत पकावे ( और पान करावे ) ॥ ३ ॥ वच राल कूट और घृत इनकी धूनी देवे और चाष ( पपीहा ) चीरछि ( चील ) तथा सर्प इनकी जीभ ( सुखाकर पोटली बनाकर ) धारण करे ॥ ४ ॥ वर्णक ( हरताल ) चूना ( सुपेदी ) पुष्प और काजल तथा पारा मैनसिल इनसे युक्त गोरे ( गोष्ठ ) में बलि देवे ॥ ५ ॥ और पुरोडाशकी बलि देवे ( अर्थात् खीर और पुरोडाश पिष्ट अन्न इन्हें शरावमें रखकर हरितालादिसे चित्रित करके टीके बिंदेसे बनाकर फूल रखकर गौ इकट्ठी होनेके स्थानमें बलि देवे ) और मंत्रसे पढ़े हुए जलसे बालकको गोष्ठ ही में स्नान करावे ॥ ६ ॥ और अलंकृता रूपवती इत्यादि मंत्र पढ़े. अर्थ यह है कि आभूषणसे भूषित रूपवाली सुंदर कामरूपिणी गोष्ठमें रहनेवाली मुखमंडिका देवी तेरी रक्षा करे ॥ ७ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे पंचत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

## षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३६.

अथातो नैगमेयप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम नैगमेयग्रहके प्रतिषेधका व्याख्यान करते हैं—

परिषेकादि यत्न ।

बिल्वाग्निमंथपूतीकाः कार्याः स्युः परिषेचने ।

सुरासौवीरधान्याम्लैः परिषेकश्च शस्यते ॥ १ ॥

प्रियंगुसरलानंताशतपुष्पाकुटनटैः ।

पचेत्तैलं सगोमूत्रैः दधिमस्त्वम्लकांजिकैः ॥ २ ॥

पंचमूलद्वयकाथे क्षीरे मधुरकेषु च ।

पचेद्घृतं च मेधावी खर्जूरीमस्तकेऽपि च ॥ ३ ॥

वचां वयस्थां गोलोमीं जटिलां वापि धारयेत् ।

उत्सादनं हितं चात्र स्कंदापस्मारनाशनम् ॥ ४ ॥

सिद्धार्थकं वचा हिंशु कुष्ठं चैवाक्षतैः सह ।

भल्लातकाजमोदाश्च हितमुद्धूपनं शिशोः ॥ ५ ॥

मर्कटोलूकगृधाणां पुरीषाणि नवग्रहे ।

धूपः सुप्ते जने कार्यो बालस्य हितमिच्छता ॥ ६ ॥

बिल्व अरणी करंज इनका काथ परिषेकके लिये बनावे और मदिरा कांजी धान्याम्ल ( कांजीका भेद ) इनसे भी परिषेक करना श्रेष्ठ है ॥ १ ॥ प्रियंगु सरला ( तारपीनवृक्ष ) अनंता ( उत्पल सारिवा ) सोंफ तगर इनमें गोमूत्र मिलाकर और दही दहीका तोड़ खटाई व कांजी इनमें तैल पकाके मर्दन करे ॥ २ ॥ दोनों पंचमूल अर्थात् दशमूलके काथमें दूध और मधुर गण ( काकोल्यादि ) डालकर खजूरका गूदाभी मिलाकर घृत पकावे ( और पान करावे ) ॥ ३ ॥ वच गिलोय द्रव जटामांसी इनको धारण करे और स्कंदापस्मार की शांतिमें कहा हुआ उत्सादन ( उबटन ) भी यहां हित है ॥ ४ ॥ सुषेद सरसों वच हींग कूट और अक्षत शुद्ध भिलावे अजमोद इन की बालकको धूनी देवे ॥ ५ ॥ और बंदर उल्लू गीध इनकी बीट की धूनी सोता पड़े बालकका हितवांछार्थी देवे यह नवग्रहों के लिये हित है ॥ ६ ॥

### उपहार ।

तिलतंडुलकं माल्यं भक्ष्यांश्च विविधानपि ।

कुमारपितृमेषाय वृक्षमूले निवेदयेत् ॥ ७ ॥

अधस्ताद्भटवृक्षस्य स्नपनं चोपदिश्यते ।

बलिं न्यग्रोधवृक्षेषु तिथौ षष्ठ्यां निवेदयेत् ॥ ८ ॥

अजाननश्चलाक्षिभूः कामरूपी महायशाः ।

वालं पालयिता देवो नैगमेयोभिरक्षतु ॥ ९ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥



तिल चावल पुष्प अनेक प्रकारके भक्ष्य भोज्यपदार्थ ( लड्डू आदि ) बालक के पितृरूप मेषस्वरूप नैगमेय देवके अर्थ वृक्षकी जड़में निवेदन करे ( रख दे ) ॥७॥ और बड़के वृक्षके नीचे बालकको स्नान करावे और बलिभी बड़के वृक्ष ही के नीचे छठकी तिथिको देवे और यहां ' अजाननश्चलाक्षिभू ' इत्यादि मंत्र पढ़ें अर्थ इस का यह है कि बकरेकेसे मुखवाला और नेत्र धुकुटो हैं चलायमान जिसकी ऐसे कामरूपी बालकोंके पालनेवाले नैगमेय देव बालककी ॥ ८ ॥ ९ ॥

( वक्तव्य ) यहां भी भिलावेकी धूनी देनी लिखी है यहां भी शुद्ध भिलावे को काममें लाना चाहिये कच्चे भिलावोंको धूनीमें कदापि नहीं डालना यदि कभी भ्रमसे ऐसा किया जावे तो घरभर के आदमी सूज जावें इसीसे विचार कर काम करना चाहिये ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

## सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३७.

अथातो ग्रहोत्पत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहां से अगाड़ी अब हम इन ग्रहोंकी उत्पत्तिकी अध्यायका व्याख्यान करते हैं-

नव स्कंदादयः प्रोक्ता बालानां य इमे ग्रहाः ।

श्रीमंतो दिव्यवपुषो नारीपुरुषविग्रहाः ॥ १ ॥

एते गुहस्य रक्षार्थं कृत्तिकोमाग्निशूलिभिः ।

सृष्टाः शरवणस्थस्य रक्षितस्यात्मतेजसा ॥ २ ॥

स्त्रीविग्रहा ग्रहा ये तु नानारूपा मयेरिताः ।

गंगोमाकृत्तिकानां च ते भागां राजसा मताः ॥ ३ ॥

बालकोंके जो स्कंदादिक नव ग्रह ये कहे गये हैं ये श्रीमान् दिव्य शरीर धारी हैं और इनमें से स्त्रीरूपधारी भी हैं और पुरुषरूपधारी भी हैं ॥ १ ॥ ये ग्रह कृत्तिका पार्वती अग्नि और शिवजीने शरके वनमें स्थित हुए अपने तेजसे रक्षा किये हुए. ऐसे स्वामि कार्तिकभगवान्की रक्षा रखनेके लिये उत्पन्न किये ॥ २ ॥ इनमेंसे स्त्रीरूप ( छः ग्रह शकुनी रेवती पूतना अंघ्र पूतना शीतपूतना और मुखमंडिका ) ये गंगा पार्वती और कृत्तिकाके रजो गुण भागकी अधिकतावाले हैं ॥ ३ ॥

नैगमेयस्तु पार्वत्या सृष्टो मेषांमनो ग्रहः ।

कुमारधारी देवस्य गुहस्यात्मसमः सखा ॥ ४ ॥

स्कंदापस्मारसंज्ञो यः सोऽग्निनाग्निसमद्युतिः ।

स च स्कंदसखा नाम विशाख इति चोच्यते ॥ ५ ॥

पार्वतीजीने अपनी तरफसे मेंढकेसे मुखवाला नैगमेय ग्रह रचा यह कुमारधारी और कार्तिकेयजीका अपने समान प्यारा मित्र है ( इसका मुख मेंढे जैसा कार्तिकेयजीके खेलने और प्रसन्न होनेको बनाया ) ॥ ४ ॥ और अग्निने अग्निके समान कांतिवाला स्कंदापस्मार नामक ग्रह रचा यह स्कंदका मित्र है और इसे विशाखभी कहते हैं ॥ ५ ॥

( वक्तव्य ) कई विशाखको पृथक् मानते हैं-तथा वृद्ध वाग्भट बारह ग्रह इस प्रकारसे मानते हैं कि-५ पुरुषशरीरधारी और ७ स्त्रीशरीरधारी-पुरुष शरीरधारी पांच इसप्रकारसे ( १ ) स्कंद ( २ ) विशाख ( ३ ) मेषाख्य ( ४ ) श्वग्रह ( ५ ) पितृसंज्ञक तथा स्त्रीशरीरधारी सात इस भांति ( १ ) शकुनी ( २ ) पूतना ( ३ ) शीतपूतना ( ४ ) दृष्टि पूतना ( ५ ) मुखमंडिका ( ६ ) रेवती ( ७ ) शुष्करेवती ( देखो टिप्पणी )

इनमेंसे सुश्रुतके मतानुसार मेषाख्य और पितृसंज्ञक इन दोनोंका अंतर्भाव नैगमेयमें होता है और विशाखका स्कंदापस्मारमें तथा श्वग्रहका स्कंदमें अंतर्भाव होता है इसी प्रकार स्त्री विग्रहोंमें दृष्टिपूतनाका अंतर्भाव पूतनामें और शुष्करेवतीका अंतर्भाव रेवतीमें होता है ।

स्कंदः सृष्टो भगवता देवेन त्रिपुरारिणा ।

विभर्ति चापरां संज्ञां कुमारं इति स ग्रहः ॥ ६ ॥

बाललीलाधरो योऽयं देवो रुद्राग्निसंभवः ।

मिथ्याचारेषु भगवान्स्वयं नैष प्रवर्तते ॥ ७ ॥

कुमारः स्कंदसामान्यादत्र केचिदपंडिताः ।

गृह्णातीत्यल्पविज्ञाना भ्रुवते देहचिंतकाः ॥ ८ ॥

( श्लो० ५ ) वृद्धवाग्भटोत्राह । “पुरा गुहस्य रक्षार्थं निर्मिताः शूलपाणिना ॥ मनुष्यविग्रहाः पञ्च सप्त स्त्रीविग्रहा ग्रहाः ॥ १ ॥ स्कंदो विशाखो मेषाख्यः श्वग्रहः पितृसंज्ञितः । शकुनी पूतना शीतपूतना दृष्टिपूतना । मुखमंडिनिका तद्देवती शुष्करेवती” इति ( वृ० वा० ) ।

श्रीभगवान् शिवजीने स्कंद स्वयं उत्पन्न किया और इसकी दूसरी संज्ञा ( नाम ) कुमार है ॥ ६ ॥ शिवजी और अभिसे उत्पन्न हुआ कुमार देव बाललीलाके धारण करनेवाला मिथ्याचारी बालकोंमें आप प्राविष्ट नहीं होता अर्थात् कार्तिकेयजी प्रवर्त नहीं होते उनका अनुचर स्कंदसंज्ञक प्रवर्त होता है ॥ ७ ॥ स्कंदग्रहके तथा कार्तिकेय गुह भगवान्के नामोंमें सामान्यता होनेसे कोई मूर्ख विज्ञानसे रहित बालकोंकी देह व्याधिके चिंतक (देखनेवाले) ऐसा कह देतेहैं कि स्वयं स्वामि कार्तिकेयजी भी बालकोंको ग्रसते हैं ( सो उनकी भूल है ॥ ८ ॥

### ग्रहोंका वृत्तियाचन ।

ततो भगवति स्कंदे सुरसेनापतौ कृते ।  
 उपेतस्थुर्ग्रहोः सर्वे दीप्तशक्तिधरं गुहम् ॥ ९ ॥  
 ऊर्ध्वः प्रांजल्यश्चैनं वृत्तिं नः संविधत्स्व वै ।  
 तेषामर्थे ततः स्कंदः शिवं देवमचोदयत् ॥ १० ॥  
 ततो ग्रहांस्तानुवाच भगवान्भगनेत्रहत् ॥ ११ ॥  
 तिर्यग्योनिं मानुषं च दैवं च त्रितयं जगत् ।  
 परस्परोपकारेण वर्तते धार्यतेपि च ॥ १२ ॥  
 देवा मनुष्यान्प्रीणन्ति तैर्यग्योनीस्तथैव च ।  
 वर्तमानैर्यथाकालं शीतवर्षोष्णमारुतैः ॥ १३ ॥  
 इज्यांजलिनमस्कारजपहोमव्रतादिभिः ।  
 नराः सम्यक्प्रयुक्तैश्च प्रीणाति त्रिदिवेश्वरान् ॥ १४ ॥  
 भागधेयं विभक्तं च शेषं किंचिन्न विद्यते ।  
 तद्युष्माकं शुभा वृत्तिर्बालेष्वेव भविष्याति ॥ १५ ॥

जब युवा अवस्था होनेपर स्कंद(श्री स्वामिकार्तिकेयजी)को देवताओंकी सेना-का सेनापति पद प्राप्त हुआ ( अर्थात् शिवजीने इनको जब देवताओंका सेनापति किया ) तब इन दिव्य शक्तिधारी कार्तिकेयजीके सन्मुख सब ग्रह आकर खड़े हुए ॥ ९ ॥ और हाथ जोड़के बोले कि हमारी कुछ वृत्ति ( आज्ञाविका ) निर्माण करनी चाहिये तब कार्तिकेयजी इन्हें शिवजीके पास भेजते भये ॥ १० ॥ तब भगके नेत्र नाश करनेवाले शिवजी इसप्रकार इन ग्रहोंसे बोले ॥ ११ ॥

कि देखो ! यह जगत् तीन भांतिका है तिर्यग्योनि ( पशु पक्षी कीटादि ) और मनुष्य और देवता इनमें परस्पर उपकारके कारणसे वर्त रहा है और स्थित है ॥ १२ ॥ तिर्यक् योनि का और मनुष्यों का उपकार देवता समय समयपर यथोचित शीत उष्ण और वर्षा वायु इनके द्वारा करते हैं ॥ १३ ॥ और मनुष्य यज्ञकरके हाथ जोड़ नमस्कारकरके जपकरके होमकरके और व्रतादिकरके देवताओंको तृप्त करते हैं ॥ १४ ॥ अब कोई विभक्त भाग बाकी इनमें नहीं है इससे तुम्हारी अच्छी वृत्ति बालकोंमें होसकेगी ॥ १५ ॥

## ग्रहोंकी वृत्ति ।

कुलेषु येषु <sup>११</sup>नेर्ज्यंते देवाः पितर एव च ।

ब्राह्मणाः सार्धवश्चैव <sup>१२</sup>गुरवोऽतिथयस्तथा ॥ १६ ॥

निवृत्ताचारशौचेषु परपाकोपभोजिषु ।

उच्छन्नबलिभिक्षेषु भिन्नकांस्योपभोजिषु ॥ १७ ॥

गृहेषु तेषु ये <sup>१३</sup>बालास्तान्गृहीध्वमशंकितः ।

तत्र वो विपुला वृत्तिः पूजा चैव भविष्यति ॥ १८ ॥

एवं ग्रहाः समुत्पन्ना बालान्गृह्णन्ति चाप्यतः ॥ १९ ॥

जिनके कुलमें ( घरमें ) देवयज्ञ और पितृयज्ञ नहीं होते तथा ब्राह्मण साधु गुरु और अभ्यागतका सत्कार नहीं होता ॥ १६ ॥ और जिन्होंने शौच आचार त्याग दिया हो ( भ्रष्टाचारी हो गये हों ) तथा पराये पाक भोजन करते हों ( अर्थात् औरोंहीके यहां खाते फिरते हों ) और अपने यहांसे बलिदान और भीख नहीं देते हों तथा फूटे हुए कांसीके पात्रोंमें खाते हों ॥ १७ ॥ ऐसे घरोंके बालकोंको तुम निःशंक ग्रहण किया करो ( पीड़ा दिया करो ) इससे तुम्हारी वृत्ति बहुत होगी ( उपहार और बलि मिलेगी ) और पूजाभी होगी ( अर्थात् बालकोंके मा बाप अपने बालकके रोगनिवृत्तिके लिये तुम्हारी पूजा करेंगे और बलि भेंट बहुतसी देंगे ) ॥ १८ ॥ इस भांतिसे उत्पन्न हुए ग्रह इस कारण बालकोंको ग्रसते हैं ( पीड़ा देते हैं ) ॥ १९ ॥

## ग्रह पीडितकी कष्ट साध्यता ।

ग्रहोपसृष्टा बालास्तु दुश्चिकित्स्यतमा मताः ।

वैकल्यं मरणं चाशु ध्रुवं स्कंदग्रहे मतम् ॥ २० ॥

स्कंदग्रहोत्पुग्रतमः सर्वेष्वेव यतः स्मृतः ।

अन्यो वा सर्वरूपस्तु न साध्यो ग्रह उच्यते ॥ २१ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

ग्रहोंसे गृहीत बालक दुश्चिकित्स्य होते हैं तथा स्कंदग्रहसे शीघ्रही बालक विकल होजातेहैं या अवश्य मर जाते हैं ॥ २० ॥ स्कंदग्रह सबसे उग्र होता है ( असाध्य होताहै ) अथवा पूरे रूपवाला अन्यग्रहभी असाध्य होता है ॥ २१ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

## अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३८.

अथातो योनिव्यापत्प्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहां से अगाड़ी अब हम स्त्रियोंके योनिरोगोंकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं-

प्रवृद्धलिङ्गं पुरुषं यात्यर्थमुपसेवते ।

रूक्षदुर्बलबालायास्तस्या वार्युः प्रकुप्यति ।

स दुष्टो योनिमासाद्य योनिरोगाय कल्पते ॥ १ ॥

त्रयाणामपि दोषाणां यथास्वं लक्षणेन तु ।

विंशतिर्व्यापदो योनेर्निर्दिष्टा रोगसंग्रहे ॥ २ ॥

मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्तवेन च ।

जायते बीजदोषाच्च दैवाच्च शृणु ताः पृथक् ॥ ३ ॥

जो स्त्री दीर्घलिङ्गवाले ( स्थूललिङ्गवाले ) पुरुषको अत्यंत सेव और यदि वह स्त्री रूक्ष या दुर्बल या बालक हो तो उससे वायु कुपित होजाता है और फिर वह दूषित वायु योनिस्थानमें प्राप्त होकर योनिके रोग करनेवाला होता है ॥ १ ॥ तीनों दोषोंके यथायोग्य लक्षणोंसे योनिके २० रोग रोगसंग्रहमें कहे हैं ॥ २ ॥ स्त्रियोंके मिथ्या आचरणसे तथा आर्तव की दुष्टतासे बीज ( पुरुषके वीर्य ) दोषसे एवं दैवशसे ( पूर्वकृत पापादिसे ) स्त्रियोंके योनिमें रोग होते हैं उनको ( उनके नाम और लक्षणों को ) जुदे जुदे सुनो ॥ ३ ॥

## योनिरोगाके नाम ।

उदावर्ता तथा बंध्या विष्टुता च परिष्टुता ।  
 वातला चेति वातोत्था पित्तोत्था रुधिरक्षरा ॥ ४ ॥  
 वामिनी संसिनी चापि पुत्रघ्नी पित्तला च या ।  
 अत्यानंदा च या योनिः कर्णिनी चरणद्वयम् ॥ ५ ॥  
 श्लैष्मिका सकफा ज्ञेया खंडी च फलिनी तथा ।  
 महती सूचिवक्रा च सर्वजेति त्रिदोषजा ॥ ६ ॥

उदावर्ता बंध्या विष्टुता परिष्टुता और वातला ये पांच प्रकारकी वात दूषित योनि होती हैं. तथा पित्तसे उपजे विकारवाली रुधिरक्षरा ॥ ४ ॥ वामिनी संसिनी पुत्रघ्नी और पित्तला ये पांच हैं. और कफसे दूषित अत्यानंदा कर्णिनी चरणाद्वय ॥ ५ ॥ और श्लैष्मिका ये पांच ( कफ विकारवाली ) हैं ( चरणाद्वयसे प्रयोजन चरणा और अतिचरणा समझें और कई आनंदचरणा और अतिचरणा कहते हैं ) और खंडी फलिनी महती सूचिवक्रा और सर्वजा ये पांच योनि त्रिदोषके विकारवाली होती हैं ॥ ६ ॥

## वातलायोनियोंके लक्षण ।

सफोनिलमुदावर्ता रजः कृच्छ्रेण मुंचति ।  
 बंध्यां नष्टार्तवां विद्याद्विष्टुता नित्यवेदना ॥ ७ ॥  
 परिष्टुतायां भवति ग्राम्यधर्मे रुजा भृशम् ।  
 वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता ॥ ८ ॥  
 चतसृष्वपि चाद्यासु भवत्यनिलवेदनाः ॥ ९ ॥

जिस योनिसे ज्ञात युक्त रजोधर्मका रुधिर कष्टसे ( दरद हो होके ) छूटे वह "उदावर्ता" होती है । जिसके रजो धर्म नहीं होवे ( पर स्तन होवें ) उसे "बंध्या" समझो । और जिसमें नित्य थोड़ी बहुत वेदना रहे वह "विष्टुता" है ॥ ७ ॥ और "परिष्टुता" में मैथुनसे अतिपीडा होती है और "वातला" खरदरी और करड़ी तथा शूल और वेदनासे पीडित होती है ॥ ८ ॥ और आदिकी चारोंमें भी वायुकी वेदना होतीही है ॥ ९ ॥

## पित्तदूषितयोनियोंके लक्षण ।

सदाहं प्रकिरत्यस्रं यस्याः सा लोहितक्षरा ।  
 सवातमुद्गिरेद्वीजं वामिनी रजसा युतम् ॥ १० ॥  
 प्रस्रंसिनी स्यंदते तु क्षोभिता दुःप्रसूश्च या ।  
 स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंस्त्रवात् ॥ ११ ॥  
 अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता ।  
 चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ १२ ॥

जिसमेंसे दाहयुक्त रुधिर निकले वह “ लोहितक्षरा ” है और जो वायु युक्त तथा रजयुक्त बीजको उगल दे वह “ वामिनी ” होती है ॥ १० ॥ और जो स्रवती रहे और क्षुभित होजावे ( व्याकुलतासी हो ) और दुःखस प्रसव हो उसे संसनी जानो और जो ठैरे ठैरे गर्भको रक्तस्रावसे नष्टकर देवे उसे पुत्रघ्नी कहते हैं ॥ ११ ॥ और जिसमें अत्यंत दाह और पाक हो ज्वर भी होजावे वह पित्तला योनि होती है और आदिकी चार पित्तज-योनियों में भी पित्तके चिह्न दाहपाकादि होते हैं ॥ १२ ॥

## कफ दूषितयोनि ।

अत्यानंदा न संतोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति ।  
 कर्णिन्यां कर्णिका यौनौ श्लेष्मासृग्भ्यां तु जायते ॥ १३ ॥  
 मैथुनाचरणात्पूर्वं पुरुषादतिरिच्यते ।  
 बहुशश्चातिचरणादन्या बीजं न विदन्ति ॥ १४ ॥  
 श्लेष्मला पिच्छला योनिः कंडूयुक्ताऽतिशीतला ।  
 चतसृष्वपि चाद्यासु श्लेष्मलिङ्गोच्छ्रितिर्भवेत् ॥ १५ ॥

( श्लो० १३ ) ग्राम्यधर्मेण मैथुनेन कर्णिकामांसस्य कर्णिकारोग्रंथिरिति ( भा० मि० )

( श्लो० १४ ) अतिरिच्यते पुरुषात्पूर्वं अतिरिच्यते अत्यर्थं कंडूयते ( इति डल्लनः )

भावमिश्रस्तु अतिरिच्यते रजो मुंचतीत्यर्थ इति प्राह । अन्या बहुशोऽतिचरणात् वारं वारं बहुशो रजोविमोचनात् अथवा बहुशो अतिमैथुनाचरणात् रिच्यते इत्यर्थः । अन्या बीजं न विदन्तीत्यत्र तयोर्बीजं न तिष्ठतीति पाठांतरम् । मैथुनाचरणात्पूर्वमित्यत्र ‘ मैथुने चरणापूर्वं पुरुषादतिरिच्यते ’ इति पाठांतरम् । चरणा मैथुने पुरुषादतिरिच्यते इति भावः ।



जिसको मैथुनसे संतोषही न हो वह अत्यानंदा होती है जिस योनिमें कफ रुधिरसे कर्णिका ( कंगूरेसे ) होजावे वह कर्णिनी है ॥ १३ ॥ जो पुरुषके मैथुनाचरणसे पहले ही स्खलित होजावे वह अचरणा है तथा जो बहुतही अधिक देरतक विशेष मैथुनसे स्खलित हो वह अतिचरणा कहाती है ये बीजको धारण नहीं कर सकतीं ॥ १४ ॥ और जो सदा गीली खाज-युक्त और अति शांतल रहे वह श्लेष्मला होती है और आदिकी चारों कफ दूषित योनियों ( अत्यानंदादि ) में भी कफके चिह्न कंडू आदि विशेष करके होतेहैं ॥ १५ ॥

### त्रिदोषदूषितयोनियोंके लक्षण ।

अनार्तवस्तना षंडी खरस्पर्शा च मैथुने ।

अतिकायगृहीतायास्तरुण्याः फलिनी भवेत् ॥ १६ ॥

विवृत्तातिमहायोनिः, सूचीवक्राति संवृता ।

सर्वलिंगसमुत्थाना सर्वदोषप्रकोपजा ॥ १७ ॥

चतसृष्वपि चाद्यासु सर्वलिंगोच्छ्रितिर्भवेत् ।

पंचासाध्या भवंतीमा योनयः सर्वदोषजाः ॥ १८ ॥

जिसके न तो रजोधर्म हो और न स्तन हों और मैथुनमें खर्दरापन मालूमदे वह षंडी होतीहै और स्थूल मेढ़वाले पुरुषसे ग्रहण करी हुई तरुणी ( छोटी अवस्थावाली स्त्री ) की योनि फलिनी ( अंडाकृति ) होजाती है ( इसमें कई अफलिनी ऐसाभी अर्थ करते हैं अर्थात् संतान रहित हो जाती है ) ॥ १६ ॥ और जो जियादह फटी हुई चौड़ी अधिक हो वह "महायोनि" कहलाती है तथा जो बहुतही सूक्ष्म सुखवाली हो अर्थात् जिसका बहुत बारीक छिद्रहो वह "सूचीवक्रा" होती है और जिसमें सब दोषोंके उपद्रव और लक्षण हों वह "सर्वदोषजा" होती है ॥ १७ ॥ और आदिकी चारों षंडी आदिमेंभी सब दोषोंकी उल्वणताके चिह्न होतेहैं ये सर्व दोषज विकारवाली पांचों योनि असाध्य होती हैं ॥ १८ ॥

( श्लो० १६ ) 'अतिकायगृहीतायास्तरुण्याः फलिनी भवेत्' इत्यत्र 'अतिकायगृहीताया तरुण्यफलिनी भवेत्' इति पाठांतरम् । तत्र अफलिनी संतानरहिता इत्यर्थः । तथा केचिन्महामेढ्रगृहीताया बालाया अंडिनी भवेदिति पाठांतरं मन्यन्ते ।

## योनिरोगोंकी चिकित्सा ।

प्रतिदोषं तु साध्यासु स्नेहादिक्रम इष्यते ।

दद्यादुत्तरवस्तींश्च विशेषेण यथोदितान् ॥ १९ ॥

साध्य योनिरोगोंमें स्नेहादिक्रम करना श्रेष्ठ है और उपदेशके अनुसार उत्तरवस्ति विशेष करके देनी चाहिये ॥ १९ ॥

## वातादिदूषितयोनियोंकी चिकित्सा ।

कर्कशां शीतलां स्तब्धामपस्पर्शा च मैथुने ।

कुंभीस्वेदैरुपचरेत्सानूपौदकसंयुतैः ॥ २० ॥

मधुरौषधसंयुक्तान्वेसवारांश्च योनिषु ।

निक्षिपेद्धारयेच्चापि पिचुतैलमतंद्रितः ॥ २१ ॥

कर्कश ( खरदरी ) शीतल स्तब्ध ( करड़ी ) तथा मैथुनमें अपस्पर्शा ( दुस्पर्शा ) हो उसको जल किनारेके और जलके जीवोंके मांस युक्त कुंभी स्वेदसे उपचार करें ( अर्थात् घड़ेमें वायु नाशक द्रव्य और आनूपौदक मांस का काथकर उससे स्वेदित करे ) ॥ २० ॥ और मधुर औषधों ( काकोल्यादि ) से युक्त वेसवार बनाकर योनिमें डाले अथवा रखे तथा नींबूका तैल सावधानीसे लगावे ॥ २१ ॥

धावनानि च पथ्यानि कुर्वीतापूरणानि च ।

ओषचोषान्विता सूक्तं कुर्याच्छीतं विधिं भिषक् ॥ २२ ॥

दुर्गंधां पिच्छलां चापि चूर्णैः पंच कषायजैः ।

पूरयेद्राजवृक्षादिकषायैश्चापि धावनम् ॥ २३ ॥

योन्यां तु पूयस्त्राविण्यां शोधनद्रव्यसंभृतैः ।

सगोमूत्रैः सलवणैः पिंडैरापूरणं हितम् ॥ २४ ॥

जिसमें दाह और चोष हो उसे धोना ( क्षीर वृक्षादिके काथसे धोना ) और यथायोग्य पूरण करना पथ्य है तथा शीतल विधि वैद्यको करनी उचित है ॥ २२ ॥ जो दुर्गंधित हो या पिच्छल ( मलीन ) हो उसे पंच कषाय ( वट गूलर पिलखन वकुल और गर्धभांडवृक्ष इन ) के चूर्णसे पूरण करे तथा राजवृक्षादिके काथसे धुलाते रहें ॥ २३ ॥ और जिस योनिमेंसे पीप राध बहती हो उसे शोधन द्रव्यों ( मिश्रकाध्यायोक्त द्रव्यों ) में गोमूत्र

और लवण मिलाकर पिंडा ( पोटली ) बनाकर उसे योनिमें पूरण करे ( रखावे ) ॥ २४ ॥

बृहतीफलकल्कस्य द्विहरिद्रायुतस्य च ।

कंडूमतीमपस्पर्शा पूरयेद्दूपयेत्तथा ॥ २५ ॥

वैर्ति प्रदद्यात्कर्णिन्यां शोधनद्रव्यैसंभृताम् ॥ २६ ॥

प्रसंसिनीं घृताभ्यक्तां क्षीरस्विन्नां प्रवेशयेत् ।

पिधाय वेसवारेण ततो बंधं समाचरेत् ॥ २७ ॥

कडूवाली तथा अपस्पर्श ( स्पर्श शक्ति बिगड़ गई हो ) ऐसी योनिकों बड़ी कटेलीके कल्कमें दोनों हलदी मिलाकर पूरण करे ( पोटली रखे ) और इन्हीं की धूनी भी देवे ॥ २५ ॥ और कर्णिनी योनि हो तो उसमें शोधन द्रव्योंसे बनाई हुई बत्ती रखे ॥ २६ ॥ और संसनी हो तो उसे घृतसे चुप-डकर दुग्धसे स्वेदित करके ( यथायोग्य शोधनादि द्रव्योंकी पोटली या बत्ती ) प्रवेश करे और ऊपर वेसवार रखकर पट्टी बांध देवे ॥ २७ ॥

प्रतिदोषं विदध्याच्च सुरारिष्टासैवान्भिषक् ।

प्रातः प्रातर्निषेवेत् रसनौदुद्धृतं रसम् ॥ २८ ॥

क्षीरमांसरसप्रायमाहारं विदधीत च ॥ २९ ॥

और वैद्यको चाहिये कि दोषोंको देखकर उसीके अनुसार मद्य अरिष्ट तथा आसव पिलावे और नित्य सबेरे लहसनका रस निकालकर सेवन करावे ॥ २८ ॥ और भोजनमें दूध मांसका रस प्रायः दिया करें ॥ २९ ॥

शुक्रार्तवादयो दोषाः स्तनरोगाश्च कीर्तिताः ।

क्लेशोत्थानानि मूढस्य गर्भस्य विधिरेव च ॥ ३० ॥

गर्भिणीप्रतिरोगेषु चिकित्सा साप्युदाहृता ।

तां सर्वथा प्रयुंजीत योनिर्व्यापत्सु बुद्धिमान् ॥ ३१ ॥

अपप्रजाता रोगांश्च चिकित्सेदुत्तराद्रिषक् ॥ ३२ ॥

इत्युत्तरतन्त्रेऽष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

इति कौमारभृत्यं समाप्तम् ।

वीर्यके दोष और आर्त के दोष ( तथा उनकी शुद्धि ) ( और आदि शब्द से धातुके और उसके दुग्ध दोषादि ) ये सब शारीरिक स्थानमें कहे जाचुके हैं-

तथा स्तनरोगभी ( निदान और चिकित्सा सहित कहे गये हैं और क्लैव्या  
त्य ( अर्थात् पतिके क्लैव्यदोषसे स्त्रीमें वंध्यात्वादि हों ) वे दोष तथा मूढगर्भ  
के विकार ये सब निदान और चिकित्सा स्थानमें कहे गये हैं ॥ ३० ॥ और  
गर्भिणीका वर्ताव और उसके रोग तथा उनकी चिकित्सा भी गर्भिणी  
व्याकरण नामक शारीरक स्थानकी अध्यायमें कहे जाचुके हैं उनका योनि  
रोगके साथ कुछ संबंध हो तो उनको बुद्धिमान विचार कर योनिरोगोंमें  
उनके अनुकूल उपयोग करें ॥ ३१ ॥ और अपप्रजाताके रोग ( अर्थात्  
अकालप्रसव अथवा कष्टप्रसवादिसे जो वायुरोग ज्वर अतिसार शोथ  
आदि होजाया करते हैं उनका यत्न उत्तरतन्त्रोक्त उन्हींउन रोगोंके विधानसे  
करना चाहिये ॥ ३२ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितार्या भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रेअष्टविंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

इति कौमारभृत्यं समाप्तम् ।

## अथ कायचिकित्सा ।

### एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ३९.

अथातो ज्वरप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम ज्वरके प्रतिषेधकी अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ।

### सुश्रुतादिका प्रश्न ।

येनामृतमर्षा मध्यादुद्धृतं पूर्वजन्मनि ।

यतोऽमरत्वं संप्राप्तास्त्रिदशस्त्रिदिवेश्वरात् ॥ १ ॥

शिर्ष्यास्तं देवमासीनं परं च्छुः सुश्रुतादयः ।

व्रणस्योपद्रवाः प्रोक्ता व्रणिनामप्यतः परम् ॥ २ ॥

समासाद्व्यासतश्चैवं ब्रूहि नो भिषजां वर ।

उपद्रवेण जुष्टस्तु व्रणः कृच्छ्रेण सिद्ध्यति ॥ ३ ॥

( श्लो० १ ) त्रिदिवेश्वरात् धन्वंतरेः ।

( श्लो० २ ) व्रणिन उपद्रवा ज्वरातिसारादयः । व्रणस्योपद्रवा दाहराग-  
स्त्रावादयः ।

उपद्रवास्तुं व्रणिनः कृच्छ्रसाध्याः प्रकीर्तिताः ।

प्रक्षीणबलमांसस्य दोषधातुपरिक्षयात् ॥ ४ ॥

तस्मादुपद्रवान्कृत्स्नान्ब्रूहि नः सचिकित्सितान् ।

सर्वकायचिकित्सासु ये दृष्टाः परमर्षिभिः ॥ ५ ॥

ग्रंथ संग्रह कर्ता नागार्जुन कहते हैं कि जिन धन्वंतरिजीने पूर्वजन्ममें जल अर्थात् समुद्रमेंसे अमृत निकाला और जिस त्रिदिवेश धन्वंतरिजीके ( अमृतके प्रभाव ) से देवता अमर हुये ॥ १ ॥ उन्हीं विराजमान धन्वंतरिदेवसे सुश्रुतादिक शिष्य पूछते भये कि हे भगवन् आपने व्रणके उपद्रव तो वर्णन किये अब व्रणी मनुष्योंके उपद्रव ( अर्थात् ज्वर अतिसारादिक ) सब संक्षेप और विस्तारसे हमारे प्रति हे वैद्यवर वर्णन कीजिये क्योंकि उपद्रवयुक्त व्रण कष्टतासे सिद्ध हुवा करताहै ॥ २ ॥ ३ ॥ और व्रणी मनुष्यके ज्वरादि उपद्रव कष्ट साध्य होतेहैं कारण यह कि उसके बलमांसके क्षयसे दोष और धातु सब क्षीण हो जाते हैं ॥ ४ ॥ इससे संपूर्ण उपद्रवोंको चिकित्सा सहित वर्णन कीजिये जो बड़े ऋषियोंने कायचिकित्साके महद्ग्रंथोंमें देखेहैं ॥ ५ ॥

( वक्तव्य ) जो कि यह संहिता शल्य प्रधान है इससे ज्वरादि काय चिकित्साको गौणरूप व्रणीपुरुषके उपद्रवरूपकरके प्रतिपादन करना ही यहां मुख्य उद्देश्य है ॥

( वक्तव्य ) दोष धातु और मल इनके संघातको काय कहते हैं और उसमें होनेवाले ज्वरादिककी चिकित्साको कायचिकित्सा कहते हैं ।

## श्रीधन्वंतरिजीका उत्तर ।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा प्राब्रवीद्विषजां वरः ।

ज्वरमादौ प्रवक्ष्यामि स रोगानीकराद् स्मृतः ॥ ६ ॥

सुश्रुतादिक ऋषियोंके इस प्रकारके वचन सुनकर भिषग्वर श्रीधन्वंतरिजी महर्षि बोले ( सुनों ) मैं अब सबसे पहले ज्वरका वर्णन करताहूं क्योंकि यह सब कायिक रोगसमूहमें राजाके तुल्य है ॥ ६ ॥

( श्लो० ५ ) कायशब्देन दोषधातुमलसंबन्धः उच्यते । तेन तत्र स्थितानां ज्वरादीनां चिकित्सा कायचिकित्सा ( इति नि० सं० )

रुद्रकोपाग्निसंभूतः सर्वभूतप्रतापनः ।

तैस्तैर्नामभिरित्येषां सत्त्वानां परिकीर्तितः ॥ ७ ॥

जन्मादौ निधने चैवं प्रायो विशति देहिनः ।

अतः सर्वविकाराणामयं राजा प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥

ऋते देवमनुष्येभ्यो नान्यो विषहते तु तम् ।

कर्मणा लभते यस्माद्देवत्वं मानुषादपि ॥ ९ ॥

पुनश्चैवं च्युतः स्वर्गान्मानुष्यमनुवर्तते ।

तस्मात्ते देवभागेन सहन्ते मानुषाः ज्वरम् ॥

शेषाः सर्वे विषद्यन्ते तैर्यग्यौना ज्वरार्दिताः ॥ १० ॥

रुद्रकी कोपाग्निसे उत्पन्न हुआ समस्त प्राणियोंका संताप देनेवाला यह ज्वर ( ताप ) रोग है और अन्य प्राणियों गजाश्वादिमें उन्हीं उनके नामसे कहा जाता है ( अर्थात् मनुष्योंके तपको ज्वर कहते हैं इसी प्रकार गजके ज्वरको पालक और घोड़ोंके ज्वरको अभिताप कहते हैं इत्यादि इसी प्रकार हरेक प्राणिकी जातिके ज्वरके और और नाम हैं ) ॥ ७ ॥ जन्मकी आदिसे मरणतक प्रायः यह ज्वर मनुष्यकी देहमें प्रविष्ट होताहै इसीसे यह सर्व रोगोंका राजा है ( अर्थात् बहुतसे रोग ऐसे हैं कि कईयोंको उनमेंसे कोई सारी उमरमें होताही नहीं परंतु ऐसा कोईभी मनुष्य न होगा जिसे ज्वर न आयाहो इसीसे ज्वर सबमें प्रधान है ) ॥ ८ ॥ देवता और मनुष्योंके सिवाय अन्यप्राणी इसे नहीं सहसकते ये मनुष्य भी कर्मफलसे देव योनिको प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥ और फिर भी जब पुण्य कर्मोंका अंत होताहै तब स्वर्गसे लुटकर मनुष्ययोनिमें प्राप्त होतेहैं इससे मनुष्योंमें देवतापनेका अंश होताहै उसीसे मनुष्य भी ज्वरको सहसकतेहैं परंतु अन्यजीव तिर्यक्योनि पशुपक्षी आदि तो ज्वर पीडित होकर उसे नहीं सहसकते किंतु मृत्युकोही प्राप्त होजाते हैं ॥ १० ॥

( श्लो० ७ ) तैस्तैर्नामभिरित्येषामित्यत्र तैस्तैर्नामभिरन्येषामिति पाठांतरम् । अन्येषां सत्त्वानां शरीरेणां गजादीनां तैस्तैः नामभिर्ज्वरः परिकीर्तितः । तदुक्तं वृद्धवाग्भटे । पालको गजेष्वभितापो वाजिष्वलर्कः कुकुरेष्विद्रमदोजलजेषु ज्योतिरोपधीषु चूर्णको धान्येष्वप्सु नीलिका भूमानुषो मानुषेषु ज्वर इति ।

## ज्वरका सामान्य रूप ।

स्वेदावरोधः संतापः सर्वांगग्रहणं तथा ।

विकारौ युगपद्यस्मिन्तस ज्वरः परिकीर्तितः ॥ ११ ॥

स्वेद ( पसीने ) का रुकना संताप होना और सारा शरीर ग्रसितसा हो-  
जाना ये विकार जिसमें एक साथ साथ ही हों उसे ज्वर कहते हैं ॥ ११ ॥

( वक्तव्य ) कई इसमें यह आक्षेप किया करते हैं कि पित्तज्वरमें स्वेदावरोध नहीं होता पसीने आते हैं फिर यह स्वरूप कैसे ठीक हो इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो यह शंका ही बालबुद्धिकी है क्यों कि ये लक्षण सामान्यके हैं और पैत्तिक ज्वर एक विशेष है दूसरे यह कि स्वेदावरोध ज्वरमात्रका हेतु है यदि स्वेदावरोध न हो तो कभी ज्वरमात्र हो ही नहीं सकता पित्त ज्वरमेंभी आरंभमें अवश्यमेव कुछ स्वेदावरोध होताही है फिर अति उष्णताके कारण रोममार्ग खुलजातेहैं और पसीना होजाता है इससे कोई विरुद्धता नहीं परंतु फिर भी भावमिश्रजी अपने ग्रंथ भावप्रकाशमें इस श्लोककी टिप्पणीमें यूं भी लिखते हैं कि “स्विद्यते अनेनेति स्वेदोऽग्निस्तस्याव-  
रोधो दोषराच्छन्नता” अर्थात् जिसके कारणसे स्वेद हों वह अग्नि और उसका अवरोध होना दोषोंसे दबजाना इसे ही स्वेदावरोध समझो कि जठराग्नि दोषोंसे दबजातीहै और कई स्वेदावरोधकी जगह वेगावरोध पाठ मानते हैं परंतु पित्तज्वरमें तो वेगावरोध भी नहीं होता वहां तो “वेगस्तीक्ष्णोतिसारश्च” ऐसा होताहै फिर यह पाठांतर मानना अप्रयोजनीय है ।

## ज्वरकी संख्या ।

दोषैः पृथक् समस्तैश्च द्वंद्वरागंतुरेव च ।

अनेककारणोत्पन्नः स्मृतस्तैर्वैधो ज्वरः ॥ १२ ॥

( श्लो० १२ ) स्वेदावरोधः । स्वेदनिर्गमः । एतच्च प्रायिकं लक्षणम् । पैत्तिके स्वेद-  
निर्गमात् ( इति डल्लनः ) भावमिश्रस्तु इत्याह । ननु पित्तज्वरे स्वेदनिर्गमादेतल्लक्षणम् ।  
व्यभिचरति— तत्रोत्सर्गापवादभावादिति नैज्जटकार्तिककुंडादयः । अन्येतु स्विद्यते  
अनेनेति स्वेदोऽग्निस्तस्यावरोधो दोषराच्छन्नता । संतापः स च देहमानस इति ।  
( श्लो० १२ ) अनंगांतुजैः ज्वरे वातादिलक्षणदर्शनादागंतुजः कथं दोषजाद्विच-  
अत्रोच्यते उत्तरकाले दोषोत्पत्तिः तथा च चरके आगंतुर्हि व्यथापूर्वं जायते पश्चान्निजैर्दोषै-  
रनुबध्यते इति व्यथ पूर्व आगंतुव्याधिरूपदुःखपूर्वमिति ( भा० मि० )





हैं फिर रसके और पसीने बहनेवाले स्रोतोंके मार्गको रोक देतेहैं और शारीरक ( जाठर्य ) अग्निको मंदकरके पाचकाशयसे अग्निको बाहर ( रोमों या त्वचाकी तरफ ) प्राप्त करदेते हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ और सब शरीरमें व्याप्त होकर अपने अपने समय ( प्रावृट् आदि या अहोरात्रके अपने समय ) में ज्वरको उत्पन्न करतेहैं तथा वृद्धि करतेहैं और त्वचाआदिमें अपना र वर्ण प्रगट करतेहैं ( जैसे पित्तज्वरमें पीतता कफज्वरमें शुक्लता इत्यादि ) ॥ १६ ॥

### ज्वरके कारण ।

मिथ्यातियुक्तैरपि च स्नेहाद्यैः कर्मभिर्नृणाम् ।

विविधादभिघाताच्च रोगोत्थानात्प्रपाकतः ॥ १७ ॥

श्रमात्क्षयादजीर्णाच्च विषात्सात्म्यर्तुपर्ययात् ।

ओषधीषुष्पगंधाच्च शोकान्नक्षत्रपीडनात् ॥ १८ ॥

अभिचाराभिशापाभ्यां मनोभूताभिश्चकया ।

स्त्रीणामपप्रजातानां प्रजातानां तथाहितैः ।

स्तन्यावतरणे चैव ज्वरो दोषैः प्रवर्तते ॥ १९ ॥

मिथ्या ( अयोग्य ) या अति युक्त स्नेहपानादि पंचकर्मों ( स्नेहन स्वेदन वमन विरेचन और वस्ति ) इनसे ( अर्थात् इनके बिगाड़से ) तथा अनेक भांतकी चोट आदि लगनेसे रोगोत्थानसे अर्थात् किसी दारुण रोगके उठनेसे ( पैदा होनेसे ) ( डल्लनमिश्रजी रोगोत्थानका अर्थ रोगविपर्यय करते हैं ) तथा प्रपाकसे किसी तीक्ष्ण औषधोंके परिपाकसे ( अथवा रोगोत्थान और प्रपाकसे शारीरक विद्रध्यादिके उठने और उसके पकनेसे ) मनुष्योंको ज्वर होजाताहै ॥ १७ ॥ तथा अतिश्रमसे क्षयसे अजीर्णसे विषसे यथायोग्य ऋतुके विपर्यय होनेसे तीक्ष्ण औषधी और विषैले या तीक्ष्णपुष्पोंकी गंधसे शोकसे नक्षत्रपीडासे ( अर्थात् जन्मराशिसे करड़े ग्रह होनेसे ) ॥ १८ ॥ अभिचारसे ( किसीके तंत्रमंत्रादिसे ) शापसे मनकी शंका ( श्लानि या भयादि ) से तथा भूतादिकी शंकासे मनुष्योंको ज्वर होताहै और स्त्रियोंके अकाल या अयोग्य प्रसव होनेसे अथवा ठीक प्रसव होनेपर अहित आचरण

( श्लो० १७ ) रोगोत्थानाद्वागविपर्ययाद् ( इति डल्लनः ) अन्ये तु रोगोत्थाना दारुणरोगप्रादुर्भावसमांभात् । प्रपाकतश्च उग्रौषधपरिपाकात् । अथवा रोगोत्थानाद् प्रपाकतश्च रोगाणां विद्रध्यादिकानां समुत्थानात् प्रपाकतश्च ।

करनेसे तथा स्तनोंमें दुग्धका अवतरण विशेष होने ( और शिशुसे न पीया जाने ) से भी ज्वर हो जाया करता है ॥ १९ ॥

## शरीर गरम होनेका कारण ।

तैर्वैगवाद्भिर्वहुधा समुद्भूतैर्विमार्गैः ।

विक्षिप्यमानोत्तरग्निर्भवत्याशु बहिश्चरः ॥ २० ॥

रूणद्धि चाप्येषां धातुं यस्मात्तस्माज्ज्वरातुरः ।

भवत्यत्युष्णं गात्रं न च स्थिद्यति सर्वशः ॥ २१ ॥

जब आमाशयांतर्गत दूषित वातादि दोष अति वेगवान् होकर समुद्भूत होते इधर उधर प्रसरणशील होकर तिर्यग्गामी होते हैं तब उनसे प्रेरित और तिरस्कृत करी हुई अंतराग्नि बाहर त्वचा तथा रोममार्गों की तरफ प्रसारित होती है ( अर्थात् भीतरकी अग्नि के परमाणु बाहर को त्वचा की तरफ आजाते हैं ) ॥ २० ॥ और फिर धातु के द्रव भाग ( स्वेद ) को रोक देते हैं इसी से ज्वरवाले मनुष्य का शरीर विशेष गरम होता है और सर्वत्र शरीरमें पसीना भी नहीं आता ( इसमें चकार है इससे किसी ज्वरमें ) ( जैसे पित्तज्वरमें पसीना आभी जाता है ऐसा समझना ) ॥ २१ ॥

( वक्तव्य ) खुलासा यह है कि आमाशयमें भोजन का परिपाक होता है और उससे जो ऊष्म ( बाष्प के परमाणु अर्थात् गरम अवखरे ) पैदा होते हैं और उठते हैं जब वे तिर्यग्गामी होकर ( रसमें मिलके ) बाहर त्वचा की तरफ प्रवर्त होते हैं यही ज्वरका मुख्य हेतु है फिर निज निज कारणसे कुपित हुये जिस जिस दोषके अंशांश इनमें होते हैं वैसेही वैसे ज्वर पैदा करते हैं जैसे यदि इन परमाणुओंमें पित्तका अंश उष्णता अधिक हो तो ये पित्तज्वर पैदा करते हैं और सब लक्षण प्रायः पित्तके उत्कर्ष से पाये जाते हैं और यदि इनमें कफ का अंश बलगम नमी चिकनाई भारापन आदि विशेष हों तो कफज्वर पैदा करते हैं और कफ ही के सब लक्षण प्रगट होते हैं और यदि वायु का अंश रूक्षता लघुता आदि विशेष हो तो वातज्वर पैदा करते हैं और सब लक्षण प्रायः वायु के प्रगट होते हैं इसी प्रकार दो के अंशांश होनेसे द्बिज और तीनों के अंश होने से त्रिदोषज ज्वर उत्पन्न होता है इत्यादि ॥

## ज्वरके सामान्य पूर्वरूप ।

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः ।

इच्छाद्विषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ २२ ॥

( श्लो० २२ ) अरतिः सर्वत्र सुखस्याभावः ।

जृम्भांगमदौ गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ।

अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पत्स्यति ज्वरे ॥ २३ ॥

थकावटसी मालूम होना ( देह गिरीसी जाना ) और अरति बेचैनीसी होना वर्ण विगड़ जाना नेत्रोंमें पानी सा भर भर आना और पदार्थों तथा शीत वायु और धूप इनमें कभी इच्छा होना कभी द्वेष होना ( कभी ये अच्छे मालूम हों कभी बुरे ) ॥ २२ ॥ जम्भाई ज्यादा आना अंगड़ाई आना शरीर भारी होना रोम खड़े होना भोजनमें रुचि न होना तम ( आखोंके अगाड़ी अँधेरा या चक्करसा आना ) आनंद नष्ट होजाना और शीत मालूम होना ये लक्षण, जब ज्वर आनेवाला होता है उसके पहले होते हैं ॥ २३ ॥

### विशेष पूर्वरूप ।

सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भात्यर्थं समीरणात् ।

पित्तान्नयनयोर्दाहः कफान्नान्नाभिनन्दनम् ॥ २४ ॥

सर्वलिङ्गसमवायः सर्वदोषप्रकोपजे ।

द्वयोर्द्वयोस्तु रूपेण संसृष्टं द्वंद्वजं विदुः ॥ २५ ॥

ज्वरके सामान्य पूर्वरूप तो पहले वर्णन होचुके विशेष करके यँ हैं कि वात-ज्वरके पूर्वरूपमें जम्भाई ( तथा अंगड़ाई ) ज्यादा आवें और पित्तज्वरके पूर्वरूपमें नेत्रोंमें दाह हो ( आखें जलने लगें ) ( और रक्तता या पीतता हो ) और कफज्वरके पूर्वरूपमें भोजनसे प्रीति जाती रहै ( और शरीरमें गुरुता हो ) ॥ २४ ॥ और त्रिदोषजके पूर्वरूपमें सबके लक्षण मिलेहुये होते हैं और द्वंद्वज ( अर्थात् दो दोषके ज्वर ) में दो दोषके मिलेहुये लक्षण होते हैं ॥ २५ ॥

### वातज्वरके लक्षण ।

वेपथुर्विषमो वेगः कंठौष्ठमुखशोषणम् ।

निद्रानाशः क्षवस्तंभो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ २६ ॥

( श्लो० २६ ) क्षवस्तंभ इत्यत्र क्षुतस्तंभ इति वा पाठः । विषमो वेगः शरीरोष्णतादिरूपः, गात्रपदे प्रयुक्ते शिरो हृच्छब्दप्रयोगस्तत्र विशेषेण वेदनावोधनार्थः ( इति भा० मि० ) गात्राणां रौक्ष्यमित्यत्र चकाराद्विद्वौक्ष्यमापि ज्ञेयम् । रूक्षग्रहणेनात्र कृष्णारुणवर्णयुक्तमिति ज्ञेयम् । ( इति दल्लनः ) ॥

शिरोहृद्गात्ररुग्बक्रवैरस्यं बद्धविद्धता ।

जुंभाध्मानं तथा शूलं भवत्यनिलजे ज्वरे ॥ २७ ॥

शरीर काँपना विषम वेग होना ( कभी ज्वरमंद होना कभी तेज ) कंठ होठ और मुँह ( तालु ) इनका सूखना नींद न आना छाँक रुकजाना गात्र का रूखापन होना ॥ २६ ॥ शिर हृदय और शरीरमें वेदना होना मुँहका स्वाद विरस होजाना ( बिगड़ना कड़ुवा कषेलासा होजाना ) मल बंधसा होना ( दस्त नहीं आना मलकीटसा सूखकर होजाना ) जंभाई ( अधिक ) आना आफरा होना और शूल ( उदर या अन्य शरीरमें शूल होना ) ये लक्षण वातज्वरमें होते हैं ॥ २७ ॥

### पित्तज्वरके लक्षण ।

वेगंस्तीक्ष्णोतिसारश्च निद्रालपत्वं तथा वमिः ।

कंठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ २८ ॥

प्रलापः कटुता वक्त्रे मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा ।

पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं पित्तिके भ्रम एव च ॥ २९ ॥

ज्वरका वेग तीक्ष्ण हो अतिसार हो ( मल द्रवरूप अर्थात् पतला हो ) निद्रा कम आवे और वमन हुआ करे ( या उबाकी आवे ) कंठ होठ मुँह और नाक इनमें पाक हो ( ये पकजावें ) और पसीना भी आवे ( यहां चकार शब्दसे कभी पसीना पित्तज्वरमें भी नहीं आता ऐसा समझना ) ॥ २८ ॥ प्रलाप होना ( यद्वा तद्वा बकना ) मुँह कटु ( चरकासा ) रहे कभी मूर्च्छा ( बेहोशीसी ) होजावे और शरीरमें दाह हो मद हो तृषा अधिक लगे विष्ठा मूत्र और नेत्रोंमें पीलापन मालूम हो और भ्रमसा रहे ये लक्षण पित्तज्वरके होते हैं ॥ २९ ॥

( श्लो० २७ ) वक्रवैरस्यमित्यत्र वैरस्येन कषायत्वं ग्राह्यम् । तथा चोक्तं चरके । भवन्ति विविधा वातवेदना पादसुप्तता पिंडिकोद्वेष्टनं कर्णस्वनो वक्रकषायता इति ३

( श्लो० २८/२९ ) अतिसारः पित्तस्य तस्य सरत्वात्सद्रवमलप्रवृत्तिः तत्त्वतिसारवत्तस्य ज्वरोपद्रवत्वात् । वमिः यदा पित्तं कफस्थानं याति तदा बोद्धव्यम् । ( इति भा० मि० ) वक्रकटुता इत्यत्र वक्रतिकृत्त्वं इति वा पाठांतरम् । मदः स्फूर्णलैव मत्तता ( इति नि० सं० ) ॥ ३० ॥

## कफज्वरके लक्षण ।

गौरवं शीतमुत्क्लेशो रोमहर्षोऽतिनिद्रता ।

स्रोतोरोधो रुगल्पत्वं प्रसेको मधुरास्यता ॥ ३० ॥

नात्युष्णगात्रता छर्दिरंगसादोऽविपाकता ।

प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेक्ष्णोश्च शुक्लता ॥ ३१ ॥

शरीरमें भारीपन हो सरदी मालूम पड़े उत्क्लेश ( उबकाई आवे या मुँहमें पानीसा भर भर आवे ) और रोमांच हों निद्रा अधिक आवे ( तंद्रासी बनी रहे ) स्रोत रुक जावें शरीरमें वेदना अल्प हो प्रसेक ( मुँहसे लाल बहें ) मुँह मीठासा ( या ल्हिसा हुवासा ) रहे ॥ ३० ॥ शरीर जादा गरम हो वमन हो अंगोंमें थकानसी हो भोजनका परिपाक न हो प्रतिश्याय ( जुखाम ) खाँसी और अरुचि हो तथा नेत्रोंमें सुपेदी हो ( यहां चकारसे मल मूत्र और त्वचा में भी सुपेदी जानना ) ये लक्षण कफज्वरके होते हैं ॥ ३१ ॥

## सन्निपातज्वरके लक्षण ।

निद्रानाशो भ्रमः श्वासस्तंद्रा सुप्तांगताऽरुचिः ।

तृष्णा मोहो मदः स्तंभो दाहः शीतं हृदि व्यथा ॥ ३२ ॥

पक्तिश्चिरेण दोषाणामुन्मादः श्यावदंतता ।

रसना परुषा कृष्णा संधिमूर्द्धास्थिजा रुजः ॥ ३३ ॥

निर्भुग्नकलुषे नेत्रे कर्णौ शब्दरुगन्वितौ ।

प्रलापः स्रोतसां पाकः कूजनं चेतनाच्युतिः ॥ ३४ ॥

स्वेदमूत्रपुरीषाणामल्पशः सुचिरात्सृतिः ।

सर्वजे सर्वलिङ्गानि विशेषं चात्र मे शृणु ॥ ३५ ॥

निद्रा नष्ट होना भ्रम श्वास तंद्रा ये होना अंग सोयेहुयेसे हों अरुचि हो तृष्णा अधिक हो मोह मद स्तंभ ( शरीर रुक जाना ) दाह और शीत होना ( क्षणभरमें दाह होना क्षणमें शीत लगना अथवा भीतर दाह होना बाहर शीत लगना या शरीर शीतल होना ) और हृदयमें व्यथा होना ( दुःखसा

( श्लो० ३०।३१ ) गौरवं गात्राणाम् । उत्क्लेशः श्लेष्मनिष्ठीवनम् । प्रसेको लालास्रावः ।

( श्लो० ३२ ) पक्तिश्चिरेण दोषाणामिति दोषाणां चिरेण परिपाकः ।

रहना या दरद होना ) ॥ ३२ ॥ देरसे दोषोंका पकना उन्माद होना दांत काले पड़जाना जिह्वा खुरदरी और काली होजाना संधि शिर और अस्थियोंमें वेदना होना ( दरद रहना ) ॥ ३३ ॥ अधखुलेसे भैले नेत्र होना कानोंमें शब्द और पीडा होना प्रलाप ( बकवाद ) होना और स्रोतों ( द्वारों ) का पाक होना ( पक जाना ) कंठमेंसे अव्यक्त शब्द होना ( कफ बोलना ) ( या खरखाट होना ) और बुद्धिका नाश होजाना ( होश न रहना ) ॥ ३४ ॥ पसीना मूत्र और दस्त थोड़ा थोड़ा देरसे आना ये लक्षण त्रिदोषज्वरमें होते हैं तथा वातज्वरादि सब तीनों ज्वरोंके लक्षण होते हैं ऐसे सामान्य त्रिदोषज्वरके लक्षण जानों और विशेष लक्षण अगाड़ी और मुनों ॥ ३५ ॥

### इसके विशेष लक्षण ।

नात्युष्णशीतोऽल्पसंज्ञो भ्रांतप्रेक्षी हतस्वरः ।  
 खरजिह्वः शुष्ककंठः स्वेदविण्मूत्रवर्जितः ॥ ३६ ॥  
 सास्रनिर्भुग्नहृदयो भक्तद्वेषी हतप्रभः ।  
 श्वसन्निपतितः शेते प्रलापोपद्रवायुतः ॥ ३७ ॥  
 तमभिन्यासमित्याहुर्हतौजसमथापरे ।  
 सन्निपातज्वरं कृच्छ्रमसाध्यमपरे विदुः ॥ ३८ ॥  
 निद्रोपेतमभिन्यासं क्षीणमेनं हतौजसम् ।  
 संन्यस्तगात्रं संन्यासं विद्यात्सर्वात्मके ज्वरे ॥ ३९ ॥  
 ओजो विस्त्रंसते यस्य पित्तानिलसमुच्छ्रयात् ।  
 स गात्रस्तंभशीताभ्यां शयने स्यादचेतनः ॥ ४० ॥  
 अपि जाग्रत्स्वपञ्जंतुस्तंद्रालुश्च प्रलापवान् ।  
 संहृष्टरोमा स्रस्तांगो मंदसंतापवेदनः ।  
 ओजोनिरोधनं तस्य जानीयात्कुशलो भिषक् ॥ ४१ ॥

शरीर अति गरम और अति शीतल न हो संज्ञा ( ज्ञान ) कम होजाय भ्रमितहुआसा देखे स्वर नष्ट होजाय जिह्वा खुरदरी हो और कंठ सूखा रहे पसीना मूत्र और दस्त ये बंद होजावें ॥ ३६ ॥ रुधिरयुक्त और अधखुलासा कठिन हृत्कमल होजावे भोजनका द्वेषी होजाय और शरीरकी कांति नष्टहोजावे ऊंचे श्वास भरताहुवा गिरेकी भांति सोता रहै ( अर्थात् जिस वल गिरपड़ा



उसीबल बेहोश हुवा रहे ) और प्रलापके उपद्रव युक्त होवे ( अर्थात् बेहोश पड़ापड़ा भी अस्त व्यस्त प्रलाप करे ) ( इसमें सास्रका अर्थ कई नेत्रोंमें आंसू भरभर आवें ऐसा करते हैं ) ॥ ३७ ॥ इस सन्निपातको "अभिन्यास" कहते हैं और कई "हतौजस" कहते हैं सन्निपातज्वर कष्टसाध्य और असाध्य होता है ऐसा कहते हैं ( अर्थात् संपूर्ण लक्षणवाला असाध्य और अल्प लक्षण और अल्प उपद्रववाला कष्टसाध्य होता है ) ॥ ३८ ॥ जिसमें निद्रा ( या तंद्रा ) अधिक हो वह अभिन्यास है और जो क्षीणता विशेष हो तो वह हतौजस होता है और जिसमें शरीर काष्ठवत् पड़ा रहे वह संन्यास ऐसे त्रिदोषज्वरमें जानना ॥ ३९ ॥ जिसके पित्त और वायुकी उल्बणता होती है उसका ओज नष्ट होजाता है वह शरीरकी स्तंभता और शीतता से अचेतन हुआ शयन कियेहुयेकी भांति होता है ॥ ४० ॥ और जो जागता हुआ या सोता हुआ निद्रायुक्त प्रलाप करता रहै रोमांच खड़े हों शरीर शिथिल हो संताप और वेदना जिसके मंद हों उसे ओजके निरोधका हेतु कुशल वैद्य जाने ॥ ४१ ॥

( वक्तव्य ) प्रयोजन यह कि जिसके कफका भाग अधिक बढजाता है उसके अभिन्यासात्मक संनिपात होता है और जिसके वायुपित्त बढते हैं और कफके भाग ( सौम्यधातु ) ओजको नष्ट करदेते हैं उसके हतौजस संनिपात होता है अग्निसोमात्मक जगत् है इससे सन्निपातकेभी मुख्य भेद दोही यहां माने गये हैं ॥

## परिशिष्ट ।

### सन्निपातज्वरके भेद और विस्तारपूर्वक वर्णन ।

यद्यपि सन्निपात ज्वर वास्तवमें तीनों दोषों ( वायु पित्त और कफ ) के दूषित संसर्गसे होता है और उसमें जिस दोषके लक्षण अधिक और उत्कृष्ट हों उसीकी उल्बणता समझ लेनी चाहिये और यदि दो दोषोंके या तीनों के लक्षण और उपद्रव उत्कृष्ट हों तो त्रिदोषोल्बण या त्रिदोषोल्बण समझना चाहिये और जौनसा दोष अत्यंत उल्बण और प्रधान हो उसीकी शांति करनी इसकी चिकित्साका तत्त्व समझना चाहिये इस लिये इसके पृथक् पृथक् भेद लिखने की प्रवृत्ति आवश्यकता नहीं है इससे भगवान् धन्वंतरिजीने पृथक्कर सेह नहीं लिखे और नागार्जुनचार्य और माधवाचार्यने भी पृथक् भेद लिखे परासर्गिक प्रकरणे उल्बणादि भेदसे उद्देश्यप्रकारका सन्निपात अल्प-ज्वरे समझनेको लिखा है परंतु हां यह ध्यानि परम उत्कृष्ट है और इस समयके साधारणी वैद्य इस सन्निपातपर बहुतही झगड़ा करते हैं ॥

कोई एकही प्रकारका कोई तीन प्रकारका कोई १३ प्रकारका कोई ५२ प्रकारका कोई ६२ प्रकारका सन्निपात मानते हैं इससे हम भी परिशिष्टरूपमें कुछ इसके भेद लिखते हैं ॥

## चरकोक्त १३ प्रकारका सन्निपात ।

१ वातोल्बण २ पित्तोल्बण ३ कफोल्बण ४ वातपित्तोल्बण ५ वातकफोल्बण ६ कफपित्तोल्बण और ७ त्रिदोषोल्बण ८ वाताधिक मध्यपित्त हीन कफ ९ वातमध्य पित्ताधिक हीन कफ १० वातहीन वृद्धपित्त कफमध्य ११ वाताधिक हीनपित्त मध्यकफ १२ वातमध्य पित्तहीन कफाधिक १३ वातहीन मध्यपित्त कफाधिक ॥

## इनके लक्षण ।

### एकोल्बणके ३ भेद ।

संध्यस्थिशिरसः शूलं प्रलापो गौरवं भ्रमः ।

वातोल्बणे स्याद्धनुगे तृष्णा कंठास्य शोषता ॥ १ ॥

रक्तविण्मूत्रता दाहः स्वेदस्तृड्बलसंक्षयः ।

मूर्च्छा चेति त्रिदोषे स्याल्लिंगं पित्तगरीयसी ॥ २ ॥

आलस्यारुचिहृल्लासदाहवम्यरतिभ्रमैः ।

कफोल्बणं सन्निपातं तंद्रा कासेन चादिशेत् ॥ ३ ॥

वाताधिकसन्निपातकेये लक्षण हैं कि संधि अस्थि और शिर इनमें दर्द हो प्रलाप भारीपन और भ्रम हो ठोड़ी में वायु आजाय ( ठोड़ी टेढ़ी होजाय ) तृषा हो कंठ और मुख सूखे ॥ १ ॥ पित्तोल्बणके ये लक्षण हैं कि विष्टा और मूत्र रक्त हों दाह पसीना तृषा बलका नाश और मूर्च्छा हो ॥ २ ॥ कफोल्बणमें आलस्य अरुचि उवकाई दाह वमन बेचैनी भ्रम तंद्रा और खाँसी ये होते हैं ॥ ३ ॥

### द्विदोषोल्बणके ३ भेद ।

भ्रमः पिपासा दाहं च गौरवं शिरसोऽतिरूक् ।

वातपित्तोल्बणे विद्याल्लिंगं मंदकफे ज्वरे ॥ ४ ॥

शैत्यं कासोऽरुचिस्तंद्रा पिपासा दाहरुग्व्यथाः ।

वातश्लेष्मोल्बणे विद्याल्लिंगं पित्तज्वरे विदुः ॥ ५ ॥

छर्दिः शैत्यं मुहुर्दाहस्तृष्णा मोहोऽस्थिवेदना ।

मंदवाते व्यवस्यंते लिंगं पित्तकफोल्बणे ॥ ६ ॥

भ्रम प्यास दाह भारीपन शिरमें अति वेदना ये लक्षण वातपित्तोल्बण मंदकफवाले सन्निपातके जानने चाहिये ॥ ४ ॥ शीतता खाँसी अरुचि तंद्रा प्यास दाह और वेदना ये लक्षण वातकफोल्बण पित्तमंदसंनिपातके होते हैं ॥ ५ ॥ छर्दि शीतता बार बार दाह तृषा मूर्च्छा अस्थियोंमें वेदना ये लक्षण कफपित्तोल्बण मंद वायुवाले संनिपात के होते हैं ॥ ६ ॥

**हीनमध्याधिकके ६ भेद ।**

प्रतिश्या छर्दिरालस्यं तंद्रारुच्यग्निमार्दवम् ।

हीनवाते पित्तमध्ये चिह्नं श्लेष्माधिके मतम् ॥ ७ ॥

हारिद्रमूत्रनेत्रत्वं दाहस्तृष्णा भ्रमोरुचिः ।

हीनवाते मध्यकफे लिंगं पित्ताधिके मतम् ॥ ८ ॥

शिरोरुग्वेपथुः श्वासः प्रलापो छर्द्यरोचकाः ।

हीनपित्ते मध्यकफे लिंगं वाताधिके मतम् ॥ ९ ॥

शीतकं गौरवं तंद्रा प्रलापोऽस्थिशिरोतिरुक् ।

हीनपित्ते वातमध्ये लिंगं श्लेष्माधिके विदुः ॥ १० ॥

श्वासकासप्रतिश्याया मुखशोषोऽतिपार्श्वरुक् ।

कफहीने पित्तमध्ये लिंगं वाताधिके मतम् ॥ ११ ॥

पर्वचर्स्कादग्निमांघ्रं तृष्णा दाहोऽरुचिभ्रमः ।

कफहीने वातमध्ये लिंगं पित्ताधिके विदुः ॥ १२ ॥

प्रतिश्या ( प्रतिश्याय ) छर्दि आलस्य तंद्रा अरुचि अग्निकी मंदता ये लक्षण हीनवात पित्तमध्य और कफाधिकसंनिपातके हैं ॥ ७ ॥ मूत्र और नेत्र पीले हों दाह तृषा भ्रम अरुचि ये लक्षण हीन वात मध्यकफ पित्ताधिकके हैं ॥ ८ ॥ शिरमें पीडा कंप श्वास प्रलाप छर्दि अरुचि ये हीनपित्त मध्यकफ वाताधिकके हैं ॥ ९ ॥ शीत गुरुता तंद्रा प्रलाप अस्थियों और शिरमें दरद ये हीनपित्त वातमध्य कफाधिक में होते हैं ॥ १० ॥ श्वास खाँसी जुखाम मुख

में शुष्कता पसलीमें अतिपीडा ये कफहीन पित्तमध्य और वाताधिकमें होते हैं॥ ११ ॥ संधि मल अग्नि इनमें मंदता तृषा दाह अरुचि और भ्रम ये लक्षण कफहीन वातमध्य और पित्ताधिक संनिपातके होते हैं ॥ १२ ॥

## त्रिदोषोल्वणसन्निपातके लक्षण ।

सन्निपातज्वरस्योद्ध्वमतो वक्ष्यामि लक्षणम् ।  
 क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसंधिशिरोरुजः ।  
 सप्तावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने ॥ १३ ॥  
 सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कंठः शूकैरिवावृतः ।  
 तंद्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोरुचिभ्रमः ॥ १४ ॥  
 परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्तांगता परम् ।  
 घृवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥ १५ ॥  
 शिरसो लोढनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा ।  
 स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिरादर्शनमल्पशः ॥ १६ ॥  
 कृशत्वं नातिगात्राणां प्रततं कंठकूजनम् ।  
 कोष्ठानां श्यावरक्तानां मंडलानां च दर्शनम् ॥ १७ ॥  
 मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च ।  
 चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः ॥ १८ ॥

अगाड़ी अब हम सन्निपात ( त्रिदोषोल्वण ) ज्वरके लक्षण कहते हैं क्षणमें दाह क्षणमें शीत होना अस्थि संधि और शिर इनमें दर्द हो नेत्र स्रावयुक्त

( श्लो० १३ ) सप्तावे साश्रुणी । कलुषे अस्वच्छे । निर्भुग्ने निर्गते कुटिले च ।

( श्लो० १४ ) शूकैः धान्याग्रैरिवावृतः ।

( श्लो० १५ ) जिह्वा परिदग्धा परिदग्धेव ज्ञायते अथवा परिदग्धा इव कृष्णा इत्यर्थः । स्रस्तांगता शिथिलांगता ।

( श्लो० १६ ) शिरसो लोढनं इतस्ततश्चालनम् ।

( श्लो० १७ ) अतिशयं काश्यं न व्याधिप्रभावात् ।

( श्लो० १८ ) मूकत्वं अवचनत्वं अल्पवचनत्वं वा । स्रोतसां कर्णनासादीनामिति ( भा० मि० )

मैले अरुण और अधखुलेसे हों ॥ १३ ॥ कान शब्द और पीडा सहित हों  
कंठ तंतुवोंसे भरासा हो तंद्रा मूच्छा कभी प्रलाप हो खांसी श्वास अरुचि  
और भ्रम हो ॥ १४ ॥ जीभ दग्धर्दुईसी खरदरी करड़ी हो रुधिर पित्त  
थूकमें कफमिश्रित आवे ॥ १५ ॥ शिर धुने तृषा हो निद्राका नाश हृदयमें  
वेदना हो पसीना मूत्र और पुरीष देरसे थोड़ा २ आवे ॥ १६ ॥ शरीर  
आति कृश ( दुर्बल ) न हो निरंतर कंठसे कूजनाकरे सुरख ऊदे दाफड़ या  
चकड़े शरीरपर दीखें ॥ १७ ॥ मुखसे बोला न जावे स्रोत पकजावे पेट भारी  
( या आफरा ) हो और दोषोंका परिपाक देरसे हो ये सन्निपात ( त्रिदोष )  
के लक्षण हैं ॥ १८ ॥

**भावप्रकाशमें इन वातोल्वणादिक १३ सन्निपातोंके  
जो नाम लिखे हैं वे इस प्रकारसे हैं ।**

विस्फारकश्चाशुकारी कंपनो बभ्रुसंज्ञकः ।

शीघ्रकारी तथा भल्लुः सप्तमः कूटपाकलः ॥ १९ ॥

संमोहकः पालकश्च याम्यः क्रकच इत्यपि ।

ततः कर्कटकः प्रोक्तस्ततो वैदारिकाभिधः ॥ २० ॥

वातोल्वणको “ विस्फारक ” पित्तोल्वणको “ आशुकारी ” कफोल्वणको  
“ कंपन ” और वातपित्तोल्वणको “ बभ्रु ” वातकफोल्वणको “ शीघ्रकारी ”  
कफपित्तोल्वणको “ भल्लु ” और त्रिदोषोल्वणको “ कूटपाकल ” ( या  
कूटपालक ) नामसे लिखाहै ॥ १९ ॥ तथा वातवृद्ध पित्तमध्य कफहीनको  
“ संमोहक ” और वायुमध्य पित्तवृद्ध कफहीनको “ पाकल ” ( या पालक )  
हीनवायु वृद्धपित्त मध्यकफको “ याम्य ” और वृद्धवात हीनपित्त मध्यकफको  
“ क्रकच ” और मध्यवात हीनपित्त वृद्धकफको “ कर्कटक ” तथा हीन वायु  
मध्यपित्त वृद्धकफको “ वैदारिक ” नाम सन्निपात कहाहै ( यद्यपि लक्षणोंमें  
भी कुछ २ भेद किये हैं परंतु वास्तवमें उपरोक्त लक्षणों ही के अनुसार इनके  
लक्षण समझिये कुछ विशेष नहीं ) ॥ २० ॥

**प्रकारांतरसे सन्निपात १३ प्रकारके यूं भी लिखे हैं ।**

कुंभीपाकः प्रोर्णनावः प्रलापी ह्यंतर्दाहो दंडपातोंतकश्च ।

एणीदाहश्चाथ हारिद्रसंज्ञो भेदा एते सन्निपातज्वरस्य ॥ २१ ॥

अजघोषभूतहासौ यंत्रापीडश्च संन्यासः ।

संशोषी च विशेषस्तस्यैवोक्तास्त्रयोदशान्यत्र ॥ २२ ॥

कुंभीपाक प्रोर्णुनाव प्रलापी अंतर्दाह दंडपात अंतक एणीदाह हारिद्रक ॥ २१ ॥  
अजघोष भूतहास यंत्रापीड संन्यास और संशोषी इस भांति भी इन १३ प्रकारके सन्निपातोंके नाम कहे हैं ( ग्रंथके अति बढने और चिकित्सामें प्रायः अनुपयोगी होनेसे इनके लक्षण यहां पर हम नहीं लिखते ) ॥ २२ ॥

## प्रकारान्तरसे सन्निपातके १३ भेद और उनके नाम, लक्षण ।

शीतांगस्त्रिमलोद्भवो ज्वरगणे तंद्री प्रलापी ततो  
रक्तष्ठीवयिता च तत्र गणितः संभुग्ननेत्रस्तथा ।  
साभिन्यासकजिह्वकश्च कथितः प्राक्संधिगोथांतको  
रुग्दाहः सह चित्तविभ्रम इह द्वौ कर्णकंठग्रहौ ॥ २३ ॥

सन्निपात ज्वरके नाम इसप्रकारसेभी कहते हैं १ शीतांग २ तंद्रिक ३ प्रलापक ४ रक्तष्ठीवी ५ भुग्ननेत्र ६ अभिन्यास ७ जिह्वक ८ संधिक ९ अंतक १० रुग्दाह ११ चित्तभ्रम १२ कर्णक १३ कंठग्रह ( कंठकुब्ज ) ॥ २३ ॥  
( यह क्रमभी चिकित्सामें उपयोगी होता है इससे पृथक् २ इनके लक्षण लिखते हैं )

## शीतांगसन्निपातके लक्षण ।

हिमशिशिरशरीरः सन्निपातज्वरी यः

श्वसनकसनहिक्रामोहकंपप्रलापैः ।

कुम्बबहुकफवाता दाहवम्यंगपीडाः

स्वरविकृतिभिरार्तः शीतगात्रः स उक्तः ॥ २४ ॥

जिसका देह हिम जैसा शीतल होजाय श्वास खांसी हिचकी मोह ( मूर्छा ) कंप और प्रलाप हो कुम्ब ( थकान ) हो कफ वायु बहुत बढजावे दाह वमन अंगपीडा और स्वर विगड़जाना इतने लक्षण होनेसे "शीतांग" सन्निपात कहाजाताहै ॥ २४ ॥

## तंद्रिकके लक्षण ।

तंद्रातीव ततस्तृषातिसरणं श्वासोऽधिकः कासरुक्  
संतप्तातितनुर्गले श्वयथुना सार्द्धं च कंडूकफः ।

सुर्यामा रसना क्लमः श्रवणयोर्माद्यं च दाहस्तथा

यत्र स्यात्स हि तंद्रिको निगदितो दोषत्रयोत्थो ज्वरः ॥ २५ ॥

अत्यंत तंद्रा हो तृषा अतिसार श्वासका बढना खांसी वेदना शरीरमें  
अत्यंत संताप गलेमें शोथ सहित खाज और कफ हो जीभ काली हो क्लम हो  
सुनाई कम दे दाह भी हो जिसमें इतने लक्षण हों उसको " तंद्रिक " सन्नि  
पातज्वर कहते हैं ॥ २५ ॥

## प्रलापकके लक्षण ।

यत्र ज्वरे निखिलदोषनितांतरोषः जाते प्रलापबहुलाः सहसो-  
त्थिताश्च । कंपव्यथापतनदाहविसंज्ञताः स्युर्नाम्ना प्रलापक  
इति प्रथितः पृथिव्याम् ॥ २६ ॥

जिसमें सब दोषका अत्यंत कोप हो बहुत प्रलाप ( बकवाद ) करे कंप  
व्यथा गिरगिर पड़ना दाह और बेहोश होजाना ये भी साथ हों यह "प्रलापक"  
नाम सन्निपात पृथ्वीमें विख्यात है ॥ २६ ॥

## रक्तष्ठीवीके लक्षण ।

निष्ठीवो रुधिरस्य रक्तसदृशं कृष्णं तनौ मंडलं लौहित्यं नयने  
तृषारुचिवमिश्वासातिसारभ्रमाः । आध्मानं च विसंज्ञता च  
पतनं हिक्कांगपीडा भृशं रक्तष्ठीविनि सन्निपातजनिते लिंगं  
ज्वरे जायते ॥ २७ ॥

थूकमें रुधिर आवे रुधिर जैसे और काले चकंदे शरीरमें होजावें नेत्र लाल  
हों तृषा अरुचि वमन श्वास अतिसार भ्रम आध्मान संज्ञाका नाश गिर गिर  
पड़ना हिचकी अंगोंमें दारुण पीडा ये लक्षण "रक्तष्ठीवी" सन्निपातके होते हैं ॥

## भुग्ननेत्रके लक्षण ।

भृशं नयनवक्रता श्वसनकासतंद्रा भृशं प्रलापमदवेपथुश्रवण-  
हानिमोहास्तथा । पुरो निखिलदोषजे भवति यत्र लिंगं ज्वरे  
पुरातनचिकित्सकैः स इह भुग्ननेत्रो मतः ॥ २८ ॥



नेत्र अत्यंत टेढ़े पड़जावे श्वास खांसी और विशेष तंद्रा हो प्रलाप मंद कंप ये भी हों सुनाई न दे तथा मूर्च्छा हो ये लक्षण जिस सन्निपातज्वरमें हों उसे पुरातन वैद्य “भुग्नेत्र” कहते हैं ॥ २८ ॥

### अभिन्यासके लक्षण ।

दोषास्तीव्रतरा भवन्ति बलिनः सर्वेपि यत्र ज्वरे मोहोतीव वि-  
चेष्टता विकलता श्वासो भृशं मूकता । दाहश्चिकणमाननं  
च दहनो मंदो बलस्य क्षयः सोभिन्यास इति प्रकीर्तित इह  
प्राज्ञैर्भिषग्भिः पुरा ॥ २९ ॥

जिसमें सब दोष तीव्र होकर बलवान् हों अत्यंत मूर्च्छा होजावे चेष्टा जाती रहे विकलता हो श्वास और विशेष मूकता हो दाह हो मुँह चिकना रहे अग्नि मंद होजाय बलका क्षय हो ये लक्षण “अभिन्यास” सन्निपातके प्राज्ञ वैद्योंने कहे हैं ॥ २९ ॥

### जिह्वकके लक्षण ।

त्रिदोषजनिते ज्वरे भवति यत्र जिह्वा भृशं  
वृता कठिनकंटकैस्तदनु निर्भरं मूकता ।  
श्रुतिक्षतिर्बलाहतिश्चसनकाससंतप्तयः

पुरातनभिषग्वरास्तमिह जिह्वकं चक्षते ॥ ३० ॥

जिस त्रिदोष ज्वरमें जिह्वा तीव्र कठिन कांटोंसे व्याप्तसी होजावे और अत्यंत मूकता होजावे ( बोलाही नहीं जाय ) सुनाई भी नहीं देवे बल नष्ट होजावे श्वास खांसी और संताप ये हों तो उसे पुरातन वैद्य “जिह्वक” सन्निपात कहते हैं ॥ ३० ॥

### संधिकके लक्षण ।

व्यथातिशयिता भवेच्छ्वयथुसंयुता संधिषु

प्रभूतकफता मुखे विगतनिद्रता कासरूक् ।

समस्तमिति कीर्तितं भवति लक्ष्म यत्र ज्वरे

त्रिदोषजनिते बुधैः स हि निगद्यते संधिगः ॥ ३१ ॥

संधियोंमें शोथ सहित अत्यंत वेदना हों और कफ बहुत मुखमें बढजावे

( मुखसे बहुत कफ आवे ) निद्रा जातीरहे खांसीकी व्यथा हो जिस त्रिदोष ज्वरमें ये सब लक्षण हो उसे वैद्य “संधिग” या “संधिक” कहते हैं ॥३१॥

### अंतकके लक्षण ।

यस्मिंलक्षणमेतदस्ति सकलैर्दोषैरुदीते ज्वरे-  
ऽजस्रं मूर्च्छविधूननं सकसनं सर्वाङ्गपीडाऽधिका ।  
हिक्काश्वाससदाहमोहसहिता देहेऽतिसंतप्तता ।

वैकल्यं च वृथा वचांसि मुनिभिः संकीर्तितः सोन्तकः ॥३२॥

जिसमें सब दोषोंके ज्वरमें ये लक्षण हों कि निरंतर शिर धुने (या कँपावे) खांसी हो सब देहमें अधिक पीडा हो हिचकी श्वास दाह मूर्च्छा और देहमें अति संताप विकलता और वृथा वचन कहना ऐसा हो तो इसे मुनियोंने “अंतक” सन्निपात कहा है ॥ ३२ ॥

### रुग्दाहके लक्षण ।

दाहोधिको भवति यत्र तृषा च तीव्रा श्वासः प्रलापविरुचि-  
भ्रममोहपीडाः । मन्याहनुव्यथनकंठरुजः श्रमश्च रुग्दाहसंज्ञ-  
उदितस्त्रितयो ज्वरोयम् ॥ ३३ ॥

जिसमें दाह अधिक हो तृषा तीव्र हो श्वास प्रलाप अरुचि भ्रम मोह पीडा ये भी हों और मन्या और ठोड़ीमें व्यथा हो कंठमें भी पीड़ा हो और श्रम हो तो उसे “रुग्दाह” सन्निपात जानना ॥ ३३ ॥

### चित्तभ्रमके लक्षण ।

गायति नृत्यति हसति प्रलपति विकृतं निरीक्षते मुह्येत् ।  
दाहव्यथाभयातौ नरस्तु चित्तभ्रमे ज्वरे भवति ॥ ३४ ॥

कभी गावे नाचे कभी हँसे कभी प्रलाप करे टेढ़ा देखे कभी मोहको प्राप्त हो जावे दाह और व्यथा युक्त हो कभी भयभीत होजावे येये लक्षण “चित्तभ्रम” सन्निपात ज्वरमें मनुष्यके होते हैं ॥ ३४ ॥

### कर्णकके लक्षण ।

दोषत्रयेण जनिता किल कर्णमूले तीव्रा ज्वरे भवति तु श्वय-  
थुर्व्यथा च । कंठग्रहो बधिरता श्वसनं प्रलापः प्रस्वेदमोहद-  
हनानि च कर्णकारण्ये ॥ ३५ ॥

जिस त्रिदोषज्वरमें कानकी जड़में त्रिदोषसे उपजा शोथ होवे और व्यथा भी हो कंठ रुका हुआ हो सुनाई नहीं देवे श्वास और प्रलाप हो पसीना आवे मोह और दाह भी हो तो ये लक्षण “कर्णक” सन्निपातके होतेहैं ॥ ३५ ॥

### कंठकुब्जके लक्षण ।

कंठः शूकशतावरुद्धवदतिश्वासः प्रलापोरुचिः दाहो देहरुजा  
तषापि च हनुस्तंभः शिरोर्तिस्तथा । मोहो वेपथुना सहेति  
सकलं लिङ्गं त्रिदोषज्वरे यत्र स्यात्स हि कंठकुब्ज उदितः  
प्राच्यैश्चिकित्साबुधैः ॥ ३६ ॥

जिसमें कंठ सैकड़ों तिनकोंसे रुकाहुआसा मालूम पड़े अतिश्वास हो प्रलाप अरुचि और दाह ये हों देहमें वेदना तृषा हो ठोड़ी अकड़ जावे शिरमें दर्द हो कंपयुक्त मूर्च्छा हो उसे पुराने वैद्य “कंठकुब्ज” सन्निपात कहते हैं ॥ ३६ ॥

### इनकी साध्यासाध्यता ।

संधिगस्तेषु साध्यः स्यात्तंद्रिकश्चित्तविभ्रमः ।  
कर्णको जिह्वकः कंठकुब्जः पंचापि कष्टकाः ॥ ३७ ॥  
रक्तष्ठीवी भुग्ननेत्रः शीतगात्रः प्रलापकः ।  
अभिन्यासोन्तकश्चैते षडसाध्याः प्रकीर्तिताः ॥ ३८ ॥

इन तेरह प्रकारके सन्निपातोंमेंसे एक संधिग तो साध्य है और तंद्रिक चित्तविभ्रम कर्णक जिह्वक तथा कंठकुब्ज ये पांच कष्टसाध्य हैं अपि शब्दसे रुग्दाह भी कष्टसाध्य जानना ॥ ३७ ॥ और रक्तष्ठीवी भुग्ननेत्र शीतांग प्रलापक अभिन्यास और अंतक ये छः असाध्य होते हैं ( परंतु कई असाध्य भी ईश्वरकी दयासे साध्य होजाया करते हैं ) ॥ ३८ ॥

### इनकी अवधि ।

संधिके वासराः सप्त चांतके दश वासराः ।  
रुग्दाहे विंशतिर्ज्ञेया वह्न्यष्टौ चित्तविभ्रमे ॥ ३९ ॥  
पक्षमेकं तु शीतांगे तंद्रिके पंचविंशतिः ।

विज्ञेया वासराश्चैव कंठकुब्जे त्रयोदश ॥ ४० ॥

कर्णके च त्रयो मासा भुग्ननेत्रे दिनाष्टकम् ।

रक्तष्ठीवी दशाहानि चतुर्दश प्रलापके ॥ ४१ ॥

जिह्वके षोडशाहानि कलाभिन्याससंज्ञके ।

परमायुरिदं प्रोक्तं म्रियते तत्क्षणादपि ॥ ४२ ॥

संधिककी परम अवधि ७ दिनकी है और अंतककी १० दिन रुदाहकी २० दिन चित्तविभ्रमकी २४ दिन ॥ ३९ ॥ शीतांगकी १५ दिन तंद्रिककी २५ दिन और कंठकुब्जकी १३ दिन ॥ ४० ॥ कर्णककी तीन महीने ( कई "कर्णके मासमेकं तु" ऐसा पाठ मानके १ महीना अवधि कहते हैं ) भुग्ननेत्रकी ८ दिन रक्तष्ठीवीकी १० दिन और प्रलापककी १४ दिन ॥ ४१ ॥ जिह्वककी १६ दिन और अभिन्यासकी भी १६ ही दिनकी अवधि है ये इनकी परम अवधि कही हैं परंतु इससे पहले अथवा तत्काल भी ये मृत्युकारक होजाते हैं ॥ ४२ ॥

इनकी पृथक् २ चिकित्सा ग्रंथ बढनेसे नहीं लिखी भावप्रकाशादि तंत्रांतरोंमें देख लीजिये ॥

सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेपि वा ।

पुनर्वाँरतरो भूत्वा प्रशमं याति हंति वा ॥ ४३ ॥

वात प्रधान सन्निपात सातवें दिन पित्तप्रधान दशवेंदिन और कफप्रधान बारहवेंदिन फिर उत्कृष्ट होकर शांत होजाता है अथवा मनुष्यको मृत्यु कारक होता है ( मलपाक हो तो शांत होजाता है और धातुपाक हो तो मृत्यु करता है ) ॥ ४३ ॥

## परिशिष्ट ।

धातुपाक और मलपाकके लक्षण ( भा० प्र० )

धातुपाक ।

निद्रानाशो हृदि स्तंभो विष्टंभो गौरवारुची ।

अरतिर्वलहानिश्च धातूनां पाकलक्षणम् ॥ १ ॥

नाभेरुद्धं हृदोधस्तात्पीडिते चेद्वयथा भवेत् ।

धातोः पाकंविजानीयादन्यथा तु मलस्य च ॥ २ ॥

निद्रा नष्ट होजावे हृदय जकड़ासा हो विष्टंभ गुरुता और अरुचि हो बेचैनी हो और बलकी हानि हो तो धातुपाकके लक्षण हैं ॥ १ ॥ नाभिके ऊपर और हृदयसे नीचे दबाने या छूनेसे पीडा हो तो धातुपाक जानना नहीं तो मलपाक जाने ॥ २ ॥

## मलपाक ।

दोषप्रकृतिवैकृत्यं लघुता ज्वरदेहयोः ।

इंद्रियाणां च वैमल्यं मलानां पाकलक्षणम् ॥ ३ ॥

दोषोंकी प्रकृति पलटजाना ( घटाव होता जाना ) ज्वर और शरीरमें हलकापन होना और इंद्रियोंकी निर्मलता होना ये मलपाकके लक्षण हैं ( जिसकी मृत्यु होनहार होती है उसके धातुपक होता है और जिसकी आयु होती है उसके मलपाक यह ईश्वरेच्छा या कर्म फलसे होता है ) ॥ ३ ॥

## द्वंद्वज वातपित्त-वातकफ-और कफपित्त ज्वर ।

द्विदोषोच्छ्रायलिङ्गास्तु द्वंद्वजास्त्रिविधाः स्मृताः ॥

जृम्भाध्मानमदोत्कंपपर्वभेदपरिक्षयाः ।

तृट्प्रलापाभिर्तापाः स्युर्ज्वरे मारुतपैत्तिके ॥ ४४ ॥

शूलकासकफोत्केशशीतवेपथुपीनसाः ।

गौरवारुचिविष्टंभा वातश्लेष्मसमुद्भवे ॥ ४५ ॥

शीतदाहारुचिस्तंभस्वेदमोहमदभ्रमाः ।

कासागसादहृल्लासा भवंति कफपैत्तिके ॥ ४६ ॥

जिनमें दो दो दोषोंकी उत्कृष्टताके लक्षण होते हैं ऐसे तीन प्रकारके द्वंद्वज ज्वर होते हैं जैसे वात और पित्तसे वातपित्तज्वर इसी भांति वातकफके उत्कर्षसे वातकफज्वर और कफपित्तके उत्कर्षसे कफपित्तज्वर होता है ॥ जिसमें जंभाई अधिक आवें अफारा हो मद हो कंप भी हो पर्वभेद ( जोड़ोंमें दरद ) हो और क्षीणता हो तृषा अधिक हो प्रलाप भी हो संताप हो ये लक्षण “ वातपित्त ” ज्वरके हैं ॥ ४४ ॥ शूल खाँसी कफका उत्केश शीत कंप और जुखाम तथा भारीपन अरुचि विष्टंभ ये लक्षण

“ वातकफ ” ज्वरके होतेहैं ॥ ४५ ॥ कभी शीत कभी दाह ( अथवा पहले शीत फिर दाह ) अरुचि स्तंभ पसीना होना मोह मद भ्रम खांसी आंगोंमें थकान और उबकाई ये लक्षण “ कफपित्त ज्वर ” में होते हैं ॥ ४६ ॥

( वक्तव्य ) उल्लनमिश्र इन तीन श्लोकोंका पाठ और भांति मानतेहैं परंतु जैजटाचार्य उपरोक्त पाठही स्वीकार करते हैं ॥

## विषमज्वरका वर्णन ।

क्षामाणां ज्वरमुक्तानां मिथ्याहारविहारिणाम् ।

दोषः स्वैल्पोपि संवृद्धो देहिनामनिलेरितः ॥ ४७ ॥

सततान्येद्युषत्र्याख्यचातुर्थान्संप्रलेपकान् ।

कफस्थानविभागेन यथासंख्यं करोति<sup>११</sup> हि<sup>१२</sup> ॥ ४८ ॥

अहोरात्रादहोरात्रात्स्थानात्स्थानं प्रपद्यते ।

ततश्चामाशयं प्राप्य चोरं<sup>१३</sup> कुर्याज्ज्वरं नृणाम् ॥ ४९ ॥

जो मनुष्य दुर्बल होतेहैं ( हलके होते हैं ) उनको जब ज्वर छोड़ देवे तब शीघ्र ही वे मिथ्या आहार विहार करलेवें तो थोड़ासा भी दोष बढ़कर वायु से प्रेरित किया हुआ कफके पूर्वोक्त पांच स्थानों ( आमाशय उर कंठ शिर और संधि ) में प्राप्त होकर यथासंख्य सतत अन्येद्युष्क तृतीयक चातुर्थिक और प्रलेपक इस प्रकार विषमज्वर उत्पन्न करदेता है अर्थात् आमाशयस्थ हो तो सततज्वर [ जो दिनरातमें दो बार चढ़े ] पैदा करता है और उर ( हृदय ) में प्राप्त हो तब अन्येद्युष्क ( नित्य चढ़नेवाला ) ज्वर पैदा करताहै और कंठ ( कंठनलका जिह्वामूल ) में प्राप्त हो तो तृतीयक ( तीसरे दिन चढ़नेवाला ) ज्वर पैदा करता है और शिरमें प्राप्त हो तो चातुर्थिक ( चौथे दिन चढ़नेवाला चौथिया ) ज्वर पैदा करता है और संधियोंमें प्राप्त हो तो प्रलेपक ज्वर पैदा करता है ॥ ४७ । ४८ ॥ एक दिन रातमें उक्त स्थानोंसे दोष नीचेको आमाशयकी तरफ गमन करते हैं और स्थानांतरमें पहुँचते हैं जब वे आमाशयमें पहुँचते हैं तब मनुष्योंको ज्वरका घोर वेग करतेहैं ॥ ४९ ॥

( श्लो० ४८ ) कफस्थानेति आमाशयोरःकंठशिरःसंधयः पंच कफस्थानानि एषु तिष्ठन् दोषो यथासंख्यं सततादीन् करोति तदा संधिषु स्थितः प्रलेपकं करोति संधयश्चामाशयेपि संति तेषु स्थितः प्रलेपकं सर्वदा करोति ( इति भावमिश्रः ) ।

( वक्तव्य ) जिस प्रकार दोषकी न्यूनता या अधिकता होती है उसी प्रकार ज्वरका हलका या भारी वेग होता है और जितना दोष आमाशयसे दूर होता है उतने ही समयका ज्वरके वेगमें अंतर होता है जैसे आमाशयस्थ दोष प्रतिदिन दोबार वेग करता है जिससे सततज्वर होता है और हृदयस्थ १ दिनमें आमाशयतक पहुँचता है तब अन्येद्युष्क ( नित्यज्वर ) करता है कंठस्थ दोष दो दिनमें आमाशयतक पहुँच कर तृतीयक ज्वर करता है और शिरोगत दोष इसी क्रमसे तीन दिनमें आमाशयमें पहुँचता है तब चातुर्थिक ज्वर करता है और सकल शरीरकी संधियोंमें प्राप्तहुवा दोष सदैव निरंतर आमाशयकी तरफ मंद २ गमन करता रहता है इससे प्रलेपकज्वर होता है सारांश यह है दूषितदोषके परमाणुओंका बीज जिस २ कफके स्थान आमाशय हृदयादिमें स्थित होता है फिर वह वहांपर अपनी आकर्षण शक्तिसे सजातीय दूषित परमाणुओंको संचित करता है फिर वे संचित परमाणु द्व्यणुकादिरूप होनेपर अधोगत आमाशयमें पहुँचते हैं तब वे वहांसे ऊष्मारूप होकर रस और स्वेदवाहिनी शिराओंद्वारा त्वचाकी तरफ प्रवर्त होते हैं तब ज्वरका वेग होना प्रतीत होता है और बीचके समय ज्वरका वेग प्रतीत नहीं होता ॥

तथा प्रलेपको ज्ञेयः शोषिणां प्राणनाशनः ।

दुश्चिकित्स्यतमो मंदः सुकष्टो धातुशोषकृत् ॥ ५० ॥

प्रलेपकज्वर मंद मंद बना ही रहता है यह कष्टसाध्य और कठिनतासे चिकित्सायोग्य होता है सब धातुओंको शोषण करता है और जिनकी धातु मूल्य जाती हैं यह उनके प्राणोंको नाश करता है ॥ ५० ॥

इनके विपर्यय विषमज्वर ।

कफस्थानेषु वा दोषेस्तिष्ठन्दित्रिचतुर्षु वा ।

विपर्ययाख्यान्कुंरुते विषमान्कृच्छ्रसाधनान् ॥ ५१ ॥

अथवा उन्हीं कफस्थानोंमें स्थित हुवा दोष ( बीजरूप दोष ) उपरोक्त दूसरे दिन तीसरे दिन और चौथे दिन आनेवाले ज्वरोंके विपर्यय रूप कष्ट

( श्लो० ५१ ) विपर्ययान् इति यथा अहोरात्रे द्वौ कालौ मुंचति शेषं सर्वमहोरात्रं तिष्ठतीति सततविपर्ययः । अहोरात्रे एककालं मुंचति शेषं सर्वमहोरात्रं तिष्ठति सोऽन्येद्युष्कविपर्ययः । इत्यादि ( इति भा० मि० ) ।



साध्य विषम ज्वरोंको पैदा करताहै [ इनके विपर्यय इसभांतिसे होते हैं कि चातुर्थिक ज्वर जैसे चौथे दिन चढताहै इसी भांति उसका विपर्यय चौथे दिन एक दिन छोड देताहै और शेष समय बना रहताहै तृतीयकका विपर्यय तीसरे दिन थोड़ी देर उतरजाताहै और अन्येद्युष्कका विपर्यय वह होताहै जो दिनरातमें एकसमय कुछ देर छोडकर बाकी रातदिन बना रहे और सततका विपर्यय वह होताहै जो अहोरात्रमें दोबार किंचित् २ कालके लिये छोड़दे बाकी बनारहे ( कई कहते हैं कि सततका विपर्यय नहीं होता परंतु हमने अपने अनुभवमें कई जगह देखेहैं ) ( और भाव मिश्र लिखते भी हैं ) देखो टि० ॥ ५१ ॥

( वक्तव्य ) पहले जो सतत अन्येद्युष्क आदि विषमज्वर कफस्थान स्थितदोषसे कहे और ये उसके विपरीत ज्वरभी उन्हीं कफस्थान स्थित दोषसे कहे इसका अंतर क्या हुआ इसका समाधान यह है कि जब दूषित दोषका बीजरूप उन कफके स्थानोंमें सूक्ष्म होताहै तब तो वह सूक्ष्म ही दूषित सजातीय परमाणु संचित करताहै और थोड़ी ही देरके लिये थोड़े ही वेगवाला दूसरे तीसरे चौथे दिन अन्येद्युष्क तृतीयक चातुर्थिक ज्वर पैदा करताहै परंतु जब वह दोषका बीज विशेष और उत्कृष्ट उन्हीं कफके स्थानोंमें होताहै तो अपने सजातीय दोषके दूषित परमाणु भी विशेषही संचित करताहै तब अतिकालके लिये उग्रवेगवाले इन अन्येद्युष्कादिके विपर्यय ज्वर पैदा करताहै और जो कि इन विपर्ययोंमें दोषका बीज विशेष और उत्कृष्ट होता है इसीसे ये दुश्चिकित्स्यतम और कष्टसाध्य होतेहैं ।

## इसपर अन्यमत ।

परो हेतुः स्वभावो वा विषमे कैश्चिदीरितः ।

आगंतुश्चानुबंधो हि<sup>१३</sup> प्रायशो विषमज्वरे ॥ ५२ ॥

कोई आचार्य विषमज्वरोंका हेतु स्वभाव ही कहते हैं ( अर्थात् वे अपने स्वभाव हीसे नियत समयपर आजाते हैं ) और कोई इसमें आगंतुक ( भूतादिक ही प्रायः कारण मानतेहैं ) ॥ ५२ ॥

( श्लो० ५२ ) आगंतुः भूतादि । अनुबंधः कारणम् हि इति यस्मादर्थे ( इति डल्लनः )

वाताधिकत्वात्प्रवदन्ति तज्ज्ञास्तृतीयकं चापि चतुर्थकं च ।  
 औपात्यके मद्यसमुद्भवे च हेतुज्वरे पित्तकृतं वदन्ति ॥ ५३ ॥  
 प्रलेपकं वातबलासकं च कफार्धिकत्वेन वदन्ति तज्ज्ञाः ।  
 मूर्च्छानुबंधा विषमज्वरा ये प्रायेण ते द्वंद्वसमुत्थितास्तु ॥ ५४ ॥

तृतीयक और चातुर्थिकज्वर वायुकी प्रधानतासे होते हैं कई वैद्य ऐसा कहते हैं और औपात्यक ( समीप कालमें आनेवाले अर्थात् शीघ्र शीघ्र दिनमें दोवार आनेवाले सतत तथा नित्य आनेवाले अन्येद्युष्क ) ज्वर और मद्यजनित ज्वरका हेतु पित्तकृत होता है ऐसा कहते हैं और प्रलेपक तथा वातबलासकज्वर कफ की प्रधानतासे होते हैं और मूर्च्छानुबंध जो विषमज्वर होते हैं वे प्रायः दो दोषोंसे उत्पन्न होते हैं ऐसा कहते हैं ( इसमें ऊपरके श्लोकमें 'औपात्यके'का अर्थ डल्लनमिश्र पर्वतके समीपमें होने वालाज्वर ऐसा करते हैं ) ( और कई "औपात्यके चाद्यसमुद्भवे च" ऐसा पाठ मानते हैं इसमें औपात्यक अर्थात् सतत और अद्यसमुद्भवा अर्थ अन्येद्युष्क करते हैं ) ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

## परिंशष्ट ।

### वातबलासक के लक्षण ( भा० प्र० )

नित्यं मंदज्वरो रूक्षः शूनः कृच्छ्रेण सिद्ध्यति ।

स्तब्धांगः श्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातबलासकी ॥ १ ॥

नित्य मंदज्वर बना रहे शरीर रूखा ( सुपेद ) पड़ जावे शीथ आजावे शरीर रुकाहुआसा रहे कफकी अधिकता हो ये लक्षण " वातबलासक" ज्वर वालेके होते हैं और यह कष्टतासे सिद्ध होता है ( अर्थात् कष्टसाध्य है ) ॥ १ ॥

( श्लो० ५३ । ५४ ) औपात्यके पर्वतासन्नभूमिसमुद्भवे ज्वरे ( इति डल्लनः ) अन्ये तु उपसमीपे आतः प्राप्त उपातः तस्य भावः औपात्यकस्तस्मिन् औपात्यके सतताशी पित्तकृतं हेतुं प्रायेण वदन्तीति औपात्यके मद्यसमुद्भवे च इत्यत्र औपात्यके चाद्य समुद्भवे च इति पाठांतरं केचिन्मन्यन्ते तत्र औपात्यके सतताख्ये अद्यसमुद्भवे अन्येद्युष्के इति । मूर्च्छानुबंधाः सततमूर्च्छाज्वराः । अथवा मूर्छिता अनुबंधाः काला येषां ते अनियतकाला इत्यर्थः । अत्र केचिन्मुक्तानुबंधा इति पठन्ति इति तस्याप्ययमर्थः ॥

ज्वरके आदिमें शीत उष्णका कारण ।

त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरे ।

तयोः प्रशांतयोः पित्तमंते<sup>११</sup> दाहं करोति च<sup>१२</sup> ॥ ५५ ॥

करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च ।

तस्मिन्प्रशांते त्वितरौ<sup>१२</sup> कुरुतः शीतमंततः<sup>१३</sup> ॥ ५६ ॥

द्वावेतौ दाहशीतादी ज्वरौ संसर्गजौ स्मृतौ ।

दाहपूर्वस्तयोः कष्टः कृच्छ्रसाध्यतमः स्मृतः ॥ ५७ ॥

जब कफ वायु त्वचामें स्थित होतेहैं तो ज्वरके आदिमें शीत उत्पन्न करते हैं और उनके शांत होजानेपर अंतमें पित्त बलवान् होनेपर दाह पैदा करता है ॥ ५५ ॥ और जब त्वचामें पित्त स्थित हो तब आदिमें दाह करता है और उसके शांत होजानेपर अंतमें वात कफ शीत पैदा करते हैं ॥ ५६ ॥ ये दोनों शीतारंभक और दाहारंभक ज्वर संसर्गज होतेहैं ( अर्थात् कफ वायु या पित्तका जिस प्रकार संसर्ग हो उसीप्रकार होतेहैं ) इनमेंसे जिसके आदिमें दाह हो और अंतमें शीत वह खोटा और अति कष्ट-साध्य होताहै ॥ ५७ ॥

प्रसक्तश्चाभिघातोत्थश्चेतनाप्रभवस्तु यः ।

रात्र्यहोः षट्सु कालेषु कीर्तितेषु यथा पुरा ।

प्रसह्य विषमोभ्येति<sup>१४</sup> मानवं बहुधा ज्वरः ॥ ५८ ॥

अभिघातज और मानस ( क्रोध शोक कामादि ) ज उत्कृष्ट ज्वर दोषोंके अनुसार पूर्वोक्त रात्रिदिनके छहों कालोंमें मनुष्योंके होता है ( जैसे दिन रातके भागोंमें छहों ऋतुके समय होतेहैं और उसमें, जिसमें जिस दोषका समय हो तो उस दोषका ज्वर उसी समय होता है ) और उसी दोषके अनुसार शीत उष्णादि तथा अन्य लक्षण और उपद्रव होते हैं ॥ ५८ ॥

विषमज्वरोंका शरीरमें रहना ।

स चापि विषमो देहं न कदाचिद्विमुच्यति ।

ग्लानिगौरवकाश्येभ्यः स यस्मान्नि प्रमुच्यते ॥ ५९ ॥

( श्लो० ५८ ) प्रसक्तः प्रकर्षेण संगी चेतनाप्रभवः मानसः शोककामादिजः ( इति नि० सं० ) रात्र्यहोः षट्सु कालेषु ऋतूणामनुरूपेषु यथा पुरा कीर्तितेषु दोषप्रकोपनिर्दिष्टेषु । प्रसह्य विषमो ज्वरः अभ्येति अतिशयं ततो व्याप्य मानव आगच्छति ।

वेगे तु समतिक्रान्ते गतोयमिति लक्ष्यते ।

धात्वन्तरस्थो लीनत्वान्न सौक्ष्म्यादुपलभ्यते ॥

अल्पदोषेधनः क्षीणः क्षीणेधनं इवानलः ॥ ६० ॥

यह विषमज्वर शरीरको कभी छोड़ता नहीं ( सदा कुछ बनाही रहता है ) क्योंकि विषमज्वरवाला ग्लानि भारीपन और कृशतासे कभी शून्य नहीं होता ॥ ५९ ॥ हां ज्वरका वेग होचुकनेके पीछे ज्वर चलागया ऐसा मालूम होताहै परंतु धात्वन्तरोंमें स्थित होकर लीन होजानेसे सूक्ष्मताके कारण मालूम नहीं पड़ताहै (पर बना रहताहै उसके अंशांश शरीरमें अवश्य रहतेही हैं ) जैसे अल्पदोषरूप इंधनसेक्षीण हुवा ज्वर ऐसे दबा हुआसा रहताहै जैसे इंधन क्षीण होनेपर अग्नि मंद और क्षीण होजाती है ( भस्मसे आच्छादित हुई मालूमतक नहीं होती ॥ ६० ॥

विषमज्वरोंका अन्य हेतु ।

दोषोऽल्पोऽहितसंभूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः ।

धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमं ज्वरम् ॥ ६१ ॥

अथवा ज्वरसे छूटे हुये मनुष्यके शरीरमें अहित आहार विहारसे उत्पन्न हुवा अल्पदोष भी किसी धातुमें प्राप्त होकर विषमज्वर उत्पन्न करदेताहै ॥ ६१ ॥

इस प्रकारसे विषमज्वरोंका होना ।

सततं रसरक्तस्थः सोऽन्येद्युं पिशितोऽश्रितः ।

मेदोर्गतस्तृतीयोऽपि त्वंस्थिर्मेजागतः पुनः ॥ ६२ ॥

कुर्याच्चातुर्थिकं घोरमेतकं रोगसंकरम् ।

केचिद्भूताभिषंगोत्थं भुवते विषमज्वरम् ॥ ६३ ॥

रस और रक्तमें प्राप्त हुवा दोष सततज्वर उत्पन्न करताहै और मांसमें व्याप्तहुवा अन्येद्युष्क करता है और मेदागत हो तो तृतीयक ज्वर करता है तथा अस्थि या मज्जामें प्राप्त होकर अंतक घोर रोगसंकर ऐसा चातुर्थिक ज्वर पैदा करता है और कोई विषम ज्वरोंको भूतादिकी छायासे ही होना कहतेहैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

( श्लो० ६१ ) ज्वरोत्सृष्टस्य वा इत्यत्र वा शब्देनेति बोध्यते । प्रथमतो विषमज्वरो भवति । यत उक्तम् आरंभादिपमो यस्तु रसादिकधातुं रूपयित्वा विषमज्वरं करोति इत्यपेक्षायामाह । सततं रसरक्तस्थ इत्यादि ( इति भा० मि० )

## संततज्वरके लक्षण ।

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ।

संतत्या योऽविसर्गी स्यात्संततः स निगद्यते ॥ ६४ ॥

सात दिनतक या दश दिनतक अथवा बारा दिनतक जो निरंतर तप चढाही रहे उसे संतत ज्वर कहतेहैं ॥ ६४ ॥

( वक्तव्य ) यह संततज्वर विषम नहीं है क्योंकि भावमिश्रजीने लिखा है “ निवृत्तः पुनरायाति विषमो नियते दिने ” अर्थात् छोड़ छोड़ कर जो नियत समयपर फिरकर आवे वही विषमज्वर होताहै और ऐसा भी लिखा है कि “ज्वराः पंच तु ये प्रोक्ताः पूर्वं सततकादयः। चत्वारः संततं हित्वा ज्ञेयास्ते विषमज्वराः” पर कोई आचार्य संतत सतत अन्येद्युष्क तृतीयका और चातुर्थिक इन पांचोंको विषमज्वर मानते हैं ॥

## सतत आदिके लक्षण ।

अहोरात्रे सततको द्वौ कालौवनुवर्तते ।

अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रादेककालं प्रवर्तते ॥ ६५ ॥

तृतीयकस्तृतीयेहि चतुर्थेहि चतुर्थकः ॥ ६६ ॥

एक दिनरातमें सततज्वर दो बार चढता ( दो ही बार उतर जाता है ) और अन्येद्युष्क एक दिनरातमें एक बार चढताहै ( अर्थात् नित्य चढनेवाला तप अन्येद्युष्क कहलाता है ॥ ६५ ॥ और एक दिन बीचमें छोड़कर तीसरे दिन चढनेवाला तृतीयक होताहै और दोदिन बीचमें छोड़कर चौथे दिन चढनेवाला चातुर्थिक ( चौथिया ) होताहै ॥ ६६ ॥

( वक्तव्य ) पहले ४७ । ४८ वां श्लोकोंमें कफके स्थानोंमें दोष होनेसे विषमज्वर कहे और अब ६२ । ६३ वां श्लोकोंमें रस रक्त मांसादिमें दोष स्थित होनेसे भी लिखे इसका समाधान यह है कि दोनों प्रकारसे विषम ज्वर होतेहैं प्रथम जो कफस्थानस्थदोषसे जो कहे वे अवश्यही क्षीण

( श्लो० ६४ ) सप्ताहं दशाहं द्वादशाहं दोषभेदेन स्यात् । तद्यथा । वातिकः सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिकः । श्लैष्मिको द्वादशाहेन ज्वरः पाकं नियच्छति । संतत्या नैरंतर्येणेति । अविसर्गी अदिसर्जनशीलः ।

( श्लो० ६६ ) तृतीयेहि तृतीयकः इत्यादि । दिनमेकमतिक्रम्य यो भवेत्स तृतीयकः । दिनद्वयं त्वतिक्रम्य यः स्यात्स हि चतुर्थकः । ( इति भा० मि० ) ।

ज्वरमुक्तके कुपथ्यादिसे होतेहैं और घोर तथा कष्टसाध्य होतेहैं और रस रक्त मांसादिमें तिर्यग्गत ऊष्माके परमाणु कुछ स्थित होजानेसे जो ज्वर होते हैं वे प्रायः आरंभ ही से विषमज्वररूप होतेहैं और उतने कष्टसाध्य नहीं होते कारण यह कि प्रथमका दोष कफस्थानोंमें स्थित होता है वहांसे आमाशयमें पहुँचकर फिर रस रक्त स्वेदादिकी तरफ आताहै-और पिछलेका दोष ऊष्मा उपरिगत रक्त मांस मेद आदिमें होताहै जो प्रायः सुख पूर्वक स्वेदकी तरफ प्रवर्त होकर शांत होजाता है-

जैसे वहां दोषके कफस्थानसे आमाशयमें और वहांसे रसगत होकर त्वचा की तरफ प्रवर्त होनेमें समयका क्रम है वैसे ही इसमें धात्वंतरसे ऊष्माके त्वचाकी तरफ प्रवर्त होनेमें समयका क्रम होताहै जिससे सतत अन्येद्युष्क तृतीयक और चातुर्थिक होतेहैं।

इनमेंसे क्षीणके विपर्यय विषमज्वर बहुतही कष्टसाध्य होतेहैं-

### ज्वरके वेगपर दृष्टांत ।

वातेनोद्धूयमानस्तु यथा पूर्येत सागरः ।

वातेनोदीरितास्तद्दोषाः कुर्वन्ति वै ज्वरान् ॥ ६७ ॥

यथा वेगार्गमे वेलां छादयित्वा महोदधेः ।

वेगहानौ तदेवांभस्तत्रैवांतर्निधीयते ॥ ६८ ॥

दोषवेगोदये तद्दुदीर्येत ज्वरोऽस्य वा ।

वेगहानौ प्रशाम्येत यथांतः सागरे तथा ॥ ६९ ॥

जैसे वायुके वेगसे संचालित हुवा समुद्र पूरित होताहै ( झालें उठती और फैल जातीहैं ) उसी तरह वायुसे उदीरित किये हुये ( उठाये और प्रेरित किये हुये ) दोष ज्वरको करतेहैं ॥ ६७ ॥ जैसे समुद्रके उभार आने पर जल किनारोंके ऊपरतक छाजाताहै और उभारके उतर जानेपर वह जल उसीमें पीछेको फिर लीन हो जाताहै ॥ ६८ ॥ इसी प्रकार दोषोंके वेग होनेकेसमय ज्वर प्रचंड होताहै और वेगके शांत होने पर ज्वरभी शांत होजाताहै जैसे समुद्रका जल उभारके घटनेसे उसीमें लय होजाताहै ॥ ६९ ॥

### आगंतुक ज्वरका वर्णन ।

विषं धेनाभिधातेन ज्वरो यः संप्रवर्तते ।

यथा दोषप्रकोपं तु तथा मन्येत तं ज्वरम् ॥ ७० ॥

श्यावास्यता विषकृते दाहातीसारहृद्द्रहाः ।  
 अभक्ता रुक् पिपासा च तोदो मूर्च्छा बलक्षयः ॥ ७१ ॥  
 ओषधीगंधजे मूर्च्छा शिरोरुक् क्षवथुस्तथा ॥ ७२ ॥  
 कामजे चित्तविभ्रंशस्तंद्रालस्यमभक्तरुक् ।  
 हृदये वेदना चाशु गात्रं च परिशुष्यति ॥ ७३ ॥  
 भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः ।  
 अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णाभिजायते ॥ ७४ ॥  
 भूताभिषंगादुद्वेगहास्यकंपनरोदनम् ॥ ७५ ॥  
 श्रमक्षयाभिघातेभ्यो देहिनां कुपितोनिलः ।  
 पूरयित्वाखिलं देहं ज्वरमापादयेद्दृशम् ॥ ७६ ॥

नाना प्रकारके अभिघातोंसे ( चोट आदि लगनेसे ) जो ज्वर होता है वह जिस जिसके कोपसे होता है उसको उसी प्रकारके लक्षणवाला समझना चाहिये ॥ ७० ॥ और विषके प्रभावसे जो ज्वर होता है उसमें मुँह काला पड़जाता है दाह होता है अतिसार होता है हृदय पकड़ा हुवासा होता है और भोजन किया नहीं जाता जिससे वेदना होती है और तृषा तथा तोद ( पीड़ा दरद ) होता है मूर्च्छा ( बेहोशी ) होती है और बलका क्षय होजाता है ॥ ७१ ॥ तीक्ष्ण औषधीके गंधसे होनेवाले ज्वरमें मूर्च्छा शिरमें दरद और छींक आना ये लक्षण होते हैं ( क्षवका अर्थ डल्लन मिश्रजीने हिक्का लिखा है और “क्षवथुस्तथा” की जगह “वमथुः क्षवः” ऐसा पाठ माना है अर्थात् वमन हो और क्षव अर्थात् हिक्का हो ऐसा लिखा है ) ॥ ७२ ॥ कामजनित ज्वरमें चित्त भ्रंश तंद्रा आलस्य अरुचि हृदयमें वेदना शरीर सूख जाना ये लक्षण होते हैं ॥ ७३ ॥ भयज्वर और शोकज्वरमें प्रलाप होता है और कोपजनित ज्वरमें कंप होता है अभिचारज्वर और शापजनित ज्वरमें मोह ( मूर्च्छा ) और तृषा अधिक होती है भूतबाधा और देवादिबाधाजनित ज्वरमें उद्वेग हास्य कंप और रुदन करना ये लक्षण होते हैं ( कोई मारणादि तंत्र मंत्र करे वह अभिचार और साधु महात्मादि दुःखी होकर शाप दें वह अभिशाप कहाता है ) ॥ ७४ । ७५ ॥ श्रमसे क्षयसे और अभिघातसे मनुष्योंके शरीरमें वायु कुपित होता है वह कुपित वायु ( ऊष्मायुक्त होकर ) जब सब देहमें व्याप्त होता है तब तब ज्वर उत्पन्न करता है ॥ ७६ ॥



रोगाणां तु समुत्थानाद्विदाहागंतुतस्तथा ।

ज्वरोपरः संभवति तैस्तैरन्यैश्च हेतुभिः ।

दोषाणां स तु लिंगानि कदाचिन्नातिवर्तते ॥ ७७ ॥

रोगोंके उठनेसे जैसे विद्रध्यादिके उठावपर ज्वर होआता है तथा विदाहसे उनके पकावके समय तथा आगंतु कारण उनपर अभिघात होने से इत्यादि कारणोंसे भी ज्वर हो जाता है परंतु वह भी दोषोंके चिह्नोंसे पृथक् नहीं होता ( उसमें भी उसके कारणरूप वातादि दोषोंके लक्षण होते हैं ) तथा अन्य हेतुओं ( अजीर्ण आदि ) से भी ज्वर होता है उसमें भी दोषों के लक्षण होते हैं ॥ ७७ ॥

### धातुगत ज्वरके लक्षण ।

रसस्थे तु ज्वरे वत्स लक्षणानि निबोध मे ।

गुरुत्वं दैन्यमुत्कृशः स्यंदनं छर्द्यरोचकौ ॥ ७८ ॥

रागः कूपिटिका तृष्णा सरक्तष्ठीवनं भ्रमः ।

दाहो मूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिः प्रलापो रक्तसंस्थिते ॥ ७९ ॥

पिंडिकोद्वेष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्रपुरीषता ।

उष्मांतमोहविक्षेपौ ग्लानिः स्यान्मांसगे ज्वरे ॥ ८० ॥

( श्लो० ७७ ) अत्र तैस्तै अन्यैश्च हेतुभिरिति अजीर्णादिभिः तत्र अजीर्णज्वरलक्षणं ग्रंथांतरात् । अजीर्णज्वरो लक्षणैरष्टभिर्वा भिषक्सत्तमैर्ज्ञायते सप्तभिर्वा । अतीसारउद्गार उष्णातिनिद्राशिरातिः प्रलापो हि जृम्भादरे रुक् ( इति भि० च० )

( श्लो० ७८ से ८४ तक ) केषुचित्पुस्तकेषु एष पाठो न पठितः परंतु श्रीमता डल्लनाचार्येण लिखितम् । केचिदत्र रसादिधातुगतस्य लक्षणं पठन्ति । रसस्थे तु ज्वरे वत्स-लक्षणानि निबोधमे इत्यादि । अनेनैव हेतुना मयापि लिखितः । अत्र जैजटाचार्यस्याभिमतमेतत् इति पाठो न पठनीयः । यतः सर्वशरीरं संततेन व्याप्तं सततादिभिश्च रसादिगतेन कालक्रम एव । अत एव रसादिस्थज्वराणां पाठो न तु पठनीयः । परं च गयदासाचार्येण पुनः पठनीयः इत्युक्तः यत्र कुत्रचित्पाठांतरं कृत्वा पठिन एव तस्मादेव मयापि पठितः पठनीय एव च ज्ञायते ॥

( श्लो० ७९ ) कूपिटिका रागिका कृतिमूर्ध्मपिंडिका परिदर्शनम् ॥

बद्धस्तीव्रः पिपासा च मूर्च्छा छर्दिः प्रलापता ।

गंधस्य वाऽसहत्वं च मेदस्थे ग्लान्यरोचकौ ॥ ८१ ॥

विरेकवमने चोभौ त्वस्थिभेदः प्रपीडनम् ।

विक्षेपणं च गात्राणां श्वासश्चास्थिगते ज्वरे ॥ ८२ ॥

हिक्का कासो महाश्वासस्तमस्य हि प्रवेशनम् ।

मर्मभेदो बहिः शैत्यं दाहोतश्चैव मज्जगे ॥ ८३ ॥

तस्मान्मरणं मां प्रोति शुक्रस्याप्युपसर्पणे ।

शेफसस्तृच्चता मोक्षः शुक्रस्यै तुं विशेषतः ॥ ८४ ॥

यद्यपि बहुतसी पुस्तकोंमें यह पाठ नहीं है परंतु निबंधसंग्रहमें स्वीकार किया इससे आर्ष मानकर हम इसे मूलमें लिखते हैं श्रीधन्वंतरिजी कहते हैं हे वत्स सुश्रुत ! रसमें प्राप्तहुये ज्वरके लक्षण मुझसे सुनो इसमें गुरुता दीनता उबकाई अभिष्यंद छर्दि अरुचि ये लक्षण होते हैं ॥ ७८ ॥ शरीर और चेहरेपर अरुणता मालूम पड़े छोटी २ फुन्सियां हों तृषा हो मुंहसे रुधिर थूके भ्रम हो दाह मूर्च्छा अरुचि छर्दि और प्रलाप हो ये रक्त गत ज्वरके लक्षण हैं ॥ ७९ ॥ पिंडली भड़के तृषा हो मल पतला हो और मूत्रभी अधिक उतरे भीतर गरमी रहे और मोह हो उठकर चलने या खड़े होनेमें गिर गिर पड़े और ग्लानि रहे ये लक्षण मांसगत ज्वरके हैं ॥ ८० ॥ तीव्र बंधता होनी तृषा मूर्च्छा छर्दि प्रलाप गंधका असहत्व ( उसमें असहन योग्य दुर्गंध आवे अथवा उसकी कोई गंध सहे नहीं ) ग्लानि और अरुचि हो ये लक्षण मेदोगत ज्वरके हैं ॥ ८१ ॥ अतिसार और वमन दोनों हों अस्थियोंमें भेदन और पीडा हो शरीरमें विक्षेप हो ( हाथ पांव आदि देदे मारे ) श्वास भी हो ये लक्षण अस्थिगत ( हड्डियोंमें प्रविष्ट हुये ) ज्वरके हैं ॥ ८२ ॥ हिचकी खाँसी महाश्वास ये हों अँधेरी आवे ममोंका भेदन हो बाहर शीत और अंतर्दाह हो ये लक्षण मज्जागत ज्वरके होते हैं ॥ ८३ ॥ मेढूकी उच्चता और अत्यंत शुक्रका निकलना और शुक्रका उपसर्पण होनेपर मृत्यु होजाती है अर्थात् ये लक्षण शुक्रगत ज्वरके हैं ( और मज्जागत तथा शुक्रगत ज्वर असाध्य होते हैं ) ॥ ८४ ॥

( वक्तव्य ) पहले विषमज्वरोंमें “सततो रसरक्तस्थः सोन्येद्युः पिशिताश्रितः मेदोगतस्तृतीयेहि त्वस्थिमज्जागतः पुनः” इत्यादि लिख चुकेहैं फिर यहां धातुगत कैसे ! इसका समाधान यह है कि वहां तो दोष (ऊष्मा) के परमाणु तिर्यग्गामी होकर उन धातुओंमें ठहरजातेहैं किसी धातुको दूषित इतना नहीं करते अनुलोम होनेसे इतने कष्टसाध्य भी नहींहोतेहैं और यह रसगत रसको दूषितकरके रक्तमें पहुँचता है फिर रक्तको दूषितकर मांस गत होताहै फिर उसेभी दूषितकर मेदगत होता है फिर वहांसे अस्थि और मज्जा आदिमें पहुँचजाताहै यह ऊपर ऊपरकी धातुओंको बिगाड़कर भीतरको प्रतिलोम गमन करताहै इससे जितना २ भीतरी धातुओंमें पहुँचता है उतनाही उतना कष्टसाध्य और असाध्य होताजाता है ॥

## गंभीर और असाध्यज्वर ।

गंभीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो अंतर्दाहेन तृष्ण्या ।

आनद्धत्वेन चात्यर्थं श्वासकासोद्धमेन च ॥ ८५ ॥

हतप्रभेद्रियं क्षामं दुरात्मानमुपद्रुतम् ।

गंभीरं तीक्ष्णवेगार्तं ज्वरितं परिवर्जयेत् ॥ ८६ ॥

ऐसे ज्वरको गंभीर जानना चाहिये जिसमें अंतर्दाह हो तृषा अधिक हो आनद्धता हो ( दोष और मल जहाँके तहाँ रुकेसे हों ) और श्वास और खांसीका अत्यंत वेग हो ॥ ८५ ॥ जिसकी कान्ति और इंद्रियां भ्रष्ट होगई हों दुर्बल हों जिसका चित्त दुष्ट हों उपद्रव ( हिचकी आदि ) विशेष हों और ज्वरका वेग भी गंभीर और तीक्ष्ण हो ऐसे ज्वरवालेको त्याग देना चाहिये ( अर्थात् असाध्य होताहै ) ॥ ८६ ॥

हीनमध्याधिकैर्दोषैस्त्रिसप्तद्वादशाहिकः ।

ज्वरवेगो भवेत्तीव्रो यथापूर्वं सुखप्रियः ॥ ८७ ॥

हीन और मध्य तथा अधिक दोषोंसे तीन दिन सात दिन और चारहदिन ज्वरका वेग होताहै जो यथापूर्वं सुखसाध्य होताहै अर्थात् चारह दिन वालेसे तीव्र वेग सात दिनवाला सुखसाध्य है और सात दिनवालेसे तीव्र वेग तीन दिनवाला सुखसाध्य होताहै ॥ ८७ ॥

## परिशिष्ट ।

( जीर्णज्वरके लक्षण ) ( भा० प्र० )

यो द्वादशेभ्यो दिवसेभ्य ऊर्द्ध दोषत्रयेभ्यो द्विगुणेभ्य ऊर्द्धम् ।

नृणां तनौ तिष्ठति मंदवेगो भिषग्भिरुक्तो ज्वर एव जीर्णः ॥१॥

जो ज्वर बारा दिनसे ऊपर तथा तीनों दोषोंके दिनोंसे दुगुने दिनसे ऊपर मनुष्योंके शरीरमें जो मंद वेगवाला ज्वर स्थिर होजाय उसे वैद्य जीर्णज्वर कहते हैं ( कई वातबलासकको कई प्रलेपकको कई हतावशेषको जीर्णज्वर मानतेहैं ) ॥ १ ॥

## ज्वरकी चिकित्साका आरंभ ।

इति ज्वराः समाख्याताः कर्मैदानीं प्रवक्ष्यते ॥ ८८ ॥

ज्वरके हेतु संप्राप्ति और लक्षणादि ( निदान ) का वर्णन समाप्त हुवा अब यहांसे अगाड़ी इसकी चिकित्साका विधान कहेंगे ॥ ८८ ॥

## ज्वरके पूर्वरूपमें कर्तव्य ।

ज्वरस्य पूर्वरूपेषु वर्तमानेषु बुद्धिमान् ।

पाययेत् घृतं स्वच्छं ततः संलभते सुखम् ॥ ८९ ॥

विधिमारुतजेष्वेष पित्तिकेषु विरेचनम् ।

मृदु प्रच्छर्दनं तद्वत्कफजेषु विधीयते ॥

सर्वं त्रिदोषजेषूक्तं यथादोषं विकल्पयेत् ॥ ९० ॥

ज्वरका पूर्वरूप होतेही ( अर्थात् निरामवात ज्वरके पूर्वरूपमें ) बुद्धिमान् वैद्य स्वच्छ ( केवल पुराना ) घृत पान करावे ऐसा करनेसे सुख प्राप्त होता है ॥ ८९ ॥ यह घृत पिलानेकी विधि केवल वातज्वरहाके पूर्वरूपमें उचित है और पित्तज्वरके पूर्वमें मृदुविरेचन देना चाहिये और कफज्वरके पूर्वरूपमें

( श्लो० ९० ) विधिमारुतजे इति । निरामे मारुतजे तत्र सामस्य निरामस्य च वायोर्लक्षणम् । “वायुः सामो विवंधाग्निसादतद्रांन्रकूजनैः । वेदनाशोथनिस्तोदैः कमशोगानि पाठयेत् ॥ १ ॥ विचरेद्युगपच्चापि गृह्णाति कुपितो भृशम् ” स्नेहाद्यैर्बुद्धिमायाति मेघसूर्योदये निशि ॥ २ ॥ ” निरामस्य लक्षणम् । “निरामो विशदो रूक्षो निर्गन्धोत्यल्पवेदनः । विपरीतगुणैः स्निग्धैः शान्तिं याति विशेषतः ” ( इति भा० प्र० )

इसी भांति मृदु वमन कराना योग्य है और त्रिदोषज ( और द्वंद्वज ) ज्वरोंके पूर्वरूपमें उक्तविधियोंमेंसे दोषोंके अनुसार विधि करनी चाहिये ॥ ९० ॥

( साम निराम पित्त और कफके लक्षण सूत्रस्थान २१ वीं अध्यायमें तथा टिप्पणीमें लिख चुके हैं वायुके साम निराम भेद अब टिप्पणीमें लिखते हैं देखो टिप्पणी )

**अस्नेहनीयोऽशोध्यश्च संयोज्यो लंघनादिना ।**

**रूपप्राग्रूपयोर्विद्यान्नानात्वं वह्निधूमवत् ॥ ९१ ॥**

जिनको स्नेहपान नहीं कराना हो तथा जिसे विरेचन अथवा वमन भी नहीं कराना हो उसे लंघन आदि कराना चाहिये यहां आदिशब्दसे उष्ण जल पान कराने इत्यादिका ग्रहण करना चाहिये ( नवीन ज्वरमें जब शोधनका निषेध है तो पूर्वरूपमें उस की आज्ञा कैसे दीगई इसी लिये लिखा है कि ) रूप और पूर्वरूपमें अग्नि और धूमकी भांति पृथक्त्व है ऐसा जानना इसीसे आज्ञा है ॥ ९१ ॥

( वक्तव्य ) यह है कि पूर्वरूपमें प्रायःदोष आमाशयहीमें होता है इससे शोधनसे शुद्ध होजाता है और प्रगटरूपमें रसस्वेद वहां शिराओं द्वारा त्वचा की तरफ प्रवृत्त होजाता है उस अवस्थामें शोधनसे प्रतिलोम होकर धात्वंतर में गमन करके विषम और धातुगत कष्टसाध्य होजाता है ॥

**ज्वरके प्राकट्यमें चिकित्सा ।**

**प्रव्यक्तरूपेषु हितमेकांतेनापैतर्पणम् ।**

**आमाशयस्थे दोषे तु सौत्क्रेशे वमनं परम् ॥ ९२ ॥**

**आनद्धस्तिमितैर्दोषैर्यावन्तं कालमातुरः ।**

**कुर्यादन्नशनं तावत्ततः संसर्गमाचरेत् ॥ ९३ ॥**

ज्वरका रूप प्रगट होनेपर तो निःसंशयतासे अपतर्पण ( लंघन ) करना ही हित है और यदि उत्क्रेश सहित दोष आमाशयमें हो तो वमन कराना ही परम हित है ॥ ९२ ॥ जबतक रोगी ठेरे हुंय दूषित दोषोंसे आनद्ध हो ( अर्थात् रुकाहुआ या व्याप्त हो ) उतने दिन या समय तक उसे लंघन करना चाहिये इस पीछे अन्नका संसर्ग करे ( लघु भोजन करे ) ॥ ९३ ॥

( श्लो० ९३ ) ततः संसर्गमाचरेत् इति । लंघनानन्तरं लघुभोजनस्य संसर्गकुर्यात् ॥

## लंघनका निषेध ।

न लंघयेन्मारुतजे क्षयजे मानसे तथा ।

अलंघ्याश्चापि ये पूर्व द्विव्रणीये प्रकीर्तिताः ॥ ९४ ॥

वातज्वरमें क्षयज्वरमें तथा मानसिक ( काम ज्वर शोकज्वर आदि ) ज्वरमें लंघन कराना उचित नहीं तथा द्विव्रणीय अध्यायमें लंघनसे वर्जित कहेहैं उन्हेंभी लंघन नहीं करावे ॥ ९४ ॥

## लंघनके गुण ।

अनवस्थितदोषाग्नेर्लघनं दोषपाचनम् ।

ज्वरघ्नं दीपनं कांक्षारुचिलाघवकारकम् ॥ ९५ ॥

जिस मनुष्यके दोष और अग्नि यथार्थ न हो उसको लंघनसे दोषोंका परिपाक होजाताहै लंघन ज्वरका नाश करनेवाला दीपन कांक्षा रुचि और हलकापन करताहै ॥ ९५ ॥

## सम्यक् लंघन और अतिलंघनके लक्षण ।

सृष्टमारुतविण्मूत्रं क्षुत्पिपासाऽसहं लघुम् ।

प्रसन्नमेन्द्रियं क्षामं नरं विद्यात्सुलंघितम् ॥ ९६ ॥

बलक्षयस्तृषाशोषस्तंद्रानिद्राभ्रमक्लमाः ।

उपद्रवाश्च श्वासाद्याः संभवंत्यतिलंघनात् ॥ ९७ ॥

अधो वायु मल और मूत्रका त्याग ठीक हो क्षुधा तृषा सही नहींजावे हलकापन होजावे आत्मा और इंद्रिय सब प्रसन्न हों क्षामता ( कुछ दुर्बलता ) होजावे तो जानना कि इसे ठीक लंघन हुये ( अर्थात् योग्य लंघनके ये लक्षण हैं ) ॥ ९६ ॥ बलका नाश होजावे तृषा अधिक हो शोष ( खुश्की ) होजावे तंद्रा और निद्रा तथा भ्रम और क्लम तथा श्वासादि उपद्रव अति लंघनसे हो जातेहैं ( कई इसमें निद्राकी जगह अनिद्रा मानते हैं ) ॥ ९७ ॥

## उष्ण जल और शृतका उपयोग ।

दीपनं कफविच्छेदि पित्तवार्तानुलोमनम् ।

कफवार्तज्वरार्तेभ्यो हितमुष्णांबु तृट्छिदम् ॥ ९८ ॥

तद्वि मारद्वक्त्रदोषस्रोतसां शीतमन्यथा ।

सेव्यमानेन तोयेनै ज्वरः शीतेन वर्द्धते ॥ ९९ ॥

पित्तमद्यविषोत्थेषु शीतलं तिक्तकैः शृतम् ।

गांगेयनागरोशीरपर्पटोदीच्यचंदनैः ॥ १०० ॥

उष्ण जल दीपन है कफका छेदन करनेवाला और पित्त तथा वायुको अनुलोमन कर्ता है यह कफज्वर और वातज्वरके रोगियोंको हितकारक है और तृषाको शांत करता है ॥ ९८ ॥ और यह उष्णोदक दोषोंको तथा स्रोतोंका मुलायम करता है और शीतल जल इनके विपरीत होता है शीतल जलके सेवन करनेसे ज्वरकी वृद्धि होती है ॥ ९९ ॥ परंतु हां पित्तज्वर मद्य जनितज्वर विषजनितज्वर इनमें तिक्त ( कड़वे ) द्रवोंसे उवालाहुवा शीतल जल हित होता है वे तिक्तद्रव्य ये हैं नागरमोथा सोंठ खस पित्त पापड़ा नेत्रवाला और चंदन ( इनका प्रमाण कई इस प्रकार मानते हैं कि गांगेयादि सब द्रव्य कर्षप्रमाण और जल एक प्रस्थ उवालकर आधा रहे शीतल करके उपयोग करना ) ॥ १०० ॥

## परिशिष्ट ( कषाय भेद ) ।

हम ग्रंथांतरसे कुछ काथोंके भेद और विधि कहते हैं ।

स्वरसश्च तथा कल्कः काथश्च हिमफांटकौ ।

ज्ञेयाः कषायाः पंचैते लघवः स्मुर्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

कषाय ( अर्थात् काठे ) के ५ भेद हैं १ स्वरस २ कल्क ३ काथ ४ हिम ५ फांट इसप्रकार पांच प्रकारके कषाय होते हैं इनमेंसे उत्तरोत्तर लघु होते हैं ( जैसे स्वरससे कल्क हलका होता है और कल्कसे काथ और काथसे हिम हिमसे फांट हलका होता है ) ॥ १ ॥

## स्वरस ।

आहतात्तत्क्षणाकृष्टाद्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्भवेत् ।

वस्त्रनिष्पीडितो यश्च स्वरसो रस उच्यते ।

स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्द्धं प्रयोजयेत् ॥ २ ॥

( श्लो० १०० ) गांगेयो मुस्ता । कल्पनामाह गांगेयादि सर्व द्रव्यं कर्षमात्रं उदक प्रसे अर्द्धशतशतत्वात्मयोज्यम् ।



गीली तात्कालकी लाई दुई औषधको कूटकर वस्त्रसे निचोड़नेसे जो रस निकले उसे स्वरस कहते हैं यह स्वरस गरिष्ठ और भारी होता है इससे इसकी सामान्य मात्रा आधे पलकी है ॥ २ ॥

### कल्क ।

द्रव्यमाद्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत् ।  
प्रक्षिप्य गालयेद्वस्त्रे तन्मानं कर्षसंमितम् ॥ ३ ॥  
कल्के मधुघृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया ।  
सितागुडसमं दद्याद्भवो देयश्चतुर्गुणः ॥ ४ ॥

गीली औषध शिलवट्टेसे पीसकर या सूखीको जल डालके पीस लेवे फिर पानी चौगुना मिलाकर घोलकर वस्त्रमेंसे छान ले इसमें औषधकी मात्रा १ कर्ष लेनी ॥ ३ ॥ कल्कमें शहद घृत तैल मिलाना हो तो दुगुना ( दो कर्ष ) मिलावे और जो गुड़ मिश्री ये मिलाने हों तो बराबरके मिलावे और द्रव जल दुग्धादि चौगुने मिलावे ॥ ४ ॥

### क्वाथ ।

पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णे द्रव्यपले क्षिपेत् ।  
मृत्पात्रे क्वाथयेद्ब्राह्ममष्टमांशावशेषितम् ॥ ५ ॥  
कर्षादौ तु पलं यावद्दद्यात्षोडशकं जलम् ।  
ततस्तु कुडवं यावत्तोयमष्टगुणं भवेत् ॥ ६ ॥  
चतुर्गुणमतश्चोद्धं यावत्प्रस्थादिकं जलम् ।  
तज्जलं पाययेद्धीमान् कोष्णं मृद्वग्निसाधितम् ॥ ७ ॥  
क्वाथद्रव्यपले वारि द्विरष्टगुणमिष्यते ।  
चतुर्भागावशिष्टं तु पेयं पलचतुष्टयम् ॥ ८ ॥  
क्वाथे क्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः ।  
वातपित्तकफातंके विपरीतं मधु स्मृतम् ॥ ९ ॥  
जीरकं गुग्गुलं क्षारं लवणं च शिलाजतु ।  
हिगुत्रिकटुकं चैव क्वाथे शाणोन्मितं क्षिपेत् ॥ १० ॥

सूखे हुये पलभर द्रव्यको कुचलकर उससे सोलागुना पानी डालके मिट्टीके या ( चीनीआदिके ) पात्रमें डालकर उबाले और अष्टमांश जल शेष रहे काममें लावे ॥ ५ ॥ कर्षसे पलतक द्रव्यमें सोलागुना पानी डालना और पलसे ऊपर कुडवतकमें अठगुना जल डाले ॥ ६ ॥ इससे ऊपर प्रस्थतकमें चौगुनापानी डाले और मंदी आंचसे पकाकर छान कर निवाया पिलावे ॥ ७ ॥ और व्यावहारिक सामान्य यह है कि एक पल द्रव्यमें सोलागुनापानी डालकर चौथाई रहनेपर चार पलकी मात्रा पीनी चाहिये ॥ ८ ॥ काथमें मिश्री वायुपित्त और कफके रोगमें चौथा आठवाँ और सोलहवाँ भाग ( काथितसे ) डालना और शहद इसके विपरीत क्रमसे डालना ॥ ९ ॥ जीरा गूगल क्षार ( यवक्षारादि ) नमक शिलाजीत हींग और त्रिकटु यदि इनमेंसे कोई डालना हो तो १ शाण ( टंक ) भर डालना ॥ १० ॥

( वक्तव्य ) इससमय शिलाजीत और हींग इस मात्रासे बहुतही कम डालना योग्य है ।

## हिम ।

क्षुण्णद्रव्यपलं सम्यक्पट्टभिर्नीरपलैः प्लुतम् ।

निःशोषितं हिमः स स्यात्तथा शीतकषायकः ।

तस्य मानं मतं पाने पलद्वयमितं बुधैः ॥ ११ ॥

पलभर द्रव्यको खूब कुचलकर छः पल शीतलपानीमें भिगोदेवे ( रात भर या बहुत देर भिगोवे ) जब जलसे खूब भीजकर औषध मृदु होजाय पानी उसमें मेज होजाय तब मलकर औषध उसे छान ले इसे हिम तथा शीत कषाय कहतेहैं इसकी मात्रा दोपल पीनी चाहिये ( इसमें सिता आदि काथके अनुसार प्रमाणसे डाले ) ॥ ११ ॥

## फांट ।

क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यग्जलमुष्णं विनिक्षिपेत् ।

मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत्पटात् ॥ १२ ॥

स स्याच्चूर्णद्रवः फांटस्तन्मानं द्विपलोन्मितम् ।

क्षौद्रं सितागुडादीस्तु काथवत्तत्र निक्षिपेत् ॥ १३ ॥

पल भर द्रव्यको कुचलकर एक कुडव गरम पानी डालकर मिट्टी के पात्र में रखदे जब पानी ठीक ठंडा होजावे तब उसे कपड़ेमें छान ले ॥ १२ ॥ यह कुटे द्रव्यका फांट होताहै इसके पीनेकी मात्रा दोपल होतीहै इसमें शहद मिश्री गुड आदि काथके प्रमाणसे डालने चाहियें ॥ १३ ॥

यह ऊपर कषायभेद शार्ङ्गधरोक्त भावप्रकाशमेंसे लिखा गया है अगाड़ी हारीतके मतसे काथभेद लिखते हैं ॥

### काथभेद ( हारीतमतात् )

पाचनो दीपनीयश्च शोधनः शमनस्तथा ।

तर्पणः क्लेदनः शोषी काथः सप्तविधः स्मृतः ॥ १ ॥

पाचनोर्द्धावशेषी स्याच्छोधनो द्वादशांशकः ।

क्लेदनश्चतुरंशश्च शमनोष्टावशेषितः ॥ २ ॥

दीपनीयो दशांशस्तु तर्पणश्च समांशकः ।

विशोषी षोडशांशश्च काथभेदाः प्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥

पाचन दीपन शोधन शमन तर्पण क्लेदन और शोषण इसप्रकारके काथसे सात भेद हैं ॥ १ ॥ इनमें पाचनकाथ अर्द्धावशेष करना चाहिये ( अर्थात् जितना जल हो उससे आधा रहने दे ) और शोधन द्वादशांश होता है (जितना जल हो उबालते २ बारह भाग रहने दे) क्लेदन काथ चतुर्थांश रक्खा जाताहै और शमन काथ अष्टमांश ॥ २ ॥ दीपन दशवां भाग रखना और तर्पण काथमें केवल जोश देकर उतनाका उतना जल रखना और शोषण काथमें सोलहवां भाग रहे काममें लाना इस प्रकारसे काथभेद कहे हैं ॥ ३ ॥

पाचनं तु नरे देयं निशासु प्रविजानता ।

पूर्वाह्णे शमनो देयोऽपराह्णे दीपनः स्मृतः ॥ ४ ॥

तर्पणो भेदनः कल्ये मध्याह्णे क्लेदनस्तथा ।

शोषणोपि प्रभाते च काथः पाने प्रकीर्तितः ॥ ५ ॥

वैद्यको चाहिये कि पाचन काथ देना हो तो उसे रातको सोते समय दे और शमन पूर्वाह्णमें देवे और दीपन अपराह्णमें देना ॥ ४ ॥ तर्पण और भेदन प्रभातमें देवे क्लेदन मध्याह्णके आसपास देवे और शोषण भी सवेरे ही देवे काथ पीनेके समय इस प्रकारसे समझने ॥ ५ ॥

( वक्तव्य ) क्लेदन काथ वमन करानेको दियाजाताहै सो यवागूआदि पिलाकर मध्याह्नके आसपास देना ॥

पाचनः पचते दोषान्दीपनो दीप्यतेऽनलम् ।

शोधनो मलशोधी स्याच्छमनः शमते गदान् ॥ ६ ॥

तर्पणस्तर्पते धातून्क्लेदी ह्युत्क्लेदकारकः ।

विशोषी शोषमाधत्ते तस्मात्काथं परीक्षयेत् ॥ ७ ॥

पाचन काथ दोषोंको पकाताहै और दीपन अग्निदीपन करता है शोधन मलकों निकालता है. शमन दोनों ( दोषों ) को शमन कारक है ॥ ६ ॥ तर्पण धातुओंको तृप्त करता है और क्लेदी उत्क्लेद करता है और विशोषी शोषण करताहै इस लिये काथकी परीक्षा करके जहां जैसा योग्य हो वैसाही बनाकर देना चाहिये ॥ ७ ॥

तस्मादादौ प्रदेयं तु पाचनं च दिनत्रयम् ।

शमनीयं प्रदेयं तु पंचरात्रं ततः परम् ॥ ८ ॥

इस कारण आदिमें तीन दिन पाचन काथ देना चाहिये फिर इसके पीछे पांच दिनतक शमनीय काथ देवे ॥ ८ ॥

काथपाने क्लमो मूर्च्छा वैक्लव्यं च प्रदृश्यते ।

वमनं च तदा प्रोक्तं शमनं पथ्यकेऽपि वा ॥ ९ ॥

काथ पीनेपर यदि क्लम ( श्लानि ) हो मूर्च्छा होजावे या विकलता हो ता वमन कराके उसे निकालदेना चाहिये अथवा शमन करनेवाले पथ्यादि देके क्लमादि शांत करदेने चाहिये ॥ ९ ॥

इति परिशिष्ट ।

**भोजनकेसमय पेयाकानिर्देश ।**

दीपनी पाचनी लघ्वी ज्वरार्तानां ज्वरापहा ।

अन्नकाले हिता पेया यथार्स्वं पाचनैः कृता ॥ १०१ ॥

( श्लो० १०१ ) अथपेयाविधिः । चतुर्दशगुणे नीरे रक्तशाल्यादिभिः कृताः । द्रवाधिका त्वत्पक्षिक्या पेया मोक्षा भिषग्वरैः ॥ अस्या गुणाः । साऽतिलघ्वी ग्राहिणी च धातुपुष्टिविधायिनी । वृद्धज्वरानिलदौर्बल्यकुक्षिरोगविनाशिनी ॥ स्वेदाग्निमननी श्रेया नातचर्चोऽनुलोमनी ( इति भा० नि० )

जब लंघनके पीछे भोजनका समय हो तब यथायोग्य पाचन द्रव्योंसे बनाई हुई पेया देनी चाहिये क्यों कि यह दीपनी पाचनी और हलकी होती है तथा ज्वरवालोंके ज्वरकी नाश करनेवाली होती है ॥ १०१ ॥

## पाचनकी आवश्यकता ।

बहुदोषस्य मंदाग्नेः सप्तरात्रार्त्परं ज्वरे ।

लंघनांते यवागूभिर्यदा दोषो न पच्यते ॥ २ ॥

तदा तं<sup>१३</sup> मुखवैरस्यतृष्णारोचकनाशनैः ।

कषायैः पाचनै<sup>१६</sup> हृद्यैज्वरघ्नैः संमुपाचरेत् ॥ ३ ॥

जिसके दोष बहुत बढेहुए हों और अग्नि मंद हो उसको सात दिन पीछे लंघनके अंतमें यवागू पिलानेसे यदि दोष पके नहीं तो उसको मुखकी विरसता तृषा और अरुचिनाशक पाचन हृदयको हित ज्वरनाशक ऐसे कषायोंसे उपचार करे ॥ २ ॥ ३ ॥

पंचमूलीकषायं तु पाचनं पवनज्वरे ।

सक्षौद्रं पैत्तिके मुस्तकटुकेंद्रयवैः कृतम् ॥ ४ ॥

पिप्पल्यादिकषायं तु कफजे परिपाचनम् ।

द्वंद्वजेषु च संसृष्टं दद्यादथ विवर्जयेत् ॥ ५ ॥

पीतांबुलैधितो भुक्तोऽजीर्णी क्षीणः पिपासितः ॥ ६ ॥

वातज्वरमें पंचमूली ( बृहत्पंचमूल ) का काथ पाचनार्थ देना चाहिये और नागरमोथा कुटकी इंद्रजव इनका काथकर शहद मिलाकर पित्तज्वरमें पाचन देना ॥ ४ ॥ और पिप्पल्यादिका काथ कफज्वरमें पाचन देना और द्वंद्वजमें दो दोषोंकी औषधोंका काथकर पाचनार्थ देना परंतु सद्य जल पीये

( श्लो० २ ) ( यवागूलक्षणम् ) यवागूः षड्गुणे तोये संसिद्धा घनसिक्थका । पृथग्द्रवैस्तु विरलैः संयुक्ता ज्वरिणे हिता ( इति भा० प्र० )

( श्लो० ४ ) पंचमूली महती । अन्येतु कफानुगवातज्वरे महती पित्तानुमे कमीयसी ( इति नि० सं० )

( श्लो० ५।६ ) पीतोदकः लंघितः । भुक्तः अजीर्णी क्षीणः पिपासितः पाचनं विवर्जयेदित्यन्वयः ।

हुये लंघन किये तात्काल भोजन किये अजीर्णवाले तथा क्षीण और तृषायुक्त को पाचन नहीं देना ॥ ५ ॥ ६ ॥

## दोषपक्वके लक्षण ।

मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च ।

पक्वं दोषं विजानीयाज्वरे दे० यं तदौषधम् ।

दोषप्रकृतिवैकृत्यादेतेषां पक्वलक्षणम् ॥ ७ ॥

जब ज्वरका वेग हलका पड़जावे देह भी हलकी होजावे और मल चलाय मान हो तब जानना कि दोष पकगया और तभी औषध देना उचित है । और कोई ऐसा कहतेहैं कि दोषकी प्रकृति पलट जानेसे पके दोषके लक्षण जानलेना चाहिये ॥ ७ ॥

## आमज्वर अर्थात् अपक्वज्वरके लक्षण ।

हृदयोद्वेष्टनं तंद्रा लालमुतिररोचकः ।

दोषाप्रवृत्तिरालस्यं विवंधो बहुमूत्रता ॥ ८ ॥

गुरूदरत्वमस्वेदो न पक्तिः शकृतोऽरतिः ।

स्वापः स्तंभो गुरुत्वं च गात्राणां वह्निमार्दवम् ॥ ९ ॥

मुखस्याशुद्धिरग्लानिः प्रसंगी बलवाज्वरः ।

लिङ्गैरेभिर्विजानीयाज्वरमामं विचक्षणः ॥ १० ॥

हृदयमें उन्चेड़सी हो तंद्रा हो मुँहसे लार बहे अरुचि हो दोषोंकी स्थिरता आलस्य विवंध ( कब्जियत ) ये सब हों और मूत्र ज्यादा आवे ॥ ८ ॥ पेट भारी हो पसीना नहीं आवे विष्टा ठीक पककर न आवे बेचैनी रहे निद्रा हो ( चमक निद्रा आयाकरे ) शरीर जकड़ासा रहे और भारी रहे जठराग्नि मंद

( श्लो० ८ । ९ । १० ) शकृतः न पक्तिः विष्टाया अपारिपाकः । अग्लानिः ईषद-  
ग्लानिः नत्रईषदं । प्रसंगी संसक्तः । अत्र हृदयोद्वेष्टनं इत्यादि स्यान्ते पंजिकाकारः पाठां  
तरमाह । यथा । लालामसेकहृत्तासहृदयाशुद्धचरोचकाः ॥ तंद्रालस्याविपाकास्यैवस्यं गुरुगा-  
त्रता । विवंधो बहुमूत्रत्वं स्तंभता बलवाज्वरः ॥ आमज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्तत्र  
भेषजम् ॥ इति तन्त्रज्वर भेषजं नैव देयं विशेषतया कषायो न देयः । तदुक्तं भावमकाशे  
“न कषायं प्रशंसन्ति नराणां नन्त्रज्वरः ॥ कषायैराकुलीभूताः दोगा जेतुं सुदुस्तराः ॥” इति ॥

हो ॥ ९ ॥ मुख शुद्ध न हो थोड़ी ग्लानिभी हो ज्वर का वेग निश्चल और बलवान् हो इन लक्षणोंसे बुद्धिमान वैद्य जानलेवें कि आमज्वर है अर्थात् अभी ज्वर पका नहीं ( यह अवस्था प्रायः सात दिन रहती है और इस अवस्थामें औषध देना उचित नहीं ) ॥ ११० ॥

## औषधका समय ।

सप्तरात्रात्परं केचिन्मन्यन्ते देयमौषधम् ।

दशरात्रात्परं केचिद्दातव्यमिति निश्चिन्ताः ॥ ११ ॥

पैत्तिके वा ज्वरे देयमल्पकालसमुत्थिते ।

अचिरज्वरितस्यैव देयं स्याद्दोषपाकतः ॥ १२ ॥

कोई आचार्य ऐसा मानते हैं कि ज्वरमें सात दिन पीछे औषध देना चाहिये और कई ऐसा निश्चय करते हैं कि दश दिन पीछे औषध देना उचित है ॥ ११ ॥ अथवा पित्तज्वरमें थोड़े दिनके ज्वरमेंभी जिसे अधिक दिन न हुए हों औषध देदेवें क्योंकि पित्तज्वरका दोष शीघ्र पकजाता है ( इसमें वा शब्दसे वातकफज्वर भी यदि पहले पक जावे तो उनमें भी पकाव देखकर उक्त समयसे पहले औषध देसकते हैं ) ॥ १२ ॥

## विना पके ज्वरमें औषधके अवगुण ।

भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो ज्वलयति ज्वरम् ।

शोधनं शमनीयं तु कुरोति विषमज्वरम् ॥ १३ ॥

विना पके दोषवाले ज्वरितको औषध दिये जानेसे ज्वर फिरकर प्रचंड होजाताहै और शोधन और शमन यत्न करनेसे विषमज्वर पैदा करते हैं ॥ १३ ॥

## ज्वरसे प्रेरितमलका यत्न ।

च्यवमानं ज्वरोत्किंष्टमुपेक्षेत मलं सदा ।

अतिप्रवर्तमानं च साधयेदतिसारवत् ॥ १४ ॥

( श्लो० १२ ) अत्र वाशब्दाद्वातश्लेष्मादेज्वरे दोषपाके सत्यपि औषधं देयमिति प्रतीयते । ( इति नि० सं० ) ।



यदि ज्वरके उद्देगसे चलायमान जो मल हो उसे कूछ समय योंही छोड़ देना चाहिये अर्थात् बंद नहीं करना चाहिये और जो बहुत ही ( बहुत दिन तक ) जारी रहे तो उसको अतिसारकी भांति साधन करना चाहिये ॥ १४ ॥

## ज्वरमें वमनविरेचनादिकी व्यवस्था ।

यदा कोष्ठानुर्गाः पक्वा विवर्द्धाः स्रोतसां मलाः ।

अचिरज्वरितस्यापि तदा दद्याद्विरेचनम् ॥ १५ ॥

पक्वो ह्यनिर्हृतो दोषो देहे तिष्ठन्महात्ययम् ।

विषमं वा ज्वरं कुर्याद्वलव्यापदमेव च ॥ १६ ॥

तस्मान्निर्हरणं कार्यं दोषाणां वमनादिभिः ।

प्राक्कर्म वमनं चास्य कार्यमास्थापनं तथैव ।

विरेचनं तथैव कुर्याच्चिरसंस्थं विरेचनम् ॥ १७ ॥

यदि स्रोतोंका मल पक्कर कोष्ठमें स्थित हुवा हो तो थोड़े दिनके ज्वरवाले-कोभी विरेचन देदेना उचित है ॥ १५ ॥ क्योंकि जो पकाहुवा दोष नहीं निकालाजावे तो वह देहमें रहकर बड़े २ भयंकर रोग पैदा करदेताहै तथा विषमज्वर पैदा करदेताहै और बलका नाश करता है ॥ १६ ॥ इस कारणसे पकेहुए दोषको तो वमनादिसे निकालही देना चाहिये इस जगह शोधनका पूर्व कर्म वमन है ( स्नेहन और स्वेदन यहां नहीं चाहिये ) तथा आस्थापनवस्ति करना योग्य है और विरेचन भी कराना चाहिये और नस्यादिसे शिरका भी विरेचन कराना योग्य है ॥ १७ ॥

## इसमें उपदेश ।

क्रमेण बलिने देयं वमनं श्लेष्मिके ज्वरे ।

पित्तप्राये विरेकस्तु कार्यः प्रश्लिथिलांशये ॥ १८ ॥

सरुजेनिलजे कार्यं सोदावते निरुहणम् ।

कटीपृष्ठग्रहार्तस्य दीर्घाग्रेरनुवासनम् ॥ १९ ॥

शिरोगौरवशूलघ्नमिन्द्रियप्रतिबोधनम् ।

कर्फाभिपन्ने शिरसि कार्यं मूर्ध्नि विरेचनम् ॥ २० ॥

( श्लो० १७ ) अत्र ज्वर शोधनस्य प्राक् कर्म वमनमेव नतु स्नेहनं स्वेदनं च ॥

यदि बलवान्के कफज्वर हो तो उसे क्रमसे वमन करावे और पित्त प्रधानज्वर हो और आशय ( पकाशय ) शिथिल हो तब विरेचन देवे ॥ १८ ॥ और वेदनासहित उदावर्तयुक्त वातज्वर हो तो निरूहण वस्ति करे और यदि जिसकी जठाराग्नि दीप्त हो और कमर पीठ ये अकड़े हुएसे हों तो अनुवासन वस्ति करना उचित है ॥ १९ ॥ और यदि शिर कफसे व्याप्त हो तो शिरके भारीपन और दरदके दूर करनेवाली तथा इंद्रियोंको बोध करने वाली नस्यसे शिरका विरेचन करना योग्य है ॥ २० ॥

## लेप और बत्तीका उपयोग ।

दुर्बलस्य समाम्नातमुर्द्धं सरुजं दिहेत् ।

दारुहैमवतीकुष्ठशर्ताह्वाहिगुसैन्धवैः ॥ २१ ॥

अम्लपिष्टैः सुखोष्णैश्च पर्वने तूर्द्ध्वं मार्गते ।

रुद्धमूत्रपुरीषाय गुदे वर्ति निर्धापयेत् ॥ २२ ॥

यदि रोगी दुर्बल हो और उसके पेटमें अफारा हो तथा दरद भी हो तो पेटपर दारुहलदी वच कूट सोंफ हींग और सैन्धव इनका लेप करना ( और कई दारुका अर्थ दारुहलदीका भेद रेवदचीनी और हेमवती चोक शताह्वा सोवेंके बीज लेना ठीक जानते हैं ) ॥ २१ ॥ इन छहों औषधोंको कांजीमें पीसकर गरम करके लेप करना योग्य है और यदि अपानवायु ऊर्द्धगामी हो ( वायु नहीं सरे ) और मल मूत्रभी रुक गयेहों तो इन्हीं औषधोंसे बस्त्रकी मोटी अंगुली जैसे बत्तीको लेपन करके गुदामें प्रवेश करना चाहिये ( परंतु बत्तीपर लगानेकी अवस्थामें कुछ चिकनाईका भी योग कियाजाना उचित है ) ॥ २२ ॥

## अनुलोमनीयवागू ।

पिप्पली पिप्पलीमूलयवानीचव्यसाधिताम् ।

पार्ययेत यवागूं वा मारुताद्यनुलोमनीम् ॥ २३ ॥

अथवा पिप्पली पिप्पलीमूल अजवायन चव्य इनसे साधन करीहुई यवागू पिलावे यह भी वायु आदिको अनुलोमन करनेवाली है ॥ २३ ॥

शुद्धस्योभयतो यस्यै ज्वरः शान्तिं न गच्छति ।

सशेष दोषरूक्षस्य तस्य तं सर्पिषा जयेत् ॥ २४ ॥

( श्लो० २४ ) सर्पिषा जयेदिति । ज्वरव्रद्धव्यसाधितेन घृतेन जयेदित्यर्थः ।

यदि वमन विरेचनद्वारा दोनों तरफसे शोधन कियेजानेपर भी जो ज्वर शांत न हो दोष शेष रहजावे और रोगी रुक्ष ( खुरक ) हो तो उसके ज्वरको ( ज्वरनाशक ) घृतपानसे जीतना चाहिये ॥ २४ ॥

## ज्वरमें अन्यउपदेश और पथ्यादि ।

कृशं चैवालपदोषं च शमनीयरूपाचरेत् ।

उपवासैर्वलस्थं तु ज्वरे संतर्पणोत्थिते ॥ १२५ ॥

क्लिन्नां यवागूं मंदाग्नितृषार्तं पाययेन्नरम् ।

तृट्छर्दिदाहवमार्ति मद्यपं लाजतर्पणम् ॥ २६ ॥

संक्षौद्रमंभसां पश्चाज्जिणै यूपरसौदनम् ।

उपवासश्रमकृते क्षीणे वाताधिके ज्वरे ॥ २७ ॥

दीप्ताग्निं भोजयेत्प्राज्ञो नरं मांसरसौदनम् ।

मुद्गयूपौदनं चापि हितं कफसमुत्थिते ॥ २८ ॥

स एव सितया युक्तः शीतः पित्तज्वरे हितः ।

दाडिमामलमुद्गानां यूपश्चानिलपैत्तिके ॥ २९ ॥

ह्रस्वमूलकयूपेण भोजयेत्कफवातिके ।

पटोलनिंबयूपस्तु पथ्यः पित्तकफात्मके ॥ १३० ॥

जो ज्वरका रोगी कृश हो और उसके दोष भी अल्प हों तो उसे शमनीय यत्नोंसे ही उपचार करे-और यदि जो रोगी बलवान् हो अथवा अतितर्पणसे ज्वर हुआ हो तो उसे लंबनो ही से शांत करे ॥ १२५ ॥ यदि रोगी मंदाग्नि और तृषासे पीडित हो तो ऐसे मनुष्यको पतली यवागू पिलानी चाहिये और जो तृषा छर्दि दाह और गरमी इनकी विशेष बाधा हो तथा रोगी मद्यपी हो तो उसे धानकी खीलका द्रवपदार्थ पिलाकर तृप्ति करनी चाहिये ॥ २६ ॥ लाजा ( धानकी खीलों ) को जलमें भिगोकर ( मलके छानके ) शहद मिलाके पिलाना चाहिये ( इसीको लाजातर्पण कहते हैं ) और जब यह पचजावे तब यूपरस और भात खानेको देवे और जो लंबन व्रत श्रमसे ज्वर हो या क्षीणता हो अथवा वातादिक ज्वर हो ॥ २७ ॥ और रोगीकी अग्नि दीप्त हो तो चतुर वैद्य ऐसे मनुष्यको मांसरस ( शोरब ) के संग भात खिलावे । और जो कफज्वर हो तो

यदि बलवान्के कफज्वर हो तो उसे क्रमसे वमन करावे और पित्त प्रधानज्वर हो और आशय ( पक्काशय ) शिथिल हो तब विरेचन देवे ॥ १८ ॥ और वेदनासहित उदावर्तयुक्त वातज्वर हो तो निरूहण बस्ति करे और यदि जिसकी जठराग्नि दीप्त हो और कमर पीठ ये अकड़े हुएसे हों तो अनुवासन बस्ति करना उचित है ॥ १९ ॥ और यदि शिर कफसे व्याप्त हो तो शिरके भारीपन और दरदके दूर करनेवाली तथा इंद्रियोंको बोध करने वाली नस्यसे शिरका विरेचन करना योग्य है ॥ २० ॥

## लेप और बत्तीका उपयोग ।

दुर्बलस्य समाध्मातमुर्द्धं सरुजं दिहेत् ।

दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंसैन्धवैः ॥ २१ ॥

अम्लपिष्टैः सुखोष्णैश्च पर्वने तूर्द्ध्वं मार्गते ।

रुद्धमूत्रपुरीषाय गुदे वर्ति निर्धापयेत् ॥ २२ ॥

यदि रोगी दुर्बल हो और उसके पेटमें अफारा हो तथा दरद भी हो तो पेटपर दारुहलदी वच कूट सोंफ हिंग और सैन्धव इनका लेप करना ( और कई दारुका अर्थ दारुहलदीका भेद रेवदचीनी और हेमवती चोक शताह्व सोवेंके बीज लेना ठीक जानते हैं ) ॥ २१ ॥ इन छहों औषधोंको कांजीरे पीसकर गरम करके लेप करना योग्य है और यदि अपानवायु ऊर्द्धगार्म हो ( वायु नहीं सरे ) और मल मूत्रभी रुक गयेहों तो इन्हीं औषधोंसे वस्त्रकी मोटी अंगुली जैसे बत्तीको लेपन करके गुदामें प्रवेश करना चाहिये ( परंतु बत्तीपर लगानेकी अवस्थामें कुछ चिकनाईका भी योग कियाजान उचित है ) ॥ २२ ॥

## अनुलोमनीयवागू ।

पिप्पली पिप्पलीमूलयवानीचव्यसाधिताम् ।

पार्ययेत यवागूं वा मारुताद्यनुलोमनीम् ॥ २३ ॥

अथवा पिप्पली पिप्पलीमूल अजवायन चव्य हनसे साधन करीहुई यवागू पिलावे यह भी वायु आदिको अनुलोमन करनेवाली है ॥ २३ ॥

शुद्धस्योभयतो यस्य ज्वरः शान्तिं न गच्छति ।

सशेष दोषरूक्षस्य तस्य तं सर्पिषा जयेत् ॥ २४ ॥

( श्लो० २४ ) सर्पिषा जयेदिति । ज्वरग्रद्व्यसाधितेन घृतेन जयेदित्यर्थः ।

यदि वमन विरेचनद्वारा दोनों तरफसे शोधन कियेजानेपर भी जो ज्वर शांत न हो दोष शेष रहजावे और रोगी रुक्ष ( खुश्क ) हो तो उसके ज्वरको ( ज्वरनाशक ) घृतपानसे जीतना चाहिये ॥ २४ ॥

## ज्वरमें अन्यउपदेश और पथ्यादि ।

कृशं चैवालपदोषं च शमनीयैरुपाचरेत् ।

उपवासैर्वलस्थं तु ज्वरे संतर्पणोत्थिते ॥ १२५ ॥

क्लिन्नां यवागूं मंदाग्निं तृपातं पार्थयेन्नरम् ।

तृच्छर्दिदाहवमार्ति मद्यपं लाजतर्पणम् ॥ २६ ॥

सैक्षौद्रमंभसां पश्चाज्जीर्णे यूपरसौदनम् ।

उपवासश्रमकृते क्षीणे वाताधिके ज्वरे ॥ २७ ॥

दीप्ताग्निं भोजयेत्प्राज्ञो नरं मांसैरसौदनम् ।

मुद्गयूपौदनं चापि हितं कफसमुत्थिते ॥ २८ ॥

स एव सितया युक्तः शीतः पित्तज्वरे हितः ।

दाडिमामलमुद्गानां यूपश्चानिलपैत्तिके ॥ २९ ॥

ह्रस्वमूलकयूपेण भोजयेत्कफवातिके ।

पटोलनिंबयूपस्तु पथ्यैः पित्तकफात्मके ॥ १३० ॥

जो ज्वरका रोगी कृश हो और उसके दोष भी अल्प हों तो उसे शमनीय यत्नोंसे ही उपचार करे-और यदि जो रोगी बलवान् हो अथवा अतितर्पणसे ज्वर हुआ हो तो उसे लंघना ही से शांत करे ॥ १२५ ॥ यदि रोगी मंदाग्नि और तृपासे पीडित हो तो ऐसे मनुष्यको पतली यवागू पिलानी चाहिये और जो तृपा छर्दि दाह और गरमी इनकी विशेष बाधा हो तथा रोगी मद्यपी हो तो उसे धानकी खीलका द्रवपदार्थ पिलाकर तृप्ति करनी चाहिये ॥ २६ ॥ लाजा ( धानकी खीलों ) को जलमें भिगोकर ( मलके छानके ) शहद मिलाके पिलाना चाहिये ( इसीको लाजातर्पण कहते हैं ) और जब यह पचजावे तब यूपरस और भात खानेको देवे और जो लंघन व्रत श्रमसे ज्वर हो या क्षीणता हो अथवा वातादिक ज्वर हो ॥ २७ ॥ और रोगीकी अग्नि दीप्त हो तो चतुर वैद्य ऐसे मनुष्यको मांसरस ( शोरब ) के संग भात खिलावे । और जो कफज्वर हो तो

मूंगका यूष और भात दे ॥ २८ ॥ वही मूंगका यूष भात मिश्री मिला ठंडाकर पित्तज्वरमें देना हित है और वातपित्तज्वरमें अनार आंवले और मूंग इनका यूष देवे ॥ २९ ॥ और वातकफज्वरमें ह्रस्वमूलक के यूषसे भोजन करावे तथा पित्तकफज्वरमें परवल और नींबूका यूष पथ्य है ॥ ३० ॥

( वक्तव्य ) वात कफज्वरमें जो ह्रस्वमूलक लिखा है कई इसे छोटी मूली कहते हैं परन्तु हमने ज्वरमें मूली सर्वथा कुपथ्य देखी है शायद वह ह्रस्व मूलक कुछ और हो ॥

दाहच्छर्दियुतं क्षामं निरन्नं तृष्णयार्दितम् ।

सिताक्षौद्रयुतं लाजतर्पणं पाययेत च ॥ ३१ ॥

जिसे दाह और छर्दि हो रोगी दुर्बल हो अन्न नहीं खाया हो तृषासे पीडित हो ऐसी अवस्थामें मिश्री और शहद युक्त लाजा ( खीलों ) का तर्पण पिलावे ॥ ३१ ॥

कफपित्तपरीतस्य ग्रीष्मेऽसृक्पित्तिनस्तथा ।

मद्यनित्यस्य न हिता यवागूस्तमुर्पाचरेत् ।

यूषैर्मलैर्नम्लैर्वा<sup>१३</sup> जांगलैर्वा<sup>१४</sup> रसै<sup>१५</sup> हितैः<sup>१६</sup> ॥ ३२ ॥

जो कफपित्तसे व्याप्त हो गरमीकी ऋतु हो रक्तपित्तका रोगी हो तथा नित्य मद्य पीता हो ऐसे रोगीको यवागू हित नहीं इनको खट्टे या विना खट्टे यूषोंसे अथवा जांगल मांसरससे या अन्य हितकारक पथ्योंसे उपचार करना चाहिये ॥ ३२ ॥

मध्यं पुराणं मंदाग्नेर्यवान्नोपहितं हितम् ।

सर्व्योषं विर्तरेत्तक्रं कफारोचकपीडिते ॥ ३३ ॥

जिसकी जठराग्नि मंद पड़ गई हो उसे यवके अन्नके साथ पुरानी मदिरा देना हितकारक होती है और जो कफ और अरुचिसे पीडित हो उसको त्रिकटु मिलाकर तक्र ( गौकी छाँछ ) देना भी ठीक होता है ॥ ३३ ॥

ज्वरमें दूधपानकी विधि और निषेध ।

कृशोऽल्पदोषो क्षीनश्च नरो जीर्णज्वरार्दितः ।

विवद्धः सृष्टदोषश्च रूक्षः पित्तानिलज्वरी ॥ ३४ ॥

पिपासार्तः सदाहो वा पयसा स सुखी भवेत् ।

तदेव तु पयः पीतं तरुणे हन्ति मानवम् ॥ ३५ ॥

जो रोगी दुर्बल हो जिसके अल्प दोष हों जो दीन हो जो मनुष्य जीर्ण-  
ज्वरसे पीडित हो जिसे विबंध हो और दोष कुछ २ निकलते हों रोगी रुक्ष  
हो पित्तवातका ज्वर हो ॥ ३४ ॥ तृपासे पीडित हो दाह युक्त भी हो ऐसी  
अवस्थामें मनुष्य दुग्धसे सुखी होता है परंतु तरुणज्वरमें पियाहुवा दूध  
मनुष्यको मारदेता है ( इसमें तरुणसे तरुण अवस्थावाले ज्वरितको दुग्ध  
अयोग्य है ऐसा कई अर्थ करते हैं ) ॥ ३५ ॥

**ज्वरमें भोजनका समय और व्यवस्था ।**

सर्वज्वरेषु सप्ताहं मात्रावद्भोजनं हितम् ।

वेगापायेऽन्यथा तद्धि ज्वरवेगाभिवर्द्धनम् ॥ ३६ ॥

ज्वरितो हितमश्रीयाद्यप्यस्यारुचिर्भवेत् ।

अन्नकाले ह्यभुंजानः क्षीयते म्रियतेऽथवा ॥ ३७ ॥

गुर्वभिष्यंयकाले च ज्वरी नार्द्यात्कथंचन ।

न तु तस्य हि तं भुक्तमायुषे वा सुखाय च ॥ ३८ ॥

सततं वर्षमं वापि क्षीणस्य सुचिरोत्थितम् ।

ज्वरं संभोजनैः पथ्यैर्लघुभिः समुपाचरेत् ॥ ३९ ॥

मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलत्थान्समुकुटकान् ।

आहारकाले यूपार्थं ज्वरिताय प्रदापयेत् ॥ ४० ॥

सब ज्वरोंमें प्रायः सात दिन मात्रासे ( थोड़ा ) भोजन करना ( और  
हितकारक भोजन करना ) चाहिये ( और ज्वर छोड़ देनेपर भी कुछ दिन  
हल्काही भोजन करना ) क्योंकि ज्वरका वेग छूटे पीछे भी अन्यथा आहार  
विहारसे फिर ज्वरका वेग बढ़जाया करता है ॥ ३६ ॥ परंतु ज्वरवाले  
मनुष्यको यदि अरुचि भी हो तो भी कुछ थोड़ासा हल्का भोजन तो किया ही  
करे क्योंकि अन्नके समय भोजन नहीं करनेसे मनुष्य क्षीण होजाता है  
अथवा मर जाता है ( यह लंघनमें पीछेकी व्यवस्था जीर्णज्वर या विषम-

( अं० ३६ ) वेगापाये वेगहानौ । अन्यथा तद्धि अनात्रावद्भुष्य भोजनम् ।



ज्वरोंमें करनेकी है ) ॥ ३७ ॥ ज्वरका रोगी गरिष्ठ अभिष्यंदी भोजन तथा वे समय कभी भोजन नहीं करे क्योंकि गरिष्ठ और वे समयका भोजन न तो आयुके लिये हित होता है और न सुखके लिये ॥ ३८ ॥ क्षीण मनुष्यके बहुत दिनका पुराना सततज्वर ( निरंतर रहनेवाला ) या विषम ( अन्येद्युष्क तृतीयकादि ) हो तो उसे पथ्य और हलके अच्छे भोजनोंसे उपचार करना चाहिये ॥ ३९ ॥ ज्वरवालेको भोजनके समय मूंग मसूर चने कुलथी और मोठ इनमेंसे यथोक्त यूषके लिये देवे ( अर्थात् इनमेंसे जो उचित हो उसका यूष भोजनके वास्ते देना उचित है ) ॥ ४० ॥

## ज्वरमें मांसकी व्यवस्था ।

लावान्कपिंजलानेणान्पृषताञ्छरभाञ्छशान् ।

कालपुच्छान्कुरंगांश्च तथैव मृगमात्रिकान् ॥

मांसार्थे मांससात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत् ॥ ४१ ॥

सारसक्रौंचशिखिनः कुर्कुटास्तित्तिरीस्तथा ।

गुरुष्णत्वान्न शंसन्ति<sup>१</sup> ज्वरे केचिच्चिकित्सकाः ॥ ४२ ॥

ज्वरितानां प्रकोपं तु यदा याति समीरणः ।

तदैतेऽपि<sup>२</sup> हि<sup>३</sup> शस्यन्ते मात्राकालोपपादिताः ॥ ४३ ॥

लवा कपिंजल ( मुफ़ेद तीतर ) एण ( कालामृग ) पृषत् ( सावर ) शरभ ( एक प्रकारका मृग जिसके ४ पाँव नीचे ४ ऊँचे होते हैं ) और मुस्सा काली पुच्छका मृग और कुरंग ( बदामी रंगका मृग ) और मृगमात्रिका इनका मांस मांसभोजी ज्वरवालोंको देना चाहिये ॥ ४१ ॥ सारस क्रौंचनाम पक्षी मोर मुरगा और तीतर ये गरम और भारी ( गरिष्ठ ) होनेसे कई वैद्य इनका मांस ज्वरमें देना श्रेष्ठ नहीं समझते ॥ ४२ ॥ परंतु हां यदि ज्वरवालोंके वायुका कोप हो तो इनका मांस भी समयोपयोगी बनाकर मात्राके अनुसार देना श्रेष्ठ है ॥ ४३ ॥

( श्लो० ४१ ) कपिंजलान् गौरतित्तिरान् । एणः कृष्णमृगः । पृषतः श्वेताविंदुल मृगः । “शरभः अष्टपादूर्ध्वनयन ऊर्ध्वपादचतुष्टयः” । इत्युक्तलक्षणो मृगभेदः । ( इति श० स्तो० )

## ज्वरवाले और ज्वरमुक्तके पथ्य ।

परिषेकावगाहांश्च स्नेहान्संशोधनानि च ।

स्नानाभ्यंगदिवास्वप्नशीतव्यायामयोपितः ॥ ४४ ॥

न भजेत् ज्वरोत्सृष्टो यावन्नो बलवान्भवेत् ॥ ४५ ॥

त्यक्तस्यापि ज्वरेणाशु दुर्बलस्याहितैर्ज्वरः ।

प्रत्यापन्नो देहेदेहं शुष्कवृक्षमिवानलः ॥ ४६ ॥

तस्मात्कार्यः परिहारो ज्वरमुक्तेन जंतुना ॥

यावन्नं प्रकृतिस्थः स्यादोपितः प्राणतस्तथा ॥ ४७ ॥

परिषेक करना जलमें डुबकी लेना-स्नेहपान करना वमन विरेचन करना स्नान करना स्नेहाभ्यंग ( तैलादि शरीरमें मलना ) दिनमें सोना सरदी पाना परिश्रम करना और स्त्रीसंग करना इत्यादि बातोंको ज्वर छूटे पीछे भी नहीं करे जबतक पूरा बल शरीरमें न आजावे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ क्योंकि ज्वरसे छूटेहुए दुर्बल मनुष्यको थोड़ासा भी अनुचित करनेसे फिर ज्वर पलट आताहै और देहको ऐसे दग्ध कर देताहै जैसे सूखे वृक्षको अग्नि भस्म करदेता है ॥ ४६ ॥ इस कारणसे ज्वर छूटेपीछे भी जबतक दोष पूरे प्रकृतिपर आजावें और बल भी पहलेकासा पूर्ण होजावे तबतक परिहार ( परहेज ) रखना चाहिये ॥ ४७ ॥

( वक्तव्य ) जो ये ऊपर परिहार लिखे ये ज्वर छूटेपर भी रखने और ज्वरमेंभी अवश्य रखने उचित हैं ॥

## ज्वर में परिश्रम का निषेध ।

ज्वरे प्रमोहो भवति स्वल्पैरपि विचेष्टितैः ।

निर्पणं भोजयेत्तस्मान्मृत्रोच्चैरो चं कार्येत् ॥ ४८ ॥

ज्वरमें थोड़ीसीभी चेष्टा ( परिश्रमादि ) करनेसे मोह ( मूर्च्छा या जी घबराना थकान ) होजाती है इस कारण बिना परिश्रम बैठकर ही उसे भोजन कराते रहना चाहिये ( अर्थात् कुछ परिश्रम न करावे वैसेही बैठे )

( श्लो० ४४ ) परिषेका वगाहांश्च इत्यत्र बहिः सेकावगाहांश्च इति वा पाठोत्तरना भवगाहो मभूतमले निमज्ज्य ग्लानम् । ग्लानं ग्लानमात्रम् ।

( श्लो० ४७ ) प्राणतो बलतः ।

( श्लो० ४८ ) निर्पणं क्षमगहितम् ।

खानेको दियाकरे कुछ भी काम न करावे ) बल्कि मल मूत्र करनेपर भी दूसरा आदमी सहारा लगाके उठाया करे ॥ ४८ ॥

## ज्वर शांत पर शोधन ।

अरोचके गात्रसादे वैवर्ण्येगमलादिषु ।

शांतज्वरोपि शोध्यः स्यादनुबंधभयात्त्ररः ॥ ४९ ॥

यदि ज्वर शांत हुए पीछे भी जो अरुचि रहे अंगोंमें थकान हो वर्ण बिगड़ा हो शरीर मलीन हो तो ज्वरके शांत होनेपर भी शोधन करना ( विरेचन ) देना चाहिये क्योंकि ऐसा न हो दोष शेष रहगयाहो जिससे फिर आनेलगे ॥ ४९ ॥

न जातु तर्पयेत्प्राज्ञः सहसा ज्वरं कर्शितम् ।

तेन संदूषितो ह्येष पुनरेव भवेज्ज्वरः ॥ ५० ॥

ज्वरसे निर्बल हुए मनुष्यको शीघ्र ही अतितप्त न करे ( अर्थात् बल बढ़ानेवाले पदार्थ शीघ्रही नहीं देने लगे ) क्योंकि इससे दूषित होकर फिर ज्वर आने लगजाताहै ॥ ५० ॥

चिकित्सेत्तु ज्वरान्सर्वान्निमित्तानां विपर्ययैः ।

श्रमक्षयाभिघातोत्थे मूलव्याधिमुपाचरेत् ॥ ५१ ॥

स्त्रीणामपप्रजातानां स्यात्स्तन्यावरणे च यैः ।

तत्र संशमनं कुर्याद्यथादोषं विधानवित् ॥ ५२ ॥

सब प्रकारके ज्वरोंकी उनके हेतुके विपर्ययरूप औषध अन्न और विहारसे चिकित्सा करनी चाहिये ( जैसे वातजनित ज्वरकी वातविपर्यय अर्थात् वातनाशक विधिसे चिकित्सा करे इसी भांति सब समझना ) और श्रम क्षय तथा अभिघातसे पैदा हुए ज्वरमें उनकी मूलरूप व्याधिका यत्न करना उचित है ( जैसे श्रमजनितमें श्रम निवारक यत्न और क्षयजमें क्षयनाशक इसी तरह अभिघातजनितमें उस व्रण या चोटका यत्न करना मुख्य है ) ॥ ५१ ॥ और जो अयोग्य या अकाल प्रसूति होनेवाली स्त्रियोंको ज्वर होजाता है, तथा दूधके जोरसे भी स्त्रियोंको ज्वर होजाताहै उनमें वैद्य दोषोंके अनुसार शमन यत्न करें ॥ ५२ ॥

## ज्वरनाशक कार्योंका निर्देश ।

अतः संशमनीयानि कषायानि निबोध मे ।

सर्वज्वरेषु देयानि तानि वैद्येन जानता ॥ ५३ ॥

श्रीधन्वंतरिजी कहते हैं हे सुश्रुत यहांसे अगाड़ी हमसे अनेक काथ श्रवण करो जिनको जाननेवाला वैद्य सब ज्वरोंमें यथायोग्य देवे ॥ ५३ ॥

### वातज्वरके काथ ।

पिप्पलीसारिवाद्राक्षाशतपुष्पाहरेणुभिः ।

कृतः कषायः सगुडो हन्याच्छ्वसनजं ज्वरम् ॥ ५४ ॥

शृतशीतकषायं वा गुडूच्याः पेयमेव तु ।

बलादर्भश्वदंष्ट्राणां कषायं पादशेषितम् ॥ ५५ ॥

शर्कराघृतसंगुक्तं पिबेद्वातज्वरापहम् ।

शतपुष्पा वचा कुष्ठं देवदारु हरेणुका ॥ ५६ ॥

कुरुतुंबुरूपि नलदं मुस्तं चैवाशु साधयेत् ।

क्षौद्रेण सितया चापि युक्तः काथोऽनिलात्मके ॥ ५७ ॥

पिप्पली सारिवा मुनक्का सौंफ हरेणु इनका काथकरके गुड मिलाके पीना वातज्वरको नष्ट करता है ॥ ५४ ॥ अथवा मिलोयका काथ शीतल करके पीवे अथवा खरेंटी डाभ गोखरू इनका काथकर चतुर्थांश रहे खांड घृत मिलाकर पीवे यह वातज्वरको नष्ट करता है अथवा सौंफ वच कूट देवदारु हरेणु धनियां नलद ( खसका भेद ) नागरमोथा इनका काथकर शहद और खांड मिलाके वातज्वरमें पीना चाहिये ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

द्राक्षागुडूचीकाश्मर्यत्रायमाणाः ससारिवाः ।

निःकाथ्यं सगुडं क्वाथं पिबेद्वातकृतं ज्वरं ॥ ५८ ॥

गुडूच्याः स्वरसो ग्राह्यः शतावर्याश्च तत्समैः ।

निहन्यात्सगुडः पीतः सद्योनिलकृतं ज्वरम् ॥ ५९ ॥

घृताभ्यंगस्वेदलेपानवस्थासु च योजयेत् ॥ ६० ॥

अथवा मुनक्का मिलोय काश्मरी त्रायमाणा और सारिवा इनका काथकर गुड डालकर वातकृत ज्वरमें पीना चाहिये ॥ ५८ ॥ अथवा मिलोयका स्वरस निकाले और उसके बराबर शतावरीका स्वरस लेवे इनमें गुड मिलाकर पीनेसे शीघ्र वातज्वर नष्ट होजाता है ॥ ५९ ॥ तथा घृतका अभ्यंग करना स्वेद कराना लेप करना इन यत्नोंको भी अवस्था ( मौकों ) पर करे ( अर्थात् जीर्ण अवस्थामें ये भी करे ) ॥ ६० ॥

## पित्तज्वरके काथ ।

श्रीपणीचंदनोशीरपरूपकमधूकजः ।

शर्करामधुरो हन्ति कर्षायः पैत्तिकं ज्वरम् ॥ ६१ ॥

पीतं पित्तज्वरं हन्यात्सारिवाद्यं सशर्करम् ।

सयष्टिर्मधुकं हन्यात्तथै वोत्पलपूर्वकम् ॥ ६२ ॥

शृतशीतकषायं वा सोत्पलं शर्करायुतम् ।

गुडूचीपद्मरोध्राणां सारिवोत्पलयोस्तथा ॥ ६३ ॥

शर्करामधुरः काथः शीतः पित्तज्वरापहः ।

द्राक्षारग्वधयोश्चापि काश्मर्याश्चाथवा पुनः ॥ ६४ ॥

काश्मरी चंदन खस फालसे और महुवाके फूल इनका काथ बना मिश्री मिलाके पीवे तो पित्तज्वर नष्ट होवे ॥ ६१ ॥ अथवा सारिवादि गणका काथ मिश्रीयुक्त पीनेसे पित्तज्वर जावे अथवा उत्पलादि और मुलेठीका काथ पित्तज्वरको नष्ट करताहै ॥ ६२ ॥ अथवा कमलका शृत शीतकषाय मिश्री युक्त पीवे अथवा गिलोय पद्माख लोध सारिवा और कमल इनका काथ मिश्री मिलाके पीवे तो पित्तज्वर नष्ट हो अथवा मुनक्का और किरमालाका काथ अथवा खंभारीका काथ पित्तज्वरको नष्ट करताहै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

## पित्तके उपद्रवोंके यत्न ।

स्वादुतिक्तकर्षायाणां कर्षायः शर्करायुतैः ।

सुशीतैः शमयेत्तृष्णां प्रवृद्धां दाहमेव च ॥ ६५ ॥

शीतं मधुयुतं तोयमाकंठाद्वा पिपासितम् ।

वामयेत्पाययित्वा तु तेन तृष्णा प्रशाम्यति ॥ ६६ ॥

क्षीरैः क्षीरकषायैश्च सुशीतैश्चंदनायुतैः ।

अंतर्दाहे विधातव्यमेतैश्चान्यैश्च शीतलैः ॥ ६७ ॥

निदध्यादप्सु चालोढ्य निशापर्युषितं ततः ।

क्षौद्रिणं युक्तं पिबतो ज्वरदाहौ प्रशाम्यतः ॥ ६८ ॥

पद्मकं मधुकं द्राक्षा पुंडरीकमथोत्पलम् ।

यवान्भृष्टानुशीराणि समंगा काश्मरीफलम् ॥ ६९ ॥

जिह्वातालुगलक्लोमशोषे मूर्ध्नि च दापयेत् ।

केशरं मातुलुंगस्य मधुसैधवसंयुतम् ॥ ७० ॥

शर्करादाडिमाभ्यां वा द्राक्षाखजूरयोस्तथा ।

वैरस्ये धारयेत्कल्कं गंडूषं च यथोहितम् ॥ ७१ ॥

मीठे कडुवे और कसेले द्रव्योंके काथमें मिश्री डाल ठंढे करके पीनेसे बड़ीहुई तृषा और दाह शांत होते हैं ॥ ६५ ॥ तृषापीडितको ठंढे पानीमें शहद मिलाकर कंठतक ( पेटभरके पिलादे फिर वमन करादे इससे तृषा शांत होती है ) ॥ ६६ ॥ दूधके वृक्ष ( वटादि ) का काथ चंदनयुक्त करके बनावे फिर उसे ठंढाकर दूध मिलाकर अंतर्दाहवालेको पिलावे तथा अन्य शीतल द्रव्योंको रातको जलमें भिगोदे और रातभर भीगनेदे फिर सबेरे मथकर छान ले शहद मिलाकर पीवे तो इससे ज्वर और दाह शांत होते हैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ पद्माख मुलेठी सुनक्का कमल दूसरा कमल ( नीलोफर ) भूने जी खस लज्जालू और काश्मरीफल ॥ ६९ ॥ इन सबको पीसकर जीभ तालु गल और क्लोम सुखता हो तो इनकी लुगदी शिरपर रखनी चाहिये तथा नींबूके कसरे शहद संधानमक मिलाकर ॥ ७० ॥ अथवा अनार और मिश्री मिलाकर अथवा सुनक्का और खजूरफल मिलाकर कल्क बनावे और मुखकी विरसतामें इनका कवल धारण करे या गंडूष ( कुल्ले ) करे ॥ ७१ ॥

### कफज्वरका यत्न ।

सप्तच्छदं गुडूचीं च निवस्फूर्जकमेव च ।

काथयित्वा पिबेत्क्राथं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ ७२ ॥

कटुत्रिकं नागपुष्पं हरिद्रा कटुरोहिणी ।

कोटजं च फलं हन्यात्सेव्यमानं कफज्वरम् ॥ ७३ ॥

हरिद्रां चित्रकं निवमुशीरातिविषे वचाम् ।

कुष्ठमिंद्रयवांमृषां पटोलं चापिसाधितम् ।

पिबेन्मरिचसंयुक्तं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ ७४ ॥

सारिवातिविषाकुष्ठपुराख्यैः सदुरालभैः ।

मुस्तेन च कृतः काथः पीतो हन्यात्कफज्वरम् ॥ ७६ ॥

मुस्तं वृक्षकबीजानि त्रिफला कटुरोहिणी ।

परूषकानि च काथः कफज्वरविनाशनः ॥ ७६ ॥

सातला गिलोय नींबकी छाल फाणिज ( वनतुलसी ) इनका काथ करके शहद मिलाके कफज्वरमें पीना श्रेष्ठ है ॥ ७२ ॥ सोंठ मिरच पीपल नाग-केशर हलदी कुटकी इंद्रजव इनका काथ सेवन करनेसे कफज्वरको दूर करताहै ॥ ७३ ॥ हलदी चित्रक नींबकी छाल खस अतीस वच कूट इंद्रजव मूर्वा पटोल इनका काथ बनावे और उसमें शहद मिलाकर मिरच युक्तकर ( मिरचोंकी प्रतिवास देकर ) कफज्वरमें पीना चाहिये ॥ ७४ ॥ सारिवा अतीस कूट गूगल और जवासा नागरमोथा इनका काथ करके पीना कफ ज्वरको नष्ट करताहै ॥ ७५ ॥ मोथा इंद्रजव त्रिफला कुटकी और फालसा इनका काथ पीना भी कफज्वरका नाश करनेवाला है ॥ ७६ ॥

### वातकफज्वरका यत्न ।

राजवृक्षादिवर्गस्य कर्षायं मधुसंयुतम् ।

कफवातज्वरं हन्याच्छीघ्रं कालेऽवचारितम् ॥ ७७ ॥

नागरं धान्यकं भार्ङ्गीमभयां सुरदारु च ।

वचां पर्पटकं मुस्तं भूतीकमथ कट्फलम् ॥ ७८ ॥

निःकाथ्य कफवातोत्थे क्षौद्रहिंसुसमन्वितम् ।

पातव्यं श्वासकासघ्नं श्लेष्मोत्सेके गलग्रहे ॥ ७९ ॥

हिक्कासु कण्ठश्वयथौ शूले हृदयपार्श्वजे ॥ ८० ॥

आरग्वधादि गणका काथकर शहद मिलाकर कुछ दिन पीनेसे वातकफ ज्वर शीघ्र नष्ट होजाता है ॥ ७७ ॥ सोंठ धनियां भारंगी हरीतकी देवदारु वच पित्तपापड़ा नागरमोथा भूतीक ( डल्लन मिश्र रोहिषतृण कहते हैं और कई चिरायता कहतेहैं ) और कायफल ॥ ७८ ॥ इनका काथ करके शहद

( श्लो० ७७ ) ननु वातपित्तद्वंद्वजक्रमं विहाय वातश्लेष्मद्वंद्वजचिकित्सितं प्रथमं यदत्र कृतं तत्केवलकफज्वरेऽपि विधेयम् ( इति डल्लनः ) ॥

( श्लो० ७९ ) अत्र मधु कर्षप्रमाणं हिंसु मापप्रमाणम् ( इति नि० सं० ) ॥



और हींग मिलाके वातकफज्वरमें पिलावे यह श्वास और खांसीको भी दूर करता है तथा कफ की उत्कृष्टता और गलग्रहमें भी देना श्रेष्ठ है ॥ ७९ ॥ और हिचकी कंठकी सूजन तथा हृदय और पसलीके दरदमें भी पिलाना रुचित है ( इसमें शहद एक कर्ष और हींग एक माष प्रमाण मासेभर डालना चाहिये ) ॥ ८० ॥

### कफपित्तज्वरका यत्न ।

एलापटोलत्रिफलायष्ट्याह्वानां वृषस्य च ।  
 काथो मधुयुतः पीतो हन्ति पित्तकफज्वरम् ॥ ८१ ॥  
 कटुकाविजयाद्राक्षामुस्तापर्पटकैः कृतः ।  
 कषायो नाशयेत्पीतः श्लेष्मपित्तभवं ज्वरम् ॥ ८२ ॥  
 भार्ङ्गीवचापर्पटकधान्यहिंश्वभयाघनैः ।  
 काश्मर्यनागरैः काथः सक्षौद्रः श्लेष्मपित्तजे ॥ ८३ ॥  
 सशर्करामक्षमात्रां कटुकामुष्णवारिणा ।  
 पीत्वा ज्वरं जयेज्जंतुः कफपित्तसमुद्भवम् ॥ ८४ ॥

इलायची पटोल त्रिफला मुलेठी और बाँसा इनका काथकर शहद मिला कर पीनेसे कफपित्तका ज्वर नष्ट होजाताहै ॥ ८१ ॥ अथवा कुटकी हरड़े मुनका नागरमोथा पित्तपापड़ा इनका काथकरके पीना कफपित्तज्वरको दूर करताहै ॥ ८२ ॥ भारंगी वच पित्तपापड़ा धनियाँ हींग हरीतकी नागर-मोथा खंभारी सोंठ इनका काथ शहद मिलाकर पीना कफपित्तज्वरमें श्रेष्ठ है ॥ ८३ ॥ अथवा एक कर्षभर कुटकीको खांड मिलाकर गरम जलके संग पीवे तो मनुष्य कफपित्तजनितज्वरको जीत लेताहै ( अर्थात् आराम होजाता है ॥ ८४ ॥

### वात पित्तज्वरका यत्न ।

किराततिक्तममृतां द्राक्षामामलकं शठीम् ।  
 निःकाथ्य वातपित्तोत्थे तं काथं सगुडं पिबेत् ॥ ८५ ॥  
 राम्नावृषोत्थस्त्रिफलाराजवृक्षफलैः सह ।  
 कषायः साधितः पीतो वातपित्तज्वरं जयेत् ॥ ८६ ॥

चिरायता गिलोय मुनक्का आँवले कचूर इनका काथ करके गुड मिलाके वातपित्तजनितज्वरमें इसे पीवे ॥ ८५ ॥ अथवा रास्ना अडूसा त्रिफला किरमालाकी फली इनका काथ बनाकर पीनेसे वातपित्तका ज्वर नष्ट होजाता है ॥ ८६ ॥

( वक्तव्य ) इन द्रव्यज चिकित्साके श्लोकोंको जैज्जटाचार्य सन्निपातकी चिकित्साके पीछे पढ़तेहैं क्योंकि पहले वही क्रम लिखाहै ॥

## त्रिदोष ज्वरकी चिकित्सा ।

सर्वदोषसमुत्थे तु संसृष्टानवचारयेत् ।

यथादोषोच्छ्रयं चापि ज्वरान्सर्वानुपाचरेत् ॥ ८७ ॥

वृश्चीरविल्ववर्षाभूः पयश्चोदकमेवच ।

पचेत्क्षीरावशिष्टं च तद्धि सर्वज्वरापहम् ॥ ८८ ॥

उदकांशास्त्रयः क्षीरं शिशपासारसंयुतम् ।

तत्क्षीरशेषं कथितं पेयं सर्वज्वरापहम् ॥ ८९ ॥

नलवेतसयोर्मूले मूर्वायां देवदारुणि ।

कषायं विधिवत्कृत्वा पेयमेतज्ज्वरापहम् ॥ ९० ॥

त्रैफले वा ससर्पिष्कः काथः पेयस्त्रिदोषजे ।

अनंतां वालकं मुस्तां नागरं कटुरोहिणीम् ॥ ९१ ॥

सुखांबुनां प्रागुदयात्पाययेताक्षसंमितम् ।

एष सर्वज्वरान्हन्ति दीपयत्याशु चानलम् ॥ ९२ ॥

द्रव्याणि दीपनीयानि तथा वैरेचनानि च ।

एकशो वा द्विशो वापि ज्वरघ्नानि प्रयोजयेत् ॥ ९३ ॥

सर्पिर्मध्वभयातैललेहोयं सर्वजं ज्वरम् ।

शांतिं नयेत्त्रिवृच्चैर्पि संक्षौद्रा प्रबलं ज्वरम् ॥ ९४ ॥

( श्लो० ८९ ) क्षीरस्याष्टौ पलानि शिशपासारः पलप्रमितः ( इतिडल्लनः )

( श्लो० ९२ ) सुखांबुना उष्णोदकेन पलप्रमितेन । उदयात्प्राक् सूर्योदयात्प्राक् ( इति नि० सं० ) उदयात्प्राक् इति । केचिदत्र ज्वरोदयात्प्राक् पाययेदिति वदन्ति अस्य श्लोकस्यान्वयो गतश्लोकस्योत्तरार्द्धेन सह करणीयः ।

सब दोषों ( सन्निपात ) के ज्वरमें मिलीहुई औषध करनी तथा जौ-  
नसा दोष उल्वण हो उसकी शांतिकी प्रधानतासे सब ज्वरोंकी चिकित्सा  
करनी चाहिये ॥ ८७ ॥ वृश्चिक ( श्वेत पुनर्नवा ) बिल्व साँठी दूध और पानी  
मिलाकर पकावे दूध शेष रहे पिलावे यह सब ज्वरोंको ( या सब दोषके  
ज्वरको ) नष्ट करताहै ॥ ८८ ॥ अथवा जल तीन भाग दूध एक भाग  
( आठ पल ) लेकर शीशमका सार ( १ पल ) डालकर उवाले दुग्ध शेष  
रहे पीवे यह भी सब दोषोंके ज्वरको नष्ट करताहै ॥ ८९ ॥ नरसल और  
बेंतकी जड़ मूर्वा देवदारु इनका काथ पीना इस ज्वरको नष्ट करता  
है ॥ ९० ॥ अथवा त्रिफलाका काथकार घृतयुक्तकर पीनेसे त्रिदोषका ज्वर  
नष्ट होताहै अथवा अनंता ( जवासा ) नेत्रवाला मोथा साँठ और कुटकी  
॥ ९१ ॥ इन्हें गरम जलके संग मूयोदयसे पहले एक कर्पभर लेवे यह सब  
ज्वरको नाश करताहै और शीघ्रही जठराग्नि दीपन करताहै ॥ ९२ ॥ तथा  
दीपन द्रव्यों ( पिप्पल्यादि ) मेंसे तथा विरेचनी ( त्रिवृता आदि ) औषधोंमेंसे  
एक या दो मिलाकर उपयोग करे ये भी ज्वरनाशक हैं ॥ ९३ ॥ तथा  
घृत शहद और हरड़ और तेल इनका अवलेह सर्व दोषजनित ज्वरको नष्ट  
करता है तथा निशोथमें शहद मिलाकर उपयोग करना भी प्रबल ज्वरको  
शांत करता है ॥ ९४ ॥

### विषमज्वरकी चिकित्सा ।

ज्वरे तु विषमे कार्यमूर्द्धं चार्धश्च शोर्धनम् ।

घृतं ग्रीहोदरोक्तं वा निहर्न्याद्विषमज्वरम् ॥ ९५ ॥

गुडप्रगोठां त्रिफलां पिचेद्रां विषमार्दितः ।

गुडूचीनिम्बधातृणां कपायं वा समाक्षिकम् ॥ ९६ ॥

प्रातःप्रातः सप्तपिष्कं रसोनमुपयोजयेत् ।

त्रिचतुर्भिः पचेत्काथं पंचभिर्वा समन्वितैः ॥ ९७ ॥

मधुकस्य पटोलस्य रोहिण्या मुस्तकस्य च ।

हरीतक्याश्च सर्वोयं त्रिविधो योग इष्यते ॥ ९८ ॥

( श्लो० ९७ ) अल्प श्लोकस्योत्तरार्द्धे अग्रिमेण सह मेलयित्वान्वेनव्यः ।

( श्लो० ९८ ) त्रिविधो योग इति । मधुकपटोलरोहिण्यभिर्को योगः । मधुक-  
पटोलरोहिण्यमुस्तकैस्तुर्भिर्द्वितीयो योगः । मधुकपटोलरोहिण्यमुस्तकहरीतकीभिः पंचभि-  
रुत्तरीयो योगः ( इति नि० सं० ) ।

सर्पिःक्षीरसिताक्षौद्रमागधीर्वा यथाबलम् ।

दशमूलीकषायेण मागधीर्वा प्रयोजयेत् ॥ ९९ ॥

पिप्पलीवर्द्धमानं वा पिबेत्क्षीररसाशनः ।

ताम्रचूडस्य मांसैर्न पिबेद्वा मर्द्यमुत्तमम् ॥ २०० ॥

विषमज्वरोंमें वमन विरेचनद्वारा ऊपर नीचेसे शोधन करे और लीहो-  
दरकी चिकित्सामें कहाहुवा घृतभी विषमज्वरको नष्ट करताहै ॥ ९५ ॥  
अथवा विषमज्वरसे पीडित मनुष्य त्रिफलाको गुडमें घोलकर पीवे अथवा  
गिलोय नांबकी छाल आवले इनका काथ शहद मिलाकर पीवे ॥ ९६ ॥  
अथवा सबेरे सबेरे घृत और लहसनका सेवन करे अथवा तीन तीन चार  
चार पांच पांच नीचे लिखे औषधोंमेंसे मिला मिलाकर काथ करे ॥ ९७ ॥  
वे औषध ये हैं मुलेठी पटोल (परवल) रोहिणी (कुटर्की) नागरमोथा और  
हरीतकी इनके तीन प्रकारके योग होतेहैं एक तीन तीन औषधोंके दूसरे  
चार चारके तीसरा पांचोंका ॥ ९८ ॥ अथवा घृत दूध मिश्री शहद इनके  
संग पीपल यथाबल सेवन करे या पीपलोंका दशमूलके काथके साथ उप-  
योग करे ॥ ९९ ॥ अथवा दूध और मांसरस भोजन करताहुवा वर्द्धमानपिप्प-  
लीका उपयोग करे अथवा मुरगेके मांसके संग उत्तम मदिराका पान  
कियाकरे इससे भी विषमज्वर शांत होताहै ॥ २०० ॥

**विषम और जीर्णज्वर नाशक घृत ।**

कोलाग्निमंथत्रिफलाक्वाथे दध्ना घृतं पचेत् ।

तिल्वकावापमेतद्धि विषमज्वरनाशनम् ॥ २०१ ॥

पिप्पल्यतिविषाद्राक्षासारिवाविल्वचंदनैः ।

कटुकेन्द्रयवोशीरसिंहीतामलकीधनैः ॥ २ ॥

( श्लो० २०१ ) कोलं पंचकोलम् । कल्पनामाह । पंचकोलादिद्रव्याणां पलशते पानीय-  
पलानि द्वादशाधिकपंचशतानि एकीकृत्य विपचेत् यावच्चतुर्विंशत्यधिकशतं निष्पद्यते  
तेन क्वाथेन तथा चतुर्गुणेन च दध्ना द्वात्रिंशत्पलप्रमितं घृतं अष्टपलप्रमाणतिल्वकेन  
पचेत् । अनेन विधिना उक्तप्रमाणानि घृततैलानि पाचनीयानि ( इति ढल्लनः )

( श्लो० २ ) तामलकी भूम्यामलकीति ( नि० सं० )

त्रायमाणास्थिराधात्रीविश्वभेषजचित्रकैः ।

पक्वमेतैर्घृतं पीतं विजित्य विषमाग्निताम् ॥ ३ ॥

जीर्णज्वरशिरःशूलगुल्मोदरहलीमकम् ।

क्षयं कासं ससंतापं पार्श्वशूलानपास्यति ॥ ४ ॥

कोल ( पंचकोल ) अरणी त्रिफला इनके काथमें दही मिलाकर इससे घृत सिद्ध करें और लोध सिद्ध होतेमें डालदे यह विषमज्वरका नाशक है ॥ २०१ ॥ तथा पीपल अतीस मुनक्का सारिवा बिल्व चंदन कुटकी इंद्रजय खस कटेलीवडी तामलकी ( भूम्यामलकी ) और नागरमोथा ॥ २ ॥ त्रायमाणा शालपर्णी आंवले सोंठ और चित्रक इनमें साधन कियाहुवा घृत पियाहुवा विषमाग्निको जीतकर ॥ ३ ॥ जीर्णज्वर शिरका दर्द गुल्म उदररोग हलीमक क्षय खाँसी संताप और पसलीका दर्द इतने रोगोंको नष्ट करताहै ॥ ४ ॥

**जीर्णज्वरपर घृतसाधन ।**

गुडूचीत्रिफलावासात्रायमाणायवासकैः ।

कैथितैर्विधिर्वत्पक्वमेतैः कल्कीकृतैः समैः ॥ ५ ॥

द्राक्षामागधिकांभोदनागरोत्पलचंदनैः ।

पीतं सर्पिः क्षयश्वासकासाजीर्णज्वराञ्जयेत् ॥ ६ ॥

गिलोय त्रिफला अडूसा त्रायमाणा जवासा इनके काथमें विधि पूर्वक घृत पकावे और मुनक्का पीपल नागरमोथा सोंठ कमल और चंदन इन सबको समान भाग लेकर कल्क बनाके उक्त घृतमें पकते समय डालदे यह घृत पीनेसे क्षय श्वास खाँसी और जीर्णज्वर ये सब रोग नष्ट होजातेहैं ॥ ५॥६॥

**अन्यघृत ।**

कलशिवृहतीद्राक्षात्रायन्तीनिवगोक्षुरैः ।

वलापपटकांभोदशालपर्णीयवासकैः ॥ ७ ॥

पक्वमुत्कैथितैः सर्पिः कल्केरेभिः समन्वितैः ।

शठीतामलकीभार्ङ्गमेदाकतकपौष्करैः ॥ ८ ॥

क्षीरद्विगुणसंयुक्तं जीर्णज्वरमपोहति ।

शिरःपार्श्वरुजाकासक्षयप्रशमनं परम् ॥ ९ ॥

पृश्निपर्णी बडीकटेली मुलेठी त्रायमाणा नींब गोखरू खरेटी पित्तपापडा नागरमोथा शालपर्णी जवासा ॥ ७ ॥ इनका काथ करके इसमें घृत पकावे और यह नीचे लिखी औषधोंका कल्क भी पकते समय डाले कचूर भूम्या-मलकी भारंगी मेदा कैथबीज और पुष्करमूल ( इनका कल्क करके डाले ) ॥ ८ ॥ और दुगुना दूध डालकर घृतको सिद्ध कर ले यह घृत जीर्ण ज्वरको दूर करता है शिर और पँसलीके दरदको खांसीको क्षयीको शांत करनेमें परम उत्कृष्ट है ॥ ९ ॥

### अन्यघृत ।

पटोलीपर्पटारिष्टगुडूचीत्रिफलावृषैः ।

कटुकांबुदभूनिंबयासयष्ट्याह्वचंदनैः ॥ १० ॥

दावीशक्रयवोशीरत्रायमाणाकणोत्पलैः ।

धात्रीभृंगरजोभीरुकाकमाचीरसैर्घृतम् ॥ ११ ॥

सिद्धमाश्वपचीकुष्ठज्वरशुक्रार्जुनव्रणान् ।

हन्यान्नयनवदनकर्णजान्घ्राणजान्गदान् ॥ १२ ॥

पटोली ( परवल ) पित्तपापडा नींब गिलोय त्रिफला अडूसा कुटकी नागरमोथा चिरायता जवासा मुलेठी और चंदन ॥ १० ॥ दारुहलदी इंद्रजव खस त्रायमाणा पीपल कमल आंवले भृंगराज ( भांगरा ) शतावर मकोय इनके रसमें घृतको पकावे ॥ ११ ॥ यह सिद्ध किया घृत शीघ्रही अपची कुष्ठ ज्वर शुक्र ( नेत्रकी फुल्ली ) अर्जुनरोग व्रण और नेत्रके मुखके कानके और नाकके रोगोंको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

### कल्याणघृत ।

विडंगत्रिफलामुस्तमंजिष्ठादाडिमोत्पलैः ।

प्रियंग्वेलैलवालूकचंदनामरदारुभिः ॥ १३ ॥

बर्हिष्ठकुष्ठरजनीपर्णिनीसारिवाद्रयैः ।

हरेणुकात्रिवृद्धंतीवचातालीशकेसरैः ॥ १४ ॥

( श्लो० १३ से १७ तक ) चंदनं रक्तचंदनम् । एला सूक्ष्मैला । एलवालुकं कुष्ठ-गांधिकम् । बर्हिष्ठं बालकम् । रजनीद्वयम् हरिद्रा दारुहरिद्रा । विडंगादिद्रव्यकल्कं अष्ट-पलप्रमाणं गव्यघृतं प्रस्थ उदकस्य चतुर्भिः प्रस्थैः साधयेत् ( इति नि० सं० ) द्वितीयं द्विगुणं क्षीरमित्यर्थः । अथवा आजं गव्यं इति द्वितीयम् ।

द्विक्षीरं विपचेत्सर्पिर्मालतिकुसुमैः सह ।

विपमज्वरकश्वासगुल्मोन्मादगरापहम् ॥ १५ ॥

एतत्कल्याणकं नाम सर्पिर्मंगल्यमुत्तमम् ।

अलक्ष्मीग्रहरक्षोग्निमांघ्रापस्मारपापनुत् ॥ १६ ॥

शस्यते नष्टशुक्राणां बंध्यानां गर्भदं परम् ।

मेध्यंचक्षुष्यमायुष्यं रेतोमार्गरुजापहम् ॥ १७ ॥

विडंग त्रिफला नागरमोथा मैजीठ अनार कमल प्रियंगु इलायची एलवा-  
लुक चंदन देवदारु ॥ १३ ॥ नेत्रवाला कूट हलदी दोनों पर्णी ( शालपर्णी  
और पृथ्वीपर्णी ) दोनों सारिवा ( सारिवा और उत्पल सारिवा ) हरेणु  
निशोध दंती वच तालीशपत्र और नागकेशर ॥ १४ ॥ इनका काथ करे  
( आठपल विडंगादि द्रव्य ले ) ( एक प्रस्थ घृत और एक एक प्रस्थ दूध ले )  
और मालतीकं पुष्प भी डाले और घृतको सिद्ध कर ले यह घृत विपमज्वर  
श्वास गुल्म उन्माद और विप इनको नष्ट करता है ॥ १५ ॥ यह कल्याण  
नामक घृत है उत्तम और मंगलकारी है अलक्ष्मी ( अक्रांति ) ग्रह ( बालग्रह )  
राक्षसदोष अग्निकी मंदता और अपस्मारदोष इन सबको दूर करता है ॥ १६ ॥  
जिनका वीर्य नष्ट होगया हो उन्हें श्रेष्ठ है तथा बंध्या स्त्रियोंको गर्भका देने  
वाला है बुद्धि बढानेवाला नेत्रोंको हित आयु देनेवाला और शुक्रमार्गके रोगों  
को हरनेवाला है ॥ १७ ॥

एतैरेव यथा द्रव्यैः सर्वगंधैश्च साधितम् ।

कपिलाया घृतप्रस्थं सुवर्णमणिसंयुतम् ॥ १८ ॥

तत्क्षीरेण सहैकव्यं प्रसाध्य कुसुमैरिभैः ।

सुमनश्चंपकाशोकशिरीषकुसुमैर्घृतम् ॥ १९ ॥

तथा नलदपद्मानां केसरेर्दाडिमस्य च ।

तिथीं प्रशस्ते नक्षत्रे साधकस्यातुरस्य च ॥ २० ॥

कृतं मनुष्यदेवाय ब्राह्मणेनभिर्मंत्रितम् ।

दत्तं सर्वज्वरान्हन्ति महाकल्याणकं घृतम् ॥ २१ ॥

दर्शनस्पर्शनाभ्यां तु सर्वरोगहरं शिवम् ॥

अधृष्यः सर्वभूतानां वलीपलितवर्जितः ॥ २२ ॥



## अस्याभ्यासाद्धृतस्येह जीवेद्वर्षशतत्रयम् ॥ २३ ॥

और इन्हीं कल्याणघृतोक्त द्रव्योंसे तथा सर्वगंध ( एलादिगण ) से कपिला गौका प्रस्थभर घृत सिद्ध करे और सुवर्ण और मणि ( माणिक्यादि ) यथायोग्य शोधन करके युक्त करे ॥ १८ ॥ फिर उस कपिला ही के दूधमें मिला कर इन पुष्पोंसे युक्त करे चँबेली चंपा अशोक शिरस तथा खस और कमल केशर और अनारके पुष्प डाले और घृतको पुनः साधन करे फिर वैद्य और रोगीको अच्छे नक्षत्र मुहूर्तादि हों तब ॥ १९ ॥ २० ॥ ब्राह्मणोंसे अभिमंत्रित कराकर इसे मनुष्यदेव ( राजा ) को देवे यह घृत महाकल्याण नामक सब ज्वरों को नष्ट करता है ॥ २१ ॥ दर्शनसे स्पर्शसे यह सब रोगोंको दूर करता है कल्याणकारी है इसके सेवनसे मनुष्य सब प्राणियोंमें अधृष्य ( अजेय ) होता है बुढापेकी झुर्रियोंसे रहित होजाता है ॥ २२ ॥ इस घृतके अभ्याससे तीनसौ वर्षकी आयु प्राप्त होती है अर्थात् यह परम रसायन भी है ॥ २३ ॥

## पंचगव्य घृत ।

गव्यं दधि च मूत्रं च क्षीरं सर्पिः सकृद्रसः ।

समभागानि पाच्यानि कल्कांश्चैतान्समावपेत् ॥ २४ ॥

त्रिफलां चित्रकं मुस्तं हरिद्रे द्वे विषां वचाम् ।

विडंगं त्र्यूषणं चव्यं सुरदारु तथैव च ॥ २५ ॥

पंचगव्यमिदं पानाद्विषमज्वरनाशनम् ।

पंचगव्यमृते गर्भात्पाच्यमन्यद्वृषेण च ॥ २६ ॥

बलयाथ परं पाच्यं शुद्ध्या तद्वदेव तु ।

जीर्णज्वरे च शोफे च पांडुरोगे च पूजितम् ॥ २७ ॥

एतेनैव तु कल्पेन घृतं पंचाविकं पचेत् ।

पंचाजं पंचमहिषं चतुरुष्ट्रमथापि वा ॥ २८ ॥

गौका दही गोमूत्र गोदूध गोघृत और गौके गोबरका रस इनको समान भाग लेकर पकावे और उसमें निम्न लिखित औषधोंका कल्क डालदे ॥ २४ ॥ त्रिफला चित्रक नागरमोथा दोनों हलदी अतीस वच

( श्लो० २८ ) चतुरुष्ट्रं उष्ट्र्याः सकृद्रसवर्जम् ।

विडंग त्रिकटु चव्य और देवदारु ॥ २५ ॥ ( इनका कल्क करके  
 समय डाले ) यह पंचगव्यघृत पान करनेसे विषमज्वर नष्ट हो-  
 ता है और बिना कल्क डाले भी पंचगव्यघृत बनाते हैं तथा वासा  
 २६ ॥ और खरेटी और गिलोय इन्हींमेंसे किसी एकके कल्कसे ( या  
 नोंसे ) भी पंचगव्यघृत बनाते हैं यह जीर्णज्वर शोथ और पांडुरोगमें  
 होता है ॥ २७ ॥ इन्हीं औषधों और इसी रीतिसे पंचाविक ( भेडकी  
 चों वस्तुवोंका ) घृत भी पकाते हैं तथा पंचाज ( बकरीकी पांचों वस्तुवोंसे )  
 या पंचमाहिष ( भैंसकी पांचों वस्तुवोंसे ) भी घृत पकाते हैं-और ऊँट  
 की चार वस्तुवोंसे ( दूध दही घृत और मूत्र ) इनसे चतुरष्ट्र नामक घृत  
 बनाता है ॥ २८ ॥

## अन्यघृत ।

त्रिफलोशीरसंपाककटुकातिविपान्वितैः ।  
 शतावरीसप्तपर्णगुडूचीरजनीद्वयैः ॥ २९ ॥  
 चित्रकत्रिवृतामूर्वापटोलारिष्टवालकैः ।  
 किराततित्तकवचाविशालापन्नकोत्पलैः ॥ ३० ॥  
 सारिवाद्रययष्ट्याह्वचविकारक्तचंदनैः ।  
 दुर्गलभापर्पटकत्रायमाणाटरूपकैः ॥ ३१ ॥  
 रास्नाकुंकुममंजिष्ठामागधीनागरैस्तथा ।  
 धात्रीफलरसैः सम्यक् द्विगुणैः साधितं हविः ॥ ३२ ॥  
 परिसर्पज्वरश्वासगुल्मकुष्ठनिवारणम् ।  
 पांडुप्लीहाग्निमांशेभ्य एतदेवं परं हितम् ॥ ३३ ॥

त्रिफला खस किरमाला कुटकी अतीस शतावरी सातला गिलोय दोनों  
 हलदी ॥ २९ ॥ चित्रक निशोथ मूर्वा परवल नीबू नेत्रवाला चिरायता चव्य  
 इंद्रायन पन्नाख कमल ॥ ३० ॥ दोनों सारिवा मुलेटी चव्य रक्तचंदन  
 जवासा तित्तपापड़ा त्रायमाणा अहसा ॥ ३१ ॥ रास्ना केशर मंजीठ  
 पीपल सोंठ इनका फाव और आंगुलीका रस ( इनका दुगुना लेकर आधा  
 घृत ) डालकर घृत साधन करे ॥ ३२ ॥ यह घृत पिसर्प ज्वर श्वास गुल्म  
 कुष्ठ इनकी नष्ट करता है तथा पांडु प्लीहा भेदाग्नि इनमें भी परम हित है ॥ ३३ ॥

## अन्यघृत ।

पटोलकटुकादावीनिंबवासफलत्रिकम् ।

दुरालभापर्पटकत्रायमाणाः पलोन्मिताः ॥ ३४ ॥

प्रस्थमामलकानां च काथयेत्सलिलार्मणे ।

तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३५ ॥

रक्तपित्तकफस्वेदक्लेदपूयांगशोषणम् ।

कामलाज्वरवीसर्पगंडमालाहरं परम् ॥ ३६ ॥

पटोल कुटकी दारुहलदी नींब वासा त्रिफला जवासा पित्तपापडा त्राय-  
माणा इन्हें पल २ लेवे ॥ ३४ ॥ आंवले १ प्रस्थ लेकर अठगुने जलमें काथ  
कर चौथाई रहे प्रस्थभर घृत डालकर पकाले ॥ ३५ ॥ यह घृत रक्तपित्त  
कफ स्वेद क्लेद पूय अंगशोष कामला ज्वर विसर्प और गंडमाला इन सबको  
दूर करता है ॥ ३६ ॥

शृतं पयः शर्करा च पिप्पल्यो मधुसर्पिषी ।

पंचसारमिदं पेयं मथितं ज्वरशांतये ।

क्षतक्षीणे क्षये श्वासे हृद्रोगे चैतदिष्यते ॥ ३७ ॥

औटाया हुआ दूध मिश्री पीपल शहद और घृत इन पांचोंको मथकर  
( खूब मिलाकर ) ज्वरकी शांतिके लिये पीवे इसे पंचसार कहते हैं यह  
क्षतक्षीणको क्षयको श्वासको हृदयके रोगको श्रेष्ठ है ॥ ३७ ॥

## अभ्यंगार्थ तैल साधन ।

लाक्षाविश्वनिशामूर्वामंजिष्ठास्वर्जिकामयैः ।

षड्गुणेन च तक्रेण सिद्धं तैलं ज्वरांतकृत् ॥ ३८ ॥

क्षीरवृक्षासनारिष्टजंबूसतच्छदार्जुनैः ।

शिरीषखदिरास्फोतामृतवल्याटरूपकैः ॥ ३९ ॥

कटुकापर्पटोशीरवचातेजोवतीवनैः ।

साधितं तैलमभ्यंगादाशु जीर्णज्वरापहम् ॥ ४० ॥

लाख सोंठ हलदी मूर्वा मंजीठ सजी आमय ( कूट ) ( ये सब आठ पल

( श्लो० ३५ ) सलिलार्मणे जलद्रोणे । अर्मणः द्रोणपरिमाणः ( इति शा० नि० )

लेवे ) और ( चत्तीस पल तेल ) तेलसे छःगुनी छौंछ डालकर पकावे यह तेल मर्दन करनेसे ज्वर नष्ट होताहै ॥ ३८ ॥ दूधके वृक्ष ( गूलर आदि ) विजयसार नींव जामुन सातला अर्जुन शिरस खैर आस्फोत गिलोय ( या अमरवेल ) अडूसा ॥ ३९ ॥ कुटकी पित्तपापड़ा खस बब तेजवती ( तेज-बल ) नागरमोथा इनसे सिद्ध किया हुवा तेल मर्दन करनेसे ज्वरका शीघ्र नाश होताहै ॥ ४० ॥

## ज्वरमें अन्य उपदेश ।

निर्विपैर्भुजैर्नागैर्विनीतैः कृततस्करैः ।

त्रासयेदागमे चैन्न तदहभोजयेन्न च ॥ ४१ ॥

जिस समय ज्वर चढ़नेवाला हो उस समय उसे विपरहित सपोंसे या पालतू हाथियों आदिसे या बनावटी तस्करोंसे डरावे और उस दिन भोजन न करावे ॥ ४१ ॥

अत्यभिष्यंदिगुरुभिर्वामयेद्वा पुनः पुनः ।

मद्यं तीक्ष्णं पाययेत् घृतं वा ज्वरनाशनम् ॥ ४२ ॥

पुराणं वा घृतं काममुदारं वा विरेचनम् ।

निरूहयेद्वा मतिमान्सुस्विन्नं तदहर्नरम् ॥ ४३ ॥

अत्यंत अभिष्यंदि और भारी यवागू आदिमें वामक द्रव्यके योगसे वमन करावे बार बार वमन करावे अथवा तेज मद्य पिलावे अथवा ज्वर नाशक घृत पिलावे ॥ ४२ ॥ अथवा पुराना घृत ही यथेच्छ पिलावे अथवा ( बलके अनुसार ) तीक्ष्ण विरेचन दे अथवा स्वेदितकरके बुद्धिमान वैद्य निरूहण वन्ति परं ॥ ४३ ॥

## ज्वरघ्नधूपन ।

अजाव्योश्चर्म रोमाणि वचा कुटं पलंकया ।

निवपत्रं मधुयुतं धूपनं तस्य दापयेत् ॥

वेडालं वा शकृद्योर्ग्यं वेपमानस्य वृषनम् ॥ ४४ ॥

वपरी और भेलोसा चर्म और रोम वचा कुटं पलंकया ( लाख या गुनह ) निवपत्रं पत्रे इनमें शलद मिलाकर घुंकी हुई देना ( विषमज्वर )

जीर्णज्वरको नष्ट करता है ) और जो कंप भी हो तो बिलावकी बीटकी धूनी देना ॥ ४४ ॥

## अंजन ।

पिप्पली सैधवं तैलं नेपाली चेक्षणाञ्जनम् ॥ ४५ ॥

पीपल सैधानमक तैल और मैनसिल इनको घिसकर नेत्रोंमें अंजन करनेसे विषमज्वर दूर होवे ॥ ४५ ॥

उदरोक्तानि सर्पाणि यान्युक्तानि पुरा मया ।

कल्पोक्तं चाजितं सर्पिः सेव्यमानं ज्वरं जयेत् ॥ ४६ ॥

उदररोगमें जो घृत पहले कहेगये हैं उनका सेवन कराना अथवा कल्प स्थानमें कहाहुवा अजित नामक घृतका सेवन करना विषमज्वरको नष्ट करता है ॥ ४६ ॥

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बधावेशनताडनैः ।

जयेद्भूताभिषंगोत्थं विज्ञानाद्यैश्च मानसम् ॥ ४७ ॥

श्रमक्षये च भुंजीत घृताभ्यक्तो रसौदनम् ।

अभिशापाभिचारोत्थौ ज्वरौ होमादिना जयेत् ॥ ४८ ॥

दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहपीडजौ ।

अभिघातज्वरे कुर्यात्क्रियामुष्णविवर्जिताम् ॥ ४९ ॥

कषायमधुरां स्निग्धां यथादोषमथार्पि वा ।

ओषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रसाधनैः ॥ ५० ॥

भूतके अभिषंग ( आक्रोश ) से उपजे हुए ज्वरको भूतविद्यामें कहेहुए बंधों आवेशों और ताडनादिसे शांत करे ( अगाड़ी भूतविद्याका वर्णन होगा ) और मानस ज्वरको विज्ञानों ( नसीहतों ) से शांत करे ॥ ४७ ॥ श्रम और क्षयज्वरमें घृतका मर्दन करे और रसौदन ( मांसरस भात ) खावे और अभिशाप और अभिचारके ज्वरोंको हवनादिकरके शांत करे ॥ ४८ ॥ उत्पात और ग्रहपीडाके ज्वरको दान स्वस्तिवाचन आतिथ्य ( ब्राह्मणभोजन ) आदिसे जीते और अभिघात ( चोट ) से ज्वर हुआ हो उसमें उष्णसे रहित विधि करे ( परंतु यह धावकी विधि है वैसी चोट लगी

हो तो वहां अग्नि आदिसे सेकना भी हित होता है ) ॥ ४९ ॥ और दोपके अनुसार कसेली मधुर स्निग्ध क्रिया करे और विपेलीऔषधके गंधसे या विषसे ज्वर हुआ हो तो विषशामक तथा पित्तशामक यत्न करे ॥ ५० ॥

जयेत्कपायं च हितं सर्वगंधकृतं तथा ।

निवदारुकपायं वा हितं सौमनसं तथा ॥ ५१ ॥

यवान्नविकृतिः सर्पिर्मद्यं च विपमे हितम् ।

संपूजयेद् द्विर्जान्गांश्च देवमीशानमं विकाम् ॥ ५२ ॥

और सर्वगंध ( एलादिगण ) का काथ तथा नांव और देवदारुका काथ तथा चबूलीका काथ ये भी हित हैं ॥ ५१ ॥ यवके पदार्थ खाने घृतपान मद्य ये भी विषमज्वरमें हित हैं और ब्राह्मणोंका गौका शिवजीका दुर्गाका पूजन करना भी इसमें श्रेष्ठ है ॥ ५२ ॥

### शीतज्वरका यत्न ।

कफवातोत्थयोश्चापि ज्वरयोः शीतपीडितम् ।

दिह्यादुष्णेन वर्गेण परश्चोष्णो विधिर्हितः ॥ ५३ ॥

सिंचेत्कोष्णैरारनालशुक्तगोमूत्रमस्तुभिः ।

दिह्यात्पलैश्चैरथवा सुरसार्जकशिशुजैः ॥ ५४ ॥

क्षारतैलेन चाभ्यज्य सशुक्तेन विधीयते ।

पानमागवधादेश्च कथितस्य विशेषतः ॥ ५५ ॥

अवगाहः सुखोष्णश्च वातघ्नकाथसंयुतः ।

जित्वा शीतं क्रमैरेभिः सुखोष्णजलैस्तेजितम् ॥ ५६ ॥

प्रवेद्योंणिककोपासकोश्यांवरसंवृतम् ।

शौचयेद् ग्लानदेहं च कालागुरुविधूपितम् ॥ ५७ ॥

कफवातजनित ज्वरमें शीतपीडित मनुष्यको उष्णवर्गीकी औषधों ( कदफलादि ) से लेपन करे तथा अन्य भी उष्ण विधि करे ॥ ५३ ॥ और जल निवासे फांजी मिरका गोमूत्र दहीका जल इनसे सेचन करे अथवा टाणके फूल तुलसीके फूल कुंदरक और सोहंजनके फूल इनसे गरम करके सेक पाहुंचावे ( या लेप करे ) ॥ ५४ ॥ सारसे सिद्ध किये हुए तैलमें मिरका

मिलाकर शरीरपर मले और आरग्व धादि गणका काथकरके पान करावे ॥ ५५ ॥ अथवा वायुनाशक द्रव्योंका काथकरके निवाये २ से स्नान करावे इन विधियोंसे शीतको शमन करके निवाया जल सेचन करे ॥ ५६ ॥ फिर झट शरीर पोंछकरं गीले शरीर ही से ऊनके या रुईके या रेशमके भारी कपड़ोंमें दबकाके सुलादेवे और काले अगरसे भूषित करे ( अर्थात् लेप करदे ) ॥ ५७ ॥

स्तनाढ्या रूपसंपन्नाः कुशला नवयौवनाः ।

भजेयुः प्रमदा गात्रैः शीतदैर्न्यापहारिभिः ॥ ५८ ॥

शरच्छशांकवदना नीलौत्पलदलेक्षणाः ।

स्फुरितभ्रूलताभंगललाटतटकंपनाः ॥ ५९ ॥

प्रलंबिविलसत्कांच्यो विंबीफलनिभाधराः ।

कृशोदयोतिविस्तीर्णजघनोद्ग्रहनालसाः ॥ ६० ॥

कुंकुमागुरुदिग्धांग्यो घनतुंगपयोधराः ।

सुगंधिधूपितश्लक्ष्णस्रस्तांशुकविभूषणाः ॥ ६१ ॥

गाढमालिङ्गयेयुस्तं नैरं वनलता ईष ।

प्रह्लादं चास्यं विज्ञाय ताः स्त्रीरर्पयेत्पुनः ॥ ६२ ॥

तासांमंगवैराश्लेषनिवारितहिमज्वरम् ।

भोजयेद्धितमन्नं च तथा सुखमवाप्नुयात् ॥ ६३ ॥

विशाल स्तनवाली रूपवती चतुर नवीनयौवना ऐसी स्त्रियों अपने शीत और दैन्य नाशक शरीरसे शीतज्वरवालेको आलिंगन करें ॥ ५८ ॥ शरद के चन्द्रमा जैसे मुखवाली नीले कमलपत्रसरीखे नेत्रोंवाली और भृकुटी रूपलताको फरकानेसे कंपित होतेहैं कपोलके उपरिभाग जिनके ॥ ५९ ॥ लंबी विलासयुक्त ( लटकती हुई ) तगड़ी जिनके और कंदूरीफल जैसे अधर जिनके ऐसी पतले शरीरवाली और फैलीहुई जंघाके भारसे आलस भरीहुईसी कामिनी ॥ ६० ॥ अपने शरीरमें केसर अगर लगाकर भारी और ऊंचे कुचोंवाली सुगंध धूपयुक्त सुंदरवस्त्र उघड़े जाते हैं शरीरसे जिनके और अनेक अलंकारोंसे सजी धजी सुंदरस्त्रियें ॥ ६१ ॥ उस मनुष्य को खूब खपच्चीभरके दवायें जैसे वनकी लता वृक्षको लिपट जातीहै और जब मनुष्य को हर्ष ( कामादि ) का वेग मालूम हो ( अथवा जब शीत



छूटकर आनंद होजावे ) तब उन स्त्रियोंको अलग करदेवे ॥ ६२ ॥ इन स्त्रियोंके श्रेष्ठ अंगोंके आलिंगनसे दूर हुआहै शीतज्वर जिसका ऐसे रोगी को हितकारक अन्न भोजन करावे ऐसा करनेसे उसे सुख प्राप्त होताहै ( आराम होजाताहै ) ॥ ६३ ॥

( वक्तव्य ) यहां स्त्रीजनोंके आलिंगनसे कोई ज्वरमें स्त्रीसंग करना नहीं समझलेवे यह केवल शीतनिवृत्तिका यत्न है किंतु इसी लिये “प्रह्लादं चास्य विज्ञाय ताः स्त्रीरपनयेत्पुनः” ऐसा लिखाहै कि जरा भी हर्ष ( कामका आतंक ) मालूम हो तभी स्त्रियोंको हटालेना चाहिये ॥

### ज्वरके दाहका यत्न ।

दाहाभिभूते तु विधिं कुर्यादाहविनाशनम् ।  
मधुफाणितयुक्तेन निम्बपत्राभिसर्पि वा ॥ ६४ ॥  
दाहज्वरात्तैमतिमान्ध्रामयेत्क्षिप्रमेव तु ।  
शतधौतघृताभ्यक्तं दिह्याद्वा यवसक्तुभिः ॥ ६५ ॥  
कोलामलकसंयुक्तैः शूकधान्याम्लसंयुक्तैः ।  
अम्लपिष्टैः सुशीतैश्च फेनिलापल्लवैस्तथा ॥ ६६ ॥  
अम्लपिष्टैस्तु शीतैर्वा पलाशतरुजैर्दिहेत् ।  
वदरीपल्लवोत्थेन फेनेनारिष्टकस्य च ॥ ६७ ॥  
लिप्तेगे दाहस्तृणमूर्छा सर्वथैव प्रशाम्यति ॥ ६८ ॥

यदि मनुष्यको दाह अधिक हो तो दाह शांतकारक विधि करनी चाहिये शहदके फाणितसे मिलाहुवा नींबके पत्तोंका जल मिलाकर बुद्धिमान् वैद्य दाह और ज्वरवालेको शीम ही चमन करावे और सौ बार के धौबिहुण घृतका देहपर मर्दन करे अथवा जवका सन् चनाकर उसका लेप करे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ अथवा चर आंवले मिलाकर शूकधान्य और खटाई मिलाकर ( कई शूक धान्याम्लसे शूकधान्योंकी फांजी अर्थ करते हैं ) इन्हें अम्लसे ( खटाई ) से पीसकर लेप करे तथा फेनिला ( असीटा या नींब या वदरी ) के पत्तोंको खटाईसे पीसके लेप करे ॥ ६६ ॥ अथवा दाहके कामल पत्तोंको खटाईसे पीस शीतल लेप करे अथवा चंदीके पत्तोंके शान या नींबके पत्तोंके शान लेप करे इससे दाह तथा और मूर्छा ये सर्वथा शांत होजातेहैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

यवार्द्धकुडवं पिष्ट्वा मंजिष्ठार्द्धपलं तथा ।

अम्लप्रस्थशतोन्मिश्रं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥

एतत्प्रह्लादनं तैलं ज्वरदाहविनाशनम् ॥ ६९ ॥

जो आधे कुडव मँजीठ आधे पल ले इन्हें सौ प्रस्थ खटाई मिलाकर एक प्रस्थ तैलमें पकावे यह तैल प्रह्लादन ज्वरदाहनाशक है ॥ ६९ ॥

न्यग्रोधादिगणो यस्तु काकोल्यादिश्च यो गणः ।

उत्पलादिगणो यस्तु पिष्टैर्वा तैः प्रलेपयेत् ॥ ७० ॥

तत्कषायाम्लसंसिद्धाः स्नेहाश्चाभ्यंजने हिताः ।

तेषां शीतकषाये वा दाहार्तमवगाहयेत् ॥ ७१ ॥

दाहवेगे त्वतिक्रान्ते तस्मादुद्धृत्य मानवम् ।

परिषिच्यान्बुभिः शीतैः प्रलिपेच्चंदनादिभिः ॥ ७२ ॥

न्यग्रोधादिक गण जो है अथवा काकोल्यादि गण अथवा उत्पलादिक गण जो है उन्हें पीसकर लेप करे ॥ ७० ॥ तथा इन्हींके काथ और अम्लरससे सिद्ध कियेहुए स्नेहोंका अभ्यंग करे अथवा इन्हीं उपरोक्त गणोंके शीत-कषायमें दाहार्तको अवगाहन ( स्नान ) करावे ॥ ७१ ॥ और जब दाहका वेग दूर होजावे तब उससे पृथक् करके ठंडे पानीसे सेचन करके चंदनादि लेपन करदेवे ॥ ७२ ॥

( वक्तव्य ) शीत कषायमें अवगाहन इसप्रकार करे कि उन्हीं गणोक्त-द्रव्योंका शीत कषाय बनाकर उससे हौज या द्रोणी ( बालटी ) भर दे उसमें रोगीको बिठावे परंतु यह क्रिया सन्निपातज्वरके दाहमें कदापि नहीं करे भावमिश्रजी लिखते हैं कि “सन्निपाते तु दाहार्तं यः सिंचेच्छीतवारिणा । आतुरः स कथं जीवेद्विषग्वा स कथं भवेत्” अर्थात् सन्निपातज्वरके दाह पीडित रोगीको जो ठंडे पानीसे सेचन करदेवे तो वह रोगी कैसे जी सके किंतु मर जावे और ऐसा करनेवाला वैद्य कैसे होसक्ताहै ॥

सानंदा दीनमनसमार्त्तिपेयुर्वरांगनाः ।

पेलवक्षौमसंवीताश्चंदनार्द्रपयोधराः ॥ ७३ ॥

विभ्रत्योब्जस्रजश्चित्रा मणिहारविभूषिताः ।

भजेयुस्ताः स्तनैः शीतैः स्पृशंत्योऽबुहैर्मुखैः ॥ ७४ ॥

प्रह्लादं चास्य विज्ञाय ताः स्त्रीरपनयेत्पुनः ।

हितं च भोजयेद्भ्रं तथाप्रोति सुखं महत् ॥ ७५ ॥

दाहज्वरयुक्त दीनचित्तवाले रोगीको आनंददायिनी श्रेष्ठ स्त्रियोंका इस प्रकारसे आलिंगन करावे कि सुंदर स्त्रियों कोमल कृष्ण ( नीले ) रेशमी वस्त्र पहनेहुए अपने कुचोंपर खूब चंदन लगाये हों ॥ ७३ ॥ कमलके फूलोंकी माला पहने हों मणि ( मुक्तादि ) के हारोंसे भूषित हों ऐसी स्त्रियों धीरे धीरे उससे अपने ठंढे कुचोंका स्पर्श करावे और कमलसे मुखका भी स्पर्श करावे ॥ ७४ ॥ परंतु जब उसे हर्ष उत्पन्न हो तब उन स्त्रियोंको हटालेना चाहिये और हितकारक अन्नभोजन करावे ऐसा करनेसे रोगीको बहुत सुख प्राप्त होता है ॥ ७५ ॥

पित्तज्वरोक्तं शमनं विरेकोन्यद्धितं च यत् ॥ ७६ ॥

निर्हरेत्पित्तमेवादौ ज्वरेषु समवायिषु ।

दुर्निवारितरं तद्धि ज्वरातेषु विशेषतः ॥ ७७ ॥

तथा विरेचन देकर दाह शमन कर तथा और जो हितकारक पित्तज्वरमें कहे शमनादि यत्न हैं उन्हें करे ॥ ७६ ॥ और संसर्गी ज्वरमें पहले पित्तशामक यत्न करें क्योंकि ज्वरात मनुष्योंमें विशेषकरके यह पित्तही दुर्निवार होताहै ॥ ७७ ॥

ज्वरके उपद्रवोंका यत्न ।

छर्दिमूर्च्छापिपासादीनविरोधाज्वरस्य तु ।

उपद्रवाश्रयेचापि प्रत्यनीकेन हेतुना ॥ ७८ ॥

छर्दि मूर्च्छा तृषाका आदि लेकर जो ज्वरके उपद्रव होतेहैं उनको उनके हेतुके विपर्ययसे जो ज्वरमें या दूसरे उपद्रवके या देशकालादिके विरुद्ध न हों जीतना चाहिये ॥ ७८ ॥

( वक्तव्य ) जो एक व्याधि मूलरूपमें दूसरी तीसरी अन्यव्याधि हों उन्हें उपद्रव कहतेहैं ज्वरमें दश उपद्रव होतेहैं ऐसा ग्रंथांतरमें लिखा है

( श्लो० ७७ ) समवायिषु संज्ञादिषु ज्वरातेषु पित्तं दुर्निवारं नदनादौ कथयति । तस्माज्ज्वरे विनश्यत्प्रपतत्यन । तदुक्तं “ तस्मा पित्तास्ते नास्ति स्वर्गो नास्त्युष्मणा पिना । तस्मापित्तविन्यदानि त्वमपिनापिकोऽपिकम ” इति ।

( श्लो० ७८ ) उपद्रवानिभ्यादि । “ व्यापिभ्यो यो व्यापिभ्योऽनुत्तरकालतः । उपद्रवमपिनादी य स उपद्रव उपद्रवे ” इत्यस्य उपद्रवा दश भवति । तद्व्यापा । “ व्यापा मूर्च्छांनविश्रान्तिरुष्णज्वरदीपगतादिद्वाराः । तिसा कामलेभावाश्च तस्माज्ज्वरा दश ” इति भा० नि० )

वे उपद्रव ये हैं श्वास मूर्च्छा अरुचि छर्दि तृषा अतिसार विबन्ध हिक्का खासी अंगसाद ( देखो टिप्पणी ) परंतु उपद्रव केवल दश ही होते हैं ऐसा नहीं क्योंकि कंप वैरस्य शूलादिक और भी अनेक उपद्रव ज्वरमें हो सकते हैं ॥

विशेषमपरे चात्र शृण्वपद्रवनाशनम् ।

मधुकं रजनीं मुस्तं दाडिमं चाम्लवेतसम् ॥ ७९ ॥

अंजनं तित्तिरीकं च नलदं पत्रमुत्पलम् ।

त्वचं व्याघ्रनखं चैव मातुलंगरसो मधु ॥ ८० ॥

दिह्यादेभिर्ज्वरार्तस्य मधुशुक्तयुतैः शिरः ।

शिरोभितापसंमोहवमिहिक्काप्रवेपथून् ॥ ८१ ॥

प्रदे हो नाशयत्येष ज्वरितानामुपद्रवान् ॥ ८२ ॥

सामान्यतासे उपद्रवनाशक यत्न कि उसके हेतुके विपरीत करना ऊपर कह चुके । अगाड़ी अब विशेष उपद्रवनाशक यत्न सुनो, मुलेठी हलदी मोथा अनारदाना अमलवेत ॥ ७९ ॥ रसांजन तित्तिरीक खस पत्रज कमल तज व्याघ्रनखी नींबूका रस शहद ॥ ८० ॥ इन सबको पीसकर मधुशुक्त ( शहद का सिरका ) मिलाकर ज्वरके निम्न लिखित उपद्रवोंवाले रोगीके शिरपर लेप करे इसके लेपसे शिरका अभिताप मूर्च्छा वमन हिचकी और कंप ये सब उपद्रव नष्ट होजाते हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

( वक्तव्य ) मधुशुक्त इस भांति बनता है कि जंबीरीका रस और आर्द्र पीपलोंका रस और शहद इनको चिकने पात्रमें भरकर धान्यकी राशिमें एक महीना रहनेदे इसे मधुशुक्त कहते हैं यदि यह न हो तो शुक्त ( सिरका ) ही लेना चाहिये ॥

मधूकमथ ह्रीबेरमुत्पलानि मधूलिकाम् ।

लीढा चूर्णानि मधुना सर्पिषा च जयेद्रमिम् ॥

कफप्रसेकासृक्पित्तहिक्काश्वासांश्च दारुणान् ॥ ८

लिहञ्ज्वरार्तस्त्रिफलां पिप्पलीं च समाक्षिकाम् ।

कासे श्वासे च मधुना सर्पिषा च सुखी भवेत् ॥ ८४ ॥

विदारी दाडिमं लोध्रं दाधित्थं बीजपूरकम् ।

एभिः प्रदिह्यान्मूर्ध्नि तृड्दाहार्तस्य देहिनेः ॥ ८५ ॥

दाडिमस्य सितायैश्च द्राक्षामलकयोस्तथा ।

वैरस्ये धारयेत्कल्कं गंडूपं च यथाहितम् ॥ ८६ ॥

मधुवा नेत्रवाला कमल और मधूलिका ( मूर्वा ) डल्लनामिश्र राई कहते हैं ) इनका चूर्णकर शहद और घृतके संग चाटनेसे वमन शांत होजाता है तथा मुँहमें कफ भरभर आना रक्तपित्त हिचकी और दारुण श्वास ये सब उपद्रव नष्ट होजातेहैं ॥ ८३ ॥ ज्वर पीडित मनुष्य त्रिफला और पीपलको शहद मिलाकर चाटे अथवा शहद और घृत मिलाकर चाटे तो श्वास और खाँसीसे सुख होवे ॥ ८४ ॥ विदारी अनारदाना लोध्र कैय और विजोरा इनको पीसकर जिसे तृषा और दाह हो उस मनुष्यके शिर पर लेप करदेव ॥ ८५ ॥ और मुखमें विरसता हो तो अनार मिश्री मुनका और आंवले इनका कबल बनाकर धारण करे तथा इन्हींसे गंडूप ( कुष्ठ ) करे तो भी हित हैं ॥ ८६ ॥

क्षीरेक्षुरसमाध्वीकसर्पिस्तैलोष्णवारिभिः ।

शून्ये मूर्ध्नि हितं नैस्यं जीवनीयैश्चृतं घृतम् ॥ ८७ ॥

चूर्णितत्रिफलाश्यामातृवृत्तिपिप्पलिसंयुतः ।

सक्षौद्रः शर्करायुक्तो विरेकस्तु प्रशस्यते ॥ ८८ ॥

पक्वे पित्तज्वरे रक्ते चोद्ध्वेगे वेपथौ तथा ।

कफवातोत्थयोरेवं स्नेहाभ्यंगविशोधयेत् ॥ ८९ ॥

हेतदोषां भ्रमांतस्तु लिह्यात्क्षौद्रसिताभयाः ॥ ९० ॥

दूध ईसका रस नाथ्योक ( मधु या मय घृत तैल गरम जल यथोचित इनको कुष्ठे करना मुखविरस्यमें अति हितकारकहै और शिरकी शून्यतामें जीवनीय गणसे सिद्ध किए घृतकी नत्तर लेना श्रेष्ठ है ॥ ८७ ॥ और जब पित्तज्वर पकजावे तब तथा उद्ध्वगत रक्तपित्त हो ( मुँह नाक आदिमें रक्षिर आवे ) तब त्रिफला और श्यामा निशोध पीपल

इनमें शहद और खांड मिलाकर विरेचन कराना श्रेष्ठ है और कंप हो तथा कफ वायुके उग्रद्रव हों, तो स्नेहाभ्यंग कराकर शोधन कराना चाहिये और दोषोंके निकल गये पीछे भी जो भ्रम हो तो शहद मिश्री और हरीतकी मिलाकर चाटे ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥

## परिशिष्ट ( भा० प्र० )

### धातुगत ज्वरकी चिकित्साविधि ।

रसस्थेतु ज्वरे तस्मिन्कुर्याद्वमनलंघने ।

सेकः संशमनो लेपो रक्तमोक्षमसृग्गते ॥ १ ॥

तीक्ष्णं विरेकं च तथा कुर्यान्मांसगते ज्वरे ।

मेदस्थे मेदसो नाशं कुर्याद्यत्नेन बुद्धिमान् ॥ २ ॥

अस्थिस्थे तु ज्वरे कुर्याद्वातनाशनको विधिः ।

मज्जगः शुक्रगोऽसाध्यः नात्र कार्यं चिकित्सितम् ॥ ३ ॥

रसधातुमें ज्वर हो तब वमन तथा लंघन कराने चाहियें और रक्तगत होनेपर सेचन शमन लेपन तथा रक्तमोक्ष करावे ॥ १ ॥ मांसगत ज्वर हो-जानेपर तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिये और जो मेदग ज्वर होजावे तो ऐसा यत्न करना चाहिये जिसमें मेद नष्ट हो ( अर्थात् शोषण यत्न करना चाहिये ) ॥ २ ॥ और यदि ज्वर अस्थियोंमें पहुंचगया हो तो वातनाशक विधि ( अभ्यंग स्वेद मर्दनादि ) करे और यदि मज्जामें तथा शुक्रमें ज्वर पहुंचगया हो तो उसे असाध्य समझना और चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ३ ॥

### ज्वरघ्नवस्तिकर्मका निर्देश ।

वातघ्नमधुरैर्यौज्या निरूँहा वातजे ज्वरे ।

विभंज्य दोषं प्राणं वा यथास्वं वाऽनुवृत्तनम् ॥ ९१ ॥

उत्पलादिकषायाढ्या चंदनोशीरसंयुता ।

शर्करा मधुरा शीता पित्तज्वरहरा मता ॥ ९२ ॥

आम्रादीनां त्वचं शंखं चंदनामलकोत्पलैः ।

गैरिकांजनमंजिष्ठामृणालान्यथ पद्मकम् ॥ ९३ ॥

शुष्णपिष्टं तु पयसा शर्करामधुसंयुतम् ।

सुपूतं शीतलं वस्ति दूयमानाय दापयेत् ॥

ज्वरदार्हापहं तेषु सिद्धं चैवानुवासनम् ॥ ९४ ॥

वातज्वरमें वातनाशक ( भद्रदार्वादि ) द्रव्यों और मधुर द्रव्यों ( काकोल्यादि ) से निरुहण वस्ति करना श्रेष्ठ है तथा दोष और बलको विचारकर यथायोग्य अनुवासन करना ॥ ९१ ॥ पित्त ज्वरमें उत्पलादिके कायमें चंदन खस युक्तकर खाँडसे मधुर करके शीतल ही वस्ति करना पित्तज्वरको नष्ट करताहै ॥ ९२ ॥ अथवा आम्रादिककी छाल शंख ( शंखपुष्पी ) चंदन आँवले कमल गेरू रसांजन मँजीठ कमलकी नाल और पन्नाख इनको दूधमें पीसकर खाँड और शहद मिलाकर पित्तज्वरसे पीडित मनुष्यको यह वस्ति शीतल ही देनी चाहिये यह ज्वर और दाहको नष्ट करतीहै तथा इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए स्नेहसे अनुवासन वस्ति करना योग्य है ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

आरग्वधगणकाथाः पिप्पल्यादिसमायुताः ।

सक्षौद्रा एव देयाः स्युः कफज्वरविनाशनाः ॥ ९५ ॥

कफघ्नैरेव संसिद्धा द्रव्यैश्चाप्यनुवासनाः ॥ ९६ ॥

आरग्वधादिगणके काथमें पिप्पल्पादि मिलाकर शहदयुक्त करके कफ ज्वरमें कफज्वरनाशक वस्ति देना योग्य है ॥ ९५ ॥ तथा कफघ्न द्रव्यों ही से सिद्धकरके अनुवासनवस्ति देना चाहिये ॥ ९६ ॥

संसर्गं सन्निपाते च संसृष्टा वस्तयो हिताः ।

संसृष्टैरेव संसृष्टा द्रव्यैश्चाप्यनुवासनाः ॥ ९७ ॥

संसर्ग ( दंढन ) और सन्निपातमें उन्हीं दोषोंके द्रव्योंसे मिलाकर वस्ति करना चाहिये तथा उन्हीं दोषोंके द्रव्योंसे सिद्धकरके अनुवासनवस्ति करना उचित है ॥ ९७ ॥

वातरोगापहाः सर्वे स्नेहा ये सम्यगीरिताः ।

विना तैलं त एव स्युर्गोत्र्या मारुतजे ज्वरे ॥ ९८ ॥

निखिले नोपयोग्याश्च त एवाभ्यंजनौदिषु ॥ ९९ ॥

( श्लो० ९८ ) इसकी वातज्वर अनुवासनविषये तैलनिषेधमाह । वातरोगापहा इत्यादि । सर्वे स्नेहाः गोत्रैस्तैलमगमजानः । योग्या अनुवासना इति शेषः ( इति दंढनः )

( श्लो० ९९ ) वातज्वरं नु पुनः निखिलस्यापि तैलस्य अभ्यंगादिनियोगमाह । निखिलयोग्यादि । निखिलेन कामनयेन स्नेहेन । तैलमपि महत्तमम् । ( इत्यादि दंढनः )



पैत्तिके मधुरैस्तिक्तैः सिद्धं सर्पिः प्रयुज्यते ।

श्लैष्मिके कटुतिक्तैश्च समृष्टानीतरेषु च ॥ ३०० ॥

वायुरोगनाशक जो स्नेह ( घृत तैल वसा मज्जा इत्यादि ) कहे हैं वे तैलके विना सब वातज्वरमें उपयोग किये जासकते हैं ॥ २८ ॥ और अभ्यंगादिकमें वे सभी ( तैलसमेत ) उपयोगमें लाये जासकते हैं ॥ २९ ॥ और पित्तज्वरमें मधुर तिक्त द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ घृत उपयोग किया जावे और कफके ज्वरमें कटुक ( चरपरे ) और तिक्त ( कड़वे ) द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए घृत या तैलका उपयोग करे और दंद्धज और सन्निपातमें मिले हुओंका उपयोग करे ॥ ३०० ॥

### हृतावशेषज्वरकी चिकित्सा ।

हृतावशेषं पित्तं तु त्वक्स्थं जनयति ज्वरम् ।

पि<sup>२</sup>बेदिर्क्षुरसं तत्र शीतं वा शर्करोदकम् ॥ ३०१ ॥

शालिषष्टिकयोरन्नमश्रियात्क्षीरसंभृतम् ।

कफवातोत्थयोरेव स्वेदाभ्यंगौ प्रयोजयेत् ॥ ३०२ ॥

शमन शोधनादिसे कुछ शेष रहाहुआ त्वचागत पित्त भी ज्वर उत्पन्न कर देता है ऐसा होनेमें ईखका रस पीना ( या गन्ना चूसना ) या शीतल सरबत पीना श्रेष्ठ होता है ॥ ३०१ ॥ और दूधके साथ शालि या षष्टिक ( चावल ) का भात खाना चाहिये और इसी प्रकार कफ-वायुक हृतावशेषसे ज्वर हो तो उसमें स्वेद और अभ्यंगका उपयोग करना उचित है ॥ ३०२ ॥

### घृतपानकी अवधि ।

घृतं द्वादशरात्रात्तु देयं सर्वज्वरेषु च ।

तेनांतरेणाशयं स्वं गता दोषा भवंति हि ॥ ३०३ ॥

( श्लो० ३०० ) अभ्यंगादिषु श्लैष्मिके पानाभ्यंगार्थं स्नेहविशेषमाह । श्लैष्मिकैः कटुतिक्तैरित्यादि । कटुतिक्तैश्चेत्यत्र सर्पिः सिद्धमिति योजनीयम् । यद्यपि कफतुल्यगुणं सर्पिः तथापि विशिष्टसंस्कारवशात्कफेऽपि सर्पिः प्रयुज्यते । अन्येतु चकारादनुक्तमपि तैलम् । कपायेत्यत्र संवादभावात् कथयन्ति ( इति नि० सं० ) ।

सब प्रकारके ज्वरोंमें बारह दिन पीछे घृत देना चाहिये क्योंकि इतने समयमें सब दोष पककर अपने अपने स्थानमें प्राप्त होजातेहैं ॥ ३०३ ॥

## दोषोंका शांत होनेमें क्षोभ ।

धातून्प्रक्षोभयन्दोषो मोक्षकाले वलीयते ।

तेन व्याकुलचित्तस्तु म्रियमाण इवेहते ॥ ३०४ ॥

दोष मोक्षके समय ( अर्थात् शांत होनेके समय ) धातुवोंको क्षुभित करके अत्यन्त बलवान्सा होताहै जिससे व्याकुलचित्त हुआ मनुष्य मरनेवाले-कीसी चेष्टा करने लगता है ( अर्थात् जब रोग घटने और अच्छा होने लगता है तब कभी इतना क्षुभित और बलवान् प्रतीत होता है जिससे रोगी म्रियमाणसा मालूम देने लगजाता है परन्तु दोषके शांत होजानेपर अच्छा हो जाताहै ) ॥ ३०४ ॥

## ज्वरमुक्तके लक्षण ।

लघुत्वं शिरसः स्वेदो मुखमापांडु पाकि च ।

क्षवथुश्चान्नकांक्षा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ ३०५ ॥

शिरमें हलकापन होजावे पसीना ( सब शरीरपर आवे ) मुखपर सुपेदी लिये पीलापन हो तथा कुछ पाकभी मालूम हो छाँके आवे भोजनकी इच्छा हो इतने लक्षण होनेसे मनुष्य ज्वरसे छूटा ऐसा जानना चाहिये ॥ ३०५ ॥

शंभुक्रोधोद्भवो घोरो बलवर्णाग्निसादकः ।

रोगराट्प्रोगसंघातो ज्वर इत्युपदिश्यते ॥ ३०६ ॥

व्यापित्वात्सर्वसंस्पर्शात्कृच्छ्रत्वादंतसंभवात् ।

अंतको ह्येपे भूतानां ज्वर इत्युपदिश्यते ॥ ३०७ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

शिवजीके क्रोधसे उपजा हुआ घोर बल वर्ण और अग्निको नाश करने-वाला रोगोंका राजा और अनेक रोगोंका संप्रद कर्ता ऐसा ( महारोग ) ज्वरही कहलाताहै ॥ ३०६ ॥ यह सब प्राणियोंमें व्यापक होनेसे और

( सं० ३०४ ) दोषो धातून्प्रक्षोभयति । ननु प्रक्षोभयत्यस्य कथं दोषो बलीया-  
परति प्रेक्षयताम् । परमं दोषो निर्वातमनसा महां व्याप्य नश्यति निर्वातं सति  
नश्य दोषो बलीयते बली रज आवर्तयति ॥

समस्त शरीर ( क्या इंद्रिय और मनतक तपायमान कर ) के स्पर्श करता है इससे तथा कष्टसाध्य होनेसे तथा अंतमें होनेसे ( अन्य व्याधि होनेपर भी अंतमें यह होजाता है ) प्रायः यह ज्वर ही प्राणियोंका अंतक ( मृत्यु-कर्ता ) है ॥ ३०७ ॥

डाक्टरोंमें ज्वरको फीवर ( Fever. ) कहते हैं इसके भेद और उनके डाक्टरी नाम हम इस पुस्तककी दूसरी जिल्द ( निदान शारीरकखंड ) में लिख चुके हैं वहां देखो “ डाक्टरीमतसे संक्षिप्त रोगगणनामें ” और यूनानीवाले बुखार या हमी कहते हैं और साधारण मनुष्य तप या ताप कहते हैं यूनानी मतसे बुखारोंके भेद और नाम लक्षणादि भी हम उसी खंडमें लिख चुके हैं ॥

## परिशिष्ट ।

### मोतीज्वरका वर्णन ।

यदि बड़े ग्रंथोंके अनुसार देखाजावे तो उनमें यह व्याधि कोई जुदी नहीं लिखी और न कुछ इसकी प्रधानता लिखी इससे ऐसा पायाजाता है कि या तो उस समय यह व्याधि इतनी प्रबल थी ही नहीं और शायद कभी किसीके होती भी हो तो उसे रक्तगत पित्तज्वर ही समझा जाता होगा-परंतु इस समय हमारे भरतखंडमें यह व्याधि एक भयंकर रूपसे बहुधा मनुष्योंको होती है इससे इसका वर्णन हम परिशिष्टरूपसे करते हैं ( कोई इसे मधूरक कोई मंथरज्वर कोई मसूरिकाका भेद मानते हैं ) ॥

योगचिंतामणिमें इसप्रकारसे लिखा है कि-

ज्वरो दाहो भ्रमो मोहो ह्यतीसारो वमिस्तृषा ।

अनिद्रा च मुखं रक्तं तालु जिह्वा च शुष्यति ॥ १ ॥

ग्रीवामध्ये च दृश्यन्ते स्फोटकाः सर्षपोपमाः ।

एतच्चिह्नं भवेद्यस्य स मधूरक उच्यते ॥ २ ॥

जिसके ज्वर हो दाह भ्रम मोह अतिसार वमन और तृषा हो निद्रा नहीं आवे मुख ( चेहरा ) लाल मालूम देवे तालु और जीभ सूखे ॥ १ ॥ ग्रीवा ( गरदनपर ) और नीचे सरसोंके दानेसमान छोटी फुन्सियाँ मालूम पड़ें जिसके इसप्रकारके लक्षण हों मधूरक ज्वर जानना ॥ २ ॥ कई अंतमें पाठ मानते हैं कि-

घृताशनात्स्वेदरोधान्मंथरो जायते नृणाम् ॥ ३ ॥

घृत ( चिकनाई ) खाने और पसीना रोकने ( या रुक जाने ) से मनुष्योंको यह उपरोक्त मंथरज्वर होता है ॥ ३ ॥ ( कोई इन्हें योगशतक-को श्लोक बताते हैं कोई क्षारपाणिको )

परंतु भावप्रकाशके मतसे यह मसूरिका ही का एक भेद पाया जाता है भाव-मिश्रजीने मसूरिकाके सात भेद लिखे हैं ॥

**मसूरिकाके लक्षण और भेद ।**

कटुम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः ।

दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टपवनोदकैः ॥ १ ॥

कृग्रहेक्षणाच्चापि देशे दोषसमुद्भवाः ।

जनयन्ति शरीरेऽस्मिन्दुष्टरक्तेन संगताः ।

मसूराकृतिसंस्थानाः पिडिकाः सा मसूरिका ॥ २ ॥

चरपरे खट्टे लवणके रस क्षार ( यवक्षारादि ) विशेष खानेसे विरुद्ध भोजन करनेसे भोजनपर भोजन करनेसे दुष्ट निष्पाव ( लोचियाँ ) तथा दूषित शाकोंके खानेसे पवन और पानीके विगड़ जानेसे ॥ १ ॥ अथवा खोट तारागणकी दृष्टि ( छाया ) देशपर पड़नेसे दूषित रुधिरके संगत होकर मनुष्योंके शरीरमें दोषों ( वातादि ) से उत्पन्न होनेवाली फुन्सियाँ पैदा होजाती हैं और ये फुन्सियाँ मसूरके समान होती हैं इससे इन्हें मसूरिका कहते हैं ( और साधारण मनुष्य इन्हें शीतला कहते हैं ) ( यद्यपि यह बड़ी अवस्थामें भी होसकती है परन्तु विशेष करके यह बालअवस्थामें बहुधा होती है और एकवार दोवार जादेसे जादे तीनवारसे अधिक किसीको भी प्रायः नहीं होती ) ( इसे महापि धन्वंतरिजीने उद्देश मात्र क्षुद्ररोगोंके अंतर्गत लिखदिया है ) इसके और भेद ये हैं ॥ २ ॥

वातश्लेष्मसमुद्भूता कोदवा कोदवाकृतिः ।

तां कश्चित्प्रादपक्वति सा तु पाकं न गच्छति ॥ ३ ॥

सप्ताहाद्वादशाहाद्वा शांतिं याति विनोपधम् ।

यादि वा भेषजं दद्यात्सदिराष्टकनिर्मितम् ॥ ४ ॥

कक्याएसे उपरोद्ध मसूरिका कोदवा नामक फोड़ोंके बराबर ( बड़ी बड़ी ) फुन्सियाँ होती हैं फोड़ उसे पक नदें ऐसा कह देते हैं

पर वे जबतक पकी नहीं होती हैं ( अर्थात् वे विना पकेही पकीसी मालूम पड़ती हैं ) यह सात दिनमें या दश दिनमें बहुधा विना ही औषधके शांत हो जाती है ( सूख जाती है ) और यदि औषध देनेकी आवश्यकता हो तो खदिराष्टकका काथ देवे ॥ ३ ॥ ४ ॥

ऊष्मणा तूष्मजारूपा सकंदूरस्पर्शनप्रिया ।

नाम्ना पाणिसमाख्याता सप्ताहाच्छुष्यति स्वयम् ॥ ५ ॥

तीसरा भेद यह है कि जैसे गरमीमें गरमी दाने ( अलाईसे ) निकलते हैं और उनमें खाज आती है ऐसेही नन्हें दानेसे मालूम पड़ें यह गरमीसे होती है और सात दिनमें स्वयं सूख जाती है इसे पाणि समाख्या ( पानिसहा या पानीज्वरा ) कहते हैं ॥ ५ ॥

चतुर्थी सर्षपाकारा पीतसर्षपवर्णिनी ।

नाम्ना सर्षपिका ज्ञेयाऽभ्यंगमत्र विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

चौथी सरसोंके दानेके आकार पीली सरसोंसी होती है उसे सर्षपिका ( खसरा ) कहते हैं इसमें तैलाभ्यंगादि वर्जित हैं ॥ ६ ॥

किंचिदुष्मनिमित्तेन जायते राजिकाकृतिः ।

एषा भवति बालानां सुखं शुष्यति च स्वयम् ॥ ७ ॥

थोड़ी गरमीके कारणसे जो राईके दाने जैसी होती हैं उसे राजिका कहते हैं यह जो बालकोंको होती है सो आपही सुखसे सूख जाती है ॥ ७ ॥

कोठवजायते षष्ठी लोहितोन्नतमंडला ।

ज्वरपूर्वा व्यथायुक्ता ज्वरस्तिष्ठेद्दिनत्रयम् ॥ ८ ॥

छठी वह होती है जिसमें उदरकी तरहसे सुख कुछ उभरे हुए चकदेसे पड़ जावे इसमें व्यथा होती है और तीन दिन आरंभमें ज्वर चढा ही रहता है ॥ ८ ॥

स्फोटानां मिलनादिषा बहुस्फोटाऽपि दृश्यते ।

एकस्फोटे च वै कृष्णा बोद्धव्या चर्मजाभिधा ॥ ९ ॥

सातवीं वह होती है जिसमें एक फुन्सीमें बहुतसी फुन्सी मिलीसी मालूम पड़ें और काली हों ( छतड़ासा होजावे ) उसे चर्मजा ( चमर गोटी ) कहते हैं ॥ ९ ॥

इन्हींमें पाणिसहा राजिका और लोहितमंडला आदि ही में मोतीज्वर [ समझिये ।

( वक्तव्य ) इसमें यह है कि मसूरिकाका और जिसे मोतीज्वर कहते हैं उसका उपादान ( मादा ) एक ही मालूम पड़ता है अर्थात् शारीरिक रुधिरका दूषित द्रवपदार्थ जब त्वचाकी तरफ प्रवर्त होता है तब ये व्याधियाँ होती हैं और रुधिरके जोशके समय चढ़ती उमरमें विशेष होती हैं छोटे बालकोंको जैसे बड़ी मसूरिका या छोटी खसरा होती है इसीप्रकार बड़ी अवस्थावालोंके मौक्तिकज्वर ( मोतीज्वर ) हुवा करता है—और जो कि इसका प्रभाव विशेष कर रुधिरमें होता है इससे इसमें रक्तज मसूरिकाके लक्षण होते हैं, जैसे—

विद्वेदश्चांगमर्दश्च दाहस्तृष्णारुचिस्तथा ।

मुखपाकोक्षिपाकश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः ॥ १० ॥

विद्वेद हो ( दस्त फटसा हो ) अंग दूटे दाह हो तृषा अधिक लगे अरुचि मुख ( कंठ ) पकजावे आँखें भी सुख होजावे और तेज और स्थिर ताप रहे १०

( वक्तव्य ) मसूरिकाके वातजादि भेद तथा धातुगत मसूरिका इत्यादि ग्रंथ बढ़नेके भयसे हमने नहीं लिखे ॥

असाध्य मसूरिकाके लक्षण ।

कासो हिक्का प्रमेहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः ।

प्रलापारतिमूर्च्छाश्च तृष्णा दाहोऽतिघूर्णता ॥ ११ ॥

मुखेन प्रसवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा ।

कंठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थं दारुणम् ॥ १२ ॥

मसूरिकाभिभूतस्य यस्येतानि भिषग्वरेः ।

लक्षणानीह दृश्यन्ते न देयं तस्य भेषजम् ॥ १३ ॥

खोभी हिचकी प्रमेह तीव्रज्वर प्रलाप वैचैभी मूर्च्छा तृषा दाह ये सब उपद्रव हो और अत्यन्त घूर्णता हो ( घुंमरभी आवे ) ॥ ११ ॥ मुँहसे नाकसे नेत्रोंसे रक्त टपकने लगे और कंठमें घुर घुर करके अत्यन्त तीव्र श्वास लेवे ॥ १२ ॥ इतने लक्षण जिस मसूरिका ( या मोतीज्वर ) वालेके देखे देखे उसे असाध्य समझकर कर्मा आपस देना योग्य नहीं ॥ १३ ॥

इसकी मंक्षित चिकित्सा ।

गुहृत्ती मधुकं द्राक्षा मोरया दाडिमैः सह ।

पाककाले प्रदातव्यं भेषजं गुहृसंयुतम् ।

तेन कुप्यति ना वायुः पाकं यानि मसूरिका ॥ १४ ॥

इसमें मुख्य यत्न यह है कि भीतरका प्रवर्त हुआ दोष ठिठरा न जावे अर्थात् शीतल वातुल आहार विहार कदापि आरम्भ और पाकके समय नहीं करे शीत और वातुलसे यह बीचमें ठिठरा जावे तो कष्ट अथवा असाध्य होनेमें संदेह नहीं इसीलिये गिलोय मुलेठी मुनक्का ईखकी जड़ और अनार ( अनारका छिलका ) इनका काथकर गुड मिलाकर पाकके समय देवे जिससे ठीक पकजावे और वायुका कोप न हो ॥ १४ ॥

## मुखपाकमें कुल्ले ।

धात्रीफलं समधुकं कथितं मधुसंयुतम् ।

मुखे कंठे व्रणे जाते गंडूषार्थं प्रशस्यते ॥ १५ ॥

आँवले और मुलेठी इनको उवालकर शहद मिलाकर मुख या कंठके व्रणों ( जखमों ) के लिये कुल्ले करना श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥ डाक्टरोंमें मसूरिकाको “ स्मालपाक्स ” कहते हैं और छोटी खसराको “ चिकनपाक्स ” कहते हैं और मोतीज्वरको स्कारलेटिक फीवर अथवा “ स्कारलेटीना ” कहते हैं ॥

डाक्टरोंमेंसे इस मसूरिका रोगका यत्न मुख्य यही है कि पहलेसे बालकोंको टीका लगवादेवे यद्यपि यत्न अब बहुत प्रचलित हुआ है परंतु हमारे ऋषि वैद्य इस यत्नको पूर्वकाल ही से जानते थे क्योंकि टीका लगानेकी विधि हमारे ग्रंथोंमें भी लिखी मिलती है इस विषयके लिये देखो आयुर्वेद विज्ञान उसमें आर्षग्रंथके प्रमाणपूर्वक यह बात लिखी है ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतंत्रे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

## चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

अथातोतीसारप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम अतिसारके प्रतिषेधका व्याख्यान करते हैं ॥

## अतिसारकी उत्पत्ति ।

गुर्वतिस्निग्धरूक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः ।

विरुद्धाध्यशनाजीर्णैरसात्म्यैश्चापि भोजनैः ॥ १ ॥

( श्लो० १ ) अतिसारस्य निरुक्तिः । “ अतिरत्यर्थवचने सरतीति च कर्मणि । तस्मादत्यंतसरणादतीसार इति स्मृतः ” । ( इतिडल्लनः ) गुरु मात्रया स्वभावेन संस्कारेण च । अतिशब्दः स्थूलांतः सह संबध्यते । स्थूलं असम्यक् पिष्टम् । विरुद्धं क्षीरमत्स्यादि । अध्यशनम् । “ अजीर्णं भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते ” । भोजनैरिति गुर्वादिभिर्विषातैः । सर्वैः सह संबध्यते ( इति भा० मि० )



स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विपादय्यात् ।

शोकाद्दुष्टांबुमद्यातिपानात्सात्म्यर्तुपर्ययात् ॥ २ ॥

जलाभिरमणैर्वेगविधातैः कृमिदोषतः ।

नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्यैव वक्ष्यते ॥ ३ ॥

गरिष्ठ भोजनसे अतिस्निग्ध अतिरुक्ष अतिउष्ण द्रव ( पतले ) अति-  
स्थूल पेसे भोजन करनेसे अति शीतल स्नान पान करनेसे विरुद्ध भोजनसे  
अध्यशन ( भोजनपर भोजन ) करनेसे अजीर्णसे असात्म्य ( वेमाफक्त )  
भोजन करनेसे ॥ १ ॥ तथा स्नेहादिके अतियोगसे अथवा मिथ्या योगसे  
विषसे भयसे शोकसे दूषित जल पीनेसे अत्यंत मद्य पीनेसे यथोक्त ऋतुके  
विपरीत होनेसे ॥ २ ॥ जलमें अत्यंत रमण ( पड़े रहने ) से वेग ( दस्त-  
की हाजत ) रोकनेसे कृमि ( पेटमें कृमि होने ) से मनुष्योंको अति-  
सार रोग होजाता है ( अर्थात् दस्त लगजाते हैं ) इसके लक्षण अगाड़ी  
कहते हैं ॥ ३ ॥

## अतिसारकी संप्राप्ति और निरुक्ति ।

संशम्यापां धातुरंतः कृशानुं वचोमिश्रो मारुतेन प्रणुन्नः ।

वृद्धोऽस्तीवाधः संरत्येवं यस्माद्व्याधि वो रं तं त्वेतीसारमाहुः ४

उपरोक्त कारणोंसे शरीरके द्रवधातु ( कफ रक्त ) पित्तादि अंतराग्नि ( जठ-  
राग्नि या पाचकाग्नि ) को शमन करके और स्वयंवद्वार विष्टासे मिलकर  
वायुसे प्रेरित हुआ ( वह द्रवभाग ) नीचेको गुदाकी तरफ प्रवृत्त होनाहै इससे  
इस घोर व्याधिको अतिसार कहते हैं ॥ ४ ॥

( श्लो० २ ) अशयिः स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विपादय्यात् । अतियुक्तः  
अतिमात्रेण नष्टः । नान्द्वारमण्युक्तः । मिथ्यायुक्तः अविधिमुक्तः । विपादय्यात्  
तन्मयाभोगदात् ।

( श्लो० ३ ) जलाभिरमणैः कृमिदोषतः । वेगविषमिर्भुमपुतिपर्ययात् ।  
कृमिभिः पक्षाद्यमणैः । ( इति भा० नि० )

( श्लो० ४ ) अपां धातुः कफरक्तः पित्तविषमण्युक्तः । अंतर्गतां कोष्ठमग्निः ।  
संशम्यं सुदुग्धं । वचोमिश्रः विद्रुमिश्रितः । मारुतेन मनुकः अत्यन्तदुर्गन्धः ।  
प्रणुन्नः ।

## अतिसारकेभेद ।

एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः॥५॥

केचित्प्राहुर्नैकरूपप्रकारं नैवेत्येवं काशिराजस्त्ववोचत् ।

दोषावस्थास्तस्य नैकप्रकाराः काले काले व्याधितस्योद्भवन्ति॥

वातादि एक एक पृथक् दोषसे ऐसे ३ तो ये चौथे त्रिदोष ( सन्निपात ) से पांचवें शोकसे और छठे आमसे इस भांति अतिसार छः प्रकारका कहा है ॥ ५ ॥ इसमें कई ऐसा कहते हैं कि अतिसार कई प्रकारका और कई रूपका ( अर्थात् अनेक प्रकारका ) होता है ( जैसे द्विदोषका अतिसार रक्तातिसार भयातिसार इत्यादि ) परंतु काशिराज श्रीधन्वंतरिजी इन्हें मुख्यतासे नहीं मानते इनका मत है कि दोषोंकी अवस्था रोगीके एक प्रकारकी नहीं होती समय समयपर पलट जाया करती है प्रयोजन यह कि उपरोक्त छः प्रकारके ही में अवस्थाभेदसे और सबका अंतर्भाव होसकता है ( जैसे 'सर्वशः' में द्वद्वंज और त्रिदोषज सब आगये और पांचवेंमें आदि शब्द लुप्त प्रतीत होता है अर्थात् शोकादिसे इसमें भय आदि सब प्रकारके आगंतुक आचुके इसी प्रकार रक्तातिसारका अंतर्भाव पित्तातिसारमें होसकता है ) ॥ ६ ॥

## अतिसारका पूर्वरूप ।

हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसंनिरोधाः ।

विट्संगआध्मानमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥७॥

हृदय नाभि गुदा पेट और कुक्षि इन स्थानोंमें व्यथासी हो शरीरमें ग्लानि हो अधोवायु रुकजावे दस्त भी रुकजावे ( या थोड़ा आवे ) अफारा हो और भोजन ठीक पचे नहीं ये अतिसारके पूर्वरूप हैं ( अर्थात् जिसके ये लक्षण हों तो जानलेना चाहिये कि इसके अतिसार होनेवाला है ॥ ७ ॥

वातज पित्तज और कफज अतिसारके लक्षण ।

शूलाविष्टः सक्तमूत्रोत्रैकूजी स्रस्तापानः सन्नकट्यूरुजंघः ।

वच्चो मुच्यत्यल्पमल्पं सफेनं रूक्षं श्यावं सानिलं मारुतेन॥८॥

( श्लो० ८ ) स्रस्तापानः अधश्च्युतगुदः । सन्नकट्यूरुजंघः शिथिलकट्यूरुजंघः ।

( इति नि० सं० )

दुर्गंध्युष्णं वेगवन्मांसतोयप्रख्यं भिन्नं स्विन्नदेहोत्तितीक्ष्णम् ।

पित्तात्पीतं नीलमालोहितं वा तृष्णामृच्छादाहपाकज्वरार्तः॥९॥

तंद्रानिद्रागौरवोत्कृष्टसादी वेगाशंकी सृष्टविद्रोपि भूयः ।

शुकं सांद्रं श्लेष्मणा श्लेष्मयुक्तं भक्तद्वेषी निःस्वनं हृष्टरोमा॥१०॥

पेटमें दरद रहे मूत्र रुक जाय या कम हो आंत गुड़ २ शब्द बोलें गुदा निकलीसी पड़े कमर ऊरु और जंघा इनमें थकानसी हो और थोड़ा थोड़ा दस्त आवे मलमें झागसे हों रुखापन भी हो मलका रंग श्याव ( कालापन लिये ) हो और दस्तके साथ वायु ( और शब्द ) भी हो ये वायुके अतिसारके लक्षण हैं ॥ ८ ॥ मल दुर्गन्धित और गरम हो और वेगसे दस्त हो मांसके धोवनसा छेछड़ेदार दस्त हो तीक्ष्ण हो रंग पीला या नीला या लाल हो रोगीको पसीना आवे तृषा मूर्च्छा दाह और गुदादिका पाक हो तथा ज्वर हो तो पित्तातिसारके लक्षण जानने चाहिये ॥ ९ ॥ जिसको तंद्रा निद्रा गुरुता जी मिचलाना या मुंहमें पानी आना अग्निमें मंदता ये हों और दस्त हो आनेपर भी शंका रहे दस्त सुपेद कुछ गाढ़ा कफसे मिला हुआ हो दस्तके साथ शब्द न हो भोजनमें रुचि न हो रोमांच हों ये कफातिसारके लक्षण हैं ॥ १० ॥

### सन्निपातातिसारके लक्षण ।

तद्वायुक्तो मोहसादास्यशोषी वचः कुर्यान्नैकवर्णं तृपार्तः ।

सर्वोद्धृतः सर्वलिङ्गोपपत्तिः कृच्छ्रश्चायं बालवृद्धेष्वसाध्यः ॥११॥

जो तंद्रा युक्त हो मोह अधिमांस और मुख सूखता इनमें भी युक्त हो  
नृपा अधिक लगे और दस्तको रूप एक किसी वर्णका न हो (अनेक  
रंगके दस्त आये) और सब दोषोंके लक्षण और उपद्रव पायेजायें तो उसे  
मंतिपातका आतिशार कहते हैं यह कष्टमांस्य होता है और बालक वृद्ध इन्हींके  
तो असाध्यही होता है ॥ ११ ॥

(नवमः) निम्नमे दो शेषीक लक्षण और उपर्युक्त शर्तियाँ उसे उन्हीं दो शेषीया जतिमान समझ लेना चाहिये ॥

THE UNIVERSITY OF CHICAGO

( ११० )

## शोकातिसार ।

तैस्तैर्भावेः शोचतोऽल्पाशनस्य बाष्पावेगः पक्तिमाविध्य-  
जंतोः । कोष्ठं गत्वा क्षोभयन्त्यस्य रक्तं तच्चार्धस्तात्काक-  
नतीप्रकाशम् ॥ १२ ॥ वच्चोमिश्रं निःपुरीषं संगंधं निर्गंध-  
वां सारयते तेन कोष्ठात् । शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योतिमात्र-  
रो गो वैद्यैः कष्ट एव प्रदिष्टः ॥ १३ ॥

जिन जिन पदार्थोंका क्लेश हो उनको शोच करके ( शोक करनेवालेके )  
और शोक ही से थोड़ा भोजन कियाजानेसे बाष्प ( अश्रु या अवखरों )  
का वेग मनुष्यकी पाचकाग्निको दूषित करके कोष्ठमें प्राप्त होकर रुधिरको  
क्षोभित करके चिरमठी जैसे रक्तको विष्टामें मिलेहुए या केवल गंधयुक्त या  
निर्गंध कोष्ठसे मलमार्गकी तरफ निकालताहै यह शोकातिसार वैद्योंने अत्यंत  
कष्टसाध्य और दुश्चिकित्स्य कहाहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

आमाजीर्णैः प्रदुताः क्षोभयंतः कोष्ठं दोषाः संप्रदुष्टाः सभक्तम् ।  
नानावर्णं नैकशः सारयन्ति कृच्छ्राज्जंतोः पृष्ठमे न वदन्ति ॥ १४ ॥

आमके न पकनेसे द्रवीभूत हुये दूषित दोष भोजन युक्त कोष्ठको  
क्षुभित करके अनेक रूपसे अनेक बार मनुष्यके कष्टपूर्वक अतिसरण करते  
हैं ( अर्थात् दस्त आते हैं ) इसे छठा आमातिसार कहते हैं ( अर्थात् जब  
आम नहीं पकतीहै तब वह द्रवीभूत होकर अध कच्चे आहार सहित कोष्ठ-  
को क्षुभितकरके कष्टसहित अनेक दस्त आने लगते हैं ) ॥ १४ ॥

## आम और पक्व अतिसारके लक्षण ।

संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमैप्स्ववसिदति ।

पुरीषं भृशदुर्गंधं विच्छिन्नं चामसंज्ञकम् ॥ १५ ॥

एतान्येव तु लिङ्गानि विपरीतानि यस्य तु ।

लाघवं च मनुष्यस्य तस्यै पक्वं विनिर्दिशेत् ॥ १६ ॥

इन वातादि दोषोंसे मिलाहुआ मल यदि जलमें डालाजावे तो

( श्लो० १२ ) तैस्तैर्भावेः बंधुवित्तक्षयादिभिः शोचतः शोकं कुर्वतः ।

डूबजावे और अति दुर्गन्ध युक्त हो विच्छिन्न ( फटा हुआ मल ) हो तो जानना कि अतिसार अभी कच्चा है पका नहीं ॥ १५ ॥ और जिसके इनसे विपरीत लक्षण हों ( अर्थात् मल पानीमें डूबे नहीं दुर्गन्ध न हो फटा भी न हो ) और मनुष्यके शरीरमें हलकापन हो तो जानना चाहिये कि इसके अतिसार पकगया ॥ १६ ॥

## असाध्य अतिसारके लक्षण ।

सर्पिर्मंदोविसवाराम्बुतैलमाजं क्षीरं क्षौद्ररूपं सवेद्यत् ।

मंजिष्ठाभं मस्तुलंगोपमं वा विस्रं शीतं प्रेतगन्धं जनाभम् ॥ १७ ॥

राजीमद्वा चंद्रकैः संततं वा पूयप्रख्यं कर्दमाभं तथोष्णम् ।

हन्यादेतद्यत्प्रतीपं भवेच्च क्षीणं हन्युश्चोपसर्गाः प्रभूताः ॥ १८ ॥

घृत मेद वसाके समान या वसवारके जल तैल चकरीके दूध शहदके रूपका मल आवे या मंजीठ जैसे या मस्तककी मज्जाके तुल्य हो कच्चे मांस-सम गन्धवाला शीतल मुंदेकीसी गन्धवाला कज्जलसा काला दस्त हो ॥ १७ ॥ अथवा जिसमें कर्दवर्णकी रेखा हों जिसमें मोर पंखके चांदोंका सा वर्ण हो जो राध जैसा हो तथा कौनहसा, गरम, दस्त हो अथवा दोपसे विपरीत वर्णका हो ऐसा अतिसार तथा जिसमें उपद्रव विशेष हों वह क्षीण मनुष्यको मृत्युकारक होता है ॥ १८ ॥

असंवृतगुदं क्षीणं दुराध्मात्मुपद्रुतम् ।

गुदे पके गतोष्माणमतिसारकिणं त्यजेत् ॥ १९ ॥

जिसकी गुदा संकुचित न हो ( खुलीही रहे ) क्षीणता होजावे पेट बुरीतर-हसे अफर जाय उपद्रवोंमें युक्त हो गुदा पकजावे अपि नष्ट होजावे ऐसे अतिसारके रोगोंको असाध्य जानकर त्याग देना चाहिये ( इस व्याधिक उपद्रव ग्रंथोंतरसे छिमेते हैं ) ॥ १९ ॥

"शोफं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम् ।

छर्दिं हिक्कां च मूर्च्छां च दृष्ट्वाऽतीसारिणं त्यजेत् ॥ ( शत नि० सं० )

शोफ शूल ज्वर तृप्ता श्वास खांस अर्चन छर्दि हिक्का और मूर्च्छा ये अतिसारके उपद्रव होते हैं इनकी विशेषता देखकर असाध्य जान त्याग देना चाहिये ॥

( श्लो० १८ ) पद सर्पिर्मंदोविसवाराम्बुतैलमाजं । मनुष्य उपसर्ग विशेषताः ।

## अन्यभेदोंका अंतर्भाव ।

शरीरिणामतीसारः संभूतो येन केनचित् ।  
 दोषाणामेवं लिङ्गानि कदाचिन्नातिवर्तते ॥ २० ॥  
 स्नेहाजीर्णनिमित्तस्तु बहुशूलप्रवाहिकः ।  
 विषूचिकानिमित्तस्तु चान्योऽजीर्णनिमित्तजः ।  
 विषार्शःकृमिसंभूतो यथास्वं दोषलक्षणः ॥ २१ ॥

मनुष्योंके किसी कारणसे अतिसार हुआ हो परंतु वातादि दोषोंके लक्षण-  
 से पृथक् कभी नहीं होसकता ॥ २० ॥ जो स्नेहके न पचनेसे बहुत शूल  
 और प्रवाहिका युक्त हो या विषूचिका जन्य हो या अजीर्णसे हुआ हो या  
 विषसे अर्शकृमिसे किसीसे हो सबमें यथायोग्य दोषोंके लक्षण पायेही जातेहैं  
 ( इससे मुख्य भेद छह ही हैं ) ॥ २१ ॥

## अतिसारमें चिकित्साक्रमका निर्देश ।

आमपक्वक्रमं हित्वा नातिसारे क्रिया यतः ।  
 अतः सर्वातिसारास्तु ज्ञेयाः पक्वामलक्षणैः ॥ २२ ॥

आमातिसार है या पक्वातिसार इस क्रमको छोडकर इसकी चिकित्साकी  
 क्रिया नहीं बनसकती इससे सब अतिसारोंमें प्रथम लक्षणोंसे यह देखना  
 चाहिये कि यह आमातिसार है ( अपक्व है ) अथवा पक्वातिसार है ॥ २२ ॥

## पूर्वरूपमें चिकित्सा ।

तत्र लघ्नमेवादौ पूर्वरूपेषु देहिनाम् ।  
 ततः पाचनसंयुक्तयवाग्वादिक्रमो हितः ॥ २३ ॥  
 अथवा वामयित्वा तु शूलाध्माननिपीडितम् ।  
 पिप्पलीसैधवांभोभिल्वनाद्यैरुपाचरेत् ॥ २४ ॥

( श्लो० २३ ) यस्मात्सर्व एवातिसारा आदौ आमत्वं भजन्ते अतः आमशमनार्थं  
 आदौ लघ्नमेव । तत्र लघ्नमेवादौ इत्यत्र हितं लघ्नमेवादौ इति वा पाठांतरम् ।

कार्यं च वमनस्यांते प्रायशो लघुभोजनम् ।

पड्यूपयवागूषु पिप्पल्याद्येव योजयेत् ॥ २५ ॥

अनेन विधिना चामं यस्य वै नो पश्याम्यति ।

हरिद्रादि वचादि वा पिवेत्प्रातः स मानवः ॥ २६ ॥

पूर्वरूपकी अवस्थामें प्रायः सब अतिसार आम ( अपक ) होतेहैं इससे आदिमें ( पूर्वरूपमें ) मनुष्योंको लंघन कराना ही श्रेष्ठ है और फिर पाचन द्रव्योंके योगसे बनाई हुई यवागू आदि देना चाहिये यह क्रम हितकारक है ॥ २५ ॥ और जो पूर्वरूप आमअवस्थामें शूल और अफारकी पीडा हो तो उसे पीपल और सेंधवके जलसे वमन करावे और लंघन आदिसे उपचार करे ॥ २४ ॥ तथा वमनके पीछे प्रायः हलका भोजन करावे पड्यूप यवागू इनमें पिप्पल्यादिक पाचन द्रव्योंका योग करके भोजन करावे ॥ २५ ॥ और यदि इस विधिसे मनुष्यकी आम नहीं शांत हो ( नहीं पके ) तो उसे हरिद्रा-दिक अथवा वचादिकका काथ प्रातःकाल पीना चाहिये ॥ २६ ॥

## आमातिसारकी चिकित्सा ।

आमातिसारिणां कार्यं नादौ संग्रहणं नृणाम् ।

तेषां दोषा विवेक्षाः प्रार्क् जनयन्त्यामयानिमान् ॥ २७ ॥

ग्रीहपांड्वामयानाहमेहकुष्ठोदरज्वरान् ।

शोफगुल्मग्रहण्यशःशूलालसकटद्वहान् ॥ २८ ॥

आमातिसारको आरंभ ही में रोक देना उचित नहीं क्योंकि आरंभसे पहले दोष रुकजानेसे मनुष्योंके इतने रोग पैदा करदेतेहैं ॥ २७ ॥ ग्रीहा ( तिहरी घटना ) पांडु अफाग प्रमेह कुष्ठ उदररोग ज्वर शोथ गुल्म संग्रहणी वयामोर शूल अलस तथा रुदयग्रहण ( आमातिसारके रोक देनेमें इतने उपद्रव होजातेहैं ) ॥ २८ ॥

सशूलं बहुशः कृच्छ्रादिवधं यातिसार्यते ।

दोषान्तानिचिन्तान्वाथ पथ्याभिः संप्रवर्तयेत् ॥ २९ ॥

( अ० २५ ) २४ पुष्पाः कृच्छ्रादिमनारिण्यभिः सुखं लभन् । रुन्ते तु शूल-  
द्वहानिग्रहण्यशः । सः सुप्रवर्तयेत्पथ्याभिः ( अ० २६ ) ॥



योऽतिद्रवं प्रभूतं च पुरीषमतिसार्यते ।

तस्यादौ वमनं कुर्यात्पश्चालंघनपाचनम् ॥ ३० ॥

स्तोकं स्तोकं विबद्धं वा सशूलं योतिसार्यते ।

अभया पिप्पली कल्कैः सुखोष्णैस्तु विरेचयेत् ॥ ३१ ॥

आमे च लंघनं शस्तमादौ पाचनमेव वा ।

योगाश्चात्र प्रवक्ष्यन्ते त्वामातिसारनाशनाः ॥ ३२ ॥

जिसके शूलयुक्त कष्टसे बहुतवार थोड़ा थोड़ा दस्त आता हो अथवा दोष संचित हो रहे हों तो उसे हरीतकी देकर मलको प्रवर्त कर देना ( निकाल देना ) चाहिये ॥ २९ ॥ और जिसके अतिपतला बहुत दस्त आता हो उसको आदिमें वमन करावे फिर लंघन पाचनका उपयोग करे ॥ ३० ॥ और जिसके थोड़ा थोड़ा विबन्धयुक्त शूलसहित दस्त आवे उसे हरड़े और पीपलके निवाये कल्कसे विरेचन देवे ॥ ३१ ॥ आमातिसारके आदिमें लंघन श्रेष्ठ है अब आमातिसारके नाश करनेवाले योग वर्णन किये जाते हैं ३२

## आम पाचनके २० योग ।

देवदारुवचामुस्तानागरातिविषाभयाः ।

कलिंगातिविषाहिंगुसौवर्चलवचाभयाः ॥ ३३ ॥

अभया धान्यकं मुस्तं वालकं बिल्वमेव च ।

मुस्तं पर्पटकं शुंठी वचा सातिविषाभया ॥ ३४ ॥

अभयातिविषा हिंगु वचा सौवर्चलं तथा ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं वचा कटुकरोहिणी ॥ ३५ ॥

पाठा वत्सकबीजानि हरीतकि महौषधम् ।

मूर्वा निर्दहनी पाठा व्यूषणं गजपिप्पली ॥ ३६ ॥

सिद्धार्थका भद्रदारु शताह्वा कटुरोहिणी ।

एला सावरकं कुष्ठं हरिद्रे कौटजा यवा ॥ ३७ ॥

मेषशृंगी त्वगेले च कृमिघ्नं वृक्षकाणि च ।

वृक्षादनी वीरतरुर्वृहत्यौ द्वे सहे तथा ॥ ३८ ॥

एरंडत्वक् च तैंदूकी दाडिमी कौटर्जी शमी ।  
 पाठा तेजोवती मुस्तं पिप्पली कौटर्जं फलम् ॥ ३९ ॥  
 पटोलं दीप्यको विल्वं हरिद्रे देवदारु च ।  
 विडंगमभया पाठा शृंगवेरं वनं वचा ॥ ४० ॥  
 वचा वत्सकवीजानि सैधवं कटुरोहिणी ।  
 हिंगुवत्सकवीजानि वचा विल्वशलाटु च ॥ ४१ ॥  
 नागरातिविषे मुस्तं पिप्पल्यो वात्सकं फलम् ।  
 महौषधं प्रतिविषा मुस्तं चेत्यामपाचनाः ॥ ४२ ॥  
 प्रयोज्या विंशतियोगाः श्लोकाद्धविहितास्त्विमे ।  
 धान्याम्लोष्णांबुमर्द्यानां पिवेदन्यतमेन वा ॥ ४३ ॥  
 निष्क्राथान्वा पिवेदेषां सुखाण्णान्सार्धुसाधितान् ।  
 निखिलेनोपदिष्टोऽयं विधिः रामोपशांतये ॥ ४४ ॥

( १ ) देवदारु वन मोथा सोंठ अतीस हरड़ ( दूसरे ) इंद्रजव अतीस हींग  
 कालानोन वन और हरड़ ॥ ३३ ॥ ( तीसरे ) हरड़ धनियां मोथा नेत्रबाला  
 और विल्व ( चौथे ) मोथा पित्तपापडा सोंठ वन अतीस और हरड़ ॥ ३४ ॥  
 ( पांचवें ) हरड़ अतीस हींग वन कालानोन । ( छठे ) चित्रक पिप्पलीमूल  
 वन और कुटकी ॥ ३५ ॥ ( सातवां ) पाठ कुडुके बीज हरड़ और सोंठ ।  
 ( आठवां ) सर्वा चित्रक पाठा त्रिकटु और गजपीपल ॥ ३६ ॥ ( नववां )  
 सुपेद सरसों देवदारु सोंफ कुटकी ( दसवां ) इलायची सावरलोथ कूट दोनों  
 हलदी इंद्रजव ॥ ३७ ॥ ( ग्यारहवां ) भेदाभींगी तज दोनों इलायची  
 वायविडंग कुडुकी छाल । ( बारहवां ) वेंदा बीरतरु दोनों फटेली दोनों सहा  
 ( छुद्र महा महागहा ) ॥ ३८ ॥ ( तेरहवां ) जरंडकी छाल तैंदू अनारदाना  
 कुडुकी छाल जाट ( चौदहवां ) पाठ तेजवती मोथा पीपल इंद्रजव ॥ ३९ ॥  
 ( पंद्रहवां ) पटोल अजमोद चिन्न दोनों हलदी देवदारु ( सोलहवां ) पिडंग  
 हरड़ पाठ सोंठ नागरमोथा वन ॥ ४० ॥ ( सतरहवां ) वन इन्द्रजव मोथा  
 नमक और कुटकी ( अठारहवां ) हींग इंद्रजव वन छोटा विल्व ॥ ४१ ॥  
 ( इत्तीसवां ) सोंठ अतीस मोथा पीपल इंद्रजव ( बीसवां ) सोंठ अतीस  
 नागरमोथा ये आठके पचानेवाले हैं ॥ ४२ ॥ ये बीस प्रयोग आधे २ श्लोकमें  
 पहलवे हैं इनको सुनें धरके ( अर्थात् इनमेंसे किसी एक योगका नाम करके )

धान्याम्ल ( कांजी ) या गरम जल या मदिरा इनमेंसे किसीके संग लेवे ॥ ४३ ॥ अथवा इनमेंसे किसी एक योगके औषधोंका काथ विधिपूर्वक बनाकर निवाया २ पीवे यह विधि पूर्णतासे आमके पचाने तथा शांत करनेके लिये कही गई है ॥ ४४ ॥

## आम पकानेके अन्य प्रयोग ।

हरीतकीमतिविषां हिंगु सौवर्चलं वचा ।

पिबेत्सुखांबुना जंतुरामातीसारपीडितः ॥ ४५ ॥

पटोलं दीप्यकं बिल्वं वचा पिप्पलिनागरम् ।

मुस्तं कुष्ठं विडंगं च पिबेद्द्रोऽपि सुखांबुना ॥ ४६ ॥

शृंगवेरं गुडूचीं च पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ४७ ॥

लवणान्यथ पिप्पल्यो विडंगानि हरीतकी ।

चित्रकं शिशपा पाठा शार्ङ्गष्टा लवणानि च ॥ ४८ ॥

हिंगुवृक्षकबीजानि लवणानि च भागशः ।

हस्तिदंत्यश्चपिपल्यः कल्कावक्षसमौ स्मृतौ ॥ ४९ ॥

वचा गुडूचीकांडानि योगोऽयं परमो मतः ।

एते सुखांबुना योगा देयाः पंच सतां मताः ॥ ५० ॥

हरड़े अतीस हींग कालानोंन और वच इनको गरम जलके संग आमाति-सारसे पीडित मनुष्य पीवे ॥ ४५ ॥ पटोल दीप्यक ( अजवायन ) बिल्व वच पीपल सोंठ मोथा कूट विडंग इनको गरम जलसे पीवे ॥ ४६ ॥ तथा सोंठ और गिलोयको गरम जलसे पान करे ॥ ४७ ॥ तथा पांचों नमक पीपल विडंग और हरड़े अथवा चित्रक, शीशम पाठा करंज और पांचों नमक ॥ ४८ ॥ अथवा हींग इंद्रजव और इनके बराबर पांचों नमक अथवा हस्ति-दंती ( कोई मूली कहते हैं कोई कर्कटी ) पीपल इनका अक्ष २ भरका कल्क ॥ ४९ ॥ अथवा वच और गिलोयकी गंडल यह परम योग है ये ऊपर कहेहुए पांच योग हैं ( इनमेंसे कोईसा एक ) गरम जलके साथ देना चाहिये ॥ ५० ॥

पर्यस्युत्कार्थ्य मुस्तानां विंशतिं त्रिगुणांभसि ।

क्षीरावशिष्टं तत्पीतं हंत्यामं शूलमेवं च ॥ ५१ ॥

बीस नागरमोथे लेकर दूधमें पकावे दूधसे तिगुना पानी डाले दूधमात्र रहे पीवे यह आम और शूलको नष्ट करताहै [ कई ऐसाभी अर्थ करते हैं कि एक भाग ( एक तोला ) नागरमोथा इसमें २० तोले दूध और ६० तोले पानी डालकर उवाले पानी जलेके दूध रहजावे तब पीवे ] ॥ ५१ ॥

निवृत्तेष्वामशूलेषु यस्य न प्रगुणोऽनिलः ।

स्तोकं स्तोकं रुजामर्च्चं सशूलं यो नितिसंयते ।

संक्षारलवणैर्युक्तं मंदाग्निः प्रपिवेद्धृतम् ॥ ५२ ॥

क्षीरनागरचांगेरीकोलेदध्यम्लसाधितम् ।

सर्पिरच्छं पिवेद्वापि शूलातीसारशान्तये ॥ ५३ ॥

आम और शूलके निवृत्त होजानेपरभी यदि किसीके वायु गुणयुक्त ( टीक ) न हो किंतु थोड़ी थोड़ी मरोड़से और दरदसे दस्त आवे तो ऐसे मंदाग्निवाले रोगीको यवक्षार और लवण सहित घृत पीना चाहिये ॥ ५२ ॥ अथवा दूध सोंठ चांगेरी ( अम्ललोणी ) चर दही अम्ल ( अन्य खटाई फांजी आदि ) ( कई खट्टा दही ऐसा कहते हैं ) इनसे सिद्ध कियाहुआ स्वच्छ घृत पान करे यह भी शूल युक्त अतिसारकी शांति करता है ॥ ५३ ॥

दध्ना तैलघृतं पक्वं सव्योपजातिचित्रकैः ।

सवित्त्वपिप्पलीमूलदाडिमैर्वारुगन्धितैः ॥ ५४ ॥

निखिलो विधिरुक्तोऽयं वातश्लेष्मोपशान्तये ।

ताक्ष्णोष्णवर्ज्यमेनं तु विदध्यातिपत्तये भिषकैः ॥ ५५ ॥

दहीमें चिकटु जावित्री चित्रक वित्त्व पीपलामूल अनार और ककड़ी मिला कर तैल घृत पकावे ( और उपयोग करे ) ॥ ५४ ॥ यह जो ऊपर विधि कही गई है संपूर्ण वायु कफकी शांतिके लिये है इन्हींको तीक्ष्ण और गरमसे रहित करनेके पित्तजनितमें भी वैरा उपयोग करसकते हैं ॥ ५५ ॥

ययोक्तमुपवासांते यवागृथ प्रशंस्यते ।

बलयोरंशुमत्यां च श्वदंश्रावृहतापु च ॥ ५६ ॥

शतावर्या च संसिद्धाः मुशीता मधुसंयुताः ।

मुद्गादिषु च येषां स्युदीपने श्वसंस्कृताः ॥ ५७ ॥

यथायोग्य लंघनके पीछे यवागू देना श्रेष्ठ है यह यवागू दोनों खरेंदी और अंशुमती (शालपर्णी) गोखरू और कटेली तथा शतावरी इनमें सिद्ध करके शीतल करके शहद मिलाके देवे अथवा दीपन द्रव्योंसे संस्कार कियेहुए मूंगके यूष इत्यादिक देवे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

### पित्तातिसारमें पाचन ।

मृदुभिर्दीपनैस्तिक्तैर्द्रव्यैः स्यादामपाचनम् ।

हरिद्रातिविषा पाठा वत्सबीजरसांजनम् ॥ ५८ ॥

रसांजनं हरिद्रे द्वे बीजानि कुटजस्य च ।

पाठा गुडूची भूनिंबस्तथैव कटुरोहिणी ॥ ५९ ॥

एतैः श्लोकार्द्धनिर्दिष्टैः काथाः स्युः पित्तपाचनाः ॥ ६० ॥

मृदु (कोमल) दीपन तिक्त (कडुवे) द्रव्योंसे पित्तिक आमातिसार पक होता है जैसे हलदी अतीस पाठा इंद्रजव और रसोत ॥ ५८ ॥ तथा रसोत दोनो हलदी इंद्रजव तथा पाठा गिलोय चिरायता और कुटकी ॥ ५९ ॥ ये आधे २ श्लोकसे कहेहुए तीन काथ पित्तके पचानेवाले हैं ॥ ६० ॥

### पित्तातिसार नाशक योग ।

मुस्तं कुटजबीजानि भूनिंबं सरसांजनम् ।

दावीं दुरालभा विल्वं वालकं रक्तचंदनम् ॥ ६१ ॥

चंदनं वालकं मुस्तं भूनिंबं सदुरालभम् ।

मृणालं चंदनं रोध्रं नागरं नीलमुत्पलम् ॥ ६२ ॥

पाठा मुस्तं हरिद्रे द्वे पिप्पली कौटजं फलम् ।

फलत्वचं वत्सकस्य शृंगवेरं घृतं वचा ।

षडेतेऽभिहिता योगाः पित्तातीसारनाशनाः ॥ ६३ ॥

मोथा इंद्रजव चिरायता और रसोत । तथा दारुहलदी जवासा विल्व नेत्रवाला और लालचंदन ॥ ६१ ॥ तथा चंदन नेत्रवाला मोथा चिरायता जवासा । तथा कमल चंदन लोध सोंठ और नीलोफर ॥ ६२ ॥ तथा पाठा मोथा दोनों हलदी पीपल इंद्रजव । तथा कुडुके फल (इंद्रजव) और कुडुकी छाल सोंठ घृत वच, । ये (आधे २ श्लोकमें कहेहुए) छः योग पित्तके अतिसारको नाश करनेवाले हैं ॥ ६३ ॥

## आमयुक्त पित्तातिसारका यत्न ।

विल्वशक्रयवांभोदवालकातिविषाकृतः ।

कैपायो हंत्यतीसारं सौमं पित्तसमुद्भवम् ॥ ६४ ॥

मधुकोत्पलविल्वाभ्रद्वीविरोशीरनागैः ।

कृतः काथो मधुयुतः पित्तातीसारनाशनः ॥ ६५ ॥

यदि आमसहित पित्तातीसार हो तो विल्व इंद्रजव नागरमोथा नेत्र-  
वाला और अतीस इनका काथ पीनेसे नष्ट होजाता है ॥ ६४ ॥ तथा  
मुलेठी कमल विल्व आम्र ( आमकी गुठली ) नेत्रवाला खस और सोंठ इनका  
काथ बना शहद मिलाकर पीना पित्तके अतिसारको नष्ट करताहै ॥ ६५ ॥

## पक्व अतिसारपर स्तंभन ।

येदा पैकोप्यतीसारः संस्त्येवं मुहुर्मुहुः ।

ग्रहण्या मार्दवाजंतोस्तत्र संस्तंभनं हितम् ॥ ६६ ॥

समंगा धातकीपुष्पं मंजिष्ठा लोध्रमुस्तकम् ।

शाल्मली वेष्टकं रोध्रं वृक्षदाडिमयोस्त्वचौ ॥ ६७ ॥

आम्रास्थिमध्यं लोध्रं च विल्वमध्यं प्रियंगवः ।

मधुकं शृंगवेरं च दीर्घवृत्तत्वगेव च ॥ ६८ ॥

चत्वार एते योगाः स्युः पक्वातीसारनाशनाः ।

उक्ता य उपयोज्यास्ते सर्वोद्रास्तंडुलांबुना ॥ ६९ ॥

मौस्तं कषायमेकं वा पेयं मधुसमायुतम् ॥ ७० ॥

और पक्वाहुवा अतिसार भी ग्रहणीके नरन पड़गानेसे अनुप्योक सारंसार  
जाती रहे तब रंभन घामना हित फलरक है ॥ ६६ ॥ ( इस अवस्थामें  
ये रंभन प्रयोग घाममें लावे ) जैसे लजपंती पापके फल भेजीठ लोध्र  
और नागरमोथा तथा भेनलकी छाल रोध्र मुलेठी छाल और अदारीकी  
छाल ॥ ६७ ॥ तथा आमकी गुठली योग दिल्व ( नेत्रगिरी ) और  
प्रियंगु तथा मुलेठी सोंठ और अदारीकी छाल ॥ ६८ ॥ ये उपयोग

( आधे २ श्लोकोंसे कहे हुए ) चारयोग पके हुए अतिसारको नष्ट करते हैं ये उक्तप्रयोग शहद और चावलोंके पानीके संग देने चाहियें ॥ ६९ ॥ अथवा केवल अकेले नागरमोथेका काथही शहद मिलाकर पीना उचित है ॥ ७० ॥

( वक्तव्य ) हमारे शारीरिक स्थानके आरंभमें दूसरे पृष्ठपर जो अंत्र प्रदर्शक चित्र है उसमें आमाशयसे नीचे जहां ५ का अंक दिया है यह ग्रहणी है इसका विशेष वर्णन अगाड़ी संग्रहणी रोगके विषयमें होगा ॥

लोध्रांवष्टाप्रियङ्गवादीन्गणानेव प्रयोजयेत् ।

पद्मां समंगां मधुकं बिल्वजंबूशलाटु वा ॥ ७१ ॥

पिबेत्तंडुलतोयेन सक्षौद्रमगदंकरम् ।

कच्छुरामूलककुं वा उदुंबरफलोपमम् ॥ ७२ ॥

पयस्या चंदनं पद्मा सिता मुस्ताब्जकेशरम् ।

पक्वांतिसारं योगोऽयं जयेत्पीतः सशोणितम् ॥ ७३ ॥

लोध्रादि अंवष्टादि और प्रियंग्वादि गणोंको भी उपयोग करे अथवा भारंगी लज्जालू मुलेठी बिल्व और जामुनके कच्चे फल ॥ ७१ ॥ इनको चावलोंके पानीके संग शहद मिलाके पीनेसे अतिसारके रोगसे निवृत्त होजाते हैं अथवा कच्छुरा ( कंकतिका अर्थात् नागबला ) के मूलका गूलरके समान कल्क करके ( शहद मिला चावलके पानीसे लेना ) ॥ ७२ ॥ तथा पयस्या ( क्षीरकाकोली या अर्कपुष्पी ) चंदन पद्मा ( भारंगी ) मिश्री नागरमोथा और कमलकी केशर इनको पीवे यह प्रयोग रुधिरयुक्त पके अतिसारको नष्ट करता है ( अर्थात् पकेहुए अतिसारको और रक्तातिसारको दूरकरदेताहै ) ॥ ७३ ॥

निराम अतिसारका यत्न ।

निरामरूपं शूलार्तं लंघनाद्यैश्च कर्षितम् ।

नैरं रूक्षमवेक्ष्याग्निं संक्षारं पाययेद्घृतम् ॥ ७४ ॥

बलावृहत्यंशुमतीकच्छुरामूलसाधितम् ।

मधुक्षितं समधुकं पिबेच्छूलैरभिदुतः ॥ ७५ ॥

( श्लो० ७५ ) मधुक्षितं मधुयुक्तम् । समधुकं सयथीमधुकम् । कच्छुरा शूकशिबी । कंकतिका नागबला शठी च, अत्र नागबला ग्राह्या ।



दावीं विल्वकणाद्राक्षा कटुकैर्द्रव्यैर्वृतम् ।

साधितं हन्त्यतीसारं वातपित्तकफात्मकम् ॥ ७६ ॥

पयो घृतं च मधु च पिवेच्छूलैरभिद्रुतः ।

सिताजमोदकटुंग मधुकरवर्णितम् ॥ ७७ ॥

जिसके आम न हो और शूल हो जो लंघनादिकसे कृश हो गया हो जो मनुष्य रुक्ष हो उसकी जठराग्निको विचारकर क्षार युक्त घृत पिलाना चाहिये ॥ ७६ ॥ तथा खरेंटी बड़ी कटेली और अंशुमती ( शालपर्णी ) कई तेजोवती कहते हैं कंकतिकाकी जड़ इनसे साधन किया हुआ घृत मुलेठी और शदद मिलाकर शूल सहित अतिसार पीडित रोगी पीवे ॥ ७५ ॥ तथा दारुहलदी बेलगिरी पीपल मुनका कुटकी इन्द्रजव इनसे सिद्ध किया हुआ घृत वातज पित्तज तथा कफज तीनों प्रकारके अतिसारको नष्ट करता है ॥ ७६ ॥ अथवा शूलसे पीडित मनुष्य मिथी अजमोदा श्योनाक और मुलेठी इनके चूर्णसे युक्त दूध घृत और शददको पान करे ॥ ७७ ॥

### पुटपाकका निर्देश ।

अवेदनं सुसंपक्वं दीप्ताग्निः सुचिरोत्थितम् ।

नानावर्णमतीसारं पुटपाकेरुपाचरेत् ॥ ७८ ॥

यदि दीप्ताग्नि मनुष्यके वेदना रहित पका हुआ बहुत दिनका अनेक वर्णका अतिसार हो तो उसे पुटपाकोंसे उपचार करे ॥ ७८ ॥

त्वक्पिंडं दीर्घवृत्तस्य पद्मकेसरसंयुतम् ।

काश्मरीपद्मपत्रैश्चावेष्ट्य सृत्रेण तं दृढम् ॥ ७९ ॥

मृदावल्लिप्तं सुकृतमेगारेष्ववकलयेत् ।

स्त्रिन्नमुद्धृत्य निःपीड्य रसमादाय तं ततः ।

शीतं मधुयुतं कृत्वा पार्ययेत्तदेवमये ॥ ८० ॥

जगलकी छालमें कमल पत्रों मिश्रकर ( पुटकर ) पिंडा बनावे किन्तु कमल के भागीक और कमलके पत्रों को छोड़कर हट मतने दीप देने ॥ ७९ ॥ कपूरमें मिट्टी लपेट दे और ऊपरों तन्तु अंगारोंमें ( मरिचकी तरत ) पकाले शीत पक मानेकर निशानकर मिट्टी छाला निगोड़कर उसका रस निशान

लेवे उसे ठंडा करके शहद मिलाकर पिलावे ( इसको उदरके विकार अतिसार रोग में देना श्रेष्ठ है ) ॥ ८० ॥

जीवंतीमेषशृंग्यादिष्वेवं<sup>३</sup> द्रव्येषु साधयेत् ॥ ८१ ॥

तित्तिरं लुंचितं सम्यङ्निःकृष्टां त्रुं पूरयेत् ।

न्यग्रोधादित्वचां कल्कैः पूर्ववच्चोवकल्पयेत् ॥ ८२ ॥

रसमादाय तस्यार्थं सुस्विन्नस्य समाक्षिकम् ।

शर्करोपहितं शीतं पाययेच्चोदरामये ॥ ८३ ॥

जीवंती और मेढासींगी आदिका भी इसी उपरोक्त प्रकारसे पुटपाक बनाकर उपयोग करे ॥ ८१ ॥ तथा तीतरके पंख सब उखाड़कर उसकी आंति निकालकर वटादिक की छालके कल्कसे भरदे फिर पहलेकी भाँति पत्रादि लपेटकर भरता बनाले ॥ ८२ ॥ जब वह पकजावे तब उसे निचोड़कर रस निकालले फिर उसे ठंडा करके खांड मिलाके और शहद मिलाके उदररोग ( अतिसार ) वालेको पिलादेवे ॥ ८३ ॥

लोध्रचंदनयष्ट्याह्वादीपाठासितोत्पलान् ।

तंडुलोदकसंपिष्टान्दीर्घवृंतत्वगन्वितान् ॥ ८४ ॥

पूर्ववत्कूलितात्तस्माद्रसमादाय शीतलम् ।

मध्वाक्तं पाययेच्चैतत्कफपित्तोदरामये ॥ ८५ ॥

एवं प्ररोहैः कुर्वीत वटादीनां विधानवित् ।

पुटपाकान्तर्यां योगं जांगलोपहिताञ्छुभान् ॥ ८६ ॥

लोध्र चंदन मुलेठी दारुहलदी पाठा मुपेदकमल इनमें अरलूकी छाल मिलाकर चावलोंके पानीसे पीसकर पहलेकी भाँति पुटपाक पकाकर रस निचोड़कर शीतल करके शहद मिलाकर कफपित्तके उदरविकार ( अतिसार ) में पिलावे ( कई 'सितोत्पलान्' इसका अर्थ मिश्री और कमल ऐसा करते हैं ) ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ इसी प्रकारसे वट आदिकी कोंपलों ( कोमल पत्रों ) का भी विधिज्ञ वैद्य यथा योग्य जंगली जीवोंके मांस युक्तकर पुटपाक करलेवे ॥ ८६ ॥

बहुश्लेष्मं सरक्तं च मंदवातं चिरोत्थितम् ।

कोटजं फाणितं चापि हंत्यतीसारमोजेसा ॥ ८७ ॥

बहुत कफ और रक्त सहित बहुत दिनका ऐसा अतिसार हो तथा वायु-मंद हो ( अधोवायु मंद हो ) तो उसे कुड़ेका फाणित अपने पराक्रमसे दूर-कर देता है [ यह इस तरह बनता है कि, कुड़ेकी छालका रस निचोड़कर उसे इतना पकावे कि वह राख जैसा गाढ़ा होजावे ] ॥ ८७ ॥

अंवष्टादिमधुसंयुतां पिप्पल्यादिसमन्विताम् ।

पृश्निपर्णीबलाविल्वबालकोत्पलधान्यकैः ।

सनांगैः पिबेत्पेर्यां साधितामुदरामयी ॥ ८८ ॥

अरलुत्वकिप्रयंगुं च मधुकं दाडिमाङ्कुरान् ।

आवाप्य पिष्ट्वा दधि तु यवाणं साधयेद्भवाम् ॥ ८९ ॥

एषा सर्वानतीसारान्हन्ति पक्वानसंशयम् ॥ ९० ॥

पृश्निपर्णी खरेंटी बिल्व नेत्रवाला कमल और धनियां तथा सोंठ इनसे साधन करी हुई यवाणको अंवष्टादिगण शहद और पिप्पली आदि मिलाकर उदररोगी ( अतिसार वाले ) मनुष्यको पीनी चाहिये ॥ ८८ ॥ अथवा अरलुपी छाल प्रियंगु मुलेठी और अनारकी कोमलपत्ती दही डालकर पतली यवाण बनावे ॥ ८९ ॥ यह यवाण सब प्रकारके पके हुए अतिसारको निःसंदेह नाश करती है ॥ ९० ॥

रसांजनं सातिविषं त्वग्बीजं कोटजं तथा ।

धातकीं नागरं चैव पाययेत्तंडुलांबुना ।

सशूलं रक्तजं हन्ति योगो मधुसमन्वितः ॥ ९१ ॥

मधुकं बिल्वपेदयश्च शर्करा मधुसंयुताः ।

अतीसारं निहन्त्युश्च शालिपाटिकयोः कणाः ॥ ९२ ॥

तद्रल्लीदं मधुयुतं बदरीमूलमेव तु ॥ ९३ ॥

बदर्यर्जुनजम्बाप्रशल्लकीवेतसत्वचः ।

शर्कराक्षौद्रसंयुक्ताः पीता घृत्युदरामयम् ॥ ९४ ॥

एतैरेव यवागूश्च मंडान्यूषांश्च कारयेत् ।

पानीयानि च तृष्णासु द्रव्येष्वेतेषु बुद्धिमान् ॥ ९५ ॥

रसोत, अतीस, कुड़ाकी छाल और बीज, धायके फूल और सोंठ इनको चावलोंके पानीके साथ शहद मिलाकर पान करे तो यह योग शूलसहित रक्तज अतीसारको नष्ट करताहै ॥ ९१ ॥ मुलेठी बेलगिरी इनमें खांड शहद मिलाकर चाटना तथा शालि और षष्टिक चावलोंके कण ( कणी ) को खांड और शहद मिलाकर चाटना अतिसारको नष्ट करताहै ॥ ९२ ॥ इसी भाँत बेरीकी जड़को शहदके संग चाटना श्रेष्ठहै ॥ ९३ ॥ तथा बेरी कुहा जामुन आँव शल्लकी और वेतस इनकी छाल खांड और शहद मिलाके पीना उदर व्याधि ( अतिसार ) को नाश करताहै ॥ ९४ ॥ तथा इन्हीं बदरी आदिकी त्वचाओंसे यवागू मंड ( माँड ) यां यूष बनासकते हैं तथा तृषा अधिक होनेमें बुद्धिमान वैद्य इन्हीं द्रव्योंसे पीनेके लिये पानी बनालेवे ॥ ९५ ॥

कृतं शाल्मलिर्वृतेषु कषायं हिमसंज्ञकम् ।

निशापर्युषितं पेयं सक्षौद्रं मधुकान्वितम् ॥ ९६ ॥

तथा शेमलकी डालियोंका शीत कषाय बनाकर रातभर भिगोया हुवा शहद और मुलेठी मिलाकर पीवे (यह भी तृषायुक्त अतिसारमें श्रेष्ठहै) ॥ ९६ ॥

अतिसारमें दुग्धकी व्यवस्था ।

विबद्धवातविट्शूलपरीतः सप्रवाहिकः ।

सरक्तपित्तश्च पर्यः पिबेत्तृष्णासमन्वितः ॥ ९७ ॥

यथामृतं तथा क्षीरमतीसारेषु पूजितम् ।

चिरोत्थितेषु तत्पेयमपां भौगैस्त्रिभिः शृतम् ।

दोषशेषं हरेत्तद्धि तस्मात्पथ्यतमं शृतम् ॥ ९८ ॥

जिस के वायु ( अपान वायु ) और दस्त बंद हो ( थोड़ा थोड़ा दस्त आवे ) और शूल तथा प्रवाहिका ( मरोड़े ) हों तथा रक्त पित्त हो या तृषा हो ऐसी अवस्थामें अतिसारके रोगीको दूध पीना उचितहै ॥ ९७ ॥ बहुत

( श्लो० ९५ ) एतेषु द्रव्येषु च तृष्णासु बुद्धिमान् पानीयानि पातुं योग्यानि कारयेदित्यन्वयः ।

दिनके पुराने अतिसारोंमें दूध अमृतके समान होता है यह इस भाँति पीना चाहिये कि, तीन भाग पानी और एक भाग दूध इसे मूँच औठाकर पीवे यह शेष रहे हुये दोपको निकाल देता है या नष्ट करदेता है इस लिये यह परम पथ्य कहा है ॥ ९८ ॥

## अतिसारकी चिकित्सामें अन्य उपदेश ।

हितः स्नेहविरेको वा वस्तयः पिच्छिलाश्वये ।

पिच्छिलास्वरसे सिद्धं हितं च घृतमुच्यते ॥ ९९ ॥

अथवा इस अवस्थामें स्नेह ( एरंडके तैलादि ) का विरेचन देना हित है अथवा पिच्छिलवस्ति देना भी हित है अथवा पिच्छिल द्रव्यों ( आलू शमल आदि ) के स्वरसमें पकायाहुआ घृत हित है ॥ ९९ ॥

शक्रेता यैस्तु संसृष्टमतिर्सायेत शोणितम् ।

प्राक्पश्चाद्वा पुरीषस्य सरुक्स परिकर्तिकः ॥ १०० ॥

क्षीरिशुंगाभृतं सर्पिः पिवेत्संक्षौद्रशर्करम् ।

दार्वात्त्वक्पिप्पलीशुंठीलाक्षाशक्यवैधृतम् ॥ १ ॥

संयुतं भेद्रोहिण्या पैकं पेयादिर्मिश्रितम् ।

विदोषमप्येतीसारं पीतं हंति सुद्वारुणम् ॥ २ ॥

जिसके दस्तमें मिलाहुआ या दस्तसे पहले या पीले दस्तमें और फतरनी भी पड़नासे रुधिर जाये इसे परिकर्तिका ( फाटनी ) कहते हैं ॥ १०० ॥ इसमें चाहिये कि, क्षीरिशुंगा ( चट आदिका काँपलोंमें ) मिष्ट किम्वदुष घृतमें शहद खात मिलाके पीवे अथवा दानहर्दद वज पीपल खोंट लान्ग और इन्द्रजव और पट्टकी इनमें मिष्ट किया घृत पेया आदिमें मिलाकर पीये इसमें पीनेसे दारुण सज्जिवातज अतिसार भी नष्ट होजाना है ॥ १ ॥ २ ॥

( श्लो- ९९ ) पिच्छिलाश्वये सिद्धं द्रव्यं विविधमस्ति सिद्धमिति वातः पिच्छिलाश्वयात् नष्टो सिद्धं पुरीषमप्यः । पिच्छिला अमृतमानसजी नमृगयः इति ( वि- ६० )

( श्लो- १ ) भयानकगर्द भविष्ये शोणितं विषेयम् ।

गौरवे वमनं पथ्यं यस्य स्यात्प्रबलः कफः ।

ज्वरे दाहे सविद्धे मारुताद्रक्तपित्तवत् ॥ ३ ॥

जिसके कफ अति प्रबलहो गुरुता हो ज्वर दाह और विडूबन्ध हो ( खुलकर दस्त नहीं आते हों ) तो उसे वातज अधोगामी रक्तपित्तकी भाँति वमन कराना उचित है (वायुके अधोगामी रक्तपित्तमें वमन करानेका वर्णन अगाड़ी रक्तपित्तके प्रतिषेधमें आवेगा ) ॥ ३ ॥

संपक्के बहुदोषे च विबन्धे मूत्रशोधनैः ।

कार्यमास्थापनं क्षिप्रं तथा चैवानुवासनम् ॥ ४ ॥

प्रवाहेण गुदभ्रंशे मूत्राघाते कटिग्रहे ।

मधुराम्लशृतं तैलं सर्पिर्वाप्यनुवासनम् ॥ ५ ॥

गुदपाकस्तु पित्तेन यस्य स्यादहिताग्निः ।

तत्र पित्तहराः सेकास्तत्सिद्धाश्चानुवासनाः ॥ ६ ॥

बहुत दोष वाले विबन्ध युक्त पके अतिसारमें मूत्र शोधन ( गोक्षुरादि ) द्रव्योंसे शीघ्र ही आस्थापनवस्ति करनी चाहिये तथा अनुवासनवस्ति करनी ॥ ४ ॥ किनछनेसे गुदा बाहर निकल आवे मूत्र रुकजावे कमर अकड़ जावे ऐसी अवस्थामें मधुर द्रव्यों ( काकोल्यादि ) तथा अम्ल ( बीज-पूरादि ) द्रव्योंसे सिद्ध किये तैल अथवा घृतसे अनुवासनवस्ति करे ॥ ५ ॥ और जो कि, अहित भोजन करनेवालेके पित्तसे गुदा पकजावे तो वहाँ पित्तनाशक द्रव्योंका सेचन करना और उन्हींसे सिद्ध किये स्नेहसे अनु-वासन करना ॥ ६ ॥

दधिमण्डसुराबिल्वसिद्धं तैलं समारुते ।

भोजने च हितं क्षीरं कच्छुरामूलसाधितम् ॥ ७ ॥

अल्पाल्पं बहुशो रक्तं सरुग्ग्य उपवेश्यते ।

यदा वायुर्विबद्धश्च पिच्छावस्तिस्तदा हितः ॥ ८ ॥

प्रायेण गुददौर्बल्यं दीर्घकालातिसारिणाम् ।

भवेत्तस्माद्धितं तेषां गुदे तैलावचारणम् ॥ ९ ॥

( श्लो० ३ ) मारुताद्रक्तपित्तवदिति मारुतोद्भूते अधोगमनशीले रक्तपित्ते यद्दमन-हितं तद्ददत्रापि वमनं पथ्यमित्यर्थः ।

यदि वायुसहित अतिसार हो तो दहीका जल मदिरा और विल्व इनसे सिद्ध किये तैलसे अनुवासन करे । और कच्छुराकी जड़से पकाया दूध भोजनमें देवे ॥ ७ ॥ और जो थोड़ा २ बहुतवार रक्त आता हो और अपान वायु बंदहो तो वहां पिच्छिलवस्ति देना हितहोता है ॥ ८ ॥ जिसके बहुत दिनोंके अतिसारसे गुदा दुर्बल पड़गई हो उनकी गुदामें तैलका अवचारण करना चाहिये (अर्थात् तैलके फोहरखन चाहियें) ॥ ९ ॥

## अतिसारमें आहार ।

कपित्थशाल्मलीफलजीवनकार्पासिदाडिमाः ।

यूथिकाकच्छुरा शैलुः शणश्चूचूः सदाधिकाः ॥ १० ॥

शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कंटकारिका ।

बलाश्वदंष्ट्राविल्वानि पाठानागरधान्यकम् ॥ ११ ॥

ऐष आहारसंयोगो हितः सर्वातिसारिणाम् ।

तिलकल्को हितश्चात्र मौद्गो मुद्गरसस्तथा ॥ १२ ॥

कैय शैमल फली ( भारंगी ) बनकीकपासकी फली यूथिका ( पाठा ) ( कई यहां 'पूथिका' पाठमानकर पोईका साग कहते हैं ) कच्छुरा ( यहीपर शिथी समझना ) शैलु ( लेंसुवा ) शण फी डोड़ी तथा चुन्चूका शाक इन्हें दहीके संग या दहीमें पकाके देवे ॥ १० ॥ शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीकटेली छोटीकटेली खैरटी गोखरू विल्व पाठा मौंट और धनियाँ इनको आहारके योगमें देना सब प्रकारके अतिसारवालोंको हितकारक है तथा तिलका कन्क मंगका फल्क और मंगोंका रस ( जूस ) ये भी यहाँ हितकारक हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

## रक्तातिसारकी उत्पत्ति ।

पित्तातिसारी यो मर्त्यः पित्तलानि निपेक्षते ।

पित्तं प्रदुष्टं तस्याशु रक्तातिसारमावहेत् ॥

ज्वरं शूलं तृषां दाहं गुदपाकं च दारुणम् ॥ १३ ॥

पित्तातिसारपाता महाप रिक्तकारक पन्तु भोजन को नो मीठ दसका

( १३०-१३१-१३२ ) कभी कहीं । पूथिका पाठा । कच्छुरा मुद्गरिणी ।



पित्त अधिक दूषित होकर रक्तातिसार उत्पन्न करदेता है तथा ज्वर शूल  
तृषा दाह और दारुण गुदपाक उत्पन्न करदेता है ॥ १३ ॥

( वक्तव्य ) कभी पित्तातिसारके बिनाभी अति पित्तकारक आहार विहारसे  
पित्त वा रक्त कुपित होकर रक्तातिसार होजाता है ॥

## रक्तातिसारका यत्न ।

यो रक्तं शकृतः पूर्व पश्चाद्वा प्रतिसार्यते ।

संप्लवैर्वटादीनां संसर्पिः साधितं पयः ॥ १४ ॥

पिबेत्सर्शकराक्षौद्रमथवाप्यभिमथ्य तत् ।

नवनीतमथो लिह्यात्तक्रं चानु पिबेत्ततः ॥ १५ ॥

जैसेके दस्तसे पहले या पीछे रुधिर आताहो वह वट आदिके कोमल  
पत्तोंसे सिद्ध कियाहुवा घृत युक्त दूध खांड और शहद मिलाकर पीवे अथवा  
उस दूधको मथकर मक्खन निकालले और उस मक्खनको ( खांड शहद  
मिलाके ) चाटे और ऊपरसे वही छाँछ पीलेवे ॥ १४ ॥ १५ ॥

पियालशाल्मलीप्लक्षशल्लकीतिनिशत्वचः ।

क्षीरे विमृदिताः पीताः संक्षौद्रा रक्तनाशनाः ॥ १६ ॥

मधुकं शर्करां लोध्रं पयस्यामथ सारिवाम् ।

पिबेच्छागेन पयसा संक्षौद्रां रक्तनाशिनीम् ॥ १७ ॥

मंजिष्ठां सारिवां लोध्रं पद्मकं कुमुदोत्पलम् ।

पिबेत्पात्रं च दुग्धेन छागेनासृक्प्रशांतये ॥ १८ ॥

चिरोंजी शेमल पिलखन शल्लकी और तिनिश इनकी छाल दूधमें मसलकर  
शहद मिलाकर पीनेसे रक्तातिसार बंद होजाताहै ॥ १६ ॥ अथवा मुलेठी  
खांड लोध्र क्षीरकाकोली और सारिवा इनको बकरीके दूधसे शहद युक्त  
पीवे ये रक्तातिसारको नष्ट करती है ॥ १७ ॥ अथवा मंजीठ सारिवा लोध्र  
पद्माख नीलोफर कमल और कमलफल ( कमलगट्टे ) इनका कल्क बकरीके  
दूधसे पीवे तो रक्तातिसार शांत हो ॥ १८ ॥

( श्लो० १६ । १७ ) पयस्या अर्कपुष्पी इति दल्लनः । अन्ये क्षीरकाकोलीमाहुः ।

( श्लो० १८ ) पात्रं पद्मा भाङ्गी तद्भवं च अथवा पद्मबीजम् ।

शर्करोत्पललोथ्राणि समंगा मधुकं तिलाः ।

तिला मोचरसो लोथ्रं तथैव मधुकोत्पलम् ॥ १९ ॥

कच्छुरा तिलकल्कश्च योगोश्चत्वार एव तु ।

आजेन पर्यसा पेयाः सरक्ते मधुसंयुताः ॥ २० ॥

( १ ) खांड कमल लोध लज्जाट्ट मुलेठी और तिल ( २ ) तिल मोचरस और लोध ( ३ ) मुलेठी और कमल ( ४ ) कच्छुरा और तिलका कल्क ये चार योग शब्द मिलाकर चकरीक दूधके संग लेनेसे रक्तातिसारमें लाभ होता है ॥ १९ ॥ २० ॥

द्रवे सरक्ते स्रवति बालविल्वं सफाणितम् ।

सक्षौद्रतैलं प्रागेव लिह्यादाशु हितं हि तत् ॥ २१ ॥

कोशकारं घृते भृष्टं लाजचूर्णं सिता मधु ।

सञ्जलं रक्तपित्तोत्थं लीढं हन्त्युदरामयम् ॥ २२ ॥

विल्वमध्यं समधुकं शर्कराक्षौद्रसंयुतम् ।

तंडुलांबुयुतो योगः पित्तरक्तोत्थितं जयेत् ॥ २३ ॥

गुदपाके च ये उक्तास्तेत्रापि विधयः स्मृताः ।

रुजायां वा प्रज्ञाम्यंत्यां पिच्छावस्तिहितो भवेत् ॥ २४ ॥

रुधिरमहित पतले दस्त आते हों तो कच्चाविल्व फाणित ( राव ) शब्द और तैल इन्हें पहले ( भोजनसे पहले ) चाटना शीघ्रही हितकारक होता है ॥ २१ ॥ अथवा कोशकार ( एक प्रकारकी ईख ) कई ( रेशमका फोया बताने है ) घृतमें भूनकर भानवी खांडका चूर्ण मिथी शब्द मिलाकर चाटना शल्युक रक्तपित्तसे रून आनेके अतिसारको बंद करता है ॥ २२ ॥ अथवा पेलगिरी मुलेठी खांड शब्द इनको मिलाकर चापलोंके पानीसे लेवे यह योग पित्तरक्तसे टपने रक्तातिसारको बंद करता है ॥ २३ ॥ और गुदपाकमें जो लो पिपि कही है वे भी यहाँपर करने हितकारक होती हैं और रोगके शान्त होने पीछे पिच्छावस्ति देनी हितकारक होती है ॥ २४ ॥

( श्लो० २१ ) स्रवति भोजनान्तरम् ( इति द्रव्यम् )

( श्लो० २२ ) कोशकारः शुभेदा ( इति द्रव्यम् )

( श्लो० २४ ) अथ चापलेन रुजायां अथपित्तोत्थामपि पिच्छावस्तिद्वेष इति ।

रक्तविड्दोषबहुलं दीप्ताग्निर्योऽतिसार्यते ।

विडंगत्रिफलाकृष्णाकषायैस्तं विरेचयेत् ॥ २५ ॥

अथवैरंडसिद्धेन पयसा केवलेन वा ।

यवांगूर्वितरेत्तस्य वातघ्नैर्दीपनैः कृताः ॥ २६ ॥

जो मनुष्य दीप्ताग्निवाला हो और उसके रक्त दस्त बहुत दोषके आवें उसे विडंग त्रिफला और पीपलके काथमें विरेचन देवे ॥ २५ ॥ अथवा एरंडसे सिद्ध किये केवल दूधसे विरेचन देवे और उसे वायु नाशक दीपन द्रव्योंसे सिद्ध करीदुई यवागू खाने को दे ॥ २६ ॥

( वक्तव्य ) अरंडसे सिद्ध कियेहुए पर डल्लन मिश्रजी तो एरंडकी जड़से सिद्ध किया दुग्ध लिखते हैं ( और कई अरंड तैलसे औटाया हुआ दूध मानते हैं ) ॥

### मलक्षीणका यत्न ।

दीप्ताग्निनिःपुरीषो यः सार्यते फेनिलं शकृत् ।

सं पिबेत्फाणितं शुंठी दधि तैलं पयो घृतम् ॥ २७ ॥

स्विन्नानि गुडतैलाभ्यां भक्षयेद्दराणि च ।

सुस्विन्नान्पिष्टवद्वापि समं बिल्वशलाटुभिः ।

दध्नापयुज्यं कुल्माषाञ्छेतामनुपिबेत्सुराम् ॥ २८ ॥

शशमांसं सरुधिरं समंगां सघृतं दधि ।

खादेद्विपाच्य सेवेत् मृद्वन्नं शकृतः क्षये ॥ २९ ॥

( श्लो० २५ ) रक्तविड्विविद्धपुरीषदोषः बहुलमिति दोषशब्दोऽयं पुरीषवचनः ( इति नि० सं० )

( श्लो० २६ ) अथवैरंडसिद्धेनेति । एरंडमूलसिद्धेन केवलेन क्षीरेण विरेचयेदिति डल्लनः । अन्येत्वेरंडतैलसिद्धेनेत्याहुः । तैलस्य विरेचनत्वात् । अथ वैरंडसिद्धेन पयसा केवलेन वा इत्यत्र अथवैरंडतैलेन पयसा केवलेन वा इति पाठान्तरमाहुः । तत्र योगद्वयम् ।

( श्लो० २८ ) वदरः पुंल्लिङ्गः कोलवृक्षे । वदरं नपुंसकं कार्पासबीजे ( इति श० स्तो० ) गुडतैलाभ्यां स्विन्नानि तानि भक्षयेत् अथवा स्विन्नानि तानि गुडतैलाभ्यां भक्षयेत् कुल्माषान् यवपिष्टमयान् श्वेता सुरा पैष्टी कुल्माषान् दध्ना सहोपयुज्य पैष्टीं सु पिबेदित्यर्थः ( इति नि० सं० )

संस्कृतो यमके माषयवकोलरसः शुभः ।

भोजनार्थं च दार्तव्यो दधिदार्डिमसाधितः ॥ ३० ॥

विडं विल्वशलाहूनि नागरं चाम्लपेपितम् ।

दध्नः सरश्च यमके भृष्टो वर्चः क्षये हितः ॥ ३१ ॥

संशूलं क्षीणवर्चो यो दीप्ताग्निरतिसौर्यते ।

सं पि वेदीपने युक्तं संपिः संग्राहकैः सह ॥ ३२ ॥

जिस मनुष्य का मल क्षीण होगया हो और आगसे किंचित् दस्त आने और अग्नि दीप्त हो तो वह राव सोंठ दही तिलका तैल दूध घृत इन्हें यथायोग्य पीवे ॥ २७ ॥ अथवा गुडतैलमें सिजायेहुए बदर ( बेर ) सेवन करे [ बदर नपुंसकालग कर्पासबीजका नाम है और पुंलिङ्ग हो तो बेरका नाम है इससे कई यही कर्पासबीज अर्थात् चिनोलेको सिजाकर उनकी गिरा सेवन कर ऐसा मानते हैं और यह ग्राही भी है तथा वायुनाशक भी है ] तथा खूब सिजाईहुई जवकी बाकली जो सीजकर पिट्टीसी होजाये उसको कच्चे विल्व और दहीके संग खाये और ऊपरसे भेता ( पैष्टी ) मद्य पीवे ॥ २८ ॥ अथवा शश ( सुस्से ) का मांस रुधिर युक्त और लज्जालू घृत और दही इन्हें पकाकर खाये तथा मलक्षीण मनुष्य कोमल अन्न खाये ॥ २९ ॥ अथवा उडद जव बेर इनका रस ( या मांसरस ) इनको यमक ( घृत तैल ) से संस्कार देकर दही अन्नर इनसे सिद्ध करके भोजनके लिये देवे ॥ ३० ॥ अथवा विष्टाके क्षय होनेपर विड लवण और कच्चे विल्व सोंठ और दहीके ऊपरकी मलाई इनको खटाई ( या काजी-में पीसकर ( चूनेमें मनाकर ) घृततैलमें भूनकर ( पकाकर ) देने हितकारक होते हैं ॥ ३१ ॥ और मलक्षीण बालको शूल हो और अग्नि दीप्त हो तो दीपनद्रव्योंसे युक्त करके संग्राहि औषधोंके संग घृतपान करे ॥ ३२ ॥

### प्रवाहिकाकी निरुक्ति और लक्षण ।

वायुः प्रवृद्धो निर्वर्तितं बलानां रुदन्त्यधस्ताद्वहिताशनस्य ।

प्रवाहमार्षस्य गुह्यमर्थात्कं प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३३ ॥

( श्लो- ३३ ) यमके घृतसे संस्कार करके । नगरादिसे वा ।

( श्लो- ३४ ) विष्टाका रसमें सिद्ध करके मलक्षीण मनुष्य को मद्य विष्टाके दूध का मिश्रण मिलि लेना । ( इति चि- ३० ) ।

प्रवाहिका वातकृता सशूला पित्तात्सदाहा सकफा कफाच्च ।  
सशोणिताः शोणितसंभवास्तु ताः स्नेहरूक्षप्रभवा मर्तास्तु ॥ ३४ ॥

जब मनुष्य अहित भोजन करता है उसके वायु बढकर संचितहुए कफा-  
दिको बारबार दस्तमें मिलाकर किनछनेके साथ निकालता है इसे इस  
विद्याके जाननेवाले वैद्य प्रवाहिका अर्थात् निवाही या मरोड़े कहतेहैं [ अर्थात्  
अयोग्य भोजनसे पकाशय ( अँतड़ियों ) में वायु बढजाता है तब बारबार  
कफसहित दस्त मरोड़ेसे आतेहैं इसे प्रवाहिका कहतेहैं ] ॥ ३३ ॥

[ प्रवाहिका ४ प्रकारकी होतीहै वायुकी पित्तकी कफकी और रक्तकी ]  
इनमें शूलयुक्त हो तो वायुकी समझनी और दाहयुक्त हो तो पित्तकी और  
कफयुक्त हो तो कफकी तथा रुधिरसहित हो तो रुधिरकी समझनी चाहिये  
ये सभी दोप्रकारसे होतीहैं एक स्निग्धतासे दूसरी रूक्षतासे अर्थात् स्निग्ध  
अथवा रूक्ष ॥ ३४ ॥

( वक्तव्य ) ऊपर संचितकफको वायु प्रेरितकरके मलयुक्त प्रवाहण  
करना लिखाहै फिर पित्तज और रक्तज कैसे ? इसका समाधान यह है कि  
बलास अर्थात् कफ उपलक्षणमात्र लिखा है किंतु इससे पित्तरुधिरा  
दि भी अपने कारणसे निचितहुए वायुसे प्रेरित होतेहैं ऐसा जानना  
( देखो टिप्पणी )

## प्रवाहिकाकी चिकित्साका क्रम ।

तासामतीसार्वदादिशेच्च लिंगं क्रमं चामविपेक्षतां च ॥ ३५ ॥

न शांतिमायाति विलं धनैर्या योगैरुदीर्णा यदि पाचनैर्वा ।

ताः क्षीरं मेवांशु शृतं निहंति तैलं तिलाः पिच्छिलवस्तयश्च ३६

यद्यपि प्रवाहिकाके लक्षण ऊपर लिखेहैं परंतु विशेष और सब लक्षण  
अतिसारके समान समझने चाहियें अर्थात् वातप्रवाहिकामें वातातिसारके  
तुल्य और पित्तप्रवाहिकामें पित्तातिसारके तुल्य प्रायः अन्य सब लक्षण  
होते हैं इत्यादि और क्रियाका क्रम भी तथा आम अथवा पक है यह भी  
अतिसार ही के अनुसार जानलेना ॥ ३५ ॥ यदि बढीहुई प्रवाहिका लंघनों  
और पाचनयोगोंसे शांत न हो तो औटायेहुए दुग्धसे शीघ्र शांत होजातीहै

( श्लो० ३४ ) तत्र रूक्षप्रभवा वातजा । स्नेहप्रभवा, कफजा तु शब्दात् तीक्ष्णोष्ण-  
प्रभवा पित्तरक्तजा च इति ( भा० मि० ) ।

या तैलका उपयोग और तिलोंका उपयोग तथा पिच्छलवस्ति ये भी  
तत्कारक हैं [ प्रयोजन यह कि प्रथम लंघन कराना फिर पाचनयोग देने  
तहियें और यदि इनसे शांत न हो तब पाचनद्रव्योंसे पकायाहुआ दुग्ध  
वे तथा तैल तिल और पिच्छलवस्तिका उपयोग करे ] ॥ ३६ ॥

आर्द्रैः कुशैः संपरिवेष्टितानि वृत्तान्यथाद्रौणि हि शाल्म-  
लीनाम् । पक्वानि सम्यक्पुटपाकयोगेनापोथ्यै तेभ्यो रस-  
मादेदीत ॥ ३७ ॥ क्षीरं शृतं तैलहविर्विमिश्रं कल्केन यष्टी-  
मधुकस्य वापि । वस्ति विदध्याद्रिपंगप्रमत्तः प्रवाहिकामूत्र-  
पुरीपसंगे ॥ ३८ ॥ द्विपंचमूलीकथितेन शूले प्रवाहमाणस्य  
समाक्षिकेण । क्षीरेण चास्यापनमर्थ्यमुक्तं तैलेन गुंज्यादनु-  
वांसनं च ॥ ३९ ॥

शेमलफे गोल डंठलोंका ( जरा कुचलकर ) गोली कुशासे लपेटकर  
( कपर मिट्टी लगाकर ) पुटपाकके विधानसे पकाकर उन्हें निचोड़कर  
रस निकाल लेंगे ॥ ३७ ॥ और मुलेठीके कल्कसे औटायाहुआ दूध तैल और  
शृतयुक्त करके प्रवाहिकामें तथा मलमूत्र रुक जानेमें सावधान बैठ वास्ति  
देवे ( पिच्छल वस्ति देवे ) ॥ ३८ ॥ अथवा दशमूलसे पकायहुए दूधमें  
आतद मिलाकर शूलयुक्त प्रवाहिकामें आस्थापनवस्ति करना तथा इस दश  
मूलक ही पायसे सिद्ध किये तैलसे अनुवासन करना श्रेष्ठ है ॥ ३९ ॥

वातमैवगं लवणेषु चैव तैलं च सिद्धं हितमत्रपाने ।

लोथ्रं विडं विल्वशलाह चैव लिह्याच्च तैलेन कटुत्रिकालम् ॥ ४० ॥

दध्ना ससारेण समाक्षिकेण भुंजीत निःसागकपीडितस्तु ।

सुतसकुप्यकथितेन वापि क्षीरेण शान्तिन मधुपुत्रेण ॥ ४१ ॥

( श्लो० ३९ ) जिनकुशों तनि । सैरमूलद्रव्ये दशमूलनिरूप्यः । तत्राश्विमेन क्षीरेण-  
पकायते तत्राश्विमेन वस्तिन कटुपाकमेव मुख्यतिलकः ।

( श्लो० ४० ) कटुत्रिकालं कटुत्रिकालेन त्रिकालमुक्तमिति भावार्थः ।

( श्लो० ४१ ) निःसागकः दध्नासारेणः दुग्धस्य सारमहापः ( रसि दहनः )  
सुतसकुप्य इति । सुतस कुशे मधुसंयोगाद्वातं इति केन वृत्तमेवम् । इत्यं मधुसं-  
योगात्तन्मधुसंयोगेन शूलयुक्तं भवति इति ( श्लो० ४० )

वायुनाशक द्रव्यों और लवणोंसे सिद्ध कियाहुआ तैल अन्नके साथमें तथा पानार्थमें देना हितकारक है अथवा लोघ बिड लवण और कच्चा बिल्व इन त्रिकटु ( सोंठ मिरच पीपल ) मिलाकर तैलसे युक्त करके चाटे ॥४०॥ और सूखे मरोड़े हों तो मलाईयुक्त दहीमें शहद मिलाकर इसके संग भोजन करे अथवा सुवर्ण या चांदीके कलश या पात्रमें औंटायेहुए दूधको शीतल करके शहद मिलाकर उसके संग भोजन करे ॥ ४१ ॥

**शूलार्दितो व्योषविदारिगंधासिद्धेन दुग्धेन हिताय भोज्यः ।**

**वातघ्नसंग्राहकदीपनीयैः कृतान्नसांश्चाप्युपभोजयेच्च ॥४२॥**

जिसके प्रवाहिकामें शूलकी पीडा अधिक हो उसे त्रिकटु और विदारिगंधा ( शालपर्णी ) इनसे सिद्ध किये दुग्धके संग भोजन करावे अथवा वायुनाशक ग्राही दीपन ऐसे द्रव्योंसे संस्कार कियेहुए रस ( लवादिके मांसका रस ) भोजन करावे ॥ ४२ ॥

**खादेच्च मत्स्यान्नसमाप्नुयाच्च वार्तघ्नसिद्धं घृतं सतैलम् ।**

**एणाव्यजानां तु वटप्रवालैः सिद्धानि सार्द्धं पिशितानि खादेत् ४३**

**मेध्यस्य सिद्धं त्वथवापि रक्तं वस्तस्य दध्ना घृततैलयुक्तम् ।**

**खादेत्प्रयुक्तैः शिखिलांविजैश्च भुंजीत यूषैर्दधिभिश्च मुख्यैः ४४**

**माषान्सुसिद्धान्घृतमंडयुक्तान्खादेच्च दध्ना मरिचोपदंशान् ४५॥**

प्रवाहिका रोगवाला मछली खावे अथवा वायुनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किया रस ( मांसरस ) घृत तैल सहित भोजन करे अर्थात् हिरन भेड बकरी इनके मांसको वटकी कोपलोंके संग सिद्ध करके खावे ॥ ४३ ॥ अथवा अच्छे बकरेके रुधिरको घृत तैल युक्तकर सिद्ध करके दहीका संस्कार देकर भोजन करे अथवा मोर या लवाके मांसके यूषोंको दहीके संग खावे ॥ ४४ ॥ अथवा उड़दोंको खूब सिजाकर घृतका मंड ( घृतका ऊपरका भाग ) युक्त करके ( अर्थात् घृतमंडसे छौंककर या घृतमंड मिलाकर ) और कालीमिरच आदि डालकर उन्हें दहीके संग खावे ॥ ४५ ॥

( श्लो० ४२ ) रसान् मांसरसान् ।

( श्लो० ४४ ) मेध्यस्य यज्ञार्हस्य पुष्टस्य वस्तस्य रक्तं घृततैलभृष्टदध्ना संस्कृतं खादेत् रक्तं स्त्यानं रक्तं खादेदिति संबंधः ( इति नि० सं० )

( श्लो० ४५ ) मरिचोपदंशान् मरिचावचूर्णितान् ( इति डल्लनः )



महारुजे मूत्रकृच्छ्रे भिषग्वास्ति प्रदापयेत् ।  
 पयोर्मधुघृतोन्मिश्रं मधुकोत्पलसाधितम् ॥ ४६ ॥  
 स वस्तिः शमयेत्तस्य रक्तदाहमथो ज्वरम् ।  
 मधुरोपधेसिद्धं च हितं तस्यानुवासनम् ॥ ४७ ॥  
 रात्रावर्हनि वा नित्यं रुजातो यो भवेन्नरः ।  
 यथा यथा सतेलः स्याद्वातिशांतिस्तथा ॥ ४८ ॥  
 प्रशांते मारुते वापि शांतिं याति प्रवाहिका ।  
 तस्मात्प्रवाहिकारोगे मारुतं शमयेद्विषक ॥ ४९ ॥

महारोग ( निःसारक अर्थात् सूखे मरोड़े हो ) अथवा मूत्रकृच्छ्र हो  
 ( मूत्र रुकताहो ) तो वैद्यको वस्तिकर्म करना चाहिये मुलेठी कमल  
 इनसे सिद्ध दूध शहद घृत भिलाकर वस्ति ( आस्थापन वस्ति करना )  
 ॥ ४६ ॥ यह वस्ति रोगीके रक्त दाह और ज्वरको शांत करतीहै अथवा  
 मधुरद्रव्योंसे सिद्ध पिये तेलमें अनुवासन वस्ति कर ॥ ४७ ॥ रातमें  
 या दिनमें या नित्य जो मनुष्य पीडित हो ज्यों ज्यों उसके ( वस्तिद्वारा )  
 तैलका उपयोग हो त्यों त्यों उसके वायुको शांति होतीहै ॥ ४८ ॥ और  
 वायुके शांत होनेसे प्रवाहिका ( और उसके उपद्रवों ) में शांति होजाती  
 है इससे प्रवाहिकाके रोगमें वैद्यको चाहिये कि वायुको शांतिके यत्न करे ॥ ४९ ॥

पाठाजमोदा कुटजस्य बीजं शुंठीसमा मागधिकाश्च पिष्टाः ।  
 सुखांशुपीताः शमयन्ति रोगं मेघ्यात्रसिद्धं सघृतं पयो वा ॥ ५० ॥  
 शुंठी घृतं सन्नवकं सतेलं विपाच्य लादामयमाशु हन्यात् ॥ ५१ ॥  
 गजाशनाकुंभिकदाडिमानां रसः कृते तेल घृते सदाधि ।  
 बिल्वान्विता पथ्यतमा यवागुधारेण्डुगन्धस्य तथा च पानम् ५२  
 लपति पथ्यान्यथ दीपनानि स्निग्धानि भोज्यान्पुदराभयेषु ।  
 हिताय नित्यं वित्तैर्गर्द्धि भोज्यैर्वाग्राश्चर्तान्तिभेषगप्रेमजः ॥ ५३ ॥

पाठा अजमोदा इंडली मोद और पांजर इन सबको समान भाग  
 लेकर पीसदे ( घृत बनादे ) इसे निपाये पानके संग पीये तो प्रवाहिका

( श्री ५४ ) महारुजे मूत्रकृच्छ्रे मारुतं शमयेद्विषक ।

रोग शांत होजाताहै अथवा मेध्यअन्न ( जव ) से सिद्ध किये दूधमें घृत युक्त करके पीवे ( कई 'मेध्यांडसिद्ध' ऐसा पाठ मानकर बकरेके अंडोंसे सिद्ध किया दूध घृत युक्त पीवे ऐसा अर्थ करते हैं ) ॥ ५० ॥ अथवा सोंठ घृत और क्षवक ( छिकनी ) तैल इन्हें पकाकर चाटे इससे प्रवाहिका शीघ्र नष्ट होवे ॥ ५१ ॥ तथा गजाशन ( कैथ कोई शल्लकी मानते हैं ) और कुंभिका ( जलकुंभी या नागकेशर ) और अनार इनके रससे तैल घृत और दही युक्त तथा बिल्व सहित बनाईहुई यवागू इसमें अति-पथ्य है अर्थात् श्रेष्ठ है तथा धारोष्ण दूध पीना भी पथ्य है ॥ ५२ ॥ और प्रवाहिका अतिसार आदि पेटके रोगोंमें हलुके पथ्य और दीपन तथा स्निग्ध भोजन करने नित्य हितकारक हैं तथा वैद्यको उचित है कि सावधानीसे ऐसे ही अन्य योग्य प्रयोग और भोजन रोगीके हितकेलिये तजवीज करे ॥ ५३ ॥

## यवागू भोजन ।

तृष्णापनयनी लघ्वी दीपनी वस्तिशोधनी ।

ज्वरे चैवातिसारे च यवागूः सर्वदा हिता ॥ ५४ ॥

ज्वर और अतिसारमें सदा यवागू भोजन करना हितकारक है यह यवागू तृषाको शांत करती है हलकी है दीपनी है तथा वस्तिको शोधन करनेवाली है ॥ ५४ ॥

## अन्य उपदेश ।

रौक्ष्याज्जाते क्रियाँ स्निग्धाँ रूक्षा स्नेहनिमित्तजे ।

भयजे सांत्वनापूर्वा शोकजे शोकनाशिनी ॥ ५५ ॥

विषार्शः कृमिसंभूते हिता चोभयशर्मदा ।

छर्दिमूर्च्छातृडांघ्यांश्च सांधयेदविरोधतः ॥ ५६ ॥

जो रूक्षतासे उत्पन्न हुवा अतिसार या (प्रवाहिका) हो उसमें स्निग्ध क्रिया करनी चाहिये और जो स्नेहसे उपजा हो उसकी रूक्ष क्रिया करनी उचित है भयजनित अतिसारमें उसे निर्भय करना और शोक जनितमें शोक नाशि क्रिया करें ॥ ५५ ॥ विषजनित तथा बवासीर से या कृमिसे अतिसार हो तो दोनोंकी शांति करें ( विषादिकी भी और अतिसारकी भी शांतिका यत्न करें ) तथा छर्दि मूर्च्छा तृषा आदि हों तो उन्हें विरोध रहित यत्नसे साधन करे ॥ ५६ ॥



नश्यन्ति त्वक्रियाभिस्ते क्रियाभिः कर्मसंक्षये ।

शाम्यन्ति दोषसंभूता दोषसंक्षयहेतुभिः ॥ ६० ॥

तेषामल्पनिदाना ये<sup>२</sup> प्रतिकक्षा भवन्ति च ।

मृदवो बहुदोषा वा<sup>१</sup> कर्मदोषोद्भवस्तु ते<sup>१०</sup> ।

कर्मदोषक्षयकृतास्तेषां<sup>१३</sup> सि<sup>१४</sup> द्विवि<sup>१५</sup>धीयते ॥ ६१ ॥

मनुष्योंके तीन प्रकारकी व्याधियाँ हुवा करती हैं इनमें कोई कर्मयोगसे होती हैं ( अर्थात् प्राक्तन कृत पापादिसे होती हैं ) और कोई वात पित्तादि दोषोंसे होती हैं और कोई कर्म और दोष दोनोंसे होती हैं इनमेंसे जो कर्म ( पापादि ) से होनेवाली व्याधियाँ होती हैं उनके कारण ( प्रत्यक्ष मालूम ) नहीं होते ॥ ५९ ॥ वे कर्मज रोग उस पापादि कर्मके भोगलेनेसे क्षय होजानेपर बिनाही चिकित्सा किये अथवा ( निमित्त मात्र ) चिकित्सासे स्वयं नष्ट होजाते हैं और जो दोषज ( वातादि दोषजन्य ) रोग होते हैं वे उस दोषके क्षय होनेपर नष्ट होते हैं ॥ ६० ॥ और इनमें जिनका कारण तो स्वल्प हो परंतु वे प्रतिक्षण प्रतिदिन कष्ट साध्य और भयंकर होती जावें अथवा मृदु होकर बहुत दोषवाली हों वे व्याधि कर्म और दोष दोनोंसे उत्पन्न हुई समझनी चाहियें इनकी सिद्धि कर्म और दोष दोनोंके क्षय होनेसे होती है ॥ ६१ ॥

### संग्रहणीरोगका विवेचन ।

दुष्यति ग्रहणी जंतो रग्निसादनहेतुभिः ।

अतीसारे निवृत्तेपि<sup>३</sup> मंदाग्नेरहिताग्निः ।

भूयः संदूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत् ॥ ६२ ॥

तस्मात्कार्यः परीहारस्त्वति<sup>४</sup>सारे विरिक्तवत् ।

यार्षन्नं प्रकृतिस्थः स्याद्दोषतः प्राणतस्तथा ॥ ६३ ॥

अग्निमंद करनेवाले कारणोंसे मनुष्योंकी ग्रहणी दूषित होजाती है अथवा अतिसारके निवृत्त होनेपर मंदाग्नि वा पुरुष जो अहित भोजनकरता है उससे अग्नि दूषित होकर वह ग्रहणीको दूषित करदेती है ( बिगाड़ देती है ) ॥ ६२ ॥ इससे अतिसारके रोगमें और उसके निवृत्त हुए पर विवेचनके समान पथ्यादि करने चाहियें अतिसारके निवृत्त हुए पीछे जबतक दोषोंसे और बलसे पूर्ण प्रकृतिस्थ ( तंदुरस्त और बलवान् ) न होजाय तबतक कुपथ्य नहीं करना चाहिये ॥ ६३ ॥

( वक्तव्य ) प्रथमके श्लोकार्द्धसे यह प्रयोजन निकलता है कि, अतिसार और विरेचनके अंतमें कृपण्य किये बिना साधारण मनुष्योंको भी मंदाग्नि के कारणोंसे ग्रहणी दूषित होजायाकरती है और संग्रहणीका रोग हो सकता है॥

पृष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्तिता ।

पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणी सां प्रकीर्तिता ॥ ६४ ॥

ग्रहण्या बलमग्निर्हि स चापि ग्रहणीश्रितः ।

तस्मात्संदूषिते बहो ग्रहणी संप्रदुष्यति ॥ ६५ ॥

पित्तके धारणकरनेवाली पक्वामाशय और आमाशयके मध्य लट्टी कला ( पहले शरीरक स्थानमें ) वर्णन कीगई है उससे ग्रहणी कहते हैं ॥ ६४ ॥ ग्रहणीका बल अग्नि है और यह अग्नि ग्रहणीके आश्रित है इससे अग्निके दूषित होनेसे ग्रहणीभी दूषित होजाती है ॥ ६५ ॥

( वक्तव्य ) यह बात हम पहले कह चुके हैं कि, हमारा टीकाके शरीरक-स्थानके आदिमें दूसरे चित्रमें जहाँ ५ का अंक है वह ग्रहणी है यह आमाश-यमें नीचे है और पक्वामाशय ( अंतर्द्वियों ) से ऊपर है इसीसे यह पक्वामाशय मध्यस्था लिखी है और इसके ऊपर १७ का अंक जहाँ है वह यकृत है अर्थात् ( जिगर है ) यही अग्नि है जो ग्रहणीके ऊपर निपका है और इसके ऊपर जहाँ १८ का अंक है वह पित्ता है उससे भी यही धारण किये हुए है इसीसे पित्तधरा कहा है इस ग्रहणीहीके विगड़ने ( संकोचन और संधारण शक्तिये नष्ट होने या विषम होजाने ) सेही संग्रहणी रोग होता है अर्थात् आमाशयगन भोजनको जब यह टीका २ धारण नहीं करती अपभवा नीचे की निकाल देती है तब ही संग्रहणी रोग होता है ॥

एकशः सर्वशश्चैव दोषैरित्येथमृच्छितः ।

सा दुष्टो बहुशो भुक्तमाममेव विमुञ्चति ॥ ६६ ॥

एके वा सुरुजं प्रति मुदुर्बलं मुदुर्बलम् ।

ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥ ६७ ॥

जातादि एक एक पृथक् दोषसे अथवा नष्टके सञ्ज्ञितसे यह ग्रहणी दूषित होती है तब भोजनको पक्वाही ( पक्वा या अपक्वा ) वाग्वार नीचियों निकाल देती है अपभवा पक्वा वेदना महिष तथा दुर्गन्धि और कभी कभी दूषादृश मल और कभी काला नीचियों निकाल देती है इस रोगको आयुर्वेदके ज्ञानने-वाले लोग ग्रहणी रोग कहते हैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

( वक्तव्य ) कफदूषित ग्रहणी सदा आम ( कच्चा ) भोजन निकाल देती है और पित्तदूषित पक्क ( पकाहुवा ) निकालती है तथा वात दूषित कभी कच्चा कभी पक्का या कुछ कच्चा कुछ पक्का निकालती है ।

हम ऊपरके वक्तव्यमें कह चुके हैं कि, ग्रहणीकी संकोचन और संधारण शक्तिके नष्ट होने या विषम होनेसे यह रोग होता है अस्तु यदि संधारण शक्ति ढीली पड़जाती है या नष्ट होजाती है तो एकरूपसे प्रायः रोग होता है और जो वह शक्ति विषम होती है तब यह रोग भी विषम होता है अर्थात् कभी मल बंद कभी द्रव कभी दस्त लगजाते हैं कभी कब्जियत होती है कभी भोजन पचता है कभी नहीं इत्यादि ॥

### ग्रहणीरोगका पूर्वरूप ।

तस्योत्पत्तौ विदाहोऽन्ने सदनालस्यतृट्कुमाः ।

बलक्षयोऽरुचिः कासः कर्णक्ष्वेडांत्रकूजनम् ॥ ६८ ॥

जब यह रोग होनेवाला होता है तब उससे पहले ये लक्षण प्रायः होते हैं भोजनके पीछे दाह थकान आलस्य तृषा ग्लानि बलका नाश अरुचि खांसी कानोंमें शब्दसा होना और आँतें गुडगुडाना ॥ ६८ ॥

### ग्रहणी रोगकारूप ।

अथ जाते भवेजंतुः शूनपादकरः कृशः ।

पर्वरुक्लौल्यतृट्छर्दिज्वरारोचकदाहवान् ॥ ६९ ॥

उद्भिरेच्छुक्तितक्ताम्ललोहधूमामगंधिकम् ।

प्रसेकमुखवैरस्यतमकारुचिपीडितः ॥ ७० ॥

और जब यह रोग होजाता है तब मनुष्यके पावों हाथों आदिपर शोथ दीखने लगता है मनुष्य दुबला होजाता है संधियोंमें दर्द चित्तमें लौल्यता तृषा छर्दि ज्वर अरुचि दाह ये सब होजाते हैं ॥ ६९ ॥ और सिरके जैसा खट्टा या कड़वा पानीसा मुँहसे गिरता है और डकारमें लोह धूम या आमकी-सी गंध आती है मुँहसे पानीसा बहा करता है विरसता रहती है तमक श्वास और अरुचिसे भी पीडित रहता है ॥ ७० ॥

( श्लो० ६८ ) तस्य ग्रहणीरोगस्य उत्पत्तौ पूर्वरूपे अन्ने विदाहः भोजने भोजना-  
नंतरं विदाह इत्यर्थः । डल्लनस्तु विदाहोने मुक्ते अरतीत्याह ।

( श्लो० ६९ ) पर्वरुक् संधिपीडा । लौल्यं सर्वरसेषु लोलुपत्वम् ।

## वातादिकी ग्रहणीके लक्षण ।

वाताच्छूलोधिकेः पायुहृत्पाश्वोदरमस्तकेः ।

पित्तात्सदाहगुरुभिः कफात्रिभिश्चिलक्षणैः ॥ ७१ ॥

दोषवर्णनखस्तद्वद्विष्मृत्रनयनाननैः ।

हृत्पाश्वोदरगुल्मार्शः प्रीहाशंकी च मानवः ॥ ७२ ॥

वायुकी संग्रहणीमें गुदा हृदय पांशु पेट और शिर इन स्थानोंमें दर्द होताहै पित्तकी संग्रहणीमें इन्हीं स्थानोंमें दाह रहता है कफकी संग्रहणीमें इन्हींमें भारीपन रहता है और त्रिदोषकीमें तीनोंके चिह्न पायेजाते हैं ॥ ७१ ॥ और जिस दोषकी ग्रहणी हो उसीके अनुसार रोगोंका मलफा मूत्रका नेत्रोंका और मुखका वर्ण ( रंग ) होता है इस रोगमें मनुष्यको एतद्दोग पांडु उदररोग गुल्म बवासीर इन रोगोंकी शंका होती है ( अर्थात् इन रोगोंकी भ्रांति होतीहै अथवा इन रोगोंके उत्पन्न होनेकी शंका होतीहै ) ७२ ॥

## ग्रहणीकी चिकित्सा ।

यथा दोषोच्छ्रयं तस्य विशुद्धस्य यथाक्रमम् ।

पेयादि वितरेत्सम्यग्दीपनीमोर्षसंभृतम् ॥ ७३ ॥

ततः पाचनसंयाहि दीपनीयगणत्रयम् ।

पिवेत्प्रातः सुगारिष्टमेहमृत्रमुखांबुभिः ॥ ७४ ॥

तर्केण वाथै तर्कं वा केवलं हितमुच्यते ।

कुमिगुल्मोदगशोभो कित्याश्वात्रावचारयेत् ॥ ७५ ॥

चूर्णं हिम्वादिकं चात्र घृतं वा प्रीहनाशनम् ।

कल्केन मगधादेश्च चागिरीस्वरसेन वा ॥ ७६ ॥

नसुगुणैर्न दध्ना च घृतं सिद्धं हितं भवेत् ।

सर्वथा दीपनं सर्वं ग्रहणीरोगिणां हितम् ॥ ७७ ॥

ज्वरादीनिगोषार्जं गोषयेत्स्वानिक्लिप्तैः ॥ ७८ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे चकारिष्टोत्तराध्यायः ॥ २० ॥

अथमं चकारं अमुक्तं चकारं चिकित्सादिमे मूत्र कफके दोषोंकी उपशान-  
तार्कं अहृत्पाश्वोदरगुल्मोदर मगधाशंकी शंका बवासीर पांडु उदररोग



करे ॥ ७३ ॥ फिर पाचन ग्राही और दीपन इन तीनों प्रकारके गणोंके काथ या चूर्णको नित्य प्रभातमें सुरा ( मद्य ) अरिष्ट स्नेह गोमूत्र गरम जल इनमेंसे किसी एकके संग पीवे ( जैसे वायुमें स्नेहके संग कफमें मूत्र सुरादिके संग इत्यादि ) ॥ ७४ ॥ अथवा तक्र ( मट्टे ) के संग इन्हीं पाचनादिको पीवे अथवा केवल मट्टाही ( लवणादि मिलाकर ) पीवे अथवा कृमिनाशक गुल्मनाशक उदररोगनाशक अर्शनाशक जो क्रियायें पहले कही हैं उनमें जो उचित हो उस क्रियाको यहां करे ॥ ७५ ॥ अथवा हिंग्वादि चूर्णको या ग्रीहनाशक घृतको सेवन करे अथवा पिपल्यादिके कल्कसे या चांगेरीके स्वरससे ॥ ७६ ॥ चौगुने दहीसहित घृत सिद्ध करके देना हितहै और सब प्रकारसे दीपनपदार्थ सर्वथा ग्रहणी रोगमें हितकारक होते हैं ॥ ७७ ॥ और ज्वर शोथ अरुचि आदि जो इसमें उपद्रव हों उन्हें ग्रहणीके अविरुद्ध उन्ही उनकी चिकित्सासे साधन करना योग्य है ॥ ७८ ॥

( वक्तव्य ) अतिसार रोग ( दस्त लगने ) के कई प्रकार हैं परन्तु मुख्यतासे तीनही बड़े भेद पाये जाते हैं प्रथम आमाशयमें द्रव भाग बढनेसे जठराग्नि दब जावे दूसरे ग्रहणीकला और तदाश्रित अभिके विकारसे तीसरे पक्वाशय ( अँतडियों ) के विकारसे इसी लिये हमारे आचार्योंने इस व्याधिके मुख्य तीनही भेद किये हैं प्रथम जो आमाशयमें द्रव भाग बढकर जठराग्नि दब जानेसे होता है उसे अतिसार कहते हैं और जो ग्रहणीकला और तदाश्रित अभिके विगाड़ेसे होनेवालेको संग्रहणी कहते हैं और अँतडियोंके विकारसे होनेवालेको प्रवाहिका ( मरोड़े ) कहते हैं और इनमें विगाड़ जिन जिन दोषों वातादिसे होता है सो सर्वत्र अपने अपने कारणोंसे होताही है जिससे बहुत भेद होजाते हैं ॥

यूनानीवाले अतिसारको इसहाल कहते हैं और प्रवाहिकाको मगस कहते हैं इनके यहांभी इस बीमारीके बहुत भेद हैं जैसे इसहालजिगरी (जिसमें खून पीप वगैरोंके दस्त आवें और जिगरेके फितूरसे हो) (इसहालमेदा इसमें कच्ची पक्की गिजा दस्तमें आवे यह मेदेके फितूरसे होता है) इसहाल अमआ ( जलकुलअमआ ) (गिजा अँतडियोंमें न ठेरे और दस्त ज्यादा आवें यह अँतडियोंके फितूर या अँतडियोंमें सफरा सोजिश वगैरासे होता है) और मगस ( मरोड़ा ) भी अँतडियोंमें रीह होनेसे ही होता है और ज़दीर राधल-हूका थोड़ा २ दस्त आना तथा इसहालखून खूनके दस्त अँतडियोंके



ब्राह्मणोंके राजा ) चंद्रमाको हुवा था इससे कई वैद्य इसे राजयक्ष्मा भी कहते हैं ॥ ३ ॥

## यक्ष्माका विवेचन ।

सव्यस्तैर्जायते दोषैरिति केचिद्वदन्ति हि ॥ ४ ॥

एकादशानामेकस्मिन्सान्निध्यात्तत्र युक्तिः ।

क्रियाणामविभागेन प्रागेवोत्पादनेन च ॥ ५ ॥

एकं एव मृतः शोषः सन्निपातात्मको ह्येतः ।

उद्रेकात्तत्र लिङ्गानि<sup>१</sup> दोषाणां निर्पतन्ति हि ॥ ६ ॥

कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि, यह रोग सब दोषोंसे पृथक् पृथक् भी होता है और सन्निपातसे भी होता है ॥ ४ ॥ परंतु नीचे लिखे ग्यारह लक्षणोंके एकत्रित सन्निधान होनेसे तथा शास्त्रकी युक्तिसे तथा क्रिया ( चिकित्सा क्रम ) में भेद न होनेसे तथा पहलेही उत्पन्न करनेसे ( अर्थात् सबसे पहले शुष्कता पैदा करनेसे या शोषके हेतु पहलेही पैदा करनेसे ) ॥ ५ ॥ यह शोषरोग एक ही सन्निपातात्मक ही होता है परंच हां इसमें जौनसे दोषकी प्रधानता या उल्बणता होती है उसके लक्षण प्रायः मालूम पड़ते हैं ॥ ६ ॥

क्षयद्वेगप्रतीघाताद्यायामाद्विषमांशनात् ।

जायते कुपितैर्दोषैर्व्याप्तदेहस्य देहिनः ॥ ७ ॥

किसी कारण ( रोग शोक अभिघात अतिकर्षण आदिसे ) कोई एक या कई धातुओंके क्षय होनेसे अथवा वेगोंके रोकनेसे या अतिपरिश्रम करनेसे या विषम भोजनादि करनेसे कुपित हुए दोष जब शरीरमें व्याप्त होते हैं तब यह रोग उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥

## अनुलोम और प्रतिलोम क्षय ।

कफप्रधानैर्दोषैर्हि रुद्धेषु रसवर्त्मसु ।

अतिव्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनंतरा ।

क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्याति मानवः ॥ ८ ॥

( श्लो० ८ ) कफप्रधानैर्दोषैः रसवर्त्मसु रुद्धेषु रसक्षयात् अनुलोमक्रमेण रक्तादयो धातवः क्षीयन्ते इत्यनुलोमक्षयः अतिव्यवायिनः रेतसि क्षीणे शुक्रक्षयात्प्रतिलोमक्रमेण मज्जास्थिमदोमांसादयो धातवः क्षीयन्ते । इति प्रतिलोमक्षयः ।

यादि कफ प्रधान दोषोंसे रसके मार्ग रुकजावें ( जिससे रसलीण होकर फिर रुधिरमें क्षीणता हो और फिर यथाक्रम मांस मेद अस्थि मज्जा और शु क्षीणता पहुँचे यह अनुलोमनक्षय कहलाता है ) तथा अतिभयुनादि द्वारा वायु अति क्षीण होजावे ( जिससे फिर मज्जामें क्षीणता हो और फिर मज्जासे अस्थि और मेद मांस रक्त और रसमें विपरीत भावसे यथाक्रम क्षीणता पहुँचे यह प्रतिलोमनक्षय कहलाता है ) इस भाँति सब धातु क्षीण होतीहैं और मनुष्य सुखने लगता है ( और सूखजाता है ) ॥ ८ ॥

## राजयक्ष्माका रूप और लक्षण ।

भक्तद्वेषो ज्वरः श्वासः कासः शोणितदर्शनम् ।

स्वरभेदश्च जायते परिरूपे राजयक्ष्मणि ॥ ९ ॥

भोजनसे द्वेष होना ज्वर श्वास खाँसी खंखारमें रुधिर जाना और अवाज बंद जाना ये छह रूप राजयक्ष्मामें होते हैं ( उक्त छहों लक्षण होनेसे राजयक्ष्मा समझना ) ॥ ९ ॥

## इसके लक्षण वातादि भेदसे ।

स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संकोचश्चासपार्श्वयोः ।

ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्तोद्विक्तस्य चाग्नौ ॥ १० ॥

शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तच्छन्द एव च ।

कासः कंठस्य चोष्णो विज्ञेयः कफकोपतः ॥ ११ ॥

वायुका प्रधानतासे स्वरभंग होना शूल और अंस ( पार्श्व ) पेशवाद्योंका संकोच ये लक्षण मयलतामें होते हैं । तथा पित्तका प्रधानतासे ज्वर दाह भतिमार और रुधिरका जाना ये मयलतामें होते हैं ॥ १० ॥ और कफके कोपसे शिरका भारीपन अग्निके खाँसी और घंटेका टट्टन ( गला घंटजाना ) ये लक्षण मयलतामें होते हैं ॥ ११ ॥

वायुका दोषोंके द्वापके ११ लक्षण होते हैं वायुके १ ( स्वरभेद शूल और अंसद्विधा संकोच ) त्रिपके २ ( ज्वर दाह भतिमार और रुधिरागम ) तथा कफके ३ ( शिरका भारीपन अग्निके खाँसी और घंटे टट्टना )

एकदशभिस्तैर्वा परिर्वाजपि समन्वितम् ।

कामार्तितारपाथार्तिस्वरभेदाग्नौ च ज्वरः ॥ १२ ॥

त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैर्ज्वरकांसासृगामयैः ।

जंघ्याच्छोषादितं जन्तुमिच्छन्सुविमलं यशः ॥ १३ ॥

इन उपरोक्त ग्यारह लक्षणोंसे युक्त जो हो तथा ( उपरोक्त भक्तद्वेषादिक ) छह लक्षणोंसे युक्त हो अथवा खांसी अतिसार पांमूमें दर्द स्वरभंग अरुचि और ज्वर इन छह लक्षणोंसे युक्त हो ॥ १२ ॥ अथवा ज्वर खांसी और रुधिर आना इन तीनही लक्षणोंसे युक्त जो हो ऐसे शोष ( क्षयी ) वाले मनुष्यको निर्मल यश चाहनेवाला वैद्य त्याग देवे अर्थात् ये उपरोक्त लक्षण असाध्य राजयक्ष्माके हैं ॥ १३ ॥

## अन्य प्रकारका शोष रोग ।

व्यवायशोकस्थाविर्यव्यायामाध्वोपवासतः ।

व्रणोरःक्षतपीडाभ्यां शोषानन्ये वदन्ति हि ॥ १४ ॥

अति मैथुन शोक वृद्धता अतिव्यायाम मार्गचलना व्रत लंघन आदि करना अतिगंभीर व्रणका होना तथा उरःक्षतकी पीडा ( या उरःक्षत और अन्य दीर्घरोग होना ) इन कारणोंसे भी शोष रोग होना कहते हैं ( अर्थात् इनसे भी क्षयरोग होजाताहै ) ॥ १४ ॥

## शोषके कारणानुरूप लक्षण ।

व्यवायशोषः शुक्रस्य क्षयलिङ्गैरुपद्रुतः ।

पाण्डुदेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः ॥ १५ ॥

प्रध्यानशीलः स्रस्तांगः शोकशोष्यपि तादृशः ।

विनाशुक्रक्षयकृतैर्विकारैरभिलक्षितः ॥ १६ ॥

अतिमैथुनजन्य शोष वीर्यके क्षयके चिन्होंसे उपद्रवयुक्त होताहै शरीर पीला पड़ जाताहै और पूर्वपूर्वकी धातु प्रतिलोमक्रमसे क्षय होती हैं ( जैसे वीर्यक्षय होकर मज्जा क्षय हो फिर आस्थि फिर मेद फिर मांस इत्यादि ) ॥ १५ ॥ शोकसे क्षयवाला उस ध्यानमें मग्न रहे और शरीर शिथिल हो तथा वीर्यक्षयके सिवाय अन्य लक्षण इसमें भी व्यवायशोषा-केसे जानने ॥ १६ ॥



## उरःक्षत ।

व्यायामभाराध्ययनैरभिघातातिमैथुनैः ।

कर्मणा चाप्युरस्येन वक्षो यस्य विदारितम् ॥ २२ ॥

तस्योरसि क्षते रक्तं पूयः श्लेष्मा च गच्छति ।

कांसमानश्छर्दयेच्च पीतरक्तासितारुणम् ॥ २३ ॥

संतप्तवक्षाः सोत्थर्थं दूयनात्परिताम्यति ।

दुर्गन्धवदनोच्छ्वासो भिन्नवर्णस्वरो नरः ॥ २४ ॥

व्यायाम ( अतिश्रम या अतिडंड कसरत ) करनेसे बोझा उठानेसे ज्यादा पुकार २ के पढ़नेसे चोट आदिसे अतिमैथुनसे और उर ( छाती फेफड़े ) पर जोर या कष्ट पहुँचनेवाले काम करनेसे जिसकी छाती भीतरसे अर्थात् फेफड़ों या हृदय में घाव पड़जावे ॥ २२ ॥ जब मनुष्यके फेफड़ों या हृदय में क्षत ( घाव ) होजाता है तब उससे खखारमें रुधिर पीप कफ आता है कभी खाँसनेमें वमन भी होता है उसमें पीला लाल मैला ऊदा ऐसा मवाद आता है ॥ २३ ॥ छातीमें संताप रहे और अत्यंत पीडासे आँखोंके अगाड़ी अँधेरासा आंजावे मुँह और श्वासमें दुर्गन्ध आवे और वर्ण तथा स्वर बिगड़जावे ॥ २४ ॥

केषांचिदेव शोषो हि कारणैर्भेदमागतः ।

न तत्र दोषलिङ्गानां समस्तानां निपातनम् ॥ २५ ॥

क्षया एव हि ते ज्ञेयाः प्रत्येकं धातुसंक्षयात् ।

चिकित्सितं तु तेषां हि प्रागुक्ते धातुसंक्षये ॥ २६ ॥

कई आचार्योंका यह मत है कि, शोष कारणोंके भेदसे क्षयहीके अंतर्गत है ( अर्थात् व्यायाम अध्वादि जन्य शोष भी कारण भेदसे क्षयही होता है ) परन्तु उसमें सब दोषोंके लक्षण नहीं आकार पड़ते हैं ( इससे क्षय और शोषमें अंतर है ) ॥ २५ ॥ और जो क्षय है वह प्रत्येक धातुके क्षयसे होता है और उन धातुजन्य क्षयोंकी चिकित्सा भी पहले प्रत्येककी दोषधातु मलक्षयवृद्धिविज्ञानीय अध्यायमें कहीजा चुकी है उसके अनुसार करना ॥

( श्लो० २५ ) केषांचिदिति केषांचिदाचार्याणां मते ।

( श्लो० २६ ) तेषां चिकित्सितं तु प्रागुक्ते धातुसंक्षये दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीये-  
ऽध्याये ज्ञेयमित्यर्थः ।



## राजयक्ष्माका पूर्वरूप ।

श्वासांगसादकफसंभवतालुशोषच्छर्माग्निसादमदपीनसकास-  
निद्राः । शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जंतुः शुक्रेशणो  
भवन्ति मांसपरो रिंसुः ॥२७॥ स्वप्नेषु काकशुकशल्लकिनी-  
लकंटगृध्रास्तथैव कपयः कृकलासैकार्थ । तं वाहयन्ति  
सं नदीविजैलाश्च पश्येच्छुष्कांस्तर्हन्पर्वतधूमदवादितार्थ ॥ २८॥

जब यह राजयक्ष्मा होनेवाला होताहै तब उसके पूर्वरूपमें ये लक्षण  
होतीहैं-श्वास अंगमें शिथिलता कफका आना तालु सूखना पसल होना  
भेदाग्नि मद पीनस खाँसा निद्रा तथा मनुष्यकी आँखें सुपेद होनातीहिं  
मांसकी जी चाहता है (अथवा दुग्धपृतादि खानेकी जी चाहता है) और  
मेथुन पयनेकी इच्छा रहती है ॥ २७ ॥ स्वप्नमें काक तोते सेह नीलकण्ट  
भीष तथा चंदर गिरगट आदिकी सवारी करता अपनेकी देगें तथा सुगी  
नदी सुगंधुष पयन धूम दवात इनमें भ्रुलने हुए एक दोमे ॥ २८ ॥

## असाध्यताके लक्षण ।

महाशन क्षीयमाणमतीसारनिर्षाडितम् ।

शुनमुष्कोदरं चैव यक्ष्मणं परिवर्जयेत् ॥ २९ ॥

बहुत भोजन परे और क्षीय होताजाय तथा अतिगारसे पीडित हो अंड-  
काओं और पेटपर शोथ हो ऐसा राजयक्ष्मा त्यागने योग्य (असाध्य) होताहै २९.

## राजयक्ष्माकी चिकित्साका आरंभ ।

उपाचरेदान्मेवंतं दीप्ताग्निमकृशं नवम् ।

स्त्रियमदिवर्गोसलेन पुनर्नानाविक्रम च ॥ ३० ॥

जो राजयक्ष्माकी रोगी उपचार करनेवाला चिकित्सक को देखे वह  
दुर्बल नहीं हुआ हो रोग मरता हो (अथवा नष्ट अवस्था हो) अर्थात् रोगी  
मरता हो (जो रोगी चिकित्सा करे) अर्थात् यह साध्य होताहै । इसे साध-  
नकी भाँतिमें सिद्ध विधिसे पुनर्नाना प्रकारकी या भेदके पुनर्नाना  
की (अर्थात् विभिन्न करे) ॥ ३० ॥

स्निग्धस्य मृदुं कर्तव्यमूर्ध्वं चाधैश्च शोधनम् ।

आस्थापनं तथा कार्यं शिरसश्च विरेचनम् ॥ ३१ ॥

उपरोक्त घृतसे स्निग्ध करके हलका वमन विरेचन देकर ऊपर नीचेसे शुद्ध करे और आस्थापनवस्ति भी मृदु ही करे तथा शिरोविरेचन भी मृदु ही करना हित है ॥ ३१ ॥

( वक्तव्य ) कई ऐसा अर्थ भी करते हैं कि जो स्निग्ध मनुष्य हो उसे मृदु शोधन करना किंतु रुक्ष दुर्बल इन्हें कदापि शोधन नहीं करे ॥

यवगोधूमशालींश्च रसैर्भुंजीत शोधितः ।

दृढेऽनौ बृंहयेच्चापि<sup>३</sup> निवृत्तोपद्रवं नरम् ॥ ३२ ॥

शोधन करनेके पीछे जब गेहूं चावल इन्हें मांसरसके संग भोजन करे और जब जठराग्नि दृढ होजावे तथा कोई उपद्रव नहीं रहे तब उसे बृंहण ( बलदायक ) पदार्थोंका उपयोग करे ॥ ३२ ॥

अति मैथुनजन्य शोषकी चिकित्सा ।

व्यवायशोषिणं प्रायो भजन्ते वातजा गंदाः ।

बृंहणीयो<sup>१०</sup> विधिस्तस्मै हितः स्निग्धोऽनिलापहः ॥ ३३ ॥

जो मनुष्य अति मैथुनसे क्षीण होताहै उसके वायुके उपद्रव विशेष होतेहैं इसलिये उसे स्निग्ध वायुनाशक बृंहण विधि करनी श्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥

काकानुलूकान्नकुलान्विडालान्गण्डूपदान्व्यालविलेशयाखून् ।

गृध्रांश्च दद्याद्द्विविधैः प्रकारैः ससैधवान्सर्षपतैलभृष्टान् ॥ ३४ ॥

देयानि मांसानि च जांगलानि मुद्गाढकीसूपरसाश्च हृद्याः ।

खरोष्ट्रनागाश्चतुराश्चजानि देयानि मांसानि सुकल्पितानि ॥ ३५ ॥

काक उल्लू नकुल बिलाव गिंडोवे व्याल ( निर्विष सर्प या हिंसक चतुष्पद ) बिलके रहनेवाले तथा चूहे गीध इनके मांसको सरसोंके तैलमें भूनकर सेंधा-नमक मिलाकर अनेक प्रकारसे ( पाक बनाके ) देना चाहिये ॥ ३४ ॥ तथा जंगली जीवोंका मांस अथवा मूंग या अरहर ( तूर ) की दालका हृदयप्रिय

( श्लो० ३१ ) शोधनं स्निग्धस्यैव मृदु कर्तव्यं तथा चोक्तं भावप्रकाशे—“बलिनो बहुदोषस्य पंचकर्माणि कारयेत् । यक्ष्मिणः क्षीणदेहस्य तत्कृतं स्याद्विषोपमम्” “मलायतं बलं पुंसां शुक्रायत्तं च जीवितम् । तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मल्लरेतसी” इति ।

रस देना योग्य है तथा गंधे कंड हाथी अश्वतर ( खजूर ) और घोड़ा इनका मांस भी जहां योग्य हो सुंदर कल्पना करके देवे ॥ ३५ ॥

### क्षयनाशक अन्य प्रयोग ।

मांसोपदेशांश्च पिवेदेरिष्टान्माष्वीकयुक्ता मदिराश्च सेव्याः ।  
अकामृताक्षारजलोपितेभ्यः कृत्वा यवेभ्यो विविधांश्च भ-  
क्ष्यान् ॥ ३६ ॥ खौदेत्पिवेत्संपिरजोविकं वा कृशो यवाग्वा  
सह भक्तकाले । सपिर्मधुभ्यां त्रिकटु प्रलिह्यान्नव्याविडंगोप-  
हितं क्षयार्तिः ॥ ३७ ॥ मांसादेमांसेषु घृतं च सिद्धं शोषोपहं  
क्षौद्रकणासमेतम् । द्राक्षासितामागधिकावलेहः सक्षौद्रतैलः  
क्षयरोगयाती ॥ ३८ ॥

मांस पड़े हुए जरिष्ट ( नाउल्ल हम ) पीवे ( या इस प्रकारसे जरिष्ट पीवे  
कि उसपर मांसका उपदेशानुकर किया जावे ) तथा सुनका या किशमिसंके  
रस मिलाहुई मदिरा पीवे तथा आक और गिलोयकी भस्मके जलमें रातभर  
जप भिगोकर उनके पाक बनाकर खावे ॥ ३६ ॥ तथा यकरी या भेड़का  
घृतघान घरे और जो दुबल हो यह भोजनके समय यवागुमें मिलाकर खावे  
अथवा शिबदुवा दाहद और घृतमें मिलाकर नप्प और विट्गयुत करके  
क्षणरा रोगो नाटे ॥ ३७ ॥ अथवा मांस खानेवाले जीव ( गीध आदि ) के  
मांससे मिद कियाहुआ घृत दाहद और पीपल मिलाकर सेवन करना शोष  
रोगको नाश करताहै तथा सुनका मिर्ची पीपल इनका अचलेह दाहद और  
तैलगुत क्षयरोगका पाती है ॥ ३८ ॥

( पतञ्जल ) ये दारोका रोग पहले समयके हैं अब हम भोजि की निमित्त  
बमंड नहीं और न कमी जानके अब समय मलाई और सुशुमाग्राका है ॥

घृतेन चोनेन समाक्षिप्य नुरंगगंधानिलमापचरणम् ।

सिताक्षरगंधामगधोद्वानां त्रणं घृतं क्षौद्रयुतं प्रलिह्यात् ॥ ३९ ॥

खौं पिवेदोप्ययं खानिगंधा विषकमेव लभते च पुष्टिम् ।

सैहल्यैव क्षीरं घृतं मिलाप्यं प्रातः पिवेदोप्यं पयोनिपानम् ॥ ४० ॥

( श्री- ३९ ) खौं पिवेदोप्यं सय भवति सय भवति सिद्धिः सैहल्यैव पयोनिपानम्  
सय भवति ॥ ३९ ॥

उत्सादने चापि तुरंगगंधा योज्या यवाश्चैव पुनर्नवे च ।

कृत्स्ने वृषे तत्कुसुमैश्च सिद्धं सर्पिः पिवेत्क्षौद्रयुतं हिताशी ॥४१॥

यक्ष्माणमेतत्प्रवलं च कांसं श्वासं च हन्यादपि पाण्डुतां च ॥४२॥

बकरीका घृत शहद असगंध तिल उड़दका चूर्ण इन्हें मिलाके चाटे अथवा मिश्री असगंध पीपल इनको पीसकर शहद घृत मिलाके चाटे ॥ ३९ ॥ अथवा असगंधसे पकायाहुवा दूध मिश्री मिलाकर पीवे या इससे निकालाहुवा घृत मिश्रीके संग पीकर ऊपरसे दूध पीवे इससे पुष्टि प्राप्त होती है ॥ ४० ॥ उत्सादन ( शरीरपर उबटन करने ) के लिये असगंध जौ और दोनों सांठी उपयोग करनी चाहियें तथा वांसेके पंचांग या उसके फूलोंसे सिद्ध कियाहुआ घृत शहद मिलाकर पीवे और हितका भोजन करे यह घृत राजयक्ष्माको प्रवल खांसीको श्वासको और पाण्डुताको नष्ट करता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

### क्षयनाशक घृत ।

शंकुद्रसा गोश्वगजाव्यजानां काथां मित्तांश्चापि तथैव-  
भागैः । मूर्वाहरिद्राखदिरद्रुमाणां क्षीरस्य भागस्त्वपरो  
घृतस्य ॥ ४३ ॥ भागान् दशैतान्विपचेद्विधिज्ञो दत्त्वा  
त्रिवर्गं मधुरं च कृत्स्नम् । कटुत्रिकं चैव सभद्रदारु घृतो-  
त्तमं यक्ष्मनिर्वारणाय ॥ ४४ ॥

गौ घोड़ा हाथी भेड़ बकरी इनका गोवर लेकर रस निचोड़लेना सब का रस एक एक भाग ले और मूर्वा हलदी और खैर इनका काथ जुदा जुदा एक एक भाग ले ( ऐसे ये आठ भाग हुये ) और एकभाग दूध लेवे और एकही भाग घृत लेवे ॥ ४३ ॥ ऐसे ये दश वस्तु दश भाग इन्हें विधिज्ञ वैद्य पकावे इसमें त्रिवर्ग ( त्रिफला ) और सब मधुरद्रव्य ( काकोल्यादि ) त्रिकटु और भद्रदारु पकतेमें डाले यह घृत यक्ष्मा ( राजयक्ष्मा ) के निवारण करनेमें उत्तम है ॥ ४४ ॥

द्वे पंचमूल्यौ वरणं करंजं भल्लातकं विल्वपुनर्नवे च ।

यवान्कुलत्थान्वदराणि भार्ज्जी पाठां हुताशं समहीकदंवम् ॥४५॥

कृत्वा कपायं विपचेद्धि तेन्य पैशभिर्हि पात्रिघृतपात्रमेकम् ।

व्योषं महावृक्षपयोऽभयां च चव्यं सुराख्यं लवणोत्तमं च ॥ ४६ ॥

एतांश्च शोषं जठराणि चैवं हन्यात्प्रमेहांश्च सद्धानिलेन ॥ ४७ ॥

दोनों पंचमूल अर्थात् दशमूल वरणा करंज विल्व दोनों सांठी जो कृत्वा  
और भारंगी पाटा चित्रक और पुष्पकदंब ॥ ४५ ॥ इन सबका फाय  
बनाकर छः पात्र लेवे इसमें एक पात्र घृत डालकर पक्कावे और विषट्क थोहर  
का दूध भरके नाल देवदारु सेथव इनका फालक करके इसमें डाले यह घृत  
शोष रोग उदरविकार और वायुसहित प्रमेहोंका नष्ट करता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

गोश्चाव्यजेभेणखरोद्भजातः शङ्खद्रसक्षीररसक्षतोत्थैः ।

द्वादाश्वगंधामगधासिताभिः सिद्धं घृतं यक्ष्मविकारहृदि ॥ ४८ ॥

नी घोड़ी भेड़ बकरी हथनी हिरनी गधो केंदनी इन सबके गोबर का रस  
दूध मांसरस और क्षीर तथा मुनगा जसगंध पीपल मिर्ची इनमें मिष्ट  
किया हुआ घृत राजयक्ष्मोंके विकारोंका नष्ट करता है ॥ ४८ ॥

एलाजमोदामलकाभयाक्षगायत्र्यरिष्टासनशालसागन् ।

विडंगभद्रातकचित्रकोयाकटुविकांभोदसुराद्रजाश्च ॥ ४९ ॥

पक्त्वा जले तेन पचेद्धि सर्पिल्लस्मिन्सुसिद्धे त्ववतारिते च ।

विशत्पलान्यत्र सितोपलाया दत्त्वा तुगाक्षीरि पलानि पट्ट च ५०

प्रस्ये घृतस्य द्विगुणं च दद्यात्क्षौद्रं ततो मथ्यन्तं विदध्यात् ।

पलं पलं प्रातरतः प्रलिङ्गात्पश्चात्पिबेत्क्षौग्मतंद्रितश्च ॥ ५१ ॥

एतांश्चि मेध्यं परमं पवित्रं चक्षुष्यमायुष्यमथो यशस्यम् ।

यक्ष्मोगमाशु व्यपदंति चेतत्पांशमयं चैव भगंदरं च ॥ ५२ ॥

धार्तं च हन्ति स्वरभेदकांश्च हृत्प्रीदगुल्मग्रहणीगदांश्च ।

न चात्र किंचित्परिवर्जनीयं ग्राह्यं चैतदुपास्यमानम् ॥ ५३ ॥

इलायची अजमोदा जोशोर हल्दी अंठड़ा और नींबू पिनेसार शालसा  
( जिसे भेड़के शालजड़का मार लेना मत न हो तो अंतर्ग्राह्य है ) विडंग  
भिल्वर विषक इला ( इसको अजमोदा कहते हैं ) विषट्क नागरनीया  
और पादपट्टी ॥ ४९ ॥ इनको जलमें पका करके दो इमों निर घृत मिष्ट  
की और दूध के दोस पल इमों मिष्टी और छः पट्ट मंदसंयत डाल

उत्सादने चापि तुरंगगंधा योज्या यवाश्चैव पुनर्नवे च ।

कृत्स्ने वृषे तत्कुसुमैश्च सिद्धं सर्पिः पिवेत्क्षौद्रयुतं हिताशी ॥४१॥

यक्ष्माणमेतत्प्रबलं च कांसं श्वासं च हन्यादपि पाण्डितां च ॥४२॥

बकरीका घृत शहद असगंध तिल उड़दका चूर्ण इन्हें मिलाके चाटे अथवा मिश्री असगंध पीपल इनको पीसकर शहद घृत मिलाके चाटे ॥ ३९ ॥ अथवा असगंधसे पकायाहुवा दूध मिश्री मिलाकर पीवे या इससे निकालाहुवा घृत मिश्रीके संग पीकर ऊपरसे दूध पीवे इससे पुष्टि प्राप्त होती है ॥ ४० ॥ उत्सादन ( शरीरपर उबटन करने ) के लिये असगंध जौ और दोनों सांठी उपयोग करनी चाहियें तथा वांसके पंचांग या उसके फूलोंसे सिद्ध कियाहुआ घृत शहद मिलाकर पीवे और हितका भोजन करे यह घृत राजयक्ष्माको प्रबल खांसीको श्वासको और पाण्डुताको नष्ट करता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

### क्षयनाशक घृत ।

शकृद्रसा गोश्वगजाव्यजानां काथां मित्तांश्चापि तथैव-  
भागैः । मूर्वाहरिद्राखदिरद्रुमाणां क्षीरस्य भागस्त्वपरो  
घृतस्य ॥ ४३ ॥ भागान् दशैतान्विपचेद्विधिज्ञो दत्त्वा  
त्रिवर्गं मधुरं च कृत्स्नम् । कण्टुत्रिकं चैव सभद्रदारु घृतो-  
त्तमं यक्ष्मनिर्वारणाय ॥ ४४ ॥

गौ घोड़ा हाथी भेड़ बकरी इनका गोबर लेकर रस निचोड़लेना सब का रस एक एक भाग ले और मूर्वा हलदी और खैर इनका काथ जुदा जुदा एक एक भाग ले ( ऐसे ये आठ भाग हुये ) और एकभाग दूध लेवे और एकही भाग घृत लेवे ॥ ४३ ॥ ऐसे ये दश वस्तु दश भाग इन्हें विधिज्ञ वैद्य पकावे इसमें त्रिवर्ग ( त्रिफला ) और सब मधुरद्रव्य ( काकोल्यादि ) त्रिकटु और भद्रदारु पकतेमें डाले यह घृत यक्ष्मा ( राजयक्ष्मा ) के निवारण करनेमें उत्तम है ॥ ४४ ॥

द्वे पंचमूल्यौ वरणं करंजं भल्लातकं विल्वपुनर्नवे च ।

यवान्कुलत्थान्वदराणि भाङ्गी पाठां हुताशं समहीकदंवम् ॥४५॥

कृत्वा कर्पायं विपचेद्धि तस्य पङ्क्तिभिर्हि पात्रैर्वृतपात्रमेकम् ।

व्योषं महावृक्षपयोऽभ्यां च चव्यं सुराख्यं लवणोत्तमं च ॥ ४६ ॥

एतद्धि शोषं जठराणि चैवं हन्यात्प्रमेहांश्च सहानिलेन ॥ ४७ ॥

दोनों पंचमूल अर्थात् दशमूल वरणा करंज बिल्व दोनों सांठी जौ कुलथी  
वेर भारंगी पाठा चित्रक और पृथ्वीकदंब ॥ ४५ ॥ इन सबका काथ  
बनाकर छः पात्र लेवे इसमें एक पात्र घृत डालकर पकावे और त्रिकटु थोहर  
का दूध हरड़े चव्य देवदारु सेंधव इनका कल्क करके इसमें डाले यह घृत  
शोष रोग उदरविकार और वायुसहित प्रमेहोंको नष्ट करता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

गोश्वाव्यजेभैणखरोट्टजातैः शकृद्रसक्षीररसक्षतोत्थैः ।

द्राक्षाश्वगंधामगधासिताभिः सिद्धं घृतं यक्ष्मविकारहारि ॥ ४८ ॥

गौ घोड़ी भेड़ बकरी हथनी हिरनी गधी ऊँटनी इन सबके गोबर का रस  
दूध मांसरस और रुधिर तथा मुनक्का असगंध पीपल मिश्री इनसे सिद्ध  
किया हुआ घृत राजयक्ष्माके विकारको नष्ट करता है ॥ ४८ ॥

एलाजमोदामलकाभयाक्षगायत्र्यरिष्टासनशालसारान् ।

विडंगभल्लातकचित्रकोप्राकटुत्रिकांभोदसुराट्टजाश्च ॥ ४९ ॥

पक्त्वा जले तेन पचेद्धि सर्पिस्तस्मिन्सुसिद्धे त्वक्वतारिते च ।

त्रिंशत्पलान्यत्र सितोपलाया दत्वा तुगाक्षीरि पलानि पट् च ५०

प्रस्थे घृतस्य द्विगुणं च दद्यात्क्षौद्रं ततो मंथहतं विदध्यात् ।

पलं पलं प्रातरतः प्रलिह्यात्पश्चात्पिबेत्क्षीरमतंद्रितश्च ॥ ५१ ॥

एतद्धि मेध्यं परमं पवित्रं चक्षुष्यमायुष्यमथो यशस्यम् ।

यक्ष्माणमाणु व्यर्पहन्ति चैतत्पाण्ड्यामयं चैव भगंदरं च ॥ ५२ ॥

श्वासं च हन्ति स्वरभेदकांश्च हृत्प्लीहगुल्मग्रहणीगदांश्च ।

न चात्र किंचित्परिवर्जनीयं रसायनं चैतदुपास्यमानम् ॥ ५३ ॥

इलायची अजमोदा आवले हरड़े बहेड़ा खैर नींबू विजैसार शालसार  
( खैरसे लेकर शालतकका सार लेना सार न हो तो अंतरालाल लेनी ) विडंग  
भिल्लातक चित्रक उग्रा ( वच फड़े अजवायन कहते हैं ) त्रिकटु नागरमोथा  
और फडकड़ी ॥ ४९ ॥ इनको जलमें पका काय करे इससे फिर घृत सिद्ध  
करे और उतार ले तीस पल इसमें मिश्री और छः पल चंदलोचन डाल



दे ॥ ५० ॥ प्रस्थभर घृतमें दो प्रस्थ शहद मिलावे और इन सबको रईसे मथकर मिला लेवे फिर इसमेंसे एक पल प्रभात लेवे ( चाटे ) और ऊपरसे सावधान होकर दूध पीवे ॥ ५१ ॥ यह योग परम पवित्र और मेध्य है नेत्रोंको हित आयु बढ़ानेवाला और यश देनेवाला है और राजयक्ष्माको यह शीघ्र ही दूर करदेता है तथा पांडुरोग और भगंदरको भी नाश करदेता है ॥ ५२ ॥ तथा श्वास स्वरभेद हृदयरोग ग्रीहा गुल्म ग्रहणी इन सबको यह दूर करता है इसमें किसी भी बातका त्याग नहीं है और इसका सेवन करना रसायन है ॥ ५३ ॥

ग्रीहोदरोक्तं विहितं च सर्पिस्त्रीण्येव चान्यानि हितानि चात्र ।

उपद्रवांश्च स्वरवैकृतादीञ्जयेद्यथास्वं प्रसमीक्ष्य शास्त्रम् ॥५४॥

ग्रीहोदरमें कहाडुआ घृत तथा अन्य तीन घृत ( उदर रोगोक्त ) भी यहां हितकारक हैं और स्वरभेदादिक अन्य जो जो उपद्रव हों उन्हें यथायोग्य शास्त्र देखकर शांत करे ॥ ५४ ॥

( वक्तव्य ) ऊपर जो तीन घृत कहे वे ये हैं ( १ ) हरीतकी चूर्णादि ( २ ) गव्ये पयसीत्यादि ( ३ ) चव्य चित्रकादि देखो चिकित्सितस्थान अध्याय १४ परंतु ये अनुलोमजक्ष्मीमें स्रोतोवरोध शांतिके लिये विरेचनीय है ॥ ५४ ॥

अजाशकृन्मूत्रपयोघृतामृङ्मांसालयानि प्रतिसेवमानः ।

स्नानादिनानाविधिना जर्हाति मांसादर्शेषं नियमेन शोषम् ॥५५॥

रसोनयोगं विधिवत्क्षयार्तः क्षीरेण वा नागबलाप्रयोगम् ।

सेवेत वा मागधिकाविधानं तथोपयोगं जतुनोऽश्मजस्य ॥५६॥

बकरीकी मैगनी बकरीका मूत्र बकरीका दूध बकरीका घृत बकरीका रुधिर बकरी ( या बकरे ) का मांस बकरीके रखनेका स्थान इन सबको यथा योग्य स्नान भोजनादिमें नाना प्रकारसे उपयोग करे तो अवश्य एक महीने में शोष ( यक्ष्मा ) निःशेष नष्ट होजावे बकरीकी मैगनी उबटनमें डाले मूत्रसे शरीर धोवे फिर साफ पानीसे साफ करले इसीप्रकार दूध मांसादिको पीने और खानेमें नियमसे उपयोग करे ॥ ५५ ॥ अथवा क्षयका रोगी लहसनको

( श्लो० ५५ ) अजाशब्दः शकृदादिभिः आलयांतैः प्रत्येकं संबध्यते ।

( श्लो० ५६ ) रसोनयोगमिति । विधिवद्यथाशास्त्रं सेवेतेति नागबलाप्रयोगं च मागधिकाविधानाभ्यां संबध्यते तथेति क्षीरेणेत्यर्थः । ( इति नि० सं० )

विधिपूर्वक सेवन करे अथवा दूधसे नागवलाका प्रयोग करे अथवा पीपलों को या शिलार्जितको दूधके संग उपयोग करे ॥ ५६ ॥

## क्षयरोगमें पथ्यापथ्य ।

शोकं स्त्रियं क्रोधमसूयनं च त्यजेदुदारान्विषयान् भजेत् ।

वैद्यान्दिवाजातींस्त्रिदशान्गुरुंश्चैवांचश्च पुण्याः शृणुयाद्विजेभ्यः ५७॥

इत्युत्तरतन्त्रे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

शोक स्त्रीसंगम क्रोध पराई निंदा और उदार विषय ( आति चिंता श्रम प्रयास आदि ) को त्याग देवे और विद्वान् वैद्यों द्विजों ( ब्राह्मणादि ) को देवताओंको गुरुओंको सेवन करे तथा पंडितोंसे पवित्र वाणी कथा पुराणादि सुनता रहे कई उदार विषयोंको “भजेत” के साथ लगाकर यों अर्थ करते हैं कि उदार विषयोंको जो धर्मके अविरुद्ध मनके अनुकूल उन्हें सेवन करे ॥ ५७ ॥

डाक्टरोंमें राजयक्ष्मा ( क्षयी ) को थाइसिस ( Phthisis ) कहते हैं और उर क्षतको “न्यूमोनिया” से मिलते हैं ॥

और यूनानीवाले इनको सिलही समझते और कहतेहैं पर उसका भी कारण छाती और फेफड़ोंपर नजूल गिरनेसे वहां जखम पड़जाना कहतेहैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायाभाषाटीकाया उत्तरतन्त्रे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

## द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ४२.

अथातो गुल्मप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम गुल्मकी चिकित्साकी व्याख्या करतेहैं ॥

### गुल्मकी संप्राप्ति और रूप ।

यथोक्तैः कोपेनदोषैः कुपिताः कोष्ठमार्गताः ।

जनयन्ति नृणां गुल्मं स पञ्चविध उच्यते ॥ १ ॥

हृद्रस्त्योरंतरे ग्रंथिः संचारी यदिवाऽचलः ।

चयापचयवान्वृत्तः स गुल्म इति कीर्तितः ॥ २ ॥

पहले सूत्रस्थानमें फेहड़ण वातादि दोषोंके कोपके कारणोंसे कुपित हुए वातवायुफेहड़ण दोष जब कोष्ठ ( उदर ) में स्थित होतेहैं तब मनुष्योंके गुल्म

( अं० २ ) चयापचयवान्वृत्त इति क्षयवान् कदाचिद्वर्जित कदाचिन्नायते इत्यर्थः ।

( गोला या गाँठ ) उदरमें पैदा करदेते हैं वह गुल्म रोग पांच प्रकारका होताहै ॥ १ ॥ हृदय और वस्तिके बीचमेंसे कहीं स्थिर अथवा चलायमान ( टहलनेवाली ) जो ग्रंथि हो और घटने बढनेवाली तथा गोल ( छोटे बेरसे लेकर बडे कैथके फलतक अनुमानकी प्राय गोल गाँठसी उदरके भीतर ) हो उसे गुल्म कहतेहैं ॥ २ ॥

## गुल्मके स्थान और निरुक्ति ।

पंच गुल्माश्रया नृणां पार्श्वे हन्नाभिवस्तयः ॥ ३ ॥

कुपितानिलमूलत्वाद्गूढमूलोदयादपि ।

गुल्मवद्वा विशालत्वाद्गुल्म इत्यभिधीयते ॥ ४ ॥

मनुष्योंके उदरमें गुल्मके पाँच स्थान हैं दोनों पँसवाडोंकी तरफ तथा हृदय ( कौडीके पास ) नाभि ( नाभिके पास ) तथा वस्तिस्थान ( अर्थात् इन स्थानोंमें गुल्म होताहै ) ॥ ३ ॥ कुपित हुई वायु इसका मूल होनेसे तथा गूढ ( उदरांतर्गत ) मूलके उदय होनेसे तथा गुल्म ( कंद ) की भांति विशाल होनेसे इसे गुल्म कहतेहैं ॥ ४ ॥

सं यस्मादात्मनि चयं गच्छत्यप्स्विर्व बुद्बुदः ।

अंतः सरति यस्माच्च न पौकमुपयात्यंतः ॥ ५ ॥

यह गुल्म अपने समान व्यक्तियोंसे संचित होताहै जैसे जलमें बुलबुला उठकर यदि टूटे तो उसीमें प्रविष्ट होजाताहै इसी कारणसे गुल्म पकता नहीं ( और अंतर्विद्रधि अपने असमानदोषों पित्तरक्तादिसे होताह वह शीघ्र पकजाता है ) ॥ ५ ॥

( वक्तव्य ) गुल्ममें विशेष भाग वायु या कफका होताहै जो उसके स्थान की व्यक्तिके प्रायः समानही व्यक्ति है इसीसे यह नहीं पकता है परंतु हां यदि इसमें भी दूषित रक्तपित्त आदिका माहा विशेष हो तो पक भी जाता है देखो टिप्पणी ॥

( श्लो० ४ ) गुल्मः एकमूलेषु संघातजातेषु शरेषुप्रभृतिषु तृणभेदेषु कंदेषु च तद् विशालत्वात् गुल्म इति अभिधीयते ।

( श्लो० ५ ) स गुल्मः यस्मात्कारणात् आत्मनि स्वावयवे चयं गच्छति अप्सु जले बुद्बुदः यथा उद्गच्छति तथा गुल्मरूपो दोषः स्वयमेवोद्गच्छति । अंतः अंतरे सरति भ्रमति एवंभूतः प्रायेण वातिको भवति स च न पच्यते इतरे च वदन्ति गुल्मो यदा रक्तादिस्थानमधिष्ठायावतिष्ठते तदा कदाचिद् पचेद् ( इति नि० सं० )

सर्व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि वोच्छ्रितैः ।

पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः ॥ ६ ॥

मनुष्योंके अर्थात् पुरुषोंके वायु आदि पृथक् दोषोंसे तथा सबके सन्निपा-  
तसे गुल्म होताहै और स्त्रियोंके रक्तसे भी गुल्म होताहै—( यद्यपि बहुधा  
रक्त गुल्म स्त्रियोंही के होताहै जो आर्तव या प्रमूतावशिष्ट रक्तके रुकनेसे  
होताहै परंतु कभी २ पुरुषोंके भी शारीरक रक्तधातुसे रक्तगुल्म  
होजाताहै ) ॥ ६ ॥

सदनं मंदतां वेहेराटोपोऽत्राविकूजनम् ।

विण्मूत्रानिलसंगश्च सौहित्यासहता तथा ।

द्वेषोन्ने वायुरूद्धं च पूर्वरूपेषु गुल्मिनाम् ॥ ७ ॥

शरीरमें शिथिलता होना मंदगति अफारा आंतें बोलना दस्त पेशाब और  
अधोवायुका रुक कर आना तृपाकी अक्षमता होना अन्नपर अरुचि होना  
और वायुका ऊर्द्धगमन होना ये लक्षण गुल्मके पूर्वरूपमें होते हैं ( सौ-  
हित्यासहताका अर्थ डल्लनमिश्रजीने तृष्णाका अक्षमत्व लिखा है परंतु  
वाचस्पत्यादिमें सौहित्यका अर्थ तृप्ति है अर्थात् पेट भरेपर सहा न जाय  
भोजन भरपेट करनेपर पेट फटासा जावे और ऐसाही भावमिश्रजीने  
लिखाहै ) ( देखो टिप्पणी ) ॥ ७ ॥

वातगुल्म और पित्तगुल्मके लक्षण ।

हृत्कुक्षिशूलं मुखकण्ठशोषो वायुर्निरुद्धो विपमाग्निता च ।

ते ते विकाराः पवनात्मकाश्च भवन्ति गुल्मेऽनिलसंभवे तु ॥ ८ ॥

स्वेदज्वराहारविद्राहदाहास्तृष्णाऽगरागः कटुवक्रता च ।

पित्तस्य लिङ्गान्यखिलानि यानि पित्तात्मके तानि भवन्ति गुल्मे ९

( श्लो० ६ ) रक्तेन चापर इत्यत्र चकारात् धातुरनेनापि गुल्मो जायते न च  
इसां स्त्रीणां च भवति ( इति डल्लनः ) । वृद्धताग्भटे अष्टविधो गुल्मः पठितः । तथा  
चोक्तम् "गुल्मोऽथा पृथग्दोषैः संसृष्टैर्नित्यं गतः । आर्तवस्य च दोषेण नास्तीनां  
जायतेऽष्टमः " इति ।

( श्लो० ७ ) सौहित्यासहता तृष्णासह्यत्वं । वायुरूद्धं च इति सन्ततोद्धार इत्यर्थः ।  
( इति ति० सं० ) वाचस्पत्ये तु सौहित्यं तृप्तिः तस्य अक्षमत्वं तृप्तिपर्यंतकृतभोजने अस-  
ह्यत्वं तदपरस्परोदभवप्रवर्तनं । तथा चोक्तं भावनकाने । "तृप्त्यभ्यस्यंतिपि कुलनं च" इति ।

हृदय और कूखमें झूल हो मुख और कंठ सूखे वायु रुकजावे जठराग्नि विषम होजावे तथा वायुके अन्यविकार भी होवें ये लक्षण वायुके गुल्ममें होतेहैं ॥ ८ ॥ पसीना आवे ज्वर रहे भोजनके पीछे विदाह हो ( अर्थात् जलीजलीसी डकार आवें ) दाह हो तृषा अधिक लगे शरीर ( तथा चेहरे ) का रंग ललाईपर हो मुँहमें कटुता ( चरकापन ) रहे तथा पित्तके अन्य जो जो चिह्न हैं वे भी हों ये लक्षण पित्तगुल्ममें होतेहैं ॥ ९ ॥

## कफज सन्निपातज और रक्तज गुल्मके लक्षण ।

स्तैमित्यमन्नेऽरुचिरंगसादृच्छदिः प्रसेको मधुरास्यता च ।

कफस्य लिंगानि च यानि तानि भवंति गुल्मे कफसंभवे तु १०

सर्वात्मकः सर्वविकारयुक्तः सोऽसाध्य उक्तः क्षतजश्च वक्ष्ये ।

नवप्रसूताऽहितभोजना या या चामर्गर्भे विस्मृजेदंतौ वा ॥११॥

वायुर्हि तस्याः परिगृह्यरक्तं करोति गुल्मं संरुजं सदाहम् ।

पैत्तस्य लिंगेन समानलिंगं विशेषणं चाप्यपरं निबोध ॥१२॥

न स्यंदते नोदरमेति वृद्धिं भवंति लिंगानि च गर्भिणीनाम् ।

तं गर्भकालातिगमे चिकित्स्यमसृग्भवं गुल्ममुशंति तज्ज्ञाः १३

कफके गुल्ममें स्तैमित्य ( शरीर गीलासा ) हो अन्नमें अरुचि अंगोंमें शिथिलता वमन मुँहसे लार बहना या पानी भरभर आना मुँह मीठा रहे तथा कफके जो और लक्षण हैं ( जैसे गुरुता आदि ) वे भी कफके गुल्ममें होतेहैं ॥ १० ॥ सन्निपातके गुल्ममें सबके लक्षण और सब दोषोंके विकार होतेहैं यह सन्निपातका गुल्म असाध्य होताहै इससे आगे हम क्षतज गुल्मको कहेंगे ( क्षतज रक्तगुल्मको समझिये ) नवीन प्रसूता स्त्री अहित भोजन करे या जिसके गर्भपात हो वह अहित भोजन करे या ऋतुधर्मके समय अहित वातुल आहार विहार करे तो वायु उसके रुधिरको रोककर पीडा सहित और दाहसहित गुल्म ( रक्तगुल्म ) पैदा करता है इसके लक्षण प्रायः पित्त गुल्मके समानही होतेहैं तथा जो विशेष होतेहैं उन्हें सुनो ॥११॥ १२॥ गर्भकी भांति फिरे नहीं और न गर्भकी भांति पेट बढे परंतु छर्द्यादिक लक्षण बहुधा गर्भिणीकेसे हों इसे वैद्य रक्तगुल्म कहतेहैं इसकी चिकित्सा गर्भकी अवधि ( दश महीने ) पीछे करनी चाहिये ॥ १३ ॥

( श्लो० ११ ) क्षतजं च वक्ष्ये क्षतजं रुधिरं तद्भवो गुल्मः क्षतजः रक्तगुल्म इत्यर्थः ।

## गुल्मकी चिकित्सा ।

वातगुल्मादितं स्निग्धं युक्तं स्नेह विरेचनैः ।  
 उपाचरेद्यथाकालं निरूहैः सानुवासनैः ॥ १४ ॥  
 पित्तगुल्मादितं स्निग्धं काकोल्यादिघृतेन तु ।  
 विरिक्तं मधुरैर्यौ गौनिरूहैः समुपाचरेत् ॥ १५ ॥  
 श्लेष्मगुल्मादितं स्निग्धं पिप्पल्यादिघृतेन तु ।  
 तीक्ष्णैर्विरिक्तं तद्रूपैः निरूहैः समुपाचरेत् ॥ १६ ॥  
 सन्निपातोत्थिते गुल्मे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः ।  
 पित्तवद्रक्तगुल्मिन्यां नार्याः कार्यः क्रियाविधिः ॥ १७ ॥

वायुके गुल्मसे पीडित मनुष्यको स्नेहों(यथोचित चतुःस्नेहों)से स्निग्ध करके स्नेह विरेचन देना चाहिये और कालके अनुसार निरूहण और अनुवासनवस्तिका भी उपचार करें॥१४॥पित्त गुल्मके रोगीको काकोल्यादिके घृतसे स्नेहन करे और मधुर द्रव्योंके योगसे विरेचन दे और इसी भांति निरूहण वस्ति का उपचार करें ॥ १५ ॥ कफ गुल्मवालेको पिप्पल्यादिसे सिद्ध किये घृतसे स्नेहन करे और तीक्ष्ण विरेचन देवे और ऐसे ही निरूहण वस्तिका उपचार करना ॥ १६ ॥ सन्निपातका गुल्म हो तो तीनों दोषनाशक विधि करनी हितकारक है तथा रक्त गुल्मवाली स्त्रीकी चिकित्सा पित्तगुल्मके समान करनी चाहिये ॥ १७ ॥

विशेषमपरं चास्याः शृणु रक्तविभेदनम् ।  
 पलाशभस्मतोयेन सिद्धं सर्पिः प्रयोजयेत् ॥ १८ ॥  
 दद्यादुत्तरवस्तिं च पिप्पल्यादिघृतेन तु ।  
 उष्णैर्वा भेदयेद्रिन्नं विधिरासृक्दरो हितः ॥ १९ ॥

रक्तगुल्म जो स्त्रियोंके होताहै उसके भेदनका विशेष विधि सुनो पलाश ( शफ ) की राख ( या क्षार ) के जलसे सिद्ध किया घृत उपयोग करें॥१८॥ तथा पिप्पल्यादि घृतकी उत्तरवस्ति दे अथवा उष्ण पदार्थोंसे रक्तगुल्मको भेदन करके फिर असृग्दर ( प्रदर ) की विधि करके साधन करें ॥ १९ ॥

आनूपौदकमज्जानो वसातैलं घृतं दधि ।

विपक्रमेकतः शस्तं वातगुल्मेऽनुवासनम् ॥ २० ॥

जांगलैकशफानां तु वसा सर्पिंश्च पैत्तिके ।

तैलं जांगलमज्जान एवं गुल्मे कफोत्थिते ॥ २१ ॥

आनूप ( जल किनारेके ) और जलके जीवोंकी मज्जा चरबी तैल घृत और दही इनको एकत्र पकाकर वायुके गुल्मवालेके अनुवासन वस्ति करे ॥ २० ॥ और पित्तगुल्मवालेके जंगली और एक शफवाले जीवोंकी चर्बी और घृतकी अनुवासनवस्ति करे तथा कफके गुल्मवालेके जंगली जीवोंकी मज्जा और तैलकी वस्ति करना उचित है ॥ २१ ॥

वातगुल्मपर घृत ।

धात्रीफलानां स्वरसे षडंगं विपचेद्घृतम् ।

शर्करासैधवोपेतं तद्धितं वातगुल्मिने ॥ २२ ॥

आँवलोंके स्वरसमें षडंग घृत पकावे और खांड और सैधव डाले यह घृत वातगुल्मवालेको ( पान कराना ) हित है ( षडंगशब्दसे पंचकोल यवक्षारका कल्क युक्त करे ऐसा पायाजाता है ) ॥ २२ ॥

चित्रकादि घृत ।

चित्रकव्योषसिन्धूत्थपृथ्वीकाश्चव्यदाडिमौ ।

दीप्यकग्रंथिकाजाजिहबुषाधान्यकैःसमैः ॥ २३ ॥

दध्यारनालबदरमूलकस्वरसैर्घृतम् ।

तत्पिबेद्वातगुल्माग्निदौर्बल्याटोपशूलनुत् ॥ २४ ॥

चित्रक त्रिकटु ( सोंठ मिरच पीपल ) सेंधानमक हिंगुपत्री चव्य और अनारदाना अजमोदा पीपलामूल जीरा हाऊबेर और धनियाँ इनको समान भाग लेवे ॥ २३ ॥ तथा दही कांजी बेर और मूलीका रस डालकर घृत पकावे इसे वातगुल्ममें पान करे तथा यह मंदाग्नि और अफारा तथा शूलको भी नाश करता है ॥ २४ ॥

( श्लो० २२ ) षडंगं घृतं विपचेत् । अत्र धात्रीफलानां स्वरसे चतुर्गुणे । षडंगमिति षट्पलकम् । तेनात्र पंचकोलयवक्षारकल्कमिति लभ्यते ( इति दल्लनः )



## गुल्मनाशक अनेक घृतोंका उपदेश ।

हिंगुसौवर्चलाजाजीविडदाडिमदीप्यकैः ।

पुष्करव्योपधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः ॥ २५ ॥

शठीवचाजगंधेलासुरसैश्च विपाचितम् ।

शूलानाहहरं सर्पिर्दध्ना चानिलगुल्मिनाम् ॥ २६ ॥

विडदाडिमसिंधूत्थहुतभुग्व्योपजीरकैः ।

हिंगुसौवर्चलक्षारुगृक्षाम्लाम्लवेतसैः ॥ २७ ॥

बीजपूररसोपेतं सर्पिर्दधिचतुर्गुणम् ।

साधितं दाधिकं नाम गुल्महृत्प्लीहशूलजित् ॥ २८ ॥

हिंगु कालानोन जीरा विडनोन अनारदाना अजमोदा पुष्करमूल सोंठ  
मिरच पीपल धनियाँ अम्लवेतस यवक्षार और चित्रक ॥ २५ ॥ कच्चा  
वच अजगंधा ( ममरी ) इलायची तुलसी चौशुना दही इनसे पकाया हुवा  
घृत शूल और अफारेको नाश करताहे तथा बात गुल्मवालोंको हित है ॥ २६ ॥  
विडनोन अनारदाना सेंधानमक चित्रक त्रिकटु जीरा हींग सोंचरनोन  
यवक्षार रुक् ( अर्थात् कूट ) वृक्षाम्ल ( तितडीक ) और अम्ल वेतस ॥  
॥ २७ ॥ इनको एकत्रकर विजोरेका रस और दही चौशुना डालकर घृत  
पकावे यह दाधिक नाम घृत गुल्म हृदयरोग प्लीहा और शूल इनको जीतने-  
वाला है ॥ २८ ॥

रसोनस्वरसे सर्पिः पंचमूलरसान्वितम् ।

सुरारनालदध्यम्लमूलकस्वरसैः सह ॥ २९ ॥

व्योपदाडिमवृक्षाम्लयवानीचव्यसेधवेः ।

हिंग्वम्लवेतसाजाजीदीप्यकैश्च समांशकैः ॥ ३० ॥

सिद्धं गुल्मग्रहण्यर्शःश्वासोन्मादक्षयञ्चरान् ।

कासापस्मारमंदाग्निप्लीहशूलानिलाजयेत् ॥ ३१ ॥

दधि सौवीरकं सर्पिः कायो मुद्गकुलत्थजो ।

पंचाङ्कानि विपचेदावाप्य द्विपलान्यथ ॥ ३२ ॥

सौवर्चलं स्वर्जिकां च देवदार्व्यथ सैधवम् ।

वातगुल्मापहं सर्पिरेतदीपनमेव च ॥ ३३ ॥

लहसनका रस और बृहत्पंचमूलका काथ मदिरा कांजी दध्यम्ल ( दहीका तोड या खट्टा दही ) और मूलीका रस इनको मिलावे ॥ २९ ॥ त्रिकटु अनारदाना तितडीक अजवायन चव्य सैधानमक हींग अम्ल-वेतस जीरा अजमोदा इन सबको समान लेवे ॥ ३० ॥ और इनसे घृत सिद्ध करले यह घृत गुल्म ग्रहणी बवासीर श्वास उन्माद क्षय ज्वर खाँसी मृगी मंदाग्नि ग्रीहा शूल और वायुके रोग इन सबको जीत लेता है ॥ ३१ ॥ दही सौवीर ( एक प्रकारकी कांजी ) घृत तथा मूंग और कुलथीका काथ इन्हें एक एक आठक लेवे ( अर्थात् पांचों पांच आठक हुई ) और इनमें कालानमक सजीखार देवदारु सैधानमक ये दो दो पल डाल देवे और घृत पका लेवे यह घृत वातगुल्मका नाश करनेवाला है और दीपन भी है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

तृणमूलकषायै तु जीवनीयैः पंचेद्वृत्तम् ।

न्यग्रौधादिगणे वापि गणे वाप्युत्पलादिके ॥

रक्तपित्तोत्थितं भ्रंति घृतान्येतान्यसंशयम् ॥ ३४ ॥

तृण पंचमूलके काथमें जीवनीय गणसे घृत पकावे अथवा न्यग्रौधादि गणसे पकावे अथवा उत्पलादि गणसे पकावे ये घृत रक्तज तथा पित्त-ज गुल्मोंको निःसन्देह नाश करतेहैं ॥ ३४ ॥

आरग्वधादौ विपचेदीपनीययुतं घृतम् ।

क्षारवर्गे पचेच्चान्यत्पचेन्मूत्रगणेऽपरम् ।

भ्रंति गुल्मं कफोद्धृतं घृतान्येतान्यसंशयम् ॥ ३५ ॥

आरग्वधादिगणमें दीपनीय युक्त घृत पकावे अथवा क्षार वर्गमें पकावे अथवा मूत्रवर्गमें पकावे ये घृत कफके गुल्मको निःसंदेह नाश करतेहैं ॥ ३५ ॥

( श्लो० ३४ ) न्यग्रौधादिगणे उत्पलादिगणेऽपि जीवनीयमक्षेपपूर्वकानि साध्यानि घृतानि रक्तोत्थं पित्तोत्थं गुल्मं च भ्रंतीत्यर्थः ।

( श्लो० ३५ ) अत्रापि आरग्वधादौ क्षारवर्गे मूत्रगणेऽपि दीपनीयमक्षेपपूर्वकानि घृतानि साधनीयानित्यर्थः ।

यथादोषोच्छ्रयं चापि चिकित्सेत्सन्निपातिकम् ॥ ३६ ॥

चूर्णं हिंवादिकं वापि घृतं वा ग्रीहनाशनम् ।

पिवेद्गुल्मापहं काले सर्पिस्तैल्वकमेव वा ॥ ३७ ॥

यदि सन्निपातका गुल्म हो तो उसमें जौनसा दोष बलवान् हो उसीके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३६ ॥ अथवा हिंवादि चूर्ण सेवन करे या ग्रीहनाशक घृत ( जो ग्रीहाधिकारमें कहाँ है ) उसे समयपर पीवे वह भी गुल्मका नाश करनेवाला है तथा तैल्वक घृत ( जो वातव्याधिमें कहाँ है ) उसे सेवन करे ॥ ३७ ॥

## क्षारविधान ।

तिलेशुरकपालाशसार्पपं यवनालजम् ।

भस्म मूलकजं चापि गोजाविखरहस्तिनाम् ॥ ३८ ॥

मूत्रेण महिषीनां च पालिकैश्चावचूर्णितैः ।

कुष्ठसंधवयष्ट्याह्वनागरक्रिमिघातिभिः ॥ ३९ ॥

साजमोदैश्च दंशभिः सामुद्राच्च पलैर्युतम् ॥

अयःपात्रेऽग्निनाल्पेन पक्त्वा लेह्यमथोद्धरेत् ॥ ४० ॥

तस्य मात्रां पिवेद्वा सुरया सर्पिपापि वा ।

धान्याम्लेनोष्णतोयेन कौलत्येन रसेन वा ॥ ४१ ॥

गुल्मं वातविकारांश्च क्षारोयं हंत्यसंशयम् ॥ ४२ ॥

तिल तालमखाना टाक सरसों ( इनके वृक्ष या पंचांग ) और जौकी नाली तथा मूली इन सबको ( सुखाकर ) भस्म कर गौ बकरी भेड़ गधा हाथी और भैंस इनके मूत्रमें घोल दे ( और जुवाले ) फिर कूट संधव मुलैठी सोंठ बिड़ंग और अजमोदा इनको पल पल भर लेकर चूर्ण करके ढाले और समुद्रनोन दश पल मिलादे और लोहेकी फड़ाहीमें मंदा आंचसे पकावे और अबलेहसा होजावे तब उतार ले ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इसमेंसे मात्राके अनुसार दहीके संग या मद्यसे घृतसे दहीके पानीसे गरम जलसे या कुलपीके कायसे पीवे ( अर्थात् इनमेंसे किसीएकके साथ पीवे ) यह क्षार गुल्म और वात विकारोंको अवश्य नष्ट करताहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

स्वर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकजोऽपि वा ।

तैलेन शमयेत्पीतो गुल्मं पवनसंभवम् ॥ ४३ ॥

पीतं सुखांबुना वापि स्वर्जिकाकुष्ठसैधवम् ॥ ४४ ॥

केतक ( केवड़े ) के क्षारको सजी और कूट मिलाकर तैलके संग पीना वायुके गुल्मको शांत करताहै ॥ ४३ ॥ अथवा सजीखार कूट और सैधानमक इनका चूर्ण बनाके गरम पानीके साथ लेवे ॥ ४४ ॥

### गुल्मनाशक अन्यप्रयोग ।

वृश्चीकमुरुवूकं च वर्षाभूर्बृहतीद्वयम् ।

चित्रकं च जलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषितम् ॥ ४५ ॥

मागधीचित्रकक्षौद्रलिप्ते कुंभे निधापयेत् ।

मधुनः प्रस्थमावाप्य पथ्याचूर्णाद्धिसंयुतम् ॥ ४६ ॥

तुषोषितं दशाहं तु जीर्णभक्तः पिवेन्नरः ।

अरिष्टोऽयं जयेद्गुल्ममविर्पाकमरोचकम् ॥ ४७ ॥

सुपेद सांठी एरंड रक्त सांठी दोनों कटेली चित्रक इनको द्रोणभर पानीमें काथ करे चौथाई रहे उतार ले ॥ ४५ ॥ फिर एक घड़ेमें पीपल चित्रक शहद लेपन करके उसमें डाल दे और एक प्रस्थ शहद डाल दे और आधे प्रस्थ हरीतकीका चूर्ण भी मिला देवे ॥ ४६ ॥ और मुँह बंद करके दश दिनतक तुष ( यवके भूसे ) में दबा देवे फिर इसे निकालकर भोजन पचेपर पीवे यह अरिष्ट गुल्मको पचावटन होनेको तथा अरुचिको नष्ट करताहै ॥ ४७ ॥

पाटानिकुंभरजनीत्रिकटुत्रिफलाग्निकम् ।

लवणं वृक्षबीजं च तुल्यं स्यादनवं गुडम् ॥ ४८ ॥

पथ्याभिः सहितं चूर्णं गवां मूत्रयुतं पचेत् ।

गुटिकास्तद्वैनीभूतं कृत्वा खादेद्भुक्तवान् ॥ ४९ ॥

गुल्मं ग्रीहाग्निसादांश्च नाशयेयुरशेषतः ।

हृद्रोगं ग्रहणीदोषं पांडुरोगं च दारुणम् ॥ ५० ॥

पाठा दंती हलदी त्रिकटु त्रिफला चित्रक नमक इंद्रजौ इन्हें पीसकर सबके समान पुराना गुड मिलावे ॥ ४८ ॥ तथा इस चूर्णमें हरड़का चूर्ण

( सधान भाग ) मिलाकर गोमूत्र डालकर पका लेंव जब वह गाढ़ा होजावे तब गोली बनालेंवे इन्हें भोजन बिनाकरे खावे ( बलके अनुसार खावे ) ॥४९॥ इससे गुल्म मंदाभि निःशेष नष्ट होजातेहैं तथा हृद्दोग ग्रहणीदोष और दारुण पांडुरोग भी नष्ट होजातेहैं ॥ ५० ॥

सशूले सोन्नितेऽरूपंदे दाहपार्करुगान्विते ।

गुल्मे रंक्तं जलौकाभिः शिरामोक्षेण वा हरेत् ॥ ५१ ॥

जो गुल्म शूलयुक्त हो ऊपरको ( बाहरकी तरफ ) उठाहुआ हो चलाय-  
मान नहीं उसमें दाह हो पकावपर आगया हो या पक गया हो उसमें दरद-  
भी हो ऐसी अवस्थावाले गुल्ममें जलौका लगाकर या शिरामोक्ष ( फस्द ) से  
रुधिर निकाल देना उचित है ॥ ५१ ॥

गुल्ममें खानपान ।

सुखोष्णा जांगलरसाः सुस्निग्धा व्यक्तसैंधवाः ।

कटुत्रिकसमायुक्ता हिताः पाने च गुल्मिनाम् ॥ ५२ ॥

पेया वार्तहरैः सिद्धाः कौलत्थाः संस्कृता रसाः ।

खलाः सपंचमूलार्थं गुल्मिनां भोजने हिताः ॥ ५३ ॥

गुल्मवाले मनुष्योंको जंगली जीवोंके मांसका रस जो सैंधवनमक और  
त्रिकटुसे युक्त और घृतादिसे सुंदर स्निग्ध निवाया निवाया पिलाना  
हितकारक होताहै ॥ ५२ ॥ तथा वायुनाशक द्रव्यों ( भद्रदार्वादि ) से सिद्ध  
फराहई पेया पिलानी तथा बृहत्पंचमूलयुक्त और यथोक्त संस्कार दियेहुए  
कुलार्थिक खल ( कैथ दाडिम तत्र शाक आदिसं संस्कृत कबल ) भोजनमें  
हित होतेहैं ॥ ५३ ॥

दस्त और वायु रुकनेपर यत्न ।

वद्धवर्चोनिलानां तु सार्द्रकं क्षीरमिष्यते ।

कुंभीपिंडेष्टकास्वेदान्कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ ५४ ॥

( श्लो० ५१ ) दाहपार्करुगान्विते इत्यनेन गुल्मस्य कदाचित्काकोप भवेदिति नुप्यते ।

( श्लो० ५३ ) खलाः कपित्थदाडिमतमशाकादिमंरुताः कबला इति मणिद्वयः ।

( इति नि० ६० )

जिन गुल्मरोगियोंके दस्त और अधोवायु बंद हो या कम हो उन्हें अदरख को दूधके साथ पिलाना चाहिये तथा कुंभी ( घड़ा बोतल आदि ) से या पिंडेसे या ईंटसे स्वेदन करावे ( अर्थात् सेंके ) ॥ ५४ ॥

गुल्मिनः सर्व एवोक्ता दुर्विरेच्यतमा भृशम् ।

अतश्चैतांस्तु सुस्विन्नान्स्नंसनेनोपपादयेत् ॥ ५५ ॥

विलेपनाभ्यंजनानि तथा संदहनानि च ।

उपनाहाश्च कर्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणादयः ॥ ५६ ॥

उदरोक्तानि सर्पीषि चूर्णवर्तिक्रियास्तथा ।

लवणानि च योज्यानि यान्युक्तान्युदरामये ॥ ५७ ॥

वातवच्चोनिरो धे तु सामुद्राद्रकसर्षपैः ।

कृत्वा पाँयौ विधातव्या वर्तयो मरिचोत्तराः ॥ ५८ ॥

गुल्मके रोगी प्रायः सभी अतिदुर्विरेच्य होतेहैं ( अर्थात् उन्हें दस्तावर दवासे भी दस्त नहीं आया करतेहैं ) इस लिये इनको ठीक स्वेद कराकर स्नंसन द्रव्यों ( किरमाला आदि ) से दस्त करावे ॥ ५५ ॥ तथा लेपन अभ्यंग ( मर्दन ) और दहन ( अग्निसे दाग देना ) और उपनाह तथा निवाये २ शाल्वणादिका भी यथायोग्य उपयोग करना उचित है ॥ ५६ ॥ तथा उदररोगमें कहेहुए घृत, चूर्ण, वर्तिक्रिया ( बत्ती देना ) तथा लवण जो उदररोगमें कहेहैं इन सबका उपयोग गुल्ममें भी यथायोग्य किया जासकता है ॥ ५७ ॥ और जब अधोवायु और दस्त रुक ही जावे तब समुद्र-लवण अदरख और सरसों इन्हें पीसकर मिरच ( स्याहमिर्च ) मिलाकर बत्तीमें लपेटकर वह बत्ती गुदामें प्रविष्ट करनी उचित है ॥ ५८ ॥

दंतीचित्रकमूलेषु तथा वातहरेषु च ।

कुर्यादरिष्टान्सर्वांश्च सूत्रस्थाने तथेरितान् ॥ ५९ ॥

खादेद्वाप्यं कुरान्भ्रष्टान्पूतीकनृपवृक्षजान् ।

ऊर्ध्ववातमनुष्यं च गुल्मिनं न निरूहयेत् ॥ ६० ॥

( श्लो० ५६ ) संदहनानि अग्निना दंभकरणानि ।

( श्लो० ५८ ) मरिचोत्तराः मरिचप्रधाना इत्यर्थः ।

पिवेत्रिवृन्नागरं वा सगुडां वा हरीतकीम् ।

गुग्गुलुं त्रिवृतां दंतीं द्रवंतीं सैधवं वचाम् ॥ ६१ ॥

मूत्रमद्यपयोद्राक्षारसैर्वीक्ष्य बलावलम् ।

एवं पीलूनि पिष्टानि पिवेत्सलवणानि तु ॥ ६२ ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकसैधवैः ।

युक्ता हंति सुरां गुल्मं शीघ्रं काले प्रयोजिता ॥ ६३ ॥

वद्धविण्मारुतो गुल्मी भुञ्जीत पयसा यवान् ।

कुलमांपान्वा बहुस्नेहान्भक्षयेत्त्वणोत्तरान् ॥ ६४ ॥

दंती और चित्रककी जड़ तथा अन्य वायुनाशक द्रव्योंका आरिष्ट सूत्रस्था-  
नाक्तविधिसे बनाकर उपयोग करे ॥ ५९ ॥ अथवा करंज या किरमालेके  
अंकुरोंको स्नेहमें भूनकर खाया करे और जिस गुल्मवालेके ऊर्ध्ववायु हो  
उसे निरुहणवस्ति नहीं देवे ॥ ६० ॥ तथा निशोय और सोंठको ( मद्य  
या गरम जल आदिसे ) पीवे अथवा हरड़की छाल गुठमें मिलाके खाया करे  
अथवा गुग्गुलु निशोय दंती द्रवंती ( दंतीका भेद ) सैधव और वच ॥ ६१ ॥  
इनकी गोमूत्र मदिरा दूध दाखका रस इनमेंसे किसीके संग बलावल  
देखकर पिलावे इसी प्रकार पीलू और नमक पीसकर सेवन करे ॥ ६२ ॥  
अथवा पीपल पीपलामूल चव्य चित्रक और सैधानमक इनके संग मदिरा  
समयपर पीना गुल्मको नाश करदेता है ॥ ६३ ॥ तथा जिसके दस्त और  
अधोवायु रुककर आते हों या रुके हों वह जोके पदार्थ यवागू आदिको  
दूधके संग खावे अथवा जोके ही कुलमाप ( उचालकर पिष्टमय पदार्थ )  
नमकीन बनाकर सूत्र घृत डालकर खावे ॥ ६४ ॥

**गुल्मका उपद्रव शूल और इसके लक्षण ।**

अथास्योपद्रवः शूलः कथंचिदुपजायते ।

शूलं निखानितमिवा सुखं येन तु वेत्स्येत्सो ॥ ६५ ॥

( श्लो० ६२ ) पीलूनि मलवन्तानि पिष्टा पिवेत् । पीलू करंजगुल्मस्य पक्वं सलवम् ।  
न गुग्गुलुमिव्याहः । सोके "पीलू" इति वदन्ति । अन्ये तु पीलू नाटकगुल्मस्य पक्वं सल-  
वम् । यं सोके "पीलू" इति वदन्ति ।



तत्र विण्मूत्रसंरोधः कृच्छ्रोच्छ्वासः स्थिरांगता ।

तृष्णा दाहो भ्रमोऽन्नस्य विदग्धे परिवृद्धता ॥ ६६ ॥

रोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्भुक्तवृद्धिर्जडांगता ।

वाय्वादिभिर्यथासंख्यं मिश्रैर्वा वीक्ष्य योजयेत् ॥ ६७ ॥

इस गुल्ममें उपद्रव रूप शूल भी कभी कभी होजाया करताहै इसमें ऐसी पीड़ा होतीहै कि जैसे कोई कील या शूल गाडता हो ऐसा जान पड़ता है ॥ ६५ ॥ ( तीनों दोषोंके शूलके पृथक् २ लक्षण ) इसमें मल मूत्र रुक जावे कष्टसे श्वास लिया जावे शरीर करड़ा होजावे ( ये वायुके शूलमें होतेहैं ) तथा तृषा हो दाह हो भ्रम हो और भोजन कियाहुआ अन्न पचने लगे तब शूल बढ जावे ( ये लक्षण पित्तशूलके होतेहैं ) ॥ ६६ ॥ तथा रोंगटे खड़े हों अरुचि हो भोजन करते ही शूलमें वृद्धि हो अंगोंमें जडता हो ( ये कफके शूलके लक्षण हैं ) वातादिके लक्षण यथाक्रम देखकर तथा मिश्र द्रवज और सन्निपातके शूलमें दो दोषोंके तथा तीनोंके मिले लक्षण होतेहैं इसे विचारकर औषधका उपयोग करना चाहिये ॥ ६७ ॥

### इसके यत्न ।

पथ्या त्रिलवणं क्षारं हिंशु तुंबुरु पौष्करम् ।

यवान्यथ हरिद्रा च विडंगान्यम्लवेतसम् ॥ ६८ ॥

विदारी त्रिफला भीरू शृंगाटी गुडशर्करा ।

काश्मरीफल्यष्ट्याह्वपरूषकहिमानि च ॥ ६९ ॥

षड्यन्थातिविषादारुपथ्यामरिचवृक्षकान् ।

कृष्णामूलकचव्यं च नागरक्षारचित्रकान् ॥ ७० ॥

उष्णाम्लकांजिकक्षीरतोयैः श्लोकसमापनात् ।

यथैर्क्रमं विमिश्रांश्च द्रवैर्वा सर्वैश्च सर्वजे ॥ ७१ ॥

हरड़ेकी छाल तीनों लवण ( सेंधा काला विड ) यवक्षार हींग धनियाँ पुष्करमूल अजवायन और हलदी वायविडंग और अम्लवेतस ( इन्हें वायु-शूलमें ) ॥ ६८ ॥ विदारी त्रिफला शतावर सिंघाडे गुड खांड खँभारी

( श्लो० ६८ ) त्रिलवणं सैधवसौवर्चलविडानि ( इति दलनः )

मुलेठी और फालसे और चंदन ( इन्हें पित्तशूलमें ॥ ६९ ॥ पट्टग्रंथा ( चच )  
अतीस देवदारु हरडे मिरच इंद्रयव पीपलामूल और चव्य सोंठ यवक्षार  
और चित्रक ( इन्हें कफशूलमें ) ॥ ७० ॥ यथाक्रम एक एक श्लोकके इन योगोंको  
वातादि शूलमें नीचे लिखे अनुपातसे लेवे वायुमें गरम खट्टी कांजीसे पित्तमें  
गरम दूधसे और कफमें गरम जलसे उपरोक्त औषधोंके चूर्णको लेवे तथा  
द्विदोषका शूल हो तो दो योगोंकी औषधें और तीनों दोषोंके शूलमें तीनोंकी  
औषधें मिलाके उपयोग करे ॥ ७१ ॥

तथैव सेकावगाहप्रदेहाभ्यंगभोजनम् ।

शिशिरोदकपूर्णानां भाजनानां च धारणम् ॥ ७२ ॥

वमनोन्मर्दनस्वेदलंघनक्षपणक्रियाः ।

स्नेहादिश्च क्रमः सर्वो विशेषेणोपदिश्यते ॥ ७३ ॥

इसी भांति सेक अवगाहन प्रदेह ( उष्णलेप ) अभ्यंग ( स्नेहादि मर्दन )  
तथा भोजन ( ये वायुके शूलमें करे ) और ठंडे पानीसे भरेहुए पात्र  
रखना ( शूलपर रखना ) ये पित्तशूलमें ॥ ७२ ॥ तथा वमन उन्मर्दन  
स्वेदन ( तपाना ) और लंघन तथा क्षपण ( शोधन ) ये कफज्वरमें करे  
तथा द्वंद्वजमें दो और त्रिदोषजमें सब करे और स्नेहादि क्रम विशेष करके  
सषमें उचित कहा है ॥ ७३ ॥

गुल्ममें पथ्य ।

वल्लरं मूलकं मत्स्याञ्जुष्कशाकानि वैदलम् ।

न खादेदालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥ ७४ ॥

वल्लर ( सूखा मांस ) मूलक ( मूलाशक या मूली ) मल्लरी सूखे शाक  
वैदल ( मूंग चोले आदि ) तथा आलुक ( आलु पिंडालू रतालू आदि )  
और मीठे फल ( मोचाफल आदि ) गुल्मका रोगी नहीं खावे ॥ ७४ ॥

अथ शूलरोग ।

विना गुल्मेने यच्चर्तुलं गुल्मस्थानेषु जायते ।

निदानं तस्य वक्ष्यामि रूपं च सचिं कित्सितम् ॥ ७५ ॥

विना गुल्मके भी गुल्मके स्थानों ( पित्तशूल हृदय नाभि और शक्ति इन )

में शूल होता है उसका निदान और रूप तथा चिकित्साका वर्णन अगाड़ी करते हैं ॥ ७५ ॥

## शूलका हेतु और संप्राप्ति ।

वातमूत्रपुरीषाणां विग्रहादतिभोजनात् ।  
अजीर्णाध्यशनायासविरुद्धान्नोपसेवनात् ॥ ७६ ॥  
पानीयपानात्क्षुत्काले विरूढानां च सेवनात् ।  
पिष्टान्नशुष्कमांसानामुपयोगात्तथैव च ॥ ७७ ॥  
एवंविधानां द्रव्याणामन्येषां चोपसेवनात् ।  
वायुः प्रकुपितः कोष्ठे शूलं संजनयेद्दृशम् ।  
निरुच्छ्वासो भवेत्तेन वेदनापीडितो नरः ॥ ७८ ॥

अधोवायु मूत्र और दस्तके रोकनेसे अतिभोजन करनेसे अजीर्णसे भोजनपर भोजन करनेसे विरुद्ध अन्न खानेसे ॥ ७६ ॥ तथा भूखके समय पानी पीनेसे विरूढ ( जिसमें अंकुर निकल आये हों ऐसे अथवा राने ) अन्न खानेसे पिट्टीके पदार्थ विशेष खानेसे और सूखा मांस खानेसे ॥ ७७ ॥ अथवा इसी प्रकारके और पदार्थोंका सेवन करनेसे पेटमें वायु कुपित होकर दारुण शूल पैदा करता है शूलरोग ऐसा दारुण है कि जिसकी पीडासे मनुष्य व्याकुल होकर श्वास भी नहीं लेसकता ( अर्थात् यह रोग ठीकसे श्वास भी नहीं लेने देता ) ॥ ७८ ॥

## शूलकी निरुक्ति ।

शंकुस्फोटनवत्तस्य यस्मात्तीव्रांश्च वेदनाः ।  
शूलसंज्ञकस्य लक्ष्यंते तस्माच्छूलंमिहोच्यते ॥ ७९ ॥

शंकु ( कंठि या नोंक ) के शरीरमें चुभकर टूट जानेकेसी या शूल नाम शस्त्रसे शरीर घायलहुआ जाताहो ऐसी तीव्र पीडा शूलरोगवालेको मालूम पड़ती है इससे इस रोगको शूल कहते हैं ॥ ७९ ॥

## शूल के लक्षण ।

निराहारस्य यस्यैव तीव्रं शूलमुदीर्यते ।  
प्रस्तब्धगात्रो भवति कृच्छ्रेणोच्छ्वसितीव च ॥ ८० ॥

( श्लो० ७९ ) शंकुस्फोटनवत्कंटकहननवत्तीव्रा वेदना ।

वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण कुरुते नरः ।

एतैर्लिङ्गैर्विजानीयाच्छूलं वातसमुद्भवम् ॥ ८१ ॥

जिसके आहार किये पहले शूल तीव्र हो शरीर करड़ा पड़जावे कष्टसे श्वास लिया जावे ॥ ८० ॥ अधोवायु मूत्र और दस्त कष्टसे कम कम आवें इन लक्षणोंसे वायु का शूल जानना चाहिये ॥ ८१ ॥

तृष्णा दाहो मदो मूर्च्छा तीव्रं शूलं तथैव च ।

शीताभिक्रामो भवति शीतेनैव प्रशाम्यति ॥ ८२ ॥

एतैर्लिङ्गैर्विजानीयाच्छूलं पित्तसमुद्भवम् ॥ ८३ ॥

शूलेनोत्पीड्यमानस्य हृल्लास उपजायते ।

अतीव कोष्ठपूर्णत्वं तथैव गुरुगात्रता ।

एतच्छेष्मसमुत्थस्य शूलस्योक्तं निदर्शनम् ॥ ८४ ॥

तृषा अधिक हां दाह हो मद हो मूर्च्छा हो ( जो घबराया आवे ) शूल तीव्र हो शीतल आहार विहारकी इच्छा हो तथा शीतसे शूलमें शांति मालूम दे इन लक्षणोंसे पित्त का शूल जानना ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ शूलपीडित मनुष्यको यदि हृल्लास हो ( उबकाई आवें ) पेट खूब भरासा हो शरीरमें ( और पेटमें ) भारीपन हो ( तथा घेदना मंद मंद हो ) ये लक्षण कफ के शूलके जानने ॥ ८४ ॥

सर्वाणि दृष्ट्वा रूपाणि निर्दिशेत्सान्निर्पातिकम् ।

सन्निपातसमुत्थानैर्मसाध्यं तं विनिर्दिशेत् ॥ ८५ ॥

सबके लक्षण जिसमें मालूम हों उसे सन्निपातका शूल जानें यह सन्निपातका शूल असाध्य कहा है ॥ ८५ ॥

( पक्ष्य ) पहले गुल्म के उपद्रवान्मक शूलमें द्वंद्वज भी कह चुके हैं इससे यहां भी दो दोषोंके मिश्रित लक्षण होनेसे उन्हींका द्वंद्वज शूल जानना तथा कई जाचार्थोंसे दोषभेदसे शूलके स्थान कहें देखो टिप्पणी ॥

( श्लो० ८५ ) ऐभिर्वृत्तान्नायैर्दोषभेदेन नियतं स्थानं शूलस्योक्तम् । तथाहि “वातात्मके सन्निपातं वदन्ति पित्तात्मके स्यापि कदन्ति नान्यथा ॥ कृत्वाभंलुक्सी फलसंनिविष्टं सर्वेषु देहेषु च सन्निपातम्” । भातमकशरीरे शूलं तथा छिन्नितः । यथा “दोषैः एवमस्यस्थानदंष्टैः शूलोऽप्युपगच्छति । सर्वेष्वेतेषु शूलेषु मांसं पचनः मनुः ।

## शूलकी चिकित्सा ।

शूलानां लक्षणं प्रोक्तं चिकित्सां च निबोध मे ।

आशुकारी हि पवनस्तस्मात्तं त्वरया जयेत् ॥ ८६ ॥

तस्य शूलाभिपन्नस्य स्वेद एवं सुखावहः ।

पायसैः कृसरपिण्डैः स्निग्धैर्वा पिशितैर्हितैः ॥ ८७ ॥

शूलोंके लक्षण तो वर्णन करदिये अब इनकी चिकित्सा श्रवण करो सब प्रकारके शूलोंमें वायु ही शीघ्र शूल करनेवाला है इससे उसे शीघ्रही ( बहुत जल्दी ) शांत करना चाहिये ॥ ८६ ॥ शूलपीडित मनुष्यको स्वेद कराना ( सेक कर पसीना दिलाना ) ही सुखकारक होता है इससे दूधके पदार्थों ( मावे ) आदिसे या कृसरा ( खिचड़ी आदि के पिण्डसे स्निग्ध और वायुनाशक मांसोंसे सेक सेककर स्वेद कराना हित है ॥ ८७ ॥

## वायुके शूलका यत्न ।

त्रिवृच्छोकेन वा स्निग्धमुष्णं भुंजीत भोजनम् ।

चिरविल्वांकुरान्वापि तैलभृष्टास्तु भक्षयेत् ॥ ८८ ॥

वैहंगांश्च रसान्स्निग्धाग्न्याञ्छूलपीडितः ।

यथालाभं निषेवेत मांसानि बिलशायिनाम् ॥ ८९ ॥

निशोथके शाकके साथ स्निग्ध और गरम भोजन करना चाहिये अथवा करंजके अंकुरोंको तैलमें भूनकर खावे ॥ ८८ ॥ तथा शूलरोगसे पीडित मनुष्य पक्षियोंके मांसका रस स्निग्ध सेवन करे तथा जंगली जीवोंके मांसका रस सेवन करे अथवा यथालाभ बिलमें रहनेवाले जीवोंके मांसका रस सेवन करे ॥ ८९ ॥

सुरा सौवीरकं शुक्तं मस्तूदश्चित्ता दधि ।

सकालं लवणं पेयं शूले वार्तसमुद्भवे ॥ ९० ॥

कुलत्थयूषो युक्ताम्लो लावकीयूषसंस्कृतः ।

ससैधवः समरिचो वातशूलविनाशनः ॥ ९१ ॥

मद्य सौवीर ( काँजी ) सिरका दहीका तोड़ तथा उदश्चित् ( आधे पानी युक्त तक्र ) तथा दही इनमेंसे कोई काले नमकके साथ वायुके शूलमें पीवे ॥ ९० ॥

कुलत्थका यूप जिसमें खटाई पड़ी हो और लवके यूपसे संस्कार किया हो  
तथा सेंधानमक और मिरचें मिली हों यह भी वायुके शूलको नष्ट  
करता है ॥ ९१ ॥

विडंगं शिथुकंपिल्लपथ्याश्यामाम्लवेतसान् ।

सुरसामश्वकर्णं च सौवर्चलयुतान्पिवेत् ।

मध्येन वातजं शूलं क्षिप्रमेव प्रशाम्यति ॥ ९२ ॥

पृथ्वीकाजाजिचविकायवानीव्योपचित्रकाः ।

पिप्पल्यः पिप्पलीमूलं सैधवं चेति चूर्णयेत् ॥ ९३ ॥

तानि चूर्णानि पयसा पिबेत्कौबलिकेन वा ॥ ९४ ॥

मध्वासवेन चुक्रेण सुरासौवीरकेन वा ।

अथैवैतानि चूर्णानि मातुलुंगरसेन वा ॥ ९५ ॥

तथा बदरयूपेण भावितानि पुनः पुनः ।

तानि हिंगुप्रगाढानि सह शर्करया पिवेत् ॥ ९६ ॥

सह दाडिमसारेण वर्तिः कार्या भिषग्विज्ञता ।

सा वर्तिर्वातिकं शूलं क्षिप्रमेव व्यपोहति ॥ ९७ ॥

गुडतैलेन वा लीढा पीता मध्येन वा पुनः ॥ ९८ ॥

वायुविडंग सोहैजना कमेला हरीतकी निशोथ अम्लवेतस तुलसी अश्व-  
कर्ण ( शालका भेद ) इन सबको पीसकर कालानमक मिलाकर मदिराके  
संग पीनेसे वायुका शूल शीम ही शांत होजाताहै ॥ ९२ ॥ तथा पृथ्वीका  
( हिंगुपत्री कोई काला जीरा कहते हैं ) सुपेद्र जीरा चव्य अजवायन सोंठ  
मिरच पीपल चित्रक पिप्पली पीपलामूल और सैधव इन सबका चूर्ण  
बनाले इस चूर्णको भंडके दूधके संग पीये ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ अथवा इसी  
चूर्णको मध्वासव ( मदुंधकी मद्यसे ) या चुक्रेसे या सुरा ( मदिरा ) से या  
कांजीसे लेवे अथवा इसी चूर्णको नींबूके रसको या बेरके जूसकी चार  
बार भावना देकर हींग और खांड मिलाकर पीये ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ अथवा  
इस चूर्णमें अनारका सार ( रस ) मिलाकर गोली बनाले वह गोली गुद  
और तैलमें मिलाकर चाटना या मदिराके संग लेना वायुके शूलको शीम  
नष्ट करदेताहै ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

बुभुक्षाप्रभवे शूले लघु संतर्पणं हितम् ।

उष्णैः क्षीरैर्यवागूभिः स्निग्धैर्मांसैस्सैस्तथा ॥ ९९ ॥

वातशूले समुत्पन्ने रूक्षस्निग्धेन योजयेत् ।

सुसंस्कृताः प्रदेयाः स्युर्घृतपूरा विशेषतः ॥ १०० ॥

वारुणीं च पिबेज्जंतुस्तथा संपद्यते सुखी ।

एतद्वातसमुत्थस्य शूलस्योक्तं चिकित्सितम् ॥ १०१ ॥

धुधासे होनेवाले शूलमें हलका तृप्तिकारक भोजन गरम दूधके संग देना या यवागूको स्निग्ध मांसरसके संग देना हितकारक होता है ॥ ९९ ॥ यदि वायुके शूलवाला रोगी रूक्ष हो तो उसे स्निग्ध पदार्थोंकी योजना करे तथा विशेष करके वातघ्न द्रव्योंसे संस्कार कियेहुए घृतपूर ( घेवर ) देने चाहियें ॥ १०० ॥ अथवा वात शूलका रोगी मनुष्य वारुणी मदिरा पान करनेसे सुखी होता है यह वातजशूलकी चिकित्सा वर्णन की गई है ॥ १०१ ॥

### पित्तके शूलका यत्न ।

अथ पित्तसमुत्थस्य क्रियां वैक्ष्याम्यतः परम् ॥ २ ॥

समुखं छर्दयित्वा तु पीत्वा शीतोदकं नरः ।

शीतलानि च सेवेत सर्वाण्युष्णानि वर्जयेत् ॥ ३ ॥

मणिराजतताम्राणि भाजनानि च सर्वशः ॥

वारिपूर्णानि तान्यस्य शूलस्योपरि निःक्षिपेत् ॥ ४ ॥

गुडशालियवाः क्षीरं सर्पिःपानं विरेचनम् ।

जांगलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनाम् ॥ ५ ॥

रसान्सेवेत पित्तघ्नान्पित्तलानि विवर्जयेत् ।

पालाशं धान्वनं वापि पिबेद्यूषं सशर्करम् ॥ ६ ॥

परूषकाणि मृद्रीका खर्जूरौदकजान्यपि ।

तत्पिबेच्छर्करायुक्तं पित्तशूलनिवारणम् ॥ ७ ॥

इसके अगाड़ी अब हम पित्तके शूलकी चिकित्सा कहते हैं ॥ २ ॥ रोगीको सुखपूर्वक शीतल जलके योगसे वमन कराके शीतल पदार्थोंका सेवन करावे और सब प्रकारके गरम आहार विहार औषधोंको त्याग दे ॥ ३ ॥



मणि ( विल्लोर आदि ) के चांदीके तांबेके पात्रोंको ठंडे पानीसे भरके शूल-स्थानपर रखे ॥ ४ ॥ गुड़ चाँवल और जव खावे तथा घृतपान करे और विरेचन करे तथा जंगली जीवोंका मांस भोजन करे ये पित्तशूलवालेके लिये परम औषध है ॥ ५ ॥ तथा पित्तनाशक मांसरस सेवन करे और पित्तकारक आहार विहार त्याग दे और पलाश तथा धान्वनका यूप खांड डालकर पीवे [ "पालाश"की जगह "पालानां" यहभी पाठांतर है और ऐसा अर्थ करते हैं कि पालों (जंगलके पालों ) के धान्वन अर्थात् जंगली जीवोंकी मृगयासे उत्पन्नहुए मांसरस शर्करायुक्त पीवे ] ॥ ६ ॥ फालसे दाख मुनका खजूर जलके फल कमलादिक लेकर उनका पत्रा बनाकर खांड मिलाकर पिलावे ये पित्तशूलके निवारण करनेवाले हैं ॥ ७ ॥

### कफशूलका यत्न ।

अंशने भुक्तमात्रे तु प्रकोपः श्लेष्मिकस्य च ।

वर्मेन कौरयेत्तत्र पिप्पलीवारीणा भिषक् ॥ ८ ॥

रूक्षः स्वेदः प्रयोज्यः स्यादन्याश्चोष्णाः क्रिया हिताः ।

पिप्पली शृंगवेरं च श्लेष्मशूले भिषग्जितम् ॥ ९ ॥

पाठां वचां त्रिकटुकं तथा च कटुरोहिणीम् ।

चित्रकस्य च निर्यूहे पिवेद्यूपं संसार्जकम् ॥ १० ॥

कफका शूल भोजन खाते ही कुपित होताहै इसमें वैद्य पिप्पलीके काथसे यमन करावे ॥ ८ ॥ तथा रूखा स्वेद करावे तथा अन्य उष्ण क्रिया करे और पीपल और अदरक मिलाकर खाना कफशूलकी औषध है ॥ ९ ॥ तथा पाठा वच त्रिकटु और कुटकी चित्रकके काथसे पीवे अथवा कफनाशक धान्योंके यूपमें अर्जक ( कुंठरक ) मिलाकर पीवे ॥ १० ॥

एरंडफलमूलानि मूलं गोक्षुरकस्य च ।

शालिपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कंटकारिकाम् ॥ ११ ॥

( श्लो० ९ ) शृंगवेरं आर्द्रकं शुद्धं च ।

( श्लो० १० ) पाठादीनां द्रव्यानि पूर्वोक्तानि कल्मिषानि वा निवृत्तस्य निर्यूहे पापे विवेक्षितेषां योगः । यूपं मार्जकमिति द्वितीयो योगः । यूपं शुद्धं चित्रकान्ययुपं मार्जकं अर्जकं सह च विवेक्षितम् । ( इति उद्देशः ) ।

दद्याच्छृगालविन्नां च सहदेवीं तथैव च ।

महासहां क्षुद्रसहां मूलं चक्षुरकस्य च ॥ १२ ॥

एतत्संभृत्य संभारं जलद्रोणे विपाचयेत् ।

चतुर्भागावशेषं तु यवक्षारयुतं पिबेत् ॥ १३ ॥

वातिकं पैतिकं वापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।

प्रसह्य नाशयेच्छूलं छिन्नाभ्रमिव मारुतः ॥ १४ ॥

एरंडके फल और जड़ गोखरूकी जड़ शालिपर्णी पृश्निपर्णी बड़ी कटेली छोटी कटेली ॥ ११ ॥ शृगालविन्ना ( पिठवनका भेद ) सहदेवी माषपर्णी मुद्गपर्णी तालमखानेकी जड़ ॥ १२ ॥ इन सबको इकट्ठा करके द्रोणभर पानीमें काथ करे और चतुर्थांश रहे उतार ले इसे यवक्षारके संग (यवक्षार मिलाके ) पीवे ॥ १३ ॥ यह वातके पित्तके कफके और सान्निपातके शूलको बलपूर्वक नाश करता है जैसे पवन बादलोंको नष्ट करता है ॥ १४ ॥

पिप्पल्यः स्वर्जिकाक्षारो यवाश्चित्रक एव च ।

सेव्यं चैव समानीय भस्म कुर्याद्विचक्षणः ।

तदुष्णवारिणा पीतं श्लैष्मशूले भिषग्जितम् ॥ १५ ॥

पीपल सजीखार जो चित्रक सेव्य ( खस ) इन सबको मिलाकर भस्म करलेवे फिर इस भस्मको गरम जलके साथ पीवे यह कफके शूलकी औषध है १५

## पार्श्वशूलके लक्षण ।

रुणद्धिं मारुतं श्लेष्मा कुक्षिपार्श्वव्यवस्थितः ।

सं संरुद्धः करोत्याश्वाध्मानं गुडगुडायनम् ॥ १६ ॥

सूचीभिरिव निस्तोदः कृच्छ्रेच्छासी तदा नरः ।

नान्नं वाञ्छन्ति नो<sup>१२</sup> निद्रांमुपैत्यतिनिपीडितः ॥ १७ ॥

पार्श्वशूलः स विज्ञेयः कफानिलसमुद्भवः ॥ १८ ॥

( श्लो० १२ ) शृगालविन्ना पृश्निपर्णीभेदः ( इति डल्लनः ) ।

( श्लो० १४ ) प्रसह्य बलात्कारेण ।

( श्लो० १५ ) सेव्यं उशीरम् ।

जब कूख और पँसवाडोंमें स्थितहुआ कफ वायुको रोक देता है तब वह रुकाहुआ वायु शीघ्र ही अफारा और गुडगुडाहट पैदा करता है ॥ १६ ॥ सूई चुभनेकीसी पीडा होती है और मनुष्यसे कष्टसे श्वास लिया जाता है अन्नकी इच्छा नहीं होती और पीडित रोगीको नहीं निद्रा आती है ॥ १७ ॥ इसे कफवायुसे उत्पन्न हुआ पार्श्वशूल ( पँसलीका दर्द ) कहते हैं ॥ १८ ॥

### पार्श्वशूलका यत्न ।

तत्र पुष्करमूलानि हिंगु सौवर्चलं विडम् ।  
 सैधवं तुंवुरु पथ्या चूर्णं कृत्वा तुं पाययेत् ॥ १९ ॥  
 पार्श्वहृद्द्विस्तिशूलेषु यवक्राथेन संयुतम् ।  
 सर्पिः प्लीहोदरोक्तं वा घृतं वा हिंगुसंयुतम् ॥ २० ॥  
 बीजपूरकसारं वा पयसा सह साधितम् ।  
 एरंडतैलमथवा मद्यमस्तुपयोरसैः ॥ २१ ॥  
 भोजयेच्चापि पयसा जांगलेन रसेन वा ॥ २२ ॥

इस पार्श्वशूलमें पोहकरमूल हींग कालानोंन विडनोंन सैधानोंन धनियाँ और हरडेकी छाल इनका चूर्ण करके पार्श्वशूल हृदयशूल वस्तिशूल इन सब रोगोंमें जोके फाथके संग पिलावे अथवा प्लीहोदरमें रुकाहुआ घृत पिलावे अथवा घृतमें हींग मिलाकर चटावे ॥ १९ ॥ २० ॥ अथवा बिजोरेका सार ( अंत-लाल ) दूधमें पकाकर देवे अथवा एरंडके तैलको मदिगा या मस्तु या दूध या मांसरस इनमेंसे किसीके संग देवे ॥ २१ ॥ औषध पचनेपर दूध या जंगली जीवोंके मांसरसके संग भोजन करावे ॥ २२ ॥

प्रकुप्यति यदा कुक्षौ वेद्विमाकर्म्य मारुतः ।  
 तदाऽस्य भोजनं भुक्तं सोपैस्तंभं न पच्यते ॥ २३ ॥  
 उच्छसित्यामशकृता शूलेनाहन्यते गुह्ये ।  
 नैवासने न शयने तिष्ठन्न लभते सुषम् ॥ २४ ॥  
 कुक्षिशूल इति ख्यातो वार्तादामसमुद्भवः ॥ २५ ॥

यदि जठरापि यो दवाकर ( भेद करके ) वायु कूखमें कुपित हो ( अर्थात्

जब कुक्षिमें वायु कुपित होकर अग्निको रोक ले) तब उसका भोजन कियाहुआ ठिठराकर पचता नहीं ( अर्थात् ज्योंका त्यों विना पचा धरा रहता है ) ॥ २३ ॥  
 आससा भरजाता है और कच्चे अन्नके दस्त आतेहैं बारबार शूलकी वेदना होती है न बैठे चैन पड़ता है न लेटे न खड़े हुए ॥ २४ ॥ इसे कुक्षिशूल कहतेहैं यह वायुसे और कच्चे आम ( विनपचे ) भोजनसे उत्पन्न होताहै ॥ २५ ॥

## कुक्षिशूल की चिकित्सा ।

वमनं कारयेत्तत्र लघ्वयेद्वा यथाबलम् ।  
 संसर्गपाचनं कुर्यादम्लैर्दीपनसंयुतैः ॥ २६ ॥  
 नागरं दीप्यकं चव्यं हिंगु सौवर्चलं विडम् ।  
 मातुलुंग्याश्च बीजानि तथा श्यामोरुवृकयोः ॥ २७ ॥  
 बृहत्याः कंटकार्याश्च काथं शूलहरं पिबेत् ।  
 वचा सौवर्चलं हिंगु कुष्ठं सातिविषाभया ॥ २८ ॥  
 कुटजस्य च बीजानि सद्यः शूलहराणि तु ।  
 विरेचनं प्रयुंजीत ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥ २९ ॥  
 स्नेहवस्तीनिरुहंश्च कुर्यादोषनिवर्हणम् ।  
 उपनाहाः स्नेहसेका धान्याम्लपरिसेचनम् ॥ ३० ॥

इसमें वमन करावे और बलके अनुसार लघन करावे और अम्लरस और दीपन द्रव्य मिलाकर संसर्ग ( कच्चे आम ) को पचावे ॥ २६ ॥ सोंठ अज-वायन चव्य हींग कालानमक विडनमक बिजोरेके बीज निशोथ और एरंड ॥ २७ ॥ बड़ी कटेली छोटी कटेली इनका काथ पीवे यह परम शूलनाशक है अथवा वच कालानमक हींग कूट और अतीस और हरड़े ॥ २८ ॥ इंद्रजी ये भी तत्काल शूलनाश करते हैं ( इनका चूर्ण या काथ लेवे ) और दोष तथा रोगीका बलाबल देखकर विरेचनका उपयोग करे ॥ २९ ॥ तथा स्नेहवस्ति और निरुहणवस्ति भी देवे ये दोषको नष्ट करती हैं तथा उपनाह ( गरम लेप या भुग्ता आदिबाँधना ) तथा स्नेहका सेक करना अथवा धान्याम्ल ( कांजी ) का सेचन करना भी श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥

## हृच्छूल ।

कर्फपित्तावरुद्धस्तु मारुतो रसमूर्च्छितः ।

हृदिस्थः कुरुते शूलमुच्छ्वासरोधकं परम् ॥ ३१ ॥

स हृच्छूल इति ख्यातो रसमारुतसंभवः ।

तत्रापि कर्माभिहितं यदुक्तं हृद्विकारिणाम् ॥ ३२ ॥

कर्फपित्तसे अवरुद्ध हुआ वायु रसमें मिलकर जब हृदयके समीपमें  
है तब वहाँ शूल पैदा करताहै इस हृदयशूलमें श्वास नहीं लिया  
जावडा कष्ट होताहै ॥ ३१ ॥ इसे हृच्छूल कहते हैं यह रस और  
से होताहै इसमें वही यत्न करना चाहिये जो हृद्रोगमें कहा जावेगा ॥ ३२ ॥  
( वक्तव्य ) यह शूल आमाशयके उपरिभागमें होताहै और यह स्थान  
के निकट है इसीसे इसे हृच्छूल कहते हैं ॥

## वस्तिशूल और मूत्रशूल ।

संरोधात्कुपितो वायुर्वास्तिमावृत्य तिष्ठति ।

वस्तिवंक्षणनाभीषु ततः शूलोऽस्य जायते ॥

विण्मूत्रवातसंरोधी वस्तिशूलः स मारुतात् ॥ ३३ ॥

नाभ्यां वंक्षणपार्श्वेषु कुक्षौ मेढ्रांत्रमर्दकः ।

मूत्रमावृत्य गृह्णाति मूत्रशूलः स मारुतात् ॥ ३४ ॥

मल मूत्र अधोवायु इनके रोकनेसे कुपित वायु वस्तिस्थानमें प्राप्त  
कर आवर्तरूपसे घूमताहुआ स्थित होताहै तब मनुष्यके वस्तिस्थान  
ण ( नलें ) और नाभि इन स्थानोंमें शूल होताहै इसमें दस्त  
और अधोवायु ये सब रुक जातेहैं यह वायुसे उपजा वस्तिशूल  
लाता है ॥ ३३ ॥ और जब कुपित वायु मेढ्रांत्र ( लिण्गका नलियों )  
मर्दन करके ( दबाकर या रोककर ) और मूत्रको रोककर बंद करताहै

( श्लो० ३१ ) हृदिस्थः कुरुते शूलमुच्छ्वासरोधकं परम् ।

( श्लो० ३३ ) संरोधात्कुपितो वायुर्वास्तिमावृत्य तिष्ठति ।

( श्लो० ३४ ) मेढ्रांत्रमर्दकः वायुः मेढ्रनलिकां संमयं वायुः आवृत्य गृह्णाति ।

तब नाभि वंक्षण पँसवाड़े और कूख इन स्थानोंमें शूल होताहै इसे मूत्रशूल कहतेहैं यह भी वायुसे होता है ॥ ३४ ॥

## विट् शूल ।

वायुः प्रकुपितो यस्य रूक्षाहारस्य देहिनः ।

मूलं रुणद्धि कोष्ठस्थं मंदीकृत्य तु पावकम् ॥ ३५ ॥

शूलं संजनयंस्तीव्रं स्रोतास्यावृत्य तस्य हि ।

दक्षिणं यदि वा वामं कुक्षिमादाय जायते ॥ ३६ ॥

सर्वत्र वर्धते क्षिप्रं शूलं तत्र सघोषवत् ।

पिपासा वर्द्धते तीव्रा भ्रमो मूर्च्छा च जायते ॥ ३७ ॥

उच्चारितो मूत्रितश्च न शांतिमधिगच्छति ।

विट्शूलमेतज्जानीयाद्विषक्परमदारुणम् ॥ ३८ ॥

रूक्ष आहार करनेसे मनुष्यके कोष्ठमें वायु कुपित होताहै तब कोष्ठके मलको रोक देताहै और अग्निको मंद करदेताहै ॥ ३५ ॥ स्रोतों ( द्वारों ) को रोककर तीव्र शूल पैदा करता हुआ दाहिनी या बाँई कूखमें प्राप्त हो-जाता ॥ ३६ ॥ तथा शीघ्र ही सारे पेटमें शूल फैल जाताहै और शब्दसा करताहुआ बढताहै और तीव्र प्यास बढ जाती है भ्रम और मूर्च्छा भी होजाती है ॥ ३७ ॥ दस्त आने या पेशाब आनेपर भी शांति नहीं होती इसे वैद्य परम दारुण विट्शूल जाने ( यह कोठेमें मल बढ जानेपर रूक्षता होनेसे होताहै ) ॥ ३८ ॥

क्षिप्रं दोषहरं कार्यं भिषजा साधुं जानता ।

स्वेदनं वमनं चैव निरूहाः स्नेहवस्तयः ॥ ३९ ॥

पूर्वादिष्टान्पाययेत योगान्कोष्ठविशोधनान् ।

उदावर्तहरांश्चास्य क्रियाः सर्वाः सुखावहाः ॥ ४० ॥

जानकार वैद्यको शीघ्र ही दोषके हरनेवाली क्रिया करनी चाहिये स्वेदन कराना वमन कराना निरूहणवस्ति और स्नेहनवस्ति करना योग्य है ॥ ३९ ॥ तथा पूर्वोक्त कोष्ठशोधनके योग्य पान कराने चाहियें तथा उदावर्त हरनेवाली सब क्रिया ये यहांपर सुख देनेवाली होती हैं ॥ ४० ॥

अतिमात्रं यदा भुक्तं पाँवके मृदुतां गते ।  
 स्थिरीभूतं तु तत्कोष्ठे वायुरावृत्य तिष्ठति ॥ ४१ ॥  
 अविपाकगतं ह्यन्नं शूलं तीव्रं करोति च ।  
 मूर्च्छाध्मानं विदाहं च हृदुत्केशं विलंबिकाम् ॥ ४२ ॥  
 विरिच्यते छर्दयति कंपतेथ विमुह्यति ॥ ४३ ॥

यदि जठराग्नि मंद होनेपर अधिक भोजन करे तो वह कोष्ठमें ( पेटमें ) स्थिर होता है ज्योंका त्यों धरा रहता है और वायु उसे रोक लेता है ॥ ४१ ॥ इस प्रकार बिना पचा अन्न तीव्र शूल पैदा करता है मूर्च्छा अफारा और दाह पैदा करता है जी मिचलाता है ( उबकाई आती है ) विलंबिका हो जाती है बारबार दस्त आते हैं वमन होते हैं कंप हो जाता है तथा मोह ( बेहोशी या बुद्धिभ्रंश ) हो जाता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

क्षाराश्चूर्णानि गुटिकाः शंस्यन्ते शूलनाशनाः ।  
 गुल्मावस्थाः क्रियाः कार्यं यथावत्सर्वशूलिनाम् ॥ ४४ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

यहां शूलनाशक क्षार चूर्ण गोली इत्यादिका उपयोग करना श्रेष्ठ है तथा सब प्रकारके शूलवालोंके लिये गुल्मनाशक क्रिया ये करनी भी श्रेष्ठ हैं ॥ ४४ ॥ यूनानीवाले गुल्मको अकद कहते हैं और साधारण आदमी गाँठ या गोला कहते हैं ॥

डाक्टरोंमें गुल्मको ट्यूमर ( Tumor ) कहते हैं और वायुके गुल्म ( वायु गोले ) को हिस्टेरिया ( Hysteria ) कहते हैं ॥

यूनानीवाले आमाशयके शूलको " वजे उलमेदा " कहते हैं और दाहनी तरफ यकृतमें या यकृतके पास तो उसे " वनेउलकावद " कहते हैं और आमाशयके ऊपर हृदयके पास हो तो उसे " वजेउलफवाद " जिसे आम आदमी दरददिल कहते हैं और छातीमें दरद हो उसे जानुलारिया और पसलियोंके दरदको जानुलगंव कहते हैं और मोठी अंतड़ीके दरदको कुलंग कहते हैं ॥

डाक्टरोंमें मंदेके मुँहपर फोड़ोंके नीचे बहुत दरद हो उसे " ग्यास डाइटस " कहते हैं और पनलीके दरद ( पार्श्वशूल ) को " प्लूरिया " कहते हैं अर्थात् पार्श्वशूलमें कुल इसीके लक्षण मिलते हैं और कुलंगके दरदको " कालक " कहते हैं



( वक्तव्य ) यूनानी या डाक्टरीमतसे इन व्याधियोंका विस्तारपूर्वक विवेचन उस मतके बड़े २ ग्रंथ देखे बिना नहीं आसकता क्योंकि रोगोंके कारणों और रूपों और भेदोंमें मतांतरसे बहुत अंतर होताहै ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतंत्रे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

## त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४३.

अथातो हृद्रोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम हृद्रोगकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

### हृद्रोगका हेतु और संप्राप्ति ।

वेगाघातोष्णरूक्षान्नैरतिमात्रोपसेवितैः ।

विरुद्धाध्यशनाजीर्णैरसात्म्यैश्चापि भोजनैः ॥ १ ॥

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः ।

कुर्वन्ति हृदये बाधां हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ २ ॥

चतुर्विधः स दोषैश्च पंचमः कृमिभिस्तथा ।

पृथक्कलिंगं प्रवक्ष्यामि चिकित्सितमनंतरम् ॥ ३ ॥

वेगोंके रोकने ( या चोट आदिके आघात ) से गरम रूखे अन्न अति खानेसे विरुद्ध भोजनसे भोजनपर भोजन करनेसे अजीर्ण रहनेसे असात्म्य ( जो माफकत न हो ऐसा ) भोजन करनेसे ॥ १ ॥ वातादि दोष रसको दूषित करके विगुण होकर ( रसमें मिलकर ) हृदयमें पहुँचते हैं तब हृदय में बाधा करतेहैं इसे हृद्रोग कहते हैं ॥ २ ॥ यह हृद्रोग चार प्रकारका तो दोषोंसे ( वातसे पित्तसे कफसे और सन्निपातसे ) होताहै और पांचवां कृमियोंसे होताहै इन सबके जुदे जुदे लक्षण कहते हैं और इसके पीछे उनकी चिकित्सा भी कहेंगे ॥ ३ ॥

### हृद्रोगके लक्षण ।

आयम्यते मारुतंजे हृदयं तुद्यते तथा ।

निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोट्यते पाद्यतेपि च ॥ ४ ॥

तृष्णोपदाहचोषाः स्युः पित्तिके हृदये कृमः ।

धूमायनं च मूच्छां च स्पन्दः शोषो मुखस्य च ॥ ५ ॥

गौरवं कफसंस्त्रावोऽरुचिः स्तंभोग्निर्मादवम् ।  
माधुर्यमपि चास्यस्यं बलासावतते हृदि ॥ ६ ॥

उत्क्रेशः घीवनं तोदः शूलो हल्लासकस्तमः ।  
अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥ ७ ॥

वायुका हृद्दोग हो तो हृदय खींचासा जावे व्यथा हो हृदय मथासा जावे  
चीरासा जावे फोड़ासा जावे और फाड़ासा जावे ॥ ४ ॥ पित्तका हृद्दोग  
हो तो तृषा हो जलन और दाह हो तथा चोष ( चूषणकेसी पीड़ा हो )  
हृदयमें ग्लानि हो तथा धुवासा उठता मालूम पड़े मूर्च्छा ( बेहोशी होजावे )  
पसीना आवे और मुँह सूखे ॥ ५ ॥ कफके हृद्दोगमें भारीपन हो कफ मुँहसे  
आवे अरुचि हो हृदय और शरीर करड़े पड़जावे अग्नि मंद होजावे मुँह  
मीठा रहे ( और सन्निपातका हृद्दोग हो तो उसमें सब दोषोंके मिले जुले  
लक्षण हों ॥ ६ ॥ और कृमिके हृद्दोगमें मुँहसे पानी ( लार ) बहे थूक ज्यादा  
आवे दरद हो शूल भी हो जी मिचलावे उबकाई आवे और अंधेरी आजावे  
अरुचि हो नेत्रोंमें कालापन मालूम पड़े और शोष भी हो ॥ ७ ॥

( वक्तव्य ) कई ग्रंथांतरमें ऐसा लिखाहै कि सन्निपातका कृमिरोग होने-  
पर भी यदि मनुष्य गुडादिक कुपथ्यकी वस्तु अतिभोजन करे तो उसके  
हृदयमें कृमि उत्पन्न होजातेहैं परंतु कभी कभी आमाशयके उपरिभागमें  
कृमि होनेसे भी कृमिका हृद्दोग कहाजाताहै क्योंकि यह स्थान हृदयके  
अत्यंत समीप है यदि हृदय ( अर्थात् कलव, यानी हार्ट या प्रीकाडियम गशा  
जो इसपर छाई हुई है इन ) में कृमि पैदा होजावे तो प्रायः असाध्य होतेहैं  
पर यदि हृदयके निकट आमाशयके उपरिभागमें हों तो साध्य हो सकतेंहैं ॥

भ्रमकृमौ सादशोपौ ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः ।

कृमिजे कृमिजातीनां शैर्षिकीनां च ये मर्ताः ॥ ८ ॥

भ्रम श्रम ( ग्लानि ) धकान ( दिलकी कमजोरी ) और शोष ( राज-  
यक्ष्मा ) ये बातजादि हृद्दोगोंके उपद्रव हैं और कृमिजमेंवे उपद्रव होतेहैं  
जो कफज कृमिरोगमें होतेहैं ॥ ८ ॥

( श्लो० ७ ) बहुतों भावमकाशे "विज्ञेयतेनुपद्रवो यो दुःसमा निषेवते । तिलक्षित-  
गुदादीनां प्रथितान्येवजायते ॥ १ ॥ मर्मकृद्वे संश्रुते रसधापुपगच्छति । मंत्र-  
प्राप्तकृमयश्चास्य वृत्तमुपहृतात्मनः ॥ २ ॥ नरस्य उत्पन्नानि उत्क्रेशादीनि ।

## वायुके हृद्रोगका यत्न ।

वातोपसृष्टे हृदये वामयेत्स्निग्धमातुरम् ।  
 द्विपञ्चमूलकाथेन सस्नेहलवणेन तु ॥ ९ ॥  
 पिप्पल्येलावचाहिंशुयवभस्मानि सैधवम् ।  
 सौवर्चलमथो गुंठीमजमोदांश्च चूर्णितम् ॥ १० ॥  
 फलधान्याम्लकौलत्थदधिमद्यासवादिभिः ।  
 पाययेत् विशुद्धं च स्नेहेनान्यतमेन वा ॥ ११ ॥  
 भोजयेज्जीर्णशाल्यन्नं जांगलैः सघृतै रसैः ।  
 वातघ्नसिद्धं तैलं च दद्याद्द्विस्ति प्रमाणतः ॥ १२ ॥

वातके हृद्रोगमें रोगीको स्नेहन कराके दशमूलके काथमें स्नेह और लवण मिलाके इससे वमन करावे ॥ ९ ॥ तथा पीपल इलायची वच हींग जौकी भस्म सैधानमक कालानमक सोंठ और अजमोदा इनका चूर्ण बनाले ॥ १० ॥ इसे फलाम्ल या धान्याम्ल या कुलथीके काथ या दही या मदिरा या आसव इनमेंसे किसी एकके संग खिलावे या किसी स्नेहके संग इसी चूर्णको खिलावे परं च पहले वमनादि देकर शोधन करलेवे ॥ ११ ॥ और जंगली जीवोंके रस घृतयुक्तके संग पुराने चाँवलोंके भोजन करावे और वायुनाशक द्रव्योंसे सिद्धकिये तैलकी प्रमाण वस्ति देनी उचित है ॥ १२ ॥

## पित्तके हृद्रोगका यत्न ।

श्रीपर्णीमधुकक्षौद्रसितोत्पलजलैर्वमेत् ।  
 पित्तोपसृष्टे हृदये सेवेत् मधुरैः शृतम् ॥ १३ ॥  
 घृतं कषायांश्चोद्दिष्टान्पित्तज्वरविनाशनान् ।  
 तृप्तस्य च रसैर्मुख्यैर्जांगलैः सघृतैर्भिषक् ॥  
 सक्षौद्रं वितरेद्द्विस्ति तैलं मधुकसाधितम् ॥ १४ ॥

पित्तके हृद्रोगमें खंभारी मुलेठी शहद मिश्री कमल इनके काथसे वमन करावे और मधुर द्रव्यों काकोल्यादिसे सिद्ध किया घृत सेवन

करे ॥ १३ ॥ तथा पित्तज्वरके नाश करनेवाले पूर्वोद्दिष्ट काथ पीवे तथा जंगली जीवोंके घृतयुक्त मुख्य मांसरसोंसे तृप्त कियेहुए रोगीके वैद्य मुलेठीसे सिद्धकिये तैलमें शहद मिलाकर वस्तिकर्म करे ॥ १४ ॥

## कफके हृद्रोगका यत्न ।

वचानिवर्कपायाभ्यां वातं हृदि कफात्मके ।

चूर्णं तु पाययेत्तुक्तं वातजे भोजयेच्च तम् ॥ १५ ॥

फलादिमथ मुस्तादिं त्रिफलां वा पिवन्नरः ।

श्यामात्रिवृत्कल्कयुतं घृतं वापि विरेचनम् ॥ १६ ॥

बलातैलैर्विदध्याच्च वस्ति वस्तिविशारदः ॥ १७ ॥

कफके हृद्रोगमें वच नींबके काथसे वमन करावे और वातज हृद्रोगमें कहा हुआ चूर्ण ही उन्हीं अनुपानोंसे पिलावे और यथायोग्य भोजन करावे ॥ १५ ॥ अथवा मदनफलादिक या मुस्तादिगण या त्रिफलाका काथ पिलावे तथा श्यामा निशोथ और मुपेद निशोथके कल्कसे युक्त घृत पिलाकर विरेचन देवे ॥ १६ ॥ तथा वस्तिका चतुर वैद्य बला तैलकी वस्ति देवे ॥ १७ ॥

कृमिहृद्रोगिणं स्निग्धं भोजयेत्पिशितौर्दनम् ।

दर्शं वा पल्लोपेतं व्यंहं पश्चाद्विरेचयेत् ॥ १८ ॥

सुगंधिभिः सलवणैर्योगैः साजाजिशर्करैः ।

विडंगगाढैर्धान्याम्लं पाययेत्ताप्यनंतरम् ॥ १९ ॥

हृदयस्थाः पित्तत्येवमधस्तात्कृमयो नृणाम् ।

यवांश्च विर्ते रेक्षांस्य सविडंगैर्मतेः परम् ॥ २० ॥

इत्युत्तरतन्त्रे विचित्रारिशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

कृमिके हृद्रोगवाले रोगीको स्निग्ध मांस और भात या दहीके साथ तिलकी पिष्टीमें तीन दिनतक भोजन करावे फिर विरेचन देवे ॥ १८ ॥ सुगंधियुक्त नमकीन या जोरा और खांदके योगसे जिनमें वायविडंग मिली हो विरेचन देवे और फिर ऊपरमें धान्याम्ल पिलावे ( और फई " विडंग-गाढ " पाटीतर मानकर ऐसा अर्थ करते हैं कि धान्याम्लमें विडंग मिलाकर

ऊपरसे पिलावे ) ॥ १९ ॥ इससे हृदयस्थ कृमि मनुष्योंके नीचेको दस्तके राहसे निकल जातेहैं इसके पीछे विडंगयुक्त यवका भोजन करावे ॥ २० ॥

( वक्तव्य ) हृदयस्थ उन्हीं कृमियोंका यह यत्न है जो आमाशयके ऊपर-भागमें हृदयके समीप चिमटेहुए होतेहैं और येही दस्तके राहसे निकल सकतेहैं इन बातोंको वेही वैद्य समझ सकतेहैं जो शारीरकका तत्त्व भली भांति जानतेहैं कि हृत्कमल ( अर्थात् दिल यानी हार्ट ) में कदाचित् जखम होकर कृमि पैदा हो भी जावें तो वे दस्तके राहसे नहीं निकल सकते हैं हां शायद श्वासनलका ( ट्राकिया ) के मार्गद्वारा मुखसे कोई एक दो निकलकर दिखाई देसकताहै श्रीभगवान् धन्वंतरिजीने आमाशयगत हृदयके समीपके कृमियोंकाही यह उपरोक्त यत्न लिखा है ॥

यूनानीवाले हृद्रोगको अमराजकलब याने दिलकी बीमारीयां कहतेहैं और डाक्टरोंमें हार्टडजीज ( Heart Disease ) कहतेहैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतंत्रे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

## चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४४.

अथातः पांडुरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम पांडुरोगकी चिकित्साका व्याख्यान करतेहैं ॥

### पांडुरोगके कारण और संप्राप्ति ।

व्यवायमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमतीवतीक्ष्णम् ।

निषेवमाणस्य विदूष्यं रक्तं कुर्वति दोषास्त्वैचि पांडुभावम् ॥ १ ॥

अतिमैथुन करनेसे खट्टा नमकीन पदार्थ विशेष खानेसे मिट्टी खानेसे अत्यन्त मद्य पीनेसे दिनके विशेष सोनेसे अतितीक्ष्ण पदार्थ या औषधादि सेवन करनेसे कुपितहुए दोष रुधिरको दूषित करके त्वचा आदिमें पीलापन पैदा करदेते हैं ॥ १ ॥

### पांडुके भेद और निरुक्ति ।

पांड्वामयोष्ठार्द्धविधः प्रदिष्टः पृथक्समस्तैर्युगपच्च दोषैः ।

सर्वेषु चैवैष्विह पांडुभावो यतोधिकोऽतः खलु पांडुरोगः ॥ २ ॥

( श्लो० २ ) अष्टार्द्धविधः चतुर्विधः ।

यह पांडुरोग अष्टार्द्ध अर्थात् चार प्रकारका है सब दोषोंसे पृथक् २ ( जैसे वायुका पित्तका कफका ) और चौथा सन्निपातका इन सब प्रकारके पांडुओंमें प्रायः सब अवयवोंमें पीलापन अधिक होता है इसीसे इसे पांडु ( पीलिया ) रोग कहते हैं ॥ २ ॥

( वक्तव्य ) कई आचार्य इस पांडुका पांचवाँ भेद मृदक्षणजनित और मानते हैं परंतु वह केवल कारणभेद है जातिभेद नहीं हो सकता इसीसे भगवान् धन्वंतरिजीने उसे जुदा नहीं लिखा ॥

## पांडुका पूर्वरूप ।

वक्स्फोटनं धीवनगात्रसादौ मृदक्षणं प्रेक्षणकूटशोथः ।

विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ३ ॥

त्वचामें फूटनसी होना मुँहमें थूक अधिक आना अंगोंमें शिथिलता होना मट्टी खानेकीसी इच्छा होना और नेत्रोंके नीचले डोले सूजेसे मालूम होना मल और मूत्रमें पीलापन होना भोजन न पचना ये लक्षण पांडुरोगके पहले पूर्व-रूपमें होते हैं ॥ ३ ॥

## पांडुके और भेद कामलाआदि ।

स कामला पालकि पांडुरोगः कुंभाह्वयो लाघरकोऽलसारव्यः ।

विभाष्यते लक्षणमस्य कृत्स्नं निबोध वक्ष्याम्यनुपूर्वशस्तत् ॥ ४ ॥

इस पांडुरोगके अवस्थाके अनुसार और भी कई भेद हैं जैसे कामला पालकि या पानकी कुंभिका लाघर और अलस इन सबके लक्षण अगाड़ी क्रमसे श्रवण करो हम कहते हैं ॥ ४ ॥

## पांडुके लक्षण ।

कृष्णक्षणं कृष्णशिरावनद्धं तद्वर्णविण्मूत्रनखाननं च ।

वातेन पांडुं मनुजं व्यवस्येद्युक्तं तथान्यैस्तदुपद्रवैश्च ॥ ५ ॥

पीतेक्षणं पीतशिरावनद्धं तद्वर्णविण्मूत्रनखाननं च ।

पित्तेन पांडुं मनुजं व्यवस्येद्युक्तं तथान्यैस्तदुपद्रवैश्च ॥ ६ ॥

शुक्रेक्षणं शुक्रशिरावनद्धं तद्वर्णविण्मूत्रनखाननं च ।

( श्लो० ३ ) मक्षणकूटशोथ इति नेत्राद्योभागस्य कूटं शोथ इत्यर्थः ।

कफेन पांडुं मनुजं व्यवस्येद्युक्तं तथाऽन्यैस्तदुपद्रवैश्च ॥ ७ ॥

सर्वात्मके सर्वमिदं व्यवस्येद्वक्ष्यामि लिङ्गान्यथ कामलायाः ॥ ८ ॥

वायुके पांडुमें नेत्र काले ( पिलाईमें कालापन लिये ) हों नीली २ नसें चमकें और वैसेही कालेपन लिये पीले दस्त मूत्र नख और मुख हों तथा और भी वायुके उपद्रव उसमें होवें ॥ ५ ॥ पित्तके पांडुम नेत्र पीले हों और ऐसेही पीले मल मूत्र नख और मुख हों तथा पीली पीली नसें चमकें और अन्य भी पित्तके उपद्रव हों ॥ ६ ॥ कफके पांडुमें नेत्र सुपेदी लिये पीले हों तथा ऐसे मल मूत्र नख और मुख हों तथा सुपेद नसें चमकें और अन्य भी कफके उपद्रव हों ॥ ७ ॥ तथा सन्निपातके पांडुमें ये सब लक्षण मिलेहुए मालूम पड़ें इसके अगाड़ी हम कामला आदिके लक्षण कहते हैं ॥ ८ ॥

यो ह्यामयांते सहस्रांमम्लमद्यादपथ्यानि च तस्य पित्तम् ।

करोति पांडुं वदनं विशेषात्तद्रावर्त्तत्वं प्रथमोदितांश्च ॥ ९ ॥

भेदस्तु तस्याः खलु कुंभसाह्वः शोको महास्तत्र च पूर्वभेदः ।

ज्वरांगमर्दभ्रमसादतंद्रा क्षयान्वितो लाघरकोऽलसाख्यः ॥

तं वातपित्ताभिपरीतलिङ्गं हलीमकं नाम वदन्ति तज्ज्ञाः ॥ १० ॥

जो पांडु ( या अन्य रोग ) के अंतमें शीघ्र ही अम्ल अन्न ( खटाई ) खावे अथवा अन्य ऐसे कुपथ्य करे जिससे पित्त अति दूषित होकर विशेष पांडु वर्ण मुखको ( तथा शरीरको ) कर देताहै तथा तंद्रा और निर्वलता तथा पूर्वोक्त लक्षण करताह इसे कामला कहते हैं ॥ ९ ॥ इस कामलाहीका भेद कुंभिका है इसमें शोथ विशेष होताहै और जोड़ोंमें दरद होताहै और जिसमें ज्वर अंग टूटना भ्रम थकान तंद्रा और क्षीणता हो उसे लाघरक अल-साख्य कहतेहैं और इसमें यदि वात पित्तके चिह्न पायेजावें तो इसे वैद्य हलीमक कहतेहैं ॥ १० ॥

( वक्तव्य ) पानकी या पालकिके लक्षण ग्रंथांतरसे लिखतेहैं-

संतापो भिन्नवर्चस्त्वं बहिरंतश्च पीडता ।

पांडुता नेत्ररोगाश्च पानकीलक्षणं वदेत् ॥

संताप हो मल फटा हो अंदर और बाहर वेदना हो पालापन हो नेत्रोंमें विकार हो ये पानकीके लक्षण हैं ॥



## पांडुरोगके उपद्रव ।

उपद्रवास्तेष्वरुचिः पिपासा छर्दिज्वरो मूर्धरुजाग्रिसादः ।

शोफस्तथा कंठगतो बल्लवं मूर्च्छा कृमो हृद्यवपीडनं च ॥ ११ ॥

पांडु कामला आदिमें ये उपद्रव होतेहैं-अरुचि तृषा वमन ज्वर शिरका दरद अधिकी मंदता तथा कंठमें शोथ निर्वलता मूर्च्छा कृम और हृदयमें पीडा ॥ ११ ॥

साध्यं तु पांड्वामयिनं समीक्ष्य स्निग्धं घृतेनोद्धमयश्च शुद्धम् ।

संपादयेत्क्षौद्रघृतप्रगाढैर्हरीतकीचूर्णयुतप्रयोगैः ॥ १२ ॥

पिवेद्घृतं वा रजनीविषकं यत्रैफलं तैलवकमेव वापि ।

विरेचनद्रव्यकृतं पिवेद्धि योगांश्च विरेचनिकान्घृतेन ॥ १३ ॥

मूत्रे निकुंभाद्धपलं विपाच्य पिवेदभीक्षणं कुडवाद्धमात्रम् ।

खादेद्गुडं वाप्यभयाविमिश्रमारग्वधादिकथितं पिवेद्वा ॥ १४ ॥

साध्य पांडुरोगवालेको देखकर ( अर्थात् अगाड़ी जो असाध्यके लक्षण यहैं जिसमें ये न हों ) रोगीको घृतसे स्निग्ध करके ऊपर नीचेसे शु करके शहद और घृतमें मिलाके हरीतकीके चूर्ण सहित प्रयोग करे ॥ १२ ॥ अथवा हलदीसे पके घृतको पीवे या त्रिफला घृत अथवा तिलवक ( लोथ ) से सिद्ध किये घृतको पान करे । अथवा विरेचन द्रव्यों त्रिवृता आदिसे सिद्ध किये घृतको पीवे तथा विरेचनके योगोंको घृतके संग पीवे ॥ १३ ॥ अथवा निकुंभ ( दंतो ) आधे पल लेकर सोलागुने मूत्र ( गोमूत्र ) में पकाकर इसमेंसे २ पल पीवे अथवा हरदेकी छालको गुडमें मिलाकर खावे अथवा आरग्वधादि गणका काथ पीवे ॥ १४ ॥

अयोरैजो व्योषविडंगचूर्णं लिप्ताद्धरिद्रां त्रिफलान्वितां वा ।

सपिमधुभ्यां विदेधीतवापि शास्त्रप्रदर्शाभिहितान्श्रियोगान् १५ ॥

हेरचं दोषान्वद्दुशोल्पमात्राभ्येयेद्धि दोषेष्वतिनिहन्तेषु ।

धार्वाफलानां रसमिक्षुजं च मधं पिवेत्क्षौद्रयुतं हिताशी ॥ १६ ॥

उभे बृहत्यौ रजनीं शुकाख्यां शुकादनीं चापि सकाकमाचीम् ।  
आदारिविंबीं सकदंबपुष्पीं विपाच्यं सर्पिर्विपचेत्कषाये ॥ १७ ॥  
तत्पांडुतां हंत्युपयुज्यमानं क्षीरेण वा मागधिकां यथाग्नि ।

हितं च यष्टीमधुकं कषायं चूर्णं समं वा मधुनाऽवलिह्यात् ॥ १८ ॥

लोहका चूर्ण ( शोधित मारित लोह भस्म ) त्रिकटु विडंग इनके चूर्ण-  
को शहद और घृत के संग चाटे अथवा हलदी त्रिफला इन्हें शहद घृतसे  
चाटे तथा अन्यशास्त्रोक्त प्रयोग करे ( यद्यपि लोहचूर्ण इसमें महर्षिजीने  
शोधित मारित कुछ नहीं लिखा केवल ऐसाका ऐसा लोहचूर्ण उपयोग  
करना प्रतीत होता है परंतु इस समय विना शोधन मारण किये ठीक नहीं )  
॥ १५ ॥ पांडु रोगवालेके दोषोंको थोड़ा थोड़ा करके कई बार निकाले  
क्योंकि ज्यादा एक बार निकालनेसे सोथ होजाता है और हित भोजन करने-  
वाला रोगी आँवलोंका रस या ईखका रस या मंथ इनमेंसे एकको शहद  
मिलाके पीवे ॥ १६ ॥ अथवा दोनों कटेली हलदी शुकाख्य ( चर्मकारवट )  
शुकादनी ( शुकासेवी कइ अनारकी कली कहते हैं ) तथा मकोय आदारि  
विंबी ( आँउली ) और कदंबपुष्पी इनको पकाकर इनके काथमें घृत  
पकावे ॥ १७ ॥ यह घृत उपयोग करनेसे पांडुताको नाश करता है  
अथवा अग्निबलके अनुसार पीपलोंको दूधके साथ लेवे अथवा मुलठाक  
काथको शहद मिलाकर पीवे या मुलेठीके चूर्णको शहद समानभागमें  
मिलाके चाटे ॥ १८ ॥

गोमूत्रयुक्तं त्रिफलादलानां दैत्वायसं चूर्णमनर्पकालम् ।

प्रवालमुक्तांजनशंखचूर्णं लिह्यात्तथा कांचनगैरिकोत्थम् ॥ १९ ॥

आजं शकृद्वा कुडवप्रमाणं विडं हरिद्रा लवणोत्तमं च ।

पृथक्पलांशानि समग्रमेतच्चूर्णं हिताशी मधुनाऽवलिह्यात् ॥ २० ॥

मंडूरलोहाग्निविडंगपथ्याव्योषांशकान् सर्वसमानवाप्यं ।

मूत्रायुतोयं मधुनावलेहः पांड्वर्मयं हंत्यचिरेण घोरम् ॥ २१ ॥

( श्लो० १७ ) आदारिविंबी विंबफलानुकारिविटपा लोहितफला च ( इति डल्लनः )  
कार्तिककुण्डस्तु आँउलीरिति प्रसिद्धा इति व्याख्यानयति ।

( श्लो० १९ ) प्रवाल विद्रुमः । मुक्ता मौक्तिकम् । अंजनं सावीरांजनम् । अन्ये  
रसांजनमाहुः । शंखः समुद्रभवः । तेषां चूर्णं विधिना कार्यम् ।

विभीतकायोमलनागराणां चूर्णं तिलानां च गुडश्च मुख्यः ।

तैक्रानुपानो वटर्कः प्रयुक्तः क्षिणोति घोरानपि पांडुरोगान् ॥२२॥

त्रिफलाके पत्ते गोमूत्र इनमें लोहचूर्ण ( सार ) मिलाकर बहुत दिन सेवन करे अथवा मूंगा मोती सुरमा और शंख इनको गोमूत्रके संग ( या शहदके संग ) चाटे अथवा सुवर्ण मेरुको चाटे ॥ १९ ॥ अथवा बकरीकी मंगनी एक कुडव विडनों हलदी सेंधानमक ये सब एक एक पल लेकर सबका चूर्ण बनाले और शहद मिलाके चाटे और हित भोजन करे ॥ २० ॥ मंडूर ( किट्ट ) और लोह इनका चूर्ण ( भस्म ) चित्रक विडंग हरडे त्रिकटु इन सबका समान भाग ले और समान भाग सो-नामवर्षी ( शुद्ध ) मिलावे इसमें गोमूत्र मिलाके इसे शहद संग चाटे यह शीघ्र घोर पांडुरोगको नष्ट करदेता है ॥ २१ ॥ अथवा बहेड़ा लोह किट्ट सोठ और तिल इनका चूर्ण गुडमें मिलाके गोली बनाले और छोलके साथ खिलावे यह भी घोर पांडुरोगको नष्ट करदेता है ॥ २२ ॥

सौवर्चलं हिंगु किराततित्तं कलायमात्राणि सुखांबुना वा ।

मूर्वा हरिद्रामलकं च लिह्यात्स्थितं गवां सप्तदिनानि मूत्रे ॥२३॥

मूलं बलाचित्रकयोः पिवेद्वा पांडुरामयातोऽक्षसं हितोऽशी ।

सुखांबुना वा लवणेन तुल्यं शिग्रोः फलं क्षीरभुजोपयोज्यम् २४

न्यग्रोधवर्गस्य पिवेत्कपयं शीतं सिताक्षौद्रयुतं हितोऽशी ।

शालादिकं चाप्यथ सारचूर्णं धात्रीफलं वा मधुनावलिह्यात् २५

कालानमक हींग और चिरायता इनको ले मटरके तुल्य गोली बनाकर नियाये जड़के संग लेवे अथवा मूर्वा हलदी और आवले इन्हें सात दिन गोमू-त्रमें भिगाकर इनमेंसे चाटे ॥ २३ ॥ अथवा खैरटी और चित्रककी जड़को

( श्लो० २३ ) सौवर्चलादीनामेकत्वेन निर्दिष्टानां बहुवचनान्वयमभिप्रेतं अतः कलाय-मात्राणि इति विशेषणं, तत्र सौवर्चलादीनां मन्वेकं कलायमात्रमिति बोधनार्थम् । ( इति बल्लभः ) अन्ये तु प्रयाणां मिलित्वा कलायमात्रं प्रमाणं मन्यन्ते । पांडुरोः पित्तस्य मधा-मन्वत्तु केचिद् योगमेवं कफपांडुरमिति मन्यन्ते ।

( श्लो० २४ ) लवणेन तुल्येन तुल्यं शिग्रुफलं कफने कलायमात्रमित्यनुवर्तनीयं ( इति नि० सं० )

( श्लो० २५ ) शालादिकं सारचूर्णं शालसादि चूर्णम् ।

पांडुरोगी निरंतर कर्षभर पीवे और पथ्यसे रहे अथवा सोहँजनेके फल और नमक समान भाग ले मटर समान गोली बनावे और इन्हें निवाये पानीसे उपयोग करे और दूध भोजन करे ॥ २४ ॥ अथवा न्यग्रोधादि गणका शीतल कषाय मिश्री और शहद मिलाकर पीवे और हितकारक भोजन करता रहे अथवा शालसारादिके चूर्णको या आँवलोंके चूर्णको शहदके संग चाटे ॥ २५ ॥

विडंगमुस्तत्रिफलाजमोदपरूषकव्योषविनिर्दहन्यः ।

चूर्णीकृता वा गुडशर्करे च तथैव सर्पिर्मधुनी शुभे च ॥ २६ ॥

संभारमेतद्विपचेन्निधाय सारोदके सारवतो गणस्य ।

जातं च लेह्यं मतिमान्विदित्वा निधायैन्मोक्षकं जे समुद्रे ॥ २७ ॥

हं त्येष लेहः खलु पांडुरोगं सशोथमुग्रामपि कामलां च ॥ २८ ॥

विडंग नागरमोथा त्रिफला अजमोदा फालसे त्रिकटु चित्रक इन सबको समभाग ले चूर्णकर गुड खांड घृत और शहद इन सबको शालसारादिक गणके काथमें डालकर पकाता रहे; जब पककर अवलेहसा होजावे तब इसे मोक्षक ( मोखा ) वृक्षकी लकड़ीके डब्बेमें भर देवे ॥ २६ ॥ २७ ॥ यह अवलेह निश्चय शोथयुक्त पांडुरोगको नष्ट करता है तथा बढी हुई कामलाको भी नष्ट करदेता है ॥ २८ ॥

### कामलाका यत्न ।

सशर्करा कामलिनां त्रिभंडी हिता गवाक्षी सर्गुडा च शुंठी ।

कालेयके चापि घृतं विपकं हितं च तैत्त्याद्रजनीविमिश्रम् २९

कामला रोगवालेको निशोथमें मिश्री मिलाकर उपयोग करना हित है तथा इंद्रायन और सोंठको गुड मिलाके खाना भी हित है तथा कालीयक ( पीतचंदन दारुहलदीके भेद ) से घृत पकावे उसमें ( पकते समय ) हलदी मिलावे यह भी हित है ॥ २९ ॥

### कुंभिकाका यत्न ।

धातुं नदीजं जतु शैलजं वा कुंभाह्वये मूत्रयुतं पिबेद्वा ।

मूत्रस्थितं सैधवसंप्रयुक्तं मांसं पिबेद्वापि हि लोहकिट्टम् ॥ ३० ॥

( श्लो० २६ ) सारवतो गणस्य सारोदके शालसारादिगणसारकाथे ( इति नि० सं० )

( श्लो० ३० ) शैलजं जतु शिलाजतु ।

दग्ध्वाक्षकाष्टैर्मलमायसं वा गोमूत्रनिर्वापितमर्ष्ट्वारान् ।

विचूर्ण्य लीढं मधुनाचिरेण कुम्भाह्वयं पाण्डुगदं निह्न्यात् ॥ ३१ ॥

नदीज धातु ( सोनामाक्षिक ) या शिलाजीतको गोमूत्रके साथ पीना कुम्भिकाको नष्ट करता है अथवा लोहेके किट्टको सेंधानमक मिलाकर गोमूत्रमें भिगोवे और एक महीनातक पीवे ( कोई ऐसाभी अर्थ करते हैं कि गोमूत्र और सेंधवमें लोहका किट्ट एक महीनातक भिगोया रखे फिर पीवे ) ॥ ३० ॥ अथवा लोहेके मैल ( मंडूर ) को बहेड़ेकी लकड़ीकी अग्निमें लालकर करके आठवार गोमूत्रमें बुझावे फिर इसे पीसकर शहद मिलाकर चाटे यह शीघ्र ही कुम्भिका नामक पाण्डुको नष्ट करे ॥ ३१ ॥

सिधूद्भवं वाग्निसमं च कृत्वा सिक्त्वा च मूत्रे सकृदेव तप्तम् ।

लीढं च किट्टं बहुशश्च तत्त्वा निर्वाप्य मूत्रे बहुशस्तथैव ॥ ३२ ॥

एकीकृतं गोजलपिष्टमेतदेकध्यमावाप्य पंचेदुस्त्रायाम् ।

यथा न दह्येत तथा विशुष्कं चूर्णीकृतं पेयमुदधिस्ता तत् ।

तक्रौदनाशी विजयेत रोगं पाण्डुं तथा दीपयतेऽनलं च ॥ ३३ ॥

सेंधव नमकको अग्निमें लाल करके उसे एकवार ही गोमूत्रमें बुझा लेवे और लोहेके किट्ट ( अर्थात् मंडूर ) को अनेकवार अग्निमें लाल कर करके बार बार गोमूत्रमें बुझावे ॥ ३२ ॥ फिर इन दोनोंको मिलाकर गोमूत्रमें पीस लेवे फिर उन्हें गोमूत्रयुक्त ही हांडीमें डालकर पकावे इतना पकावे कि वह जल नहीं जावे किंतु सूख जावे फिर उसका चूर्ण बना लेवे और उद-  
धि ( आप जल मिली छाछ ) के संग पीवे और इसके पचजानेपर छाछ से भात खावे यह प्रयोग पाण्डुरोगको नष्टकर देता है तथा जठराग्निको दीपन करता है ॥ ३३ ॥

### लाघरकका यत्न ।

द्राक्षागुहूच्यामलकीरसैश्च सिद्धं घृतं लाघरके हितं च ।

गोदानरिशान्मधुशंकराश्च मूत्रासवान्धारकृतास्तथैव ॥ ३४ ॥

( श्लो० ३२।३३ ) द्रक्षायां लघ्न्यां मिश्रित्य सुतं त्रिधाप पंचद ( इति ति० सं० ) ।

( श्लो० ३४ ) गोदानं अभयारिशानं । मधुशंकराभेति मधुशब्देन मन्नामकः सन-  
सोताभिश्च भक्ष्यः । द्रक्षराशब्देन शंकराशब्दः भृशमन्त्रादुदतिष्ठितोक्तान् सार-  
गुणान् भागवान् श्रीरुद्रपञ्चान् । ( इति दत्तनः ) ॥

मुनका गिलोय और आँवले इनके रसमें सिद्ध किया घृत लाघरक संज्ञक पांडुमें हित है तथा गुडके अरिष्ट मधुके अरिष्ट ( लोहारिष्ट ) तथा शर्कराके अरिष्ट और मूत्रासव तथा क्षारारिष्ट ये सब हितकारक हैं ॥ ३४ ॥

( वक्तव्य ) मूत्रासव कुष्ठकी चिकित्साप्रोक्त और क्षारासव श्लोषदोक्त बनाना तथा गौडअरिष्टसे अभयारिष्टादि लेने और मध्वासवसे लोहा सब लेना ॥

## पांडुपर पथ्य ।

स्निग्धात्रसंनानामलैकरूपेत्तान्कोलान्वितान्वापि हि जांगला-  
नाम् । सेवेत शोफाभिहितांश्च योगान्पाण्डुर्मयी शालिर्यवां-  
श्च नित्यम् ॥ ३५ ॥

स्निग्ध जंगली जीवोंके मांसरसमें आँवले मिलाकर या बेर मिलाकर सेवन करे ( भोजन करे ) तथा शोथ रोगके पथ्यमें जो योग लिखे हैं उन्हें सेवन करे अथवा नित्य चाँवल या जौके भोजन करे ॥ ३५ ॥

## पांडुकी साध्यता ।

श्वासातिसारारुचिकासमूच्छातृट्छर्दिशूलज्वरशोफदाहान् ।  
तथाविपाकस्वरभेदसादाज्येद्यथास्वं प्रसमीक्ष्य शास्त्रम् ॥ ३६ ॥

यदि पांडुरोगके उपद्रव श्वास अतिसार अरुचि खाँसी मूच्छा तृषा छर्दि शूल ज्वर शोथ दाह तथा भोजन नहीं पचना स्वरभेद ( आवाज बैठ जाना ) और थकान ( कम जोरी शिथिलता ) ये हों ( इनमेंसे जो हों ) उन्हें शास्त्रको देखकर ( इनकी चिकित्सा देखकर जो पांडुसे विरुचन हो ) ऐसी रीतिसे इनको शांत करे ॥ ३६ ॥

## पांडुकी असाध्यता ।

अंतेषु शूनं परिहीनमध्यं म्लानं तर्था तेषु च मध्यशूनम् ।  
गुदेथ शोफस्य च मुष्कयोश्च शूनं प्रताम्यंतमसंज्ञकल्पम् ।  
विर्वर्जयेत्पांडुकिंन यशोर्थं तर्थाऽतिसारज्वरपीडितं च ॥ ३७ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

जिसके हाथ पाँव मुख सूजे हों और मध्यभाग ( धड़ पतला पड़ गया हो ) अथवा हाथ पाँव मुख पतले पड़ गये हों और धड़ सूज गया हो तथा गुदा लिंग और अंडकोश सूजे हों जिसे अँधेरी आती हो जिसकी संज्ञा ( ज्ञान ) कम पड़ गया हो तथा जो अतिसार और ज्वरसे पीड़ित हो ऐसा पांडुरोगी असाध्य होता है, यश चाहनेवाला वैद्य ऐसे रोगीको त्याग देवे ॥ ३७ ॥

यूनानी हकीम पांडुको " यरकान " कहते हैं उनके मतसे पांडु ( पीलिया ) जिगर और पित्तके फितूरसे होता है और हलीमक ( कालापन लिये पीलिया ) प्रायः तिल्लीके फितूरसे होता है ऐसा मानते हैं ॥

डाक्टरोंमें इस पांडुरोगको जॉडिस ( Jaundice ) कहते हैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

## पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ४५.

अथातो रक्तपित्तप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम रक्तपित्तकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं ॥

क्रोधशोकभयायासविरुद्धान्नातपानलान् ।

कट्फल्लवणक्षारतीक्ष्णोष्णातिविदाहिनः ॥ १ ॥

नित्यमभ्यसतो दुष्टो रसः पित्तं च कोपयेत् ।

विदग्धं स्वगुणैः पित्तं विदहत्यांशु शोणितम् ॥ २ ॥

ततः प्रवर्तते रक्तमूर्द्धं चाधो द्विधाऽपि वा ।

आमाशयाद्वर्ज्येदूर्द्धमधः पक्वाशयाद्वर्ज्येत् ॥ ३ ॥

विदग्धयोर्द्वयोश्चापि द्विधा भागं प्रवर्तते ।

केचित्सयंकृतः शीघ्रैः प्रवदंत्यसृजो गतिम् ॥ ४ ॥

( श्लो० ३ ) ततः प्रवर्तते रक्तमिति । रक्तमिदमुपलक्षणम् । नेन संसृष्टं पित्तं च । अत एव रक्तं च पित्तं च रक्तपित्तमिति दंष्टः । अथवा रक्तं च तपित्तं चेति रक्तपित्तं रक्तमात्रं पित्तमिदमुच्यते ( इति भा० नि० ) रुद्धतामर्भंशो "पुष्टिं पित्तैः पित्तं रक्तं च सृजति । ते मिथस्तु मरुत्तत्त्वनाशाय तदादुनन्तुम् । पित्तं रक्तमयं विदग्धं संतपोदुःखादिति । मंशुनान्दुःखेन रक्तं च रक्तपित्तमेति ।



क्रोध शोक भय परिश्रम विरुद्ध अन्न धूप अग्नि कटु ( चरपरे ) खट्वे लवणके रस तथा क्षार ( यवक्षारादि या तेजाब जैसे गंधकका तेजाब शोरेका तेजाब आदि ) तथा तीक्ष्ण पदार्थ और गरम पदार्थ तथा विदाही दाहजनक पदार्थ ॥ १ ॥ इनका नित्य ( या अत्यंत ) सेवन करनेसे रस दुष्ट होकर पित्तको कुपित करता है और अपने हेतुओंसे विदग्ध हुआ पित्त फिर शीघ्रही शोणित ( रुधिर ) को दग्ध करता है ( दूषित करता है ॥ २ ॥ वह दूषित या मूछत हुआ रक्त ऊपरको ( मुखनासिकादि से ) या नीचेको ( गुदालिंगादिसे ) या दोनों तरफ प्रवृत्त होता है आमाशयमें प्राप्त हो तो ऊपरको आता है और पक्काशयमें हो तो नीचेको जाता है ॥ ३ ॥ और जो दोनों स्थानोंमें दूषित होता है तो दोनों तरफ निकलता है कोई ऐसा कहते हैं कि यकृत और प्लीहासे रुधिर प्रवृत्त होता है ॥ ४ ॥

( वक्तव्य ) जब अपने हेतुओंसे रस और पित्त दूषित होकर रुधिरको दूषित करते हैं तब वह दूषित रुधिर रुधिरवाहिनी शिराओं में गमन करके विरुद्ध मार्ग हो यकृतस्थानसे आमाशय या पक्काशय की तरफ प्रवृत्त होता है और इस दूषित रक्तमें पित्त भी मिलकर रक्तवर्ण हो जाता है कोई ऐसा भी कहते हैं कि पित्तही रक्त हो जाता है । ( देखो टिप्पणी )

और कई ग्रंथांतरोंमें ऊर्द्ध अधोगमन पर यूं लिखते हैं कि “ऊर्द्धगं कफ संमृष्टमधोगं मारुतानुगम् ॥ द्विमार्गं कफवाताभ्यामुभाभ्यां तत्प्रवर्तते” अर्थात् कफसे संमृष्ट रक्त पित्त होता है वह आमाशयमें प्राप्त होकर ऊर्द्धगामी होता है और वायु से अनुगत हुआ पक्काशय में प्राप्त होकर अधोगामी होता है तथा कफ वायु दोनोंसे संमृष्ट दोनों मार्गोंसे प्रवृत्त होता है ॥

**ऊर्द्ध साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपद्गतम् ॥ ५ ॥**

ऊर्द्धगामी मुखनासिकादिकी तरफ प्रवृत्त होनेवाला रक्तपित्त साध्य होता है और अधोगामी गुदालिंग की तरफ प्रवृत्त होनेवाला याप्य होता है और दोनों तरफ का असाध्य होता है ॥ ५ ॥

**रक्तपित्तका पूर्वरूप ।**

सदनं शीतकामित्वं कंठधूमायनं वमिः ।

लोहबन्धिश्च निःश्वासो भवत्यस्मिन्भविष्यति ॥ ६ ॥

शरीरमें शिथलता हो शीत पदार्थोंको जी चाहे कंठमें धुँवाँसा बुढ़े वमन हो श्वासमें लोहेकेसी गंध आवे, ये लक्षण रक्तपित्तके पूर्वरूपमें होते हैं ॥ ६ ॥

## रक्तपित्तकी संख्या ।

बाह्यासृग्लक्षणैस्तस्य संख्या दोषोच्छ्रिति विदुः ॥ ७ ॥

इस रक्तपित्तका संख्याभेद और दोषोंकी प्रधानता शोणितवर्णनीय अध्यायमें कहे हुए लक्षणोंसे जानना ( वहाँ इसके सात भेद लिखे हैं ) ॥ ७ ॥

## रक्तपित्तके उपद्रव ।

दौर्बल्यश्वासकासज्वरवमश्रुमदाः पाण्डुता दाहमूच्छ्रा

भुक्ते चात्रे विदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा ।

तृष्णा कंठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूतिनिष्ठीवनं च ।

द्वेषो भेक्तेऽविपाको विरतिरपि रंते रक्तपित्तोपसर्गाः ॥ ८ ॥

दुर्बलता श्वास खाँसी ज्वर वमन मद पाण्डुता ( शरीर पीला पड़ना ) दाह मूच्छ्रा भोजन करने पीछे जलन बेचनी सदा हृदयको अहितकारक पीडा तृष्णा गल बैठ जाना शिरमें गरमी रहना थूकमें पीपसी ( या दुर्गंध युक्त पानीसा ) आना भोजनसे द्वेष ( अरुचि ) अन्न न पचना और विश्राम न होना ये रक्तपित्तके उपसर्ग ( उपद्रव ) होते हैं ॥ ८ ॥

## रक्तपित्तकी असाध्यता ।

मांसप्रक्षालनाभं कथितमिव च यत्कर्दमांभोनिभं वा

भेदः पूयान्नकल्पं यकृदिव यदि वा पक्वजंबूफलाभम् ।

यत्कृष्णं यत्र नीलं भृशमातिकुणपं यत्र चोक्ता विकारा-

स्तद्द्रव्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुंपा येन तुल्यं विभाति ॥ ९ ॥

मांस भोजनके समान हो या कायसा हो कान्हके पानीसा हो भेद ( नरसी ) राख मिले रुधिरसा हो यकृतके समान वर्णका हो या पकी जानके पानीसा हो चाला हो नीला हो मुरदेकसी गंधवाला हो ऐसा रुधिर निकले तथा जिसमें ऊपर कहे हुए विकार ( उपद्रव ) हो या जो इंद्रधनुंपके

( श्लोक ७ ) बाह्यासृग्लक्षणैरिति । शोणितवर्णनीयैः रक्तपित्तमन्वयमिति ।

रक्तपित्तस्य संख्या रक्तपित्त ( इति नि० ६ )

समान रंग विरंगका हो ऐसा रक्तपित्त असाध्य होताहै उसे त्याग देना चाहिये ॥ ९ ॥

## रक्तपित्तकी चिकित्सामें उपदेश ।

नादौ<sup>१</sup> संग्राह्यमुद्रिक्तं यदसृग्बलिनो यतः ।

तत्पाण्डुग्रहणीकुष्ठप्लीहगुल्मज्वरावहम् ॥ १० ॥

रक्तपित्तके प्रवृत्त हुए उल्बण रुधिरको आरंभ ही में बलवान् रोगीके रोक देना उचित नहीं क्योंकि वह रुका हुआ रुधिर ( यदि सूक्ष्म शिराओं द्वारा त्वचाकी तरफ प्रवृत्त होगा तो ) पाण्डुरोग पैदा करेगा और ग्रहणीमें प्राप्त हो तो ग्रहणीको बिगाड़ेगा तथा शारीरक धातुओंमें प्राप्त हो तो कुष्ठ पैदा कर देगा और जो प्लीहाकी तरफ आवे तो प्लीहवृद्धि और उदरमें ही कहीं इकट्ठा होजावे तो गुल्म पैदाकरे ( इस प्रकारके अपक्रम आदिसे पुरुषोंके भी रक्त गुल्म होजाता है ) और जो रस और स्वेदवहा शिराओंकी तरफ प्रवृत्त हो तो ज्वर पैदा करेगा ॥ १० ॥

## रक्तपित्तकी चिकित्सा ।

अधः प्रवृत्तं वमनैरूर्ध्वमार्गं विरेचनैः ।

जयैदन्यतरं चार्पि क्षीणस्य शमनैरसृक् ॥ ११ ॥

नीचेकी तरफ प्रवृत्त हुए बलवान् रोगीके रक्तपित्तका वमन कराके और ऊर्ध्वगामीको विरेचन देकर शांत करना ( तथा अन्य क्रियाओंसे भी ( शांत करना ) और रोगी निर्वल हो तो वमन रेचन नहीं देना केवल शमनकारक उपायोंसे शांत करना चाहिये चाहे वह किसी मार्गसे प्रवृत्त हो ॥ ११ ॥

अतिप्रवृत्तदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः ।

अक्षीणबलमांसाग्नेः कर्तव्यमपतर्पणम् ॥ १२ ॥

लघितस्य ततः पेषां विदध्यात्स्वल्पतंडुलम् ।

तर्पणं पाचनं लेहान्सर्पिषि विविधानि च ॥ १३ ॥

( श्लो० ११ ) ननु अधोगं वातानुगं भवति, ऊर्ध्वं च कफानुगतं, तत्कथं तयोः वमनविरेचनैर्युज्यते, सत्यं, व्याधिप्रत्यनीकत्वात् । अन्यतरं ऊर्ध्वगमधोगं वा क्षीणस्य पुरुषस्य शमनैर्वमनविरेचनैर्जयेत् । तथा च तंत्रांतरे—“ऊर्ध्वं वाप्यधोगं वा क्षीणस्य शमनैर्जयेत्” । ( इति नि० सं० )

रोगी यदि क्षीण नहीं हो बलवान् पुष्ट और दीप्ताग्निवाला हो और उसके रक्तपित्त अति प्रवृत्त हो तो उसे पहले लंघन करावे ॥ १२ ॥ और उचित लंघनके पीछे थोड़े चावलोंकी पेया पिलानी चाहिये तथा तर्पण करना पाचन वस्तु देना अवलेह देना और अनेकप्रकारसे यथायोग्य सिद्ध किये हुए पृत देने भी उचित हैं ॥ १३ ॥

द्राक्षामधुककाश्मर्यसितायुक्तं विरेचनम् ।

यष्टीमधुकयुक्तं च सक्षौद्रं वमनं हितम् ॥ १४ ॥

यदि विरेचन देनेका काम पड़े तो मुनक्का मुलेठी खंभारी और मिश्री मिलाकर विरेचन देना और जो वमन करानेका काम पड़े तो मुलेठी और शहद मिलाकर वमन कराना ॥ १४ ॥

पयांसि शीतानि रसाश्च जांगलाः सतीनयूपाश्च सशालिप-  
ष्टिकाः । पटोलशेलूसुनिपण्णयूथिका वटातिमुक्तांकुरमिन्दुवा-  
रिजम् ॥ १५ ॥ हितं च शार्कं घृतसंस्कृतं सर्दा तथैव धात्री-  
फलदाडिमान्वितम् । रसार्थं पारावतशंखकूर्मजास्तथा यवा-  
ग्वोऽभिहिता घृतोत्तराः ॥ १६ ॥ संतानिकाश्चोत्पलवर्गसाधिते  
क्षौरे प्रशस्ता मधुशर्करोत्तमाः । हिमाः प्रदेहा मधुशर्कराश्च  
ये घृतानि पथ्यानि च रक्तपित्तिनाम् ॥ १७ ॥

शीतल दूध जंगली जीवोंके मांसका रस मटरके दूध शाली और पष्टिक चावल परवल लहेसुवे निपण्ण ( सिरयाई ) का शाक यूथिका ( डुरेया शाक ) वट और अतिमुक्त ( तिटुक या तिरिच्छ ) इनके कोमल पत्ते इंदु ( फर्रर या अदमंतक ) वारिज ( कमल ) ॥ १५ ॥ तथा घृतसं

( १५-१५ ) पयांसि शीतानि । शीतानि पयांसि इति स्पष्टोऽर्थः । परंतु श्रीमता दण्डिनेमि व्याख्यानम्-शीतानि उत्पलादीनि द्रव्याणि तत्रापि शीतानि पयांसि शीतानि पयांसि तु पित्तनाशे जांगला रसा गुणादिकृताः, तेन कानादुर्ग्रे सतीनयूपा वट-मलापयूपाः ये च कानादुर्ग्रेष्वपि । तदुक्तं भावमहाशये-“कानादुर्गे रूपशोषनं दयाशोषणं रक्तम् । सप्तं गुणानुपेक्ष्य सति तैश्चानुमतिः” इति । “वटाति मुक्तांकुर मिन्दुवारिजम्” इत्यत्र “वटाति मुक्तांकुरातिभूषणम्” इति पाठोत्तरम्, तत्र अतिमुक्तं तिटुकं मधुकाः कोमलपत्राः । मिन्दुवारिजं मिन्दुदी । परंतु तस्य विनयोत्तरमपि “मिन्दुवारिजं” इति पाठः स्वीयः स्वीयः ।

संस्कार दिये हुए शाक तथा आँवले और अनारयुक्त तथा पारावत ( परेवा ) शंखका जीव और कछुवा इनका मांस तथा घृतयुक्त यवागू ये भी हितकारक हैं ॥ १६ ॥ और उत्पलादि वर्गसे पकाये दूधकी मलाईमें शहद और मिश्री मिलाकर देना तथा ठंडे लेप करना शहद और मिश्री या खांड ( अथवा मधु शर्करा ) और घृत ये सब रक्तपित्तरोग वालेको हितकारक हैं ॥ १७ ॥

मधूकशोभांजनकोविदारजैः प्रियंगुकायाः कुसुमैश्च चूर्णितैः ।

भिषग्विदध्याच्चतुरः समाक्षिकान्हितोय लेहानसृजः प्रशांतये १८

लिह्याच्च दूर्वावटजांश्च पल्लवान्मधुद्वितीयान्सित्तकणिकस्य ।

हितं च खजूरफलं समाक्षिकं फलानि चान्यान्यपि तद्गुणान्यथा १९

महुवा सोहंजना और कचनाल तथा प्रियंगु इन सबके फूल लेवे और इन्हें पीसकर शहद मिलाकर चतुर वैद्य अवलेह बनावे. यह अवलेह रक्तपित्त की शांतिके लिये हितकारक है ( कई ऐसा अर्थ करते हैं कि इन चारों प्रकारके पुष्पोंसे चार अवलेह बनावे ) ॥ १८ ॥ अथवा दूध और बड़की कोंपल ( अंकुर ) इनमें शहद मिलाके चाटे अथवा सुफेद कमलके अंकुरोंमें शहद मिलाके चाटे अथवा खजूरके फल ( खजूरिया ) को शहद सहित चाटे तथा इसी प्रकारके पित्तनाशक अन्य फलकोभी शहदके संग चाटना योग्य है ॥ १९ ॥

रक्तातिसारप्रोक्तांश्च योगानत्रापि योजयेत् ।

शुक्लेशुकांडमापोथ्य नवे कुंभे हिमांभसा ॥ २० ॥

योजयित्वा क्षिपेद्रात्रावाकाशे सोत्पलं तु तत् ।

प्रातः स्मृतं क्षौद्रयुतं पिबेच्छोणितपित्तवान् ॥ २१ ॥

रक्तातिसारमें कहे हुए प्रयोगोंको यहां योजना करना ठीक है अथवा सुफेद इशुकांड ( पौडिकी गँडेरियों ) को कूटकर रस निकाल लेव फिर उसे कोरे मिट्टीके घड़ेमें डाल दे और बराबरका जल मिलादे और कमल भी उसमें डालदे और रातको चौड़ेमें रखदे प्रभात छानकर शहद मिलाके रक्त पित्तवाला मनुष्य पीवे ॥ २० ॥ २१ ॥

( श्लो० १८ ) चतुरो लेहान् विदध्यात् । अथवा चतुरो भिषक् लेहान् विदध्यात् ।

पिवेच्छीतकपायं वा जंवाभ्राजुनसंभवम् ।

लटुंवरफलं पिष्ट्वा पिवेत्तद्रसमेव वा ॥ २२ ॥

अथवा जामन आम और कुहा इनके पत्रों ( कोमल पल्लवों ) के शीतक-  
पायको ( मधुयुक्त ) पीवे अथवा गूलरके फलको पीसकर या उसका रस  
निकालकर ( मधुयुक्त करके ) पीवे ॥ २२ ॥

त्रपुपीमूलकल्कं वा सक्षौद्रं तंडुलांबुना ।

पिवेदक्षसमं कल्कं यष्टीमधुकमेव वा ॥ २३ ॥

चंदनं मधुकं रोध्रमेवमेवं समं पिवेत् ।

करंजबीजमेवं वा सिताक्षौद्रयुतं पिवेत् ॥ २४ ॥

गर्जानमिगुंदस्यैवं पिवेन्मधुकसंयुतम् ।

सुखोष्णं लवणं बीजं कारंजं दधिमस्तुना ॥ २५ ॥

पिवेद्वापि त्र्यहं मर्त्यो रक्तपित्ताभिपीडितः ।

रक्तपित्तहराः शस्ता पडेते योगसत्तमाः ॥ २६ ॥

त्रपुपी ( ककड़ी ) की जड़का कल्क बनाके शहद मिलाके चावलोंके पानीके  
संग पीवे अथवा कर्पभर मुलेठीका कल्क ( शहदके संग ) पीवे ॥ २३ ॥  
अथवा चंदन मुलेठी लोध इनको समान भाग ले ( इनका हिम ) पीवे अथवा  
करंजके बीज मिश्री और शहदके संग ( कल्क करके ) पीवे ॥ २४ ॥  
अथवा हिमोदकी गिरीको शहदके संग ( कल्क करके ) पीवे अथवा करंजके  
बीज दधिमस्तु और नमक इन्हें जरा निचाया करके तीन दिन रक्तपित्तसे  
पीडित मनुष्य पीवे, ये छह श्रेष्ठ योग रक्तपित्तके नाश करनेवाले हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

नाकसे रुधिरनिकल आनेपर यत्न ।

पथ्योश्चैवावर्षाडिषु घ्राणतः प्रसृतेऽसृजि ॥ २७ ॥

और जो नाकसे रुधिर बहता हो तो उपरोक्त चैदी छहों प्रयोग अव-  
र्षाइनमें ( वर्षा देनमें ) श्रेष्ठ हैं ॥ २७ ॥

अधिकरक्तनिकले पर यत्न ।

अतिप्रसृतरक्तो वा क्षौद्रयुक्तं पिवेदसृक् ।

यकृदा भक्षयेदाजमामं पित्तसमायुतम् ॥ २८ ॥

जिसके किसी मार्गसे अधिक रक्त निकल गया हो वह शहद मिलाकर बकरेका रुधिर पान करे अथवा बकरेका यकृत ( जिगर ) पित्ते समेत कच्चाही खावे ॥ २८ ॥

### रक्तपित्तपर अन्ययोग ।

पलाशवृक्षस्वरसे विषकं सर्पिः पिबेत्क्षौद्रयुतं सुशीतम् ।

वनस्पतीनां स्वरसैः कृतं वा सशर्करं क्षीरघृतं पिबेद्वा ॥ २९ ॥

द्राक्षासुशीराण्यथ पद्मकं सितां पृथक्पलांशान्युदके समावपेत् ।

स्थितं निशां तद्रुधिरामयं जयेत्पीतं पयोवांबुसमं हिताग्निः ३०

तुरंगवर्चः स्वरसं समाक्षिकं पिबेत्सिताक्षौद्रयुतं वृषस्य वा ।

लिहेत्तथा वास्तुकबीजचूर्णं क्षौद्रान्वितं तंडुलसाह्वयं वा ॥ ३१ ॥

ढांकके स्वरसमें पकाये हुए घृतको शीतल करके शहद मिलाके पीवे अथवा वनस्पति ( बट पिप्पलादि ) के स्वरसमें पका हुआ घृत इसी भांति पीवे अथवा दूध घृत खांड इन्हें मिलाके पीवे ॥ २९ ॥ मुनक्का खस पद्माख मिश्री इन सबको पल पल भर लेकर पानीमें भिगोदे और रातभर भीगने दे और प्रभात ( शहद मिलाके ) पीवे, यह रुधिरके विकार ( रक्तपित्त ) को शांत करताहै, अथवा दूधमें बराबरका पानी मिला ( लहसी ) बनाके पीवे और हितकारक भोजन करे ॥ ३० ॥ अथवा घोड़ेकी लीदका रस शहद मिलाके पीवे अथवा बैलके गोबरका रस शहद मिलाके पीवे अथवा बथुबेके बीजोंका चूर्ण शहद मिलाके चाटे अथवा चौलाईको शहदके संगसेवन करे ॥ ३१ ॥

लिह्याश्च लाजांजनचूर्णमेकमेवं सिताक्षौद्रयुतां तुगाख्याम् ।

द्राक्षां सितां तिक्तकरोहिणीं च हिमांबुना वा मधुकेन युक्ताम् ।

पथ्यामहिस्त्रां रजनीं घृतं च लिह्यात्तथा शोणितपित्तरोगी ॥ ३२ ॥

धानकी खील और अंजन रसौत ( कई सौवीरांजन अर्थात् सुरमा कहते हैं ) इनका चूर्ण बनाकर शहदके संग चाटे अथवा वंश लोचन मिश्री इन्हें शहदमें मिलाके चाटे अथवा दाख ( मुनक्का ) मिश्री और कुटकी इनको ठंडे पानीसे लेवे और मुलेठी भी मिलाके अथवा हरड़े अहिंसा ( वालछड़ या हींस ) हलदी और घृत इन्हें चाटे ( शहद युक्त चाटे ) रक्तपित्तके रोगीको ये सब योग हित कारक हैं ॥ ३२ ॥

( श्लो० ३१ ) तंडुलसाह्वयं तंडुलीयकम् ।



वासाकपायोत्पलमृत्प्रियंगुनेत्रांजनांभोरुहकेशराणि ।

पीत्वा सिताक्षौद्रयुतानि जह्यात्पित्तामृजो वेगमुदीर्णमाशु ॥ ३३ ॥

गायत्रिजंघ्वर्जुनकोविदारशिरीपरोध्राशनशाल्मलीनाम् ।

पुष्पाणि शिग्रोश्च विचूर्ण्य लेहो मध्वन्वितः शोणितपित्तरोगे ३४ ॥

अइसेका काथ कर उसमें कमल और मिट्टी ( सुलतानी मिट्टी या बानी मिट्टी ) गोदी रसौत और कमलकी केसर इनमें मिश्री और शहद मिलाकर पीवे तो यह शीघ्र ही बड़े हुए रक्त पित्तके उग्र वेगको जीतलेता है ॥ ३३ ॥ तथा खैर अर्जुन जामन कचनाल शिरस लोध विजयसार और सेमल तथा सोहजना इन सबके फूल पीसकर शहद मिलाके रक्तपित्तके रोगमें चाटना श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥

सक्षौद्रमिदीवरभस्मवारि करंजबीजं मधुसर्पिणी च ।

जम्ब्वर्जुनाम्रकथितं च तोयं घ्रंति त्रयः पित्तमसृक् च योगाः ३५

मूलानि पुष्पाणि च मातुलुंग्याः पिष्ट्वा पिवेत्तंडुलधावनेन ।

घ्राणप्रवृत्ते जलमाशु देयं सशर्करं नासिकया पयो वा ॥ ३६ ॥

द्राक्षारसं क्षीरघृतं पिवेद्रा सशर्करं चेशुरसं हिमं वा ।

शीतोपचारं मधुरं च कुर्याद्विशेषतः शोणितपित्तरोगे ॥ ३७ ॥

नील कमलको जलाकर उसका भस्म शहद मिलाकर चाटे अथवा करंजबीजोंको शहद और घृतसे चाटे अथवा जामन कुहा आम इनका काथ पीवे ये तीन प्रयोग रक्तपित्तको नष्ट करते हैं ॥ ३५ ॥ अथवा विजोरकी जड़ और उसके फूल पीसकर चावलके धोवनके संग पीवे और जो नाकसे राधिर जाता हो तो इस जलको नासिकामें धारण करे अथवा दूधमें खाड़ मिलाके उसको नश्य ले ॥ ३६ ॥ अथवा मुनकाका रस, दूधका घृत, खाड़ मिलाके पीवे अथवा इसका रस निकालकर ठंडा ठंडा पीवे और अन्य शीतल और मधुर उपचार विशेष करके रक्तपित्तरोगमें करने चाहिये ॥ ३७ ॥

द्राक्षाघृतक्षौद्रसितायुतेन विदारिगंधादिविपाचितेन ।

क्षीरेण चास्यापनमय्यमुक्तं हितं घृतं चाप्यनुवासनार्थम् ॥ ३८ ॥

( श्लोक ३८ ) तथा अनुवासनार्थं घृतम् । यदीमधुन साधितं अग्नौ विदारि गंधादि साधितं शीतं घृतमावन्निर्घृति ( इति द्रव्यम् ) ।

प्रियंगुरोध्रांजनगैरिकोत्पलैः सुवर्णकालीयकशंखचंदनैः ।

सिताश्वगंधाम्बुदयष्टिकाह्वयैर्मृणालसौगंधिकतुल्यपेषितैः ॥ ३९ ॥

निरूह्य चैनं पयसा समोक्षिकैर्घृततृप्तैः शीतजलांबुसेचितम् ।

क्षीरौदनं भुक्तमथानुर्वासयेद्धृतेन यष्टीमधुसाधितेन च ॥ ४० ॥

मुनक्का घृत व मिश्री इनसे मिले हुए विदारिगंधादिगणसे पकाये हुए दूधसे आस्थापन बस्ति करना श्रेष्ठ है तथा इन्हींसे सिद्ध किया हुआ घृत अनुवासन बस्तिके अर्थ लेवे ( कई यहां अनुक्त मुलेठीका घृत मानते हैं ) ॥ ३८ ॥ तथा प्रियंगु लोध रसौत गेरू कमल सुवर्ण ( नागकेसर ) कालीयक ( दारुहलदी अथवा सुवर्ण कालीयक पीत चंदन ) शंख और चंदन मिश्री असगंध नागरमोथा मुलेठी मृणाल ( कमलनाल ) और सौगंधिक कमल इन सबको बराबर लेकर पीसले ॥ ३९ ॥ और दूध शहद घृत मिलाकर आस्थापन बस्ति करे और फिर शीतल जलसे सेचन करके दूध चावलका भोजन देवे और मुलेठीसे सिद्ध किये हुए घृतसे अनुवासन बस्ति करे ॥ ४० ॥

अधोवहं शोणितमाशु नाशयेत्तथाऽतिसारं रुधिरस्य दुस्तरम् ।

विरेकयोगे त्वति चैव शस्यते वाम्यश्च रक्ते विजिते बलान्वितः ४१

एवंविधा उत्तरवस्तयश्च मूत्राशयस्थे रुधिरे विधेयाः ।

प्रवृत्तरक्तेषु च पायुजेषु कुर्याद्विधानं खलु रक्तपैतम् ॥ ४२ ॥

यह उपरोक्त बस्ति अधोगामी गुदाद्वारा आनेवाले रुधिरको शीघ्र शांत कर देती है तथा दुस्तर रक्तातिसारको भी बंद करती है और जो विरेचनका अतियोग होगया हो तो उसमेंभी श्रेष्ठ है और जब रक्त बंद हो जावे तब बलवान् रोगीको वमन करा देवे तो ठीक है ॥ ४१ ॥ और जो मूत्रमार्गसे रुधिर आता हो तो येही ऐसी ही उत्तर बस्ति ( अर्थात् मूत्र मार्गमें बस्ति देनी चाहिये ) और मलद्वारेके रक्त आनेमें ( अर्थात् अर्शादि अन्य कारणोंसे मल मार्गसे रुधिर आता हो तो भी ) रक्त पित्तका विधान करना अर्थात् रक्तपित्तकी ही औषधें करना उचित है ॥ ४२ ॥

विधि श्चासृग्दरेऽप्येष स्त्रीणां कार्यो विज्ञानता ।

शस्त्रकर्मणि रक्तं वा यस्यंतीर्वि प्रवर्तते ॥ ४३ ॥

( श्लो० ४२ ) पायुजेषु रक्ताशोकुरेषु तथा अन्यप्रकारेण गुदशोणितनिर्गमेषु च ।

त्रयाणामपि दोषाणां शोणितस्य चैव सर्वशः ।

लिङ्गान्यालोक्त्य कर्तव्यं चिकित्सितमनंतरम् ॥ ४४ ॥

इत्युत्तरे पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

जानकार वेद्यको स्त्रियोंके प्रदरोगमें तथा शखकर्म ( फस्त आदि ) से अधिक रुधिर निकलनेमें भी रुधिरके तीनों दोषोंमेंसे लक्षण देखकर फिर चिकित्सा करनी चाहिये ( अर्थात् इनमें भी रक्तपित्त ही की विधि करनी चाहिये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

## परिशिष्ट ।

प्रसंगवशसे अम्लपित्त और श्लेष्मपित्तका वर्णन हम ग्रंथांतरसे करते हैं—

### अम्लपित्तका हेतु और लक्षण ।

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम् ।

पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदंति संतः ॥ १ ॥

अविपाकः कृमोत्केशस्तित्ताम्लोद्गारगौरवैः ।

हृत्कंठदाहारुचिभिरम्लपित्तं वेदद्विपक्व ॥ २ ॥

विरुद्ध भोजन करनेसे विशेष खटाई खानेसे विदाही ( जलन करनेवाले ) तथा पित्तकोप करनेवाले तीक्ष्ण पदार्थ खाने व पीनेसे अपने हेतुओंसे पूर्वका संचित पित्त विदग्ध होजावे इसे वेद्य अम्लपित्त कहते हैं ( अर्थात् संचित पित्त विदग्ध होकर खट्टा होजावे इसीको अम्लपित्त कहते हैं ) ॥ १ ॥ इसके लक्षण ये हैं कि—भोजन ठीक नहीं पच ग्लानि रहे मुँहसे खट्टा पानीसा आवे फड़वे खट्टे रुकार आवें भारीपन रहे हृदय और कंठमें दाह रहे और अरुचि हो इसे ही वेद्य अम्लपित्त कहते हैं ॥ २ ॥

### श्लेष्मपित्तके लक्षण ।

तमो मूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिगालस्यं च शिरोरुजा ।

प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥ ३ ॥

अंधेरी आँखें मूछाई होजावे अरुचि छाँदें गालस्य शिरमें दाह मुँहसे पानी आना मुख मीठा रहना ये लक्षण श्लेष्मपित्तके हैं ( पित्तमें कफके योगसे श्लेष्म पित्त होता है ) ॥ ३ ॥

## अम्लपित्तका यत्न ।

अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवासकैः ।

कारयेन्मदनैः क्षौद्रैः सैधवैश्च तथा भिषक् ॥ ४ ॥

विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुधात्रीफलद्रवैः ।

ऊर्द्धगं वमनैर्विद्वानधोगं रेचनैर्हरेत् ॥ ५ ॥

अम्लपित्तमें परवल नींब वासा और मैनफल इनमें शहद मिलाकर वमन करावे अथवा लवणके योगसे वमन करावे ॥ ४ ॥ और निसोथके चूर्णमें शहद मिलाकर आँवलोंके रससे विरेचन करावे ऊर्द्धगामी अम्लपित्त हो उसे वमन कराके शांत करे तथा अधोगामी ( जिसमें हरे पीले दस्त आते हों पक्काशयमें अम्ल हुआ पित्त पहुँचा हो ) उसमें विरेचन देवे ॥ ५ ॥

निस्तुषयववृषधानीकथितं सलिलं त्रिगंधमधुयुक्तम् ।

द्रुततरमपहरति वमिं संजनितामम्लपित्तेन ॥ ६ ॥

यवगोधूमविकृतीस्तीक्ष्णसंस्कारवर्जिता ।

यथास्वं लाजसक्तून् वासितामधुयुतान्पिबेत् ॥ ७ ॥

छिले या कुटे हुए जौ वाँसा आँवले इनका काथ त्रिसुगंध ( तज पत्रज इलायची ) युक्त पीनेसे अम्लपित्तकी खट्टी वमन या मुँहसे पानी आना बंद होजाताहै ॥ ६ ॥ अथवा जौ या गेहूँके पदार्थ जिनमें तीक्ष्ण संस्कार नहीं हो द्रव हो उन्हें लेवे अथवा धानकी खीलोंके सत्तूमें मिश्री व शहद मिलाके पीवे ॥ ७ ॥

## श्लेष्मपित्तका यत्न ।

पटोल यवधान्याकपिप्पल्यामलकानि च ।

एषां क्षौद्रयुतः काथः पित्तश्लेष्महरः परः ॥ ८ ॥

परवल जौ धनियां पीपल और आँवले इनका काथ शहदके संग मिलाके पीना श्लेष्मपित्तको नष्ट करता है ॥ ८ ॥

यूनानी हकीम मुँहसे रुधिर आनेको जो छाती और फेंफड़ेसे आवे उसे “ नफसुद्दम ” कहते हैं और जो आमाशय ( भेदे ) से आवे तो उसको “ कैउद्दम ” कहते हैं ( नफसुद्दममें थोड़ा थोड़ा खून आता है और कैउद्दममें वमन जैसा होता है )

डाक्टरोंमें रक्तपित्तको कोंजशचन ( Congestion ) या कोंजशचन ऑफ दी स्टमक कहते हैं और जब यह रुधिर नीचेको प्रवृत्त होता है तो उसे मेलेंना ( Meelan ) कहते हैं । और ऊपर मुँहके तरफसे प्रवर्त हो तो हेमाटेमेसम् ( Haematemesis ) कहते हैं-और जो फेफड़ोंसे मुँहकी तरफ गूँन आता है उसे मापटेसिस ( Mapatesis ) कहते हैं ।

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

## षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४६.

अथातो मूर्च्छां प्रतिपेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम मूर्च्छाकी चिकित्साका व्याख्यान करते हैं-

### मूर्च्छाका हेतु ।

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः ।

विवातादभिघाताद्वा हीनसत्वस्य वा पुनः ॥ १ ॥

करणायतनेपूग्ना वाह्येष्वभ्यंतरेषु च ।

निर्विशन्ते यदा दोषा स्तदा मूर्च्छन्ति भौतवाः ॥ २ ॥

जो मनुष्य क्षीण हो जिसके बहुत दोष ( पित्त ) बढ़जायें जो विरुद्ध आहारका सेवन करे जो मल मूत्रादिका वेग रोके जिनके किसी प्रकारकी चोट लगजायें जो हीनसत्व होजायें ऐसे मनुष्योंके ॥ १ ॥ इंद्रियोंके बाह्य और आभ्यंतर आयतन ( स्थानों ) में जब उग्रदोष प्रान हो जाते हैं तब मनुष्य मूर्च्छित ( बेहोश ) होजाते हैं ॥ २ ॥

( पदार्थ ) बाह्यकरणायतन कर्मेन्द्रियोंके मूल और अभ्यन्तरे ज्ञानेन्द्रियोंके मूल समस्तिये ज्ञानेन्द्रियोंका आयतन बढ़पा हृदय मानते हैं परंतु कई मूर्च्छा ( अर्थात् दिमाग ) का ही ज्ञानेन्द्रियोंका आयतन मानते हैं ॥

( श्लो० १ ) बहुदोषस्य बहुविज्जघानस्य । विघातात् पैसादीनाम् ।

( श्लो० २ ) करणायतनेषु बाह्येषु अभ्यन्तरेषु च । तत्र बाह्येषु कर्मेन्द्रियेषु आभ्यन्तरेषु ज्ञानेन्द्रियेषु ( इति भा० नि० )

## इसका पूर्वरूप ।

हृत्पीडा जृम्भणं ग्लानिः संज्ञानाशो बलस्य च ।

सर्वासां पूर्वरूपाणि यथास्वमुपलक्षयेत् ॥ ३ ॥

हृदयमें पीडा ( कलमलाटसा होना ) जँभाई आना ग्लानि होना संज्ञा का नाश ( होश बिगड़ना ) और बलका नाश होना सब प्रकारकी मूर्च्छाके पूर्वरूपमें ये लक्षण होतेहैं ॥ ३ ॥

## मूर्च्छाका स्वरूप ।

संज्ञावहोसु नाडीषु पिहितास्वनिंलादिभिः ।

तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥ ४ ॥

सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत् ।

मोहो मूर्च्छेति तां प्राहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता ॥ ५ ॥

संज्ञाके बहनेवाली नाडियोंमें वातादि दोषोंसे जब तम ( तमोगुण ) प्राप्त होताहै वह तमोगुणही सुखदुःखका ज्ञान नष्ट करनेवाला होताहै अर्थात् इंद्रियोंके बाह्य द्वारसे आभ्यंतर चैतन्यतक उस इंद्रियके विषयको पहुँचानेवाली जो शिरा हैं जब उनमें तमोगुण ( अंधकार ) व्याप्त होजाता है तब इंद्रियां अपने विषयको ग्रहण भी नहीं करतीं और न चैतन्यतक पहुँचासकती हैं तब मनुष्यको सुखदुःखादि किसी बातका ज्ञान नहीं रहता ] ॥ ४ ॥ और सुखदुःख आदिका ज्ञान नहीं रहनेसे मनुष्य काष्ठकी तरह गिर जाताहै इसे मोह या मूर्च्छा कहतेहैं [ थोड़ी बेहोशी या होश बिगड़ जानेको मोह और बिलकुल बेहोश होजानेको मूर्च्छा कहतेहैं ] यह मूर्च्छा छः प्रकारकी होती है ॥ ५ ॥

वातादिभिः शोणितेन मध्येन च विषेण च ।

षट्स्वपि तासु पित्तं हि प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥ ६ ॥

वात आदि जुदे एक एक दोषसे ( जैसे वातकी मूर्च्छा पित्तकी मूर्च्छा कफकी मूर्च्छा ) चौथे रक्तसे पांचवें मद्यसे छठे विषसे होतीहै परंतु इन छहों प्रकारकी मूर्च्छाओंमें प्रधानतासे पित्तही रहताहै ॥ ६ ॥

( वक्तव्य ) इसमें यह है कि पित्त तो सत्त्वगुणप्रधान और चैतन्यका हेतु है फिर उससे मूर्च्छा कैसे ? इसका समाधान यह है कि यथावस्थित शुद्ध पित्त सत्त्वगुणप्रधान और चैतन्यका हेतु होता है दूषित और उद्विक्त पित्त होनेपर वह भी अज्ञान कारक होजाता है ॥

## सूँघनेसे मूर्च्छा ।

पृथिव्यंभस्तमोरूपं रक्तगन्धश्च तन्मयः ।  
तस्माद्रक्तस्य गन्धेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवाः ॥ ७ ॥  
द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदभिमुह्यति ।  
शुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः ।  
त एव तस्माज्जायन्ते ताभ्यां मोहा यथेरिताः ॥ ८ ॥

पृथिवी और जल तमोगुणका रूप हैं और रुधिरकी गंध तन्मय है इस कारण रुधिरके गंधसे ( रुधिरके सूँघने या सूँघानेसे ) मनुष्य मूर्च्छित हो जाते हैं ॥ ७ ॥ और कोई ऐसा कहते हैं कि घड़ियोंका ऐसा स्वभाव होता है कि उन्हें देखकर मूर्च्छा होजाती है और विष और मद्यमें तीव्रतासे ये गुण स्थित हैं ( अर्थात् विष और मद्यमें मूर्च्छाके तीव्रगुण हैं ) इसीसे उनके उपयोगोंसे उनसे प्रेरित मोह ( बेहोशी या बुद्धिमें विकार ) उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ८ ॥

स्तब्धाद्गृहेष्टिस्त्वसृजा गृहोच्छ्वासश्च मूर्च्छितः ॥ ९ ॥  
मद्येन विलपेच्छेते नष्टविभ्रांतमानसः ।  
गात्राणि विक्षिपन्भूमौ जरां यावन्न यौति तत् ॥ १० ॥  
वेषयुस्त्वमृतृष्णाः स्युः स्तब्धश्च विषमूर्च्छिते ।  
वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विपलक्षणेः ॥ ११ ॥

रुधिर सूँघनेकी मूर्च्छामें शरीर और दृष्टि रतन्त्र होजाती है ( ये क्योंकि यों रहजाते हैं ) और ओंटे ओंटे गंभीर श्वास जाते हैं ॥ ९ ॥ तथा मद्य जनिव मूर्च्छामें पड़ा पड़ा प्रसार किया करता है और नष्ट तथा भ्रामितमा पित्त होजाता है और हाथ पाँवोंकी मूर्च्छामें दे दे मारता है जबतक नशा तीव्र रहे यही दशा रहती है ॥ १० ॥ और विषयजनित मूर्च्छामें



शरीर काँपता है नींद आती है तृषा होती है और स्तंभ होता है और जैसा जैसा तीव्र विष होता है वैसी ही वैसी मूर्च्छा के तीव्र लक्षण होते हैं ॥ ११ ॥

## परिशिष्ट ।

### मूर्च्छाका उग्रभेद संन्यास ।

वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबलामला ।

संन्यस्यंत्यबलं जंतुं प्राणायतनमाश्रिताः ॥ १ ॥

सना संन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः ॥ २ ॥

दोष यकायक (अचानक) अत्यंत बलवान् होकर मनुष्यकी वाणी देह और मनकी चेष्टाको नष्ट करदेते हैं और प्राणोंके स्थान (हृदय) को आच्छादित करलेते हैं तब मनुष्य इस संन्यास नामक उग्र व्याधिसे आक्रांत हुआ काठके तुल्य और मृतके समान होजाता है (यहां मृतोपम कहा है इससे इसमें श्वास नाडीकी गति आदि सब बंद होजाते हैं मूर्च्छा में श्वास और नाडी रहती है इसमें ये भी बंद होजाते हैं यही अंतर है) इसमें (मृत और संन्यस्तके जाननेकी युक्ति हम पहले कल्पस्थानके पांचवें अध्यायमें बता चुके हैं देख लें) ॥ १ ॥ २ ॥

### वातादि मूर्च्छाके लक्षण ।

नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथवाऽरुणम् ।

पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रं च प्रतिबुद्ध्यते ॥ १ ॥

रक्तं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा ।

पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदं प्रतिबुद्ध्यते ॥ २ ॥

मेघसंकाशमाकाशं तमोभिर्वा घनैर्वृतम् ।

पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुद्ध्यते ॥ ३ ॥

जो मनुष्य नीला या काला अथवा ऊदा आकाश (सब कुछ) देखता हुआ मूर्च्छित होवे और शीघ्र ही चेतमें होजावे तो वायुकी मूर्च्छा जानो ॥ १ ॥ और जो सुरख हरा या पीला आकाश देखता हुआ मूर्च्छित हो तथा स्वेद युक्त चेतमें हो उसे पित्तकी मूर्च्छा जानो ॥ २ ॥ मेघ जैसा अंधकारसा बादल सहितसा देखकर जो मूर्च्छित हो बहुत देर पीछे होशमें आवे तो कफकी मूर्च्छा जानो ॥ ३ ॥

यद्यपि मूच्छामें पित्त प्रधान होताहै परंतु फिर दूसरा दोष भी उसके साथ होताहै ॥

## मूच्छाकी चिकित्सा ।

सेकावगाहा मणयः सहाराः शीताः प्रदेहा व्यजनानिलाश्च ।

शीतानि पानानि च ग्रन्थवन्ति सर्वासु मूच्छास्वनिवारितानि १२

शीतल परिपेक ( ठंडेपानीके छींट देना ) स्नान कराना सूत्रमें पिरोकर या हारमें गूँदकर मणि धारण कराना ठंडे ( चंदनादिका ) लेप करना पंखेसे पवन न करना ठंडे और सुगंधयुक्त पान कराना ( शरबत या गुलाब केवड़ेके अर्क वगैरा पिलाने ) ये सब प्रकारकी मूच्छामें निरंतर ( जबतक चेतनता न हो ) करते रहना श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

सितापियालेक्षुरसपुतानि द्राक्षामधूकस्वरसान्वितानि ।

खजूरकाश्मर्यरसैः शृतानि पानानि सर्पाणि सजीवनानि ॥ १३ ॥

सिद्धोनि वर्गे मेधुरे पर्यासि सदाडिमा जांगलजा रसाश्च ।

तथा यवा लोहितशालयश्च मूच्छासु पथ्याश्च सदा सतीनाः १४

भुजंगपुष्पं मरिचान्युशीरं कोलस्य मध्यं च पिवेत्समानि ।

सतीनतोयेन विसं मृणालं क्षौद्रेण कृष्णां सितया च पथ्याम् १५

मिश्री चिरोजीके ऊपरका गूदा ईखका रस दास ( मुनका ) महुया इनका रस गुन करके पिलाना या खजूर और खंभासीके रसमें जीवनीय गणयुक्त घृत पकाकर पिलाना ॥ १३ ॥ अथवा मधुर द्रव्योंसे सिद्ध किया दूध पिलाना तथा जंगली जीवोंके मांसका रस अनारकी सटाई मिलाकर देना अथवा जौ और चावल ( लाल चावल ) तथा मटर इनके भोजन मूच्छामें

( श्लो० १२ ) मणयः सहाराः शीताः प्रदेहा व्यजनानिलाः । अनि-  
वारितानीति संतानानि ( इति वदन्तः ) भावमित्यन्तु इत्याह-सर्वासु मूच्छास्वनिवारि-  
तानि । अत्रापरमभिधानः-प्रेषादीनि सर्वासु मूच्छासु दितान्येन किंतु नानाश्लेषदासु  
अपि न निवारितानि । तस्मापि विलम्ब मायान्यतः ।

( श्लो० १३ ) सिताष्टे पायकस्य इति त्वयनायादयः । न तु पायकः ।

( श्लो० १४ ) सतीनतोयेन इत्यत्र शीतेन नोपेन इति सादृशत्वेन । ननु के भावनाकाशे  
"श्रीनिधौ गोमेन विमं मृणालम्" इति ।

पथ्य होतेहैं ॥ १४ ॥ नागकेशर काली मिरच खस बेरोंका गूदा इनका समान भाग लेकर पान करे अथवा कमलकी जड़ और नालीको मटरके जलसे ( या शीत जलसे ) पीवे अथवा ( हरीताजा ) पीपलोंको शहदके संग पीवे या हरड़े मिश्री मिलाके पीवे ॥ १५ ॥

कुर्याच्च नासावदनावरोधं क्षीरं पिबेद्द्राप्यर्थं मानुषीणाम् ।

मूर्च्छां प्रसक्तां तु शिरोविरेकैर्जयेदभीक्ष्णं वमनैश्च तीक्ष्णैः ॥ १६ ॥

हरीतकीकाथघृतं पिबेद्वा धात्रीफलानां स्वरसैः कृतं वा ।

द्राक्षासितादाडिमलाजवन्ति शीतानि नीलोत्पलपद्मवन्ति ॥ १७ ॥

पिबेत्कषायाणि च गन्धवन्ति पित्तज्वरं यानि शमं नयन्ति ॥ १८ ॥

नाक और मुँहके छिद्रोंको जरा जरा थोड़ी देर बंद करे और स्त्रीका दूध पीवे जिन्हें मूर्च्छाका दौरा होता हो उन्हें शिरोविरेचन और तीक्ष्ण वमनों से शांत करना चाहिये ॥ १६ ॥ अथवा हरड़ेका काथ घृतयुक्त पीवे ( या हरीतकीके काथसे सिद्ध किया घृत पीवे ) अथवा आंवलोंके रससे सिद्ध कियाहुआ घृत पीवे अथवा मुनक्का मिश्री अनार धानकी खील नीलोत्पल ( नीलकमल नीलोफर ) और कमल इनका शीतल पानक बनाकर पीवे ॥ १७ ॥ अथवा पित्त ज्वरके नाश करनेवाले जो सुगंधित काथ कहे गयेहैं उन्हें पान करे ॥ १८ ॥

प्रभूतदोषस्तमसोऽतिरेकात्संमूर्च्छितो नैव विबुद्धयते यः ।

संन्यस्तसंज्ञो भृशदुश्चिकित्स्यो ज्ञेयस्तर्दा बुद्धिमता मनुष्यः ॥ १९ ॥

यथामल्लोष्टं सलिले निषिक्तं समुद्धरेदाश्वविलीनमेव ।

तद्वच्चिकित्सेत्त्वरया भिषक्तमवेदनं मृत्युर्वशप्रयातम् ॥ २० ॥

जिसके दोष बहुत बढ़ जातेहैं तमोगुणकी बहुतही अधिकता होतीहै वह मूर्च्छित चैतन्य नहीं होता उसे संन्यस्तसंज्ञक ( संन्यास रोगवाला ) कहते हैं इसे बुद्धिमान् वैद्य दुश्चिकित्स्य जाने ॥ १९ ॥ जैसे कच्चा मिट्टीका डला पानीमें गिरे तो उसे बहुत ही जलदी जबतक वह भीगे गले नहीं इतना शीघ्र निकाल लेनेसे रह सकताहै इसी भाँति वेदना ( सुख दुःखकी वेदना रहित ) मृत्युके वशमें हुए संन्यासके रोगीकी बहुत ही शीघ्र चिकित्सा करनी चाहिये ( नहीं तो शीघ्र मर ही जाताहै इसमें संदेह नहीं ) ॥ २० ॥

तीक्ष्णाञ्जनाभ्यञ्जनधूमयोगैस्तथा नखाभ्यन्तरतोत्रपातैः ।

वादित्रगीतानुनैयरपूर्वाविबृहन्नैर्गुप्तफलाववर्षणैः ॥ २१ ॥

आभिः क्रियाभिश्च न लब्धसंज्ञः सानाहलाश्वसनश्च वर्ज्यः ।

प्रभृतसंज्ञं वमनानुलोम्यैस्तीक्ष्णैर्विशुद्धं लघुपथ्यमुक्तम् ॥ २२ ॥

फलत्रिकैश्चित्रकनागराद्यैस्तथाश्मजातान्तुनः प्रयोगैः ।

सशर्करमासमुपक्रमेत विशेषतो जीर्णघृतं स पाठ्यः ॥ २३ ॥

तीक्ष्ण अंजन लगावे और अभ्यंग करे धूनी देवे तथा नखूनोंमें मूई आदि चुभावे तथा नये नये चाजे वजार्ये और गीत गावे तथा अंगादिकी मले ( या दवावे या ताड़े ) या केवाँचकी फली आदि लगावे ( जिससे चैतन्यता होवे ) ॥ २१ ॥ जो इन क्रियाओंसे भी चैतन्य न हो पेट अफारा हो मुँहमें लार या पानी बहता हो श्वास चलता हो या श्वास बंद होगया हो उसे त्याग देवे । और यदि इन उपायोंसे चैतन्यता होजाये तो नमन और विरचन तीक्ष्ण देकर शुद्ध करे और हलका और पथ्य भोजन करावे ॥ २२ ॥ तथा त्रिफला चित्रक सोंठ आदिकी भावना दीर्घद्वि शिलार्जातको मिश्रिके संग एक महीनातक उपयोग करे विशेष करके ऐसे रोगीकी पुराना घृत पान कराना श्रेष्ठ होताहै ॥ २३ ॥

यथाश्वं च ज्वरघ्नानि कषयापाण्युपयोजयेत् ।

सर्वमृच्छांपरीतानां विपजानां विषापहम् ॥ २४ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे पदसम्भारिशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

और यथासंभव उपरनाशक कार्योंका भी यहीपर उपयोग कर सकेंगे और

( श्री २१ ) नमोऽगन्तव्योऽगन्तव्योऽसि । नमोऽसि नमोऽसि नमोऽसि ( २२ )

एतेन नमोऽन्यत्रैः सुनीपातनम् मन्त्रयोगे तु त्रैविद्यामभिताडयति " कर्मणः " इति  
कोटिः । तेन नमोऽपि त्रैविद्यामभिताडयति । अन्ये तु नमोऽन्यत्रैः सुनीपातनम् मन्त्रयोगे तु त्रैविद्यामभिताडयति  
मन्त्रयोगे तेन नमोऽन्यत्रैः सुनीपातनम् मन्त्रयोगे तु त्रैविद्यामभिताडयति । अन्ये तु नमोऽन्यत्रैः सुनीपातनम् मन्त्रयोगे तु त्रैविद्यामभिताडयति  
मन्त्रयोगे तेन नमोऽन्यत्रैः सुनीपातनम् मन्त्रयोगे तु त्रैविद्यामभिताडयति । अन्ये तु नमोऽन्यत्रैः सुनीपातनम् मन्त्रयोगे तु त्रैविद्यामभिताडयति

1. The first step is to identify the problem or question that needs to be answered. This involves understanding the context and the specific requirements of the task.

1944-1945

सब प्रकारके विषोंसे उपजी मूर्च्छामें उन्हीं विषनाशक ( कल्पस्थानोक्त ) उपचार करें ॥ २४ ॥

यूनानी हकीम मूर्च्छाको (सकता) कहते हैं और संन्यासको (जमूद) कहते हैं॥  
डाक्टरोंमें मूर्च्छाको (कैटेलपसी) कहते हैं और संन्यासको (Keytelapasi )  
इड्योप्लेकसी ( Idyoplekasi ) कहते हैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

## सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४७.

अथातः पानात्ययप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम पानात्यय ( मदात्यय ) के प्रतिषेधकी व्याख्या करते हैं ॥

### मद्यके गुण और कर्म ।

मद्यमुष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्मं विशदमेव च ।

रूक्षमाशुकरं चैव व्यवायि च विकासि च ॥ १ ॥

औष्ण्याच्छीतोपचारं तत्तैक्षण्याद्धंति मनोगतिम् ।

विशत्यवयवोन्सौक्ष्म्याद्वैशद्यात्कफशुक्रनुत् ॥ २ ॥

मारुतं कोपयेद्रौक्ष्यादाशुत्वादाशुकर्मकृत् ।

हर्षदं च व्यवायित्वाद्विकासित्वाद्विसर्पति ॥ ३ ॥

मद्य उष्ण है तीक्ष्ण है सूक्ष्म विशद रूक्ष आशुकर तथा व्यवायी और विकासि है ॥ १ ॥ यह अपनी उष्णतासे शीतोपचारी है ( ठंडे उपचार चाहता है ) और तीक्ष्णतासे मनकी गतिको रोक देता है और सूक्ष्म होनेसे शरीरके अवयवोंमें प्रविष्ट होता है और विशदतासे कफ और शुक्रको नष्ट करता है ॥ २ ॥ रूक्ष होनेसे वायुको कुपित करता है और आशुकर होनेसे शीघ्र प्रभाव करनेवाला है और व्यवायी होनेसे हर्षका देनेवाला है तथा विकासी होनेसे फैलनेवाला है ॥ ३ ॥

तदम्लरसतः प्रोक्तं लघु रोचनदीपनम् ।

कंचिल्लवणवज्यास्तु रसानैत्रादिशंति हि ॥ ४ ॥

मद्य प्रधानतासे अम्लरसवाला होता है हलका रोचन और दीपन होता है कोई ऐसा मानते हैं कि नमकीन ( खारेपन ) के शिवाय मद्यमें

सब रस होतें ( यह पहलेके समयके गौड़ी पैष्टी माध्वी आदि मद्योंके रस होतेथे अब उस समय यंत्रसे खींचे मद्य प्रायः तीक्ष्ण और चरके रसवाले होतें ) ॥ ४ ॥

### युक्तिपूर्वक सेवित मद्यके गुण ।

स्निग्धैस्तदन्नैर्मांसैश्च भक्ष्यैश्च सह सेवितम् ।

भवेदायुःप्रकर्षाय वैयायोपचयाय च ॥ ५ ॥

काम्यता मनसस्तुष्टिर्धैर्यं तेजाऽतिविक्रमः ।

विधिवत्सेव्यमाने तु मद्ये सन्निहिता गुणाः ॥ ६ ॥

स्निग्ध अन्नों और मांसके भक्ष्य पदार्थोंके साथ यदि ठीक ठीक मद्यका सेवन किया जावे तो यह आयु को बढ़ाताहै बल करताहै शरीरको पुष्ट करता है ॥ ५ ॥ तथा काम्यता ( कामकी प्रवृत्ति या कमनीयता ) करताहै मनको तुष्ट ( प्रसन्न ) रखताहै धैर्य तेज अति पराक्रम ये सब गुण विधिसे सेवन कियेहुए मद्यमें होतें ॥ ६ ॥

### अयुक्तिपूर्वकसे हानि ।

तेदेवान्नन्नमज्जेने सेव्यमानममात्रया ।

कायामिना ह्यमिसमं समेत्य कुरुते मन्दम् ॥ ७ ॥

मदेन कारणानां तु भावान्यत्वे कृते सति ।

निर्गुह्यमपि भावं स्वं प्रकाशो कुरुतेऽवशः ॥ ८ ॥

एही मद्य ज्ञानी मनुष्य अन्नके बिना और असमान मात्रासे ( अधिक ) पीने तो यह अधिक समान मद्य शारीरिक अग्निसे मिलकर मन्द ( नशा ) पैदा करताहै ॥ ७ ॥ और जब मद्य ( तेज नशा होताहै उस ) से मनुष्य बेवश हो जाताहै तब बुद्धि और इंद्रियोंके भाव अन्धकार होजातेथे अपने गुप्तमें छुपे आशयोंको भी प्रकाश कर देताहै ( अर्थात् न पढ़नेके कारणज्ञान भी बाह्य जिनके सामने पड़जाताहै ) ॥ ८ ॥

### मदकी तीन अवस्था ।

अपत्यस्यै मंदो ज्ञेयः प्रवो मध्योऽथ पश्चिमः ।

पुनं वीर्यसतिप्रानिदं भाष्यादिवर्द्धनम् ॥ ९ ॥

प्रलापो मध्यमे हर्षो युक्तार्थुक्तक्रियास्तथा ।

विसंज्ञः पश्चिमे शेते नष्टकर्मक्रियागुणः ॥ १० ॥

मदकी तीन अवस्था होती हैं एक पूर्व ( पहली ) अवस्था दूसरी मध्य अवस्था तीसरी पश्चिम ( पिछली ) अवस्था इनमें पहली अवस्थामें वीर्य रति प्रेम आनंद और वार्तालाप बढ़ना ये होते हैं ॥ ९ ॥ मध्य अवस्थामें प्रलाप ( बकवाद ) हर्ष और कोई युक्त कोई अयुक्त क्रिया होवें और पिछली अवस्थामें बेहोश पड़ा रहता है सब कर्म क्रिया और गुण नष्ट हो जाते हैं १० ॥

### मद्यसात्म्यमनुष्य ।

श्लैष्मिकानल्पपित्तांश्च स्निग्धान्मात्रोपसेविनः ।

पानं न बाधतेऽत्यर्थं विपरीतांस्तु बाधते ॥ ११ ॥

जो कफप्रकृतिवाले हैं जिनके पित्त कम है जो स्निग्ध हैं जो प्रमाणयुक्त सेवन करते हैं उन्हें विशेष करके मद्यपान बाधा नहीं करता और जो इनसे विपरीत हैं उनकी बाधा करता है ॥ ११ ॥

### मद्यसे विकार ।

निर्भुक्तमेकांतैत एव मद्यं निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम् ।

उत्पादयेत्कष्टतमान्निष्कारानापादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ १२ ॥

क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन ।

व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन वेगावरोधाभिहतेन चापि ॥ १३ ॥

अत्यम्लभक्ष्यावततोदरेण साजीर्णभुक्तेन तथाऽवलेन ।

उष्णाभितप्तेन च सेव्यमाणं करोति मद्यं विविधान्विकारान् १४

जो मनुष्य भोजन किये बिना नित्य निरंतर मद्यपान करते हैं उन्हें मद्य अनेक कष्टकारक विकार करता है अथवा शरीरको नष्ट कर देता है ॥ १२ ॥ क्रोधयुक्त भयभीत तृषायुक्त शोकयुक्त क्षुधित ( भूखा ) परिश्रमसे थका भारसे थका या मार्गचलनेसे थका या जिसने वेग ( मल

( श्लो० ११ ) श्लैष्मिकादीनां अत्यर्थं न बाधते किंतु सूक्ष्मतया तु तानपि बाधते एव ।

( श्लो० १४ ) अत्यंतम्लभक्ष्येन अवततं व्याप्तं उदरं यस्य तेन ।



मूत्रादिके वेग ) रोंके हों ऐसा मनुष्य यदि मदिरा पीवे ( तो उसके मध्य अनेक घोर विकार पैदा करता है ) ॥ १३ ॥ तथा जिसके बहुत खटाई खानेसे पेटमें उपाधि हो या जिसने अजीर्णमें भोजन किया हो या जो निर्वल हो या जो गरमीसे अभितप्त ( घबराया ) हो ऐसा मनुष्य यदि मदिरा पीवे तो उसे मध्य अनेक प्रकारके भयंकर रोग पैदा करदेता है ॥ १४

## पानात्ययादिक ।

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि वा ।

पानविभ्रममुग्रं च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १५ ॥

मध्यमें इतने प्रकारके विकार होते हैं जैसे पानात्यय परमद पानाजीर्ण और उग्र पानविभ्रम इनके लक्षण अगाड़ी कहते हैं ॥ १५ ॥

## पानात्ययके लक्षण ।

स्तंभांगमर्दहृदयग्रहतोदकंपाः पानात्ययेऽनिलकृते शिरंसो रुजश्च । स्वेदप्रलापमुखशोषणदाहमूर्च्छाः पित्तात्मके वदनलोचनपीतता च ॥ श्लेष्मात्मके वमधुशीतकफप्रसेकाः सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंपत् ॥ १६ ॥

पातजनित पानात्ययमें स्तंभ ( शरीर करड़ा होना ) अंगदाई आना हृदय पकड़ाया होना दरद और कंप होना और शिरमें दरद ये लक्षण होते हैं और पित्तके मदात्ययमें पनीना आवे बकवाद करे मुँह सूखे दाह और मूर्च्छा हो मुँह और नेत्र पीले हों । तथा कफके मदात्ययमें वमन होना शीत लगना मुँहमें पानी आना ये लक्षण होते हैं और सब दोषाके मदात्ययमें सबके लक्षण मिश्रित होते हैं ॥ १६ ॥

## परमद पानाजीर्ण और पानविभ्रम के लक्षण ।

उष्मा शरीरगुरुता विरसाननत्वं श्लेष्माधिकत्वमरुचिर्मलमूत्रसंगः । लिङ्गं परस्य तु मदस्य वदन्ति तज्ज्ञोऽस्तृष्णा रुजा शिरसि संधिषु चापि भेदः ॥ १७ ॥ आप्मानमुद्विग्नमम्लरसो विदारोऽजीर्णस्य पानजनितस्य वदन्ति लिङ्गम् । त्रेयानि तत्र भिषजा भुवि निश्चितानि पित्तप्रकोपजनितानि च कार-

णानि ॥ १८ ॥ हृद्वात्रतोदवमथुज्वरकंठधूममूच्छाकफस्रवण  
मूर्द्धरुजो विदाहः । द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु तेषु तं  
पानविभ्रममुशंत्यखिलेन धीराः ॥ १९ ॥

“ परमदके लक्षण ” गरमी शरीरमें भारीपन मुँहमें विरसता कफकी अधिकता अरुचि मल मूत्र रुकना तृषा शिरमें दर्द संधियोंमें भेद ये लक्षण परमदके हैं ॥ १७ ॥ “ पानाजीर्णके लक्षण ” अफारा हो डकारें आवें खट्टापन हो विदाह हो ये लक्षण पानाजीर्ण ( अर्थात् पिया मद्य पचा नहीं उस ) के हैं इसमें वैद्यको पित्त प्रकोप जनित कारण जानने चाहिये ॥ १८ ॥ “ पान-विभ्रमके लक्षण ” हृदय और शरीरमें दरदहो वमन हो ज्वर हो कंठमें धुँवाँसा उठे मूच्छा हो मुँहसे कफ बहे शिरमें दर्द हो विदाह हो और मदिरा तथा उसपर खाये जानेवाले अन्नसे द्वेष हो इसे धीर वैद्य पानविभ्रम कहते हैं ॥ १९ ॥

### असाध्य मदात्यय ।

हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममंददाहं तैलप्रभास्यमतिपानहतं वि-  
जह्यात् । जिह्वौष्ठदंतमसितं त्वथवापि नीलं पीते च यस्य  
नयने रुधिरप्रभे च ॥ हिक्काज्वरौ वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः का-  
सभ्रमावपि च पानहतं भजन्ते ॥ २० ॥ तेषां निवारणमिदं हि  
मयोच्यमानं व्यक्ताभिधानमखिलेन विधिं निबोध ॥ २१ ॥

ऊपरका होंठ छोटा होजाय अत्यंत शीत लगे तीक्ष्ण दाह हो मुँह तैल जैसा चिकना हो दात जीभ होंठ ये काले या नीले अथवा पीले या सुरख होजावें तो उसे पानहत अर्थात् अतिमद्य पीनेसे पीडित रोगी त्यागने योग्य असाध्य होता है और इनके शिवाय हिचकी ज्वर वमन कंप पसलीका दरद खाँसी भ्रम ये भी मदात्यय से क्षीण हुए असाध्य रोगीके होजाया करते हैं ॥ २० ॥ इससे अगाड़ी इन मदात्ययके रोगियोंके लिये हम चिकित्साकी विधि कहते हैं उसे संपूर्णतया श्रवण करो ॥ २१ ॥

### वातज पानात्ययका यत्न ।

मद्यं तु चुक्रमरिचार्द्रकदीप्यकुष्टसौवर्चलायुतमलं पवनस्य  
ज्ञात्यै । पृथ्वीकदीप्यकमहौषधहिंशुभिर्वा सौवर्चलेन च युतं  
वितरेत्सुखाय ॥ २२ ॥ आम्रातकाम्रफलदाडिममातुलंगैः कु-

यांच्छुभान्यपि च पाडवंपानकानि । सेवेतं वा फैलरसो-  
पहितान्नसादीनानृपवर्गपिशितान्यपि गंधवंति ॥ २३ ॥

वातज पानात्ययमें वायुकी शांतिके लिये चुक्र ( चुका ) काली मिर्च  
अदरक अजमोदा कूट और काला नमक मिलाकर थोड़ी मदिरा ही पिलावे  
अथवा बड़ी इलायची अजमोदा सोंठ हींग और दाया नमकयुक्त  
पिलावे ॥ २२ ॥ अथवा आंवला आंव त्रिफला अनार और विजोरा नींबू  
इनका पाडवक पान ( पत्रा ) बनाके पिलावे अथवा त्रिफलाके रससहित  
और सुगंधयुक्त संस्कारों बनाकर जलके किनारे रहनेवाले जीवोंका मांस  
संयन करावे ॥ २३ ॥

**पित्त कफादि मदात्ययके यत्न ।**

पित्तात्मके मधुरवर्गकपायमिश्रं मद्यं हि तं समधुशर्करामि-  
ष्टगंधम् । पीत्वौ च मद्यमपि चेशुरसंप्रगाढं निःशेषतः क्षण-  
मवस्थितमुल्लिखेच्च । लावेणतित्तिरिसांश्च पिवेदनम्लान्मौ-  
द्रान्सुखाय सघृतान्ससितांश्च यूपान् ॥ २४ ॥ पानात्यये  
कफकृते कफमुल्लिखेच्च मद्येन विविविदुलोदकसंयुतेन ।  
सेवेत तित्तकटुकांश्च रसानुदारान्यूपांश्चतित्तकटुकोपहिता-  
न्हिताय ॥ २५ ॥ पथ्यं यवान्नविकृतान्यपि जांगलानि श्लेष्म-  
प्रमन्यदपि यच्च निरत्ययं स्यात् ॥ २६ ॥

पित्तके पानात्ययमें मधुर द्रव्योंके साथमें मद्य मिलाके उसमें शर्करा मिश्री  
और सुगंध पदार्थ पड़े हों तथा इसका रस मिला हो उसे पीकर थोड़ी  
दूर पीते निशेष पमन कर दें और लया हिरन तीतर इनके मांसका रस  
बिना नदार्थ पीवे अथवा मूंगका घूप घृत और मिश्री मिलाकर पीर तो  
तुम होवे ॥ २४ ॥ कफके पानात्ययमें चिचो और चेतका काष्ठ मिलेद्वय  
मद्यमें पमन करावे और कटु चरभरे उदार रस तथा ऐसेहीसे कटु  
भरभरे पदार्थोंसे मिलेद्वय घूप पिलाने हितहै ॥ २५ ॥ और जो  
पदार्थ अथवा जंगली जीवोंके मांस तथा अन्य कफनाशक पदार्थ यद्यपि  
( पाविको ) दें ॥ २६ ॥

( श्लो० २४ ) उल्लिखेच्च नमोद ।

कुर्याच्चै सर्वमथ सर्वभवे विधानं द्रुद्रोद्भवे द्वयमवेक्ष्य यथा-  
प्रधानम् । सामान्यमन्यदपि यत्सुसमग्रमग्र्यं वक्ष्यामि यच्च  
मनसोऽमदकृत्सुखं च ॥ २७ ॥

यदि सर्व दोषज पानात्यय हो तो सब विधि करें और द्रुद्रज हो तो  
दोनोंमें जौनसा दोष प्रधान हो उसे देखकर विधान करे तथा इसके पीछे  
और भी सामान्य उत्तम विधि हम कहते हैं जो मनको मदरहित करे  
और सुख देवे ॥ २७ ॥

### मदात्ययके अन्य यत्न ।

त्वङ्नागपुष्पमगधैलमधूकधान्यैः श्लक्ष्णैरजाजिमरिचैश्च कृतं  
समांशैः । पांनं कपित्थरसवारिपरूषकाढ्यं पानात्ययेषु विधि-  
वैत्सृतेमव्वरांते ॥ २८ ॥ ह्रीवैरपद्मपरिपेलवसंप्रयुक्तैः पुष्पैः  
प्रलिप्य करवीरजलोद्भवैश्च । पिष्टैः सपद्मकयुतैरपि सारिवाद्यैः  
सेकं जलैश्च वितरेदमलैः सुशीतैः ॥ २९ ॥ त्वक्पत्रचोचम-  
रिचैलभुजंगपुष्पश्लेष्मांतकप्रसवकल्कगुडैरुपेतम् । द्राक्षा-  
युतं हृतमलं मदिरामदातैस्तत्पानकं शुचि सुगंधि नरैर्निषे-  
व्यम् ॥ ३० ॥

तज नागकेसर पीपल इलायची महुवा धनियाँ जीरा और स्याह मिरच  
इन सबको बराबर लेकर पीस ले और कैथके रसका पानी या फालसेका  
रस कपड़ेमें छानकर उसमें यह चूर्ण मिलाके पानात्ययमें विधिपूर्वक पीवे  
॥ २८ ॥ नेत्रवाला कमल परिपेलव ( मोथा ) कनेर के फूल और कमल के  
फूल इन्हें पीसकर पद्माख और सारिवादि मिलाकर ( हृदय और शिरपर )  
लेप करे और निर्मल ठंडे पानीके छींटे देवे ( या तरङ्गे देवे ) ॥ २९ ॥  
तथा तज पत्रज चोच ( केला ) काली मिरच इलायची नागकेसर और  
ल्लेसुवेकी कोंपल ( नवीन अंकुर ) इन्हें पीसकर गुड मिलाके और  
मुनका मिलाके पन्ना बनाकर कपड़ेमें छानकर सुगंधित द्रव्य डालकर  
मदिरासे जो मदार्त हो उसे सेवन करावे ॥ ३० ॥

पिष्ट्वा पिवेच्च मधुकं कटुरोहिणीं च द्राक्षां च मूलमसकृत्त्रिपु-  
सीभवं यत् । कार्पासमूलमथ नागवलां च तुल्यां पीत्वा

सुखी भवति साधु सुवर्चलां च ॥ ३१ ॥ काश्मर्यदारुविड-  
दाडिमपिप्पलीषु द्राक्षान्वितासु कृतमंजुनिपानकं यत् ।  
तद्वीजपूरकरसायुतमाशु पीतं शान्तिं पैरां मदंगदेष्वचिरात्क-  
रोति ॥ ३२ ॥ द्राक्षासितामधुकर्जरकधान्यकृष्णास्वेवं कृतं  
त्रिवृतया च पिवेत्तथापि । सौवर्चलायुतमुदाररसं फलाम्लं  
भर्त्ताश्रुतेन च जलेन हिताय सेकः ॥ ३३ ॥

मुलेठी कुटकी मुनक्का और ककड़ीखीरेकी जड़ इन्हें पीसकर छानकर कई  
बार पीवे अथवा कपासकी जड़ नागवला और सुवर्चला (हुलहुल) इन्हें समान  
भाग लेकर पीवे तो पानात्ययवाला सुखी होवे ॥ ३१ ॥ खंभारी दारु (दारु-  
हलदी या देवदारु) विडनमक अनार पीपल मुनक्का इनका निर्मल पन्नाचनाकर  
विजोरेका रस मिलाके पीनेसे परमदका रोग शीघ्रही शांत होजाताहै ॥ ३२॥  
मुनक्का मिश्री मुलेठी जीरा धनियाँ और पीपल इनका पन्नाचनाय और निशोथके  
साथ पीवे अथवा उदार रस ( जंगली जीवोंके मांसका रस ) फलोंकी खट्टाई  
इन्हें पान कर तथा भारंगीके कायके जलके तरङ्गे देने हितकारकहैं ॥ ३३ ॥

इक्ष्वाकुधामार्गववृक्षकानि काकाह्वयोदुम्बरिकाश्च दुग्धे ।

विपाच्य तस्यांजलिनावमेद्धि मद्यं पिवेद्दहिं गते त्वर्जोणि ॥ ३४ ॥

त्वक्पिप्पलीभुजगपुष्पविडेरुपेतं सेवेत हिंगुमरिचैलयुतं  
फलाम्लम् । उष्णांशु सैधवयुतास्त्वथवा विडत्वक् चव्यैल-

हिंगुमगधाफलमूलशुंठीः ॥ ३५ ॥ द्वेद्यः खंडैरपि च भोजन-

मत्रै शस्तं द्राक्षाकपित्थफलदाडिमपानकं यत् । तत्पानवि-

भ्रमहरं मधुशर्कराद्वयमाप्रातकोलग्नपानकमेव वापि ॥ ३६ ॥

कटकी तोंगी कटकी तोंगी इंदनी और काटगुलर इन्हें दुग्धमें पकाकर एक  
अंगली समान पान करके समत कर देवे फिर जर्जोण नष्ट होवेपर उस दिन  
मद्य ( पीड़ासा ) पीवे ॥ ३४ ॥ तज पीपल नागवेलर विडनमक हींग  
मिरन इलायची और फलोंकी खट्टाई मिलाकर मद्यनार अथवा विडनमक तज  
काय (न्यायनी) हींग पीपल पीपलामूल और मोठ इन्हें सैधव और गरम  
जलमें पीवे ॥ ३५ ॥ और इसमें तद्व्यथी हितकारक जड़ नामक मूल ( खंड  
मूल ) भोजन करने सेहो है—यथा यथा केयका फल और अनार इनका पन्ना

कुर्याच्च सर्वमर्थं सर्वभवे विधानं द्वंद्वोद्भवे द्वयमवेक्ष्य यथा-  
प्रधानम् । सामान्यमन्यदपि यत्सुसमग्रमग्र्यं वक्ष्यामि यच्च  
मनसोऽमदकृतसुखं च ॥ २७ ॥

यदि सर्व दोषज पानात्यय हो तो सब विधि करें और द्वंद्वज हो तो  
दोनोंमें जौनसा दोष प्रधान हो उसे देखकर विधान करे तथा इसके पीछे  
और भी सामान्य उत्तम विधि हम कहते हैं जो मनको मदरहित करे  
और सुख देवे ॥ २७ ॥

### मदात्ययके अन्य यत्न ।

त्वङ्गागपुष्पमगधैलमधूकधान्यैः शुष्णैरजाजिमरिचैश्च कृतं  
समांशैः । पांनं कपित्थरसवारिपरुषकाढ्यं पानात्ययेषु विधि-  
वैत्स्न्यमवर्त्तते ॥ २८ ॥ ह्रीवैरपद्मपरिपेलवसंप्रयुक्तैः पुष्पैः  
प्रलिप्य करवीरजलोद्भवैश्च । पिष्टैः सपद्मकयुतैरपि सारिवाद्यैः  
सेकं जलैश्च वितरेदमलैः सुशीतैः ॥ २९ ॥ त्वक्पत्रचोचम-  
रिचैलभुजंगपुष्पश्लेष्मांतकप्रसवकल्कगुडैरुपेतम् । द्राक्षा-  
युतं हृतमलं मदिरामदार्तैस्तत्पानकं शुचि सुगंधि नरैर्निषे-  
व्यम् ॥ ३० ॥

तज नागकेसर पीपल इलायची महुवा धनियाँ जीरा और स्याह मिरच  
इन सबको बराबर लेकर पीस ले और कैथके रसका पानी या फालसेका  
रस कपड़ेमें छानकर उसमें यह चूर्ण मिलाके पानात्ययमें विधिपूर्वक पीवे  
॥ २८ ॥ नेत्रवाला कमल परिपेलव ( मोथा ) कनेर के फूल और कमल के  
फूल इन्हें पीसकर पद्माख और सारिवादि मिलाकर ( हृदय और शिरपर )  
लेप करे और निर्मल ठंडे पानीके छींटे देवे ( या तरङ्गे देवे ) ॥ २९ ॥  
तथा तज पत्रज चोच ( केला ) काली मिरच इलायची नागकेसर और  
ल्लेसुवेकी कौपल ( नवीन अंकुर ) इन्हें पीसकर गुड मिलाके और  
मुनक्का मिलाके पन्ना बनाकर कपड़ेमें छानकर सुगंधित द्रव्य डालकर  
मदिरासे जो मदार्त हो उसे सेवन करावे ॥ ३० ॥

पिष्ट्वा पिबेच्च मधुकं कटुरोहिणीं च द्राक्षां च मूलमसकृत्त्रपु-  
सीभवं यत् । कार्पासमूलमथ नागवलां च तुल्यां पीत्वा



सुखी भवति साधु सुवर्चलां च ॥ ३१ ॥ काश्मर्यदारुविड-  
दाडिमपिप्पलीषु द्राक्षान्वितासु कृतमंजुनिपानकं यत् ।  
तद्वीजपूरकरसायुतमाशु पीतं शान्तिं परां मदंगदेष्वचिरात्क-  
रोति ॥ ३२ ॥ द्राक्षासितामधुकजीरकधान्यकृष्णास्वेवं कृतं  
त्रिवृतया च पिबेत्तथापि । सौवर्चलायुतमुदाररसं फलाम्लं  
भङ्गीशृतेन च जलेन हिताय सेकः ॥ ३३ ॥

मुलेठी कुटकी मुनक्का और ककड़ीखीरेकी जड़ इन्हें पीसकर छानकर कई  
बार पीवे अथवा कपासकी जड़ नागबला और सुवर्चला (हुलहुल) इन्हें समान  
भाग लेकर पीवे तो पानात्ययवाला सुखी होवे ॥ ३१ ॥ खंभारी दारु (दारु-  
हलदी या देवदारु) विडनमक अनार पीपल मुनक्का इनका निर्मल पन्नाबनाकर  
विजोरेका रस मिलाके पीनेसे परमदका रोग शीघ्रही शांत होजाताहै ॥ ३२ ॥  
मुनक्का मिश्री मुलेठी जीरा धनियाँ और पीपल इनका पन्ना बनावे और निशोथके  
साथ पीवे अथवा उदार रस ( जंगली जीवोंके मांसका रस ) फलोंकी खटाई  
इन्हें पान करे तथा भारंगीके काथके जलके तरङ्गे देने हितकारक हैं ॥ ३३ ॥

इक्ष्वाकुधामार्गववृक्षकानि काकाह्वयोदुम्बरिकाश्च दुग्धे ।  
विपाच्य तस्यांजलिनावमेद्धि मद्यं पिबेद्वह्निं गते त्वंजीर्णः ॥ ३४ ॥  
त्वक्पिप्पलीभुजगपुष्पविडैरुपेतं सेवेत हिंशुमरिचैलयुतं  
फलाम्लम् । उष्णांबु सैधवयुतास्त्वथवा विडत्वक् चव्यैल-  
हिंशुमगधाफलमूलशुंठीः ॥ ३५ ॥ हृद्यैः खंडैरपि च भोजन-  
मत्रं शस्तं द्राक्षाकपित्थफलदाडिमपानकं यत् । तत्पानवि-  
भ्रमहरं मधुशर्कराढ्यमाभ्रातकोलरसपानकमेव वापि ॥ ३६ ॥

कड़वी तोंवी कडवी तोरी इंद्रजौ और काठगूलर इन्हें दूधमें पकाकर एक  
अंजली प्रमाण पान करके वमन कर देवे फिर अजीर्ण नष्ट होनेपर उस दिन  
मद्य ( थोड़ासा ) पीवे ॥ ३४ ॥ तज पीपल नागकेसर विडनमक हींग  
भिरच इलायची और फलोंको खटाई मिलाकर सेवनकरे अथवा विडनमक तज  
चव्य इलायची हींग पीपल पीपलामूल और सोंठ इन्हें सैधव और गरम  
जलसे पीवे ॥ ३५ ॥ और इसमें हृदयको हितकारक खड़ नामक यूष ( खट्टे  
यूष ) भोजन करने श्रेष्ठ हैं—तथा दाख कैयका फल और अनार इनका पन्ना



बनाके पीना. यह पत्रा शहद और खांड डालाहुआ पानविभ्रमको हरताहै  
अथवा आँवले और बेरके रसका पत्राभी पानविभ्रम शांत करताहै ॥ ३६ ॥

खजूरखेत्रककरीरपरूषकेषु द्राक्षात्रिवृत्सु च कृतं ससितं हितं  
वा । श्रीपर्णियुक्तमथवा तु पिबेदिमानि यष्ट्याह्वयोत्पलहि-  
मांबुविमिश्रितानि ॥ ३७ ॥ क्षीरिप्रवालविसजीरकनागपुष्प  
पत्रैलवालुसितसारिवपद्मकानि । आम्रातभव्यरमर्दकपि  
त्थकोलवृक्षाम्लवेत्रफलजीरकदाडिमानि ॥ ३८ ॥ सेवेत  
वामरिचजीरकनागपुष्पत्वक्पत्रविश्वचविकैलयुतात्रसांश्च ।  
सूक्ष्मांबरसुतहिमांश्च सुगंधिगंधान्पानोद्भवान्नुदति सप्तगदान-  
शेषान् ॥ ३९ ॥

खजूर बेतके अंकुर फालसे मुनक्का और निशोथ इनको मिश्री मिलाके  
पीना हितहै अथवा इनमें खंभारी मुलेठी कमल और शीतल पानी  
मिलाकर पीना बहुत श्रेष्ठ है ॥ ३७ ॥ दूधके वृक्षों ( गूलर आदि )  
के कोमल अंकुर कमलकी जड़ जीरा नागकेसर पत्रज एलवालुक सुफेद-  
सारिवा और पन्नाख इन्हें पीवे आँवले भव्य ( कमरक ) करोंदे कैथ  
बेर और वृक्षोंकी खटाई बेतके फल जीरा और अनार इनका पान करे  
( पत्रा बनाकर पीवे ) ॥ ३८ ॥ अथवा मिरच जीरा नागकेसर तज पत्रज  
सोंठ चव्य इलायची इनसे युक्त रस ठंडे और सुगंधियुक्त महीनवस्त्र  
में छानकर पीवे तो सातों प्रकारके मद्यपानजनित रोगों ( चार प्रकारके  
मदात्यय और परमद पानाजीर्ण और पानविभ्रम इन ) को निःशेष  
नष्ट करता है ॥ ३९ ॥

पंचेन्द्रियार्थविषया मृदुपानयोगा हृद्याः सुखाश्च मनसः सततं  
नियोज्याः । पानात्ययेषु विकटोरुनितंबवत्यः पीनोन्नतस्त-  
नभरानतमध्यदेशाः ॥ ४० ॥ प्रौढाः स्त्रियोऽभिनवयौवनपीन-  
गात्र्यः सर्व्याश्च पंचविषयातिशयस्वभावाः ॥ ४१ ॥

पांचों इंद्रियोंके विष ( अच्छे शब्द सुनना अच्छे शीतल स्पर्श सुंदर रूप  
देखना अच्छे पदार्थ खाना अच्छी सुगंध सूँघना ) मृदुपानका योग करना  
( हलके थोड़े मद्य पीना ) हृदयको प्रिय और मनको सुख देनेवाले पदार्थसेवन  
करना तथा विस्तारयुक्त जंघा औरनितंबवाली मोटे ऊँचे कुर्चोंके बोझसे कुछ नव

गई है कमर जिनकी ऐसी तरुण और नवीन यौवनवाली अच्छे पुष्ट शरीर वाली और पांचों विषय ( रूप रस सुगंध स्पर्श और शब्द ) इनमें है अति-शय स्वभाव जिनका ऐसी स्त्रियोंका संगम करना पानात्ययमें सुखदायक है पंच विषयातिशयस्वभावका प्रयोजन यह है कि स्त्री ऐसी सजी धजी सुंदर सुगंध लगाये नरम शरीरवाली मधुर भाषिणी ( शोकीन ) हो जिसमें पुरुष को पांचों इंद्रियोंके आनंद प्राप्त हो ऐसी स्त्रीका संगम पानात्ययमें ( या मद्य पीके ) करना सुख देता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

पिवेद्रसं पुष्पफलोद्भवं वां सितामधूकत्रिसुगंधयुक्तम् ।

संचूर्ण्य संयोज्य च नागपुष्पैरजाजिकृष्णामरिचैश्च तुल्यैः ॥ ४२ ॥

वर्षाभुयष्ट्याह्वमधूकलाक्षात्वक्कुर्बुदारांकुरजीरकाणि ।

द्राक्षां च कृष्णामथ केशरं च क्षीरे समालोज्य पिवेत्सुखोष्णम् ॥ ४३ ॥

पुष्पफल ( भूरे कोहले ) का रस निकालके उसमें मिश्री महुवेके फूल और त्रिसुगंध ( तज पत्रज इलायची ) डालकर पीवे अथवा नागकेशरकी पीसके जीरा पीपल मिरच समान भाग मिलाके ( उसी पेठेके रसके संग ) पीवे ॥ ४२ ॥ तथा साँठी मुलेठी महुवा लाख तज कर्बुदार ( कचनाल या लहेसुवे ) के अंकुर और जीरा मुनक्का पीपल और नागकेशर इन्हें दूधमें घोल निवाया करके पीवे ॥ ४३ ॥

भवेच्च मद्येन तु येन पातितः प्रकामपीतेन सुरासवादिना ।

तदेव तस्मै विधिर्वत्प्रदापयेद्विपर्यये भ्रंशमसौ च गच्छति ॥ ४४ ॥

यथा नरेन्द्रोपहतस्य कस्यचिद्भवेत्प्रसादस्तत एव नान्यतः ॥ ४५ ॥

जो जिस भांतिके जादे पीनेसे गिरा है ( पीडित हुवा है ) चाहे वह सुरा या आसवादि किसी प्रकारका हो उसे वही मद्य विधिपूर्वक ( मात्रायुक्त थोड़ा ) देना देते रहना चाहिये विपर्यय ( उलटा पलटा करने या और अट्ट पट्ट औषध ) करनेसे मनुष्यका देह नष्ट होजाता है या आराम नहीं होता इसपर दृष्टांत है कि, किसीपर राजा क्रुद्ध होकर प्रतिष्ठादि भंग करदे या केश दे तो उसकी प्रसन्नता फिर राजाहीके प्रसन्न होनेसे होती है अन्यथा नहीं हो सकती ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

विच्छिन्नमद्यः सहसा योऽतिमद्यं निषेवते ।

तस्य पानात्ययोद्दिष्टां विकाराः संभवन्ति हि ॥ ४६ ॥

मद्यस्याग्नेयवायव्यौ गुणांबुवहानि च ।

स्रोतांसि शोषयेयातां तेन तृष्णा प्रजायते ॥ ४७ ॥

विच्छिन्नमद्य मनुष्य ( अर्थात् पहलेका पिया मद्य उतरा ही न हो और ) फिर उसपर उस समय और अत्यंत मद्य पीलेवे उसके पानात्ययके कहेहुए विकार होजातेहैं ( विच्छिन्नमद्यका कई ऐसा भी अर्थ करते हैं कि, जिसने मद्य छोड दिया हो ) वह यदि फिर अतिमद्य यकायक पीले तो उसे पानात्ययके विकार हो जातेहैं ॥ ४६ ॥ मद्यमें आग्नेय और वायवीय दो गुण होतेहैं ये जलवाहिनी शिराओंको शोषण करलेते हैं इससे उसे तृषा उत्पन्न हो जाती है ॥ ४७ ॥

पाटलोत्पलकंदेषु मुद्गपर्ण्या च सांधितम् ।

पिबेन्मागधिकांमिश्रं तत्रांभो हिमशीतलम् ॥ ४८ ॥

सर्पिस्तैलवसामज्जदधिभृंगरसैर्युतम् ।

क्वाथेन बिल्वयवयोः सर्वगंधैश्च पेपितैः ॥ ४९ ॥

पक्वमभ्यंजनैश्चैष्टं सेके क्वाथः सुशीतलः ।

रसवंति च भोज्यानि यथास्वमवचारयेत् ॥ ५० ॥

पानकानि सुशीतानि हृद्यानि सुरभीणि च ॥ ५१ ॥

परवल जलके कंद मुद्गपर्णी इनको जलमें औटाले और पीपल मिलाकर ठंढा करके पिलावे ॥ ४८ ॥ तथा घृत तैल चरबी और मज्जा दही भृंगरेका रस इनमें बिल्व और जौका क्वाथ मिलाके और एलादिगण पीसकर मिलाकर पकावे और इससे अभ्यंग करे तथा ठंढे क्वाथोंका सेवन कर और रसीले या मांसरसयुक्त यथायोग्य भोजन करावे तथा शीतल हृदयप्रिय और सुगंधित पत्रे पिलावें ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

त्वचं प्राप्तुं पानोष्मां पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः ।

दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ ५२ ॥

जब मद्यपानकी गरमी पित्त और रक्तसे मूर्च्छित ( प्रेरित ) होकर त्वचामें

प्राप्त होती है तब घोर दाह पैदा करती है इसमें पित्तके समान ( पित्तजम-  
दात्ययके समान ) औषध लेपनादि करने चाहिये ॥ ५२ ॥

## मदात्ययमें शीतविधान ।

शीतं विधानमर्तु ऊर्ध्वमहं प्रवक्ष्ये दाहप्रशांतिकरमृद्धिमतां  
नराणाम् । तत्रादितो मलयजेन हितप्रदेहश्चंद्रांशुहारतुहिनो-  
दकशीतलेन ॥ ५३ ॥ शीतांबुशीतलतरैश्च शयानमेवं हारै  
र्मृणालवलयरवलां स्पृशेयुः । भिन्नोत्पलोज्ज्वलहिमे शयने  
शयीत पत्रेषु वा सजलविंदुषु पद्मिनीनाम् ॥ ५४ ॥ आसादय-  
न्पवनमाहृतमिष्टगंधं कहारपद्मदलशैवलसंचयेभ्यः । शीतै-  
र्वनांतपवनैः परिमृश्यमानः प्रीतश्च रेड्धवनकाननदीर्घिकासु ५५

इसके अगाड़ी हम शीतल विधानकी विधि कहते हैं जो ऋद्धिवाले  
मनुष्योंके दाहके शांति करने वाली है इसमें आरंभ ही से चंदनका लेप-  
करे और चंद्रकांत मणियोंका हार और ठंडे बरफका पानी छिड़के ॥ ५३ ॥  
शीतल पानी जैसे शीतल हारोंसे और कमलनाल के कंकणोंसे भूषित  
स्त्रियोंका स्पर्श करे खिले हुए कमल जैसे उज्ज्वल ठंडे विस्तर पर सोवे  
अथवा जलके विंदुयुक्त कमोदनीके पत्तोंपर लेटे ॥ ५४ ॥ तथा ठंडी  
पवन जिसमें अच्छी सुगंध हो उसमें बैठे नीलकमल रक्तकमल इनके पत्ते  
सिवालका संचय इनकी हवा खावे बगीचेके पासकी ठंडी हवामें टहले या  
प्रसन्न होकर ठंडे मकानों या बागों या नदीके किनारों पर टहले ॥ ५५ ॥

दाहाभिभूतमथवा परिषेचयेत्तु शीतैरुशीरजलचंदनवारिभि-  
स्तम् । विस्त्रावितां हृतमलां नववारिपूर्णां पद्मोत्पलोज्ज्वल-  
जलामधिवासितां च ॥ ५६ ॥ वार्पां भजेत हरिचंदनभूषि-  
तांगः कांताकैरस्पृशितकर्कशरोमकूपः । तत्रैनमंबुरुहपत्रै-  
समैः स्पृशंत्यः शीतैः करोरुवदनैः कंठिनैस्तनैश्च ॥ ५७ ॥  
तोयावगाहकुशला मधुरस्वभावाः संहर्षयेयुरवला मधुरैः  
प्रेलापैः । धारागृहे प्रगलितोदकदुर्दिनाभे क्वांतः शयीत  
सलिलानिलशीतकुक्षौ ॥ ५८ ॥

दाहवाले ( मद्यके दाहवाले ) को ठंडे खसके पानीसे या चंदनके पानीसे तर करे अथवा मैला जल मिट्टी मल आदि निकाल दिया हो ( छांटी हुई ) बावड़ी जिसमें कमल सरीखा उज्ज्वल सुगंधित पानी हो उसमें बैठे और शरीरपर हरिचंदन लगावे तथा स्त्रियोंके हाथसे शरीरके रोमांचोंका स्पर्श करावे तथा कमलसरीखे शीतल हाथों हृदयों मुखों और कठोर कुचोंसे स्त्री उन्हें स्पर्श करे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ अथवा जलक्रीडामें चतुर मधुर स्वभाव-वाली स्त्रियां उसे जलक्रीडासे आनंदित करें तथा फुंवारेके स्थानोंमें जहां पानीके फुंवारोंसे वर्षाकालसा प्रतीत होता हो और जिसमें शीतल पानी ठंडी वायुका आनंद हो ऐसे स्थानोंमें आराम पूर्वक सोवे ॥ ५८ ॥

गंधोदकैः सकुसुमैरुपसिक्तभूमौ पत्राम्बुचंदनरसैरुपलित-  
कुब्जे । जात्युत्पलप्रियककेशरपुंडरीके पुन्नागनागकरवीर-  
कृतोपकारे ॥ ५९ ॥ तस्मिन्गृहे कमलरेण्वरुणे शयित  
यत्राहितानिलविकंपितपुष्पदाम्नि ॥ ६० ॥ हेमंतविन्ध्यहिम-  
वन्मलयाचलानां शीतांभसा सकदलीहरितद्रुमाणाम् ।  
उद्भिन्ननीलनलिनाम्बुरुहाकराणां चंद्रोदयस्य च कथाः  
शृणुयान्मनोज्ञाः ॥ ६१ ॥ शृंगं सुदीनमनसं मनसोऽनुकूलः  
पीनस्तनोरुजघना घनसारदिग्धा । ता एवमार्द्रवसनाः सह  
सर्विशेषैः शिष्टैर्बलाः शिथिलमेखलहारयष्टयः ॥ ६२ ॥

सुगंधित ( एलादिगण ) के जलसे पृथ्वीको छिड़ककर पुष्प डालकर तथा चारों तरफ़ या एक तरफ़ पत्रज और कपूर चंदन इनके जलसे लिपीहुई भीत हो ( या छिड़कीहुई टट्टी लगी हो ) तथा ( वालछड़ तमाल नागर-मोथा केशर कमलके पत्र ) चँवेली कमल प्रियक ( कदंब ) नागकेशर और पुंडरीक ये सब पदार्थ हों ऐसे स्थानमें ( शयन करावे ) तथा पुन्नाग नागकेशर कनेर इनके हार गुलदस्तोंसे सजा हो तथा जो कमलकी परागसे लाल हो

( श्लो० ५९ ) बहुषु पुस्तकेषु एकपदं अधिकं दृश्यते । तत्पदं मांसीतमालेत्यादि । एतत्पदं पाठांतरेण पठितं भ्रांत्यैव पुस्तकेषु अधिकतया निक्षिप्तम् । तदुक्तं निबंधसंग्रहे अन्ये त्वेनं पठन्ति “मांसीतमालतृणकुंकुमपद्मपत्रेजात्युत्पलेत्यादि ” केचिदिति मन्यन्ते । त्रिपदात्मकं पचपदात्मकमेव पद्यं आर्षत्वान्नदूषणीयं ते एतत्पदमापि पठन्ति ।

रहाहो ऐसे स्थानमें लेटे तथा जहां तेज हवासे कंपायमान है पुष्पोंकी माला और ठंढे हिमालय विंध्याचल और मलयाचलके शीतल जल केले हरे पौदे खिले कमल कमोदनी और जलके पुष्प जिन स्थानोंमें हों ऐसे स्थानोंमें चंद्रोदयके समय मनके प्रसन्न करनेवाली कहानियाँ श्रवण करे तथा मद्यसे शिथिल दीन चित्तवाले पुरुषको मनके लायक पुष्ट कुचों और जंघावाली सुंदरी शरीरके कपूर ( अतर आदि ) लगाके भिगोयाहुवा वस्त्र ( साड़ी ) पहनकर ऐसी स्त्री जिनकी ढीली होगई हैं भेखला ( कांची ) और द्वार यष्टि ( हारोंकी लड़ी ) ऐसी सुंदरी उस मद पियेहुए पुरुषके पास निवास करके आलिंगन करे ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

हर्षयेयुः पुनर्नार्यः स्वर्गुणै र्हंसि स्थिताः। ताः शैत्याच्छम-  
येयुश्च पित्तपानात्ययं स्त्रियः ॥ ६३ ॥ रक्तपित्ततृषादाहे-  
ष्वयमेव विधिः स्मृतः सामान्यतो विशेषं तु शृणु दाहेष्व-  
शेषतः ॥ ६४ ॥

एकांतमें मदात्ययवालेके पास प्राप्त होकर सुंदर स्त्रियें अपने गुणों मुखस्पर्श आलिंगनादिसे उसे प्रसन्नकरें और जो पित्तका मदात्यय हो तो वे स्त्रियें शीतल उपचारोंसे उस पानात्ययको शांत करें ॥ ६३ ॥ रक्तपित्त तृषा और दाहमें भी सामान्यतासे यही विधि करनी चाहिये परंतु विशेष २ विधि अन्य उनके उपचारोक्त भी करे यहांपर दाह शांत करनेकी विधि विशेष करके श्रवण करो ॥ ६४ ॥

### दाहरोगका विवेचन ।

कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रितं दहति ह्यति ।

संचूष्यते दह्यते च ताम्राभस्ताम्रलोचनः ॥ ६५ ॥

लोहगंधांगवदनो वह्निनेवावकीर्यते ।

तं विलंघ्य विधानेन संसृष्टाहारमाचरेत् ॥ ६६ ॥

अग्रं शाम्यति दाहे च रसैस्तृप्तस्य जांगलैः ।

शाम्बात्रिखाश्रया यथान्यायं रोहिणीर्व्यधयेच्छिराः ॥ ६७ ॥

पित्तज्वरसमः पित्तात्स चाप्यस्य विधिर्हितः ॥ ६८ ॥



जब समस्त शरीरका रुधिर उद्रेक ( उफान ) को प्राप्त होता है तब वह अत्यंत दाह पैदा करता है इसमें मनुष्य चूसासा जावे और जलासा जावे तांबे जैसा शरीरका वर्ण होजावे और तांबे जैसे नेत्र होजावें ॥ ६५ ॥ शरीर और मुँहमें लोहेकेसी गंध आवे शरीरपर जैसे अग्नि डाली हो ऐसा मालूम हो ( इसे दाह कहते हैं ) ऐसे मनुष्यको लंघन कराकर संमृष्ट ( दाह नाशक संतर्पण ) आहार देवे ॥ ६६ ॥ और जंगली जीवोंके मांसका रस देकर तृप्त करे यदि इस भांति उसका दाह शांत न हो तो उसे जंगली जीवोंके रससे तृप्त करके उसके शाखा ( हाथ या पावों ) की रोहिणी नामक नसकी फस्द खोलनी चाहिये ॥ ६७ ॥ और पित्तके दाहमें पित्तज्वरके समान विधि भी उसके लिये हितकारक होती है ॥ ६८ ॥

### तृष्णानिरोधज दाह ।

तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणे तेजः समुत्थितम् ।

सबाह्याभ्यंतरं देहे दहेद्वै मंदचेतनः ॥ ६९ ॥

संशुष्कगलतालवोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य वेपते ।

तत्रोपशमयेत्तेजस्त्वंब्धातुं च विवर्द्धयेत् ॥ ७० ॥

पाययेत्काममंभश्च शर्कराढ्यं पयोऽपि वा ।

शीतमिक्षुरसं मंथं वितरेच्चेरितं विधिम् ॥ ७१ ॥

तृषाके विशेष रोकनेसे जलसंबंधी धातु क्षीण होजाती है और अग्नि ( शारीरक ऊष्मा ) बढ़जाती है तब मनुष्य बाहर और भीतर दाहको प्राप्त होता है ( सब शरीरमें दाह पैदा होजाता है ) और चेतना ( बुद्धि ) मंद होजाती है ॥ ६९ ॥ गला तालु और होंठ सूखते हैं मनुष्य जीभ बाहर निकाल देता है और कांपता है ऐसी अवस्थामें ऊष्माको शांत करना और जलसंबंधी धातुओंको बढ़ाना चाहिये ॥ ७० ॥ और इच्छापूर्वक ( थोड़ा थोड़ा करके ) पानी पिलाना चाहिये अथवा—मिलाहुआ दूध या ठंडा ईखका रस या मंथ पिलावे तथा पल्लंमालेत्यादि । विधि भी करे ( शीतलस्थानादिमें शीतल उपचार करे ) ॥ ७१ ॥ निबंधसंग्रहे

नन्यंते ।

( श्लो० ६९ ) अब्धातौ जलमयद्रवधातौ क्षीणे सति, तेजः पित्तम्, उत्त्वणीभूतम् ।



## उदरमें रक्तभरजानेसे दाह ।

असृजा पूर्णकोष्ठस्य दाहोन्यः स्यात्सुदुस्तरः ।

विधिः सद्योव्रणीयोक्तस्तस्य लक्षणमेवं च ॥ ७२ ॥

किसीप्रकार चोट या क्षत लगनेसे जिसका कोठा रुधिरसे भर जावे उसके भी दाह होता है यह दाह दुस्तर ( दुःसाध्य ) अन्य होता है इसके लक्षण सद्योव्रणके अनुसार हैं और यत्न भी सद्योव्रणीय अध्यायोक्त करने चाहिये ॥ ७२ ॥

## धातुक्षयका दाह ।

धातुक्षयोक्तो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृषान्वितः ।

क्षामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद्दृशपीडितः ॥ ७३ ॥

रक्तपित्तविधिस्तस्य हितः स्निग्धोऽनिलापहः ॥ ७४ ॥

धातुक्षयसे भी दाह होता है धातुक्षयजनित जो दाह होता है उससे मूर्च्छा होती है रोगी तृषायुक्त होता है आवाज बैठ जाती है क्रियाओंसे हीन होकर रोगी अत्यंत पीडित होता है इस प्रकारके रोगीको रक्तपित्तकी विधि करनी हित है जो चिकनी वायुनाशक भी हो ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

## शोचआदिसे दाह ।

क्षतजेनाश्रतश्चाति शोचतो वाऽप्यनेकधा ।

तेनांतर्दह्यतेऽत्यर्थं तृष्णामूर्च्छाप्रलापवान् ॥ ७५ ॥

तमिष्टविषयोपेतं सुहृद्भिरपि संवृतम् ।

क्षीरमांसरसाहारं विधिनोक्तेन साधयेत् ॥ ७६ ॥

रुधिरसे भोजन करनेवालेको या अनेक प्रकारके शोच करनेवालेको इनसे अत्यंत अंतर्दाह होता है तृषा मूर्च्छा और प्रलाप भी होता है ॥ ७५ ॥ ऐसे रोगीको प्रिय विषयोंसे प्यारे मित्रोंके पास बिठानेसे तथा दूध मांसरस आदि आहारसे तथा उक्त ( शीतल ) विधियोंसे उपचार करे ॥ ७६ ॥

## मर्माभिघातज दाह ।

अप्र

शा

धातजोऽप्यस्ति सोऽसाध्यः सप्तमो मतः ॥ ७७ ॥

३ ) 'धातुक्षयोक्तः' इत्यत्र 'धातुक्षयोक्तः' इति पाठांतरम् ।

सर्व एव च वैज्याः स्युः शीतगात्रेषु देहिषु ॥ ७८ ॥

एवंविधो भवेद्यस्तु मदिरामयपीडितः ।

प्रशांतोपद्रवश्चापि शोधनं प्राप्तमाचरेत् ॥ ७९ ॥

मर्म स्थानमें चोट लगने और मर्मपर घात होनेसे भी दाह होता है य सातवाँ दाह है और असाध्य होता है ॥ ७७ ॥ सब प्रकारके दाह ठंडे शरी वालोंके असाध्य और त्यागने योग्य होते हैं ॥ ७८ ॥ जो मनुष्य मद्यके विकारसे दाहयुक्त हो और उसके उपद्रव शांत होगये हों तो उसे यथा प्राप्त विरे चनादिसे शोधन करे ॥ ७९ ॥

सजीरकाण्यार्द्रकशृंगवेरसौवर्चलान्यर्द्धजलप्लुतानि ।

मद्यानि हृद्यान्यथ गंधवंति पीतानि सद्यः शमयन्ति तृष्णाम् ८० ।

जीरा अदरक सोंठ और काला नमक डालकर आधा पानी मिलाकर सुगंध डालकर हृदय प्रिय मद्यको पीनेसे तृषा शांत हो जाती है ॥ ८० ॥

जलप्लुतं श्रुतं न भूषितांगः स्रग्वी सभक्तां पिशितोपदंशाम् ।

पिबेत्सुरां नै व लभेत् रोगान्मनोमतिघ्नं च मंदं न याति ॥ ८१ ॥

इत्युत्तरतंत्रे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

जलसे भीगा चंदनका लेपन कियेहुए फूलोंकी माला पहनेहुए जो मनुष्य भोजनके साथ मद्य ( प्रमाणका मद्य ) पीवे वह मद्यजनित रोगों को नहीं प्राप्त होता अर्थात् उसे मद्यके रोग नहीं होते तथा मन और बुद्धिके नष्ट करने वाला यह ( नशा ) भी नहीं होता ( कई "जल प्लुता" ऐसा पाठ मानते हैं और यह अर्थ करते हैं कि पानीमें मिलाकर उपरोक्त ढंगसे मनुष्य सुरा अर्थात् मदिराको पीवे तो उसे मद्यके रोग नहीं होते और तेज नशा भी नहीं होता ) ॥ ८१ ॥

यूनानीके मतसे यह कोई खास व्याधि नहीं केवल शराबकी ज्यादाती काफिसादही समझा जाता है ॥

और डाक्टरीमें इस पानात्यय को डिलेरियमट्रीमेन्स (Delirium Tremens) कहते हैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायासुत्तरतंत्रे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

## अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथातस्तृष्णाप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम तृष्णा ( अति तृष्णा ) की चिकित्साका व्याख्या-  
न करते हैं ॥

### तृष्णाका स्वरूप ।

सततं यः पिबेद्भारि<sup>३</sup> न तृप्तिमधिगच्छति ।

पुनः कांक्षति तोयं<sup>१०</sup> च<sup>१३</sup> तं तृष्णादितमादिशेत्<sup>११</sup> ॥ १ ॥

जो बार बार पानी पीवे और तृप्ति न हो ( प्यास नहीं शांत हो ) फिर  
फेर पानी ही पानी माँगता रहे तो उसे तृष्णासे पीडित कहते हैं ॥ १ ॥

### तृष्णाके हेतु और संप्राप्ति ।

संक्षोभशोकश्रममद्यपानाद्रूक्षाम्लशुष्कोष्णकटूपयोगात् ।

धातुक्षयाल्लंघनसूर्यतापात्पित्तं च वातश्च भृशं प्रवृद्धौ ॥ २ ॥

स्रोतांसि संदूषयतः समेतौ यान्यंबुवाहीनि शरीरिणां हि ।

स्रोतःस्वपां वाहिषु दूषितेषु जायेत तृष्णा प्रवला तैतस्तु ॥ ३ ॥

क्रोधसे शोकसे परिश्रमसे मद्यपानसे रूखे खट्टे सुखे गरम चरपरे ऐसे  
पदार्थ खानेसे धातु क्षीण होनेसे लंघन करनेसे सूर्यकी धूपसे ( या ताप  
अर्थात् अग्निके तापसे ) पित्त और वायु अत्यंत बढ़कर ॥ २ ॥ जलके बहनेवाले  
स्रोतोंको दूषित करदेते हैं और जब मनुष्योंके जलवाही स्रोतें दूषित होते  
तब उसे प्रबल तृष्णा उत्पन्न होती है ॥ ३ ॥

### तृष्णाकी संख्या ।

तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजां चतुर्थी क्षयात्तथान्याऽऽमसमुद्भवा

च । स्यात्सप्तमी भक्तनिमित्तजा तु लिङ्गानि तासां शृणु

चौपधानि ॥ ४ ॥

( श्लो० ४ ) यद्यपि कफहेतुमितृष्णाजनकत्वं न संभवाति तथापि वृद्धश्लेष्मा यदा  
शतपित्तेन सह आवृणोति तदा ताभ्यां संक्षोभमाणस्तृष्णां जनयति ( इति वल्लभः )

तृषा सात प्रकारकी होती है तीनों दोषोंसे पृथक् पृथक् तीन ( वातज पित्तज और कफज तृष्णा ) चौथी क्षत ( घाव या चोट लगने ) से पांचवीं धातुक्षयसे छठी आमसे और सातवीं भोजनके निमित्तसे इनके लक्षण और औषध श्रवण करो ॥ ४ ॥

### तृष्णाका पूर्वरूप ।

ताल्वोष्ठकण्ठास्यविशेषदाहाः संतापमोहभ्रमविप्रलापाः ।

पूर्वाणि रूपाणि भवन्ति तासामुत्पत्तिकालेषु विशेषतो हि ॥ ५ ॥

तालु होंठ कंठ मुँह ये स्थान मूखें दाह संताप मोह भ्रम प्रलाप ये तृषाके पूर्वरूप हैं परंतु ये उत्पत्तिके समयमें विशेषतासे होते हैं ( अर्थात् उपरोक्त लक्षण तृष्णाके पूर्वरूपमें भी होते हैं और तृष्णाके समय भी होते हैं बल्कि तृषा उत्पन्न होनेपर ये विशेषतासे होते हैं ) ॥ ५ ॥

### वातादिकी तृषाके लक्षण ।

शुष्कास्यता मारुतसंभवायां तोदस्तथा शंखशिरोगलेषु ।

स्रोतोनिरोधो विरसं च वक्त्रं शीताभिरग्निश्च विवृद्धिमेति ॥ ६ ॥

मूर्च्छाप्रलापारुचिवक्त्रशोषाः पीतेक्षणत्वं प्रततश्च दाहः ।

शीताभिकांक्षा मुखतिक्तता च पित्तात्मिकायां परिधूमनं च ॥ ७ ॥

वायुकी तृषामें मुख सूखे शंख ( कनपटी ) शिर और गलेमें दर्द हो स्रोतों रुकेसे हों मुखमें विरसता हो और ठंडा पानी पीनेसे यह बढे ॥ ६ ॥ पित्तकी तृषामें मूर्च्छा प्रलाप अरुचि मुँह सूखना नेत्र पीले होना निरंतर दाह रहना शीतल पदार्थोंकी वांछा होना मुँह चरपरासा होना और कंठमें धुँवाँसा उठना ये लक्षण होते हैं ॥ ७ ॥

### कफकी तृषाके लक्षण ।

बाष्पावरोधात्कफसंवृतेग्रौ तृष्णा बलासेन भवेत्तु तत्र ।

निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च तृष्णादित्तः शुष्यति चातिमात्रम् ॥

शीतज्वरश्छर्दिरोचकश्च कफात्मिकायां त्वविपाक एव ।

एतानि रूपाणि भवन्ति यस्यां तयादित्तः कांक्षति नाति चांभः ॥

वाष्प ( पसीने ) के अवरोधसे अथवा आंतर्य वाष्पके रुकनेसे और जठराग्निके कफावृत होजानेसे कफसे भी तृषा होती है इसमें निद्रा शरीरक

मारीपन मुँहमें मिठास ये लक्षण होते हैं और तृषासे पीडित रोगी अत्यंत गुष्कसा होजाता है ॥ ८ ॥ शीतज्वर वमन अरुचि और अन्नका अविपाक ( न पचना ) ये लक्षण कफकी तृष्णामें होतेहैं और इस कफतृष्णाका रोगी अत्यंत जलकी बांछा भी नहीं करता ( अर्थात् प्यास बहुत हो और जल नहीं भावे ) ॥ ९ ॥

क्षतस्य रुक्छोणिते निर्गमाभ्यां तृष्णां चतुर्थी क्षतजा भर्ता  
तु । तयाभिभूतस्य निशादिनां गच्छंति दुःखं पिबतो-  
ऽपि तोयम् ॥ १० ॥ रसक्षयाद्या क्षयसंभवा सा तयाभिभू-  
तस्तु निशादिनेषु ॥ पेपीयतेऽर्भः सं सुखं न याति तां सन्नि-  
पातादि<sup>१०</sup>ति के<sup>११</sup>चिदाहुः ॥ ११ ॥

क्षत ( घाव या चोट लगेहुए मनुष्य ) के पीडा और रुधिर निकलनेसे क्षतजा चौथे प्रकारकी तृष्णा होती है इससे पीडित मनुष्यको रातदिन पानी पीते भी दुःखसे कटते हैं ॥ १० ॥ पांचवीं क्षयजतृषा होती है, यह रसादिक धातुओंके क्षय हो जानेसे उत्पन्न होती है इससे पीडित मनुष्य रातदिन पानी पीते पीते भी सुखी नहीं होता ( प्यास नहीं बुझती ) कोई इसे सन्निपातज तृषा कहतेहैं ॥ ११ ॥

### आमज और भुक्तज तृषा ।

रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि तस्यामशेषेण भिषक् व्यवस्येत् ।

त्रिदोषलिङ्गमसमुद्भवा च हृच्छूलनिष्ठीवनसादयुक्ता ॥ १२ ॥

स्निग्धं तथाऽम्लं लवणं च भुक्तं गुर्वन्नमेवाशु तृषां करोति ।

क्षीणं विचित्तं वैधिरं तृषार्तं विवर्जयेन्निर्गतजिह्वमाशु ॥ १३ ॥

आम शेष<sup>१२</sup> हेकी तृषामें रसक्षयतृषाके सब लक्षण होतेहैं ऐसा वैद्य जाने यह आमज तृषा त्रिदोषके लक्षणोंसे युक्त होतीहै और इसमें हृदयमें शूल मुँहसे पानीसा आना तथा श्लानि भी होतीहै ( यह तृषा आमके शेष रहेसे होतीहै ) ॥ १२ ॥ चिकना खट्टा लवणका तथा भारी ( गरिष्ठ ) भोजन खानेके पीछे शीघ्र ही तृषा पैदा कर देताहै; और जो तृषाका रोगी क्षीणहो जिसकी बुद्धि नष्ट हो बहरा होजावे जिसकी जीभ बाहर निकल आई हो उसे असाध्य<sup>१३</sup> जानकर त्याग देवे ॥ १३ ॥

( श्लो० ११ ) रसक्षयाद्या इति । रसक्षयजा रक्तक्षयजा इत्याद्या ।

## तृष्णाकी चिकित्साका आरंभ ।

तृष्णाभिवृद्धाबुद्धेरे च पूर्णे तं वामयेन्मागधिकोदकेन ।  
विलेपनं चात्र हि तं वदन्ति स्यादाडिमात्रातकमातुलुङ्गैः ॥१४॥  
तृष्णाप्रयोगैरिह सां निर्वाया शीतैश्च सम्यग्रसवीर्यजातैः ।  
गंडूषमम्लैर्विरसे च वक्त्रे कुर्याच्छुभैरामलकस्य चूर्णैः ॥१५॥

तृषाके बढ़नेपर यदि पेट फूल जावे तो उसे पीपलके जलसे ( पीपलोंके काथ या पीपल और जलसे ) वमन करावे और अनार आंवले और बिजोरे इन्हें पीसकर ( जिह्वापर ) लेप करे ( जिससे लार बहे ॥ १४ ॥ और रस वीर्यमें शीतल तृषा शान्तिकारक प्रयोगोंसे उसे रोंकें और मुँह विरस हो तो अम्लपदार्थों और आंवलोंके चूर्णसे कुल्ले करे ॥ १५ ॥

सुवर्णरूप्यादिभिरग्नि तप्तैर्लोष्टैः कृतं वा सिकंतोपलैश्च ।  
जल सुखोष्णं शीमयेत्तु तृष्णां सशर्करं क्षौद्रयुतं हिमं वा १६॥  
पञ्चाङ्गिकाः पञ्चगणा य उक्तास्तैष्वंबु सिद्धं प्रथमे गणे वा ।  
पिबेत्सुखोष्णं मनुजोऽल्पशस्तु तृषो विमुच्येत हि वातजायाः ॥

सुवर्ण चांदी आदिको अग्निमें तपाकर या लोहेको गरम करके या बलू रेत या ईंट या पत्थर लाल करके पानीमें बुझाले फिर उसे निवाया ( थोड़ा थोड़ा ) पीवे तो तृषाको शान्त करताहै अथवा ठंढे पानीमें खांड और शहद मिलाके पिलानेसे भी तृषा शान्त होजातीहै ॥ १६ ॥ अथवातज तृषाका यत्न कहतेहैं पांच पांच औषधोंके जो पांच गण ( सूत्रस्थान ३८ वें अध्यायके अंतमें कहेहैं ) इनमें सिद्ध किया जल अथवा प्रथम गण विदारिगंधादिमें सिद्ध कियाहुआ जल निवाया थोड़ा २ पीवे तो वातजनित तृषासे आराम होजाताहै ( कई ऐसा भी अर्थ करतेहैं कि, पांच पंचमूल जो कहे उनमेंसे आदिके गण अर्थात् लघु पंचमूलका जल पिलावे ) ॥ १७ ॥

( श्लो० १४ ) मागधिकोदकेन पिप्पलीमिश्रितजलेन वामयेत् छर्दयेत् । परंतु क्षयजां विहाय तत्र हि क्षीणधातुत्वाद्दमनमनुचितम् । तदुक्तं तत्रांतरे—“उल्लेखनं तु तृष्णासु क्षयादप्यत्र युज्यते ( इति नि० सं० ) विलेपनं हितं स्यादिति वदंतीत्यन्वयः ।

( श्लो० १७ ) तृषः इति तृषू हलंतस्य पंचम्यंतं वातजायाः विशेषणम् ।

## पित्तजतृषाका यत्न ।

पित्तघ्नवर्गेण कृतः कषायः सशर्करः क्षौद्रयुतः सुशीतः ।

पीतस्तृषां पित्तकृतां निहन्ति क्षीरं शृतं वाप्यथ जीवनीयैः १८

पित्तनाशक ( कमल सारिवादि ) औषधोंका काथ ठंडा करके खांड और शहद मिलाके पीनेसे पित्तकी तृषा शांत होतीहै अथवा जीवनीयगणसे सिद्ध कियाहुआ दूध पिलावे ॥ १८ ॥

## कफकी तृषाका यत्न ।

विल्वाढकीकण्टकपञ्चमूलीदभैषु सिद्धं कफजां निहन्ति ।

हिं तं भवेच्छर्दनमेव चात्र तप्तेन निम्बप्रसवोदकेन ॥ १९ ॥

विल्व अरहर कंटक पंचमूल ( सूत्रस्थान ३८ वें अध्यायोक्त ) और डाभ इनमें सिद्ध कियाहुआ जल ( काथ ) कफकी तृषाको शांत करताहै तथा नींबूके पत्तोंके काथसे वमन कराना भी हित है ॥ १९ ॥

## तृषाकी साधारण विधि ।

सर्वासु तृष्णास्वथं वाऽपि पैतं कुर्याद्विधिं तेन विना न शा-  
न्तिः । पर्यागतोदुम्बरजो रसस्तु सशर्करस्तत्कथितोदकं वा ।

॥ २० ॥ वर्गस्य सिद्धस्य च सारिवादेः पातव्यमम्भः शिशि-  
रं तृषातैः ॥ २१ ॥

अथवा सब प्रकारकी तृष्णामें पित्तनाशक विधि करे क्योंकि पित्तकी शांतिके विना तृषा शांत नहीं होती तथा पकेहुए गूलरका रस पिलावे अथवा उसका काथ करके खांड मिलाके पिलावे ॥ २० ॥ अथवा सारि-  
वादि गणसे सिद्ध कियाहुआ जल ( अर्थात् काथ ) ठंडा करके तृषा पीडितों-  
को पिलावे ॥ २१ ॥

कशेरुशृंगाटकपद्ममोचविसेषु सिद्धं क्षतजां निहन्ति ।

नीलोत्पलोशीरकुचंदनानि दत्त्वा प्रवाते निशि वासयेत्तु २२ ॥

तदुत्तमं तोयमुदारगंधि सितायुतं क्षौद्रयुतं तथैव ।

( श्लो० २० ) पर्यागतं पक्वं पक्वस्योदुम्बरस्य रसः सशर्करः । 'सशर्करः' इत्यत्र केचिद् 'सशर्करं' इति पठित्वा कथितोदकस्य विशेषणं मन्यन्ते ।



द्राक्षा प्रगाढं च हिताय वैद्यस्तृष्णादितेभ्यो वितरेन्नरेभ्यः २३  
ससारिवादौ तृणपंचमूले तथोत्पलादौ मधुरे गणे च ।

कुर्यात्कषायं च तथैव युक्तं मधूकपुष्पादिषु वा परेषु ॥ २४ ॥

राजादनक्षीरकपीतनेषु षट् पानकान्यत्र हितानि च स्युः २५ ॥

कसेरु सिंघाड़े कमल मोचवृक्ष और कमलमूल इनका काथ क्षतज तृषाको नष्ट करता है अथवा नीलकमल खस पीतचंदन इन्हें भिगोकर रातको मैदानमें रख दे; इस उत्तम उदार सुगंधवाले जलमें मिश्री शहद मिलाके दाख मलकर वैद्य तृष्णापीडितको पिलावे ॥ २२ ॥ २३ ॥ सारि-वादि गण और तृण पंचमूल तथा उत्पलादिगण और मधुर ( काकोल्या-दि ) गण इनका काथ करके देवे तथा मधूकपुष्पादिकका काथ दे तथा खिरनी दूधके वृक्ष ( गूलर आदि ) और कपीतन ( सुपारी ) इनका पानक पिलावे, ये छहों पानक यहां हित हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

### क्षतकी तृष्णाके यत्न ।

सतुंडिकेरीण्यथ वा पिबेत्तु पिष्टानि कार्पाससमुद्रवानि ।

क्षतोद्भवां रुग्निनिवारणेन जयेद्रसानामसृजश्च पानैः ॥ २६ ॥

तुंडिकेरी ( बिंबी ) को या कपासके फलोंको पीसकर पीवे तथा घावसे हुई तृषामें घाव ( जखम ) को अच्छा करनेकी क्रिया करे तथा रसों ( मांस रसों ) का पान करावे अथवा हिरन आदिका रक्त पिलावे ॥ २६ ॥

### क्षयादिकी तृष्णाके यत्न ।

क्षयोत्थितां क्षीरघृतं निहन्यान्मांसोदकं वा मधुकोदकं वा ।

आमोद्भवां बिल्ववचायुतानां जयेत्कषायैरथ दीपनानाम् ॥ २७ ॥

आम्रातभल्लातबलायुतानि पिबेत्कषायाण्यथ दीपनानि ।

गुर्वन्नजातां वमनैर्जयेच्च क्षयादृते सर्वकृताश्च तृष्णाः ॥ २८ ॥

क्षयसे उपजी हुई तृषाको दूध व घृतका पान करना या मांसका रस या मुलेठीका रस दूर करता है ! और आमज तृषाको बिल्व वच इनसे मिलेहुए दीपन औषधोंके काथ शांत करतेहैं ॥ २७ ॥ अथवा आम्रात भिलावा और खरेंदी मिलाकर दीपन काथ पीनेसे आमज तृषा शांत होतीहै, और भारी गरिष्ठ

( स्तो० २५ ) कपीतनं आम्रातकमिति ( श० स्तो० ) अन्ये पूगमाहुः ।

अन्नके खानेसे उपजी हुई तृषाको भी दीपन कषाय शांत करतेहैं; तथा क्षयके शिवाय सब प्रकारकी तृषाको वमन कराकर शांत करे ( और ऐसा भी अर्थ करतेहैं कि-गरिष्ठ अन्नसे उपजी हुई तृषाको वमन कराकर शांत करे तथा क्षयज के शिवाय सब दोषोंकी तृषामें वमन करावे ) ॥ २८ ॥

श्रमोद्भवां मांसरसो निहन्ति गुडोदकं वाप्यथवापि मंथः ।

भक्तोपरोधात्तृषितो यवागूमुष्णां पिबेन्मंथमथो हिमं च ॥ २९ ॥

या स्नेहपीतस्य भवेच्च तृष्णा तत्रोष्णमम्भः प्रपिबेन्मनुष्यः ।

मद्योद्भवामर्द्धजलं निहन्ति मद्यं तृषां यापि हि मद्यपस्य ॥ ३० ॥

उष्णोद्भवां हन्ति जलं सुशीतं सशकरं चेशुरसं तथाऽम्भः ।

स्वैः स्वैः कषायैर्वमनानि तासां तथा ज्वरोक्तानि च पाचनानि ३१

श्रमसे उपजी हुई तृषामें मांसका रस देवे या गुडका पानी या मन्थ पिलावे इससे वह शांत होती है; और भक्तके उपरोध ( भोजनके अवरोध ) से तृषित मनुष्य गरम यवागू पान करे अथवा ठंढा मंथ पान करे ॥ २९ ॥ और जो स्नेह पीने ( या चिकनाई ज्यादा खाने ) से तृषा हो उसमें मनुष्यको गरम पानी पीना चाहिये और मदिरा पीनेवालेको यदि मद्य पीनेपर तत्कालही तृषा हो तो आधा पानी मिलाकर पीनेसे वह शांत होजाती है ॥ ३० ॥ गरमीसे पैदा हुई तृषा हो तो शीतल जल खाँड मिलाकर ( शरबत बनाकर ) पीवे अथवा ईखके रसमें पानी मिलाकर पीवे और जिस जिस प्रकारकी तृषा हो उसमें उसी प्रकारके काथसे वमन करावे तथा ज्वरोक्त पाचन भी देवे ॥ ३१ ॥

लेपावगाहौ परिपेचनानि कुर्यात्तथा शीतगृहाणि चापि ।

संशोधनं क्षीररसौ घृतानि सर्वासु लेहान्मधुरान्निहिमांश्च ॥ ३२ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

सब प्रकारकी तृषामें साधारणतासे ये यत्न करने हितकारक होतेहैं शीतल लेप स्नान छिड़के देना तथा ठंढे मकानमें रहना शोधन ( वमन विरेचन ) दूध मांसके रस घृत और मधुर शीतल अवलेह इनका सेवन करना ॥ ३२ ॥

यूनानी हकीम तृष्णाको अतशमुफरत कहते हैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

( श्लो० ३० ) मद्यपस्य या तृषा मद्योद्भवा तां अर्द्धजलयुक्तं मद्यं हि निहन्ति इत्यर्थः ।

## एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ४९.

अथातश्छर्दिप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम छर्दि ( वमन अर्थात् कै ) के प्रतिषेधकी अध्यायका व्याख्यान करते हैं-

### छर्दिका हेतु और संप्राप्ति ।

अतिद्रवैरतिस्निग्धैरह्वैर्लवणैरपि ।

अकाले चातिमात्रैश्च तथा सात्त्विकैश्च भोजनैः ॥ १ ॥

श्रमात्क्षयात्तथोद्वेगादजीर्णात्कृमिदोषतः ।

नार्याश्चापन्नसत्त्वायास्तथाऽतिद्रुतमश्रुतः ॥ २ ॥

बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्रेशितो बलात् ।

छादयन्नाननं वेगैर्दयन्नं भोजनैः ।

निरुच्यते छर्दिरिति<sup>०</sup> दोषो<sup>०</sup> वक्त्रं<sup>०</sup> प्रधावितः ॥ ३ ॥

दोषानुदीरयन्वृद्धानुदानो व्यानसंगतः ।

ऊर्ध्वमार्गच्छति भृशं विरुद्धाहारसेविनाम् ॥ ४ ॥

अत्यंत पतला अति चिकना हृदयको अप्रिय ऐसे भोजन करनेसे लवण खाने ( खाकर पानी पीने या लवणका पानी ) से बेसमय ( बे क्षुधा ) भोजन करने अति भोजन करने तथा असात्म्य ( जो माफकत न हो ऐसा ) भोजन करनेसे ॥ १ ॥ श्रमसे क्षयसे उद्वेगसे अजीर्णसे तथा कृमियोंके दोषसे स्त्रियोंके गर्भ होनेसे जलदी २ भोजन करनेसे बीभत्स ( ग्लानि कारक ) पदार्थोंके देखने आदि हेतुओंसे जो बलपूर्वक जी मिचलाता है तब वेगसे मुँहको रोकता हुआ और अंगोंको पीडित करता हुआ दोष मुखमार्गसे निकलता है उसे छर्दि ( वमन ) कहते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ विरुद्ध भोजन करनेवाले मनुष्योंके बढ़े हुए दोषोंको व्यानसे मिला हुआ उदान वायु ऊपरको ऊर्ध्वगामी करता है इससे वमन होता है ( कई व्यानकी जगह " प्राणसंगतः " ऐसा पाठ मानते हैं ) ॥ ४ ॥

( श्लो० २ ) आपन्नसत्त्वाया गृहीतगर्भाया नार्याः ।

## छर्दिका पूर्वरूप ।

हृल्लासोद्गाररोधौ च प्रसेको लवणस्य तु ।

द्वेषोन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम् ॥ ५ ॥

हृल्लास ( जी मिचलावे उबकाई आवें ) डकार रुक जावे मुँहमें पानीसा भर भर आवे मुखमें खारापन हो अन्न और पानसे अत्यंत द्वेष हो ( अर्थात् ये बुरे लगे ) ये लक्षण वमन होनेसे पहले होतेहैं ( “प्रसेको लवणस्य तु” इसकी जगह कई “ प्रसेको लवणास्यता ” ऐसा पाठ मानते हैं ) ॥ ५ ॥

प्रच्छदेयेत्फेनिलमल्पमल्पं शूलार्दितोभ्यर्दितपार्श्वपृष्ठः ।

श्रांतः सघोषं बहुशः कषायं जीर्णेऽधिकं साऽनिलजा वमिस्तु ॥

योऽम्लं भृशं वा कटुतिक्तवक्रः पीतं सरक्तं हरितं वमेद्वा ।

सदाहचोषज्वरवक्रशोषमूर्च्छान्विता पित्तनिमित्तजा सा ॥ ७ ॥

यो हृष्टरोमा मधुरं प्रभूतं शुक्लं हिमं सांद्रकफानुविद्धम् ।

अभक्तरुग्गौरवसादयुक्तो वमेद्दमी सा कफकोपजा स्यात् ॥ ८ ॥

थोड़ा थोड़ा झागों सहित वमन हो शूल हो पसली और पीठमें दर्द हो थकान हो बहुत शब्दयुक्त फसेली वमन हो और भोजनपचेपर (खाली कोठेमें) व्याधि अधिक हो ये लक्षण वायुकी छर्दिके हैं ॥ ६ ॥ जो बहुत खट्टा पीला कुछ रक्तता मिला या हरा वमन करे मुँह चरपरा या कड़वा हो दाह चोष ज्वर मुँहमें खुष्की और मूर्च्छा ये भी हों उसे पित्तकी छर्दि जानो ॥ ७ ॥ जिसके रोमांच हों मीठा बहुतसा सुपेद ठंडा गाढ़ा कफ मिला वमन करे अरुचि भारीपन और थकान भी हो ये लक्षण कफकी छर्दिके हैं ॥ ८ ॥

सर्वाणि रूपाणि भवन्ति यस्यां सा सर्वदोषप्रभवा मता तु ।

वीभत्सजा दौर्हृदजाऽऽमजा च याऽसात्म्यतो वा कृमिजा च

( श्लो० ५ ) प्रसेको लवणस्य तु इति । लवणस्य प्रसेकः त लवणवद् प्रसेक इत्यर्थः । केचित्तु प्रसेको लवणास्यता इति पाठांतरं मन्यन्ते ।

( श्लो० ६ ) “अभ्यर्दितपार्श्वपृष्ठः” इत्यत्र “अभ्यर्दितवामपार्श्वः” इति वा पाठांतरम् । जीर्णे रिक्तकोष्ठे अधिकम् ।

( श्लो० ८ ) कफानुविद्धं कफमिश्रम् । अभक्तरुक् अन्नारुचिः ( इति दृढनः )

या हि ॥ ९ ॥ सा पंचमी ताश्च विभावयेत्तु दोषोच्छ्रयेणैव  
यथोक्तमादौ ॥ आमाशयोत्क्लेशभवाश्च सर्वास्तस्माद्धितं  
लंघनमेव तासु १० ॥

जिसमें सब दोषोंके मिलेहुए लक्षण पायेजावें वह सब दोष सन्निपातकी  
छर्दि जाननी चाहिये । और ग्लानिकारक पदार्थोंसे उपजी तथा गर्भधार-  
णोंसे उपजी स्त्रियोंकी छर्दि तथा आमज भोजनादिके न पचनेसे उपजी  
तथा असानुकूल भोजन खाये जानेसे उपजी तथा कृमि दोषकी छर्दि पांचवीं  
ये सब पहले कहेहुए लक्षणोंसे देखनी चाहिये कि इनमें कौनसा दोष उल्वण-  
है? और जहां जिस दोषका उत्कर्ष हो उसका यथोक्त प्रतिकार करना चाहिये  
जो कि सब प्रकारकी छर्दि आमाशयके उत्क्लेशसे पैदा होतीहै. इसलिये  
सबमें आदिमें लंघन कराना हितकारक होताहै ॥ ९ ॥ १० ॥

## कृमिदोषकी छर्दि ।

शूलहृल्लासबहुला कृमिजा च विशेषतः ।

कृमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता ॥ ११ ॥

आमाशयमें दरद और बहुत जी मिचलाना विशेषकरके कृमि दोषकी  
छर्दिमें होता है तथा उसमें कृमिके हृद्रोगके समान लक्षण होते हैं ॥ ११ ॥

## असाध्य छर्दिके लक्षण ।

क्षीणस्योपद्रवैर्युक्तां सासृक्पूयां संचन्द्रिकाम् ।

छर्दिं प्रसृक्तां कुशलो नारभेत चिकित्सितुम् ॥ १२ ॥

क्षीण मनुष्यके यदि उपद्रवोंसहित छर्दि हो और उसमें रुधिर पीप तथा  
मोरपंखकेसी चमक हो तथा निरंतर होती हो ऐसी छर्दिकी चतुर वैद्य  
चिकित्साका आरंभ न करे ( यह असाध्य है ) ॥ १२ ॥

## छर्दिकी चिकित्सा ।

वैमीषु बहुदोषाषु छर्दनं हितमुच्यते ।

विरेचनं वा कुर्वीत यथादोषोच्छ्रयं भिषक् ॥ १३ ॥

संसर्गाश्चानुपूर्व्येण यथास्वं भेषजाय तान् ।

लघूनि परिशुष्काणि सात्म्यान्यन्यानि वाचरेत् ॥ १४ ॥

यथास्वं च कषायाणि ज्वरघ्नानि प्रयोजयेत् ॥ १५ ॥

बहुत दोषवाली छर्दिमें वमन होना या कराना हितकारक होता है ( अर्थात् उसे रोंके नहीं ) अथवा विरेचन करावे जैसा दोष हो वैद्य वैसाही करे ( कफकी उल्बणता हो तो वमनही करावे पित्तकी प्रधानता हो तो रेचन देवे ) ॥ १३ ॥ और जो संसर्गज छर्दि हो उन्हें क्रमसे यथायोग्य औषधोंसे शांत करे और फिर हलके शुष्क सानुकूल भोजन देवे ( पतले द्रव भोजन नहीं देवे ये फिर वमनकारक होते हैं ) और यथा अवसर ज्वरनाशककाथोंका उपयोग भी करना उचित होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

**वायुकी छर्दिका यत्न ।**

हन्यैत्क्षीरघृतं पीतं छर्दिं पवनसंभवाम् ।

मुद्गामलकयूषो वा ससर्पिष्कः ससैर्धवः ॥ १६ ॥

यवागूं मधुमिश्रां वा पंचमूलीकृतां पिबेत् ।

पिबेद्वा व्यक्तसिधूत्थं फैलाम्लं वैष्किरं रसम् ॥ १७ ॥

सुखोष्णलवणं वाऽत्र हितं स्नेहविरेचनम् ॥ १८ ॥

दूध घृत मिलाकर पीना वायुकी छर्दिको नष्ट करता है अथवा मूँग और आँवलोंका यूष घृतयुक्त लवणमिश्रित पीना ॥ १६ ॥ अथवा पंचमूली ( बृहत्पंचमूल ) से सिद्ध करीदुई यवागूंमें शहद डालकर पीना अथवा विष्किरपक्षियोंके मांसका रस सैंधानमक और फलोंकी खटाई पड़ाहुवा पीवे अथवा निवाया लवणयुक्त स्नेहका विरेचन भी यहाँ हित होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

**पित्तकी छर्दिका यत्न ।**

पित्तोपशमनीयानि पानानि शिशिराणि च ।

कषायाण्युपयुक्तानि घ्नन्ति पित्तकृतां वमिम् ॥ १९ ॥

( श्लो० १४ ) संसर्गान् ब्रूः संसर्गान् तान् आनुपूर्व्येण यथास्वं भेषजाय कुर्यादित्यन्वयः ।

शोधनं मधुरैश्चात्र द्राक्षारससमायुतैः ।

बलवत्यां प्रशंसन्ति सर्पिस्तैल्वकमेव च ॥ २० ॥

पित्तके नाशक शीतल पत्रे या कषाय जो योग्य हों पित्तकी वमनक नष्ट करते हैं ॥ १९ ॥ अथवा यहां मधुर द्रव्योंमें द्राक्षाके रसके योगवाले विरेचन देने उचित हैं और जो प्रबल छर्दि हो तो तैल्वक ( लोधका ) पका घृत देवे ॥ २० ॥

कफकी छर्दिका यत्न ।

आरग्वधादिभिर्युषं दशांगयोगमेव च ।

पाययेतार्थं सक्षौद्रं कफजायां चिकित्सकः ॥ २१ ॥

आरग्वधादिका काथ अथवा दशांगयोग शहद सहित मिलाके वैद्य कफकी छर्दिमें पिलावे ॥ २१ ॥

( वक्तव्य ) यूषसे प्रयोजन यहां काथ है और दशांग योग कई दशमूल मानते हैं कई दशांग काथ मानते हैं ( देखो टिप्पणी )

तीनों दोषोंकी छर्दिका यत्न ।

कृतं गुडूच्या विधिवत् कषायं हिमसंज्ञितम् ।

तिसृष्वपि भवेत्पथ्यं माक्षिकेण समन्वितम् ॥ २२ ॥

गिलोयका हिम शीतकषाय विधिपूर्वक बनावे और शहद मिलावे और पिलावे यह तीनों दोषोंकी छर्दिमें श्रेष्ठ है ( त्रिदोषकी या पृथक् तीनों दोषोंकी छर्दिमें पथ्य है ) ॥ २२ ॥

बीभत्सजनितादि छर्दिकी चिकित्सा ।

बीभत्सजां हृद्यतमैर्दौर्हृदां कांक्षितैः फलैः ।

लघनैर्वमनैश्चासां सात्म्यैश्चासात्म्यकोपजाम् ॥ २३ ॥

कृमिहृद्रोगवच्चार्पि कृमिजां सार्धयेद्भूमिम् ।

वितरेच्च यथादोषं शस्तं विधिमन्तरम् ॥ २४ ॥

( श्लो० २१ ) यूषं कषायमिति ( डल्लनः ) दशांगयोग इति केचिद् । दशांगयोगेन दशमूलं मन्यन्ते, केचिद् दशांगकाथमेव मन्यन्ते । तदुक्तम्—“वासामृतापर्पटकं निवभू-  
वे । त्रिफलाकुलत्थकैः काथः सक्षौद्रः” इति दशांगकाथः ।



ग्लानिसे उपजीहुई छर्दिको हृदयप्रिय पदार्थोंसे और गर्भवती स्त्रीकी छर्दिको उसके मन चाहे फलोंसे और असानुकूल भोजनजनित छर्दिको लंघन वमन और सानुकूल भोजनोंसे जीते ॥ २३ ॥ और कृमिदोषजनित छर्दिको कृमिके हृद्रोगके अनुसार यत्नसे साधन करे और इसके शिवाय दोषोंके अनुकूल यथायोग्य श्रेष्ठ विधि करे ॥ २४ ॥

दधित्थरससंयुक्तां पिप्पलीं माक्षिकान्विताम् ।

मुहुर्मुहुर्नरो लीढा छर्दिभ्यः प्रतिमुच्यते ॥ २५ ॥

समाक्षिका मधुरसा पीता वा तंडुलांबुना ।

तर्पणं वा मधुयुतं तिसृणामपि भेषजम् ॥ २६ ॥

स्वयंगुप्तां सयष्ट्याह्वां तंडुलांबुमधुद्रवाम् ।

पिवेद्यवागूमथंवा सिद्धां पत्रैः करंजैः ॥ २७ ॥

युक्ताम्ललवणाः पिष्टाः कुस्तुंबुर्योऽथवा हिताः ।

तंडुलांबुयुतं खादेत्कपित्थं त्र्यूपणेन वा ॥ २८ ॥

कैथके रसमें पीपल और शहद मिलाके बारबार चाटनेसे छर्दिमें आराम होजाताहै ॥ २५ ॥ अथवा मूर्वाको शहदमें मिलाकर उसे चाटे ऊपरसे चाँवलोंका पानी लेवे अथवा तर्पणपदार्थोंमें शहद मिलाके लेवे यह तीनों दोषोंकी छर्दिमें श्रेष्ठ औषध है ॥ २६ ॥ अथवा केवाँचके बीजोंको मुलेठीमें मिलाकर चाँवलोंका पानी और शहदमें घोलकर पीवे अथवा करंजके पत्तोंके काथमें पकाई यवागू पान करे ॥ २७ ॥ अथवा खटाई नमक मिलाकर धनिये को पीसे और इस चटनीको चाटे अथवा कैथमें त्रिकटु मिलाके उसमें चावलोंका पानी मिलाके खावे ॥ २८ ॥

सिताचंदनमध्वाक्तं लिह्याद्वा माक्षिकाशकृत् ।

पिवेत्पयोभिस्तप्तं च निर्वाप्य गृह्णगोधिकाम् ॥ २९ ॥

सर्पिःक्षौद्रयुतान्वापि लाजसक्तून्पिवेत्तथा ।

सर्पिःक्षौद्रसितोपेतां मागधीं वा लिहेत्तथा ॥ ३० ॥

धात्रीरसे चंदनं वा शृतं मुद्गदलांबु वा ।

कोलामलकमज्जानं लिह्याद्रा त्रिसुगंधिकम् ॥ ३१ ॥

सक्षौद्रां शालिलाजानां यवागूं वा पिबेन्नरः ।

त्रेयाण्युपहरेच्चोपि मनोव्राणसुखानि च ॥ ३२ ॥

जांगलानि च मांसानि स्वादुवत्पानकानि च ।

भोजनानि विचित्राणि कुर्यात्सर्वास्वतंद्रितः ॥ ३३ ॥

इत्युत्तरतंत्रे एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

अथवा मिश्री चंदन शहद इनमें मक्खीकी बीट मिलाकर चाटे अथवा दूधको अभिपर गरम करके उसमें गृहगोधिका (छपकली) डालकर पीवे ॥ २९ ॥ धानका खीलोंके सत्तू बनाके घृत शहद मिलाके खावे अथवा घृत शहद अथवा मिश्री इनमें पीपल मिलाकर चाटे ॥ ३० ॥ अथवा आँवलोंके रसमें चंदन मिलाके चाटे अथवा मूंगकी दालके औटाये पानीको पीवे अथवा बेर और आँवलोंके गूदेमें त्रिसुगंध मिलाके चाटे ॥ ३१ ॥ अथवा चाँवलोंकी खीलके यवागूंमें शहद मिलाके पीवे तथा मन और नासिका इंद्रियको सुख देनेवाली सुगंध सूंवे ॥ ३२ ॥ और जंगली जीवोंके मांस तथा स्वादु ( मजेदार ) पानक ( पीनेके पदार्थ ) तथा विचित्र अच्छे भोजन ये सब प्रकारकी छर्दि में सावधान वैद्यको उपयोग करने उचित हैं ॥ ३३ ॥

यूनानी वाले छर्दिको " कै " या कैआना कहतेहैं और डाक्टरों में वामेटिंग ( Wameting ) कहतेहैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतंत्रे एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

## पंचाशत्तमोऽध्यायः ५०.

अथातो हिक्काप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम हिक्का ( हिचकी या हुचकी ) के प्रतिषेधका व्याख्यान करतेहैं ॥

हिक्का ( हुचकी ) के हेतु ।

वेदाहिगुरुविष्टंभिरूक्षाभिष्यंदिभोजनैः ।

शीतपानासनस्थानरजोधूमानिलानलैः ॥ १ ॥

व्यायामकर्मभाराध्ववेगावातापतर्पणैः ।

आमदोषाभिधातस्त्रीक्षयरोगप्रपीडनैः ॥ २ ॥

विषमाशनाध्यशनैस्तथा संशमनैरपि ।

हिक्राश्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥ ३ ॥

विदाही ( जलन करनेवाले तीक्ष्ण ) वस्तु खानेसे गरिष्ठ विष्टुभी ( कब्जित करनेवाले ) रूखे अभिष्यंदि ऐसे भोजन करनेसे शीत-स्थान शीतलपीनेके पदार्थ रज ( धूल ) धुँवाँ वायु और अग्नि इनका अधिक संपर्क होनेसे ॥ १ ॥ परिश्रमके काम करने बोझा उठाने मार्ग अधिक चलने मलमूत्रादिके वेग रोकने और तृप्ति न करनेवाले पदार्थ खानेसे आमके दो-षसे चोट आदि लगनेसे अति स्त्रीसंग करनेसे क्षयरोगकी पीडासे ॥ २ ॥ विषम भोजन करने भोजनपर भोजनकरने तथा संशमन कर्म करनेसे मनुष्यों के हिक्राश्वास तथा खाँसी पैदा होतेहैं ॥ ३ ॥

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो यकृत्प्लीहांत्राणि मुखादि वाक्षिपन् ।

संघोषवांनाशु हिर्नस्त्यसून्यतस्ततस्तु हि क्वेति भिषग्भिरुच्यते ॥

जब उपरोक्त कारणोंसे वायु ( समान और उदान ) शब्द सहित यकृत प्लीहा आंतोंकी मुखद्वारोंसे क्षेपण करके ( उछालके या निकालता या हिलाता हुआ ) घोषण युक्त ( अव्यक्तध्वनि युक्त ) उर्द्धगामी हो मुखकी तरफ प्रवर्त हो और ( बढ जाय तो ) शीघ्र प्राणको नष्ट करदेवे इससे इसे वैद्य हिक्रा कहतेहैं ॥ ४ ॥

( वक्तव्य ) इसमें सस्वन और घोषवान् दो शब्द एक अर्थके क्यों कहे इसका समाधान यह है कि स्वन साधारण अल्पशब्द होता है और घोष ऊँचा जोरका और गंभीर शब्द होता है सो घोषवान् शीघ्र प्राणनाशक हिक्रा होती है यह शब्द गंभीरा और महतीमें बहुत भयंकर सा होता है बल्कि कई "सघोषवान्" की जगह "सदोषवान्" ऐसा पाठांतर मानतेहैं ॥ वायुसे कई समान और उदान मानतेहैं कई उदान और प्राण मानतेहैं ॥

( श्लो० २ ) अपतर्पणैः अतृप्तिकैरल्लयैश्च आमदोषेण "उष्मणात्पलत्वेन धातुमांसादपचितम् दुष्टमामाशयगतं रसमामं मचक्षते " इति नि० सं० ॥

( श्लो० ४ ) मुहुर्मुहुरिति वायुरत्र सोदानः प्राणो बोद्धव्यः आक्षिपन् निःसारयन् इवेत्यर्थः यकृत्प्लीहांत्राणि मुखमानीय निःसारयन्निव वायुरुदेतीति उदेति उर्द्ध याति ( इति भा० ५० ) संघोषवान् इत्यत्र सदोषवानिति पाठः ( इति भा० ५० )

## हिक्काकी संख्या ।

अन्नजां यमलां क्षुद्रां गंभीरां महतीं तथा ।

कफेनानुगतो वायुः पञ्च हिक्काः करोति हि<sup>३</sup> ॥ ५ ॥

कफके अनुगत हुआ वायु पांच प्रकारकी हिक्कायें पैदा करता है वे पांच प्रकारकी हिक्का ये हैं अन्नजा यमला क्षुद्रा गंभीरा और महती ॥ ५ ॥

## हिक्काका पूर्वरूप ।

मुखं कषायमरतिगौरवं कंठवक्षसोः ।

पूर्वरूपाणि हिक्कानामाटोपो जठरस्य च ॥ ६ ॥

मुँह कसेला हो बेचैनी हो कंठ और छातीमें भारीपन हो तथा पेटका फुलावसा हो ये लक्षण हिचकीके पूर्वरूपके हैं ॥ ६ ॥

## पांचों हिक्काओंके लक्षण ।

पानान्नैरतिसंयुक्तैः सहसा पीडितो निलः ।

हिक्कयत्यूर्ध्वगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक् ॥ ७ ॥

चिरेण यमलैर्वेगै<sup>२</sup> र्यां हिक्का संप्रवर्तते ।

कंपयंती शिरो ग्रीवां यमलां तां विनि<sup>३</sup> दिशेत् ॥ ८ ॥

विकृष्टकालैर्या वेगैर्मदै<sup>२</sup>ः समभिर्वर्तते ।

क्षुद्रिका नाम सा हिक्का जन्तुमूलात्प्रधाविता ॥ ९ ॥

नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गंभीरनादिनी ।

शुष्कौष्ठकंठजिह्वास्यश्वासपार्श्वरुजाकरी ।

अनेकोपद्रवयुता गंभीरा नाम सा स्मृता ॥ १० ॥

मर्माण्यापीडयंतीव सततं या प्रवर्तते ।

देहमायम्य वेगेन वोषयत्यतितृष्यतः ।

महाहिक्कति सा ज्ञेया सर्वगात्रप्रकंपिनी ॥ ११ ॥

( श्लो० ९ ) जन्तु कक्षोरसोः संधिरिति जैजटः । जन्तुमूलग्रहणेन हृदयकोमकंठस्य  
गयदासः ।

जलदी जलदी अत्यंत भोजन करने या पान करनेसे पीडित हुआ वायु ( आमाशय वायु ) उर्द्धगामी होकर हikka पैदा करता है उसे वैद्य “अन्नजा” कहते हैं ( अर्थात् जलदी अन्न खायेजानेसे जो वायु उसके संग जाकर भीतर रुक जाता है और वातुल या तीक्ष्ण पदार्थ खायेजानेसे वहां का वायु ऊपरको गमन करनेके लिये हिचकी पैदा करताहै वह “अन्नजा” हikka होती है यह प्रायः सब लोगोंके बहुधा हुआ करतीहै और साधारण होती है ) ॥ ७ ॥ जो हुचकी देर देरसे दो वेगोंसे आवे शिर और ग्रीवाको कंपित करे उसे “यमला” कहतेहैं ॥ ८ ॥ जो हुचकी बहुत समयके अनंतर मंद वेगोंसे आवे और जत्रुके मूलसे आरंभ हो उसे “क्षुद्रा” कहतेहैं ( जत्रुमूल जैजटा-चाय कांख और हृदयकी संधिको बतातेहैं ) ॥ ९ ॥ जो हुचकी नाभिसे उठे घोर और गंभीर शब्द हो होंठ कंठ जीभ मुँह ये सुखें श्वास और पँसली-का दर्द भी हो और अन्य उपद्रवभी हों उसे “गंभीरा” कहतेहैं ॥ १० ॥ जो मर्मोंको पीडा करती हुई निरंतर चले और अपने वेगसे देहको फैला दे ( देह ढीला पड़जाय ) और भयानक शब्द हो तृषा बहुत रहे सारा शरीर जिसके वेगसे काँपे उसे “महती” या महाहikka कहतेहैं ( ये दो पिच्छली असाध्य रोगोंके अंतमें उपद्रवरूपसे प्रायः होतीहैं और असाध्य होतीहैं ) ११ ॥

## हिकाकी असाध्यता ।

आयम्यन्ते हिक्रंतोऽर्गानि यस्य दृष्टिश्चोर्द्धं ताम्यत यस्य  
गण्डम् । क्षीणोऽर्द्रिर्द्रकांसते यश्च हिक्री तौ द्वावन्त्यौ वर्ज  
येर्द्धिर्कमानौ ॥ १२ ॥

जिसका शरीर हुचकीके समय फैलजावे तथा दृष्टि ऊपर विशेष रहे अंधेरी आजाय नेत्र गड़ जावें रोगी क्षीण हो खाँसीभी हो ऐसा हुचकी का रोग असाध्य होताहै और अंतकी दो हुचकी गंभीरा और महतीवाले रोगी असाध्य त्यागने योग्य होतेहैं ॥ १२ ॥

( वक्तव्य ) वास्तवमें अन्नजा हुचकीकी औषध करनी नहीं पड़ती यह आपही आप दो चार मिनटमें शांत होजातीहै और क्षुद्रा सुखसाध्य होतीहै यमला कष्टसाध्य होतीहै और कभी असाध्य भी होजातीहै और गंभीरा और महती ये असाध्य होतीहैं और प्रायः मनुष्यके अंतसमयमें होतीहैं ।

## हिक्काकी चिकित्साका आरंभ ।

प्राणायामोद्वेजनत्रासनानि सूचीतोदैः संभ्रमश्चात्र शस्तः ।

यष्ट्याह्वं वा माक्षिकेणावपीडः पिपल्यो वा शर्कराचूर्णयुक्ताः १३॥

सर्पिः कोष्णं क्षीरमिक्षो रसो वा नातिक्षीणे संसनं छर्दनं च ॥ १४॥

प्राणायाम कराना उद्वेग कराना डराना मूई चुभोना भ्रम दिलाना ये ( साधारण हिचकियोंके लिये ) श्रेष्ठ हैं अथवा मुलेठीका चूर्ण शहदमें मिलाके अवपीडन करे या पीपल और खांड इन्हें मिलाकर खावे ॥ १३ ॥ अथवा निवाया घृत या ईखका रस भी हितकारक है और जो हुचकीका रोग अति क्षीण नहीं हो तो उसे विरेचन देवे तथा वमन करावे ( अर्थात् बलवान् हो तो वमन करावे और विरेचन देवे ) ॥ १४ ॥

नारीपयःपिष्टमशुक्लचंदनं घृतं सुखोष्णं च ससैधवं तथा ।

चूर्णीकृतं सैधवमभसां तथा निहंति<sup>१३</sup> हिक्कां च हितं<sup>१३</sup> च<sup>१२</sup>  
नस्यतः ॥ १५ ॥

लाल चंदनको खीके दूधसे घिस ले तथा सैधव और गरम घृत तथा सैधा नमक पिसाहुआ जलके साथ इन योगोंकी नस्य लेनेसे हुचकीकी पीडा नष्ट होजातीहै ॥ १५ ॥

गुंज्याद्भूपं शालिनिर्यासजातं नैपालं वा गोविषाणोद्भवं वा ।

सर्पिःस्निग्धैश्चर्मवालैः कृतं वा हिक्कास्थाने स्वेदनं वापि कार्यम् १६

क्षौद्रोपेतं गैरिकं कांचनाह्वं लिह्याद्भस्म ग्राम्यसत्त्वास्थिजं वा ।

तद्वच्च्छाविन्मेषगोशल्यकानां रोमाण्यंतर्द्धमदग्धानि चात्र ॥ १७॥

मध्वाज्याक्तं बर्हिपत्रप्रसूतमेवं भस्मौदुंबरं तैल्वकं वा ।

स्वर्जिक्षारं बीजपूराद्रसेन क्षौद्रोपेतं हंति<sup>१३</sup> लीढांशुं हिक्काम् ॥ १८॥

शालका निर्यास ( शालका गोंद ) या मैनसिल या गौके सींगका टुकड़ा इनमेंसे किसीकी धूनी देवे अथवा चर्म या बाल इनमें घृत मिलाके धूनी देवे अथवा हुचकीके स्थान ( पेट कुक्षि आदि ) का स्वेदन करे ( चिकनाई लगाके सेक दे ) ॥ १६ ॥ अथवा सुवर्णगेरू ( सोनियांगेरू ) शहदमें मि-

( श्लो० १५ ) नारीपयः इत्यादि नस्यत्रयम् ।

( श्लो० १८ ) बर्हिपत्रप्रसूतं मयूरपत्राज्जातम् ( इति नि० सं० ) ।

लाके चाटे अथवा ग्राम्य पशुओंके हड्डीकी भस्म शहदसे चाटे अथवा सेह मेंढा गो और शल्यक सेहका भेद इनके रोंगटे अंतरधूम दग्ध करके उन्हें शहदसे चाटे ॥ १७ ॥ अथवा मोरके पंखके चंदे जलाके शहद और घृतसे चाटे या गूलरकी भस्म लोधकी भस्म इन्हें शहद घृतसे चाटे अथवा सजीखार नीबूका रस इन्हें शहद मिलाके चाटे तो शीघ्र ही हुचकी बंद हो जाती है ॥ १८ ॥

सर्पिःस्निग्धा घ्नति हिक्कां यवाग्वः कोष्णा ग्रासाः पायसो वा सुखोष्णः । शुंठीतोये सार्धितं क्षीरमाजं तद्वर्त्पीतं शर्करासंयुतं वा ॥ १९ ॥ आतृतेर्वा सेव्यमानं निहन्याद्घ्रात्वा हिक्कामाशु मूत्रं त्वर्जाव्योः ॥ २० ॥

घृतसे स्निग्ध यवागू खाना निवाये २ ग्रास लेने तथा निवायी २ खीर खाना अथवा बकरीका दूध सोंठ सहित औटायाहुआ मिश्री डालकर तृप्तिपर्यंत पीना अथवा बकरीका भेडका मूत्र सूंघना इनसे शीघ्र हुचकी रुकजाती है ॥ १९ ॥ २० ॥

सपूतिकीटं लशुनोग्रगंधाहिंस्वज्जमाचूर्ण्य सुभावितं तत् । क्षौद्रं सिता वारणकेशरं च पिबेद्रसेनेक्षुमधूकजेन ॥ २१ ॥ पिबेत्पलं वा लवणोत्तमस्य द्वाभ्यां पलाभ्यां हविषः समग्रम् । हरीतकीं कोष्णजलानुपानां पिबेद्घृतं क्षारमधुप्रपन्नम् ॥ २२ ॥ रसं कपित्थान्मधुपिप्पलीभ्यां पिचुप्रमाणं प्रपिबेत्सुखाय । कृष्णां सितां चामलकं च लीढं सशृंगवेरं मधुनाऽथवापि ॥ २३ ॥ कोलास्थिमज्जाजनलाजचूर्णं हिक्कां निहन्यान्मधुना च लीढम् ॥ २४ ॥

पूतिकीट ( एकप्रकारका वर्षा ऋतुका कीट होता है अथवा कई पूतिकाष्ठ पाठान्तर मानते हैं पूतिकाष्ठ देवदारु ) लहसन वच होंग कमलगट्टे इन्हें पीसकर इनमें शहद मिश्री और नागकेशर मिलालेवे इसके रस तथा महुवेके रससे पीवे ॥ २१ ॥ अथवा एक पल सैधवको दो पल घृतसे पीवे अथवा हरड़ेको

( श्लो० २१ ) भावितं अत्र मिश्रीकृतमिति ज्ञेयम् । अन्येतु “ हिंस्वज्जमाचूर्ण्य सुभावितम् ” इत्यत्र हिंस्वबुना चूर्ण्य सुभावितं इति पाठान्तरमाहुः । तत्र हिंस्वबुना भावितमित्यर्थः ।



गरम जलसे पीवे अथवा घृतमें जवाखार और शहद मिलाके पीवे ॥ २२ ॥  
अथवा कैथके रसको शहद और पीपल मिलाके कर्षभर पीवे अथवा  
पीपल मिश्री आँवले सोंठ इन्हें शहदसे चाटे ॥ २३ ॥ अथवा बेरकी  
गुठलीकी मींगी रसोत धानकी खील इन्हें पीसके शहद मिलाके चाटे तो  
हुँचकी बंद होजावे ॥ २४ ॥

पाटलायाः फलं पुष्पं गैरिकं कटुरोहिणी ।

खजूरमध्यं मागध्यः कासीसं मधुनाम च ॥ २५ ॥

चत्वारो यूषयोगाः स्युः प्रतिपादप्रदर्शिताः ।

मधुद्वितीयाः कर्तव्यास्ते हिक्कासु विज्ञानता ॥ २६ ॥

पटालाके फल और पुष्प तथा गेरू और कुटकी तथा खजूरकी मींगी  
और पीपल । तथा कसीस और मुलेठी ॥ २५ ॥ ये चार प्रयोग एक एक  
पदमें कहेहैं शहदमें मिलाकर जानकार वैद्यको हिक्कारोगमें करने ( उपयोग  
करना ) चाहिये ॥ २६ ॥

कपोतपारावतलावशल्यकश्वदंष्ट्रगोधावृषदंशजात्रसान् ।

पिबेत्फलाम्लानहिमान्ससैधवान्स्निग्धांस्तथैवाप्यमृगद्वि-

जोद्भवान् ॥ २७ ॥

कपोत पारावत ( कबूतर ) लवा शल्यक पक्षी और श्वदंष्ट्र ( गोखरू या  
सेह नाम जंतु ) गोधा ( गोह ) वृषदंश ( वनमार्जार ) इनके मांसके रस  
फलोंकी खटाईयुक्त सैधवसहित स्निग्ध और गरमागरम पीवे तथा ऋष्य  
( मृगभेद ) मृग और पक्षीके मांसका रस भी इसी भांति पीवे ॥ २७ ॥

विरेचनं पथ्यतमं ससैधवं घृतं सुखोष्णं च सितोपलायुतम् ।

सदागतावूर्द्धगतेऽनुवासनं वदन्ति केचिच्च हिताय हिक्किनाम् २८ ॥

इत्युत्तरतंत्रे पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

श्लो० २५ । २६ ) मधुनाम यष्टीमधुकम् । केचिदत्र "कासीसं दधिनाम च" इति पाठां-  
तरं मन्यन्ते । तत्र दधिनाम कपित्थम् । चत्वारो यूषयोगा इति यूषशब्देनात्र लेहो गृह्यते ।  
केचित्तु "चत्वारो येषु योगाः स्युः" इति पाठांतरं मन्यन्ते तत्र चत्वारो योगाः स्युः येषु  
प्रतिपादप्रदर्शितास्ते मधुद्वितीयाः कर्तव्या इत्यन्वयः । केचित्तु यूषशब्देनात्र काथं मन्यन्ते ।

( श्लो० २७ ) वृषदंशः वनमार्जारः ।

( श्लो० २८ ) सदागतौ ऊर्द्धगते वायौ ऊर्द्धगते ।

हिक्का रोगमें विरेचन देना बहुत ही पथ्य है जो सेंधव युक्त हो तथा निवाया घृत मिश्री मिलाकर पीना भी हित होता है और कोई ऐसा भी कहते हैं वायु ऊर्द्धगामी होजाता है तब हिक्कामें अनुवासन वस्ति करना हितकारक होता है २८  
यूनानी वाले हिक्का अर्थात् हुचकीको "फवाक" कहते हैं और डाक्टरोंमें इसे "हेकप" ( Hecup ) कहते हैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

## एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ५१.

अथातः श्वासप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम श्वासरोगके प्रतिषेधका व्याख्यान करते हैं ॥

"यैरेवै कारणैर्हिक्का बहुभिः संप्रवर्तते ।

"तैरेवै कारणैः श्वासो वो"रो भवति देहिनाम् ॥ १ ॥

विहाय प्रकृतिं वायुः प्राणोऽथ कफसंयुतः ॥

श्वासंयत्यूर्द्धगो भूत्वा "तं श्वासं परिचक्षते ॥ २ ॥

जिन अनेक कारणोंसे हिक्का उत्पन्न होती है प्रायः उन्हीं कारणोंसे मनुष्योंके घोर श्वासरोग होजाता है ( जो विदाही गुरु रुक्ष भोजनादि हुचकीके कारण पहले कहे हैं उन्हींसे श्वास पैदा होता है ) ॥ १ ॥ जब अपनी प्रकृतिके विरुद्ध होकर प्राणवायु कफसे मिलके ऊर्द्धगामी होकर श्वास उत्पन्न करता है ( श्वास कीगति प्राकृतिक श्वाससे विरुद्ध होजाती है ) इसे श्वास रोग कहते हैं ॥ २ ॥

( वक्तव्य ) हिक्कामें प्राण और उदान वायु दोनों कारण होते हैं और श्वासमें केवल प्राणवायु ही विकृत होता है क्योंकि हुचकीमें आमाशयमें दूषण होता है इससे उसमें आमाशयका उदान वायु जो कंठ नलका और आमाशय तक रहता है वह भी शामिल होता है और श्वासमें हृदय अर्थात् छाती फेफड़े और श्वासनलकामें विकार होता है आमाशयमें विकार नहीं होता इससे इसमें केवल प्राणवायु ही प्रधान है यही इन हुचकी और श्वासमें अंतर है श्वास बहनेवाली नाडियाँ कफसे भरजावें या वायुसे रुक्ष खुदक होकर उनमें खुद-राहट होजावे या वे नालियाँ सुकड़ जावें या अधिक फैल जावें जिनमें प्रति-लोम वायुके गमन करनेसे श्वासरोग होता है ॥

## श्वास रोगकी संख्या और पूर्वरूप ।

क्षुद्रकस्तमकश्छिन्नो महानूर्द्धश्च पंचधा ।

भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥ ३ ॥

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा भक्तद्वेषोऽरतिः परा ।

आनाहः पार्श्वयोः शूलं वैरस्यं वदनस्य च ॥ ४ ॥

श्वासरोग पांच प्रकारका होता है क्षुद्रश्वास तमकश्वास छिन्नश्वास महाश्वास और ऊर्द्धश्वास एक महाव्याधि श्वासरोग एक ही है उसीके ये पांच भेद हैं ॥ ३ ॥ इस श्वासरोगका पूर्वरूप यह है कि हृदयमें पीडा हो भोजन भावे नहीं अत्यंत बेचैनी रहे पेट अफरजाया करे पसलियोंमें दरद रहे और मुँहका स्वाद बिगड़ जावे ॥ ४ ॥

## क्षुद्रश्वास ।

किञ्चिदारभमाणस्य यस्य श्वासः प्रवर्तते ।

निषण्णस्यैति शान्तिं च स क्षुद्र इति संज्ञितः ॥ ५ ॥

जब कोई बलका काम करने लगे तब शीघ्र ही श्वास चलने लगजावे और आरामसे बैठ जानेपर शान्त होजावे उसे क्षुद्रश्वास कहते हैं ॥ ५ ॥

## तमकश्वास ।

तृट्स्वेदवमथुप्रायः कण्ठो घुर्घुरिकान्वितः ।

विशेषाद्दुर्दिने ताम्येच्छासः स्यात्तमको मतः ॥ ६ ॥

जिसमें तृषा हो पसीना आवे वमन हो कंठमें घुरघुर शब्द करे विशेष करके अश्रुकेदिनोंमें ( सरदीसे ) बढे इसे तमक श्वास कहते हैं ॥ ६ ॥

## इसकी कष्टता ।

घोषेण महताविष्टः सर्कासः सकफो नरः ।

यः श्वसित्यवलोन्नद्धिद् सुतस्तमकपीडितः ॥ ७ ॥

श्वासेके साथ खरटिकासा शब्द हो खाँसी और कफ भी हो और बल घट जावे अन्न भावे नहीं और सोतेमें भी पीडा रहे ऐसा तमक श्वास कष्टकारक ताहे ॥ ७ ॥

## प्रतमकश्वास ।

सं ताम्यति कफे हीने स्वपतश्च विवर्द्धते ।

मूर्च्छाज्वराभिभूतस्य ज्ञेयः प्रतमकस्तु सं ॥ ८ ॥

जो कफके निकल जानेपर या शांत होनेपर कुछ शांत होजावे और सोने ( लेटने ) पर बड़े मूर्च्छा ज्वर ये भी हों तो उसे प्रतमकश्वास कहते हैं ॥ ८ ॥

## छिन्नश्वास ।

आध्मातो दह्यमानेन वस्तिना सरुजं नरः ।

सर्वप्राणेन विच्छिन्नं श्वस्यच्छिन्नं तमादिशेत् ॥ ९ ॥

जिसके वस्तिस्थानमें जलन होनेसे पेट फूल जावे और वेदना भी हो सब प्राणवायु रुक रुककर चले ( अर्थात् टूट टूटकर श्वास ) लेवे उसे छिन्नश्वास कहते हैं ॥ ९ ॥

## महाश्वास और ऊर्ध्वश्वास ।

निःसंज्ञः पार्श्वशूलार्तः शुष्ककंठोऽतिघोषवान् ।

संरब्धनेत्रैस्त्वयम्ययः श्वस्योत्सं महान्स्मृतः ॥ १० ॥

मर्मस्वयम्यमानेषु श्वसन्मूढो मुहुश्च यः ।

ऊर्ध्वप्रेक्षी हतरवस्तंमूर्ध्वश्वासमादिशेत् ॥ ११ ॥

जिसमें मनुष्य बेहोश होजावे पसलीमें शूल हो कंठ सूख जावे श्वासमें खरीटेका शब्द विशेष हो नेत्रोंमें शोथ ( या सुरखी ) हो और श्वास लेते समय मनुष्य ढीला होजावे ( या फैल जावे सुकड़ जावे ) उसे महाश्वास कहते हैं ॥ १० ॥ श्वास लेनेमें मर्म स्थान खिंचने लगे मूर्च्छा बार बार होकर श्वास लेवे ऊपरको देखे और श्वासका शब्द ( या बोल ) झीना ( मंदा ) पड़जावे इसे ऊर्ध्वश्वास कहते हैं ॥ ११ ॥

## परिशिष्ट ।

यह श्वासरोग प्रायः वृद्धवस्थामें बहुधा मनुष्योंको हुआ करताहै इससे क्षुद्र तमकादि श्वासके विषयमें कुछ विशेष लक्षण ग्रंथांतरसे लिखते हैं ( क्षुद्रश्वासके लक्षण )

( श्लो १० ) संरब्धनेत्रः संरभः रागः शोफश्च ।

रूक्षायामसोद्भवं कोष्ठे क्षुद्रवातमुदीरयन् ।

क्षुद्रश्वासो न सोत्यर्थं दुःखेनांगप्रबाधकः ॥ १ ॥

रूक्षता या परिश्रमसे कोठेमें क्षुद्रवायु कुछ उदीर्ण होजाताहै जिससे क्षुद्र-  
श्वास पैदा होताहै यह अत्यंत दुःखसे शरीरको बाधा नहीं करताहै और  
मुखसाध्य है ॥ १ ॥

तमक और प्रतमकके विशेष लक्षण ।

प्रतिलोमो यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते ।

ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ २ ॥

न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः ।

आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनन्दति ॥ ३ ॥

मेघांबुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्द्धते ।

स याप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥ ४ ॥

ज्वरमूर्च्छांपरीतं च विद्यात्प्रतमकं भिषक् ।

उदावर्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ॥ ५ ॥

तमसा वर्द्धतेऽत्यर्थं शीतलैश्च प्रशाम्यति ।

मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्प्रतमकं तु तम् ॥ ६ ॥

जब वायु प्रतिलोम होकर कफको उदीर्ण करके स्रोतों(श्वासवाही नालियों)  
में प्राप्त होताहै तब ग्रीवा और शिरको पकड़ताहै ॥२॥रोगी सो कर निद्रा नहीं  
लेता सोनेमें श्वासकी पीड़ा रहतीहै बैठा होजाने ( बैठा रहने ) में कुछ आराम-  
सा रहताहै और गरम वस्तुओंसे सुख प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ मेह पानी शीत  
ऋतु या शीतलवस्तु पूर्वकी पवन कफकारक आहार विहार इनसे यह बढ़ताहै  
इसे तमकश्वास कहतेहैं यह याप्य (या कष्टसाध्य) होताहै अथवा नया हो तो  
साध्य भी होसकताहै ॥४॥ इसका भेद प्रतमकश्वास वह होताहै जिसमें मूर्च्छा  
ज्वर आदि हों जो उदावर्तसे धूलकी धांससे अजीर्णसे क्लेद ( थकान ) से  
वेगोंके रोकनेसे इत्यादिसे श्वास उठ आताहै यह तमोगुणी ( या उष्ण ) पदा  
र्थोंसे अत्यंत बढ़जाता और शीतल आहार विहारोंसे शांत होता है इसमें  
अंधरेमें डूबाहुवासा रोगी होजाताहै इसे प्रतमकश्वास कहतेहैं(प्रयोजन यह कि  
तमक कफयुक्त वायुसे होताहै और प्रतमक रूक्ष उष्ण वायुसे होताहै इसीसे

तमककी औषध गरम कफनाशक और इस प्रतमककी तर और शीतल होतीहैं यही इनमें बड़ा अंतर है ॥ ५ ॥ ६ ॥

क्षुद्रः साध्यैतमस्तेषां तमकः कृच्छ्रं उच्यते ।

त्रयः श्वासा न सिध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च ॥ १२ ॥

इन पांच प्रकारके श्वासोंमें क्षुद्रश्वास बहुत सुखसाध्य होताहै और तमक-श्वास कृच्छ्रसाध्य है तथा तीन श्वास छिन्नश्वास महाश्वास और ऊर्ध्वश्वास ये सिद्ध नहीं होते अर्थात् असाध्य हैं और यदि रोगी दुर्बल हो तो उसका तमकश्वास भी असाध्य ही समझिये ( परंतु यह तमकश्वास बहुत समय तक ( वर्षोंतक ) कई मनुष्योंके रहताहै कभी दब जाताहै कभी उठ आताहै प्रायः बुढ़े और निर्वल आदमियोंके यही तमक या प्रतमक श्वास ही हुवा करताहै पर महाश्वास ऊर्ध्वश्वास छिन्नश्वास ये प्रायः मृत्युके समय अंत्य अवस्थामें किसी रोगके उपद्रवमें होतेहैं जिनसे बचना परम दुर्लभ होताहै) १२

श्वासरोगकी चिकित्साका आरंभ ।

स्नेहवस्ति विना केचिदूर्ध्वं चार्धश्च शोधनम् ।

मृदु प्राणवतां श्रेष्ठं श्वासिनामादिशन्ति हि ॥ १३ ॥

कोई ऐसा कहतेहैं कि यदि श्वासरोगवाला बलवान् हो तो उसे मृदु (हलका) वमन और विरेचन देना श्रेष्ठ होताहै परंतु स्नेहवस्ति उचित नहीं ॥

कासे श्वासे च हिक्कायां हृद्रोगे चापि पूजितम् ।

घृतं पुराणं संसिद्धमभयविडरामठैः ॥ १४ ॥

सौवर्चलाभयाविल्वैः संस्कृतं वा नवं घृतम् ।

पिप्पल्यादिप्रतीवापं सिद्धं वा प्रथमे गणे ॥ १५ ॥

सपंचलवणं सर्पिः श्वासकासौ व्यपोहति ॥ १६ ॥

खासीमें श्वासमें और हुचकी इन रोगोंमें पुराना घृत पीना श्रेष्ठ है जो हरड़े विडनमक और हींग इनसे सिद्ध कियाहुआ होवे ॥ १४ ॥ अथवा नया घृत सौचरनमक हरड़े विल्व इनसे सिद्ध किया हो वह भी श्रेष्ठ है अथवा पिप्पल्यादि गणकी प्रतीवाप देकर प्रथमगण ( विदारिगंधादि ) से सिद्ध किया होवे ॥ १५ ॥ अथवा पांचों लवणयुक्त घृत सेवन करना श्वास और खासी दोनोंमें श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥

( श्लो० १२ ) दुर्बलस्य तमकोपि असाध्य इत्यर्थः ।

हिंसाविडंगपूतीकत्रिफलाव्योषचित्रकैः ।

द्विक्षीरं साधितं सर्पिश्चतुर्गुणजलान्वितम् ॥ १७ ॥

कोलमात्रैः पिबेत्तद्विश्वासकासौ व्यपोहति ।

अर्शास्यरोचकं गुल्मं शकृद्भेदं क्षयं तथा ॥ १८ ॥

हिंसा ( बालछड कोई हींसवृक्षको बतातेहैं ) विडंग पूतिकरंज त्रिफला त्रिकटु चित्रक इनमें दुगुना दूध और चौगुना पानी डालकर उसमें घृत साधन करे ॥ १७ ॥ इसमेंसे कोल प्रमाण पान करनेसे श्वास खाँसी बवासीर अरुचि गुल्म और विड्वेद तथा क्षय इतने रोग नष्ट होतेहैं ॥ १८ ॥

कृत्स्ने वृषकषाये वा पचेत्सर्पिश्चतुर्गुणे ।

तन्मूलकुसुमावापं शीतं क्षौद्रेण योजयेत् ॥ १९ ॥

शृंगीमधुरिकाभाङ्गीशुंठीताक्षर्यसितांबुदैः ।

सहरिद्रैः सयष्ट्याह्वैः समैरावाप्य योगतः ॥ २० ॥

घृतप्रस्थं पचेद्धीमाञ्छीततोये चतुर्गुणे ।

श्वासं कासं तथा हिक्कां सर्पिरेतन्नियच्छति ॥ २१ ॥

समस्त अडूसेका काथ चौगुना डालकर उसमें घृत पकावे और उसमें अडू सेके फूल और जड भी डाल दे फिर ठंडा करके शहदके संग पीवे ॥ १९ ॥ अथवा काकड़ा सींगी मधुरिका ( एक प्रकारकी घास ) भारंगी सोंठ रसोत मिश्री नागरमोथा हलदी और मुलेठी सब समान भाग लेकर कूटकर डाले चौगुना पानी ठंडा डाले इसमें एक प्रस्थ घृत पकाले यह घृत श्वास खाँसी और हुचकी इनको दूर करता है ॥ २० ॥ २१ ॥

सुवहा कालिका भाङ्गी शुकाख्या नैचुलं फलम् ।

काकादनीं शृंगवेरं वर्षाभूं बृहतीद्वयम् ॥ २२ ॥

कोलमात्रैर्घृतप्रस्थं पचेदेभिर्जलार्द्धकम् ।

कटुष्णं पीतमेतद्विश्वासामयविनाशनम् ॥ २३ ॥

सौवर्चलयवक्षारकटुकव्योषचित्रकाः ।

वचाभयाविडंगैश्च साधितं श्वासशान्तये ॥ २४ ॥

( श्लो० २२ । २३ । २४ । ) सुवहा निर्गुडीभेदः । कालिका कृष्णागुरुः मांसी वा ( इति श० स्ता० ) । जलार्द्धकं द्विगुणजलमित्यर्थः ( इति नि० सं० ) ।



सुवहा ( निर्गुंडीका भेद सेफालिका ) कालिका ( कृष्णअगर ) भारंगी  
शुकरिणी वेतका फल काकादनी अदरक साँठी दोनों कटेली ॥ २२ ॥ इन  
सबको दो दो टंक प्रमाण लेकर प्रस्थभरघृतमें पकावे और दूना जल डाल दे  
यह निवाया निवाया घृत पीना श्वासरोगको नष्ट करताहै ॥ २३ ॥ अथवा काला  
नमक जवाखार कुटकी त्रिकटु और चित्रक वच हरड़े वायाविडंग इनसे  
सिद्ध कियाहुआ घृत भी श्वासरोगको शांत करताहै ॥ २४ ॥

गोपवल्ल्युदके सिद्धं स्यादन्यद्विगुणे घृतम् ।

तालीसतामलकयुग्राजीवतीकुष्ठसैधवैः ॥ २५ ॥

विल्वपुष्करपूतीकसौवर्चलकणाग्निभिः ।

पथ्यातेजोवतीयुक्तैः सर्पिर्जलचतुर्गुणम् ॥ २६ ॥

हिंनुपादयुतं सिद्धं सर्वश्वासहरं परम् ।

पंचैतानि हवीष्याहुर्भिषजः श्वासकांसयोः ॥ २७ ॥

गोपवल्ली ( सारिवा ) के दुगुने काथमें सिद्ध किया घृत श्रेष्ठ है अथवा  
तालीसपत्र तामलकी ( भूम्यामलकी ) वच जीवती कूट सैधानमक ॥ २५ ॥  
विल्व पुष्करमूल पूतिकरंज कालानमक पीपल चित्रक हरड़े तेजवती ये सब  
लेकर चौगुने पानीमें घृत पकावे और एक औपधसे चौथाई हांग डाल दे यह  
घृत ॥ २६ ॥ सब प्रकारके श्वासरोगको नष्ट करताहै ये ऊपर कहेहुए पांचों  
घृत वैद्योंने श्वास और खाँसीपर श्रेष्ठ कहेहैं ॥ २७ ॥

वासाघृतं कट्फलं च घृतं चात्र हितं भवेत् ॥ २८ ॥

तैलं दशगुणे सिद्धं भृंगराजरसे शुभे ।

सेव्यमानं यथान्यायं श्वासकासौ व्यपोहति ॥ २९ ॥

तथा वासा ( अडूसा ) का सिद्ध किया घृत अथवा कायफलसे सिद्ध  
किया घृत भी श्वासरोगमें हित होताहै ॥ २८ ॥ अथवा दशगुने भृंग-  
रके रसमें सिद्ध किया तैल भी यथोचित रीतिसे सेवन कियाहुआ श्वास  
और खाँसीको दूर करताहै ॥ २९ ॥

फलाम्ला विष्किररसाः स्निग्धाः प्रव्यक्तसैधवाः ।

एणादीनां शिरोभिर्वा कौलत्था वा सुसंस्कृताः ॥

हन्तुः श्वासं च कासं च संस्कृतानि पर्यासि च ॥ ३० ॥

विष्किर ( जीवों लवादि ) के मांसके रसोंमें फलोंकी खटाई डालकर चिक-  
नाई युक्त सैंधवसे नमकीन बनायेहुए देने श्रेष्ठ है अथवा हिरन इत्या-  
दिके शिरके रस अथवा कुलथीके रस संस्कार किये ( बघार दिये हुए )  
श्वास और कासको नष्ट करते हैं तथा वायुनाशक द्रव्योंसे संस्कार कियेहुए  
दूध भी श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥

तिनिशस्य च बीजानि कर्कटाख्या सुवर्चिका ।

दुरालभाऽथ पिप्पल्यः कटुकाख्या हरीतकी ॥ ३१ ॥

श्वाविन्मयूररोमाणि कोला मागधिका कणा ।

भाङ्गीत्वक्छृंगवेरं च शर्करा शल्लकांगजम् ॥ ३२ ॥

त्रिकंटकस्य बीजानि चूर्णितानि तु केवलम् ।

पंच श्लोकाद्विकारस्त्वेते लेह्या ये सम्यगीरिताः ॥

सर्पिर्मधुभ्यां ते लेह्याः कांसश्वासादितैर्नरैः ॥ ३३ ॥

तिनिश वृक्षके बीज काकड़ासींगी और सजीखार । तथा जवासा  
पीपल कुटकी और हरड़ेकी छाल ॥ ३१ ॥ तथा सेहके काँटे और मोरके  
पंख ( ये भस्म किये ) कोल ( बेर डल्लन मिश्रजी चव्य कहतेहैं ) मागधिका  
कणा ( छोटी पीपल । तथा भारंगी तज अदरख खांड शल्लका(शालवृक्ष) और  
गज ( नागकेशर ) ( कई शल्लकांगज शालका निर्यास मानतेहैं ) ॥ ३२ ॥ तथा  
केवल देशी गोखरूके बीज कूट ले ये पांच प्रयोग आधे २ श्लोकसे कहेगयेहैं  
ये शहद और घृत मिलाकर श्वास खाँसीके रोगियोंको चाटने चाहियें ॥ ३३ ॥

श्वासके अन्य प्रयोग ।

सप्तच्छदस्य पुष्पाणि पिप्पलीश्चापि मस्तुना ।

पिबेत्संचूर्ण्य मधुना धानाश्चाप्यथ भक्षयेत् ॥ ३४ ॥

( श्लो० ३२ ) श्वाविन्मयूररोमाणि इति । संजारुजीवस्य । सेह इति ख्यातस्य ।  
कंटकानि तथा मयूरपिच्छानि तानि भस्मीकृतानि ग्राह्याणि । कोला बदराणि ।  
डल्लनमते तु कोला चव्यम् । मागधिका कणा । मगधोद्धवा पिप्पली । शल्लकां  
गजं शल्लकावृक्षनिर्यासम् । केचित् शल्लकांगजं इति पठित्वा शल्लका शल्लकी ।  
गजं नागकेशरम् । ( इति नि० सं० )

( श्लो० ३४ ) धानाः भर्जितयवाः । तदुक्तं भावमिश्रेण “यवास्तु निस्तुषा भृष्टाः  
स्मृता धाना इति स्त्रियाम् ॥

अर्कौकुरैर्भाषितानां यवानां साध्वनेकशः ।  
 तर्पणं वा पिबेदेषां सक्षौद्रं श्वासपीडितः ॥ ३५ ॥  
 शिरीषकदलीकुंदपुष्पं मागधिकायुतम् ।  
 तंडुलांबुयुतं पीत्वा जयेच्छ्वासानशेषतः ॥ ३६ ॥

सप्तच्छद ( छतौना ) के फूल और पीपल इन्हें चूर्ण कर दहीके जलसे पीवे  
 अथवा शहदसे मिलाकर जौकी धानी चावे ॥ ३४ ॥ अथवा आखके कोमल  
 पत्तोंके रसकी जौओंको भावना देकर उनके सत्तू आदि अनेक पदार्थ शहद  
 मिलाके श्वास रोगवाला पीवे ॥ ३५ ॥ अथवा शिरस केला और कुंद इनके  
 फूल पीपल मिलाकर चावलोंके पानीसे पीवे यह सब प्रकारके श्वास रोगों-  
 को जीत लेताहै ॥ ३६ ॥

कोलमज्जस्तालमूलमृष्यचर्म मसीमपि ।  
 लिह्यात्क्षौद्रेण भाङ्गीं वा सर्पिर्मधुसमायुताम् ॥ ३७ ॥  
 निवैः कदंबबीजं वा सक्षौद्रं तंडुलांबुना ।  
 द्राक्षां हरीतकीं कृष्णां कर्कटारुखां दुरालभाम् ।  
 सर्पिर्मधुभ्यां विलिहन्ति श्वासान्सुदारुणान् ॥ ३८ ॥

बेरका गूदा ( या बेरकी मींगी ) तालमूली ( मुशली ) कृष्य ( एक  
 भांतिके मृग ) चर्मकी स्याही इन्हें शहदसे चाटे अथवा भारंगीको शहद  
 और घृत मिलाके चाटे ॥ ३७ ॥ नींव और कदंबके बीज शहद मिलाके  
 चावलोंके पानीसे पीवे ( कई "नीप" पाठांतर मानते हैं नीप पके कदंबबीज  
 ऐसा मानते हैं ) तथा मुनक्का हरड़े पीपल काकड़ासींगी और जवाँसा इन्हें  
 घृत और शहदके साथ चाटे यह दारुण श्वासरोगोंको नष्ट करताहै ॥ ३८ ॥

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां गुडं रास्नां कणां शठीम् ।  
 लिह्यात्तैलेन तुल्यानि श्वासातो हितभोजनः ॥ ३९ ॥  
 गवां पुरीषस्वरसं मधुमागधिकायुतम् ।

( श्लो० ३८ ) निवैः कदंबबीजं वा इति । निवैर्मिन्वबीजं कदंबबीजं न क्षौद्रयुतं  
 तंडुलांबुना पीतम् । अथवा निवैः इत्यत्र नीपं कदंबबीजं चेति पाठांतरम् । नत्र नीपं  
 पके कदंबबीजम् ।

लेहः श्वासेषु कासेषु वाजिनां वा शकृद्रसः ॥ ४० ॥

पांडुरोगेषु शोथेषु ये योगाः संप्रकीर्तिताः ।

श्वासकासापहास्तेपि कासघ्ना ये च कीर्तिताः ॥ ४१ ॥

भाङ्गी त्वक् त्र्यूषणं तैलं हरिद्रां कटुरोहिणीम् ।

पिप्पलीं मरिचं चंडां गोशकृद्रसमेव च ॥ ४२ ॥

तलकोटस्य बीजेषु पचेदुत्कारिकां शुभाम् ।

सेव्यमाना नि हंत्येषां श्वासानां सुदुस्तरान् ॥ ४३ ॥

हलदी मिरच दाख गुड रास्ना पीपल कचूर इनको समान लेकर पीसे और तैलमें मिलाकर चाटे और हित भोजन करे ॥ ३९ ॥ गौके गोबरका रस शहद और पीपल मिलाके श्वास और खाँसीमें चाटे अथवा घोड़ेकी लीदका रस शहद और पीपल मिलाके चाटे ॥ ४० ॥ जो प्रयोग पांडुरोगमें तथा शोथमें कहेहैं वे श्वास और खाँसीमें भी हित होतेहैं तथा खाँसीके प्रयोग भी श्वासमें हित होतेहैं ॥ ४१ ॥ तथा भारंगी तज त्रिकटु तैल हलदी कुटकी पीपल मिरच चंडा ( चोरक गंधद्रव्य ) और गोबरका रस इनका लेह चाटे ॥ ४२ ॥ तलकोट (कोई ताड बतातेहैं पर ठीक पता नहीं) केबीजोंकी लप्सी बनाकर सेवन करनेसे दुस्तर श्वास शीघ्र नष्ट होजातेहैं (तलकोटके विषयमें डल्लनमिश्रजीने कुछ भी नहीं लिखा कई चिलगोजे बतातेहैं और यह ठीक भी जचताहै कोई खसखस को ही तलकोट बीज मानतेहैं और इसका हलवा फायदा भी करताहै ॥ ४३ ॥

श्वासमें पथ्य और स्नेहस्वेदादि ।

पुराणसर्पिः पिप्पल्यः कौलत्था जांगला रसाः ।

सुरा सौवीरकं हिंगु मातुलंगरसो मधु ॥ ४४ ॥

द्राक्षामलकविल्वानि शस्तानि श्वासहिकिनाम् ।

श्वासहिक्रापरिगतं स्निग्धैः स्वेदैरुपाचरेत् ॥ ४५ ॥

युक्तैर्लवणतैलाभ्यां तैरस्य ग्रथितः कफः ।

स्वस्थो विलयनं याति मारुतश्चास्यं शाम्यति ॥ ४६ ॥

पुराना घृत पीपल कुलथीके रस जंगली जीवोंके मांसरस सुरा नामक मद्य सौवीर ( एक प्रकारकी कांजी ) हींग नींबूका रस और शहद ॥ ४४ ॥ मुनका ( या किसमिस या अंगूर ) आँवले बिल्व ये श्वास और हुचकीवालों

को हितकारक होतेहैं । और जिन्हें श्वास और हिकाका रोग हो उसे स्नेहन कराके स्वेद करावे ॥ ४५ ॥ और तैलमें संधानमक मिलाकर इसका उपयोग स्नेहनार्थ करे इससे उनका जमाहुआ नालियोंमें स्थितहुआ कफ विलायमान ( अर्थात् पतला ) होजाताहै और निकलजाता है तथा वायु भी शांत होजाता है ॥ ४६ ॥

स्निग्धं ज्ञात्वा ततश्चैवं भोजयित्वा रसोर्दनम् ।

वातश्लेष्मविबंधो वा भिषक्धूमं प्रयोजयेत् ॥ ४७ ॥

मनःशिलादेवदारुहरिद्राच्छदनामिषैः ।

लाक्षोरुवूकमूलैश्च कृत्वा वर्तीविधानतः ॥ ४८ ॥

सर्पिर्नवमधूच्छिष्टं शालनिर्यासजं तथा ।

शृंगवालसुरस्नायुत्वक्समस्तं गवामपि ॥ ४९ ॥

तुरुष्कशल्लकीनां च गुग्गुलोः पद्मकस्य च ।

एते सर्वे ससर्पिष्का धूमाः कार्या विज्ञानता ॥ ५० ॥

जब जाने कि रोगी स्नेहनसे स्निग्ध होगया तब मांसरस और भातसहित भोजन करावे और वायु कफ तथा विबंध हो तो वैद्य धूम ( धूमपान ) का उपयोग करावे ॥ ४७ ॥ मैनसिल देवदारु हलदी पत्रज और गुग्गल लाख रक्तएरंडकी जड़ इनकी विधिपूर्वक वर्ती बनावे ॥ ४८ ॥ अथवा नवीन घृत मोम शालका गोंद इनकी वर्ती बनाके धूमपान करे तथा गौंके सींग वाल सुरस्नायु और त्वचा इनको उपयुक्त करे ॥ ४९ ॥ तथा तुरुष्क ( श्रीवास ) और शल्लकीवृक्ष गुग्गल और पद्मास ये सब लेकर घृत मिलाकर जानकर वैद्य धूमपान करावे ॥ ५० ॥

वलीयसि कफग्रस्ते वमनं सविरेचनम् ।

दुर्बलं चैवं रुक्षे च तर्पणं हितमुच्यते ॥

जांगलैर्भ्रजैर्मांसैर्नृपैर्वीर्यैस्संस्कृतैः ॥ ५१ ॥

यदि चलवान् रोगीको कफ ग्रस्त करले ( कफ बढ़जावे श्वास हो ) तो उसे वमन करावे और विरेचन देवे और जो रोगी दुर्बल और रुख हो

( श्लो० ४८ ) मनःशिलादिभ्यः विधानतः पूर्वोद्विष्टविधानात् । वर्तीः कृत्वा भिषक् धूमं प्रयोजयेदित्यन्वयः । तुरुष्कः रक्तएरंडस्तस्य मूलैः ।

तो उसे जंगली जीवों या दुँबेके मांसके रसोंसे या जलकिनारेके जीवोंके मांसरससे जिनमें संस्कार दियाहुआ हो उनसे तर्पण करना हित होता है ॥ ५१ ॥

निदग्धिकां चामलकप्रमाणां हिंमवर्द्धयुक्तां मधुना सुयुक्ताम् ।

लिहन्नरः श्वासनिपीडितो हि श्वासं जयत्येव बलान्न्यहेन ॥ ५२ ॥

यथाग्निरिद्धः खलुकाष्ठसंवैर्ब्रजं यथा वा सुररार्जमुक्तम् ।

रोगास्तथैते खलु दुर्निवाराः श्वासश्च कासश्च विलंबिका च ॥ ५३ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

आँवलेके बराबर छोटी कटेली पीस ले उसमें आधाहींग मिलावे इसे शहद-के संग चाटे तो श्वाससे पीडित रोगी तीन दिनमें बलपूर्वक श्वास रोगको जीत लेवे ॥ ५२ ॥ जैसे लकड़ीके ढेरमें प्रविष्ट हुआ अग्नि और इंद्रका छोड़ा हुआ वज्र दुर्निवारण होतेहैं उसी भांति ये रोग श्वास कास हैं और विलंबिका भी निश्चय ही दुर्निवार होतेहैं ॥ ५३ ॥

यूनानीवाले श्वासरोगको "रबू" कहतेहैं और साधारण लोग इसे दमा कहतेहैं ॥ डाक्टरीमें इसे अस्थमा ( Asthma ) कहतेहैं और एक प्रकारके श्वास रोगको इमपाइजिमा Impiejima भी कहतेहैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकाया मुत्तरतन्त्रे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

## द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५२.

अथातः कासप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहाँसे अगाड़ी अब हम कास ( खाँसी ) के प्रतिषेध नामक अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ॥

उक्ता ये हेतवो नृणां रोगयोः श्वासहिक्रयोः ।

कासस्यापि हि तु ज्ञेयास्ते एवोत्पत्तिहेतवः ॥ १ ॥

जो हेतु मनुष्योंके श्वास रोग और हुचकीके पहले हमने वर्णन किये हैं प्रायः वेही कास ( खाँसी ) रोगके भी हेतु होतेहैं ( अर्थात् जिन विदाहभोजनादिसे श्वास और हुचकी पैदाहोतीहै उन्हींसे प्रायः खाँसी पैदा हो जाया करतीहै ॥ १ ॥

## खाँसीके तात्कालिक कारण और संप्राप्ति ।

धूमोपवाताद्भ्रजसंस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिपेवणाच्च ।

विमार्गगत्वादपि भोजनस्य वेगोवरोधात्क्ष्वैथोस्तथैव ॥ २ ॥

प्राणोह्युदानानुगतः प्रदुष्टः संभिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः ।

निरेति वक्रात्सहसा सदोषः कांसिः सं विद्धिद्विरुद्धाहृतस्तु ॥ ३ ॥

धुँवाँ लगनेसे धूलसे ( धुँवाँ और धूल श्वासके साथ कंठकी श्वास नलकामें घुसजानेसे ) परिश्रम करनेसे रुखा अन्न विशेष खानेसे तथा भोजन ( पानादि ) विपरीत मार्गमें ( श्वासकी नालीमें ) चलेजानेसे वेग ( मल मूत्रके ) तथा छींकके वेग रोकनेसे ॥ २ ॥ प्राणवायु उदानके अनुगत होकर दूषित होजाताहै तब फूटे काँसेकेसा ( धोंधों या खाँखाँ ) शब्द दोष सहित ( कफवायुसहित ) मुँहसे निकलताहै इसे वैद्य कास ( खाँसी ) कहतेहैं ॥ ३ ॥

( वक्तव्य ) तात्काल जो धुँवाँ धूल आदि या भोजन पानी आदि श्वास नलकामें चले जाने इत्यादिसे जो खाँसी आ जातीहै उसे धाँस कहतेहैं और यह शीघ्र अच्छी होजातीहै परंतु जो आरंभके हेतुओं ( श्वास हिक्काके कारणों विदाहि भोजनादि ) से कास रोग ( खाँसी ) होताहै वह तात्काल ही शांत नहीं होताहै इस उपरोक्त श्लोकसे श्वास और आहारके मार्ग जुड़े जुड़े स्पष्ट मालूम होतेहैं देखो हमारे शारीरिक स्थानके आरंभके चित्र ॥

## कास रोगकी संख्या ।

स वातपित्तप्रभवः कफाच्च क्षतात्तथाऽन्यः क्षयजोऽपरश्च ।

पंचप्रकारः कथितो भिषग्भिर्विवर्द्धितो यक्ष्मविकारकृत्स्यात् ॥

वह कास पांच प्रकारका होताहै वातज पित्तज और कफज तथा क्षतज ( यावसे या चाँट लगनेसे ) और क्षयसे इसे चारोंनि ऐसे पांच भौतिका कहतेहैं यह खाँसी रोग बढ़जानेपर राजयक्ष्मा उरःक्षत जैसे बड़ २ भयंकर विकार पैदा कर देताहै ॥ ४ ॥

## कासका पूर्वरूप ।

भविष्यत्तत्तस्य तु कंठकंभोज्योपिरोधो गलतालुलेपः ।

स्नानशय्योपम्यमरोचैकाग्निसादथै लिगानि भवन्त्यमुनि ॥ ५ ॥

( टीका ) भविष्यत्तत्तस्य इति । भोज्यमप्यन्नमप्यन्नं कंठं गलं शय्यं । अथवा भोज्यमप्यन्नमप्यन्नं शय्यं । शय्यं शय्यादिभ्यो अन्ति । शय्यं भवति ।



तो उसे जंगली जीवों या ढुँबेके मांसके रसोंसे या जलकिनारेके जीवोंके मांसरससे जिनमें संस्कार दिया हुआ हो उनसे तर्पण करना हित होता है ॥ ५१ ॥

निदग्धिकां चामलकप्रमाणां हिग्वर्द्धयुक्तां मधुना सुयुक्ताम् ।  
लिहन्नरः श्वासनिपीडितो हि श्वासं जयत्येव बलान्त्र्यहेण ॥ ५२ ॥  
यथाग्निरिद्धः खलुकाष्ठसंवेवञ्च यथा वा सुररार्जमुक्तम् ।  
रोगास्तथैते खलु दुर्निवाराः श्वासश्च कासश्च विलंबिका च ॥ ५३ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

आँवलेके बराबर छोटी कटेली पीस ले उसमें आधाहींग मिलावे इसे शहद-  
के संग चाटे तो श्वाससे पीडित रोगी तीन दिनमें बलपूर्वक श्वास रोगको जीत  
लेवे ॥ ५२ ॥ जैसे लकड़ीके ढेरमें प्रविष्ट हुआ अग्नि और इंद्रका छोड़ा हुआ  
वज्र दुर्निवारण होतेहैं उसी भांति ये रोग श्वास कास हैं और विलंबिका भी  
निश्चय ही दुर्निवार होतेहैं ॥ ५३ ॥

यूनानीवाले श्वासरोगको "रबू" कहतेहैं और साधारण लोग इसे दमा  
कहतेहैं ॥ डाक्टरोंमें इसे अस्थमा ( Asthma ) कहतेहैं और एक प्रकारके श्वास  
रोगको इमपाइजिमा Impiejima भी कहतेहैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

## द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५२.

अथातः कासप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहाँसे अगाड़ी अब हम कास ( खाँसी ) के प्रतिषेध नामक अध्यायका  
व्याख्यान करतेहैं ॥

उक्ता ये हेतवो नृणां रोगयोः श्वासहिक्रयोः ।

कासस्यापि हि तु ज्ञेयास्ते एवोत्पत्तिहेतवः ॥ १ ॥

जो हेतु अनुष्योंके श्वास रोग और हुचकीके पहले हमने वर्णन किये हैं  
प्रायः वेही कास ( खाँसी ) रोगके भी हेतु होतेहैं ( अर्थात् जिन विदाहभो-  
जनादिसे श्वास और हुचकी पैदाहोतीहै उन्हींसे प्रायः खाँसी पैदा हो  
जाया करतीहै ॥ १ ॥

## खाँसीके तात्कालिक कारण और संप्राप्ति ।

धूमोपर्याताद्भजसंस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च ।

विमार्गगत्वादपि भोजनस्य वेगावरोधात्क्ष्वेथोस्तथैव ॥ २ ॥

प्राणोह्युदानानुगतः प्रदुष्टः संभिन्नकांस्यस्वनतुल्यवोषः ।

निरेति वक्रात्सहसा सदोषः कांसः सं विद्वद्भिरुदाहृतस्तु ३ ॥

धुँवाँ लगनेसे धूलसे ( धुँवाँ और धूल श्वासके साथ कंठकी श्वास नलकामें सजानेसे ) परिश्रम करनेसे रुखा अन्न विशेष खानेसे तथा भोजन ( पानादि ) परीत मार्गमें ( श्वासकी नालीमें ) चलेजानेसे वेग ( मल मूत्रके ) तथा गंधके वेग रोकनेसे ॥ २ ॥ प्राणवायु उदानके अनुगत होकर उत्पन्न होता है तब फूटे काँसेकेसा ( धोंधों या खाँखाँ ) शब्द दोष सहित कफवायुसहित ) मुँहसे निकलता है इसे वैद्य कास ( खाँसी ) कहते हैं ॥ ३ ॥

( वक्तव्य ) तात्काल जो धुँवाँ धूल आदि या भोजन पानी आदि श्वास नलकामें चले जाने इत्यादिसे जो खाँसी आ जाती है उसे धाँस कहते हैं और यह शीघ्र अच्छी होजाती है परंतु जो आरंभके हेतुओं ( श्वास हिकाके कारणों ) विदाहि भोजनादि ) से कास रोग ( खाँसी ) होता है वह तात्काल ही शांत नहीं होता है इस उपरोक्त श्लोकसे श्वास और आहारके मार्ग जुड़े जुड़े स्पष्ट मालूम होते हैं देखो हमारे शारीरिक स्थानके आरंभके चित्र ॥

## कास रोगकी संख्या ।

स वातपित्तप्रभवः कफाच्च क्षतात्तथाऽन्यः क्षयजोऽपरश्च ।

पंचप्रकारः कथितो भिषग्भिर्विवर्द्धितो यक्ष्मविकारकृतस्यात् ४ ॥

वह कास पाँच प्रकारका होता है वातज पित्तज और कफज तथा क्षतज ( चावले या चाँट लगनेसे ) और क्षयसे इसे वैद्योंने ऐसे पाँच भाँतिका कहा है यह खाँसी रोग बढ़जानेपर राजयक्ष्मा उरःक्षत जैसे बड़े २ भयंकर विकार पैदा कर देता है ॥ ४ ॥

## कासका पूर्वरूप ।

भविष्यत्तस्तस्य तु कंठकंठश्लेष्मोपशोथो गेलतालुलेपः ।

तत्रावर्द्धेयम्यमरोचकग्निसादश्च लिङ्गानि संन्यसृनि ॥ ५ ॥

( भा० ५ ) भविष्यत्तस्य इति । भविष्यस्य भविष्यत् कंठे राव इत्यर्थः । अथवा भविष्यत्तस्य उपरोक्तः आरंभकारित्वं अग्निः इत्यर्थः ।

जब यह कास रोग होनेवाला होता है तब पूर्वरूपमें ये लक्षण होते हैं कंठमें खाजसी होना भोजन कुछ रुकना गल और तालुमें लेपसा रहना अपनी आवाज बिगड़ जाना ( भारी या खखराईसी होना ) अरुचि और अग्नि मंदता ॥ ५ ॥

### वातकी खाँसीके लक्षण ।

हृच्छंखमूर्द्धादरपाश्वशूली क्षामाननः क्षीणबलस्वरौजाः ।

प्रसक्तवेगश्च समीरणेन कासेत्तु शुष्कं स्वरभेदयुक्तः ॥ ६ ॥

हृदय कनपटी शिर और पँसवाडोंमें दरद हुवा करे मुखकी कांति बिगड़जावे बल ओज और स्वर ये क्षीण होजावें और ठैर ठैरके खाँसीका वेग उठे और सूखा खाँसी हो अवाज बैठजावे ये लक्षण वायुकी खाँसीके होते हैं ॥ ६ ॥

### पित्तकी खाँसीके लक्षण ।

उरोविंदाहज्वरवक्रशोषैरभ्यर्दितस्तित्तमुखस्तृषार्तः ।

पित्तैर्न पीतानि वमेत्कटूनि कासेत्सपांडुः परिदंष्ट्रमानः ॥ ७ ॥

पेट छातीमें जलन रहे ज्वर होआवे मुँह सूखा रहे और चरपरापन मालूम दे तृषा ज्यादा हो तथा खाँसीमें कभी पीला पीला चरपरासा पित्त गिरे चेहरा पीला मालूम पड़े और गरमी रहे ये लक्षण पित्तकी खाँसीके होते हैं ॥ ७ ॥

### कफकी खाँसीके लक्षण ।

विलिप्यमानेन मुखेन सीदञ्छिरोरुगार्तः कफपूर्णदेहः ।

अभक्तरुग्गौरवसादयुक्तः कासेद्भृशं सांद्रकफः कफेन ॥ ८ ॥

मुख लिपासा रहे थकान ( शिथिलता ) हो शिरमें दरद हो शरीर कफसे भरासा मालूम हो अरुचि हो भारीपन और ग्लानि हो गाढा कफ खासनेसे आवे ये लक्षण कफकी खाँसीके हैं ॥ ८ ॥

### क्षतज कास ।

वैक्षोऽतिमात्रं विहतं च यस्य व्यायामभाराध्ययनाभिघातैः ।

विश्लिष्टवक्षाः स नरः सरक्तं घृविर्त्यभीक्ष्णं क्षतजः स उक्तः ॥ ९ ॥

( श्लो० ९ ) विश्लिष्टवक्षाः । विदीर्णवक्षःस्पृष्ट इति ।

परिश्रम करने ज्यादा बोझा उठानेसे बहुत चिल्लाकर पढ़नेसे चोट आदिके लगनेसे जिसके वक्षःस्थल ( छाती फेफड़ों ) को पीडा ( सदमा ) पहुँचे और उनमें क्षत ( जखम ) होजावे तब मनुष्यके खाँसनेमें रुधिर मिला कफ विशेष आवे यह क्षतज कास ( खाँसी ) कहलाता है ॥ ९ ॥

अतिव्यवायभाराध्वगुक्ताश्वगजविग्रहैः ।

रूक्षस्योरैःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमावेहेत् ॥ १० ॥

सं पूर्वं कांसते शुष्कं तर्तः छी<sup>१०</sup> वेत्सशोणितम् ।

कंठेन रुजताऽत्यर्थं विभिन्ने नैव<sup>११</sup> चोरसा ॥ ११ ॥

सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ।

दुःखस्पर्शेन शूलेन भेद पीडाभितापिना ॥ १२ ॥

पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यपीडितः ।

पारावत ईवाकूर्जन्कासवेगात्क्षतोद्भवात् ॥ १३ ॥

अत्यंत मैथुन करनेसे बोझा उठानेसे मार्ग अधिक चलनेसे थोड़े हाथ आदिके संग बल करनेसे रूखे मनुष्यके डर ( छाती फेफड़ों ) को वायु करड़ा करके उसमें जखम डाल देताहै जिससे खाँसी आतीहै ॥ १० ॥ पहले ( जबतक जखम न पड़े किंतु छातीके फेफड़ोंमें करड़ापन या सूझना हो ) मनुष्यको सूखी खाँसी रहतीहै और फिर छाती फेफड़ोंमें जखम होजावे तब मनुष्यके खखारके संग रुधिर आने लगताहै कंठमें वेदना ( खुरदराहटसी ) होतीहै और छातीमें चीरनेकेसी पीडा मालूम पड़ती है ११ ॥ और सूई चुभनेकेसी तीक्ष्ण पीडा और शूल होताहै और इतनी वेदना हो कि हाथ नहीं लगाया जावे ( या शूल सही न जावे ) भेदन पीडा और अभिताप ( पवराहट ) ये भी हों ॥ १२ ॥ संधि ( जोड़ जोड़ ) दूखें ज्वर हो श्वास होजावे तृषा अधिक हो स्वर विगड़जावे जिससे मनुष्य कञ्चुतरकी तरह कुड-कुडावे ये सब क्षतज कासमें होतेहैं ॥ १३ ॥

( वक्तव्य ) इसीप्रकार डाक्टरलोग खाँसीसे न्यूमोनिया होजाना कहतेहैं उसमें ( न्यूमोनियामें ) प्रायः सब ये ही लक्षण होतेहैं ॥

## क्षयजखाँसी ।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्रेगनिग्रहात् ।

घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मर्लाः ।

कुपिताः क्षयजं कांसं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ॥ १४ ॥

विषम भोजनसे असात्म्य ( बेमाफकतके ) भोजनसे अत्यंत मैथुन करनेसे वेगोंके रोंकनेसे अत्यंत घृणा करनेसे शोच करनेसे अनुष्योंकी जठराग्निमें विकार होजाता है जिससे फिर वायु पित्त कफ ये तीनों दोष कुपित होके क्षयज कास पैदा करते हैं यह क्षयज कास देहका क्षय करनेवाला होताहै ( अर्थात् विषम भोजनादिसे जब जठराग्नि बिगड़जातीहै तब रस ठीक नहीं बनता और जब रस नहीं बने तब रुधिर आदि सब धातु शुक्र पर्यंतमें क्षय पैदा होजाताहै जिससे क्षयज खाँसी पैदा होती है यह खाँसी विशेष करके वीर्यक्षयमें होतीहै ) ॥ १४ ॥

## इसके लक्षण ।

स गात्रशूलज्वरदाहमोहान्प्राणक्षयं चोपलभेत कांसी ।

शुष्कं विनिष्ठीवति दुर्बलंस्तु प्रक्षीणमांसो रुधिरं संपूर्यम् ॥ १५ ॥

इस क्षयज खाँसीके रोगीके शरीरमें शूल ज्वर दाह मोह ये होतेहैं और इस खाँसीवालेका बल क्षीण होजाताहै दुर्बल होकरसूखे झागसे थूंकताहै और जब मांस क्षीण होने लगे तब पीप मिला रुधिर खखारमें आताहै ॥ १५ ॥

तं सर्वलिङ्गं भृशदुश्चिकित्स्यं चिकित्सितज्ञाः क्षयजं वदन्ति ।

वृद्धत्वमासाद्य भवत्यथो वै याप्यं तस्माद्भिषजंस्तु कांसम् ॥ १६ ॥

यह क्षयज खाँसी सब दोषोंसे होतीहै इसमें सब दोषोंके लक्षण होतेहैं इससे इसेवैद्य दुश्चिकित्स्य कहतेहैं और जब यह वृद्धत्वको प्राप्त होकर होतीहै इसे वैद्य याप्य कहतेहैं ॥ १६ ॥

## खाँसीके सामान्य प्रयोग ।

शृंगीवचाकट्फलकतूणाब्धान्याभयाभाङ्गचर्मराह्विश्वम् ।

उष्णांबुना हिंयुतं तु पीत्वा वद्धास्यमप्याशुं जहाति कांसम् ॥ १७ ॥

( श्लो० १४ ) यद्यपि सामान्यक्षयशब्देन रसादिक्षयः प्राप्तस्तथाऽप्यत्र शुक्रक्षयो ग्राह्यः ( इति नि० सं० ) ।

फलत्रिकव्योषविडंगशृंगीरास्नावचापन्नकदेवकाष्ठैः ।

लेहः समैः क्षौद्रसिताघृताक्तः कांसं निहन्यादचिरादुदीर्णम् १८॥

पथ्यां सितामामलकानि लाजां समागर्धीं चापि विचूर्ण्य  
शुंठीम् । सर्पिर्मधुभ्यां विलिहीत कासी ससैधवां कोष्णज-  
लेन कृष्णाम् ॥ १९ ॥

काकड़ासींगी वच कायफल कत्तूण ( एक प्रकारकी घास कई रोहिप तृण  
वृताते हैं ) नागरमोथा धनियाँ हरड़े भारंगी देवदारु और सोंठ इनमें ही  
मिलाके गरम पानीके संग पीवे इससे बहुत दिनकी खाँसी भी शीघ्र जाती रहे  
॥ १७ ॥ अथवा त्रिफला, त्रिकटु विडंग काकड़ासींगी रास्ना वच पद्मास और  
देवदारु इन सबको समान भाग लेकर शहद मिश्री और घृत मिलाकर  
अवलेह बनावे यह बड़ीहुई खाँसीको भी शीघ्र नष्ट करता है ॥ १८ ॥ तथा  
हरड़े मिश्री आँवले और धानकी खील इन्हें घृत शहद मिलाके चाटे अथवा  
पीपल और सोंठ मिलाके घृत शहदसे चाटे अथवा पीपल सैधानमक इन्हें  
गरम पानीसे लेवे ॥ १९ ॥

खादेद्रुडं नागरपिप्पलीभ्यां द्राक्षां च सर्पिर्मधुनावलिह्यात् ।

द्राक्षां सितां मागधिकां च तुल्यां सशृंगवेरं मधुकंतुगां च ॥ २० ॥

लिह्याद्घृतक्षौद्रयुतां समांशां सितोपलां वा सरिचांशयुक्ताम् ।

धात्रीकणाविश्वसितोपलाश्च संचूर्ण्य मंडेन पिवेच्च दध्नः ॥ २१ ॥

अथवा सोंठ और पीपल गुड ( पुराने गुड ) में मिलाके खावे अथवा  
मुनक्काको घृत शहदके संग पीसके चाटे अथवा मुनक्का मिश्री पीपल  
इन्हें समान लेकर या अदरख मुलेठी वंशलोचन इन्हें लेके शहद और  
घृतसे चाटे ॥ २० ॥ अथवा शहद घृत मिश्री इनमें चौथाई मिरच मिलाके  
चाटे अथवा आँवले पीपल सोंठ मिश्री इन्हें पीस चूर्ण बना दहीके  
मांडसे पीवे ॥ २१ ॥

हरेणुकां मागधिकां च तुल्यां दध्नां पिवेत्कासगदाभिभूतः ।

उभे हरिद्रे सुरदारु शुंठीं गायत्रिसारं च पिवेत्समांशम् ॥ २२ ॥

वस्तस्य मूत्रेण सुखांबुना वा दंतीं द्रवंतीं च सतिल्यकांशम् ।

भृष्टानि सर्पीष्यथ वादराणि खादेत्पलाशानि ससैधवानि ॥ २३ ॥

कोलप्रमाणं प्रपिबेद्धि हिंगु सौवीरकेणाम्लरसेन वापि ।

क्षौद्रेण लिह्यान्मरिचानि वाऽपि भार्ज्जीवचारिङ्गुकृता च वर्तिः ॥ २४ ॥

हरेणुका पीपल इन्हें बराबर लेकर खाँसीका रोगी दहीके संग पीवे अथवा दोनों हलदी देवदारु सोंठ खैरसार इन्हें बराबर लेकर ॥ २२ ॥ बकरेके मूत्रसे पीवे । अथवा दंती द्रवंती और चौथाई लोध मिलाकर गरम पानीसे पीवे अथवा बेरीके पत्तोंको घृतमें भूनकर सेंधानमक मिलाके खावे ॥ २३ ॥ अथवा कोल प्रमाण हींगको सौवीर ( कांजी ) से या अम्लरससे पीवे ( इस समय इसकी मात्रा कम चाहिये चने बराबर ही बहुत ) अथवा काली मिरचोंको शहदेके संग चाटे अथवा भारंगी वच और हींग इनकी बत्ती बनाकर ( धूमपान करे कई ऐसा अर्थ करतेहैं कि इनकी गोली बनाकर खावे ) ॥ २४ ॥

खाँसीमें धूमपान ।

धूमे प्रशस्ता घृतसंप्रयुक्ता वेणुत्वगेलांलवणैः कृता च ॥ २५ ॥

मुस्तेङ्गुदीत्वङ्मधुकाह्वमांसीमनःशिलाैश्छंगलांबुपिष्टैः ।

विधायै वर्तिः स पयोनुपानं धूमं पिबेद्वातबलासकासी ॥ २६ ॥

वाँसकी छाल इलायची नमक इनकी बत्ती बना घृत मिलाके अथवा नागर-मोथा हिङ्गोट तज मुलेठी जटामांसी मैनसिल और हरताल इन्हें बकरेके मूत्रमें पीसकर बत्ती बनाके ( घृत चुपड़ ) धूमपान करे ऊपर दूध पीवे यह धूमपान वायु और कफकी खाँसीमें श्रेष्ठ है ॥ २५ ॥ २६ ॥

पिबेच्च सीधुं मरिचान्वितं वा तेनाशु कासं शममभ्युपैति ।

द्राक्षांबुमंजिष्टसुराह्वयाभिः क्षीरं शृतं माक्षिकसंप्रयुक्तम् ॥ २७ ॥

निदिग्धिकानागरपिप्पलीभिः खादेच्च मुद्गान्मधुना सुसिद्धान् ।

उत्कारिकां सर्पिषि नागराढ्यां पक्त्वा समूलैश्छुटिकोलपत्रैः ।

एभिर्निषेवेत कृतां च पेयां तन्वीं सुशीतां मधुना विमिश्राम् ॥ २८ ॥

अथवा सीधु ( मद्य ) काली मिरच मिलाके पीवे इससे शीघ्र ही खाँसी ( कफकी खाँसी ) शांत होजातीहै । अथवा मुनक्का नेत्रवाला मंजीठ और

( श्लो० २४ ) अस्य श्लोकस्य चतुर्थपादस्यान्वयो त्रिमेण श्लोकेन सह कार्यः । यथा “ भार्ज्जीवचारिङ्गुकृता च वर्तिः घृतसंप्रयुक्ता धूमे प्रशस्ता ” इत्यन्वयः । अथवा केचिदेवमाहुः—भार्ज्जीवचारिङ्गुकृतां च वर्तिं गुटिकामपि क्षौद्रेण लिह्यात् ।



देवदारु इनसे दूध पकाकर उसमें शहद मिलाके पीवे ॥ २७ ॥ अथवा छोटी कटेली सोंठ पीपल इनके काथसे मूँग पकाकर शहदके संग खावे अथवा सोंठ और पीपलामूल इलायची और कोलपत्र ( पत्रज ) ( कई बेरीके पत्ते कहतेहैं ) इनके योगसे हलवा बनाकर खावे अथवा ये ही डालकर पतली पेया बनावे उसे ठंडी करके शहद मिलाके पीजावे ( लप्सी या पेया गोधूमादि धान्यों या तंडुलादिकी यथायोग्य बनावे उसमें उपरोक्त औषधोंका योग कर दे ) ॥ २८ ॥

### वायुकी खाँसीका यत्न ।

यत्प्लीहिं सर्पिर्विहितं षडंगं तद्वातकांसं जयति प्रसह्य ।

विदारिगंधादिकृतं घृतं वा रसेन वा वासकजेन पक्कम् ॥ २९ ॥

विरेचनं स्नेहिकमत्राचोक्तमास्थापनं चाप्यनुवासनं च ।

धूमं पिवेत्स्नेहिकमप्रमत्तः पिवेत्सुखोष्णं घृतमेव चात्र ॥ ३० ॥

हिता यवाग्वश्च रसेषु सिद्धाः पयांसि लेहाः सघृतास्तथैव ॥ ३१ ॥

जो प्लीह रोगमें षडंग घृत कहाहै वह वायुकी खाँसीको बलपूर्वक नष्ट करताहै अथवा विदारिगंधादिक गणसे सिद्ध किया या अट्ठसेके रससे सिद्ध किया घृत भी श्रेष्ठ है ॥ २९ ॥ विरेचन यहाँ स्नेहसहित देना उचित है और आस्थापन तथा अनुवासनवस्ति करना ठीक है तथा सावधान होकर स्नेहोंके धूमपान करना तथा गरम घृत पीना भी श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥ तथा मांसके रसोंमें पकाईहुई यवागू पिलाना या घृतयुक्त दूध या अवलेह भी श्रेष्ठ होतेहैं ॥ ३१ ॥

### कफज खाँसीका यत्न ।

प्रच्छर्दनं कायशिरोविरेकास्तथैव धूमाः कवलयहाश्च ।

उष्णाश्च लेहाः कटुका निहन्युः कफं विशेषेण विशोपणं वा ॥ ३२ ॥

कटुत्रिकं चापि वदन्ति पथ्यं घृतं कृमिघ्नस्वरसे विपक्कम् ।

निर्गुण्डिपत्रस्वरसे विपक्कं सर्पिः कफोत्थं विनिहन्ति कांसम् ॥ ३३ ॥

पाठाविडव्योपविडंगसिधुत्रिकंटरास्त्राहुतभुग्वलाभिः ।

शृंगीवचांभोधरदेवदारुदुरालभाभाङ्गर्यभयाशठीभिः ॥ ३४ ॥

( श्लो० ३९ ) प्रसह्य बलेन इत्यर्थः ।

सम्यग्विपक्वं द्विगुणेन सर्पिर्निदग्धिकायाः स्वरसेनै चैतत् ।

ईवासाग्निसादस्वरभेदभिन्नान्निहंत्युदीर्णानपि पंचं कासान् ॥३५॥

वमन कराना देहका और शिरका विरेचन करना धूमपान और उष्ण कवल धारण करना तथा ऐसे ही अवलेह चाटना तथा कटुक ( चरपरे ) द्रव्य सेवन करना विशेष करके शोषण द्रव्योंका उपयोग ये सब यत्न कफको ( कफज कासको ) हरनेवाले हैं ॥ ३२ ॥ त्रिकटु भी इसमें पथ्य कहतेहैं तथा वायविडंगके स्वरसमें पकायाहुआ घृत अथवा सिंहालूके पत्तोंके रसमें पकाया घृत कफकासको नष्ट करदेताहै ॥ ३३ ॥ अथवा पाठा विडनमक त्रिकटु विडंग संधानमक गोखरू रास्ना चित्रक खरेटी काकड़ासींगी वच मोथा देवदारु दुरालभा ( जवाँसा ) भारंगी हरड़ और कचूर इन सबको लेकर सबसे दूना छोटी कटेलीका रस डालकर घृत पकावे यह घृत श्वासरोगों मंदाग्नि स्वरभेद तथा भिन्नहृण ( क्षतजों ) ( अथवा स्वरभंगके भेदों ) को तथा पाँचों प्रकारके उग्र कासों ( खाँसी ) को नष्ट करदेताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

**पित्तजखाँसीके यत्न ।**

विदारिगंधोत्पलसारिवादीन्निःकथ्य वर्गान्मधुकं च कृत्स्नम् ।

घृतं पंचेदिक्षुरसांबुदुग्धैः काकोलिवर्गे च सर्शकैरं तत् ।

प्रातः पि वेत्तिपित्तकृते च कासे रतिप्रसूते क्षयजे च कासे ॥३६॥

खजूरभांगीमगधापियालमधूलिकैलासलकैः समंशैः ।

चूर्णं सिताक्षौद्रघृतप्रगाढं त्रीन्हंति कासानुपगुज्यमानम् ॥३७॥

विदारिगंधादि गण उत्पलादि और सारिवादिगण मधुरगण सब इनका काथ बनाके तथा ईखका रस जल और दूध भी डाले तथा काकोल्यादि गणका कल्क डालकर घृत पकालेवे इसे नित्य प्रभात मिश्री मिलाकर पान करे यह घृत पित्तकी खाँसीको तथा अति मैथुनसे उपजी क्षयज खाँसीको दूर करताहै ॥ ३६ ॥ तथा खजूर ( खजूरिये ) भारंगी पीपल चिरोंजीके ऊपरका खाद्य पदार्थ मधूलि ( सूर्वा कोई गोधूम और कोई मर्कटक कहतेहैं ) इलायची आँवले समान लेकर चूर्ण बनावे इसे मिश्री शहद और घृतमें सान कर खावे यह तीनों प्रकारकी खाँसीको दूर करताहै ॥ ३७ ॥

( श्लो० ३६ ) रतिप्रसूते अतिमैथुनजन्ये ।

## क्षतज और क्षयज खाँसीकेयत्न ।

रक्ताहरिद्रांजनवह्निपाठामूर्वापकुल्या विलिहेत्समांशाः ।

क्षौद्रेण कासे क्षतजे क्षयोत्थे पिवेद्घृतं चक्षुरसे विपक्वम् ॥३८॥

चूर्णं पिवेच्चामलकस्य वापि क्षीरेण पक्वं सघृतं हिताशी ।

चूर्णानि गोधूमयवोद्भवानि काकोलिवर्गश्च कृतः सुसूक्ष्मः ॥३९॥

कासेषु पेयस्त्रिषु कासवद्भिः क्षीरेण सक्षौद्रघृतेन वाऽपि ।

गुडोदकं वा कथितं पिवेद्धि क्षौद्रेण शीतं मरिचोपदंशम् ॥४०॥

मंजीठ हलदी अंजन ( रसांजन कोई सौवीरांजन कहतेहैं ) चित्रक पाठा मूर्वा पीपल इन्हें समान भाग लेके शहद मिलाकर क्षतज और क्षयज खाँसीमें चाटे अथवा ईखके रसमें पकाये हुए घृतको पीवे ॥ ३८ ॥ तथा आँवलोंके चूर्णको दूधमें पकावे फिर उसे घृतयुक्त करके पान करे और हित भोजन करे अथवा गेहूँ और जौका चूर्ण ( रवा ) और काकोल्यादि गणका महीन चूर्ण इन्हें दूधसे ( दूधमें पकाके ) शहद और घृत मिलाके तीनों प्रकारके ( पित्तज क्षतज और क्षयज ) खाँसीके रोगमें पीना उचित है अथवा गुडोदक ( गुड का काथ ) ठंडा करके शहद डालकर काली मिरच मिलाके पीवे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

## कल्याण गुड ।

प्रस्थत्रयेणामलकीरसस्य शुद्धस्य दत्वाद्धेतुलां गुडस्य ।

चूर्णाकृतैर्ग्रेथिकचव्यजरिव्योपेभकृष्णाहवुपाजमोदैः ॥ ४१ ॥

विडंगसिंधुत्रिफलायवानीपाठान्निवान्यैश्च पिचुप्रमाणैः ।

दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि चाष्टावष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ॥४२॥

तं भक्षयेदक्षफलप्रमाणं यथेष्टं चेष्टं त्रिसुगंधियुक्तम् ।

अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः सन्वातकासस्वरभेदशोषाः ॥ ४३ ॥

शाम्यन्ति चायं चिरमंतरमेहतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः ।

स्त्रीणां च वय्यामयनाशनः स्यात्कल्याणको नाम गुडः प्रतीतः ॥४४॥

आँवलो का रस तीन प्रस्थ और स्वच्छ गुड आधा तुला लेवे और पीपलामूल चव्य जीरा त्रिकटु गजपीपल हाऊबेर अजमोदा ॥ ४१ ॥ विडंग सैंधानमक त्रिफला अजवायन पाठा चित्रक धनियाँ ये सब पित्तु ( कर्ष कर्ष ) प्रमाण लेकर चूर्ण करले और आठ पल निशोध लेके पीस ले और आठ पलही तैल लेवे और विधिसे पकालेवे ॥ ४२ ॥ और दालचीनी इलायची तेजपात ये यथारुचि डाले और इसमेंसे एक कर्ष भरके अनुमान नित्य खावे इससे ग्रहणीके सब विकार श्वास खांसी स्वरभेद और क्षय ये रोग सब दूर होजाते हैं ॥ ४३ ॥ और जठराग्निको तथा नष्ट हुए पुरुष सत्वको भी यह बढाताहै तथा स्त्रियोंके बंध्यापनको नष्ट करताहै यह कल्याण नामक गुड कहाहै ॥ ४४ ॥

## अगस्त्यावलेह ।

द्विपंचमूलेभकणात्मगुप्ताभाङ्गीशठीपुष्करमूलविश्वान् ।

पाठामृताग्रंथिकशंखपुष्पीरास्नाय्यपामार्गबलायवासान् ॥ ४५ ॥

द्विपालिकान्नस्य यवाढकं च हरीतकीनां च शतं गुरूणाम् ।

द्रोणे जलस्याढकसंगुते च काथे कृते पूतचतुर्थभागे ॥ ४६ ॥

पंचेचुलां शुद्धगुडस्य दत्त्वा पृथक्च तैलात्कुडवं घृताच्च ।

चूर्णं च तावन्मगधोद्भवाया देयं च तस्मिन्मधु सिद्धशीते ॥ ४७ ॥

रसायनात्कैलकर्मतो विलिङ्ग्याद्वै चर्भये नित्यमर्थाशु हन्यात् ॥

तद्राजयक्ष्मग्रहणीप्रदोषशोफाग्निमांद्यस्वरभेदकासान् ॥ ४८ ॥

पांड्वामयश्वासशिरोविकारान्हृद्रोगहिक्राविषमज्वरांश्च ।

मेधाबलोत्साहमतिप्रदं च चर्कार चैतद्भगवानगस्त्यः ॥ ४९ ॥

दशमूल गजपीपल केवांच भारंगी कचूर पुष्करमूल सोंठ पाठा गिलोय पीपलामूल शंखपुष्पी रास्ना चित्रक आंगा खरेटी और जवाँसा ॥ ४५ ॥ ये सब दो २ पल लेकर चूर्ण करे और जौ एक आठक ले और हरड़े बडीबडी १०० लेवे इन ( यव और हरीतकी ) को द्रोणभर पानीमें सिजावे चतुर्थांश रहेपर छान ले ॥ ४६ ॥ फिर शुद्ध गुड एकतुला लेकर इसमें पकावे और ४ पल तैल ( तिलका ) और ४ पल घृत और ४ पल ही पीपलका चूर्ण डाले वे हरड़े भी डालदे और जब सिद्ध होके ठंढा हो तब इतना ही शहद डाल दे ॥ ४७ ॥

इस रसायनमेंसे दो हरड़े नित्य खावे और उस लेहमेंसे भी चाट लिया करे यह राजयक्ष्मा ग्रहणी के दोष शोथ मंदाग्नि स्वरभंग और खाँसी इन सबको नष्ट करे ॥ ४८ ॥ तथा पांडुरोग श्वास शिरके विकार हृद्दोग हुचकी और विषम इन्हें भी नष्ट करे तथा बुद्धि बल उत्साह और धारणा शक्ति इन्हें बढ़ावे यह रसायन प्रयोग भगवान् अगस्त्य ऋषिने निर्माण किया ॥ ४९ ॥

कुलीरशुक्तीचटकैणलांवात्रिःकाथ्य वैर्गैर्मधुरैस्तथान्यैः ।

पचेद्घृतं तत्तु निषेव्यमाणं हन्यात्क्षतोत्थं क्षयजं च कासम् ॥ ५० ॥

शतावरीनागबलावलादिभिर्घृतं विधेयं च हिताय कासिनाम् ५१

इत्युत्तरतन्त्रे द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

केकड़ें जलकी सीप चिड़े हिरन लवे इन्हें तथा अन्य मधुरवर्ग का-कोल्यादि गण इन सबका काथ करके घृत पकावे इस घृतका सेवन करनेसे क्षतज और क्षयज खाँसी नष्ट होजातीहै ॥ ५० ॥ तथा शतावरी नागबला ( गुल-शकरी ) बला ( खरेटी ) ( और आदिशब्दसे अतिबला महाबला भी लेनी ) इनसे सिद्ध किया हुआ घृत खाँसीके रोगवालोंके लिये हितकारक है ॥ ५१ ॥

यूनानी हकीम खाँसीको सुआल या मुरफा कहतेहैं ।

और डाक्टरोंमें खाँसीको काफ़ ( Calf ) और मूखी खाँसीको होंपिंगकाफ़ कहतेहैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

## त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ५३.

अथातः स्वरभेदप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम स्वरभेद ( आवाज बैठजाने ) के प्रतिषेधकी अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

## स्वरभेदके हेतु और संख्या ।

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिवातशीतादिभिः प्रकुपिताः

पेवनादयस्तु । ते शब्दवाहिधमनीपु गर्ताः प्रतिष्ठां हन्युः

स्वरं भवति चापि हि पडिर्धः सः ॥ १ ॥

अत्यंत ऊँचे स्वरसे बोलने ( पुकारने अथवा गाने ) से विषसे चिढ़ा-कर पड़नेसे चोट आदिसे शीतल पदार्थोंके सेवन करनेसे वातादिक दोष

कुपित होकर शब्दवाहिनी धमनियोंमें स्थित होकर स्वर ( आवाज ) को बिगाड़ देते हैं इसे स्वरभेद या स्वरभंग कहते हैं यह छः प्रकारका होता है ( जैसे वायुका पित्तका कफका सन्निपातका क्षयका और मेदो दोषका ) ॥

### वातादि स्वरभेदके लक्षण ।

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा भिन्नं शनैर्वदति गर्दभवंत्स्वरं च । पित्तेन पीतवदनाक्षिपुरीषमूत्रो ब्रूयाद्गलेन च विदाहसंमन्वितेन ॥ २ ॥ कृच्छ्रात्कफेन सततं कफरुद्धकंठो मंदं शनैर्वदति वापि दिवा विशेषात् । सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंपदव्यक्तता च वचसस्तमसाध्यमाहुः ॥ ३ ॥ धूप्येत वाक् क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च वागेष वापि हंतवाक्परिवर्जनीयः । अंतर्गतस्वरमलक्ष्यपदं चिरेण मेदोन्वयाद्ददति दिग्धगलौष्ठतालुः ॥ ४ ॥

वायुके स्वरभेदमें नेत्र मुँह मूत्र और मल सबमें कालापन मालूम देताहै टूटे शब्द धीरेधीरे बोले गंधकासा स्वर हो । और पित्तके स्वरभेदमें मुँह नेत्र मल मूत्र ये सब पीले पड़जावें तथा बोलते समय गलेमें जलनसा होवे ॥२॥ कफके स्वरभंगमें सदा कंठ कफसे भरासा रहे और मंद मंद स्वरसे धीरे धीरे बोले दिनमें कुछ ज्यादा होजावे और सब दोषोंके सान्निपातिक स्वरभेदमें सबके लक्षण और विकार होतेहैं और जो वचनमें अव्यक्तता हो ( विलकुल समझा नहीं जावे ) तो वह असाध्य होताहै ॥३॥ क्षयज स्वरभेदमें वाणी बोलते समय धुँवाँसा भरजाताहै और वाणी क्षीण होती चलीजाती है और इसमें भी यदि विलकुल आवाज नहीं निकले तो असाध्य होताहै और भेदके स्वरभेदमें भीतर ही भीतर शब्द बेमालूमसा होताहै और देरसे शब्द निकलताहै और होंठ गला और तालु ये लिपेसे ( चिकने ) रहतेहैं ॥ ४ ॥

### स्वरभेदकी असाध्यता ।

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य चापि चिरोत्थितो यश्च सहोपजातः ।

मेदस्त्रिबन्ः सर्वसमुद्भवश्च स्वरसंयतो यो न स सिद्धिमेति ॥५॥

क्षीण भनुष्यके वृद्धके दुबले आदमीके जो स्वरभंग होजावे जो बहुत दिनका पुराना होजावे तथा जो जन्म ही से स्वर बिगड़ा हुआ होवे मेदवाले



मनुष्यके तथा सन्निपातजसे उपजा हुआ इतने प्रकारके स्वरभेद सिद्ध नहीं होते ॥ ५ ॥

## स्वरभेदकी चिकित्साका आरंभ ।

स्निग्धान्स्वरातुरनरानपक्वदोषान्संयोजयेद्वमनरेचनवस्ति-  
भिश्च । नस्य्यावपीडमुखधावनधूमलेहैः संपादयेच्च विविधैः  
कवलंग्रहैश्च ॥ ६ ॥ यः श्वासकासविधिरादित एव चोक्तस्तं  
चाप्यशेषमवतारयितुं यतेत । वैशेषिकं च विधिमूर्द्धमतो  
वदामि तद्वै स्वरातुरहितं निखिलं निबोध ॥ ७ ॥

स्वरभेदके रोगियोंको स्नेहन कराके वमन विरेचन और वस्ति कर्म विधि-  
पूर्वक करके दोषोंको दूर करे और फिर नस्य अवपीडन मुखधावन ( मुख-  
को भीतर से धोना अर्थात् कुल्ले करना ) धूमपान और अवलेह तथा अनेक  
प्रकारके कवल ग्रहोंका उपयोग करना श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥ तथा जो विधि श्वास  
और खाँसीके विषयमें कह आये हैं वे सबही यहां पर कियेजानेका यत्न  
करे ( अर्थात् श्वासकासोक्त सब विधि यहां भी कर सकते हैं ) और इससे  
अगाड़ी अब हम विशेष करके स्वरभेदके रोगियोंको हितकारक विधि कहते  
हैं उसे पूर्णतया सुनो ॥ ७ ॥

## वायुके स्वरभंगका यत्न ।

स्वरोपघातेर्निलजेभुक्तोपरि घृतं पिबेत् ।

कासैर्मर्दकवार्ताकुमार्वस्वरसैर्युतम् ॥ ८ ॥

पीतं घृतं हन्त्यनिलं सिद्धमार्तगले रसे ।

यवक्षाराजमोदाभ्यां चित्रकामलकेषु वा ॥ ९ ॥

देवदार्वधिकाभ्यां वा सिद्धमाज्यं समाक्षिकम् ।

सुसोदकानुपानो वा सैसपिण्को गुडोदनः ॥ १० ॥

वायुके स्वरभंगमें भोजनके ऊपरसे कलौधी बडी कंदली अंगरा इनके  
रसयुक्त ( रससे सिद्ध किया ) घृत को पीये ॥ ८ ॥ अथवा आर्तगल ( नीले  
फलके छुंद ) के रससे सिद्ध किया घृत पीये अथवा जवाखार अजमोदा  
तथा चित्रक और आवले इनसे सिद्ध किया घृत पीये ॥ ९ ॥ अथवा देव-  
( श्लो० ९ ) आर्तगडः । नीयपुष्पकुट्यः । इदमस्तु आर्तगडः ककुभ इत्याह ।



दारु चित्रक इनसे सिद्ध किया बकरीका घृत शहद मिलाकर पान करे और गुडके मीठे चावल घृतयुक्त बनाकर उन्हें भोजन करे ऊपरसे निवाया पानी पीलिया करे ॥ १० ॥

क्षीरानुपानं पित्ते तु पिबेत्सर्पिरतंद्रितः ।

अश्रीयाच्च ससर्पिष्कं यष्टीमधुकपायसम् ॥ ११ ॥

लिह्यान्मधुरकाणां वा चूर्णं मधुघृताप्लुतम् ।

शतावरीचूर्णयोगं बलाचूर्णमथापि वा ॥ १२ ॥

पिबेत्कटूनि मूत्रेण कफजे स्वरसंक्षये ।

लिह्याद्रां मधुतैलाभ्यां भुक्त्वा खादेत्कटूनि च ॥ १३ ॥

पित्तके स्वरभेदमें घृत पीकर ऊपरसे दूध पियाकरे अथवा सावधान होकर मुलेठीकी खीर बनाके घृत मिलाकर खावे ॥ ११ ॥ अथवा मधुर द्रव्यों ( काकोल्यादि ) का चूर्ण शहद और घृत मिलाके चाटे अथवा शतावरीके चूर्णको या खरेटीके चूर्णको शहद घृतके संग चाटे ॥ १२ ॥ कफके स्वरभंगमें कटुक द्रव्यों ( त्रिकटु आदि ) को गोमूत्रके संग पीवे अथवा शहद और तैल मिलाके इसके संग त्रिकटुको चाटे तथा भोजन करके ऊपरसे चरपरे पदार्थ ( मिरच पीपल आदि ) खाया करे ॥ १३ ॥

स्वरोपघाते मेदोजे कफवद्विधिरिष्यते ।

सर्वजे चापि क्षयजे प्रत्याख्यायाचरेत्क्रियाम् ॥ १४ ॥

शर्करामधुमिश्राणि शृतानि मधुरैः सह ।

पिबेत्पयांसि यस्योच्चैर्वदतोऽभिहर्तः स्वरः ॥ १५ ॥

इत्युत्तरतंत्रे त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

मेदके स्वरभेदमें कफ स्वरभेदकेसी विधि करना श्रेष्ठ है और सन्निपातके स्वरभेदमें तथा क्षयके स्वरभेदमें ( आराम हो या न भी हो ऐसा ) कहकर चिकित्सा करे ॥ १४ ॥ और जिसके ऊँचे स्वरसे बोलने गाने पढ़ने आदिसे स्वरभंग होगया हो उसे मधुर द्रव्योंसे औटाया हुआ दूध मिश्री और शहद मिलाकार पीना चाहिये ॥ १५ ॥

यूनानी हकीम स्वर भंगको " फसादुस्सौत " कहतेहैं डाक्टरी (अंग्रेजी) में इसे हौर्सन्यस ( Hoorsness ) कहतेहैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतंत्रे त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

## चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ५४.

अथातः कृमिरोगमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अगाड़ी अब हम कृमिरोगकी अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ॥

### कृमिरोगके कारण ।

अजीर्णाध्यशनासात्म्यैर्विरुद्धमलिनाशनैः ।

अव्यायामदिवास्वप्नगुर्वतिसिग्धशीतलैः ॥ १ ॥

मापपिष्टान्नविदलविसशालूकसेरुकैः ।

पर्णशाकसुराशुक्तदधिक्षीरगुडेशुभिः ॥ २ ॥

पलालानूपपिशितपिण्याकपृथुकादिभिः ।

स्वाद्वम्लद्रवपानैश्च श्लेष्मा पित्तं च कुप्यति ॥ ३ ॥

कृमिन्बहुविधाकारान्करोति विविधाश्रयान् ।

आमपक्वांशयस्तेषां प्रसवः प्रायशः स्मृतः ॥ ४ ॥

जो रोगके रहनेसे भोजनपर भोजन करनेसे वेमाफकतके भोजनसे विरुद्ध और भोजनसे परिश्रम नकरने ( पड़े या बैठे रहने ) से दिनके सोनेसे गरिष्ठ बनना ठंडा खानेसे ॥ १ ॥ ठंडे पिष्टीके पदार्थ विदल ( जिनके दो भाग हों ) विशेष खानेसे विस ( कमलकी जड़ ) कमलकंद और कसेरु इत्यादि जो शाक मदिरा सिरका दही दूध गुड़ ईखके पदार्थ ॥ २ ॥ तिलका चूरा ( जलकिनारेके जीवोंका मांस खल और पृथुक ( दोवार उवाला अन्न ) इनके विशेष खानेसे मिठाई खटाई पतले पत्ते अधिक खाने पीने और पित्त कुपित हो जातेहैं ॥ ३ ॥ और अनेक प्रकारके कृमियोंके अनेक स्थान हैं पैदा करतेहैं परंतु विशेष करके इनकी उत्पत्तिका आमाशय और पक्वाशयही होताहै ( अर्थात् कृमि उपरोक्त कारणोंसे करके आमाशय और पक्वाशयमें ही पैदा होतेहैं ) ॥ ४ ॥

### कृमियोंके भेद ।

विंशतेः कृमिजातीनां त्रिविधः संभवः स्मृतः ।

पुरीषकफरक्तानि तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ५ ॥

श्लो० ३ ) पृथुकादिभिरिति । पृथुकम् "दिविचमत्तं पृथुकम्" ( इति श०स्तो० )

श्लो० ५ ) रक्तजलेन संयुक्ता अपि प्राणाः ।

कृमि बीस प्रकारके होतेहैं और इनकी उत्पत्ति तीन भांतिसे होतीहै पुरीषसे या कफसे या रुधिरसे इनके लक्षण अगाड़ी कहतेहैं ॥ ५ ॥

## पुरीषज कृमि ।

अयवा वियवाः किय्याश्चिय्या गंडूपदास्तथा ।

चुरवो द्विमुखाश्चैव सप्तैवैते पुरीषजाः ॥ ६ ॥

श्वेताः सूक्ष्मास्तुदंत्येते गुदं प्रति सरंति च ।

तेषामेवापरे पुच्छैः पृथक्च भवंति हि ॥ ७ ॥

शूलाग्निमांघपांडुत्वविष्टंभवलसंक्षयः ।

प्रसेकारुचिहृद्रोगविड्भेदास्तु पुरीषजैः ॥ ८ ॥

रक्ता गंडूपदा दीर्घा गुदकंडूनिपातिनः ।

शूलाटोपं शकृद्भेदपक्तिनाशकराश्च ते ॥ ९ ॥

अयव वियव किय्य चिय्य गंडूपद और चुरव तथा द्विमुख ये सात प्रकारके कृमि पुरीष विष्टामें ( या विष्टासे ) पैदा होतेहैं ॥ ६ ॥ ये पुरीषज कृमि सुपेद पतले होतेहैं और गुदामें चुभनसी पैदा करतेहैं और गुदाकी तरफ गमन भी करतेहैं इनमेंसे दूसरी भांतिके कृमि पूंछवाले और अन्य मोटे ( कद्दूदानेसे ) भी होतेहैं ॥ ७ ॥ ये शूल मंदाग्नि पांडुरोग विष्टंभ ( कब्जियत ) और बलका नाश करतेहैं तथा मुंहसे पानी आना अरुचि हृद्रोग और विड्भेद ये उपद्रव भी इन पुरीषज कृमियों ही से होतेहैं ॥ ८ ॥ और इन ही में लाल गिडोवे लंबे लंबे होतेहैं ये होतेहैं तब गुदामें खाज शूल पेट अफराना मल फटना और पाचन शक्ति नष्ट होना इत्यादि उपद्रव करतेहैं ॥ ९ ॥

( वक्तव्य ) पुरीषज कृमि कहनेसे आहार नलका ( आमाशय पक्वाशय मेदा और आंतड़े तथा मलाशय ) मात्रके कृमि जानने ॥

## कफजकृमि ।

दर्भपुष्पा महापुष्पाः प्रलूनाश्चिपिटास्तथा ।

पिपीलिका दारुणाश्च कफकोपसमुद्भवाः ॥ १० ॥

रोमैशा रोमैर्मूर्ध्निः संपुच्छाः श्यावमंडलाः ।

मूढधान्यांकुराकाराः शुक्तास्ते तैनवस्तथा ॥ ११ ॥

भञ्जादा नेत्रलेढारास्तालुश्रोत्रभुजस्तथा ।

शिरोहृद्गोत्रमथुप्रतिश्यायकराश्च ते ॥ १२ ॥

दर्भपुष्प महापुष्प प्रलून त्रिपिट पिपीलिका और दारुण ये छः प्रकारके कफकोपसे उत्पन्न होनेवाले कृमि होतेहैं ॥ १० ॥ ये रोमवाले होतेहैं इनके शिरपरभी रोम होतेहैं पूंछभी होतीहै काले मंडलवाले और बोयेहुए धान्यके अंकुर जैसे सुपेद और पतले होतेहैं ॥ ११ ॥ ये कृमि मज्जाको खाते हैं नेत्रोंकोभी चाटजातेहैं तालु कान इनको भी खातेहैं शिरके रोग तथा हृदय-के रोग वमन जुखाम इन व्याधियोंको करतेहैं ॥ १२ ॥

रक्तज कृमि ।

केशरोमनखादाश्च दंतादाः किक्किशास्तथा ।

कुष्ठजाश्च परीसर्पिज्ञेयाः शोणितसंभवाः ॥ १३ ॥

ते सरक्ताश्च कृष्णाश्च स्निग्धाश्च पृथक्स्तथा ।

रक्ताधिष्ठानैजान्प्रायो विकाराञ्जनयन्ति ते ॥ १४ ॥

केशमें होनेवाले कृमि रोमोंमें होनेवाले नखूनोंमें होनेवाले और इन्हें ही खानेवाले तथा दांतोंके कीड़े और किक्किश कुष्ठज और परिसर्पि ये सातप्रकारके कृमि रक्तसे ( रक्तके मैल पसीने इत्यादिसे ) पैदा होनेवाले हैं ॥ १३ ॥ ये कुछ सुरखी लिये कालेसे प्रायः होतेहैं चिकने और मोटे भी इनमें होतेहैं ये प्रायः रक्तस्थानमें होनेवाले विकार ( कुष्ठ फुन्सी खाज आदि ) उत्पन्न करतेहैं ॥ १४ ॥

( वक्तव्य ) केशादकृमि वालोंकी जडमें होतेहैं जिनसे बाल गिरजातेहैं बाहर पसीने मैल आदिसे होनेवाले जूलीख आदि इनसे पृथक् होतेहैं ॥

मापपिष्टान्नलवणगुडशकैः पुरीपजाः ।

मांसमापगुडक्षीरदधिशुक्तेः कफोद्रवाः ।

विरुद्धाजीर्णशकाद्यैः शोणितोत्था भवन्ति हि ॥ १५ ॥

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्गोत्रः सदनं भ्रमः ।

भक्तद्वेषोऽतिसारश्च संजातकृमिलक्षणम् ॥ १६ ॥

दृश्यास्त्रयोदशाद्यास्तु कृमीणां परिकीर्तिताः ।

केशादाद्यास्तुवदृश्यास्ते द्वावाद्याः परिवर्जयेत् ॥ १७ ॥

उड़द पिट्टीके अन्न लवण गुड और शाक इनसे ( इनके विशेष सेवनसे ) पुरीषके कृमि होतेहैं और मांस उड़द गुड़ दूध दही सिरका इनसे कफके कृमि होतेहैं । तथा विरुद्ध भोजन अजीर्ण और शाकादिसे रुधिरके कृमि उत्पन्न होतेहैं ॥ १५ ॥ “कृमिवाले रोगीके लक्षण” ज्वर होआवे वर्ण बिगड़ जावे शूल हो हृदय दूखे शिथिलता रहे भ्रम हो अरुचि और अतिसार ये भी हों तो जानो कि इसके कृमिरोग उत्पन्न हुआ ॥ १६ ॥ इन बीस प्रकारके कृमियोंमेंसे आदिके १३ प्रकारके कृमि तो दिखलाई देतेहैं और केशादकी आदि लेके तीन दिखलाई नहीं दे सकते और आरंभमें कहेहुए दो असाध्य होतेहैं ॥ १७ ॥

एषामन्यतमं ज्ञात्वा जिघांसुस्निग्धर्मातुरम् ।

सुरसादिविपर्केन सर्पिषा वातंमादितः ॥ १८ ॥

विरेचयेत्तीक्ष्णतरैर्यौ गैरास्थापयेच्च तम् ।

यवकोलकुलैत्थानां सुरसादेर्गणस्य च ॥ १९ ॥

विडंगस्नेहयुक्तेन काथेन लवणेन च ॥ २० ॥

इनमेंसे कोईसे कृमि मालूम पड़ें तभी उनके नष्ट करनेकी इच्छावाला वैद्य रोगीको स्नेहन करावे और फिर सुरसादि गणसे पकायेहुए घृतसे वमन करावे ॥ १८ ॥ और फिर तीक्ष्ण योगोंसे विरेचन करावे फिर जौ बेर कुलथी और सुरसादिगणके काथ और वायविडंगसे सिद्ध किये स्नेह और लवण इनसे आस्थापनवस्ति करे ॥ १९ ॥ २० ॥

प्रत्यागते निरूहे तु नरं स्नातं सुखांबुना ।

गुंज्यात्कृमिघ्नैरशनैस्ततः शीघ्रं भिषग्वरः ॥ २१ ॥

स्नेहेनोक्तेन चैनं तु योजयेत्स्नेहवस्तिना ।

ततः शिरीषकिणिहीरसं क्षौद्रयुतं पिवेत् ॥ २२ ॥

केवूकस्वरसं वापि पूर्ववत्तीक्ष्णभोजनः ।

पलाशबीजस्वरसं कल्कं वा तंडुलांबुना ॥ २३ ॥

जब निरूहण वस्ति डलटी निकल चुके (साफ होजावे) तब रोगीको निवाये पानीसे स्नान करावे और फिर कृमिनाशक भोजन शीघ्र ही वैद्य खिलावे ( अर्थात् कृमिनाशक द्रव्योंके संस्कारसे बना भोजन देवे ) ॥ २१ ॥ और उक्त स्नेह ( विडंगादिसे सिद्ध कियेहुए ) से अनुवासन वस्ति भी करे

फिर शिरस और किणिही ( कटभी ) इनके रसमें शहद मिलाकर कुछ दिन पिलावे ॥ २२ ॥ अथवा केवूक वृक्षके स्वरसको शहद मिलाके पिलावे और पूर्वोक्त रीतिसे तीक्ष्ण भोजन करे तथा ढाकके बीजों ( पलाशपापड़े ) के स्वरसको या कल्कको चाँवलोंके पानीके संग पिलावे ॥ २३ ॥

पारिभद्रकपत्राणां क्षौद्रेण स्वरसं पिबेत् ।

पत्तूरस्वरसं वापि पिबेद्वा सुरसादिजम् ॥ २४ ॥

लिह्यादश्वशकृच्चूर्णं विडंगं वा समाक्षिकम् ।

पत्रैर्मूर्पिकेपण्यां वा सुपिष्टैः पिष्टमिश्रितैः ॥ २५ ॥

खादेत्तूपालिकान्पक्वान्धान्याम्लं च पिबेद् नु ।

सुरसादिगणे तैलं पक्वं वा पानमिष्यते ॥ २६ ॥

विडंगचूर्णपिष्टाभ्यां तस्मिन्भक्ष्यं तु कारयेत् ।

तत्कपायप्रपीतानां तिलानां स्नेहमेव वा ॥ २७ ॥

नींबके पत्तोंका रस शहद मिलाके पीवे अथवा सिरयाईका रस या सुरसादि गणका काथ ( शहद डालके ) पीवे ॥ २४ ॥ अथवा घोड़ेकी लीदका चूर्ण या वायविडंगका चूर्ण शहदके संग चादे अथवा मूसापर्णीके पत्तोंको पीस ले और उसमें जौकी पिट्टी मिलाकर पकोड़ी पूरी आदि बनावे उन्हें खाकर ऊपरसे धान्याम्ल ( कांजी ) पीवे अथवा सुरसादिगणसे पकायाहुआ तैलपान करे ॥ २५ ॥ २६ ॥ अथवा वायविडंगके चूर्णको पिट्टीमें ( या आंटेमें ) मिलाकर उसके पाक ( खानेकी वस्तु ) बनावे अथवा विडंगके कायमें तिलोंको खूब भिगोकर उनका तैल निकलवाकर उपयोग करे ॥ २७ ॥

धाविधः शकृतैश्चूर्णं संतकृत्वः सुभाविर्तम् ।

विडंगानां कपायेण त्रैफलैः तथैव च ॥ २८ ॥

क्षौद्रेण लिह्याद्वातुपिबेद्रसमामलकोद्रवम् ।

अक्षाभयारसं चापि विधिरेषां द्यैसामपि ॥ २९ ॥

पूतिकस्वरसं वापि पिबेद्वा मधुना सह ।

पिबेद्वा पिप्पलीमूलमजामृत्रेण संयुतम् ॥ ३० ॥

( श्लो० २५ ) पिष्टमिश्रितैः । पत्रपिष्टमिश्रितैः । पिष्टकथनेन चरपिष्टं शेषम् ।

सप्तरात्रं पिबेद्घृष्टं त्रपुं वा दधिमस्तुना ।

पुरीषजान्कफोत्थांश्च हन्यादेवं कृमीन्भिषक् ॥ ३१ ॥

सेहकी भेंगनी ( विष्टा ) के चूर्णको सातवार विडंगके काथकी भावना देवे और फिर सात भावना त्रिफला काथकी देवे ॥ २८ ॥ फिर इसे शहदमें मिलाकर चाटे और ऊपरसे आँवलोंका रस पीवे तथा हरड़े और बहेड़ेका रस भी पीवे ( अर्थात् त्रिफलाका रस ऊपरसे पीवे ) यही विधि सब लोहों ( धातुओंके चूर्ण ) खानेकी है ( कि पहले लोहादिके चूर्णमें विडंगके काथकी और त्रिफलाके काथकी भावना देकर शहद से चाटे ऊपरसे त्रिफलाका रस पीवे ) ॥ २९ ॥ अथवा करंजका रस शहदयुक्त पीवे अथवा बकरीके मूत्रसे पिप्पलीमूल पीवे ॥ ३० ॥ अथवा रांगको घिसकर सातदिनतक दहीके पानीसे पीवे इन विधियोंसे वैद्य पुरीषज और कफज कृमियोंको नष्ट करे ॥ ३१ ॥

शिरोहृद्ग्राणवक्त्राक्षिसंसृतांश्च पृथग्विधान् ॥

विशेषेणाञ्जनैर्नस्यैरवपीडैश्च साधयेत् ॥ ३२ ॥

शकृद्रसं तुरंगस्य सुशुष्कं भावयेदति ।

निःकार्थेन विडंगानां चूर्णं प्रथमं तु तत् ॥ ३३ ॥

अयश्चूर्णान्यनेनैव विधिना योजयेद्भिषक् ।

सकांस्यनीलं तैलं च नस्यं स्यात्सुरसादिके ॥ ३४ ॥

शिर हृदय नासिका मुख और नेत्रोंमें होजानेवाले कई प्रकारके कृमियोंको विशेषकर अंजनों नस्यों और अवपीडों आदिसे साधन करे ॥ ३२ ॥ घोड़ेकी लीदका रस सुखाकर उसमें विडंगके काथकी भावना देवे और फिर सुखाकर पीसकर उसका प्रथमन नस्य देवे ॥ ३३ ॥ और इसी विधिसे लोहेके चूर्णकी भी उपयोजना करे अथवा वैद्य सुरसादिगणसे सिद्ध किये तैलमें काँसीकी स्याही मिलाकर नस्य देवे ॥ ३४ ॥

इंद्रलुप्तविधिश्चापि विधेयो रोमभोजिषु ।

दंतादानां समुद्दिष्टं विधानं मुखरोगिकम् ॥ ३५ ॥

रक्तजानां समुद्दिष्टं कुर्यात्कुष्ठचिकित्सिते ।

सुरसादि तु सर्वेषु सर्वथैवोपयोजयेत् ॥ ३६ ॥



रोम पंक्तियोंमें होनेवाले कृमियोंके लिये इंद्रलुप्तकी विधि करना श्रेष्ठ है और दांतोंके खानेवालों ( दांतोंके कृमियों ) के लिये मुखरोगमें कहीहुई कृमिदंतकी विधि करना उचित है ॥ ३५ ॥ और रक्तज कृमियोंके लिये कुष्ठमें कहेहुए विधान करे परंतु मुरसादिगणका उपयोग तो सब प्रकारके कृमियोंमें सब तरहसे जहाँ जैसा उचित हो सर्वत्र ही करना उचित होता है ॥ ३६ ॥

## पथ्य ।

प्रव्यक्तित्तकटुकं भोजनं च हितं भवेत् ।

कुलत्थकाथसंसृष्टं क्षीरपानं च पूजितम् ॥ ३७ ॥

जिनमें चरपरापन और कडुवापन प्रगट हो ऐसे भोजन करने प्रायः हितकारक होते हैं और कुलथीके काथके संस्कार किया दूध पीना ठीक है ॥ ३७ ॥

क्षीराणि मांसानि घृतानि चैव दधीनि शाकानि च पर्णवन्ति ।

समांसतोम्लान्मधुरान्हिमांश्च कृमीर्जिवांसुः परिवर्जयेत्तु ॥ ३८ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

सब प्रकारके दूध घृत और दही तथा पत्तोंके शाक खटाई मिठाई और ठंडे पदार्थ कृमिरोग नष्ट करनेकी वांछावाले रोगियोंको सामान्यतासे ही नहीं खाने चाहियें किंतु त्याग देने चाहियें ॥ ३८ ॥

( वक्तव्य ) शार्ङ्गधराचार्य वाईस प्रकारके कृमि लिखते हैं जिनमें बाहर शरीरपर वालोंमें होनेवाले जूँ लीख जुदे लिखते हैं और स्नायुक ( न्धारवे ) रोगको भी कफ रक्तज कृमि लिखते हैं ॥

यूनानीवाले पेटके केचुवोंको दीदानां कहते हैं और कद्दूदानोंको “ दुब्बुल किरा ” कहते हैं और न्हासूको अरकेमुदनी या रिशता कहते हैं सब भातिके कृमियोंको साधारणतासे इनके यहाँ भी फिरमही कहते हैं ॥

और डाक्टरीमें ऊपर वालोंमें होनेवाले जूँ लीख आदि कृमियोंको “ अपी-जुवा ” कहते हैं और पेटमें होनेवालोंको पेटजुवा तथा वर्मम् कहते हैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायासुनस्तन्त्रे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

## पंच पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५५.

अथात उदावर्तप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम उदावर्तके प्रतिषेधकी अध्यायका व्याख्यानकरते हैं ॥

## उदावर्तका हेतु ।

अधश्चोर्द्धं च भार्वाणां प्रवृत्तानां स्वभावतः ।

न<sup>१</sup> वेगान्धारयेत्प्राज्ञो वातादीनां जिजीविषुः ॥ १ ॥

वातविण्मूत्रजृम्भाश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः ।

व्याहृन्त्यमानैरुदितैरुदावर्तो निरुच्यते ॥ २ ॥

क्षुत्तृष्णाश्वासनिद्राणामुदावर्तो विधारणात् ।

तस्यैभिधास्ये व्यासेन लक्षणं च चिकित्सितम् ॥ ३ ॥

जीवनकी वांछा रखनेवाले बुद्धिमानको चाहिये कि नीचेको और ऊपरको स्वभावसे प्रवृत्त होनेवाले वातादिके वेगोंको कभी नहीं रोकें ॥ १ ॥ वे वेग ये हैं कि अयोवायु मल ( दस्त ) मूत्र जँभाई आँसू क्षव ( छींक ) ( या हिक्का ) डकार वमन और वीर्य इनके उद्गत होनेपर रोक लेनेसे उदावर्त रोग होजाताहै ॥ २ ॥ तथा क्षुधा तृषा श्वास निद्रा इनके (विशेष या अयोग्य) रोकनेसे भी उदावर्त होजाताहै अब अगाड़ी विस्तारसे इसके जुदे २ लक्षण और चिकित्सा वर्णन करतेहैं ॥ ३ ॥

## उदावर्तकी संख्या ।

त्रयोदशविधश्चासौ भिन्न एतैस्तु कारणैः ।

अपथ्यभोजनाच्चापि<sup>१</sup> वक्ष्यते च यथा<sup>२</sup>ऽपरः ॥ ४ ॥

उपरोक्त वातविण्मूत्रादिके कारणोंसे यह उदावर्त रोग तेरह प्रकारका होताहै तथा एक भांतिका उदावर्त अपथ्य भोजनसे भी होजाताहै ॥ ४ ॥

## अपानवायुके रोकनेका उदावर्त.

आध्मानशूलौ हृदयोपरोधं शिरोरुजं श्वासमतीव हिक्काम् ।

( श्लो० २ ) उदावर्त इति । ऊर्द्धं वातविण्मूत्रादीनां आवर्तो भ्रमणं यस्मिन् स उदावर्तः । वातोत्र अधः प्राप्तेऽपानवायुः । क्षवः क्षवथुः । डल्लनस्तु । हिक्काइत्याह । इन्द्रिय-शब्देन शुक्रं बोद्धव्यम् ।

( श्लो० ३ ) ननु अधोवेगावरोधादपानप्रकोपे उदावर्तसंभवो युक्तः । परंतु अश्रु-जृम्भादिकानामूर्द्धवेगानामवरोधे कथमुदावर्तस्य संभवः । ऊर्द्धवेगावरोधेपि वायोः प्रकोपोपहतेनापानेन उदावर्तस्य संभवः ।

कासप्रतिश्यायगलग्रहाश्च बलासपित्तप्रसरं च घोरम् ॥

कुर्यादपानोभिहतः स्वमार्गे हन्यात्पुरीषं मुखतः क्षिपेद्वा ॥ ५ ॥

अधोवायुके रोकनेसे इतने उपद्रव होतेहैं पेट अफरना शूल हृदयका रुक जाना शिरमें दर्द श्वास अत्यंत दुचकी खाँसी जुखाम गल रुकना कफ और पित्तका उद्रेक घोर होना तथा अपने मार्गसे रुकाहुआ अपानवायु विष्ठाको रोक देताहै अथवा मुखमार्गसे विष्ठाका वमन होताहै ॥ ५ ॥

### मलरोकनेका उदावर्त ।

आटोपशूलौ परिकतं च संगः पुरीषस्य तथोद्ध्वान्तः ।

पुरीषमास्थ्यादपि वा निरति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ ६ ॥

पेट अफरन शूल होना कतरनेकेसी पीडा होना मलकी किटीसी बँधकर बंद पड़जाना तथा वायुका उर्द्धगमन होना तथा मुखसे विष्ठाका वमन होना दस्तके वेग रोकनेजानेसे मनुष्यके इतने उपद्रववाला उदावर्त होताहै ॥ ६ ॥

### मूत्ररोकनेका उदावर्त ।

मूत्रस्य वेगेऽभिहते नरस्तु कृच्छ्रेण मूत्रं कुरुतेऽल्पमल्पम् ।

मेढ्रे गुदे वक्षणेमुष्कयोश्च नाभिप्रदेशेष्वथ वापि मूत्रि ॥ ७ ॥

आनद्धवस्तिश्च भवति तीव्राः शूलश्च शूलैरिव भिन्नमूर्तः ॥ ८ ॥

मूत्रका वेग रोकनेसे मनुष्यके कष्टसे थोड़ा थोड़ा मूत्र आताहै लिंग गुदा और वक्षण ( नलों ) और अंडकोशोंमें और नाभिमें और शिरमें तीव्र शूल चलने लगतेहैं और वस्तिस्थान फूलजाताहै और ऐसी पीडा होतीहै जैसे कोई शूलोंसे घबलता हो ॥ ७ ॥ ८ ॥

### जुंभारोकनेका उदावर्त ।

मन्यागलस्तंभशिरोविकारा जुंभोपघातात्पवनात्मकाः स्युः ।

श्रोत्राननघ्राणविलोचनोत्था भवन्ति तीव्राश्च तथा विकाराः ॥ ९ ॥

जुंभा ( जुंभाई ) के रोकनेसे मन्यात्थान और गलमें स्तंभ शिरमें विकार और घातके रोग तथा फानके मुँहके नाकके और नेत्रोंके तीव्र रोग होजातेहैं ॥ ९ ॥

## अश्रुनिरोधज उदावर्त और क्षवथुनिरोधज ।

आनन्दजं शोकसमुद्भवं वा नेत्रोदकं प्राप्तममुंचतो हि ।

शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन ॥ १० ॥

भवन्ति गाढं क्षवथोर्विघातोच्छिरोक्षिनासाश्रवणेषु रोगाः ।

कंठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजंश्च वायोरथवा प्रवृत्तिः ॥ ११ ॥

आनन्दसे अथवा शोकसे आयेहुए नेत्रोंके जल ( आंसुओं ) को जो नहीं निकलने देवे ( रोक ले ) उसके शिरमें भारीपन और तीव्र नेत्रोंके रोग और पीनसरोग होजाते हैं ॥ १० ॥ क्षवथु ( छींक ) के रोकनेसे शिरमें नेत्रोंमें नासिकामें और कानोंमें भारी रोग होजातेहैं कंठ और मुँह भरेसे होजातेहैं पीडा भी होतीहै वायुका शब्द या प्रवृत्ति ये भी होते हैं ॥ ११ ॥

## उद्गार-छर्दि और शुक्रज उदावर्तोंके लक्षण ।

उद्गारवेगे विहते भवन्ति जंतोर्विकाराः पवनप्रसूताः ।

छर्दोर्विघातेन भवेच्च कुष्ठं येनैव दोषेण विदग्धमन्नम् ॥ १२ ॥

मूत्राशये वा गुदमुष्कयोश्च शोफो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च ।

शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेद्वा ते ते विकारा विहते तु शुक्रे १३

डकारके रोकनेसे मनुष्यको वायुके विकार होते हैं ( और कई उपरोक्त श्लोकके उत्तरार्द्धको इसीके संग लगाते हैं कि कंठ मुख पूर्णता अतिपीडा वायुका शब्द और अप्रवृत्ति ये डकार रोकनेके उदावर्तमें होते हैं ) वमनके रोकनेमें कुष्ठ होजाताहै और इससे अन्न विदग्ध होजाता है ॥ १२ ॥ और स्खलित होतेहुए वीर्यके रोकनेसे मूत्राशय ( मसनि ) में गुदामें वृषणोंमें शोथ और पीडा होती है मूत्र रुकता है शुक्रकी पथरी होजाती है आर शुक्र क्षिरने लगजाताहै तत्संबन्धी अनेक विकार ( कृच्छ्रादि ) होजाते हैं ॥ १३ ॥

( श्लो० ११ ) अस्योत्तरार्धं कंठास्यपूर्णत्वेत्यादिकं केचित् अग्रिमे उद्गारो-  
दावर्ते कथयन्ति । एवमेव भावमिश्रेणापि पठितम् । परंतु ढल्लनमिश्रेण क्षवथु-  
विनिग्रहोदावर्तेपि व्याख्यातम् । ढल्लनमिश्रमते क्षवथुः हिक्का इत्यापि विचित्रम् ।

( वक्तव्य ) हमने पहले कंठास्यपूर्णत्वादि क्षवथु निरोधमें डल्लनमिश्र-  
की व्याख्याके अनुसार लिखाथा परंतु वास्तवमें यह अग्रिम उद्गारावरोधके  
साथ ही उचित है । देखो टिप्पणी ॥

**क्षुधा तृषा श्वास और निद्रारोकनेके उदावर्तोंकेलक्षण।**

तंद्रांगमर्दावरुचिः श्रमश्च क्षुधोभिवातात्कृशंता च दृष्टेः ।

कंठास्यशोषः श्रवणावरोधस्तृष्णाभिवाताद्धृदये व्यथा च १४॥

श्रांतस्य निःश्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथवा पि गुल्मः ।

जृम्भांगमर्दांगशिरोक्षिजाड्यं निद्राभिवातादथवापि तंद्रा ॥१५॥

क्षुधा रोकनेसे तंद्रा अंगोंका दृटना ( अंगड़ाई ) अरुचि और श्रम होतेहैं  
तथा दृष्टिमें दुर्बलता ये उपद्रव होतेहैं । आर तृषाके रोकनेसे कंठ और मुखका  
सूखना कानोंका रुक जाना और हृदयमें व्यथा ये उपद्रव होतेहैं ॥ १४ ॥  
परिश्रम करके थके मनुष्यको श्वास रोकनेसे हृद्रोग मोह ( मूर्च्छा ) अथवा गुल्म  
होजाताहै । और निद्राके अयोग्य रोकनेसे जंभाई आना और अंग दृटना  
शिर और आँखोंमें जडता ( भारीपन ) होना तथा तंद्रा ( ऊँघसी आना )  
ये उपद्रव होतेहैं ॥ १५ ॥

**उदावर्तकी असाध्यता ।**

तृष्णादितं परिकृष्टं क्षीणं शूलैरभिद्रुतम् ।

शकृद्भ्रमंतं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥ १६ ॥

तृष्णासे पीडित क्लेशयुक्त क्षीण शूलयुक्त और विष्टाका वमन करता हुआ  
ऐसा उदावर्तका रोगी असाध्य ( त्यागने योग्य ) होताहै ॥ १६ ॥

**उदावर्तकी चिकित्सा ।**

सर्वेष्वेतेषु विधिर्वदुदावर्तेषु कृत्स्नशः ।

वायोः क्रिया विधातव्या स्वमार्गप्रतिपत्तये ।

सामान्यतः पृथक्त्वेन क्रियां भूयो निबोध मे ॥ १७ ॥

इन सब प्रकारके उदावर्तोंमें समग्रतया ऐसी क्रिया करनी चाहिये जिससे  
अपने २ मार्गोंमें ठीक ठीक वायुका संचार होवे ( क्योंकि इसमें प्रधान  
कारण वायु ही हुआ करताहै ) सामान्यतासे तो मुख्य चिकित्सा सबकी यही है  
और विशेषतासे सबकी खुदा-चिकित्सा सुनो ( उसे हम अगली कहतेहैं ) ॥ १७ ॥

## अधोवायु और पुरीषके उदावर्तकी चिकित्सा ।

आस्थापनं मारुतजे स्निग्धे स्विन्ने विशिष्यते ।

पुरीषजे तु कर्तव्यो विधिरानाहिको भवेत् ॥ १८ ॥

अधोवायु रुकनेके उदावर्तमें स्नेहन स्वेदन कराकर आस्थापनवस्ति करना श्रेष्ठ है और दस्त रुकनेके उदावर्तमें आनाह ( अफारे ) की विधि करनी उचित होती है ॥ १८ ॥

## मूत्रोदावर्तकी चिकित्सा ।

सौवर्चलाढ्यां मदिरां मूत्रे त्वभिहते पिबेत् ।

एलामप्यथ मद्येन क्षीरं वापि पिबेन्नरः ॥ १९ ॥

धात्रीफलानां स्वरसं सजलं वा पिबेत्त्र्यहम् ।

रसमश्वपुरीषस्य गर्दभस्याथ वा पिबेत् ॥ २० ॥

मांसोपेदंशं मधु वा पिबेद्वा सीधु गौडिकम् ।

भद्रदारु घनं मूर्वा हरिद्रां मधुकं तथा ॥ २१ ॥

कोलप्रमाणानि पिबेदांतरिक्षेण वारिणा ।

दुस्पशास्वरसं वापि कषायं कुंकुमस्य च ॥ २२ ॥

एवार्बुबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणीकृतम् ।

पंचमूलीशृतं क्षीरद्राक्षारसमथापि वा ॥ २३ ॥

योगांश्च विरेतेतत्र पूर्वोक्तानश्मरीभिदः ।

मूत्रकृच्छ्रक्रमं वापि कुर्यान्निरवशेषतः ।

भूयो वक्ष्यामि योगांश्च मूत्रोदातोपशान्तये ॥ २४ ॥

मूत्र रुकनेके उदावर्तमें मदिरामें काला नमक मिलाके पीवे अथवा मद्यको इलायची मिलाकर या दूध मिलाके पीवे ॥ १९ ॥ अथवा आँवलोंके स्वरसमें पानी मिलाके तीन दिन पीवे अथवा घोड़ेकी लीदका रस या गधेकी लीदका रस ( पानी मिलाके ) पीवे ॥ २० ॥ मद्य पीकर ( सीधु या गौडी मद्य पीकर ) मांस खावे अथवा भद्रदारु नागरमोथा मूर्वा हलदी और मुलेठी इन्होंको दो दो टंक लेकर वर्षाके पानीसे पीवे अथवा जँवासेका स्वरस तथा केशरका काथ पीवे ॥ २१ ॥ २२ ॥ अथवा ककड़ीके बीज पानीके संग जरासे नमक

युक्त पीवे अथवा पंचमूल ( लघु पंचमूलके संग पकाया दूध या दाखका रस पीवे ॥ २३ ॥ अथवा पूर्वोक्त पथरीके भेदन करनेवाले योगोंका उपयोग करे अथवा आद्योपांत मूत्रकृच्छ्रका क्रम करे और सूत्राघात ( सूत्र बंद होने ) की शांतिके लिये हम अगाड़ी योग वर्णन करेंगे ( वे भी यहां यथा-युक्त उपयोगमें आसकतेहैं ) ॥ २४ ॥

## जृम्भाके उदावर्तादिकी चिकित्सा ।

स्नेहस्वेदैरुदावर्तजृम्भाजं समुपाचरेत् ।

अश्रुमोक्षोश्रुंजे कार्यः स्निग्धस्विन्नस्य देहिनः ॥ २५ ॥

तीक्ष्णांजनावपीडाभ्यां तीक्ष्णगंधोपहिंसनैः ।

वर्तिप्रयोगैरथवा क्षवशक्तिं प्रवर्तयेत् ॥ २६ ॥

तीक्ष्णौषधप्रथमनैरथवाऽऽदित्यरश्मिभिः ॥ २७ ॥

जंभाईके रुकनेवाले उदावर्तमें स्नेहन स्वेदन करना और अश्रु रुकनेके उदावर्तमें स्निग्ध स्वेदन कराके अश्रु निकालदेने उचित हैं ॥ २५ ॥ और छींक रुकनेके उदावर्तमें तीक्ष्ण अंजन करने अवपीडन नस्य देने तीक्ष्ण वस्तु सुंघानी अथवा नाकमें बत्ती डालकर छींक लेनी ठीक है तथा तीक्ष्ण औषधोंकी प्रथमन नस्य लेना या सूर्यकी तरफ देखकर सूर्यकी किरणोंका प्रकाश नाकमें पहुँचाके छींक लेना ॥ २६ ॥ २७ ॥

उद्गारजे क्रमोपेतं स्नेहिकं धूममाचरेत् ।

सुरां सौवर्चलवर्तीं बीजपूर्णरसान्विताम् ॥ २८ ॥

छर्द्याघातं यथादोषं सम्यक्स्नेहादिभिर्जयेत् ।

सक्षारलवणोपेतमभ्यंगं चात्र दापयेत् ॥ २९ ॥

उद्गार रुकनेके उदावर्तमें यह क्रम करे कि स्निग्ध धूमपान करे और सुरा ( मदिरा ) में कालानमक तथा बिजौर नीचूका रस मिलाकर पीवे ॥ २८ ॥ और घमनके रुकनेके उदावर्तमें दोषके अनुसार स्नेह-नोषे इसे जीते और जवासार नमक मिले ( तैलादिका ) मालिश करे ॥ २९ ॥



## शुक्रज उदावर्तका यत्न ।

वस्तिशुद्धिकरावापं चतुर्गुणजलं पयः ।

आवारिनाशात्क्वथितं पीतवतं प्रकामतः ॥

रमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम् ॥ ३० ॥

शुक्रावरोधज उदावर्तमें वस्ति शुद्ध करनेवाले द्रव्य ( गोक्षुरादि ) डालकर चौगुना पानी डालकर दूधकी उबाले और पानी जलनेतक उबलने दे फिर उसे भर पेट पिलाकर प्यारी स्त्रियोंसे रमण करावे ॥ ३० ॥

( वक्तव्य ) इस समयका मुजाक रोग प्रायः इस उपरोक्त उदावर्तसे मिलता है ॥

## क्षुधा रोकने आदिके उदावर्तोंकी चिकित्सा ।

क्षुद्धिघाते हितं स्निग्धमुष्णमल्पं च भोजनम् ।

तृष्णाघाते पिबेन्मथं यवागूं वापि शीतलाम् ॥ ३१ ॥

भोज्यो रसेन विश्रांतः श्रमश्वासातुरो नरः ।

निद्राघाते पिबेत्क्षीरं स्वप्याच्चेष्टकथारतः ॥ ३२ ॥

क्षुधा रोकनेके उदावर्तमें चिकना गरम गरम थोड़ा भोजन देना उचित है । और तृषा रोकनेके उदावर्तमें मथ पीना या ठंडी यवागू पीना चाहिये ॥ ३१ ॥ श्रमसे श्वास बढेहुएकी रोकनेके उदावर्तमें मांसरसके संग भोजन करावे । और निद्रा रोकनेके उदावर्तमें दूध पीकर अच्छी २ बातें ( कहानियें ) सुनताहुआ इच्छापूर्वक सोवे ॥ ३२ ॥

आध्मानोत्थेषु रोगेषु यथास्वं प्रयतेत हि ।

यच्च यस्मिन्भवेत्प्राप्तं तच्च तस्मिन्प्रयोजयेत् ॥ ३३ ॥

उदावर्तमें जो प्रायः अफारा होताहै और उससे जो जो शूल आदि रोग होतेहैं उनका यथायोग्य प्रयत्न करे जो जो जिस जिस रोगमें यत्न कहेहैं उन रोगोंके यहाँ होनेमें वही यत्न करने चाहियें ॥ ३३ ॥

( श्लो० ३० ) शुक्रोदावर्ते रमणाय नार्योऽत्र श्यामाऽभिप्रेताः । गौराणां तु अति-रमणं कृच्छ्रकरम् । तदुक्तं हारीते मूत्रकृच्छ्रे “ गौरस्त्रीसेवनेनापि रक्तं क्लृपि भवर्तते ” इति ।

## अपथ्यभोजनका उदावर्त ।

वायुः कोष्ठानुगो रूक्षैः कषायकटुतिक्तकैः ।  
 भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्त करोति हि ॥ ३४ ॥  
 वातमूत्रपुरीषासृक्कफमेदोवहानि वै ।  
 स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं चातिवर्तयेत् ॥ ३५ ॥  
 ततो हृद्रस्तिशूलातो गौर्यारुचिपीडितः ।  
 वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण कुरुते नरः ॥ ३६ ॥  
 श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहवमिज्वरान् ।  
 तृष्णाहिकाशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् ।  
 लभते च बहूनन्यान्विकारान्वातकोर्पजान् ॥ ३७ ॥

रूखे भोजन करनेसे कसेले चरपरे और कड़वे पदार्थ विशेष खानेसे कोंठेका वायु ( अपानवायु ) कुपित होकर सद्यः ही उदावर्त पैदा करताहै ॥ ३४ ॥ वायु मूत्र विष्टा रुधिर कफ मेद इनके बहनेवाले स्रोतोंमें उदावर्त ( ऊर्ध्व विपरीत गति और भ्रमण ) करदेताहै और वायु ऊर्ध्वगामी होजाताहै और बहुतसे दस्त आकर ॥ ३५ ॥ फिर हृदय वस्ति इनमें शूल होताहै भारीपन और अरुचिकी पीडा होतीहै तथा अधोवायु मूत्र और दस्त कष्टसे आतेहैं ॥ ३६ ॥ और श्वास खाँसी प्रतिश्याय दाह मोह वमन ज्वर तृषा हुचकी शिरमें पीडा मन और श्रवण ( शब्द सुनने ) का भ्रम ये उपद्रव होतेहैं तथा अन्य वायुके बहुतसे विकार भी होजातेहैं जैसे कंप आदि ॥ ३७ ॥

( वक्तव्य ) कभी तो यह व्याधि दस्त बहुतसे आ आ कर बढ़तीहै और कभी दस्त पेशाब अधोवायु ये बंद होकर बढ़तीहै ॥

## इसकी चिकित्सा ।

तत्तैलं लवणाभ्यक्तं स्निग्धं स्विन्नं निरुहयेत् ।  
 दोषतो भिन्नवर्चस्कं भुक्तं चाप्यनुवासयेत् ॥ ३८ ॥  
 न चेच्छांतिं पर्याप्त्येवमुदावर्तः सुदारुणः ।  
 अथैनं बहुशः स्विन्नं शुंज्यात्स्नेहविरचनैः ॥ ३९ ॥  
 पाययेत् त्रिवृत्प्राण्यवानोरम्लपानकैः ।

हिंशुकुष्ठवचास्वर्जिविडंगं वा द्विरुत्तरम् ॥ ४० ॥

योगावेताबुदावर्तं शूलं चापि नियच्छतः ॥ ४१ ॥

इस उदावर्तवाले रोगीको लवण मिले तैलका मर्दन करके सिंग्ध कियेहुए-  
को स्वेदन करावे और निरुहण बस्ति करे और दोषके कारणसे पुरीष भिन्न  
होगया हो तो उसे उचित भोजन कराकर अनुवासनबस्ति करे ॥ ३८ ॥ और  
यदि दारुण बढाहुआ उदावर्त हो और इस विधिसे शांत न हो तो रोगीको  
बहुतसा स्वेदित करके स्नेहका ( एरंडतैलादिका ) विरेचन देवे ॥ ३९ ॥  
और निशोथ पीलु और अजवायन इन्हें खट्टे पत्रोंके संग लेवे अथवा हींग  
हींगसे दूनी कूट कूटसे दूनी वच वचसे दूनी सजीखार और इससे दूनी  
विडंग इन्हें लेवे ॥ ४० ॥ ये दोनों योग उदावर्त और शूलको नष्ट  
करदेतेहैं ॥ ४१ ॥

देवदार्वग्निकं कुष्ठं वचां पथ्यां पलंकषाम् ।

पौष्कराणि च मूलानि तोयस्यार्द्धाढकं पचेत् ॥ ४२ ॥

पादावशिष्टं तत्पीतमुदावर्तं व्यपोहति ।

मूलकं शुष्कमाद्रं च वर्षाभूः पंचमूलकम् ॥ ४३ ॥

आरेवतफलं चाप्सु पक्त्वा तेन घृतं पचेत् ।

तत्पीयमानं शमयेदुदावर्तमशेषतः ॥ ४४ ॥

वचामतिविषां कुष्ठं यवक्षारं हरीतकीम् ।

कृष्णां निर्दहनीं चापि पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ४५ ॥

इक्ष्वाकुमूलं मदनं विशल्यातिविषे वचाम् ।

कुष्ठं किण्वाग्निकौ चापि पिबेत्तुल्यानि पूर्ववत् ॥ ४६ ॥

देवदारु चित्रक कूट वच हरड़े गूगल और पुष्कर मूल इन्हें आधे आढक  
( दो प्रस्थ ) पानीमें पकावे ॥ ४२ ॥ चौथाई रहे उतार ले और इसे पीवे यह  
उदावर्तको नष्ट करताहै और मूलक ( कोई मूली कहतेहैं कोई पीपला मूल  
मानतेहैं ) मूली माननेवाले मूली मूली और गीली मूली ऐसा अर्थ करतेहैं  
और पिप्पलीमूल माननेवाले पीपलामूल और अदरस ऐसा अर्थ करतेहैं और  
साँठी और बृहत्पत्रमूल और किरमालेकी फली इन्हें पानीमें काथ करके उसमें  
घृत पकावे यह घृत पीना सब उदावर्तोंको नष्ट करताहै ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ तथा

वच और अतीस कूट जौखार हरड़े पीपल और निर्दहनी ( अरणी ) इनको गरम जलसे पीवे ॥ ४६ ॥ अथवा इक्ष्वाकु ( कटुतुंबी ) की जड़ मैनफल इन्द्रायन अतीस वच कूट किण्व ( मद्यका बीज ) और चित्रक इनको पहलेके भाँति गरम पानीसे पीवे ॥ ४७ ॥

मूत्रेण देवदार्वग्नित्रिफलावृहतीः पिबेत् ॥ ४८ ॥

यवप्रस्थं फलैः सार्द्धं कंटकार्या जलाढके ।

पक्त्वाऽर्द्धं प्रस्थशेषं तु पिबेद्धिगुसमन्वितम् ॥ ४९ ॥

मदनालाबुबीजानि पिप्पलीं सनिदिग्धिकाम् ।

संचूर्ण्य प्रथमेन्नाड्यो विशत्येतद्वथै गुदम् ॥ ५० ॥

अथवा देवदारु चित्रक त्रिफला और बड़ी कटेली इन्हें गोमूत्रके संग पीवे ॥ ४८ ॥ अथवा एक प्रस्थ जौ और कटेलीके फल मिलाके एक आढक जलमें पकावे आधा प्रस्थ शेष रहे हींग मिलाके इसमेंसे पीवे ॥ ४९ ॥ अथवा मैनफल कड़वीतोंबीके बीज पीपल और कटेली इन्हें पीस चूर्ण बनाकर नालीसे गुदामें फूँक ( अर्थात् नालीमें भरके नाली गुदामें देकर ऐसे फूँक मार जो वह चूर्ण गुदामें चला जावे ( यह भी उदावर्त नाशक है ) ॥ ५० ॥

चूर्णं निकुंभकंपिल्लश्यामेक्ष्वाकग्निकोद्भवम् ।

कृतवेधनमागध्यो लवणानां च साधयेत् ॥ ५१ ॥

गैवां मूत्रेण ता वृत्तीः कारयेत्तु गुदानुगाः ।

सद्यः शर्मकरावेतौ योगावमृतसंभवौ ॥ ५२ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे पंचपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

अथवा दंती कमेली निशोथ कड़वीतुंबी चित्रक कड़वीतोंबी और पीपल तथा पांचों नमक इनको गोमूत्रमें पीसकर चर्त्ती बनावे और गुदामें प्रवेश करदे ये दोनों योग ( एक ऊपरवाली नालीसे गुदामें औषध पहुँचना दूसरे यह चर्त्ती ) उदावर्त रोगवालेके लिये अमृतके समान हैं और तात्काल आराम करनेवाली हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

इति सुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायां उत्तरतन्त्रे पंचपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

## षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ५६.

अथातो विषूचिकाप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम विषूचिका (हैजे) के प्रतिषेधका व्याख्यान करतेहैं-

## विषूचीकाहेतु और निरुक्ति ।

अजीर्णमांमं विष्टब्धं विदग्धं च यदीरितम् ।

विषूच्यलसंकौ तस्माद्भवे चापि विलंबिका ॥ १ ॥

सूचोभिरिव गात्राणि तुदन्संतिष्ठतेऽनिलः ।

यस्याजीर्णेन सा वैद्यैरुच्यते तु विषूचिका ॥ २ ॥

पहले जो आम विष्टब्ध और विदग्ध अजीर्ण कहा ज चुकाहै उसीसे विषूची अलस और विलंबिका रोग होतेहैं ॥ १ ॥ जिसके अजीर्णमें सूईके चुभनेकेसी पीडा देता हुआ वायु स्थित होजावे ( न नीचेको अधो वायुसे निकले न ऊपरको डकारसे ) तब उसे वैद्य विषूचिका कहतेहैं ॥ २ ॥

न तां परिमिताहारं लभन्ते विदितागमाः ।

मूर्धास्तामजितार्त्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः ॥ ३ ॥

जो विचारपूर्वक प्रमाणका यथायोग्य भोजन करनेवाले बुद्धिमान् होतेहैं उन्हें यह व्याधि नहीं होती और जो मूर्ख अजितेंद्रिय और खानेके लालची विशेष होतेहैं उनको हुआ करतीहै ॥ ३ ॥

## विषूचिका के उपद्रव सहित लक्षण ।

मूर्च्छातिसारौ वमथुः पिपासा शूलं भ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः ।

वैवर्ण्यकंपौ हृदये रुजश्च भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः ॥ ४ ॥

इस विषूचीरोगमें मूर्च्छा अतिसार वमन प्यास शूल भ्रम उद्वेष्टन जंभाई दाह वर्णविगड़जाना कंपहोना हृदयमें पीडा और शिरमें वेदना ये लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥

## अलसके लक्षण ।

कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं ताम्यत्यथ च कूजति ।

निरुद्धो मारुतश्चापि कुक्षायुपरि धावति ॥ ५ ॥

( श्लो० ३ ) विदितागमाः आयुर्वेदज्ञाः । अजितात्मानः क्षुद्रमनसः अजितेंद्रियाश्च ।

( श्लो० ५ ) कुक्षौ उपरि धावतीति कुक्षौ उदरे च उपरि उपरि धावतीत्यर्थः ।

वातवचोनिरोधश्च कुक्षौ यस्य भृशं भवेत् ।

तस्यालसकमाचष्टे हिकोद्वारौ तु यस्य तु ॥ ६ ॥

कूख अत्यंत फूलजावे अंधरीसी आवे आंतें बोलें अधोवायु रुकजावे और कूखोंमें ऊपर ऊपरको चढ़े ॥ ५ ॥ वायु और दस्त रुकजावें और कूखमें दरद हो डुचकी और डकारें आवें ये लक्षण जिसके हों उसके अलस रोग ( विपचिका भेद ) जानना ॥ ६ ॥

### विलंबिकाके लक्षण ।

दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्तते नोद्धर्मधर्षश्च यस्य ।

विलंबिकां तस्य विवर्जनीयामार्चक्षते शास्त्रविदः पुराणाः ॥ ७ ॥

भोजन कियाहुआ कफ और वायुसे दुष्ट होकर जब न ऊपरको वमनसे निकलताहै और न नीचेको; दस्तसे निकलताहै उसे शास्त्रके जाननेवाले पुराने वैद्य असाध्य ( त्यागने योग्य ) विलंबिका ( बंध हैजा ) कहतेहैं ॥ ७ ॥

यत्रस्थमामं विहजेत्तेमेव देशं विशेषेण विकारजातैः ।

दोषेण येनावर्तते सर्वलिङ्गैस्तं लक्षयेदामसमुद्भवैश्च ॥ ८ ॥

जिस जगह आम ( बिना पका भोजन ) होताहै उसी स्थानमें विकारसे विशेष पीड़ा होतीहै ( वहां ही दरद होतीहै ) और जिस दोषसे वह व्याप्त होवे उसीके लक्षणोंसे उसे जानना चाहिये जो जो आमके दोषसे उपद्रव होतेहैं उन्हें इसी भांति जानना चाहिये ॥ ८ ॥

### इसकी असाध्यता ।

यः श्यावदंतोष्ठनखोऽल्पसंज्ञश्छर्द्यदितोऽभ्यंतरयातनेत्रः ।

क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसंधिर्यार्यान्नरोऽसौ पुनरागमाय ॥ ९ ॥

जिसके दांत होंठ नख ये काले पड़जावें संज्ञा घटजावे वमनकी पीड़ासे नेत्र भीतरकी पुलजावे आवाज बैठजावे सब संधियां ढीली पड़जावें ऐसा विपचिका रोगी मृत्युको प्राप्त होवे ॥ ९ ॥

### इसकी चिकित्साका निर्देश ।

साध्यासु पाण्योदहनं प्रशस्तमग्निप्रतापो वमनं च तीक्ष्णम् ।

पक्वं ततोऽग्नें तु विलंबनं स्यात्संपाचनं चापि विरेचनं वै ॥ १० ॥

साध्यविषूची और अलसादिमें पार्णिस्थान ( टकने ) में दाग देना श्रेष्ठ होता है और अग्निसे तपाना तीक्ष्ण वमन कराना और भोजन पकनेपर लंघन कराना और पकता न हो तो पाचन औषध देना अथवा विरेचन देके निकाल देना उचित है ॥ १० ॥

विशुद्धदेहस्य हि सर्वं एव मूर्च्छातिसारादिरूपैति शान्तिम् ।

आस्थापनं चापि वदन्ति पथ्यं सर्वासु योगानपरान्निबोध ॥ ११ ॥

जब वमन रेचनादिसे शुद्ध शरीर होजाता है तब मूर्च्छा अतिसारादिक उपद्रव शांत होजाते हैं और इस अवस्थामें आस्थापनवस्तिको भी पथ्य कहते हैं इनके शिवाय सबके लिये और योग सुनो ॥ ११ ॥

पथ्यावचाहिङ्गुकलिङ्गगृजसौवर्चलैः सातिविषैश्च चूर्णम् ।

सुखांबुपीतं विनिहत्यजीर्णं शूलं विषूचीमरुचिं च सद्यः ॥ १२ ॥

हरड़े वच हींग इंद्रजौ लहसन कालानमक और अतीस इनका चूर्ण कर गरम पानीसे लेवे यह अजीर्ण शूल विषूची और अरुचि इनको तात्काल नष्ट करता है ॥ १२ ॥

क्षारागदं वा लवणं विडं वा गुडप्रगाढानथ सर्षपान्वा ।

अम्लेन वा सैधवहिङ्गुयुक्तौ सबीजपूर्णौ सघृतौ त्रिवर्गौ ॥ १३ ॥

कटुत्रिकं वा लवणैरुपेतं पिबेत्सुहीक्षीरविमिश्रितं तु ।

कल्याणकं वा लवणं पिबेत्तु यदुक्तमांदावर्निलामयेषु ॥ १४ ॥

कल्पस्थानकी दुंदुभिस्वनीय अध्यायोक्त क्षारागदका उपयोग करे अथवा बिड़नमक खावे अथवा गुडमें सरसों मिलाके इनको अम्लरससे लेवे अथवा सैधव हींग मिलाके बिजोरा घृत और त्रिवर्ग ( कई त्रिफला कई त्रिगंध कहते हैं कोई त्रिफला त्रिकटु दोनों कहते हैं ) मिलाकर लेवे ॥ १३ ॥ अथवा त्रिकटुमें नमक मिलाके थोहरका दूध मिलाके पीवे अथवा कल्याण लवण जो वातव्याधिमें कहा है उसे पीवे ॥ १४ ॥

कृष्णाजमोदक्षवकाणि वापि तुल्यौ पिबेद्वा मगधानिकुंभौ ।

दंतीयुतं वा मगधोद्भवानां कैलकं पिबेत्कोषवतीरसेन ।

( श्लो० १२ ) गृजं लघुनम् । केचित्पलाण्डुमाहुः ।

( श्लोकः १३ ) त्रिवर्गौ द्विवचनवशेन त्रिफलान्तिकटुकौ एव ज्ञेयौ ।



उष्णाभिरद्भिर्मगधोद्भवानां कल्कं पिवेन्नागरकल्कयुक्तम् ॥ १५ ॥

व्योषं करंजस्य फलं हरिद्रे मूलं समं वाप्यथ मातुलुंग्याः ।

छायाविशुष्का गुटिकाः कृतास्ता हन्युर्विपूचीं नयनानंजनेन १६ ॥

पीपल अजमोद और क्षयक ( राई ) इनको अथवा पीपल और दंती बराबर पीवे अथवा दंती और पीपलके कल्कको कड़वीतोरीके रससे पीवे अथवा पीपल और सोंठके कल्कको गरम पानीसे पीवे ॥ १५ ॥ और त्रिकटु करंजके फल दोनों हलदी और विजोरेकी जड़ समान लेकर गोली बनाके छायामें सुखाले इनका नेत्रोंमें अंजन लगानेसे विपूची नष्ट होवे ॥ १६ ॥

## भोजनका उपदेश ।

सुवामितं साधु विरेचितं वा सुलंघितं वा मनुजं विदित्वा ।

पेयादिभिर्दीपनपाचनीयैः सम्यक् क्षुधातं समुपक्रमेत ॥ १७ ॥

अच्छी तरह वमन हुआ या विरेचन दिया या लंघन किया इत्यादि प्रकारसे शुद्ध हुए मनुष्यको सब तरह ठीक क्षुधा लगी ऐसा जानकर उसे दीपन पाचन पेयादि भोजन देने चाहिये ॥ १७ ॥

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विवृद्धं विगुणानिलेन ।

प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥ १८ ॥

तस्मिन्भवत्यामसमुद्भवे तु तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः ।

आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृल्लासउद्गारविघातनं च ॥ १९ ॥

स्तंभः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलोऽथ मूर्च्छा च शकृदमिश्र ।

धासश्च पक्वाशयजे भवन्ति लिंगानि चात्रालसकोद्भवानि ॥ २० ॥

आम या मल क्रमसे संचित हुए विगुण वायुसे रुककर यथा योग्य प्रवर्त नहीं होते तो इसे आनादका विकार कहते हैं ॥ १८ ॥ आमके दोषसे हुए आनादमें तृष्णा प्रतिश्याय शिरमें गरमी आमाशयमें शूल और भारीपन और मिचलाना और डकारें बंद होना ये लक्षण होते हैं ॥ १९ ॥ कमर पीठ दन्त और मूत्र ये बंद होना और शूल और मूर्च्छा हो और विदाहमें वमन हो आम हो ये लक्षण पक्वाशयज ( पुरीषज ) आनादके हैं

तथा येही लक्षण अलसके भी होतेहैं ( अथवा इसीसे अलसके लक्षण पैदा होजातेहैं अर्थात् इसीसे अलस होजाताहै ) ॥ २० ॥

## इसकीचिकित्सा ।

आमोर्द्धवे वातमुपक्रमेत संसर्गभक्तक्रमदीपनीयैः ।

अथेतारं यो न शर्कूद्धमे तमामं जयेत्स्वेदनपाचनैश्च ॥ २१ ॥

आमज आनाहमें पेयादि क्रमसे जो दीपन हो वायुको शांत करे और दूसरेमें जो विषाकी वमन न करताहो उसके आमको स्वेदन और पाचनोंसे पकावे ॥ २१ ॥

विषूचिकायां परिकीर्तितानि द्रव्याणि वैरेचनिकानि यानि ।

तान्येव वर्तीर्वितरेद्विचूर्ण्यमहिष्यजावीभगवां तु मूत्रैः ॥ २२ ॥

स्विन्नस्य पायौ विनिवेश्य ताश्च चूर्णानि चैषां प्रथमेत्तु नाड्या ॥

विषूचिकामें जो विरेचन द्रव्य ( दंती आदि ) कहेंहैं उन्हें ही पीसकर भेंस बकरी भेड हथनी और गौ इनके मूत्रसे बत्ती बनावें और रोगीको स्वेदन करा कर उसकी गुदामें वह बत्ती प्रविष्टकरे अथवा इस चूर्णको नाली द्वारा गुदामें प्रथमन करे ॥ २२ २३ ॥

मूत्रेण संसाध्यं यथा विधानं द्रव्याणि यान्यूर्द्धमर्धश्च याति ।

क्रांथेन तेनाशु निरूहयेच्च मूत्रार्द्धयुक्तेन समक्षिकेन ॥ २४ ॥

त्रिभंडियुक्तं लवणप्रकुंचं दत्त्वा विरिक्तक्रममाचरेच्च ।

एष्वेव तैलेन च साधितेन प्राप्तं यदि स्यादनुवासयेच्च ॥ २५ ॥

इत्युत्तरतंत्रे षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

जो द्रव्य ऊर्द्धगामी तथा अधोगामीहैं अर्थात् वमन विरेचनके द्रव्योंको यथायोग्य गोमूत्रमें सिद्धकर और उन्हींका काथकर उनमें आधा गोमूत्र और शहद मिलाकर निरूहणवस्ति करना श्रेष्ठ है ॥ २४ ॥ तथा निशोथ और एक प्रकुच ( पल ) लवण देवे और विरेचनकासा क्रम ( पथ्यादि ) करावे और इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए तैलसे यदि मुनासिव हो तो अनुवासन वस्ति करे ॥ २५ ॥

( श्लो० २१ ) संसर्गभक्तक्रमः पेयादिक्रमः ( इति नि० सं० ) इतरं पकाशयानाहम् ।

( श्लो० २२ ) इभकथनेन हस्तिनी ग्राह्या ।

यूनानीवाले इसे हेजा कहतेहैं और डाक्टरोंमें कालरा ( Cholera ) कहतेहैं यह महाभयंकर व्याधि है इसके समान शीघ्र मारक अन्यकोई व्याधि प्रायः नहीं है ।

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे षट्षंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

## सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ५७.

अथातोऽरोचकप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम अरुचिके प्रतिषेधकी अध्यायका व्याख्यान करतेहैं-

दोषैः<sup>१</sup> पृथक्सह च चित्तविपर्ययाच्च<sup>२</sup> भक्तायनेषु हृदि चा-  
वतते<sup>३</sup> प्रगाढम् । नात्रे<sup>४</sup> रुचिर्भवति तं<sup>५</sup> भिर्पेजो विकारं<sup>६</sup>  
भक्तोपघातमिह पंचैविधं वदन्ति<sup>७</sup> ॥ १ ॥

तीन दोषों वायु पित्त और कफ इनसे पृथक् पृथक् चाँथे सन्निपातसे पाँचवें चित्तके विगड़ जानेसे ( शोक भयादिसे ) भोजनके मार्गों ( जिह्वा जिह्वामूल और आहारनलका आदि ) तथा हृदय इनमें प्रगाढता प्राप्त होजातीहै जिससे अन्नपर रुचि नहीं होती और भोजन नहीं खाया जाता इस विकार अरुचिको वैद्य उपरोक्त क्रमसे पाँच प्रकारका कहतेहैं ॥ १ ॥

( वक्तव्य ) भक्तोपघातशब्दसे अरुचि भक्तद्वेष और अभक्तच्छंद इत्यादि भोजन नहीं खाया जानेके सभी पर्यायोंका ग्रहण होताहै कई वैद्य इनके पृथक् लक्षण मानते हैं चरक सुश्रुत आप ग्रंथोंमें इसके पृथक् भेद नहीं किये भोजनसंहितामें इनके जुदे लक्षण लिखेहैं पर उन्हें कई वैद्य ठीक नहीं मानते क्योंकि भोजने लिखा है कि "प्रक्षिप्तं तु मुखे चात्र यत्र नास्वादते नरः ॥ अरोचकः स विक्षेपो भक्तद्वेषमतः शृणु ॥ चित्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तु भोजनम् ॥ द्वेषमायाति यो जंतुर्भक्तद्वेषः स उच्यते" अर्थात् मुखमें डाला हुआ अन्न नहीं भापे उसे वेअरुचि कहतेहैं परंतु वास्तवमें अरुचि यह होतीहै जिसमें भक्षण की तरफ रुचि ही न हो इसी प्रकार वे भक्तद्वेष चित्तवनादिसे द्वेष होनेको मानतेहैं और वास्तवमें भोजन खाये जाने या मुखमें लेनेसे द्वेष जग ही तब भक्तद्वेष कहाजाताहै इसीसे उन भोजनके लक्षणोंको कई वैद्य विगड़ मानकर अंगीकार नहीं करते ।

वास्तवमें जिसमें अन्नपर रुचि ही न हो उसे अरुचि समझिये और जिसमें रुचि तो भोजनपर हो परंतु मुँहमें लेते ही बुरा लगे या उकलाई आजावे उसे भक्तद्वेष जानना चाहिये ।

## अरुचिके लक्षण ।

हृच्छूलपीडनैयुतं विरसाननत्वं वातात्मके भवति लिङ्गमरोचके तु ।  
हृदाहचोषबहुता मुखतिक्तता च मूर्च्छा सतृट् भवति पित्तकृते तथैव २  
कण्डूगुरुत्वकफसंभवसादितंद्राश्लेष्मात्मके मधुरमास्यमरोचके तु ।  
सर्वात्मके पवनपित्तकफा बहूनि रूपाण्यथार्स्य हृदये समुदीरयन्ति ३  
संरागशोकभयविभुतचेतसस्तु चिंताकृतो भवति सोऽशुचिदर्शनाच्च

वायुकी अरुचिमें हृदयमें शूल और पीडा हो मुँह विरस हो ये लक्षण होते हैं और पित्तकी अरुचिमें हृदयमें दाह चोष मुँहमें बहुत कड़वापन मूर्च्छा तथा ये लक्षण होते हैं ॥ २ ॥ और कफकी अरुचिमें ये लक्षण होते हैं कि खाज हो भारीपन रहे मुँहसे कफ या पानी झिरे शिथिलता हो तंद्रा और मुँह मीठा रहे और सन्निपातके अरोचकमें वायु पित्त कफ सबके लक्षण हों और मुख तथा हृदयमें भी अनेक रूप मालूम पड़े ॥ ३ ॥ और रागसे या शोकसे या भयसे या अशुद्ध खराब वस्तुके देखनेसे जो चित्त बिगड़ जाता है उसको प्रायः उसी भांतिकी विशेष चिंता रहती है ॥ ४ ॥

## अरुचिकी चिकित्सा ।

वाते वचांबुवमनं कृतवान्पिबेच्च स्नेहैः सुराभिरर्थवोष्णजलेन चूर्णम् ।  
कृष्णाविडंगयवभस्महरेणुभाङ्गीरास्नैलहिङ्गुलव गोक्षमनागराणाम् ५

वायुकी अरुचि हो तो वचके जलसे वमन कराकर पीपल विडंग जौकी राख हरेणु भारंगी रास्ना इलायची हींग सेंधानमक और सोंठ इनके चूर्णको स्नेहसे या मदिरासे या गरम पानीसे पीवे ॥ ५ ॥

( श्लो० ४ ) संरागः कामः अथवा उत्साहः संरागादिभिर्विभुतचेतसः विभुतचित्ताव उत्सादेपि कदाचित्तल्लयचित्तत्वादरुचिः संजायते तथा अपवित्रदर्शनादेश्च स अरोचकः चिंताकृतो भवतीति भावः । डल्लनस्तुइत्याह-विभुतचित्तस्य अशुचिदर्शनात् चिंताकृतस्य च अरोचकस्य वातादिभेदेन लक्षणानि पठन्ति इति ।

पित्ते गुडांबुमधुरैर्वमनं प्रशस्तं स्नेहः ससैधर्वासितामधुसर्पि  
रिष्टः । निंबांबुवामितवतः कफजेऽनुपानं राजद्रुमांबुमधुना  
तु सदीप्यकं स्यात् । चूर्णं यदुक्तं मथवाऽनलजं तदेव सर्वं  
श्च सर्वकृतमेवमुपक्रमेत ॥ ६ ॥

पित्तकी अरुचिमें गुडके जल और मधुर द्रव्योंसे वमन करावे और संधानमक मिश्री शहद घृत इनसे युक्त स्नेह देवे ( अर्थात् मक्खन मिश्री या शहद आदि डालकर चटावे ) । कफकी अरुचि नींबूके काथसे वमन कराके किरमालेके काथमें अजमोदा युक्त करके शहद मिलाके ऊपरसे पिलावे अथवा वायुकी अरुचिमें जो चूर्ण कहाहै वही देवे और संनिपातकी अरुचिमें सब यत्न करे ( जो दोष उल्वण हो उसीके प्रधानयत्नपूर्वक मिश्रित यत्न करे ) ६ ॥

द्राक्षापटोलविडवेत्रकरीरनिंबमूर्वाभयाक्षवदरामलकेंद्रवृक्षैः ।  
बीजैः करंजनृपवृक्षभैश्च पिष्टैर्लेहं पचेत्सुरभिर्मूत्रयुतं  
यथावत् ॥ ७ ॥ मुस्तां वचां त्रिकटुकं रजनीद्वयं च भाङ्गीं  
च कुष्ठमथ निर्दहनीं च पिष्ट्वा । मूत्रेर्विजे द्विरदमूत्रयुते पचे-  
द्वा पाठां तु गामतिविपां रजनीं च मुख्याम् ॥ ८ ॥ माण्डूकि-  
मर्कममृतां च सलांगलारुयां मूत्रे पचेत्तु महिषस्य विधान-  
विद्वा । एतान्न सन्ति चतुरो लिहन्तस्तु लेहान्गुल्मारुचिश्च-  
सनकंठहृदामयाश्च ॥ ९ ॥

दाख परवल विडलवण वेत करीर नींबू मूर्वा हरदे बहेड़ा आवले  
बेर इन्द्रजी करंज और अमलतासके बीज इन्हें पीसकर गोमूत्रसे पका-  
कर लेह ( चटनी ) बनावे ॥ ७ ॥ अथवा नागरमोथा वच त्रिकटु  
दोनों हलदी भारंगी फूट और निर्दहनी ( चित्रक या अरनी ) इनको  
पीसकर भेड़के मूत्रमें पकाके अथवा चटावे अथवा पाठा यशलोचन  
( तयाशीर ) असीस और हलदी इनको पीसके हाथीके मूत्रमें पकाके  
चटनी बनावे ॥ ८ ॥ अथवा माण्डूकी ( ब्राह्मी भेद ) आक ( आकके फूलका  
जीरा ) गिलोय और लांगलारुया ( श्रिषिर्णी ) इनको पीस भेड़के मूत्रमें  
पकाके विधि जाननेवाला वैद्य चटनी बनावे इनके खाटनेसे इन चारों अचले  
रोगोंसे गुल्म अरुचि श्वास तथा कंठ और हृदयके रोग नष्ट होजातेहैं ॥ ९ ॥

( श्लो० ९ ) सलांगलारुयामिति माण्डूकी श्रिषिर्णी इति ( शा० नि० ) ।

## अरुचिमें पथ्य।

सात्म्यान्स्वदेशरचितान्विविधांश्च भक्ष्यान्

पानानि मूलफलषाडवरागयोगान्॥ अर्वाद्रसांश्च विविधान् ॥

वि<sup>१</sup>विधैः प्र<sup>२</sup>कारैर्भुजितं वापि<sup>३</sup> लघुरूक्षमनःसुखानि ॥ १० ॥

जो सानुकूल हो ( माफकत हों ) अपने देशके अनेक प्रकारसे बने हुए भक्ष्य पदार्थ तथा पीनेके पदार्थ और मूल फल तथा खांडव ( खटे कट्टी आदिके ) पदार्थ और जो अच्छे लगें ऐसे पदार्थ खावे और अनेक प्रकारके रसों और ( शोरवों ) को अनेक प्रकारसे खावे तथा हलके रूखे और मनको सुख देनेवाले पदार्थ खाने पीने उचित होते हैं ॥ १० ॥

आस्थापनं विधिवदत्र विरेचनं च कुर्यान्मृदूनि शिरसश्च विरे-  
चनानि । त्रीण्यूषणानि रजनीत्रिफलायुतानि चूर्णीकृतानि  
यवशूकविमिश्रितानि ॥ ११ ॥ क्षौद्रायुतानि पितरेन्मुख-  
धावनार्थमन्यानि तिक्तकटुकानि च भेषजानि । मुस्तादि  
राजतरुवर्गदशांगसिद्धैः क्वाथैर्जयेन्मधुयुतैर्विविधैश्च ले<sup>४</sup>हैः ॥  
॥ १२ ॥ मूत्रासवैर्गुडकृतैश्च तथात्वारिष्टैः क्षारासवैश्च मधु-  
माधवतुल्यगंधैः । स्यादेष्टं एवं कफवातहते वि<sup>५</sup>धिश्च  
शां<sup>६</sup>तिं गते<sup>७</sup> हुतभुजिप्रशमायै तस्य ॥ १३ ॥

( श्लो० १० ) अरोचके मुख्यत्वेन कफः। तस्माद्रूक्षस्योपयोगोऽहितः तथा शधिपाकि-  
त्वाल्लघुपदार्थस्योपयोगः तथा चारोचकस्य मनोपि अधिष्ठानं तस्मान्मनःसुखानि  
पदार्थानि उपयोज्यानीति ।

( श्लो० ११ ) यद्यपि तेजोन्मादभयशोकेत्यादिना अरोचके आस्थापननिषेधः  
तथापि वमनादिक्रमोत्तरकाले वातनिबद्धे सति देयं न च आदौ ( इति नि० सं० ) ।

( श्लो० १२ ) मुखधावनार्थं मुखशुद्धयर्थं कवलगंडूपादिभिर्मुखशोधनार्थमिति भावः।  
दशांगं दशमूलम् ।

( श्लो० १३ ) मूत्रासवैर्गुडकृतैः कुष्ठचिकित्सितोक्तविधिना गुडमध्वादिकृतैरित्यर्थः।  
आरिष्टैः अभयारिष्टादिभिः । क्षारासवैः मध्वादिभिः पलाशक्षारपानीयेन सह निष्पादितै  
र्मेहाकुष्ठाभिहितैः । मधुमाधवतुल्यगंधैरिति । मधु क्षौद्रं माधवं मधुकृतं तयोस्तुल्यगंधैः।  
( इति नि० सं० ) ।

यहाँ विधिपूर्वक आस्थापन वस्ति भी करे और विरेचन भी देवे और हलका शिरोविरेचन भी करे और त्रिकटु हलदी त्रिफला जवाखार इनका चूर्ण बनाकर उपयोग करे ॥ ११ ॥ और इस चूर्णमें शहद मिलाकर ( जलसे पतला करके ) कुल्ले करे तथा और कडुवे चरपेरे औषध करे ( जैसे अदरक नमक मिलाके खाना इत्यादि ) अथवा मुस्तादि और आरग्वधादि गण और दशमूल इनके काथ शहद मिलाके अनेक प्रकारके अवलेह बनावे और उन्हें अरुचिमें उपयोग करे ॥ १२ ॥ मूत्रासवोंसे गुडके अरिष्टोंसे तथा क्षारासवोंसे तथा शहदवाले अथवा शहदके पदार्थोंकेसी गंधवाले आसवोंसे अरुचिका उपचार करे और कफ वायुसे यदि जठराग्नि मंद होजातीहै तब भी उसके शमन करनेको यही विधि करनी श्रेष्ठ होतीहै ॥ १३ ॥

इच्छाभिघातं भयशोकहर्तं स्तरं भौ भावैर्न भवैर्वाय वितरेत्स्वर्गं  
शक्यं रूपान् । अर्थे पुं चाप्यपचिते पुं पुनर्भवाय पौराणिकैः  
श्रुतिपथैरनुभावयेत्तर्म् ॥ १४ ॥ दैन्यं गते मनसि बोधन-  
मत्र शस्तं यद्येति प्रियं तदुपसेव्यं मरोचके तु ॥ १५ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

इच्छाके भंग होनेसे भयसे शोकसे अंतराग्निके नष्ट होने ( अरुचि होने ) में यथाशक्ति उन्हीं उन भावोंके होनेका यत्न करे ( भयशोकमें उन्हें दूर करनेका यत्न करे ) और धनसंतानादिके नष्ट होनेके कारणसे हो तो उनके फिर होजाने आदि कथनेसे संतोष दिलावे तथा पुराणोंकी कथा आदि सुनाकर मनकी संतोष करावे ॥ १४ ॥ और जो मनमें दीनता गरीबी सुस्ती या वैराग्य आजानेसे हो तो उसे ज्ञान देना शिक्षा करना ही श्रेष्ठ होताहै और जो उसे अच्छा लगे वही इस अरुचिमें सेवन करावे ॥ १५ ॥

पूतानी एकीम अरुचि को जूटलचकर कहतेहैं तथा एकप्रकार अरुचि को तुकसान और चतलान शहवतनु नाम कहतेहैं अर्थात् भक्तद्वेष को जूटलचकर और अरुचि ( क्षुधानाश ) को तुकसान और चतलान शहवतनु नाम कहतेहैं ॥



## अष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ५८

अथातो मूत्राघातप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम मूत्राघात ( मूत्र बंद हो जाने ) के प्रतिषेधकी अध्यायका व्याख्यान करतेहैं-

वातकुंडलिकाष्ठीला वातबस्तिस्तथैव च ।

मूत्रातीतः सजठरो मूत्रोत्संगः क्षयस्तथा ॥ १ ॥

मूत्रग्रंथिर्मूत्रशुक्रमुष्णवातस्तथैव च ।

मूत्रौकसादौ द्वौ चापि रोगा द्वादश कीर्तिताः ॥ २ ॥

वातकुंडलिका वाताष्ठीला वातबस्ति मूत्रातीत मूत्रजठर मूत्रोत्संग मूत्रक्षय ॥ १ ॥ मूत्रग्रंथि मूत्रशुक्र और उष्णवात और दो प्रकारके मूत्रौकसाद ( एक पित्तका मूत्रौकसाद दूसरा कफका ) इस भांतिसे मूत्राघात १२ प्रकारका होताहै (अर्थात् मूत्रावरोध संबंधी ये बारह प्रकारके रोग होतेहैं) ॥ २ ॥

### वातकुंडलिकाके लक्षण ।

रौक्ष्याद्वेगविघाताद्वा वायुर्बस्तौ सवैर्दनम् ।

मूत्रं संगृह्य चरति विगुणः कुंडलीकृतः ॥ ३ ॥

सृजेदल्पाल्पमथवा सरुजस्कं शनैः शनैः ।

वातकुंडलिकां तां तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणम् ॥ ४ ॥

रूक्ष पदार्थोंके सेवनसे रूक्षता होनेपर अथवा मूत्रके मलके वेग रोकनेसे विगुण हुआ वायु बस्तिस्थानमें प्राप्त होकर वेदनासहित मूत्रको रोककर कुंडलाकार होजाताहै ( अर्थात् बस्तिस्थानमें चक्कर खाने लगताहै ) और मूत्रको बंद करदेताहै ॥ ३ ॥ अथवा थोड़ा थोड़ा पीडासहित धीरे धीरे मूत्र आताहै इस दारुण व्याधिको वातकुंडलिका कहतेहैं ॥ ४ ॥

### वाताष्ठीलाके लक्षण ।

शकृन्मार्गस्य बस्तेश्च वायुरंतरमाश्रितः ।

अष्ठीलावद्धनं ग्रंथिं करोत्यचलमुत्तमम् ॥ ५ ॥

विण्मूत्रानिलसंगश्च तत्राध्मानं च जायते ।

वेदना जायते वस्तौ वाताष्ठीलेति तां विदुः ॥ ६ ॥

मलमार्ग और वस्ति ( मसना ) इनके मध्यमें प्राप्त हुआ वायु जब पत्थर जैसी स्थिर और कड़वी गांठसी बांध देता है ॥ ५ ॥ तब दस्त पेशाब और अधोवायु सब रुकजाते हैं और उसस्थानपर अकाराभी होजाता है और वस्तिस्थानमें दर्दभी होता है इस व्याधिको "वाताष्ठीला " कहते हैं ॥ ६ ॥

### वातवस्तिके लक्षण ।

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः ।

निरुणद्धि मुखं तस्य वस्तेर्वस्तिगतोऽनिलः ॥ ७ ॥

मूत्रसंगो भवेत्तेन वस्तिकुक्षिनिपीडितः ।

वातवस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसादनः ॥ ८ ॥

यदि कोई मूर्ख पुरुष मूत्रके वेगको रोक लेवे तो उसके वस्तिस्थानमें वायु प्राप्त होकर उसके मुखको रोक देता है ॥ ७ ॥ जिससे मूत्र बंद होजाता है और वस्ति और कूखमें पीडा होती है उसे "वातवस्ति" कहते हैं यह व्याधि कष्टसाध्य है ॥ ८ ॥

### मूत्रातीति ।

संधार्य वेगं मूत्रस्य यो भूयः क्षुमिच्छति ।

तस्य नाभ्येति यदि वा कैथंचित्संप्रवर्तते ॥ ९ ॥

प्रवाहतो मंदरुजमल्पमल्पं पुनः पुनः ।

मूत्रातीति तु तं विद्यान्मूत्रवेगवियातजम् ॥ १० ॥

जो मनुष्य मूत्रके वेगको ( पेशाब करते करते ) रोक लेवे और फिर व्यागनेका इच्छा करे तो या तो मूत्र उत्तरताही नहीं और यदि कदाचित् उत्तरता भी है तो उत्तरते समय पीडा होती है और थोड़ा २ बारबारमें उत्तरता है यह मूत्रवेगके रोकनेसे होनेवाली "मूत्रातीति" नाम व्याधि कहलाती है ॥ ९ ॥ १० ॥

## मूत्रजठर और मूत्रोत्संग ।

मूत्रस्य विहते वेगे तदुदावर्तहेतुना ।

अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद्भृशम् ॥ ११ ॥

नाभेरधास्तोदाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनम् ।

तं मूत्रजठरं विद्यादधोबस्तिनिरोधजम् ॥ १२ ॥

बस्तौ वाऽव्यर्थवानाले मणौ वा यस्य देहिनः ।

मूत्रं प्रवृत्तं सज्जतं सरक्तं वा प्रवाहतः ॥ १३ ॥

स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाऽर्थं नोरुजम् ।

विगुणानिलजो व्याधिमूत्रसंगः संज्ञितः ॥ १४ ॥

मूत्रके वेग रोकनेसे उदावर्तके कारण अपान वायुका पित्त होकर पेटको अत्यंत पुरण करदे ( फुलादे ) ॥ ११ ॥ और नाभिके नीचे तीव्रवेदनावाला आध्मान ( अफारा ) पैदा करदेवे तो इसे “मूत्रजठर” रोग कहतेहैं यह बस्तिके अधोभागके निरोधसे होताहै ॥ १२ ॥ जिस मनुष्यके बस्तिमें या नालीमें मणि ( लिंगके अग्रभाग ) में प्रवर्त हुआ मूत्र रुकजावे और प्रवाहण करनेसे निकले थोड़ा धीरे धीरे निकले अथवा रक्तसहित निकले पीडा होवे या न होवे विगुणवायुसे पैदा हुई यह व्याधि “मूत्रोत्संग” संज्ञक होतीहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

## मूत्रक्षय और मूत्रग्रंथि ।

रूक्षस्य क्वांतदेहस्य बस्तिस्थोपित्तमारुतौ ।

सदाहवेदनं कृच्छ्रं कुर्यात्तां मूत्रसंक्षयम् ॥ १५ ॥

अभ्यंतरे बस्तिमुखे वृत्तोऽल्पः स्थिर एव च ।

वेदनावाननिस्यंदी मूत्रमार्गनिरोधनः ॥ १६ ॥

जायते सहसा यस्य ग्रंथिरश्मरिलक्षणः ।

स मूत्रग्रंथिरित्येवंमुच्यते वेदनादिभिः ॥ १७ ॥

रूक्ष और क्वांत देहवालेके बस्तिस्थानमें पित्त और वायु प्राप्त होकर दाह वेदना और कृच्छ्रसहित मूत्रका क्षय करतहैं इसे “मूत्रक्षय” कहतेहैं ( यह मूत्रके शोषण होनेसे होताहै ) ॥ १५ ॥ बस्ति ( मसाने ) के

( श्लो० १२ ) मणौ लिंगाग्रे । मणिः लिंगस्याग्रभागः ( इति श० )

मुँहपर भीतरको छोटी गोल स्थिर वेदनावाली और न क्षिरनेवाली मूत्रफ मार्गको रोकनेवाली ॥ १६ ॥ अकस्मात् जिसके मूत्रकी गाँठसी बंधजावे और पथरीकेसे सब लक्षण हों उसे "मूत्रग्रंथि" कहतेहैं ॥ १७ ॥

( वक्तव्य ) क्वांतदेहका प्रयोजन यहहै कि इस रोगवालेका देह सदा क्वांत गीला गलगलायासा रहताहै पसीना ज्यादा आताहै

### मूत्रशुक्र और उष्णवायुके लक्षण ।

प्रत्युपस्थितं मूत्रस्तु मैथुनं योऽभिर्नदंति ।

तस्य मूत्रं युतं रेतः सहसा संप्रवर्तते ॥ १८ ॥

पुरस्ताद्वाऽपि मूत्रस्य पश्चाद्वाऽपि कदाचन ।

भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥ १९ ॥

व्यायामाध्वातपैः पित्तं वसितं प्राप्यानिर्लावृतम् ।

वसितमेद्गुदं चैव प्रदेहच्छेदयेदथ ॥ २० ॥

मूत्रं हारिद्रमथैवा सरक्तं रक्तमेव वा ।

कृच्छ्रेति प्रवर्तते जंतोरुष्णवातं वेदंति तम् ॥ २१ ॥

मूत्रकी हाजत होनेपर जो पुरुष मैथुन करे उसके मूत्र युक्त वीर्यतभी प्रवर्त होताहै ॥ १८ ॥ अथवा मूत्रसे पहले कभी मूत्रसे पीछे वीर्य पात होताहै वह भस्ममिले जलके समान होताहै " इसे मूत्रशुक्र " कहतेहैं ॥ १९ ॥ परिश्रम करने मार्ग चलने धूपम रहने ( या गरमपदार्थ विशेषखाने ) से पित्त वसित स्थानमें प्राप्त होजाताहै और वायुसे मिलजाताहै तब वसित लिंग गुदा इनस्थानोंमें जलन पैदा करताहुआ पोला या सुरखीके संग मूत्र उतरता है कभी सुरख होताहै कभी रुधिर आनेलगताहै और कष्टसे मूत्र उतरताहै इस रोगको " उष्णवात " कहतेहैं ॥ २० ॥ २१ ॥

### पित्तज और कफज मूत्रौकसादके लक्षण ।

विशदं पीतकं मूत्रं सदाहं बहुलं तथा ।

शुष्कं भवति यत्रापि रोचनाच्चंगसन्निभम् ।

मूत्रौकसादं तं विद्या द्रोणं पित्तकृतं बुधैः ॥ २२ ॥

शुष्कं भवति यत्रापि शंसचूर्णप्रपांशुरम् ।

पिच्छिलं संहतं श्वेतं तथा कृच्छ्रं प्रवर्तते ॥ २३ ॥

मूत्रौकसादं तं विद्यादामयं चाप्यं कफात् ॥ २४ ॥

मूत्रौकसाद रोग दो प्रकारका होता है एक पित्तका दूसरा कफका इनमेंसे जिसमें पतला पीला दाहयुक्त बहुतसा पेशाब आवे और सूखने पर ( या धरे रहने पर ) गोरोचनका चूरा सा मालूम देवे इसे पित्तका मूत्रौकसाद रोग कहते हैं ॥ २२ ॥ और गाढा जमा हुआ सा सुसफेद कुछ कष्टसे पेशाब आवे तथा सूखने पर या धरा रहने पर उसमें शंखके चूर्ण जैसा सुपेदी लिये पीला भाग मालूम दे इसे कफका मूत्रौकसाद नाम रोग जानना चाहिये ॥ २३ ॥ २४ ॥  
( वक्तव्य ) मूत्रौकसाद रोग मूत्रके स्थानों और आश्रयों मूत्रवहा शिराओं आदिमें विकृति होनेसे होता है इसका शब्दार्थ भी यही है ॥

**मूत्राघातमें चिकित्साका निर्देश ।**

कषायकल्कसर्पिषि भक्ष्याल्लिहान्पयांसि च ।

क्षारमध्वासवस्वेदान्बस्तींश्चोत्तरसंज्ञितान् ॥ २५ ॥

विदध्यान्मतिमांस्तत्र विधिं चाश्मरिनाशनम् ।

मूत्रोदावर्तयोगांश्च कात्स्न्येनात्र प्रयोजयेत् ॥ २६ ॥

( यहांपर मूत्रल ) कषायों कल्कों घृतों भक्ष्यों लेहों और दुग्धों इनका उपयोग करे तथा क्षारों मध्वासव और स्वेद तथा उत्तर बस्ति ( मूत्रनलीमें पिचकारी देना ) इत्यादि यथायोग्य बुद्धिमान् वैद्य यह उपयोग करे तथा पथरी नाशक विधियोंको और मूत्रोदावर्तमें कहे हुए प्रयोगोंको भी यहांपर पूर्णतया उपयोग करे ॥ २५ ॥ २६ ॥

कल्कमेवार्बुजांनामक्षमात्रं ससैधवम् ।

धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्रकृच्छ्रात्प्रमुच्यते ॥ २७ ॥

सुरां सौवर्चलवतीं मूत्रकृच्छ्रीं पिबेन्नरः ।

मधु मांसोपदंशं वां पिबेद्द्रोप्यर्थं गौडिकम् ॥ २८ ॥

पिबेत्कुंकुमैकर्षं वा मधूदकसमायुतम् ।

रात्रिपर्युषितं प्रातस्तथा सुखमवाप्नुयात् ॥ २९ ॥

ककड़ी खीरेके बीजोंको कर्षभर पीसकर उनमें सेंधानमक मिलाके धान्याम्ल ( एक प्रकारकी कांजी ) से युक्त कर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र जाता रहता

हे ॥ २७ ॥ अथवा सुरा ( मदिरा ) में कालानमक मिलाकर मूत्रकृच्छ्रवाला पीवे अथवा मद्य या गौड़ी मद्य पीके ऊपरसे मांस खावे ॥ २८ ॥ अथवा कर्षभर केशर और शहद पानीमें मिलाकर रातभर रहने दे प्रभात उसे पीवे तो मूत्रकृच्छ्रमें आराम होनावे ॥ २९ ॥

दाडिमाम्लयुतां मुख्यामेलाजीरकनागरैः ।

पीत्वा सुरां सुखवर्णां मूत्रकृच्छ्रात्प्रमुच्यते ॥ ३० ॥

पृथक्पण्यादिवर्गस्य मूलं गोक्षुरकस्य च ।

अर्द्धप्रस्थेन तोयस्य पंचेत्क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ३१ ॥

क्षीरावशिष्टं तच्छीतं सिताक्षौद्रयुतं पिबेत् ।

नरो मारुतपित्तोत्थं मूत्रावातनिवारणम् ॥ ३२ ॥

निष्पीडयं वाससां सम्यक् वैचो रासभवाजिनाम् ।

रसस्य कुडवं तस्य पिबेन्मूत्ररुजापहम् ॥ ३३ ॥

अनारकी खटाई मिलाके इलायची जीरा सोंठ और नमक डालकर सुरा ( मदिरा ) को पीनेसे मूत्रकृच्छ्र जातारहे ॥ ३० ॥ अथवा पृथक्पण्यां आदि वर्ग और गोखरुकी जड़ आधा प्रस्थ पानी डालकर चौगुना दूध पकावे ॥ ३१ ॥ दूध मात्र रहे ठंडा करके मिश्री और शहद मिलाके पीवे यह वायु और पित्तके मूत्रावातको निवारण करदेताहै ॥ ३२ ॥ अथवा गंधे या पोंड़ेकी लीदकी कपड़ेमें तनचोड़के उसका रस १ कुडव पीजानेसे मूत्रकृच्छ्रका रोग जातारहताहै ॥ ३३ ॥

मुस्ताभयादिवदारुमूर्वाणां मधकस्य च ।

पिबेदक्षसमं कल्कं द्राक्षाया जलसंयुतम् ॥ ३४ ॥

पिबेत्पयुपितं वारि शीतं मूत्ररुजापहम् ।

निदाग्धिकायाः स्वरसं पिबेत्कुडवसंमितम् ॥ ३५ ॥

मूत्रदोषहरं कल्कमथवा क्षौद्रसंयुतम् ।

प्रपीडयामलकानां तु रसं कुडवसंमितम् ॥ ३६ ॥

( अ० २९ ) मुख्यो सुरां नमः मूलमित्यर्थः ।

( अ० ३१ ) मद्यमशितेनैव जलसंयुतम् अथवा भक्षितान्वायकेन मारुतपित्तोत्थम् ।

( अ० ३२ ) दन्तकेनेमिलिजिगीकाला सम्यगेन । केचित् भासुजानां च ।

पीत्वाऽगदी भवेजंतुर्मूत्रदोषरुजातुरः ।

धात्रीफलरसेनैव सूक्ष्मैलां वा पिवेन्नरः ॥ ३७ ॥

नागरमोथा हरड़े देवदारु मूर्वा और मुलेठी इन्हें अक्षभर ( एक कर्ष ) लेकर कल्क बनावे और उसे दाखके पानीमें घोलकर पीजावे ॥ ३४ ॥ अथवा रातको पानी मैदानमें कोरे मिट्टीके पात्रमें भरके रखदे प्रभात उस ठंढे पानीके पीनेसे मूत्ररोग जातेरहतेहैं अथवा छोटी कटे-लीका स्वरस एक कुडव ( चार पल ) अथवा इसीका कल्क बना शहद मिलाके पीवे तो मूत्रदोष नष्ट होजावे अथवा हरे आंवलोंको कुचलकर निचो-ड़कर इनका रस निकाले यह रस चार पल लेकर शहद मिलाके पीवे ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ इसके पीनेसे मूत्रदोषका रोगी अच्छा होजाताहै अथवा आंवलोंके रसमें छोटी इलायची मिलाकर पीवे ॥ ३७ ॥

पिष्ट्वाऽथवा सुशीतेन शालितंदुलवारिणा ।

तालस्य तरुणं मूलं त्रपुसस्वरसं तथा ॥ ३८ ॥

श्वेतकर्कटकं चैव प्रातस्तं पयसा पिबेत् ।

शृतं वा मधुरैः क्षीरं सर्पिर्मिश्रं पिवेन्नरः ॥ ३९ ॥

मूत्रदोषविशुद्धयर्थं शुक्रदोषहरं परम् ॥ ४० ॥

तालवृक्षकी ताजी जड़ पीसकर चावलोंके धोवनके ठंढे पानीसे पीवे अथवा ककड़ीका स्वरस पीवे ॥ ३८ ॥ अथवा सुपेद ककड़ी ( बालनकाँ-कड़ी ) को दूधके साथ प्रातःकाल पीवे अथवा मधुर द्रव्योंमें पकाया हुआ दूध घृत डालकर पीवे यह मूत्रके दोष और वीर्यके भी दोषोंको दूर करताहै ॥ ३९ ॥ ४० ॥

बलाश्वदं द्राक्षाश्चास्थिको किलाक्षकतंडुलान् ।

शतपर्वकमूलं च देवदारु सचित्रकम् ॥ ४१ ॥

अक्षवीजं च सुरया कल्कीकृत्य पिवेन्नरः ।

मूत्रदोषविशुद्धयर्थं तथैवाश्मरिशोधनम् ॥ ४२ ॥



पाटलाक्षारमाहृत्य सप्तकृत्वः परिशुतम् ।

पिवेन्मूत्रविकारघ्नं संसृष्टं तैलमात्रया ॥ ४३ ॥

नलेशुद्धर्भाश्मभेदत्रपुसैर्वारुबीजकम् ।

क्षीरे परिशुतं तत्र पिवेत्सर्पिः समायुतम् ॥ ४४ ॥

पाटल्या यावशूकाच्च पारिभद्रात्तिलादपि ।

क्षारोदकेन मतिमान्त्वगेलोपणचूर्णकम् ॥ ४५ ॥

पिवेद्भुडेन मिश्रं वा लिह्याल्लिहान्पृथक् पृथक् ॥ ४६ ॥

खैरटी गोखरू कौंच पक्षीकी हड्डी तालमखाने और शतारू नामक पौंडेकी जड़ ( कई शतपर्यक बाँस कहतेहैं उसकी जड़ ) देवदारु चित्रक ॥ ४१ ॥ बहेड़ेकी माँगी इन सबको मदिरामें पीसकर पीवे इससे मूत्रदोष शुद्ध होतेहैं और पथरीका भी शोधन होजाता है ॥ ४२ ॥ अथवा पाटलकी राख लेकर उसे पानीमें घोलकर सात बार चुवाले फिर इसमें थोड़ा तैल मिलाकर पिया करे यह भी मूत्रविकार नाशक है ॥ ४३ ॥ अथवा नरसल ईख डाभ पाषाण-भेद खीरे और ककड़ीके बीज इनको दूधमें ( घोटकर ) छान ले और घृत मिलाकर पीवे ( इसमें मिश्री अनुक्त भी मिलासकती है ) ॥ ४४ ॥ अथवा पाटलाका क्षार थवक्षार निवक्षार तिलक्षार इनके पानीके संग तज ( दालचीनी ) इलायची और त्रिकटु इनका चूर्ण करके पीवे अथवा गुड़ मिलाकर या जुदे जुदे अवलेह बनाकर चाटे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

### मूत्रदोषमें चिकित्साका क्रम ।

अत उद्धं प्रवक्ष्यामि मूत्रदोषे क्रमं हितम् ।

स्नेहस्वेदोपपन्नानां हितं तेषु विरेचनम् ॥ ४७ ॥

ततः संशुद्धदेहानां हिताश्चोत्तरवन्तयः ॥ ४८ ॥

यहांसे अगली अब हम मूत्रदोषमें हितकारक क्रमको बताते हैं यह यह है कि स्नेहन स्वेदन पश्चात् योग्यो विरेचन देय और जब शरीर शुद्ध होजाये तब उत्तरवन्ति ( मूत्रदोषमें विचाराय ) देना हित होताहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

( अ० ४१ ) ' नैतनाम्ना ' मन्त्रे ' अथ मागस्यैवमन्त्रायै ( इति ति. नं. १ )

## इसके अन्यप्रयोग ।

स्त्रीणामतिप्रसंगेन शोणितं यस्य सिंच्यते ।

मैथुनोपरमस्तस्य बृंहणश्च विधिः स्मृतः ॥ ४९ ॥

ताम्रचूडवसातैलं हितं चोत्तरबस्तिषु ।

विधानं तस्य पूर्वं हि व्यासतः परिकीर्तितम् ॥ ५० ॥

स्त्रियोंके संग अति मैथुनसे जो पुरुषके रुधिर निकलने लगे तो उसे मैथुन छोड़ देना चाहिये और बृंहणविधि करनी श्रेष्ठ होती है ॥ ४९ ॥ मुरगेकी चरबीका तैल उत्तरबस्तिमें देना हितकारक होता है इसका विधान हम विस्तारपूर्वक पहले कह चुके हैं ॥ ५० ॥

क्षौद्रार्द्धपात्रं दत्त्वा तु पात्रं तु क्षीरसर्पिषोः ।

स्वयंगुप्ताफलं चैव तथैवेश्वरकस्य च ॥ ५१ ॥

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तमर्द्धभागं प्रदापयेत् ।

एतदैकध्यमानीय खजेनाभिप्रमन्थयेत् ॥ ५२ ॥

तस्य पाणितलं चूर्णं लीढ्वा क्षीरं ततः पिबेत् ।

एतत्सर्पिः प्रयुंजानः शुद्धदेही नरः सदा ॥ ५३ ॥

मूत्रदोषाभ्रयेत्सर्वानन्ययोगैः सुदुर्जयान् ।

जयेच्छोणितदोषांश्च बंध्या गर्भं लभेत् च ॥

नारी चैतत्प्रयुंजाना योनिदोषात्प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥

शहद आधा पात्र और दूध और घृत एक पात्र ( एक पात्र ६४ पलका होता है ) लेवे केवाँचके बीज और तालमखाने और पीपल ये उनसे आधे लेवे चूर्ण करके मिलादे और इकट्ठा करके रईसे मथकर खूब मिलावे ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ इसमेंसे एक कर्षभर चाटले ऊपरसे दूध पीलिया करे इस घृत ( लेह ) को जो मनुष्य विरेचनादिसे शुद्ध देह होकर प्रयोग करे ॥ ५३ ॥ तो सब प्रकारके मूत्रदोषोंको जो और योगोंसे आराम नहीं हुए उन सबको इस प्रयोगसे आराम होता है तथा रुधिरके भी सब दोष मिट जाते हैं ( अर्थात् स्त्रियोंको आर्तव रक्तके दोष दूर होजाते हैं ) और बंध्या स्त्रीको गर्भ प्राप्त

( श्लो० ४९ ) तस्य मैथुनोपरमः । मैथुनादुपरमः मैथुननिषेध इति प्रयोजनम् ।

होजातेहैं और जो स्त्री इसका सेवन करे उसके सब प्रकारके योनिदोष दूर होजातेहैं ॥ ५४ ॥

बला कोलास्थि मधुकं श्वदंष्ट्राऽथ शतावरी ।

मृणालं च कसेरुश्च बीजानि क्षुरकस्य च ॥ ५५ ॥

सहस्रवीर्यांशुमती पयस्या सह कालया ।

शृगालविन्नाऽतिबला बृंहणीयो गणस्तथा ॥ ५६ ॥

एतानि समभागानि मतिमान्सह साधयेत् ।

चतुर्गुणेन पयसा गुडस्य तुलया सह ॥ ५७ ॥

द्रोणावशिष्टं सत्पूतं पचेत्तेन घृताढकम् ।

तत्सिद्धं कलशे स्थाप्यं क्षौद्रप्रस्थेन संयुतम् ॥ ५८ ॥

सर्पिरेतत्प्रयुञ्जानो मूत्रदोषात्प्रमुच्यते ॥ ५९ ॥

इत्युत्तरतन्त्रेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

खरेटी चेरकी गुठली ( मींगी ) मुलेटी गोखरू शितावर कमलनाल कसेरु तालमखाने ॥ ५५ ॥ सहस्रवीर्या ( महाशतावरी ) अंशुमती ( शालिपर्णी ) पयस्या ( काकोली या अर्कपुष्पी ) और काला ( श्यामा निशोथ ) शृगालविन्ना ( पृथ्विपर्णी ) अतिबला और बृंहणीयगण ( काकोल्यादि गण ) ॥ ५६ ॥ इन सबको समान भाग ले चौगुना दूध और एकतुला गुड़ डालकर सिद्ध करें ( कई यहां 'पयसा' का अर्थ जलसे करतेहैं ) ॥ ५७ ॥ जब द्रोण भररहे तब छानकर इसमें एक आढकभर घृत पकावे जब घृत सिद्ध होजावे तो उसे एक चिकने पात्रमें डालदे और उसीमें एक प्रस्थ शहद डाल दे ॥ ५८ ॥ इस घृतके उपयोग करनेसे मूत्रदोष दूर होजातेहैं ॥ ५९ ॥

(वक्तव्य) इसके साधनमें कई नदबड़ हे कई तो ऐसा मानतेहैं कि बलादिफ सब द्रव्य समान लेकर एक तुला गुड और ४ तुला दूध डालकर पकावे कई सहपद होनेसे ऐसा अर्थ करतेहैं कि दुग्ध गुडयुक्त करके जलमें साधन करें,

एति श्रीसुश्रुतविरचितानां भाषाशंखानामुत्तरतन्त्रेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

( श्री० ५६ ) सहस्रवीर्या महाशतावरी इति ( अ० स्तो० ) अंशुमती शालिपर्णी । पयस्या काकोलीया अर्कपुष्पी ५ । शृगालविन्ना पृथ्विपर्णी । बृंहणीया गणः काकोल्यादिः ।

## ऊनषष्टितमोऽध्यायः ५९.

अथातो मूत्रदोषप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम मूत्रदोषके प्रतिषेधकी अध्यायका व्याख्यान करते हैं ( कोई इस अध्यायको जुदी नहीं मानते पिछली अध्यायमेंही इसके पाठको मानतेहैं और कई ऐसा मानतेहैं कि यद्यपि अश्मरी मूत्रघातादि पहले कहेगये तथापि चिकित्सा लक्षण और कार्यके भेदसे जुदी अध्याय मानना चाहिये मूत्रदोषसे यहां मूत्रकृच्छ्रादि समझना चाहिये ) ॥

वातेन पित्तेन कफेन सर्वैस्तथाभिघातैः शकृदश्मरीभ्याम् ।

तथाऽपरः शर्करया सुकष्टो मूत्रोपघातः कथितोऽष्टमस्तु ॥ १ ॥

मूत्रोपघात ( मूत्रदोष अर्थात् मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्रविकार ) आठ प्रकारका होताहै वायुसे पित्तसे कफसे सन्निपातसे चोट आदि लगनेसे मल ( विष्ठा ) के विकारसे पथरीसे और आठवाँ शर्करा ( रेत या छिनों ) से यह मूत्रोपघात रोग कष्टसाध्य ( और कष्ट देनेवाला ) होताहै ॥ १ ॥

### वातज और पित्तज मूत्रदोषके लक्षण ।

अल्पमर्लपं समुत्पीड्य मुष्कमेहनवस्तिभिः ।

फलद्रिर्व कृच्छ्रेण वाताघातेन मेहति ॥ २ ॥

हरिद्रमुष्णं रक्तं वा मुष्कमेहनवस्तिभिः ।

अग्निना दह्यमानाभैः पित्ताघातेन मेहति ॥ ३ ॥

अंडकोश लिंग और बस्ति इनमें पीडा होकर कष्टके साथ थोड़ा थोड़ा मूत्र आवे फटे जानेकेसी वेदना हो ये लक्षण वायुके मूत्र कृच्छ्रके हैं ॥ २ ॥ पित्तके मूत्रकृच्छ्रमें पीला गरम सुर्ख मूत्र आवे और वृषण लिंग तथा बस्ति इनमें जलन बहुत होवे ॥ ३ ॥

( श्लो० १ ) अत्र 'मूत्रदोषम्' इत्यत्र मूत्रकृच्छ्रप्रतिषेधमिति केचित् पठंति । ननु अश्मरी मूत्रघातोदावर्तादिषु मूत्रकृच्छ्रस्य उक्तत्वात् किमर्थं पुनरत्र तदभिधानम् । सत्यम्, चिकित्सालक्षणकार्यभेदात्, तथाच समानतंत्रेपि पृथक् निर्दिष्टत्वात्पुनस्तेषामुपादानम् । केचिच्च पुनरुक्तिभयादेव पुनरिममध्यायं न पठंति, केचिदत्र पठंति । ( इति नि० सं० )

## कफके और संनिपातके सूत्रदोषके लक्षण ।

स्निग्धं शुक्लमनुष्णं च शुष्कमेहनवस्तिभिः ।

संहृष्टरोमा गुरुभिः श्लेष्माघातेन मेहति ॥ ४ ॥

दाहशीतरुजाविष्टो नानावर्णं मुहुर्मुहुः ।

ताम्यमानः सुकृच्छ्रेण सन्निपातेन मेहति ॥ ५ ॥

कफके सूत्रोपघातमें चिकना सुपेद ( गाढ़ा ) ठंडा मूत्र आवे अंडकोश  
लिंग और वस्तिस्थान ये भारी रहें रोमांच होजायें ॥ ४ ॥ सन्निपातके सूत्र-  
दोषमें कभी जलन कभी ठंडापन कभी पीडा हो मूत्र का रंग भी बार  
बार अनेक प्रकारका हो तथा बारंबार पेशाब करते समय अंधेरीसी  
आजावे ॥ ५ ॥

## चोट आदिसे तथा शकृतसे और पथरीके सूत्रदोष ।

मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च ।

स्रोतःसु मूत्राघातस्तु जायते भृशवेदनः ।

वातवस्तेस्तु तुल्यानि तस्य लिगानि लक्षयेत् ॥ ६ ॥

शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः ।

आध्मानं च सशूलं च मूत्रसंगं करोति हि ॥ ७ ॥

अश्मरीहेतुकः पूर्वं मूत्राघात उदाहृतः ॥ ८ ॥

मूत्रके बहनेवाले ( मूत्र प्राप्त करनेवाले ) स्रोतोंपर किसी शस्त्रादिसे घाव  
होजानेमें अथवा ताड़नादिसे चोट पहुंचनेमें बहुत वेदनावाला मूत्राघात  
होजाताहै ( अर्थात् पेशाब बंद होजाताहै और पीडा भी होतीहै ) इसके  
लक्षण वात वस्तिके लक्षणोंके समान होतेहैं ॥ ६ ॥ दस्तके वेग रोकनेमें वायु  
दृष्टि और प्रतिलोम होकर अफारा शूल पैदा करताहै तथा मूत्रको भी रोक  
देताहै ॥ ७ ॥ पथरीके विकारमें जो ( मूत्रकृच्छ्र ) मूत्राघात होताहै वह हम  
पहले अश्मरीरोगमें फटलुके हैं ( वहां देख लें ) ॥ ८ ॥

## शर्कराजनित मूत्रकृच्छ्र ।

अश्मरी शर्करा चैव तुल्ये संभवलक्षणैः ।

शर्करायां विशेषं तु ग्रन्थं कर्तव्यतां मेम ॥ ९ ॥

पच्यमानस्य पित्तेन भिद्यमानस्य वायुना ।  
 श्लेष्मणोवयवा भिन्ना शर्करा इति संज्ञिता ॥ १० ॥  
 हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षौ वह्निः सुदुर्बलः ।  
 ताभिर्भवति मूर्च्छा च मूत्राघातश्च दारुणः ॥ ११ ॥  
 मूत्रवेगनिरस्तासु तासु शाम्यति वेदना ।  
 यावदन्या पुनर्न ति गुटिका स्रोतसो मुखम् ॥ १२ ॥  
 शर्करासंभवस्यैतन्मूत्राघातस्य लक्षणम् ।  
 चिकित्सितमतस्तूर्द्धमष्टानामपि वक्ष्यते ॥ १३ ॥

उत्पत्ति और लक्षणोंसे पथरी और शर्करा (पेशाबमें रेत या दानेसे आना) एकहीसे मालूम पड़तेहैं अर्थात् इन दोनोंका कारण वास्तवमें एकही होताहै। मसानमें इकट्ठी होकर बड़ा एक या कई ढेपेसे हो तो पथरी कहलातीहै और यदि बिखरे रेत या छोटे दानेसे रहें तो शर्करा कहलातीहै। अब शर्कराके विषयमें कुछ हम विशेष कहतेहैं सो सुनो ॥ ९ ॥ पित्तसे पकेहुए और वायुसे पृथक् २ किये हुए कफके जुदे जुदे टुकड़ोंको शर्करा कहतेहैं ॥ १० ॥ इसके होनेसे हृदयमें पीडा कंप-कुक्षिमें शूल और मंदाग्नि ये होतेहैं और फिर इनसे मूर्च्छा और दारुण मूत्राघात होताहै ॥ ११ ॥ और जब मूत्रके संग निकलजातीहै तब कुछ वेदना शांत होजातीहै जबतक फिर भीतरी मूत्रद्वारके अगाड़ी कोई उसकी गाँठसी न आवे (जब फिर शर्कराकी गाँठ अगाड़ी आकर मूत्रको रोक देतीहै तब फिर वही वेदना होतीहै ॥ १२ ॥ शर्कराके मूत्राघातके लक्षण कहे हैं अब आगे आठों प्रकारके मूत्रोपघातकी चिकित्सा कहते हैं ॥ १३ ॥

### चिकित्साका निर्देश ।

अश्मरीं च समोश्रित्य यदुक्तं प्रसमीक्ष्य तत् ।  
 यथादोषं प्रयुंजीत स्नेहादिकमपि क्रमम् ॥ १४ ॥

हमने पहले अश्मरीकी चिकित्सामें जो कहाहै उसे देखकर दोषोंके अनुसार यहाँ उपयोग करे और स्नेहादि क्रम भी यथायोग्य करे ॥ १४ ॥

( श्लो० १२ ) मूत्रवेगनिरस्तासु तासु मूत्रस्य वेगेन सह निर्गतासु तासु शर्करा-  
 गुटिकासु वेदना शाम्यति यावदन्या स्रोतसो मुखं नायाति तावत् ।

## वातके मूत्रकृच्छ्रका यत्न ।

श्वदंष्ट्राश्मभिदौ कुंभी हवुपां कंटकारिकाम् ।

वलां शतावरीं रास्नां वरुणं गिरिकर्णिकाम् ॥ १५ ॥

तथा विदारिगंधादि संहृत्य त्रैवृतं पचेत् ।

तैलं घृतं वा तत्पेयं तेन वाऽप्यनुवासयेत् ॥ १६ ॥

दद्यादुत्तरवस्ति च वातकृच्छ्रोपशान्तये ॥ १७ ॥

श्वदंष्ट्रास्वरसे तैलं सगुडक्षीरनागरम् ।

पक्त्वा तत्पूर्ववद्योज्यं तत्रानिलरुजापहम् ॥ १८ ॥

गोखरू पाखानभेद कुंभी ( वारिपर्णी ) हाऊवेर कटेली खरेंटी शतावरी रास्ना वरुणा गिरिकर्णिका ( अपराजिता भेद ) ॥ १५ ॥ और विदारीगंधादि गण इन सबको इकट्ठा करके विधिपूर्वक त्रैवृत घृत या तैल पकावे ( त्रैवृतको पहले कई बार लिख चुके हैं जिसमें तीन स्नेह घृत तैल वसा मज्जामेंसे कोईसे मिले हों ) उसका पान करे और उसीसे अनुवासनवस्ति करे ॥ १६ ॥ वायुके मूत्रकृच्छ्रकी शान्तिके लिये उत्तरवस्ति ( मूत्रद्वारमें पिशुकारी ) भी देवे ॥ १७ ॥ अथवा गोखरूके स्वरसमें तैल पकावे उसमें गुड दूध और सोंठ भी डाल दे इसे पहलेके अनुसार उपयोग करे यह भी वायुके रोग ( कृच्छ्र ) को नष्ट करनेवाला है ॥ १८ ॥

## पित्तके मूत्रकृच्छ्रका यत्न ।

तृणोत्पलादिकाकोलीन्यग्रोधादिगणे कृतम् ।

पीतं घृतं पित्तकृच्छ्रं नाशयेत्क्षिप्रमेव च ॥ १९ ॥

दद्यादुत्तरवस्ति च पित्तकृच्छ्रोपशान्तये ।

एभिरेव कृतः स्नेहस्त्रिविधेष्वेव वस्तिषु ।

हितं विरेचनं चेशुशैरद्राक्षारसैर्युतम् ॥ २० ॥

तृण ( तृण पंचमूल ) उत्पलादिगण काकोली और न्यग्रोधादिगण इनसे मिष्ट पिप्पा घृत पीतेसे शीघ्र ही पित्तके मूत्रकृच्छ्रको नाश करदेता है ॥ १९ ॥ और पित्तकृच्छ्रकी शान्तिके लिये उत्तरवस्ति भी देवे और इन उपरोक्त



द्रव्योंसे सिद्ध किये स्नेह तीनों प्रकारके कृच्छ्रोंमें वस्तिकर्ममें ले सकतेहैं और इस पित्तकृच्छ्रमें ईखके रस दूध और दाखके रससे मिलाकर विरेचन देना भी हितकारक होताहै ॥ २० ॥

## कफकृच्छ्रादिकी चिकित्सा ।

सुरसोषकमुस्तादिवरुणादौ च संस्कृतम् ।

तैलं तथा यवाग्वश्च कफकृच्छ्रे प्रशस्यते ॥ २१ ॥

यथादोषोच्छ्रयं कुर्यादेतानेवं च सर्वजे ।

फलगुवृक्षीकदभाश्मसारचूर्णं च वारिणा ॥

सुरेश्वरसदभाम्बु पीतं कृच्छ्ररुजापहम् ॥ २२ ॥

तथाऽभिघातजे कुर्यात्सद्योव्रणचिकित्सितम् ॥ २३ ॥

सुरसादिगण ऊषकादिगण मुस्तादिगण और वरुणादिगण इनसे सिद्ध किया हुआ तैल अथवा इनके काथमें बनाके यवागूपिलाना कफ के मूत्रकृच्छ्रमें श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥ सन्निपातके मूत्रकृच्छ्रमें इन्हीं तीनोंकी औषधोंमेंसे जो दोष उल्वण हो उसीकी औषध प्रधानतापूर्वक मिश्रित चिकित्सा करना तथा कटगूलर सुपेद साँठी डाभ और अश्मसार ( लोह ) इन सबके चूर्णको पानीके संग पीना और मादिरा ईखका रस डाभका काथ इन्हें मिलाकर पीना कृच्छ्ररोगको नाश करता है ॥ २२ ॥ और शस्त्रके अभिघातसे उपजे हुए कृच्छ्रमें सद्योव्रणकी विधि करनी श्रेष्ठ होती है ( और जिसमें घाव न हो ऐसी चोटके कृच्छ्रमें वातनाशक विधि करनी ) ॥ २३ ॥

मूत्रकृच्छ्रे सदा चास्यं कार्या वातहरी क्रिया ।

स्वेदावगाहावभ्यंगवस्तित्चूर्णक्रियास्तथा ॥

शर्कृजे द्वौ तथाऽर्त्यौ यौ तयोः प्रोक्तः क्रियाविधिः ॥ २४ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे ऊनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

विष्टावरोधसे उपजेहुए मूत्रकृच्छ्रमें मनुष्यको वातनाशक क्रिया करनी चाहिये स्वेदकराना अभ्यंग ( तैलादिका मर्दन ) कराना स्नान कराना वस्तिकर्म और चूर्णादिका उपयोग इत्यादि क्रिया करनी उचित हैं और अंतके दो मूत्रकृच्छ्रों ( अश्मरी और शर्कराके मूत्रकृच्छ्रों ) की क्रिया विधि पहले कह ही चुके हैं ( अश्मरीकी चिकित्सामें वर्णन कर चुके हैं ) ॥ २४ ॥

यूनानी हकीम मूत्राघातको एहतवामूलबोल कहते हैं और थोड़ा टपके टपके मूत्र आनेको "तकनीरूलबोल" कहते हैं और मूत्रमें रुधिर ( रुधिरके पेशाब ) आनेको "बोलुदम" कहते हैं.

डाक्टरोंमें मूत्र रुक जानेको "रिटेंशन आफ यूराइन" (Retention of urine) कहते हैं और मूत्रकृच्छ्रको "डिज्यूरिया" ( Dysuria ) और मूत्रमें रुधिर आनेको "हिमिटोरिया" ( Hemitoria ) कहते हैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे एकोनपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

इति कायचिकित्सा ।

## अथ भूतविद्या ।

### पष्ठितमोऽध्यायः ६०.

अथातोऽमानुषप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम अमानुष ( देवग्रहादिके उपद्रव ) के प्रतिषेधकी अध्यायका व्याख्यान करतेहैं—

निशाचरेभ्यो रक्ष्यस्तु नित्यमेव क्षतानुरः ।

इति यत्प्राग्भिहितं विस्तरस्तस्यै वैक्ष्यते ॥ १ ॥

यह हम पहले कह चुकेहैं कि नित्य रोगीकी रक्षा निशाचरों ( राक्षसादि ) से करनी चाहिये अब उसका विस्तारसे वर्णन करते हैं ( क्षतानुर यह उपलक्षण-मात्र है किन्तु क्षतवाले तथा बिना क्षतवाले सभी रोगियोंकी रक्षा करनी चाहिये ) ॥ १ ॥

गुह्यानागतविज्ञानमनवस्था सहिष्णुता ।

क्रिया वाऽमानुषी यस्मिन्स ग्रहः परिकीर्तितः ॥ २ ॥

अशुचि भिन्नमर्यादं क्षतं वा यदि वाऽक्षतम् ।

द्विस्त्युद्दिष्टाविहारार्थं सत्कारार्थमथापि वा ॥ ३ ॥

असंख्येया ग्रहगणा ग्रहाधिपैतयस्तु ये ।

व्यंजते विविधाकाम भिद्यंते ते तर्थाऽष्टया ॥ ४ ॥

( श्लो० २ ) गुह्यानागतविज्ञानं गुह्यं गुह्यं जनसामान्यं भाति तदोपलक्षणं यस्मिन् । क्रिया वाऽमानुषी यस्मिन्स ग्रहः परिकीर्तितः । अशुचि भिन्नमर्यादं क्षतं वा यदि वाऽक्षतम् । असंख्येया ग्रहगणा ग्रहाधिपैतयस्तु ये । व्यंजते विविधाकाम भिद्यंते ते तर्थाऽष्टया ।

जिनको गुप्त और भावी बातोंका ज्ञान हो और अनवस्था ( क्षणमें रुष्टता क्षणमें लुष्टता ) तथा सहनशीलता दोनों हों और मनुष्योंसे विचित्र कर्म करसकते हों ( जैसे शाप वरदान असंभव बात इत्यादि कर सकें ) उनको ग्रह कहतेहैं ॥ २ ॥ अपवित्र मर्यादरहित जो घाववाला या बिना घावका रोगी होताहै उसे ये ग्रह हिंसा अथवा विहार ( क्रीडा ) करनेको या अपने सत्कारके लिये घात करतेहैं मारतेहैं या पीडा देतेहैं ॥ ३ ॥ यद्यपि ग्रहोंके गण असंख्य हैं और उनके अभिपति भी अनेक आकारसे प्रगट होतेहैं तथापि मुख्यतासे उनके आठ भेद होतेहैं ॥ ४ ॥

देवास्तथा शत्रुगणाश्च तेषां गंधर्वयक्षा पितरो भुजंगाः ।

रक्षांसि या चापि पिशाचजातिरेषोऽष्टधा देवगणो ग्रहाख्यः ॥५॥

देवता तथा इनके शत्रु दैत्य गंधर्व यक्ष पितर भुजंग राक्षस और पिशाच यह आठ प्रकारका देवगण ग्रह कहलाताहै ॥ ५ ॥

देवताजुष्ट और दैत्यजुष्टके लक्षण ।

संतुष्टः शुचिरपि चेष्टगंधमाल्यो निस्तंद्रो ह्यवितथसंस्कृत-  
प्रभाषी । तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता ब्रह्मण्यो भवति च  
यः स देवजुष्टः ॥ ६ ॥ संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता जिह्माक्षो  
विगतभयो विमार्गदृष्टिः । संतुष्टो भवति न चान्नपानजातै  
दुष्टात्मा भवति च देवशत्रुजुष्टः ॥ ७ ॥

जो संतोषी होजाय पवित्र रहे और मुहावनी मुगंध और माला पुष्प धारण करे तंद्रासे रहित हो निरंतर संस्कृत वाणी बोले तेजस्वी हो नेत्रस्थिर हो वरदान देवे और ब्रह्मण्य हो ये लक्षण देवता से ग्रहण किये ( अर्थात् देवपीडावाले ) मनुष्यके होतेहैं ॥ ६ ॥ और मनुष्य दैत्यसे पीडित हो ( जिसपर दैत्यग्रहकी छाया हो ) उसके ये लक्षण होतेहैं कि पसीना आवे ब्राह्मण गुरु देवता इनके दोष वर्णन करे निगाह टेढ़ी हो भय न हो कुमार्गदृष्टि हो और खाने पीनेसे संतोष नहीं हो और दुष्टात्मा होजावे ॥ ७ ॥

## गंधर्व और यक्षसे पीडितके लक्षण ।

हृष्टात्मा पुलिनवनांतरोपसेवी स्वाचारः प्रियपरिगीतगंधमालयः।  
नृत्यन्वा प्रहसति चारु चालपशब्दं गंधर्वग्रहपरिपीडि-  
तो मनुष्यः ॥ ८ ॥ ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी गंभीरो द्रु-  
तमतिरल्पवाक्सहिष्णुः । तेजस्वी वदति च किं ददामि  
कस्मै यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ ९ ॥

गंधर्व ( अप्सराजिन्हें परीकहतेहैं ) से पीडित मनुष्यके ये लक्षण होतेहैं कि  
प्रसन्न रहे जलाशयों और वनोंका विहार पसंद करे अपने आचारमें रहे प्यार  
भीठे गीत गावे अच्छी सुगंध और पुष्प धारण करे कभी नाचने लगे कभी  
हंसे सुहावने थोड़े शब्द बोले ॥ ८ ॥ यक्षग्रहसे पीडित मनुष्यके ये लक्षण  
हैं कि आँखें ताँवे जैसी लालहों अच्छे हलके ( महीन ) सुरखवस्त्र पहरे गंभीर  
हो चंचलबुद्धि हो थोड़ा बोले सहनशीलता ( बरदाश्त ) रखे तेजस्वी हो  
और ऐसा कहे कि किसको क्या देऊँ ? ॥ ९ ॥

## पितृ और भुजंग पीडितके लक्षण ।

प्रेतैभ्यो विमृजति संस्तरेषु पिडाच्छांतात्मा जलमपि चाप  
संव्यवस्रः । मासेषु सुस्तिलगुडपायसाभिकामस्तद्रक्तो भवति  
पितृग्रहाभिभूतः ॥ १० ॥ भूमौ यः प्रसरति सर्पवत्कदाचि-  
त्सृक्किण्यो विलिहति जिह्वया प्रसक्तम् । निद्रालुर्गुडमधुदुग्ध-  
पायसेष्पुविज्ञे यो भवति भुजंगमेनैर्जुष्टः ॥ ११ ॥

पितरोंके दोषसे पीडित मनुष्य कुछ या तृण बिछाकर प्रेतोंको पिडदेनेकी  
भांति आचरण करे शांतात्मा हो और जल भी अपसव्य होकर देवे मांस तिल  
गुड खीर इनकी इच्छा करे और इन्हीं को खाना चाहे ॥ १० ॥ जो भुजंग ( सर्प-  
राजों ) से पीडित मनुष्य हो पृथ्वीमें कभी सर्पकी तरह गिर छोड़ोंकि जोड़ोंको  
जोड़में चाँटे जतिनिद्रा रहे गुड शहद दूध खीर इनके खानेकी इच्छा करे ॥ ११ ॥

( श्लो ८ ) अन्तर्यामि यथा मया ज्ञायमानं तथैव भवति ।

( श्लो १० ) कर्मोपश्रुतं नृपस्य भवति ।

( श्लो ११ ) पृथिवी आकाशो जलमग्निः सर्वभूतवर्गस्य भवत्येवम् ।

## राक्षस और पिशाचसे पीडितके लक्षण।

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सुर्निर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽति-  
शूरः । क्रोधालुर्विपुलबलो निशाविहारी शौचद्विड् भवति च  
रक्षसां गृहीतः ॥ १२ ॥ उद्धस्तः कृशपरुषश्चिरप्रलापी दुर्गंधो  
भृशमशुचिस्तथाऽतिलोलः । बह्वाशी विजनहिमांबुरात्रिसेवी  
व्याचेष्टं भ्रमति रुदन्पिशाचजुष्टः ॥ १३ ॥

राक्षसके आवेशवाले मनुष्यके ये लक्षण होतेहैं कि मांस रुधिर अनेक  
भांतिके मद्योंकी वांछा करे निर्लज्ज हो और बहुत कठोर और शूरवीर हो  
क्रोधी हो बहुत बलवान् हो जावे रातमें घूमे शुद्धताका विरोधी हो ( अशुद्ध  
रहे ) ॥ १२ ॥ पिशाचपीडित मनुष्यके ये लक्षण हैं कि ऊपरको हाथ विशेष  
रक्खे दुबला हो कठोर वचन बहुत कहे बहुत दुर्गंध आवे अपवित्र रहे और  
अति चपल होजावे बहुत खावे शून्यस्थानोंमें ठंडे पानी और रात्रि इनका  
सेवन करे ( ये प्रिय लगें ) विरुद्ध चेष्टा करे रोता हुआ फिरे ॥ १३ ॥

स्थूलाक्षस्त्वरितगतिः स्वफेनलेही निद्रालुः पतति च कं पते  
च योऽति । यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः सन्संसृष्टो न  
भवति वार्द्धकेन जुष्टः ॥ १४ ॥

जिसकी आँखें मोटी होजावें ( आगेको निकल आवें ) जल्दी चले अपने  
झाग चाटे अति निद्रा आवे और जो कांपे और गिर २ पड़े ऐसा ग्रह पीडित  
रोगी तथा जो पहाड़ हाथी वृक्ष इत्यादिसे गिरकर ग्रहसे पीडित होजावे  
वह अतिकूर ग्रहसे पीडित असाध्य जानना वह अच्छा नहीं होता ॥ १४ ॥

देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः संध्ययोरपि ।

गंधर्वाः प्रायशो षष्ठ्यां यक्षाश्च प्रतिपद्यथ ॥ १५ ॥

कृष्णपक्षे च पितरः पंचम्यामपि चोरगाः ।

रक्षांसि निशि पैशाचाश्चतुर्दश्यां विशन्ति च ॥ १६ ॥

( श्लो० १४ ) वार्द्धकेन जुष्टः वृद्धभावेन गृहीत इत्यर्थः । अन्ये वार्द्धकेनेति  
पठन्ति । वार्द्धकेन हिंसार्थिना केनचित् ग्रहेण जुष्ट इति व्याख्यानयन्ति ( इति नि० सं० )  
संसृष्टो न भवति इति विनश्यतीत्यर्थः । ( इति डल्लनः ) ।

देवग्रह पूर्णमासीके आसपास और अमुर संध्यामें गंधर्व प्रायः छठको और यक्ष प्रतिपदाको ॥ १५ ॥ पितर कृष्णपक्षमें ( अमावस्याके समीप ) उरग पंचमीको राक्षस रात्रिको और पिशाच चतुर्दशीको देहमें प्रवेश करतेहैं ॥ १६ ॥

दर्पणादीन्यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा ।

स्वमणिं भास्करार्चिश्च यथा देहं च देहभृत् ॥

विंशतिं च न दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणम् ॥ १७ ॥

जैसे दर्पणादिकोंमें प्रतिबिंब और जीवोंमें सरदी गरमी और मणि-योंमें सूर्यकी किरन और शरीरमें जीवात्मा प्रवेश होता दीखता नहीं उसी प्रकार मनुष्योंमें ग्रह प्रवेश करते मालूम नहीं पड़ते ॥ १७ ॥

तपांसि तीव्राणि तथैव दानं व्रतानि धर्मो नियमश्च सत्यम् ।

गुणस्तथाष्टावपि तेषु नित्या व्यस्ताः समस्ताश्च यथा-

प्रभावम् ॥ १८ ॥ न ते मनुष्येः सह संविशन्ति न वा मनु-

ष्यान्त्रचिदाविशन्ति । ये वा विंशतीति वदन्ति मोहात् भूत-

विद्याविषयादपोह्याः ॥ १९ ॥ तेषां ग्रहाणां परिचारका ये

कोटीसहस्रायुतपद्मसंख्याः । असृग्बसामांसभुजः सुभीमा

निशाविहाराश्च तमाविशन्ति ॥ २० ॥

इन देवादि ग्रहोंमें तीव्र तप तथा दान व्रत धर्म नियम सत्य और प्रभाव ये आठ गुण सब या थोड़े रहते हैं ॥ १८ ॥ वे देवग्रह मनुष्यों के पास कभी नहीं रहते और मनुष्योंके देहमें कभी प्रवेश भी नहीं करते और जो मोहमें ( भ्रममें ) ऐसा कहते हैं कि देवता मनुष्योंके देहमें आवेश करते हैं वे कहनेवाले मनुष्योंके विषयमें अनभिज्ञ हैं ॥ १९ ॥ इन महादेवार्चकाएँ देवादिकों परिचारक कोंडों हजारों व्याधों पक्षों हैं वे यथारूपता मांस इनके चानेवाले और भवेत्तर रात्रिमें चितरनेवाले होते हैं वे मनुष्योंके देहमें आवेश करते हैं ( मनुष्य देवादिक आवेश नहीं करते ) ॥ २० ॥

( श्री- १८ ) तेषु तेषु अनेक गुण उपरमाते समस्ता व्यस्ताश्च विंशतिवति २० महादेवार्चका समस्ता अनन्तरावपि व्यस्ता भूता इति भाष्यम् ॥

निशाचराणां तेषां हि<sup>३</sup> ये<sup>४</sup> देवमर्णसंसृताः ।

ते तु तत्सत्त्वसंसर्गाद्विज्ञेयास्तु तदंजनाः ॥ २१ ॥

देवग्रहा इति पुनः प्रोच्यंते शुचयश्च ये ।

देववच्च नमस्यंते प्रत्यर्थ्यते च देववत् ॥ २२ ॥

स्वामिशीलक्रियाचाराः क्रम एव सुरादिषु ॥ २३ ॥

उन निशाचरों ( ग्रहों ) मेंसे जो देवगणोंसे संसर्ग रखनेवाले हैं वे अपने स्वामीके सत्त्वके संसर्गसे उन्हीं जैसे लक्षणोंवाले होतेहैं ॥ २१ ॥ और ये देव-ग्रह कहलातेहैं और पवित्र होतेहैं ये देवताओंकी भाँति नमस्कार करने योग्यहैं और वैसेही प्रार्थनाकरनेयोग्यहैं इनमें स्वामी ( अपने अधिष्ठाता देवता )केसा स्वभाव क्रिया और आचार होताहै देव ग्रहादिकका तो यह क्रम है ॥ २२ ॥ २३ ॥

नैर्ऋतेया दुहितरस्तासां सप्रसवः स्मृतः ।

सत्त्वत्वादप्रवृत्तेषु वृत्तिस्तेषां गणैः कृता ॥ २४ ॥

हिंसाविहारा ये<sup>५</sup> केचिद्विष्यं भावमुपाश्रिता ।

भूतानीति<sup>६</sup> कृता संज्ञा तेषां संज्ञाप्रवक्तृभिः ॥ २५ ॥

और निर्ऋतिकी पुत्रीसे जिनकी उत्पत्ति है ( दैत्य ग्रहादि ) वे दैवी सत्त्वके विपरीत होनेसे गणोंने ( उनके गणाधिपोंने ) उनकी वृत्ति यही कल्पना करीहै ( और कोई "सत्त्वत्वादाप्रवृत्तेषु" का ऐसा अर्थ करतेहैं कि जो सत्याचारसे भ्रष्ट मनुष्य हैं उनमें ग्रहोंकी वृत्ति नियत करी ) ॥ २४ ॥ और जो हिंसा विहार करनेवाले दिव्यभावको प्राप्तहुए ये ग्रह हैं संज्ञा करनेवालोंने इनकी भूतसंज्ञा करीहै ॥ २५ ॥

**भूतविद्याकी निरुक्ति ।**

ग्रहसंज्ञाभिभूतानि यस्माद्वैत्त्यनया भिषक् ।

विद्यया भूतविद्यात्वमत एव निरुच्यते ॥ २६ ॥

जिस विद्यासे वैद्य यह जानजावे कि यह रोगी इन देवग्रहादि भूतोंसे अभिभूत अर्थात् पीडित है उस विद्याको भूतविद्या कहतेहैं ॥ २६ ॥

**देवादि पीडितकी चिकित्सा ।**

तेषां शान्त्यर्थमन्विच्छन्वैद्यस्तु सुसमाहितः ।

जप्यैः सनियमैर्होमैरारभेत चिकित्सितम् ॥ २७ ॥



रक्तानि गंधमाल्यानि बीजानि मधुसर्पिषाम् ।  
 भक्ष्याश्चैवं सर्वेषां सामान्यो विधिर्बुध्यते ॥ २८ ॥  
 वस्त्राणि मद्यमांसानि क्षीराणि रुधिराणि च ।  
 यानि येषां यथेष्टानि तानि तेभ्यः प्रदापयेत् ॥ २९ ॥  
 हिनस्ति मनुजान्येषु प्रायशो दिवसेषु तु ।  
 दिनेषु तेषु देवीनि तद्धृतविनिवृत्तये ॥ ३० ॥

इनकी शांतिकी इच्छा करनेवाले वैद्यको उचित है कि सावधान होकर जप नियम होम इत्यादि करके चिकित्सा आरंभ करे ॥ २७ ॥ सुख चंदन कुंकुमादि गंध और रक्त ही पुष्प तथा वैसे ही बीज ( सरसों राई ) शहद और घृत और सब प्रकारके भक्ष्य पदार्थों से पूजा करना यह सब ग्रहोंकी सामान्य विधि है ॥ २८ ॥ और जैसे वस्त्र मद्य मांस दूध रुधिर जो जिसे प्रिय हों उन ग्रहोंकी वही समर्पण करने चाहियें ॥ २९ ॥ जिस २ दिनमें ( या समयमें ) जो जो ग्रह मनुष्योंपर प्रायः घात करते हैं (जैसे पहले कह चुके हैं) उन्हीं उन दिनोंमें उनकी शांतिके लिये बलि भेंट आदि देनी चाहियें ॥ ३० ॥

देवग्रहे देवगृहे हुत्वाग्निं प्रापयेद्बलिम् ।  
 कुशस्वस्तिकपूपाज्यच्छत्रपायसंसंभृतम् ॥ ३१ ॥  
 असुरोय यथाकालं विद्व्याच्चत्तरादिषु ।  
 चतुष्पथे राक्षसेभ्य भीमेषु गहनेषु वा ॥ ३२ ॥  
 शून्यागारे पिशाचेभ्य तो व्रं बलिमुपाहरेत् ।  
 पूर्वभाचारेभ्यैव भूतविद्यादिदर्शितैः ॥ ३३ ॥  
 न शक्या बलिभिर्जेतुं योगांस्तान्समुपाचरेत् ।  
 अनर्जचर्मरोगाणि शल्यकोल्कयोस्तथा ॥ ३४ ॥

( श्लो० ३० ) देव दिवसेषु । यथा गंधर्वाः यथा गन्धर्वः यथा गन्धर्वः यथा गन्धर्वः । तद्वत्तु विविधगुणैः तेषु देवैः तद्वत्तु विविधगुणैः तद्वत्तु विविधगुणैः ।

( श्लो० ३१ ) अग्निं बलिं । भक्ष्यपदार्थः । यथादिबुद्धिर्बलिभोजनं सामान्यं बलिपदसुरविद्याः । ( इति उत्तरः )

( श्लो० ३२ ) शून्यं बलिं आनयति भक्ष्यम् । अग्नेः यथादिबुद्धिर्बलिभोजनम् ।

हिंशु मूत्रं च वस्तस्य धूमस्य प्रयोजयेत् ।

एतेन शाम्यति क्षिप्रं बलवानपि यो ग्रहः ॥ ३५ ॥

देवग्रह हों तो देवमंदिरमें अग्निहोत्र करे बलि निवेदन करे और कुशा स्वस्तिक ( एकभांतिका भक्ष्य) पूरे घृतच्छत्र और खीर ये निवेदन करे ॥ ३१ ॥ और असुर ग्रह हों तो उसके समयमें चत्वर ( मैदान या चौक ) में बलिदान करे और राक्षसकी पीडा हो तो चतुष्पथ ( चौराहे ) या भयंकर गहन वनमें बलि देवे ॥ ३२ ॥ पिशाचकी पीडा हो तो शून्य मकानमें तीव्र ( रुधिरादि ) बलिदान करे और पहले कहे हुए भूत विद्याके मंत्र पढ़े ( इस कथनसे पाया जाता है कि पहले कोई भूत विद्याका पृथक् तंत्र महर्षि धन्वंतरिजीने रचा होगा ) ॥ ३३ ॥ और जो ग्रह बालप्रदान आदिसे शांत न हों तो उनके लिये ये प्रयोग करे कि बकरे और रीछके बाल सहके कांटे उल्लूके पर ॥ ३४ ॥ हींग बकरेका मूत्र इनको मिलाकर धूनी देवे इस धूनीसे बलवान् ग्रह भी शीघ्र शांत होजाते हैं ॥ ३५ ॥

गजाह्वपिप्पलीमूलव्योषामलकसर्षपान् ।

गोधानकुलमार्जारऋक्षपित्तप्रभावितान् ॥ ३६ ॥

नस्याभ्यंजनसेकेषु विदध्याद्योगतत्त्ववित् ।

खराश्वाश्वतरोलूककरभश्वशृगालजम् ॥ ३७ ॥

पुंरीषं गृध्रकांकानां वराहस्य च पेषयेत् ।

वस्तमूत्रेण तत्सिद्धं तैलं स्यात्पूर्ववर्द्धितम् ॥ ३८ ॥

शिरीषबीजं लशुनं गुंठीं सिद्धार्थकं वचाम् ।

मंजिष्ठां रजनीं कृष्णां वस्तमूत्रेण पेषयेत् ॥ ३९ ॥

वतीश्छायाविशुष्कास्ताः सपित्ता नयनांजनम् ।

नक्तमालफलं व्योषं मूलं स्योनाकविल्वयोः ॥ ४० ॥

हरिद्रे च कृता वर्तिः पूर्ववन्नयनाञ्जनम् ।

ये ये ग्रहा न सिध्यन्ति सर्वेषां नयनांजनम् ॥ ४१ ॥

सैधवं कटुकं हिंशु वयस्थां च वचामपि ।

वस्तमूत्रेण तत्पिष्टं मत्स्यपित्तेन पूर्ववत् ॥ ४२ ॥

गजपीपल पीपलामूल त्रिकटु आंवले सरसों इनको गोह नौला और  
 विलाव तथा रीछ इनके पित्तकी भावना देवे ॥ ३६ ॥ इसे नम्य  
 मर्दन अंजन और सेचन ( छिड़के देना ) इन सब कामोंमें लावे । अथवा  
 गंधा घोंडा खजूर उल्लू ऊँट कुत्ता और गोदड़ इनकी बीट ॥ ३७ ॥  
 तथा गोध्र और कागकी तथा सूकरकी विष्टा इनको बकरेके मूत्रमें  
 पीसकर उससे तेल सिद्ध करे यह तेल भी पहलेकी भाँति सब कार्यमें हित  
 है ॥ ३८ ॥ अथवा शिरसके धीज लहसन सोंठ सुपेद्र सरसों वच मंजीठ हलदी  
 पीपल इनको बकरेके मूत्रमें पीसले ॥ ३९ ॥ और बर्त्ती बनाकर छायामें सुखाले  
 और इसे पित्तमें घिसकर नेत्रोंमें अंजन करे अथवा करंजके धीज त्रिकटु अरल  
 और विल्वकी जड़ ॥ ४० ॥ दोनों हलदी इनकी बर्त्तीसी बनाकर पहलेकी  
 तरह अंजन करे । और जो ग्रह इनसे शांत नहों उन सबके लिये यह नीचेवाला  
 अंजन लगावे ॥ ४१ ॥ सिंघानमक त्रिकटु हींग गिलोय और वच इनको बकरे  
 के मूत्रसे पीसकर मल्ला के पित्तकी भावना देकर पूर्वोक्त प्रकारसे अंजन  
 करे ॥ ४२ ॥

### अपराजितवर्ग ।

पुराणसर्पिलेशुनं हिगु सिद्धार्थकं वचा ।  
 गोलोमी चाजलोमी च भूतकेशी जटा तथा ॥ ४३ ॥  
 कुकुटी सर्पगंधा च तथा काणविषाणिके ।  
 ऋण्यप्रोक्ता वयस्था च शृंगी मोहनवल्लिका ॥ ४४ ॥  
 अर्कमूलं त्रिकटुकं लता स्रोतोऽजनांजनम् ।  
 नेपाली हरितालं च रक्षोघ्ना ये च कीर्तिताः ॥ ४५ ॥  
 सिंहव्याघ्रक्षमाजार्द्धीपिवाजिगवां तथा ।  
 श्वाविच्छल्यकगोधानामुद्रस्य नकुलस्य च ॥ ४६ ॥  
 विट्त्वग्रोमवतामृप्रक्तपित्तनखादयः ।  
 अस्मिन्वर्गे भिषगुर्यात्तिलानि च घृतानि च ॥ ४७ ॥

( सं० ४३ से ४७ ) सिद्धार्थक अतिसंवेन । गोलोमी चनयो अजलोमी हात  
 जटा मधुगंधी । कुकुटी कुकुटारकस्य फलमेव । सर्पगंधा अलनमते वृक्षस्य फलम् ।  
 काणविषाणिके । अथ कान्त सौम्यार्थको । ऋण्यस्या रक्षादौ दूरिणी वा । इति  
 ( सं० ४७ ) वयस्था पुष्पी । मोहनवल्लिका इत्यर्थः । इति त्रिकटुः ( त्रिनि० ६० )

पुरानाघृत लहसन हींग सुपेदसरसों वच गोलोमी ( सुपेददूब ) अजलोमी ( दूब ) भूतकेशी ( जटामांसी ) और जटा ( गंधमांसी ) ॥ ४३ ॥ कुकुटी ( बुडड़ी वर्षा में सुपेद कुकडीसी होती है ) और सर्पगंधा ( नाकुली ) काण ( क्षीरकाकोली ) काकडासींगी सितावर गिलोय मेंढासींगी मोहनवल्ली ( वटपत्री ) ॥ ४४ ॥ आककी जड़ त्रिकटु लता ( प्रियंगु या स्पृक्का ) सुरमा रसोत मैनसिल हरिताल तथा रक्षोघ्न अन्यद्रव्य ॥ ४५ ॥ सिंह भंगेरा रोछ बिलाव गेंडा घोड़ा और गौ तथा सेह शल्यकी ( सेहका भेद जिसे फोकरी कहते हैं ) गोह ऊँट और न्यौला ॥ ४६ ॥ इनके विष्टा त्वचा ( चर्म ) रोम चरबी मूत्र रुधिर पित्त और नख इत्यादि यथा संभव इकट्ठे करके इनमें वैद्य तैल तथा घृत सिद्ध करे ॥ ४७ ॥

### इसके गुण ।

पानाभ्यञ्जननस्येषु तानि योज्यानि जानता ।

अवपीडेऽञ्जेन चैवं विद्व्याद्भुटिकीकृताम् ॥ ४८ ॥

विदधीत परीषेके कथितं चूर्णितं तथा ।

उद्धूलने श्लक्ष्णपिष्टं प्रदेहे चावचारयेत् ॥ ४९ ॥

एष सर्वविकारांस्तु मानसानपराजितः ।

हन्यादल्पेन कालेन स्नेहादिरपि च क्रमात् ॥ ५० ॥

उपरोक्त औषधोंका जो वर्ग कहा उसमें पकाये घृतको पान करावे तैलादिको अभ्यंग और नस्यादिमें जानकार वैद्य उपयोग करे और उसी उपरोक्त वर्गकी गोली बनाले उनका अवपीड ( नस्य ) देवे तथा अंजन करे ॥ ४८ ॥ और इन्हींका काथ करके परिषेक करे तथा चूर्ण बनाकर उद्धूलन करे ( शरीरपर सूखा मले ) और इन्हीं सबको गीला पीसकर प्रदेह ( लेप या उबटन ) करे ॥ ४९ ॥ यह ऊपर जो औषधोंका वर्ग कहा है इसका नाम अपराजित है यह सब प्रकारके मन संबंधी विकारोंको थोड़े ही समयमें शांत करदेता है इसमें पहले स्नेहन स्वेदन वमन रेचनादि क्रम भी करना उचित है ॥ ५० ॥

न चायुक्तं प्रयुंजीत प्रयोगान्देवताग्रहे ।

ऋते पिशाचादन्येषु प्रतिकूलं न चाचरेत् ।

वैद्यातुरौ निहन्युस्ते ध्रुवं कुद्धा महोजसः ॥ ५१ ॥

हिताहितविधानं च नित्यमेव समचरेत् ।

ततः प्राप्स्यति सिद्धिं च यशश्च विपुलं भिषक् ॥ ५२ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे पष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

देवता ग्रहके उपचारमें कोई अयुक्त उपयोग नहीं करना चाहिये पिशाचके शिवाय अन्य ग्रहोंमें प्रतिकूल आचरण नहीं करने चाहिये क्योंकि वे महा पराक्रमी ग्रह हैं क्रोध होजायें तो वैद्य और रोगी दोनोंको अवश्य मार डाले ॥ ५१ ॥ इस लिये देवता चाहिये कि नित्य हित और अहित विधानका विचार करके सब आचरण कर ऐसा करनेसेही सिद्धि और पूरा यश प्राप्त होताहै ॥ ५२ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया आषाढीकायामुत्तरतन्त्रे पष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

## एकपष्ठितमोऽध्यायः ६१.

अथातोऽपस्मारप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम अपस्मार ( मृगी रोगके प्रतिषेध की अध्याय का व्याख्यान करतेहैं ॥

## अपस्मारकी निरुक्ति ।

स्मृतिर्भूतार्थविज्ञानमपश्च परिवर्जने ।

अपस्मार इति प्रोक्तस्ततोऽयं व्याधिरन्तकृत् ॥ १ ॥

भूतार्थक विज्ञानको स्मृति या स्मार कहतेहैं और अपका अर्थ परिवर्जन है इस कारणसे इस व्याधिको अपस्मार कहतेहैं ( अर्थात् इसमें स्मृति ज्ञान नष्ट होताहै इसीसे इसे अपस्मार कहतेहैं ) ॥ १ ॥

## अपस्माररोगके कारण ।

मिथ्यादियोगेन्द्रियार्थकर्मणामभिसेवयात् ।

विरुद्धमालिनाहारविहारकुपितमलेः ॥ २ ॥

( श्लोक १ ) स्मारः स्मरणं धन्यतः स्मृतौ सम्मिलितमोऽपस्मारः । इति विनिर्दिष्टः ।

( श्लोक २ ) मिथ्यादियोगेन्द्रियः । अथ कालिजनेन केष्विह अविमोहनयोगं यः गृह्णति साधुसिद्धौ मिथ्यायोगात्ततः प्रत्यये गतः । परंपरुहिसाहाय्यत्वं मिथ्यायोगः । यथापनि धारणवत्कं अविमोहः । सर्वत्र अवश्यं उपयोगः । इति नि० सं० ) एवमेव सर्वेषामिन्द्रियार्थं विज्ञानं ।

वेगनिग्रहशीलानामहिताशुचिभोजिनाम् ।

रजस्तमोभिभूतानां गच्छतां च रजस्वलाम् ॥ ३ ॥

तथा कामभयोद्वेगक्रोधशोकादिभिर्भृशम् ॥

चेतस्यभिहते पुंसामपस्मारोऽभिजायते ॥ ४ ॥

इंद्रियाथोंके मिथ्यादियोगसे (श्रोत्र त्वचा चक्षु रसना और घ्राण इनके अर्थ शब्द स्पर्श रूप रस गंध इनके अयोग अतियोग और मिथ्यायोगसे जैसे शब्दको कभी विलकुल सुने ही नहीं यह अयोग और बहुत भारी शब्द तोप केसा शब्द बहुत सुनना अतियोग और बेसुहावनाशब्द सुनना मिथ्यायोग श्रोत्रका हुवा इसी भांति सबका जानना ) तथा कर्मोंके मिथ्यायोग अतियोग और योगसे जैसे चलना फिरना ही नहीं अयोग बहुत फिरना अतियोग और अयोग्य फिरना मिथ्यायोग इसी प्रकार अनेक कर्म के समझना इन मिथ्यादिके सेवनसे तथा विरुद्ध और मलीन आहार विहारों आदिसे मल कुपित होजातेहैं जिनसे यह रोग ॥२॥ वेग रोकनेवालोंके अहित अपवित्र भोजन करनेवालों के रजोगुण और तमोगुण प्रकृतिवालोंके रजस्वला स्त्री का संगम करनेवालोंके ॥ ३ ॥ काम भय उद्वेग क्रोध शोकादिसे कुपित हुये दोष मनुष्योंके चित्तमें आघात पहुँचातेहैं जिससे यह अपस्मार रोग होता है ॥४॥

### अपस्मारकी संप्राप्ति रूप और भेद ।

संज्ञावहेषु स्रोतःसु दोषव्याप्तेषु मानवः ।

रजस्तमःपरीतेषु मूढो भ्रातेन चेतसा ॥ ५ ॥

विक्षिपन्हस्तंपादौ च विजिह्वुर्विलोचनः ।

दन्तान्वादन्वर्मन्फे न विवृताक्षः पते त्क्षितौ ॥ ६ ॥

अल्पकालांतरं चापि पुनः संज्ञां लभेत सः ।

सोऽपस्मार इति प्रोक्तः स च दृष्टश्चतुर्विधः ॥ ७ ॥

वातपित्तकफैर्नृणां चतुर्थः संनिपाततः ॥ ८ ॥

संज्ञाके बहनेवाले ( इंद्रियादि विषयोंके ज्ञान प्राप्त करनेवाले ) स्रोतों

( श्लो० ३ ) रजस्तमोभिभूतानां रजस्तमोबाहुल्यानाम् ।

( श्लो० ४ ) एतैर्हेतुभिश्चित्ते अभिहते सति दूषित अपस्मारोऽभिजायते । एतैर्हेतुभिश्चित्ताभिवातहेतुभिः ।

( द्वारों धमनियों अर्थात् रगों ) में जब रज और तम युक्त वातादि दोष व्याप्त होजातेहैं तब चित्त भ्रांत होकर मूड ( मोह या मूर्च्छा ) में प्रात हुआ ) मनुष्य ॥५॥ हाथ पावोंको फैलाता या पटकताहुआ पृथ्वीमें गिरजाता है जिहाध् और नेत्र विकृत होजातेहैं दांत कटकटाते हैं मुंहसे झाग आतेहैं और आंखें फटीसी होजाती हैं ॥ ६ ॥ थोड़ी देरके पीछे फिर चैतन्य होजता है ( होशमें होजाता है ) ( इसी प्रकार इस रोगका दौरा होने लगता है ) इसे अपस्मार कहते हैं यह चार प्रकारका होता है वायुका पित्तका कफका और सन्निपातका ॥ ७ ॥ ८ ॥

( वक्तव्य ) वैद्यकमें संज्ञा और बुद्धिका मूल विशेष करके हृदय माना है परंतु कई आचार्य मूर्छाको भी मानतेहैं जो हृदयको बुद्धिका स्थान मानते हैं उनके मतसे यह हृदयमें होनेवाली व्याधि समझी जाती है और जो मूर्छाको मानतेहैं उनके मतसे मूर्छामें विकार होनेमें यह व्याधि होती है ऐसा माना जाता है ॥

## अपस्मारका पूर्वरूप ।

हृत्कंपः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमृष्टता ।

निद्रानाशश्च तस्मिंस्ते भविष्यति भवन्त्यथ ॥ ९ ॥

हृदयमें कंप हो शून्यता हो पसीना जमि ध्यानसा बंद हो जावे मूर्च्छा हो प्रमृष्टता ( हाथ बिगड़ना ) निद्राका नाश ये लक्षण इसके पूर्वरूपके हैं ( अर्थात् जब उपरोक्त लक्षण हों तो जानना कि इसके मूर्छाका रोग होनेवाला है ) ॥ ९ ॥

## वातादि अपस्मारके लक्षण ।

वेपमानो देशेदंतान्धसन्फेनं वमन्नपि ।

योत्रेशादिकृतं सत्त्वं कृष्णं मामनुधावति ॥ १० ॥

ततो मे चित्तनाशः स्यात्सोऽपस्मारोऽनिलात्मकः ।

तृदनापस्वेदमूर्च्छातो धुन्वन्नंगानि निहृतः ॥ ११ ॥

यो त्रयादिकृतं सत्त्वं पीतं मामनुधावति ।

ततो मे चित्तनाशः स्यात्स पित्तभय उच्यते ॥ १२ ॥

औ कोमलाहुआ हलिके मीने आम बरसो मरसो खरे मुहसे झाग आवे और जो ऐसा बदे कि बाला बाला भस्कर पोर में बसि दोहा



आता है ( या सामने काला ही काला दीखता है ) ॥ १० ॥ तब मुझे बेहोशी होती है ये वायुके अपस्मारके लक्षण हैं और जो ताप तृषा पसीना और मूर्च्छा इनसे पीडित हो और अंगोंको धुनता हुआ बेहोश होजावे ॥ ११ ॥ और ऐसा कहे कि पीले रंगका कोई भयंकर रूपसा मेरे पीछेसे ( या आगेसे ) दौड़ा आता है तब मुझे बेहोशी होजाती है ये लक्षण पित्तके अपस्मारके होते हैं ॥ १२ ॥

शीतहृल्लासनिद्रार्तः पतन्भूमौ वमन्कफम् ।

यो ब्रूयाद्विकृतं सत्त्वं शुक्लं मामनुधावति ॥ १३ ॥

ततो मे चित्तनाशः स्यत्सोऽपस्मारः कफात्मकः ।

हृदितोदस्तृडुत्क्लेदस्त्रिष्वप्येतेषु संख्यया ॥ १४ ॥

प्रलापः कूजनं क्लेशः प्रत्येकं तु भवेदिह ।

सर्वलिंगसमावायः सर्वदोषप्रकोपजे ॥ १५ ॥

जो शीत हृल्लास ( मुँहमें पानी भर आना ) और निद्रासे पीडित हो पृथ्वीमें गिरता हुआ मुँहसे झाग डाले और ऐसा कहे कि सुपेद रंगका कोई भयंकरसा रूप मेरे पीछेसे ( या आगेसे ) दौड़ासा आता है ॥ १३ ॥ जब मैं बेहोश होजाता हूँ ये लक्षण कफके अपस्मारके होते हैं । और सन्निपात अपस्मारके ये लक्षण होते हैं कि हृदयमें पीडा तृषा उत्क्लेद ये तीनों दोषोंके चिह्न होंगे और प्रलाप कूजन ( अव्यक्त शब्द ) और क्लेश ये भी प्रत्येक होते हैं तथा सब दोषोंके मिले अन्य लक्षण ( जैसे सब रंगका विकृत रूप दीखे या कभी कैसा कभी कैसा दीखे ) ॥ १४ ॥ १५ ॥

## अन्यमत ।

अनिमित्तागमाद्यधिर्गमनादकृतेऽपि च ।

आगमाच्चाप्यपस्मारं वदन्त्यन्ये न दोषजम् ॥ १६ ॥

कोई ऐसा भी कहते हैं कि विना कारणही इसके उत्पन्न होनेसे और विना प्रतिकार किये ही इस व्याधिके दूर होजानेसे तथा आगमसे ( किसी शास्त्रके

( श्लो० १६ ) अनिमित्तागमात् आकस्मिकोद्भवात् । प्रतीकारे अकृते च गमनात् नायं दोषजो व्याधिरिति वदन्ति । किंतु भूतादिजन्यः मनोभवश्च इति वदन्ति । आगमाच्च मंत्रशास्त्रादौ अस्य प्रतीकारबाहुल्याच्च ।

प्रमाणसे ) यह व्याधि दोषज वातादि दोषोंसे उपजनेवाली नहीं किंतु अमा-  
तुष भूतादिजन्य या मानस विकारसे होनेवाली है ॥ १६ ॥

## उसका समाधान ।

क्रमोपयोगादोषाणां क्षणिकत्वात्तैश्चैवं च ।

आगमाद्वैश्वरूपाच्च सै तु निर्वर्ण्यते बुधैः ॥ १७ ॥

वैपत्यपि यदा देवे भूमौ बीजानि कानिचित् ।

शरदि प्रतिरोहन्ति तथौ व्याधिसमुद्भवः ॥ १८ ॥

स्थायिनः केचिदल्पेन कालिनाभिप्रवर्द्धिताः ।

दर्शयन्ति विकारास्तु विश्वरूपान्निसर्गतः ॥ १९ ॥

अपस्मारो महाव्याधिस्तस्मादोषज एव तु ।

तस्य कार्यो विधिः सर्वो य उन्मादेषु वक्ष्यते ॥ २० ॥

श्रीधन्यंतरिजी कहतेहैं कि प्रथमतः यह दोषों वातादिके क्रमके उपयोगसे उत्पन्न होती है (अर्थात् वातादि वायु जल शीत उष्णादिके उपयोग होनेसे पैदा होतीहै) इससे अनिमित्तागम नहीं रही इससे यह क्षणिक स्वभावहीमें होतीहै अर्थात् जब दोषोंका योग हटजाताहै तब स्वयं शांत होजातीहै इससे बिना मन्त्रके चलीजानाही चाहिये तीसरे आगमसे अर्थात् शास्त्रकारोंने इसे दोषज नार भौतिका लिखाहैहै बोधे यह कि ये वातादि दोष विश्वरूप सगुण सत् जगत् रहनेवाले हैं इससे इनके बिना कुछ होता नहींसकता इसलिये यद्यपि इसे दोषजही मानाहै और टीका है ॥ १७ ॥ इसमें फिर यह शंका होसकतीहै कि भूटा जी आराम रहनेके दिनोंमें ये दोष कहाँ चलेजातेहैं इसका समाधान यह है कि पृथ्वीमें पड़पड़ बीज भेद वर्षाकेपर शरदःकालमें लगते हैं (नदी को पृथ्वीमें दोषपड़े रहतेहैं) इसी भौतिये वातादि दोषोंका कारण और समयवाकर उत्पन्न होतेहैं तब व्याधिका दर्शन होताहै ॥ १८ ॥ और जैसे थोड़े बीज स्यायी (देरसे लगते) हैं और कोई थोड़ेही समयमें लगकर बढ़जातेहैं इस प्रकार इन वातादि दोषोंमेंसे भी अपने स्वभावसे थोड़े थोड़े और थोड़े देरमें

( टीका-१७ ) दोषोंका क्रमोपयोगसे ही व्याधिजन्य होता है, न कि अनादिमत्त । अनादिमत्त भावपूर्वक । वैश्वरूपाच्च । विश्वरूपकेव्यापक । सर्वत्र व्यापक ।

आता है ( या सामने काला ही काला दीखता है ) ॥ १० ॥ तब मुझे बेहोशी होती है ये वायुके अपस्मारके लक्षण हैं और जो ताप तृषा पसीना और मूर्च्छा इनसे पीडित हो और अंगोंको धुनता हुआ बेहोश होजावे ॥ ११ ॥ और ऐसा कहे कि पीले रंगका कोई भयंकर रूपसा मेरे पीछेसे ( या आगेसे ) दौड़ा आता है तब मुझे बेहोशी होजाती है ये लक्षण पित्तके अपस्मारके होते हैं ॥ १२ ॥

**शीतहृल्लासनिद्रार्तः पतन्भूमौ वमन्कफम् ।**

**यो ब्रूयाद्विकृतं सत्त्वं शुक्लं मामनुधावति ॥ १३ ॥**

**ततो मे चित्तनाशः स्यत्सोऽपस्मारः कफात्मकः ।**

**हृदितोदस्तृडुत्क्लेदस्त्रिष्वप्येतेषु संख्यया ॥ १४ ॥**

**प्रलापः कूजनं क्लेशः प्रत्येकं तु भवेदिह ।**

**सर्वलिङ्गसमावायः सर्वदोषप्रकोपजे ॥ १५ ॥**

जो शीत हृल्लास ( मुँहमें पानी भर आना ) और निद्रासे पीडित हो पृथ्वीमें गिरता हुआ मुँहसे झाग डाले और ऐसा कहे कि सुपेद रंगका कोई भयंकरसा रूप मेरे पीछेसे ( या आगेसे ) दौड़ासा आता है ॥ १३ ॥ जब मैं बेहोश होजाता हूँ ये लक्षण कफके अपस्मारके होते हैं । और सन्निपात अपस्मारके ये लक्षण होते हैं कि हृदयमें पीडा तृषा उत्क्लेद ये तीनों दोषोंके चिह्न होंगे और प्रलाप कूजन ( अव्यक्त शब्द ) और क्लेश ये भी प्रत्येक होते हैं तथा सब दोषोंके मिले अन्य लक्षण ( जैसे सब रंगका विकृत रूप दीखे या कभी कैसा कभी कैसा दीखे ) ॥ १४ ॥ १५ ॥

**अन्यमत ।**

**अनिमित्तागमाद्व्याधिर्गमनादकृतेऽपि च ।**

**आगमाच्चाप्यपस्मारं वदन्त्यन्ये न दोषजम् ॥ १६ ॥**

कोई ऐसा भी कहते हैं कि विना कारणही इसके उत्पन्न होनेसे और विना प्रतिकार किये ही इस व्याधिके दूर होजानेसे तथा आगमसे ( किसी शास्त्रके

( श्लो० १६ ) अनिमित्तागमात् आकस्मिकोद्भवात् । प्रतीकारे अकृते च गमनात् नायं दोषजो व्याधिरिति वदन्ति । किंतु भूतादिजन्यः मनोभवश्च इति वदन्ति । आगमाच्च मंत्रशास्त्रादौ अस्य प्रतीकारबाहुल्याच्च ।

प्रमाणसे ) यह व्याधि दोषज वातादि दोषोंसे उपजनेवाली नहीं किंतु अमा-  
नुष भूतादिजन्य या मानस विकारसे होनेवाली है ॥ १६ ॥

## उसका समाधान ।

क्रमोपयोगादोषाणां क्षणिकत्वात्तथैव च ।

आगमाद्वैश्वरूपाच्च स तु निर्वर्ण्यते बुधैः ॥ १७ ॥

वर्षत्यपि यदा देवे भूमौ बीजानि कानिचित् ।

शरदि प्रतिरोहन्ति तर्था व्याधिसमुद्भवः ॥ १८ ॥

स्थायिनः केचिदल्पेन कालेनाभिप्रवर्द्धिताः ।

दर्शयन्ति विकारास्तु विश्वरूपान्निसर्गतः ॥ १९ ॥

अपस्मारो महाव्याधिस्तस्मादोषज एव तु ।

तस्य कार्यो विधिः सर्वो य उन्मादेषु वक्ष्यते ॥ २० ॥

श्रीधन्वंतरिजी कहेतेहें कि प्रथमतो यह दोषों वातादिके क्रमके उपयोगसे उत्पन्न होती है (अर्थात् वातादि वायु जल शीत उष्णादिके उपयोग होनेसे पैदा होती है ) इससे अनिमित्तागम नहीं रही दूसरे यह क्षणिक स्वभावहीसे होती है अर्थात् जब दोषोंका वेग हटजाता है तब स्वयं शांत होजाती है इससे विना यत्नके चलीजानाही चाहिये तीसरे आगमसे अर्थात् शास्त्रकारोंने इसे दोषज चार भांतिका लिखाही है चौथे यह कि ये वातादि दोष विश्वरूप सर्वत्र सब जगह रहनेवाले हैं इससे इनके विना कुछ होही नहींसकता इसलिये वैद्योंने इसे दोषजही माना है और ठीक है ॥ १७ ॥ इसमें फिर यह शंका होसकती है कि भला जी आराम रहनेके दिनोंमें वे दोष कहाँ चलेजातेहैं ? इसका समाधान यह है कि पृथ्वीमें पड़ेहुए बीज मेह वर्षनेपर शरदऋतुमें ऊगते हैं ( नहीं तो पृथ्वीमें दबेपड़े रहतेहैं ) इसी भांति वे वातादि दोषभी कारण और समयपाकर कुपित होतेहैं तब व्याधिका दर्शन होता है ॥ १८ ॥ और जैसे कोई बीज स्थायी ( देरसे ऊगते ) हैं और कोई थोड़ेही समयमें ऊगकर बढजातेहैं इस प्रकार इन वातादि दोषोंमेंसे भी अपने स्वभावसे कोई शीघ्र और कोई देरसे

( श्लो० १७ ) दोषाणां क्रमोपयोगात् संचयादिक्रमेण विकारजननयोगात् तथा दोषाणामेव क्षणिकत्वात् । आगमात् आयुर्वेदात् । वैश्वरूपाच्च वातपित्तश्लेष्मणां सर्वत्र सद्भावात् ।

विकार दिखातेहैं ॥ १९॥ इन्हीं कारणोंसे यह अपस्मार महाव्याधि दोषोंहीसे उत्पन्न होनेवाली है अन्यथा नहीं और इसकी चिकित्सा भी ( दोषोंकेही अनुसार ) जैसे उन्मादमें कही जावेगी वैसे करनी उचित है ॥ २० ॥

## मृगीकी सामान्य चिकित्सा ।

पुराणसर्पिषः पानमभ्यंगश्चैव पूजितः ।

उपयोगो ग्रहोक्तानां योगानां तु विशेषतः ॥ २१ ॥

शिशुकट्वंगकिण्वं हि निंबत्वग्रससाधितम् ।

चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलमभ्यंजने हितम् ॥ २२ ॥

गोधानकुलनागानां पृषतर्क्षगवामपि ।

पित्तेषु सिद्धं तैलं च पानाभ्यंगेषु पूजितम् ॥ २३ ॥

तीक्ष्णैरुभयतो भागैः शिरश्चापि विशोधयेत् ।

पूजां रुद्रस्य कुर्वीत तद्गणानां च नित्यशः ॥ २४ ॥

पुराना घृत पिलाना और मर्दन करना श्रेष्ठ है तथा जो उपयोग ग्रहोंके लिये कहेहैं उनका भी यहां विशेषकर उपयोग करे ॥ २१ ॥ तथा सोहंजना अरलू आर सुराबीज नींबकी छाल और रस ( या नींबकी छालका रस ) इनमें चौगुना गोमूत्र डालकर तैल पकावे और उसका मर्दन करे ॥ २२ ॥ अथवा गोह नौला सर्प और सावर रीछ गौ इनके पित्तोंमें सिद्ध किया तैल पान और अभ्यंगमें श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥ तथा तीक्ष्ण योगोंसे वमन विरेचन देकर नीचे ऊपरसे शोधन करे और शिरका भी शोधन ( नस्य देकर ) करे तथा नित्य शिवजीकी और उनके गणोंकी पूजा किया करे ॥ २४ ॥

## वातादिके अपस्मारकी चिकित्सा ।

कुलत्थयवकोलानि शणबीजं पलंकषाम् ॥ जटिलां पंचमूल्यां  
द्वे पथ्यां चोत्क्राथ्य यत्नतः ॥ वस्तमूत्रयुतं सर्पिः पिवेत्तद्वा-  
तिके हितम् ॥ २५ ॥ काकोल्यादिप्रतीवापं सिद्धं वा प्रथमे  
गुणे । पयोमधुसितायुक्तं घृतं तत्पैत्तिके हितम् ॥ २६ ॥ कृष्णा  
वचामुस्तकाद्यैर्युक्तमारग्वधादिकैः । पैकं तन्मूत्रवर्गेषु श्रेष्ठा  
पस्मारिणे हितम् ॥ २७ ॥

कुलथी जौ बेर शणके बीज लाख जटामांसी दशमूल और हरड़े इनका काथ कर बकरेका मूत्र मिला घृत सिद्ध कर ले इसे वायुके अपस्मार रोगमें पीना हितकारक होता है ॥ २५ ॥ प्रथम विदारि गंधादिगण में काकोल्यादिका प्रतिवाप देकर घृत पकालेवे फिर इस घृतमें दूध शहद मिश्री मिलाकर पीना पित्तके अपस्मारमें हित है ॥ २६ ॥ और आरग्वधादि गणमें पीपल वचा और मोथा आदि डालकर और मूत्रवग मिलाकर घृत पकावे यह कफके अपस्मारमें हितकारक है ॥ २७ ॥

### सिद्धार्थक घृत ।

सुरद्रुमवचाकुष्ठसिद्धार्थव्योषहिंशुभिः ।

मंजिष्ठारजनीयुग्मसमंगात्रिफलांबुदैः ॥ २८ ॥

करंजबीजशैरीषगिरिकर्णहृताशनैः ।

सिद्धं सिद्धार्थकं नाम सर्पिर्मूत्रचतुर्गुणम् ॥ २९ ॥

कृमिकुष्ठगरश्वासबलासविषमज्वरान् ।

सर्वभूतग्रहोन्मादानपस्मारांश्च नाशयेत् ॥ ३० ॥

देवदारु वच कूट सुपेद सरसों त्रिकटु हींग मँजीठ दोनों हलदी लज्जाळु त्रिफला नागरमोथा ॥ २८ ॥ करंजबीज शिरसके बीज गिरिकर्ण ( श्वेत-स्यंद ) और चित्रक इनमें चौगुना गोमूत्र मिलाकर घृत पकाले ॥ २९ ॥ यह घृत कृमिकुष्ठ विष श्वास कफ और विषमज्वर सब भूत ग्रह उन्माद और अपस्मार इतने रोगोंको नष्ट करता है इसका नाम सिद्धार्थक घृत है ॥ ३० ॥

### पंचगव्यघृत ।

दशमूलेंद्रवृक्षत्वङ्मूर्वाभाङ्गीफलत्रयैः ।

संपाकश्रेयसीसप्तपर्ण्यपामार्गपीलुभिः ॥ ३१ ॥

एतैः कल्कैश्च भूनिवपूतीकव्योषचित्रकैः ।

त्रिवृत्पाठानिशायुग्मं सारिवाद्वयपौष्करैः ॥ ३२ ॥

कटुकामदयंत्युग्रानीलिनीकृमिशत्रुभिः ।

सर्पिरेभिश्च गोक्षीरदधिमूत्रशकृद्रसैः ॥ ३३ ॥

साधितं पंचगव्याख्यं सर्वापस्मारभूतनुत् ।

चातुर्थिकक्षयश्वासानुन्मादांश्च नियच्छति ॥ ३४ ॥

दशमूल कुडाकी छाल सूर्वा भारंगी त्रिफला किरमाला हरड्डे सातला ओंगा और पीलू ॥ ३१ ॥ इनका कल्क करे और चिरायता करंज त्रिकटु चित्रक निशो-  
थ पाठा दोनों हलदी दोनों सारिवा पुष्करमूल ॥ ३२ ॥ कुटकी मदयंती वच  
नीलिनी विडंग ये भी मिलादे इनके गौका दूध गौका दही गौका मूत्र और  
गौके गोबरका रस डालकर गौका ही घृत सिद्ध करे ॥ ३३ ॥ यह पंचगव्य  
नाम घृत सब अपस्मारों भूतों को और चौथिये ज्वरक्षय श्वास और  
उन्मादको नष्ट करताहै ॥ ३४ ॥

वातिकं वस्तिभिश्चापि पित्तिकं तु विरेचनैः ।

कफजं वमनैर्द्धीमानपस्मारमपाचरेत् ॥ ३५ ॥

वायुके अपस्मारको वस्तिकर्मसे और पित्तके अपस्मारको विरेचनसे  
कफके अपस्मार को वमनसे वैद्य उपचार करे ॥ ३५ ॥

भाङ्गीशृते<sup>१</sup> पचेत्क्षीरे शालितंडुलपायसम् ।

त्र्यहं शुद्धाय तद्भोज्यं वराहायोपकल्पयेत् ॥ ३६ ॥

ज्ञात्वा च मधुरीभूतं तं विषस्य तदुद्धरेत् ।

त्रीन्भागान्तस्य चूर्णस्य किण्वभागेन संसृजेत् ॥ ३७ ॥

मंडोदकार्थं देयं च भाङ्गीक्वाथः सुशीतलः ।

शुद्धकुंभे निर्दध्याच्च संभारं तं सुरां ततः ॥ ३८ ॥

जातगंधां जातरसां पायये<sup>२</sup> दातुरं भिषक् ।

शिरां विध्येदथ प्राप्ता मांगल्यानि च धारयेत् ॥ ३९ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

( श्लो ० ३६ से ३९ त० ) भाङ्गीशृते इत्यादि । भाङ्गीशृते क्षीरे शालितंडुलपायसंपच-  
दिति संबंधः । तत्र चतुर्थांशं भाङ्गीकल्कं दत्वा चतुर्गुणेन जलेन क्षीरं साधयेत् । शुद्धाय त्रिदिन  
मुपोषिताय वराहाय तत्पायसं भोक्तुं प्रकल्पयेत् । मधुरीभूतं श्लेष्मसंसृष्टं विदाहावस्थान  
प्राप्तम् । अन्ये तु मधुरीभूतं विषिभूतं व्याख्यानयन्ति । यतो मधुररसे विषविशेषो वर्तते  
अथ पायसं कथं विषविशेषं भवतीति चेत् आधारप्रभावात्-विषिभूतं च वराहस्यैव ला-  
लास्त्रावमूर्च्छादिलिंगैर्जातव्यम् । तं वराहं विषस्याजीर्णविषिभूतमुद्धरेत् । तस्य उद्धृतस्य  
अन्नस्य शोधितचूर्णीभूतस्य त्रीन्भागान् किण्वभागेन संसृजेत् । मंडोदकार्थं संधानार्थं  
भाङ्गीक्वाथो देयः शुद्धे संस्कृते कुंभे संधाय यावत् सम्यक्सुराभावं प्राप्नोति-जातरसां  
तामपस्मारातुरं पाययेदिति ( नि० सं० )



भारंगी में औटाये हुये दूधसे ( भारंगी का चूर्ण चतुर्थांश डालकर दूधमें चौगुना पानी डालके पकावे दूधमात्र रहे ) उसमें शाली चावलों की खीर पकावे और एक सूकरको जो तीन दिनका भूँखा हो उसे वह खीर खिलावे और जब वह पेटमें मधुरभावको प्राप्त हो तब उस विषभाग को प्राप्त हुएको निकाल ले फिर तीन भाग इस चूर्णमें एकभाग सुराका बीज मिलादे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ और मंडोदक ( मद्यके जल ) के जगह उसमें भारंगी का काथही ठण्ठाकरके डाल दे और एक शुद्ध पूर्वोक्त संस्कार किये घड़ेमें उसे भर दे जबतक वह मद्य बने भरारहने दे ॥ ३८ ॥ और जब उसमें मद्यकी गंध और रस आजावे ( मद्य बनजावे ) तब इसमें से वैद्य मृगीके रोगीको पिलाया करे और यथार्थ हो तो यथा योग्य शिरावेधन भी करे और पूर्वोक्त मंगल धारण करे ( अर्थात् मंगलीक पदार्थों सिद्धार्थक पुष्पादिको धारणकरे ) ॥ ३९ ॥

यूनानीवाले मृगीको सुरआ कहते हैं ॥

और डाक्टरोंमें इसे कैटेलेपसी ( Catalepsy ) कहते हैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

## द्विषष्टितमोऽध्यायः ६२.

अथात उन्मादप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम उन्मादके प्रतिषेधकी अध्यायका व्याख्यान करतेहैं-

मदयंत्युद्भूतां दोषां यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः ।

मानसोयमतो<sup>१</sup> व्याधिरुन्माद इति<sup>२</sup> की<sup>३</sup> तितः ॥ १ ॥

इस व्याधिमें जो कि प्रतिलोम मार्गोंमें समाश्रित हुए दोष ऊर्द्धगामी होकर मद उत्पन्न करते हैं इससे यह मानस व्याधि उन्माद कहलातीहै इसे भाषामें ) बावलापन दीवानगी और खफगान वगैरा कहतेहैं ) ॥ १ ॥

( वक्तव्य ) ये उन्माद और अपस्मारादि व्याधि मन और बुद्धिकी विकृतिसे होतीहैं इन्हें वैद्यकमें प्रायः हृदयके विकारसे मानतेहैं परंतु यदि विचार कर देखें तो हमारे वैद्यकके सिद्धांतसे यह मूर्द्धाजन्य ( दिमागसे होनेवाली ) भी प्रतीत होतीहै क्योंकि महर्षि धन्वंतरिजीने पहलेही लिखा है कि " उन्मार्गमाश्रिता उद्भूता दोषा मदयन्ति " अर्थात् प्रतिलोम मार्गमें ऊपरको प्राप्त हुए दोष जब ऊर्द्धगामी होतेहैं तब मद करतेहैं मूर्द्धा में पहुँचतेहैं तब मद करतेहैं

( उन्माद पैदा करते हैं ) और यदि ऐसा कहो कि उन्मार्गाश्रित और उद्ध गामी होकर दोषोंका हृदयमें ही प्राप्त होना समझिये तो हृद्दोगमें जहां अवश्यमेव दोष हृदयको दूषित करतेहैं वहां उन्मार्गमाश्रित और उद्धत होकर दोषोंका वहां प्राप्त होना महर्षिजीने नहीं लिखा जैसा कि इन व्याधियोंमें लिखा दूसरे यह कि इन व्याधियोंमें शिरका शोधनप्र-...से लिखाहै और हृदय रोगमें शिर शोधनकी विशेष आवश्यकता नहीं इससे यह सिद्ध होताहै कि उन्माद दोनों तरहसे होता है हृदयसे भी होसकता है और मूर्द्धासे भी ॥

### उन्मादके भेद ।

एकैकशः समस्तैश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ।

मानसेन च दुःखेन स पंचविध उच्यते ॥ २ ॥

विषाद्भवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र भेषजम् ।

स चाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां विभर्ति च ॥ ३ ॥

एक एक वातादि दोषसे ऐसे तीन तो ये चौथा सन्निपातसे ये वातादि दोष जब अत्यंत मूर्च्छित होतेहैं तब यह होताहै और पांचवाँ मनके दुःखसे इसभांति यह पांच प्रकारका हुआ ॥२॥ और छठा विष (अथवा तीक्ष्ण नशे) से होजाताहै इसमें यथायोग्य दोषोंके अनुसार चिकित्सा होतीहै और यह जबतक ताजा होताहै या बढाहुआ नहीं होता ( अर्थात् ज्यादा नहीं बढता ) तबतक इसकी मदसंज्ञा होतीहै ॥ ३ ॥

### उन्मादका पूर्वरूप ।

मोहोद्वेगौ स्वनः श्रोत्रे गात्राणामपतर्पणम् ।

अत्युत्साहोऽरुचिश्चान्ने<sup>१</sup> स्वप्ने कलुषभोजनम् ॥ ४ ॥

वायुनोन्मथनं चापि भ्रमश्चक्रमंतस्तथा ।

यस्य स्यादचिरे<sup>२</sup> णै<sup>३</sup> वमुन्मादं सो<sup>४</sup>ऽधिगच्छति ॥ ५ ॥

( श्लो० ३ ) स च अप्रवृद्धः तरुणः मदसंज्ञां विभर्ति । डल्लनमते तु मदसंज्ञा विषज-स्योन्मादस्येव अप्रवृद्धत्वे भवति।भावमिश्रमते उन्मादमात्रस्य अप्रवृद्धस्य तरुणस्य नवीनस्य मदसंज्ञा भवतीति ।

( श्लो० ५ ) चक्रमतः कुलालचक्रस्थितस्येव भ्रमः । इति डल्लनः । अन्ये च क्रमतः क्रमात् भ्रमः क्रमेण भ्रमवृद्धिरित्याहुः ।

कभी मोह कभी उद्वेग हो कानोंमें शब्दहो और शरीर दुबला होजावे अत्यंत उत्साह से रहे अन्नमें रुचि न हो और स्वप्नमें कलुषित (खराब) भोजन खावे ॥ ४ ॥ और वायुसे (हृदयका) मथनसा होना मालूमदे और कुह्ला रके चाककी तरह घूमनासा हुआ करे जिसके ये लक्षणहों उसे थोड़ेही दिनमें उन्माद होजावेगा (ऐसा जानना चाहिये ये उन्मादके पूर्वरूपहैं) ॥ ५ ॥

### वातोन्मादके लक्षण ।

रूक्षच्छविः परुषवाग्धमनीततो वा श्वासातुरः कृशतनुः  
स्फुरितांगसंधिः । आस्फोट्यन्पठति गायति नृत्यशीलो  
विक्रोशति भ्रमति चाप्यनिलप्रकोपात् ॥ ६ ॥

शरीरकी कांति रूखा हो कठोर शब्द बोले और नसें करड़ी होजावें श्वास हो शरीर दुबला पड़जावे शरीरकी संधियोंमें फरकन हो तोड़ तोड़ कर पड़े और गावे नाचने भी लगे गाली देवे और भ्रमता फिरे ये लक्षण वायुके उन्मादमें होते हैं ॥ ६ ॥

### पितोन्मादके लक्षण ।

तृट्स्वेददाहबहुलो बहुभुग्विनिद्रश्छायाहिमानिलजलांतवि-  
हारसेवी । तीक्ष्णो हिमांबुनिचयेपि सवह्निशंकी पित्तादिर्वा  
नभसि पश्यति तारकाश्च ॥ ७ ॥

तृषा पसीने दाह ये बहुत रहें बहुत खावे निद्रा नहीं आवे छाया ठंडक पवन पानी इनमें विहार करना चाहे तीक्ष्णता हो बरफ और पानी इनके समूहमें भी अग्निकी शंका करे और दिनमें भी आकाशमें तारेसे देखे ये पित्तज उन्माद के लक्षण हैं ॥ ७ ॥

### कफोन्माद और सन्निपातोन्माद ।

छर्द्यग्निसादसदनारुचिकासयुक्तो योषिद्विविक्तरतिरल्पमति-  
प्रकारः ॥ निद्रापरोल्पकथनोल्पभुगुष्णसेवी रात्रौ भृशं  
भवति चापि कफप्रकोपात् ॥ ८ ॥

( श्लो० ६ , धमनीततः धमनीभिः स्फुटत्वेन व्याप्तः ।

( श्लो० ८ ) योषिद्विविक्तरतिः योषिति सुविविक्ते एकांते रती रमणं यस्य सः ।

सवात्मेक त्रिभिरपि व्यतिमिश्रितानि रूपाणि वातकफपि  
तत्कृतानि विद्यात् ॥ संपूर्णलक्षणमसाध्यमुदाहरन्ति सर्वात्मकं  
क्वचिदपि प्रवदन्ति साध्यम् ॥ ९ ॥

वमन हो अग्नि मंद होजाय शिथिलता अरुचि और खाँसी ये भी हों स्त्रियों  
से रहस्यमें रमण करना चाहे बुद्धिमंद होजावे निद्रा बहुत आवे कम बोले  
थोड़ा खावे गरम पदार्थोंका सेवन करे रात्रिमें अधिक होजावे ये कफोन्माद  
के लक्षण हैं ॥ ८ ॥ सन्निपातके उन्मादमें वायु पित्त कफ तीनों दोषोंके  
लक्षण और रूप मिले हुये होते हैं यह संपूर्ण लक्षणों ( उपद्रवों ) से युक्त  
हो तो असाध्य होता है और कभी यह सन्निपातका उन्माद साध्य भी होताहै ॥

## शोकादिका और विषका उन्माद ।

चोरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथान्यैर्वित्रासितस्य धनबाधवसंक्ष-  
याद्वा । गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिसंजोर्जायेत चोत्कट-  
तैरो मनसो विकारः ॥ १० ॥ चित्रं स जल्पति मनोनु-  
गतं विसंज्ञो गायत्यथो हंसति रोदिति चाप मूढः । रक्तेक्ष-  
णो हैतबलेंद्रियभः सुदीनः श्यावाननो विषकृतेन भवे-  
द्रिसंज्ञः ॥ ११ ॥

चोरोंने राजा और या राजपुरुषोंने शत्रुओंने जिसे बहुत त्रास दिया  
हो या जिसके धनपुत्रादिक नष्ट होगये हों या जिसके मनपर तीक्ष्ण  
आघात पहुँचा हो या प्यारी स्त्रीसे रमणकी अत्यंत वांछा हो इन बातोंसे  
मनमें उत्कट विकार होजाता है जिससे मनुष्य उन्मत्त होकर चित्रविचित्र  
बातें कहता है अथवा मनके अनुकूल मिथ्या प्रलाप करता है कभी गाने  
लगता है कभी हँसता है कभी मूढ होकर रोने लगता है ये लक्षण मनके  
दुःखसे हुए उन्मादमें होतेहैं ॥ और विषके उन्मादमें नेत्र लाल  
होजाते हैं बल इंद्रिय और कान्ति ये नष्ट होजाते हैं मनुष्य दीन होजाताहै  
चेहराकाला पड़जाता है और बेहोश होजाताहै ॥ १० ॥ ११ ॥

( श्लो० ९ ) त्रिभिः वातादिभिः व्यतिमिश्रितानि मिश्रितानि रूपाणि सर्वात्मके  
भवन्तीति ।

## उन्मादकी चिकित्सा ।

स्निग्धं स्विन्नं तु मनुजमुन्मादात् विशोधयेत् ।

तीक्ष्णैरुभयतो भागैः शिरसंश्च विरेचनैः ॥ १२ ॥

विविधैरवपीडैश्च सर्पपस्त्रेहसंयुतैः ।

योजयित्वा च तच्चूर्णं घ्राणे नस्यं तु योजयेत् ॥ १३ ॥

सततं धूपयेच्चैनं श्वगोमांसैः सुपूतिभिः ।

सर्पपानां च तैलेन नस्याभ्यंगौ हितौ सदा ॥ १४ ॥

उन्मादके रोगीको स्नेहन स्वेदन करके तीक्ष्ण वमन विरेचन देकर ऊपर नीचे दोनों तरफसे खूब शोधन करे और शिरोविरेचनसे शिर का भी शोधन खूब करे ॥ १२ ॥ अनेक प्रकारका अवपीडन सरसोंके तेलमें मिलाकर देवे और सरसों हीका चूर्ण मिलाकर नाकमें नस्य दे ॥ १३ ॥ और कुत्ते ओर गौके मांसको सडाकर उसकी निरंतर धूनी देवे तथा सरसोंके तेलका नस्य देना और उसीका मर्दन करना सदा उन्मादवालेको हितकारक है ॥ १४ ॥

## अन्य यत्न ।

दर्शयेद्भुतान्यस्य वदेन्नाशं प्रियस्य च ।

भीमाकारैर्नरैर्नागैर्दान्तैर्व्यालैश्च निर्विषैः ॥ १५ ॥

भीषयेत्सततं पाशैः केशाभिर्वार्थं ताडयेत् ।

यंत्रयित्वा सुतप्तं वा त्रासयेत्तं तृणाग्निना ॥ १६ ॥

प्रतुदैर्दार्यैश्चैनं मर्माघातं विवर्जयेत् ।

सापिधाने जरत्कूपे सततं वा निवासयेत् ॥ १७ ॥

इसे अद्भुत वस्तु दिखलावे तथा प्यारे मनुष्य या प्यारी चीजका नाश होगया ऐसा झूठ मूठ ही उससे कहदे अथवा भयानक मनुष्यों हाथियोंसे दांतसे काटनेवालोंसे और निर्विष सर्पोंसे डरावे ॥ १५ ॥ अथवा रस्सोंसे बांध

( श्लो० १३ ) तच्चूर्णं सर्पचूर्णमिति ( नि० सं० )

( श्लो० १६ ) कशाभिः चर्मयष्टिभिः । कशा चर्मयष्टिः "कोर्डा" इति लोके ।

( श्लो० १७ ) सापिधाने जरत्कूपे छायायुक्ते निर्जले कूपे ।

कर डरावै अथवा चाबुक मारे या मारनेका भय देवे अथवा बाँधकर उसको तृणकी अग्नि लेजाकर डरावे ॥ १६ ॥ अथवा बाज सिकरे आदिसे नोंचावे परंतु मर्मपर आघात न पहुँचे इस बातका ध्यान रखे अथवा मुँह ठके हुये अँधेरे कूएमें कुछ दिन पड़ा रखे ( प्रायः ऐसा करनेसे दिल ठिकाने आजाया करताहै ) ॥ १७ ॥

त्र्यहात्त्र्यहाद्यवागूं च दद्यात्सक्तुं जलेन वा ।

केवलानंबुयुक्तान्वा कुल्माषान्वा बहुश्रुतः ।

हृद्यं यदीपनीयं च तत्पथ्यं तस्य योजयेत् ॥ १८ ॥

तीन तीन दिनमें इसे यवागू खानेको देवे अथवा जलके संग घुले सत्तू देवे अथवा केवल या जलके साथ कुल्माष ( वाँकली ) देवे और बहुश्रुत वैद्यको चाहिये कि हृदय प्रिय और दीपन जो हों उन्हें अग्निबलके अनुसार भोजनार्थ पथ्य देवे ॥ १८ ॥

महाकल्याण घृत ।

विडंगत्रिफलामुस्तमंजिष्ठादाडिमोत्पलैः ।

श्यामैलवालुकैलाभिश्चंदनामरदारुभिः ॥ १९ ॥

बर्हिष्ठरजनीकुष्ठपर्णिनीसारिवाह्वयैः ।

हरेणुकात्रिवृद्धंतीवचातालीशकेशरैः ॥ २० ॥

द्विक्षीरं साधितं सर्पिर्मालतीकुसुमैः सह ।

गुल्मकासज्वरश्वासक्षयोन्मादनिवारणम् ॥ २१ ॥

एतदेव हि संपक्वं जीवनीयोपसंभृतम् ।

चतुर्गुणेन दुग्धेन महाकल्याणमुच्यते ॥ २२ ॥

अपस्मारं ग्रहं शोषं क्लैब्यं कार्श्यमबीजताम् ।

घृतमेतन्निहंत्याशु ये चादौ गदिता गदाः ॥ २३ ॥

विडंग त्रिफला मोथा मँजीठ अनार कमल प्रियंगु एलवालुक इलायची

( श्लो० १९ से २३ ) एषां श्लोकानां पदच्छेदान्वयादिकं पूर्वं ज्वराध्याये कृतमेव । अत्र बहुषु पुस्तकेषु लिखितत्वान्मयापि लिखिताः । परंतु वास्तवैर्नैषां लिखितेन पुनरुक्तिरेव ।

चंदन और देवदारु ॥ १९ ॥ नेत्रवाला हलदी कूट प्राश्रिपर्णी और सारिवा  
 हरेणु निशोथ दंती वच तालीशपत्र नागकेसर ॥ २० ॥ इनमें दोनों दूध  
 ( गौ और बकरीका ) ( और कई दुगुना दूध ऐसा मानते हैं ) डाले और  
 मालतीके पुष्प डालकर घृत पकाले यह ( कल्याण घृत पहले ज्वरमें कहाजा  
 भी चुकाहै ) गुल्म खाँसी ज्वर श्वास क्षय और उन्माद इन्हें दूर करताहै ॥ २१ ॥  
 और इसी घृतको जीवनीय गणकी औषधोंके साथ चौगुने दूधसे पकावे तो  
 यह महाकल्याण घृत होजाताहै ॥ २२ ॥ यह मृगीको ग्रह दोष शोष नपुंसकता  
 कृशता और निर्वीर्य इन रोगोंको तथा जो पहले कहे ( कल्याण घृतोक्त )  
 रोगोंको भी दूर करताहै ॥ २३ ॥

### फलघृत ।

बहिष्ठकुष्टमंजिष्ठाकटुकैलानिशाह्वयैः ।

तेनेदं त्रिफलाहिंशुवाजिगंधामरद्भुमैः ॥ २४ ॥

वचाजमोदाकाकोलीमेदामधुकपन्नकैः ।

सशर्करं हितं सर्पिः पक्वं क्षीरचतुर्गुणम् ॥ २५ ॥

बालानां ग्रहजुष्टानां पुंसां दुष्टाल्पमेधसाम् ।

ख्यातं फलघृतं स्त्रीणां वंध्यानां चाशु गर्भदम् ॥ २६ ॥

नेत्रवाला कूट मंजीठ कुटकी इलायची हलदी और त्रिफला हींग असगंध  
 देवदारु ॥ २४ ॥ वच अजमोदा काकोली मेदा मुलेठी और पन्नाख इनमें घृतपकावे  
 और चौगुना दूध डाले तथा खांड भी डाले यह फलघृत है बालकों-  
 को ग्रह पीडितोंको तथा दुष्टबुद्धिवाले और अल्पबुद्धिवाले पुरुषोंको  
 श्रेष्ठ है तथा वंध्या स्त्रियोंको शीघ्र ही गर्भ देनेवाला है ॥ २५ ॥ २६ ॥

### अन्यप्रयोग ।

ब्राह्मीमैट्रीं विडंगानि व्योषं हिंशु सुरां जटाम् ।

विषग्रीं लशुनं रास्नां विशल्यां सुरसां वचाम् ॥ २७ ॥

ज्योतिष्मतीं नागविन्नामनंतामभयां तथा ।

सौराष्ट्रीं च समांशानि गजमूत्रेण पेषयेत् ॥ २८ ॥

( श्लो० २४ से २६ ) एतत्फलघृतपाठोपि समाक्षिप्तः प्रतीयते । तत्र तेनेदं इति  
 अलग्नं अशुद्धं वा प्रतीयते ।



छायाविशुष्कास्तद्वर्तीयौ जयेद्विधिकोविदः ।

अवपीडेऽनेऽभ्यंगे नस्ये धूमे प्रलेपने ॥ २९ ॥

ब्राह्मी इन्द्रायण विडंग त्रिकटु हींग सुरा ( सुराह देवदारु ) जटामांसी ( बालछड़ ) हलदी लहसन रास्ना विशल्या ( गिलोय ) तुलसी और वचा ॥ २७ ॥ मालकांगनी नागविन्ना ( इन्द्रायनका भेद नागदमनी ) उत्पल सारिवा हरड़ फटकड़ी इनको समान भाग लेकर हाथीके मूत्रमें पीसे ॥ २८ ॥ और गोली बनाके छायामें सुखाले विधि जाननेवाला वैद्य इन्हें इसरोगमें अवपीडमें अंजनमें मर्दनमें नस्यमें धूनी देनेमें और लेपमें सब जगह उपयोग करे ॥ २९ ॥

इसमें विशेष उपदेश ।

उरोपांगललाटेषु शिराश्चास्य विमोक्षयेत् ।

अपस्मारक्रियां चापि ग्रहोद्दिष्टां च कारयेत् ॥ ३० ॥

शांतदोषं विशुद्धं च स्नेहवस्तिभिराचरेत् ।

शोकशूल्यं व्यपनयेदुन्मादे पंचमे भिषक् ॥ ३१ ॥

उन्मादेषु च सर्वेषु कुर्याच्चित्तप्रसादनम् ।

मृदुपूर्वा मदेऽप्येवं क्रियां विद्वान्प्रयोजयेत् ॥ ३२ ॥

विषजे मृदुपूर्वा च विषघ्नीं कारयेत्क्रियाम् ॥ ३३ ॥

इत्युत्तरतंत्रे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

हृदय अपांग तथा ललाट इन स्थानोंके उन्मादवाले का शिरामोक्षण करे तथा अपस्मारोक्त और ग्रहोक्त क्रिया भी करे ॥ ३० ॥ जब दोष शांत होजावें और शोधनादिसे शुद्ध होजावें तब स्नेह वस्ति करे और पांचवें शोकके उन्मादमें शोकरूपी शूल्यको ज्ञानादिसे दूर करे ॥ ३१ ॥ सब भांतिके उन्मादोंमें चित्तका प्रसन्न करना मुख्य है और जो मद हो उसमें विद्वान् वैद्य पहले मृदु ( हलकी ) क्रिया करे ॥ ३२ ॥ और विषजन्य उन्मादमें मृदुतापूर्वक विष दूर करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ॥ ३३ ॥

यूनानी हकीम मूर्द्धा ( दिमागसे होनेवाले उन्माद को जन्म कहतेहैं और दिलके फितूर ( धड़कने या वै ठिकाने जरा टहलजानेसे ) होनेवालेको खफगान कहतेहैं और उन्मादके सूक्ष्मांगमदको मिराक कहतेहैं ॥

डाक्टरीमें दिमागसे होनेवाले उन्मादको इन्सानिटी (Insanity) कहतेहैं और दोल धड़कनेसे होनेवाले को पलपेटिशन ( Palpitation ) कहतेहैं और एकप्रका-

रके सूक्ष्म उन्मादको मेलनकोलिया (Melancoliya) कहते हैं जिसे यूनानी माली खोलिया कहते हैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

॥ इतिभूतविद्यां ॥

## त्रिषष्टितमोऽध्यायः ६३.

अथातो रसभेदविकल्पमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम रसके भेद कल्पनाकी अध्यायका व्याख्यान करते हैं ( अर्थात् पहले जो छः रस वर्णन कियेगये हैं उनके मिलनेसे कितने भेद होते हैं इसका वर्णन करते हैं )

दोषाणां पञ्चदशधा प्रसरोऽभिहितस्तु यः ।

त्रिषष्ट्या रसभेदानां तत्प्रयोजनमुच्यते ॥ १ ॥

अविदग्धा विदग्धाश्च भिद्यन्ते ते त्रिषष्टिधा ।

रसभेदान्त्रिषष्टि तु वीक्ष्य वीक्ष्यावचारयेत् ॥ २ ॥

एकैकेनानुगमनं भागशो यदुदीरितम् ।

दोषाणां तत्र मतिमान्त्रिषष्टि तु प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥

दोषोंका जो पंदरह प्रकारका प्रसर ( कोप या उफान ) पहले वर्णन किया ( उसके अगाड़ी त्रेसठ भेद कहेंगे अर्थात् उल्वणता और हीनतादिसे दोषोंके त्रेसठ भेद होते हैं ) उनमें रसोंके त्रेसठ भेदोंका प्रयोग करना रसभेद कहने का प्रयोजन है ॥ १ ॥ अविदग्ध और विदग्ध ( एक वस्तुमें समवाय संबन्धसे कई रसोंका योग हो और संयोगसे रसोंका योग हो इसप्रकार से ) रसोंके त्रेसठ भेद होते हैं इन त्रेसठ प्रकार के रस भेदोंको (दोषोंके अनुसार) देख देख कर प्रयोग करे ॥ २ ॥ एक एकके अनुगत होकर जो विभागपूर्वक भेद कहे जाते हैं उनसे त्रेसठ प्रकारके दोष भेदोंको योजना करे ॥ ३ ॥

( श्लो० १ ) रसभेदकथने प्रयोजनमाह । त्रिषष्टिप्रकाराणामपि रसभेदानामुपयोगार्थं दोषभेदा उक्ताः । तेन दोषभेदानां त्रिषष्टिरपि गृह्यते ।

( श्लो० २ ) अविदग्धा असंयुक्ता समवायतो भिद्यन्त इत्यर्थः । विदग्धा संयुक्ता रसांतरसंयोगाद् भिद्यन्ते तत्र यथासंभवं केचित् संयोगतः केचित्समवायतः इत्यादिभेदेन द्रव्यांतरद्वारेण कथ्यन्ते । इति नि० सं० )

## दो दो रसोंके योगसे भेद ।

यथाक्रमं प्रवृत्तानां द्विकेषु मधुरो रसः ।

पञ्चानुक्रमते योगान्मलश्चतुर एव च ॥ ४ ॥

त्रिंश्चानुगच्छति रसो लवणः कटुको द्वयम् ।

तिक्तः कषायमन्वेति ते द्विकौ दश पञ्च च ॥ ५ ॥

मधुर अम्ल लवण कटु तिक्त कषाय इन छह रसोंके यथाक्रम प्रवर्त होनेमें दो रसोंके योग करनेमें मधुररस पांचोंसे मिलता है और पांच भेद होतेहैं तथा अम्ल चारोंसे मिलता है लवण तीनोंसे मिलता है कटुक दोसे मिलता है और तिक्त केवल एकहीसे मिलता है ऐसे दो दो रसके मेलसे १५ भेद होजाते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

तद्यथा-मधुराम्लः, मधुरलवणः, मधुरतिक्तः, मधुरकटुकः,  
मधुरकषायः एते पञ्चानुक्रांता मधुरेण ॥ अम्ललवणः, अम्ल-  
कटुकः, अम्लतिक्तः, अम्लकषायः एते चत्वारोऽनुक्रांता अम्ले  
न, ॥ लवणकटुकः, लवणतिक्तः, लवणकषायः एते त्रयानुक्रांता  
लवणेन ॥ कटुतिक्तः, कटुकषायः, द्वावेतावनुक्रांतौ कटुकेन ॥  
तिक्तकषायः एकं एवानुक्रांतस्तित्तेन ॥ एते पञ्चदश द्विक-  
संयोगा व्याख्याताः ॥ ६ ॥

दो दो रसके मेलसे पंदरह भेद इस भांति होतेहैं १ मीठा खट्टा २ मीठा नमकीन ३ मीठा कडुवा ४ मीठा चरपरा ५ मीठा कसेला इस भांति मधुरसे पांच रस मिलकर ये पांच भेद होतेहैं ॥ फिर १ खट्टा नमकीन २ खट्टा चरपरा ३ खट्टा कडुवा ४ खट्टामें कसेला इसभांति खट्टेमें मिलकर चार भेद हुए फिर १ नमकीन चरपरा २ नमकीन कडुवा ३ नमकीन कसेला इस भांति नमकीनमें मिलके ये तीन भेद हुए फिर १ कटु अर्थात् चरपरेमें कडुवा २ चरपरेमें कसेला इसभांति चरपरेसे मिलाके ये दो भेद हुए फिर १ तिक्त अर्थात् कडुवा कसेला दो मिलकर एकही भेद हुआ इस प्रकार दो दो रसोंके परस्पर सबमें सबके मेलसे पंदरह भेद कहेहैं ॥ ६ ॥

## तीन तीन रसोंके योगसे २० भेद ।

त्रिकं वक्ष्यामः ।

आदौ प्रयुज्यमानस्तु मधुरो दशं गच्छति ।

षडम्लो<sup>१०</sup> लवणस्तस्मादुद्धे<sup>११</sup> त्वेकं<sup>१२</sup> रसः<sup>१३</sup> कटुः<sup>१४</sup> ॥ ७ ॥

अब तीन तीन रसोंके मिलनेसे जिस प्रकार भेद होतेहैं उन्हें कहतेहैं । प्रथम प्रयुज्यमान हुए मधुर रसके दश भेद होतेहैं और खट्टेसे मिलकर छः भेद होतेहैं और लवणसे मिलके तीन भेद होतेहैं और कटुकसे मिलकर एक ही होताहै ॥ ७ ॥

मधुराम्ललवणः, मधुराम्लकटुकः, मधुराम्लतित्तः, मधुराम्ल-  
कषायः, मधुरलवणकटुकः, मधुरलवणतित्तः, मधुरलवणक-  
षायः, मधुरकटुकतित्तः, मधुरकटुकषायः, मधुरतित्तकषायः  
एवमेषां त्रिकसंयोगानां दशानामादौ मधुरः प्रयुज्यते ॥ ८ ॥  
अम्ललवणकटुकः, अम्ललवणतित्तः, अम्ललवणकषायः,  
अम्लकटुकषायः, अम्लकटुतित्तः, अम्लतित्तकषायः एव-  
मेषामादावम्लः प्रयुज्यते ॥ ९ ॥ लवणकटुतित्तः, लवणकटु-  
कषायः, लवणतित्तकषायः एवमेषां त्रयाणामादौ लवणः प्रयु-  
ज्यते ॥ १० ॥ कटुतित्तकषायः, एवमेकस्यादौ कटुकः  
प्रयुज्यते एवमेते त्रिकसंयोगा विंशतिर्व्याख्याताः ॥ ११ ॥

तीन तीन रसोंके मिलनेसे इस भांति होतेहैं जैसे १ मीठा खट्टा खारा २ मीठा खट्टा चरका ३ मीठा खट्टा कडुवा ४ मीठा खट्टा कसेला ५ मीठा खारा चरपरा ६ मीठा खारा कडुवा ७ मीठा खारा कसेला ८ मीठा चरका कडुवा ९ मीठा चरका कसेला १० मीठा कडुवा कसेला इस भांति तीन रसोंके योगोंमें दश भेद ये ऐसे हैं जिनमें आदिमें मधुर रस मिलताहै ॥ ८ ॥ फिर १ खट्टा खारा चरका २ खट्टा खारा कडुवा ३ खट्टा खारा कसेला ४ खट्टा चरका कसेला ५ खट्टा चरका कडुवा ६ खट्टा कडुवा कसेला इस भांति तीन रसोंके योगमें छः भेद ये ऐसेहैं जिनके आदिमें अम्ल रस मि-  
लताहै ॥ ९ ॥ फिर १ खारा चरका कडुवा २ खारा चरका कसेला ३ खारा कडुवा कसेला इस प्रकार ये तीन भेद ऐसेहैं जिनके आदिमें लवण रस

मिलाहै ॥ १० ॥ फिर चरपरा कडुवा कसेला एक ऐसाहै जिसके आदिमें कटुक रस मिलाहै इस प्रकारसे तीन रसोंके संयोगके ये बीस भेद कहें ॥ ११ ॥

## चार चार रसोंके योगके १५ भेद ।

चतुष्कान् वक्ष्यामः ।

चतुष्करससंयोगान्मधुरो दश गच्छति ।

चतुरोऽम्लस्तु गच्छेच्च लवणस्त्वेकमेव तु ॥ १२ ॥

अब चार चार रसोंके मिलनेसे जिस प्रकार भेद होतेहैं उन्हें कहतेहैं इन चार रसोंके संयोगोंमें मधुर रस दशोंके आदिमें आताहै और अम्लरस चारोंके आदिमें आताहै और लवण एक भेदके आदिमें आताहै ऐसे ये १५ भेद होतेहैं ॥ १२ ॥

( वक्तव्य ) रसके योगोंमें मधुर जैसे यहां दशके आदिमें आया इत्यादि इनमें आदिमें आनेकी कोई बात नहीं यह केवल गणनाके क्रमके लियेहै नहीं तो आदि अंत मध्य कुछ नहीं रसमें रसोंके मेलसे ही भेद होतेहैं ॥

मधुराम्ललवणकटुकः, मधुराम्ललवणतिक्तः, मधुराम्ललवण कषायः, मधुराम्लकटुकतिक्तः, मधुराम्लकटुकषायः, मधुर लवणतिक्तकटुकः, मधुराम्लतिक्तकषायः, मधुरलवणकटुकषायः, मधुरकटुतिक्तकषायः, मधुरलवणतिक्तकषायः एवमेषां दशानामादौ मधुरः प्रयुज्यते ॥ १३ ॥ अम्ललवणकटु तिक्तः, अम्ललवणकटुकषायः, अम्ललवणतिक्तकषायः, अम्ल कटुतिक्तकषायः एवमेषां चतुर्णामम्लः ॥ १४ ॥ लवणकटु तिक्तकषायः, एवमेकस्यादौ लवणः, एवमेते चतुष्करससंयोगाः पंचदश कीर्तिताः ॥ १५ ॥

१ मीठा खट्टा खारा कटुक २ मीठा खट्टा खारा तिक्त ३ मीठा खट्टा खारा कसेला ४ मीठा खट्टा कटु तिक्त ५ मीठा खट्टा कटु कषाय ६ मीठा खारा तिक्त कटु ७ मीठा खट्टा तिक्त कषाय ८ मीठा खारा चरका कसेला ९ मीठा चरपरा कडुवा कसेला १० मीठा नमकीन कडुवा कसेला इसभांति दशोंके आदिमें मधुररस मिलाहै ॥ १३ ॥ फिर १ खट्टा खारा चरका कडुवा २ खट्टा खारा चरका कसेला ३

खट्टा खारा कडुवा कसेला ४ खट्टा चरका कडुवा कसेला इसभांति चारोंके आदिमें अम्ल रस है ॥ १४ ॥ और १ खारा चरका कडुवा कसेला इस भांति आदिमें लवण एक हीमें है इस प्रकारसे चार रसोंके संयोगसे पंदरह १५ भेद हुए ॥ १५ ॥

## पांच पांच रसोंके योगके ६ भेद ।

पंचकान्वक्ष्यामः पंचकान्पंच मधुरः एकमम्लस्तु गच्छति १६॥

अब पांचपांच रसोंके मिलनेसे जिसप्रकार भेद होतेहैं उन्हें कहतेहैं ॥ इन पांच रसोंके संयोगमें मधुररस पांचोंके आदिमें आताहै और अम्ल एकहीके आदिमें ( इस भांति ६ भेद हैं ) ॥ १६ ॥

मधुराम्ललवणकटुतिक्तः, मधुराम्ललवणकटुकषायः, मधुराम्ललवणतिक्तकषायः, मधुराम्लकटुतिक्तकषायः, मधुरलवणकटुतिक्तकषायः, एवमेषां पंचानां पंच रससंयोगानामादौ मधुरः प्रयुज्यते ॥ १७ ॥ अम्ललवणकटुतिक्तकषायः, एव-

मेकस्यादावम्लः प्रयुज्यते एवमेते षट् पंचसंयोगा व्याख्याताः १८

१ मीठा खट्टा खारा चरका कडुवा २ मीठा खट्टा खारा चरका कसेला ३ मीठा खट्टा खारा कडुवा कसेला ४ मीठा खट्टा चरका कडुवा कसेला ५ मीठा खारा चरका कडुवा कसेला इस भांति पांच रसोंके योगोंमेंसे पांचोंके आदिमें मधुर रस मिला ॥ १७ ॥ फिर १ खट्टा खारा चरका कडुवा कसेला एकके आदिमें अम्लरस मिलाहै इस प्रकार पांच पांच रसोंके योगके छः भेद हुए ॥ १८ ॥

षट्मेकं वक्ष्यामः एकस्तु षट्संयोगो मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायः, एवमयमेकः षट्संयोगः ॥ १९ ॥

छहों रसोंके मेलको भी कहतेहैं छहोंरसोंके मिलनेसे ही भेद होताहै जैसे मीठा खट्टा खारा चरका कडुवा और कसेला सब मिले हों यह एकही छह रसोंके संयोगका भेद है ॥ १९ ॥

एकैकश्च षड्भा भवन्ति ॥ मधुरोऽम्लो लवणः कटुकस्तिक्तः कषाय इति ॥ २० ॥

और जुदे जुदे एक-एक रस छहहैं ही जैसे मीठा खट्टा खारा चरपरा कडुवा और कसेला ॥ २० ॥

भवति चात्र-एषा त्रिषष्टिव्याख्यातारसानां रसचिंतकैः ।

दोषभेदे त्रिषष्टिस्तुं प्रयोक्तव्या विचक्षणैः ॥ २१ ॥

इत्युत्तरतंत्रे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

यहां श्लोक है कि । रस भेदके जाननेवाले वैद्योंने रसोंके ये त्रेसठ भेद वर्णन किये इन्हें बुद्धिमान् दोष भेदोंमें त्रेसठ ही यथायोग्य बरते ( ये ६३ भेद इसभांति होतेहैं १५ दो दो रसके २० तीन तीन रसके १५ चार चार रसके ६ पांच पांच रसके और १ छहों रसका तथा ६ जुदे जुदे छहों अकेले रस ऐसे सब ६३ हुए ) ॥ २१ ॥

( वक्तव्य २ ) रसोंके संयोगमें प्रधानता अप्रधानता न्यूनाधिकता और अंशांशोंको विचार किया जावे तो अनंत क्रोडों भेद होसकतेहैं जिनकी कदापि गणना नहीं होसकती-

( वक्तव्य २ ) इन रसोंके संयोगके साथ डल्लनमिश्रजीने कुछ उदाहरण भी लिखे हैं जैसे कपित्थ मधुराम्ल है कुत्ते और शृगालका मांस मधुर कटुक है इत्यादि तथा कीरके मांससे युक्त सुरा अम्ल तिक्तकषाय है इत्यादि परंतु मिलेहुए इन स्वादोंके पदार्थ रसोंकी न्यूनाधिकतासे असंख्य हैं उन्हें वैद्य स्वयं जानतेहैं अथवा किसी अन्यको खिलाकर या आप ही चाखकर जानसकतेहैं और संयोगज वस्तुओंमें संयोग और संस्कारसे जानसकतेहैं इनके लिखनेकी विशेष आवश्यकता नहीं इसीसे हमने वे उदाहरण नहीं लिखे कि वैद्य उन्हें स्वयं जानसकतेहैं ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतंत्रे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

## चतुःषष्टितमोऽध्यायः ६४.

अथातः स्वस्थवृत्तमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम स्वस्थवृत्त ( अर्थात् तंदुरस्त मनुष्योंके वर्त्ताव ) की अध्याका व्याख्यान करते हैं ॥

## स्वस्थके लक्षण ।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः ।

प्रसन्नात्मैन्द्रियमनाः सुस्थ इत्यभिधीयते ॥ १ ॥

( श्लो० १ ) सुखेन नैरोग्येण तिष्ठति इति सुस्थः रोगरहितः । सुस्थ इत्यत्र स्वस्थ इति वा पाठः । तत्र स्वेन स्वभावेन सुखेन वा तिष्ठतीति स्वस्थः नैरोग्यः ।  
( इति श० स्तो० )



जिसके वातादि दोष समान हों ( कोई उल्बण और क्षीण न हो ) तथा जठराग्नि भी सम हो ( मंदाग्नि तीक्ष्णाग्नि विषमाग्नि न हों ) जिसके सातों धातु और मल सम हो ( कोई धातु अतिबढी या घटी न हो मल भी बढा या क्षीण न हों ) और क्रिया भी समान हो ( अर्थात् जागना सोना बोलना चलना फिरना ये कम या बहुत बढे न हों ) और आत्मा ( जीवात्मा ) मन और इंद्रिय ये प्रसन्न हों ( अर्थात् इंद्रियोंकी शक्ति भी यथा योग्य हो ) ऐसे मनुष्यको सुस्थ ( स्वस्थ अर्थात् निरोगी या तन्दुरुस्त ) कहते हैं ॥ १ ॥

सूत्रस्थाने समुद्दिष्टः सुस्थो भवति यादृशः ।

तस्य यद्रक्षणं तद्धि चिकित्सायाः प्रयोजनम् ॥ २ ॥

तस्य यद्वृत्तमुक्तं हि रक्षणं हि समासतः ।

तस्मिन्नर्थाः समासोक्ता विस्तरस्तस्य वक्ष्यते ॥ ३ ॥

सूत्रस्थानकी दोष धातु मलक्षय वृद्धि विज्ञानीय अध्यायमें जैसा स्वस्थ बताया है उसकी रक्षा रख रोग नहीं होने देना यही चिकित्सा शास्त्रका ( मुख्यतासे ) प्रयोजन है ॥ २ ॥ स्वस्थ मनुष्योंका वर्त्ताव ( विहार आहार आदि ) वहां ( तथा चिकित्सा स्थानकी अनागत व्याधिप्रतिषेधनीय अध्यायमें ) तथा और कई जगह संक्षेपसे कहेगये उनको यहांपर और विस्तारसे वर्णन करते हैं ॥ ३ ॥

## स्वास्थ्य रक्षाका निर्देश ।

यस्मिन्न्यस्मिन्नृतौ ये<sup>१</sup> ये<sup>२</sup> दोषाः कुप्यंति देहिनाम् ।

तेषु<sup>११</sup> तेषु<sup>१२</sup> प्रदातव्या रसास्ते<sup>१३</sup> ते<sup>१४</sup> विज्ञानता ॥ ४ ॥

जिन जिन ऋतुओं में जो जो दोष मनुष्योंके देहमें कुपित होते हैं ( यह बात भी हम पहले सूत्रस्थान ऋतुचर्याध्यायमें कहचुके हैं ) जानकार वैद्यको चाहिये कि उन्हीं उनकी शांति करनेवाले जो रस हैं वे उन ऋतुओंमें मनुष्योंके लिये देने चाहियें ॥ ४ ॥

( श्लो० ४ ) ते रसास्तेषु तेषु दोषेषु शांतिकराः ।

ऋतुओंके भेदसे आहार विहारादिका विस्तार-  
से वर्णन वर्षाऋतुका वर्ताव ।

प्रक्लिन्नत्वाच्छरीराणां वर्षासु खलु देहिनाम् ।

मंदेऽग्नौ कोपमायांति संहर्षान्मारुतादयः ॥ ५ ॥

वर्षाकी ऋतुमें मनुष्यको शरीर गीले ( नम ) रहतेहैं जिससे अग्नि मंद हो जाती है और संहर्ष ( रोमहर्ष हो होकर अथवा नमवायुके कारण वातादिक दोषकोपको प्राप्त होतेहैं ) ॥ ५ ॥

तस्मात्क्लेदविशुद्ध्यर्थं दोषसंहरणाय च ।

कषायतिक्तकंदुकैरसैर्युक्तमथाद्रवम् ६ ॥

नातिस्निग्धं नातिरूक्षमुष्णं दीपनमेव च ।

देयमन्नं नृपतये यज्जलं चोक्तमादितः ॥ ७ ॥

तप्तावरतमंभो वा पिबेन्मधु समायुतम् ।

अह्नि मेवानिलाविष्टेऽत्यर्थशीतांबुसंकुले ॥ ८ ॥

तरुणत्वाद्विदाहं च गर्च्छंत्योषधयस्तदा ।

मतिमांस्तन्निमित्तं च नैव व्यायाममाचरेत् ॥ ९ ॥

तिसलिये क्लेदनताकी शुद्धिके लिये और दोषोंके शांत रखनेके लिये कसेलें डुबे और चरपरे रसोंसे युक्त अद्रव ( जो विशेष पतले नहीं हों ऐसे )

( श्लो० ५ ) प्रक्लिन्नत्वात् अत्यन्तार्द्रत्वात् । संहर्षात् रोमांचत्वात् । अथवा वायोऽसह-  
ष्यत्यनेन इति संहर्षो वायुरिति शब्दस्तोमः । मारुतादय वातपित्तकफाः कोपमायांति ।  
ननु वर्षासु संचयरूपं पित्तं कुपितमस्ति नेतरौ तत्कथं कुप्यति मारुतादय इत्युक्तम् ।  
प्रावृट्प्रकुपितो वायुर्वर्षास्वपि कुपित एव वर्तते । कफश्च मेघनिःस्यंदादिहेतुभिः असंचितो-  
पि कप्यति अतो युक्त एषः दोषत्रयकोपः । अथवा अग्निमांद्यादोषत्रयकोपः ।  
( इति नि० सं० )

( श्लो० ७ ) देयमन्नं नृपतये इत्यत्र नृपतये इत्युपलक्षणम् किंतु मनुष्येभ्यो इत्यर्थः ।  
यज्जलमादितश्चोक्तं आंतरिक्षं तद्वर्षाया अंते आश्रयुजि पेयं वर्षारंभे तु तस्य दूषणयु-  
क्तत्वात्कदापि न पेयमिति भावः ।

( श्लो० ८ ) तप्तावरतं कथितशीतीकृतम् ।

( श्लो० ९ ) नैव व्यायाममाचरोदित्यत्र नातिव्यायाममाचरेदिति पाठांतरम् ।

पदार्थ ( खाने चाहिये ) ॥ ६ ॥ जो न बहुत चिकने ( तरवतर ) और न बहुत  
रूखे हों गरमागरम और अग्निदीपन करनेवाले भोजनादि राजाको ( बड़े  
आदमियोंको ) खानेको दिलावे और जल जैसा पहले उत्तम कहा है वैसा  
दिलावे ॥ ७ ॥ अथवा पानीको ओटाकर उसे ठंडाकरके दिलावे या शहद  
मिलाकर पीवे । मेघ ( बादल ) हवा इनसे व्याप्त और ठंडे पानीसे संयुक्त ऐसे  
दिनोंमें नवीन होनेसे औषधें ( शाक फलादि ) सविदाहको प्राप्त होती ( अर्थात्  
सब पित्त और जलन पैदा करनेवाली होती हैं इसलिये बुद्धिमान् अत्यंत  
परिश्रम इनदिनोंमें नहीं करे ) क्योंकि अति व्यायामसे विदाह अधिक बढ़ता है  
परंतु निर्व्यायाम भी नहीं रहे जिससे अग्नि और भी मंद होजाती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अत्यंबुपानावश्यायग्राम्यधर्मात्तथा ॥ १० ॥

भूवाष्पपरिहारार्थं शयीत च विहायसि ।

शीते साग्नौ निवाते च गुरुप्रावरणे गृहे ॥ ११ ॥

यार्यान्नागवधूभिश्च प्रशस्तांगुरुभूषितः ।

दिवास्वप्नमजीर्णं च वर्जयेत्तत्र यत्नतः ॥ १२ ॥

ज्यादे पानी पीना ओसमें रहना सोना मैथुन करना ( अतिमैथुन ) और धूप  
इन्हें त्याग देवे ॥ १० ॥ और पृथ्वीकी भाँफ ( सीलके अवखरे या मेलेरिया )  
से बचे रहनेके किये अधर सोवे ( अर्थात् पृथ्वीपर न सोवे ऊपरकी मंजिलके  
चौवारोंमें पलंगोंपर सोवे और ऐसे स्थानोंमें रहे जो ठंडे हों परंतु उनमें  
अग्नि जरूर रहती हो तथा तेज हवा नहीं आती हो और वहाँ भी  
भारी कपड़ा ओढ़कर सोया करे ॥ ११ ॥ और श्रेष्ठ अगुरु शरीरपर लगाके  
हस्तिनी स्त्रियोंसे संगम करे और दिनका सोना अजीर्णकारक भोजन इन  
दिनोंमें अवश्य त्याग दे ॥ १२ ॥

( श्लो० १० ) अवश्यायाः रात्रिनिपातिनः सूक्ष्मजलकणाः ।

( श्लो० ११ ) विहायसीति । विहायः शब्देनात्र गृहोपरिभूः अभिप्रेता । अन्ये मंचा  
दिकं मन्यन्ते । शीते साग्नौ अग्नियुते शीतगृहे गुरुप्रावरणो गुरुवस्त्रावृतः सन् । केचित् गुरु  
प्रावरणे गृहे दृष्टाच्छादितगृहे इति मन्यन्ते ।

( श्लो० १२ ) नागवधूभिः हस्तिनीस्त्रीभिः ( इति नि० सं० )

## शरदृतुका वरताव ।

सेव्याः शरदि यत्नेन कषायस्वादुतिक्तकाः ।

क्षीरेक्षुविकृतक्षौद्रशालिमुद्गादिजागलाः ॥ १३ ॥

सलिलं च प्रसन्नत्वात्सर्वमेव तदा हितम् ।

सरैःस्वाप्लवने चैव कमलोत्पलशालिषु ।

प्रदोषे शशिनः पादांश्चन्दनं चानुवासनम् ॥ १४ ॥

तिक्तस्य सर्पिषः पानैरसृक्स्त्रावैश्च युक्तिः ।

वर्षासूपचिंतं पित्तं हरेच्चापि विरेचनैः ॥ १५ ॥

शरद् ऋतुमें यत्नसे कसेले मीठे और कडुवे रसोंका सेवन करना चाहिये तथा दूध ( खीर ) ईखके विकार ( खांड मिश्री ) शहद चाँवल मूंग आदि धान्य और जंगली जीवोंका मांस सेवन करे ॥ १३ ॥ और सब जल शरदमें निर्मल होजातेहैं इससे सब जल पीने अच्छे और तलावोंमें तैरना जिनमें कमल खिले हों अच्छा होताहै और श्यामकी चंद्रमाकी किरन ( चांदनी ) सेवन करना और चंदन लगाना श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥ और वर्षाके संचित हुवा पित्त तिक्त घृत पीकर अथवा फसद खुलाकर शिरामोक्षसे और विरेचनसे ( जुलाब लेकर ) निकाल देना चाहिये ॥ १५ ॥

नो पेयं तीक्ष्णमम्लोष्णं क्षारं स्वप्नं दिवातपम् ।

रात्रिजागरणं चैव मैथुनं चापि वर्जयेत् ॥ १६ ॥

स्वादुशीतजलं मद्यं शुचि स्फटिकनिर्मलम् ।

शरच्चंद्रांशुनिद्धौतमगस्त्योदयनिर्विषम् ॥ १७ ॥

प्रसन्नत्वाच्च सलिलं सर्वमेव तदा हितम् ।

सचंदनं वा कर्पूरं वासंश्चामलिनं लघु ॥ १८ ॥

भजेच्च शारदं मौल्यं सीधोः पानं च युक्तिः ।

पित्तप्रशमनं यच्च तच्च सर्वं समाचरेत् ॥ १९ ॥

( श्लो० १३ ) आप्लवनं तरणम् । शशिनः पादाः । चंद्रस्य किरणाः प्रदोषे सेव्याः । न तु सर्वरात्रौ ।

( श्लो० १८ ) सचंदनं वा कर्पूरं इत्यत्र सचंदनं सकर्पूरं इति वा पाठः ।

तीक्ष्ण खट्वा गरम क्षार ये पीने नहीं चाहियें दिनमें सोना और रातको गना और मैथुन इन्हें भी त्याग देना चाहिये ॥ १६ ॥ मीठा ठंडा पानी और मर्मल मद्य पीना उचित है तथा शरद्वृक्ष के चंद्रमाकी किरणोंसे धोयाहुआ और स्तय मुनि ( तारे ) के उदयसे निर्विषहुआ सुंदर स्फटिक जैसा निर्मल जल ही होजाताहै ॥ १७ ॥ जब सभी जलमात्र स्वच्छ होजाताहै तो सभी ने में इन दिनोंमें अच्छा है और चंदन कपूरसे सुगंधित निर्मल और हलके वस्त्र पहनने योग्य हैं ॥ १८ ॥ और शरद्वृक्ष के पुष्प रखना तथा युक्तिसे सीधु मक मद्य पीना तथा और और जो पित्तशामक आहार विहार हैं वे सब ऋतुमें करने उचित हैं ॥ १९ ॥

### हेमंत ऋतुका वरताव ।

हेमंतः शीतलो रूक्षो मंदसूर्यानिलाकुलः ।

तंतस्तु शीतमांसाद्य वायुस्तत्र प्रकुप्यति ॥ २० ॥

कोष्ठस्थः शीतसंस्पर्शादंतः पिंडीकृतोऽनिलः ।

रसमुच्छोषयत्याशु तस्मात्स्निग्धं तदा हितम् ॥ २१ ॥

हेमंते लवणक्षारतिक्ताम्लकटुकोत्कटम् ।

ससर्पिस्तैलमहिममशनं हितमुच्यते ॥ २२ ॥

तीक्ष्णान्यपि च पानानि पिबेदगुरुभूषितः ।

तैलाभ्यक्तः सुखोष्णे च वारिकोष्ठेऽवगाहयेत् ॥ २३ ॥

सांगारयाने महति कौशेयांस्तरणास्तृते ।

शयीत शयने वापि वृतो गर्भगृहोदरे ॥ २४ ॥

हेमंत ( जाड़ेकी ) ऋतु शीतल और रूक्ष होताहै इसमें सूर्यकी ताप कम है और वायु अधिक चलाकरताहै इस लिये शीतको प्राप्त होकर इस में वायु कुंपित होजाया करताहै ॥ २० ॥ और कोष्ठस्थ होकर शीतके से भीतर वायु पिंडीसा बंध जाताहै और शीघ्रही रसको शोषण कर ले- इससे इस ऋतुमें स्निग्ध भोजन करना हित है (कई "अनिल" पाठ नहीं मानते अनलः" मानतेहैं और कोष्ठस्थ अग्नि शीतस्पर्शसे पिंडीभूत हो जाताहै और

श्लोकः २४ ) सांगारयाने अंगारपूर्णशकटिकासहिते वृतः इति आच्छादितानः ।

ते नि० सं० )

रसको शीघ्र शोषता है ऐसा अर्थ करते हैं ) हेमंतमें लवण क्षार कड़वा खट्टा तज चरपरा रस खाना और घृततैलसे खूब स्निग्ध करके गरमागरम भोजन करना चाहिये ॥ २१ ॥ २२ ॥ और तक्षिणपान ( मद्यादि ) पीवे और शरीरपर अगर ( या अगरका अतर ) लगावे तैलका मर्दन करे और निवाये पानीके हो जो बालटियोंमें बैठ २ कर स्नान करे ॥ २३ ॥ और ऐसे मकानमें सोवे जहाँ अंगारोंसे भरी अंगीठी ( पहियोदार अंगीठी हो ) और स्थान भी विशाल हो जिसके बाहर बरामदे दालान इत्यादि और स्थान हों ( अर्थात् भीतरके कोठोंमें ) पलंगपर रेशमी ( या सूती रुई भरे ) गदले बिछाकर रजाई ओढके सोवे ॥ २४ ॥

स्त्रीः श्लिष्ट्वाऽगुरुधूपाढ्याः पीनोरुजघनस्तनीः ।

प्रकामं च निषेवेतं मैथुनं तर्पितो नृपः ॥ २५ ॥

मधुरं तिक्तकटुकमम्लं लवणमेव च ।

अन्नपानं तिलान्माषाञ्छाकानि च दधीनि च ॥ २६ ॥

तथेक्षुविकृतीः शालीन्सुगंधांश्च नवानपि ।

प्रसह्यान्नूपमांसानि क्रव्यादविलशायिनाम् ॥ २७ ॥

औदकानां प्लवानां च पादिनां चोपजायते ।

मद्यानि च प्रसन्नानि यच्च किञ्चिद्वलप्रदम् ॥ २८ ॥

कामतस्तं निषेवेत पुष्टिमिच्छन्निमागमे ।

एष एव विधिः कार्यः शिशिरे समुदाहृतः ॥ २९ ॥

पुष्ट साथल नितंब और स्तनोंवाली सुंदर स्त्रियोंको अगुरु धूप आदिसे सुगंधित करके राजा उनका आलिंगन करे और इच्छापूर्वक वाजीकरणसे तृप्त होके खूब मैथुन करे ॥ २५ ॥ और इस हेमंतमें मनुष्य मीठे कड़वे चरपरे खट्टे और सलोने अन्न ( भोजन ) खावे और पान करे तथा तिल उड़द शाक और दही इन्हें भी खावे ॥ २६ ॥ तथा ईखके विकार ( गुड ) शाली चावल जो सुगंधित हों और नये भी हों और तथा प्रसह्य और जलकिनारेके जीवोंका

( श्लो० २५ ) प्रकामं यथेच्छं मैथुनं निषेवेत । तर्पित इति वाजीकरणादिभोज्यैस्तर्पितः ।

( श्लो० २७ ) प्रसह्य हठादेव । प्रसहानां पक्षिणां मांसम् । अतः केचित् प्रसहानूपमांसा नीति पठन्ति ।

मांस और मांसाशी तथा बिलवासियोंका मांस भोजन करे ॥ २७ ॥ तथा जलके पक्षियोंका और पैरोंवाले पक्षियोंका मांस भी खावे और निर्मल मद्य पीवे और जो जो बलदायक वस्तु हैं उनका सेवन इच्छा पूर्वक करे पुष्टि चाहनेवाले मनुष्य हेमंत ऋतु ( सरदी ) में उपरोक्त सब विधि करें और यही विधि शिशिर ऋतुमें भी करनी श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥ २९ ॥

### वसंतऋतुका वरताव ।

हेमंते निचितः श्लेष्मा शैत्याच्छीतशरीरिणाम् ।

औष्ण्याद्दसंते<sup>१</sup> कुपितः कुंरुते च गंदान्बहून् ॥ ३० ॥

ततोम्लमधुरस्निग्धलवणानि गुरुणि च ।

वर्जयेद्दमनादीनि कर्माण्यपि च कारयेत् ॥ ३१ ॥

षष्टिकान्नं यवाञ्छीतान्सुद्धान्नीवारकोद्रवान् ।

लावादिविष्किररसैर्दद्याद्घूपैश्च युक्तिः ॥ ३२ ॥

पटोलनिंबवार्ताकुतित्तकैश्च हिमात्यये ।

सेवेन्मध्वासवारिष्टान्सीधुमाध्वीकमासवान् ॥ ३३ ॥

व्यायाममंजनं धूमं तीक्ष्णं च कवलग्रहम् ।

सुखांशुना च सर्वार्थान्सेवेत् कुसुमागमे ॥ ३४ ॥

हेमंतमें शीत शरीरवालोंके शीतके कारण कफ संचित हुआ वसंतमें वह गरमीसे ( गरमी पाकर ) कुपित होता है और बहुत रोग पैदा करता है ॥ ३० ॥ इसलिये खट्टे मीठे चिकने लवणके भारी पदार्थ त्याग देने चाहिये और वमनादिक ( वमन विरेचनादि कर्म भी करने उचित हैं ॥ ३१ ॥ और सांठी चावल जो शीतल अन्न मूँग नीवार कोदों इत्यादिको लवा आदि विष्किर जीवोंके मांसरससे या घूपोंसे युक्तिपूर्वक देवे ॥ ३२ ॥ परवल नींब वृताक और तिक्तपदार्थोंको वसंतमें सेवन करे और मधुके आसव अरिष्टों ( मद्यों ) को तथा सीधु और माध्वीक मदिराओंको सेवन करे ॥ ३३ ॥ और व्यायाम ( डंड कसरत तथा परिश्रम ) अंजन धूमपान और तीक्ष्ण कवलग्रह और निवाये जलसे स्नान कार्य करे ये सब वसंतऋतुमें सेवन करने योग्य हैं ॥ ३४ ॥



तीक्ष्णरूक्षकटुक्षारकषायं कोष्णमद्रवम् ।

यवमुद्रमधुप्रायं वसन्ते भोजनं हितम् ॥ ३५ ॥

व्यायामोत्रं नियुद्धाध्वशिलानिर्वातजो हितः ।

उत्सादनं तथा स्नानं वनिताः काननानि च ॥ ३६ ॥

सेवेत निर्हरेच्चापि हेमन्तोपचितं कफम् ।

शिरोविरेकवमननिरूहकबलादिभिः ॥

वर्जयेन्मधुरस्निग्धदिवास्वप्नगुरुद्रवान् ॥ ३७ ॥

वसन्तमें तीक्ष्ण ( चरपरे ) रूखे कटुक खारे कसेले और निवाये जो विशेष पतले न हों जिनमें जौ मूँग शहद इत्यादि प्रायः मिले हों या इनसे बनेहों ऐसे भोजन करने हितकारक होतेहैं ॥ ३५ ॥ और इस ऋतुमें व्यायाम नियुद्ध ( कुस्ती ) मार्ग चलना पत्थर ( या गोले ) फेंकना इत्यादिकी कसरत करे और उबटन लगाना स्नान करना स्त्रियोंका संग और वनविहार इन सबका सेवन करे ॥ ३६ ॥ और हेमन्तमें संचित हुआ कफ शिरोविरेचन ( नस्यो ) से वमन ( विरेचन ) निरूहण और कवल धारण आदिसे दूर करे और मीठे चिकने पदार्थोंको भारी ( गरिष्ठ ) और पतले भोजनोंको तथा दिनके सोनेको त्याग देवे ॥ ३७ ॥

### ग्रीष्म ऋतुका वरताव ।

व्यायाममुष्णमायासं मैथुनं चातिशोषि च ।

रसांश्चाग्निगुणोद्विक्तान्निद्रावे परिवर्जयेत् ॥ ३८ ॥

सरांसि सरितो वापीर्वनानि रुचिराणि च ।

चंदनानि परार्ध्यानि स्रजः सकमलोत्पलाः ॥ ३९ ॥

तालवृंतानिलाहारांस्तथा शीतगृहाणि च ।

वर्मकाले निषेवेत वासांसि सुलघूनि च ॥ ४० ॥

निदाघ अर्थात् ग्रीष्मऋतु गरमीमें व्यायाम ( डंड कसरत ) उष्ण पदार्थ

( श्लो० ३६ ) उत्सादनादीनि सेवेत इत्यन्वयः ।

( श्लो० ३९ । ४० ) परार्ध्यानि श्रेष्ठानि परार्ध्य श्रेष्ठमिति ( श० स्तो० ) अन्ये परार्ध्यानि सुगंधियुतानि चाऽऽहुः । तालवृंतानिलाहारान् । तालपत्रव्यजनपवनं हारांश्च ।

( या गरम स्थान ) परिश्रम ( मेहनत ) मैथुन और अति शोषण पदार्थ ( जो सुश्की करे ) तथा अग्नि गुणवाले अर्थात् उष्ण प्रकृतिवाले रस ( चरपरे खारे खट्टे ) त्यागने चाहियें ॥ ३८ ॥ और तालाब नदी बावडी अथवा रुचिर वन सेवन करने उत्तमोत्तम चंदन लगाना कमल कमोदनी आदिकी माला पहरना ॥ ३९ ॥ ताड़के पंखोंकी हवा हार और ठंडे मकान और उजले हलके बारीक कपड़े ये सब गरमीमें सेवन करने चाहिये ॥ ४० ॥

शर्कराखंडदिग्धानि सुगंधीनि हिमानि च ।

पानकानि च सेवेत मंथांश्चापि सशर्करान् ॥ ४१ ॥

भोजनं च हितं शीतं सघृतं मधुरद्रवम् ।

शृतेन पर्यसा रात्रौ शर्करामधुरेण च ॥ ४२ ॥

प्रत्यग्रकुसुमाकीर्णै शयने हर्म्यसंस्थिते ।

शयीत चंदनाद्रागः स्पृश्यमानोऽनिलैः सुखैः ॥ ४३ ॥

खांड ( या ओले ) डालकर और केतक केवडा इलायची आदि सुगंधित मिलाके पानक ( पीनेका सरबत, बनाकर पीया करे या मंथोंमें खांड मिलाके पीवे ) ॥ ४१ ॥ और घृत सहित मीठे पतले ठंडे भोजन और रातको औटाया हुआ दूध ठंडाकर खांड मिलाके पीवे ॥ ४२ ॥ और नये २ पुष्पों सहित शय्या ( पलंग ) मकानोंके ऊपर बिछाकर शरीरपर चंदन लगाकर और सुहाती हुई पवनका स्पर्श करते हुए शयन करे ॥ ४३ ॥

प्रावृट्ऋतुकावरताव ।

तापात्यये हिता नित्यं रसा ये गुरवस्त्रयः ।

पयोमांसरसाः कोष्णास्तैलानि च घृतानि च ।

बृंहणं चापि यत्किंचिदभिष्यंदि तथैव च ॥ ४४ ॥

निदाघोपचितं चैवं प्रकुप्यंतं संमैरणम् ।

निहन्यादनिलघ्नेन विधिना विधिको विदः ॥ ४५ ॥

नदीजलं रूक्षमुष्णमुदमंथं तथाऽतपम् ।

व्यायामं च दिवा स्वप्नं व्यवायं चात्र वर्जयेत् ॥ ४६ ॥

ग्रीष्मके पीछे ( प्रावृट् ऋतुमें ) तीन जो भारी रस हैं ( मधुर अम्ल और लवण ) वे नित्य सेवन करने हित हैं तथा निवाया दूध और मांसरस तथा

और घृत ये भी हित हैं इनके शिवाय जो वस्तु बृंहण और अभिष्यंदि हैं वे भी श्रेष्ठ हैं ॥ ४४ ॥ तथा ग्रीष्मके संचित हुए और अवकुपित होनेवाले वायुको वायु नाशक द्रव्योंसे विधिमें चतुर वैद्य शांत करे ॥ ४५ ॥ और नदीका पानी रूक्ष गरम वस्तु उदमथ ( छाँछ ) धूप परिश्रम दिनका सोना और मैथुन करना ये सब इस ऋतुमें त्याग देवे ॥ ४६ ॥

यवषष्टिकगोधूमाञ्छालींश्चाप्यनवांस्तथा ।

हर्म्यमध्ये निवाते च भजे<sup>२</sup> च्छय्यां मृदूत्तराम् ॥ ४७ ॥

सविषप्राणिविण्मूत्रलालानिष्ठीवनादिभिः ।

समापुतं तदा तोयमांतरिक्षं विषोषमम् ॥ ४८ ॥

वायुना विषदुष्टेन प्रावृष्येण विदूषितम् ।

तद्धि सर्वोपयोगेषु तस्मिन्काले विवर्जयेत् ॥ ४९ ॥

निरूहवस्तिभिश्चान्यैस्तथाऽन्यैर्मरुताग्रहैः ।

कुपितं शमयेद्वायुं वार्षिकं वाऽऽचरेद्विधिम् ॥ ५० ॥

इस प्रावृट् ऋतुमें जो साँठी चाँवल गेहूँ और पुराने शाली चाँवल खाने चाहियें और जिसमें तीव्र वायु न हो ऐसे स्थानमें कोमल शय्यापर मुलायम बिछोना बिछाकर सोवे ॥ ४७ ॥ और इस ऋतुमें वर्षाका नदीका पानी कदापि नहीं पीना चाहिये क्योंकि वह विषयुक्त जीवोंके विषा मूत्र लार थूक आदिसे मिश्रित होताहै इसलिये उसे विषके समान समझिये ॥ ४८ ॥ और विष दूषित प्रावृट्की वायुसे भी वह जल दूषित होताहै इसलिये इस समयमें उसे सब कामसे त्यागना चाहिये ( उस जलको पीना भी उचित नहीं उसमें नहाना भी योग्य नहीं इत्यादि ) ॥ ४९ ॥ और निरूहण वस्तियोंसे अथवा अन्य वस्तियोंसे तथा और वायुनाशक यत्नोंसे इस समय कुपित हुए वायुको शांत करना चाहिये अथवा वर्षामें जो विधि कहीहै वे भी जो उचित हों सो करनी चाहियें ॥ ५० ॥

ऋतावृतौ य एतेन विधिना वर्तते नरः ।

चोरां नृतुकृतांत्रिणां प्रोति<sup>३</sup> स कदाचन ॥ ५१ ॥

( श्लो० ४८ ) आंतरिक्षं वर्षाभवं तनु मेवो वर्षति । अथवा वर्षणानंतरं नद्यादिषु समायातं सर्वमेव त्याज्यम् ।

जो मनुष्य ऋतु ऋतुमें ऊपर कही हुई विधिके अनुसार आहार विहारादि करतेहैं उनके ऋतुसंबंधी भयंकर रोग कदापि नहीं होते हैं ॥ ५१ ॥

## बारा प्रकारके भोजनभेद ।

अत ऊर्ध्व द्वादशाशनप्रविभागान्वक्ष्यामः ।

तत्र शीतोष्णस्निग्धरूक्षद्रवशुष्कैककालिकद्विकालिकौषध-  
युक्तमात्राहीनदोषप्रशमनवृत्त्यर्थाः ॥ ५२ ॥

यहांसे अब हम भोजनके बारह भेदोंका वर्णन करतेहैं । यहांपर वे बारह भेद ये हैं कि शीत उष्ण स्निग्ध रूक्ष द्रव शुष्क एककाल द्विकाल औषधयुक्त मात्राहीन दोषशमन और वृत्त्यर्थ ( देह धारणार्थ ) ॥ ५२ ॥

## शीत और उष्ण अन्नका उपयोग ।

तृष्णोष्णमददाहार्तात्रक्तपित्तविषातुरान् ।

मूर्च्छार्तान्स्त्रीषु च क्षीणाञ्छीतैरन्नैरुपाचरेत् ॥ ५३ ॥

कफवातामयाविष्टान्विरिक्तान्स्नेहयायिनः ।

प्रकृन्नेदेहांश्च नरानुष्णैरन्नैरुपाचरेत् ॥ ५४ ॥

जो मनुष्य तृषा गरमी मद दाह इनसे पीडित हों रक्तपित्तके रोगी अथवा विषसे पीडित हों जिन्हें मूर्च्छा आया करती हो जो स्त्रीसंगसे क्षीण होगये हों इतने मनुष्योंको शीतल भोजन ( खान पान ) देना उचित होताहै ॥ ५३ ॥ और जो कफवायुके रोगी हों या विरेचन लिया हों स्नेहपान किया हों जिनकी देह क्लेशित ( गीलीसी ) रहती हों उन मनुष्योंको गरम खान पान देना चाहिये ॥ ५४ ॥

## स्निग्ध और रूक्षका उपयोग ।

वातिकान्नुक्षदेहांश्च व्यायामोपहतांस्तथा ।

व्यायामिनश्चापिनरान्स्निग्धैरन्नैरुपाचरेत् ॥ ५५ ॥

भेदसाभिपरीतांस्तु स्थूलान्मेहातुरानपि ।

कफाभिपन्नदेहांश्च रूक्षैरन्नैरुपाचरेत् ॥ ५६ ॥

वातप्रधान वातप्रकृति तथा वायुके रोगी और रूक्ष देहवाले तथा जो परिश्रमसे थके हों या परिश्रम करते हों उन्हें स्निग्ध खान पान देवे ( व्यायामो

पहतकी जगह कई "व्यवायोपहत" ऐसा पाठ मानते हैं और मैथुनसे क्षीण ऐसा अर्थ करते हैं ) ॥ ५५ ॥ और जो मेदसे व्याप्त हों ( स्थूल हों ) प्रमेहसे पीडित हों कफसे व्याप्त देहवाले हों उन्हें रुक्ष भोजन देवे ॥ ५६ ॥

शुष्कदेहान्पिपासातान्दुर्बलानपि च द्रवैः ।

प्रक्लिन्नकायान्त्राणिनः शुष्कैर्मैहितमेव च ॥ ५७ ॥

एककालं भवेद्देयो दुर्बलाग्निविवृद्धये ।

समाग्नये समाहारो देयः कालमथो भयम् ॥ ५८ ॥

औषधद्वेषिणे देयस्तथौषधसमायुतः ।

मंदाग्नये रोगिणे च मात्राहीनः प्रशस्यते ॥ ५९ ॥

यथार्थदत्तश्चाहारो दोषप्रशमनः स्मृतः ॥ ६० ॥

अतः परं तु स्वस्थानां वृत्त्यर्थं सर्वमेव च ।

द्वादशान्नप्रविचारानेतानेव प्रचक्षते ॥ ६१ ॥

सूखा देहवाले तृषार्त और दुर्बलोंको द्रव ( पतले ) ( अन्न भोजन ) देवे और जिनकी देह गीली रहती हो जिनके व्रण हों या प्रमेहहो उन्हें शुष्क भोजन प्रायः देने चाहियें ॥ ५७ ॥ और दुर्बलको अग्नि बढानेके लिये एकवार भोजन देवे । और जिनकी जठराग्नि समान ( ठीक ) हो उन्हें दोनों बार सम आहार ( न बहुत पतला न सूखा न बहुत गरम न शीत ) देवे ॥ ५८ ॥ जो औषधके द्वेषीहों उन्हें भोजनमें औषध मिलाकर देवे । और जो मंदाग्निवाले तथा रोगी हों उन्हें मात्राहीन ( थोड़ा ) भोजन देवे ॥ ५९ ॥ और जो दोष उत्कर्षहो उसकी शांतिकारक यथार्थदिया भोजन दोष शमन कहलाताहै ६० ॥ और इसके अनन्तर स्वस्थोंके लिये वृत्तिके तोरपर ( सुधा निवृत्तिके लिये ) इन्हीं बारह प्रकारके ही भोजनोंमेंसे उपयुक्त करे ॥ ६१ ॥

**औषध देनेके १० समय ।**

अत ऊर्ध्वं दशौषधकालान्वक्ष्यामः ।

तत्र निर्भक्तं प्राग्भक्तमधोभक्तं मध्ये भक्तमंतराभक्तं  
सभक्तं सामुद्रं मुहुर्मुहुर्ग्रासं ग्रासांतरं चेति दशौषध-  
कालाः ॥ ६२ ॥

( श्लो० ५७ ) अत्र उपाचरेदिति पूर्वोक्तेनान्वयः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम औषधके दश कालोंका वर्णन करते हैं जैसे निर्भक्त, प्राग्भक्त, अधोभक्त, मध्येभक्त, अन्तरा भक्त, सभक्त, सामुद्र, मुहुर्मुहुः, ग्रास, ग्रासान्तर ॥ ६२ ॥

## निर्भक्त ।

तत्र निर्भक्तं केवलमेवौषधमुपयुज्यते ॥ ६३ ॥

वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं

हृन्त्यात्तथाऽऽर्मयमसंशयमाशु चैव ।

तद्बालवृद्धयुवतीमृदवोऽथ पीत्वा ।

ग्लानिं परां समुपयांति बलक्षयं च ॥ ६४ ॥

इनमेंसे निर्भक्त उसे कहते हैं जो बिना अन्नके केवल औषधका ही उपयोग किया जावे ॥ ६३ ॥ यह बिना अन्नके साथके केवल औषध अधिक पराक्रमवाली होती है और रोगको शीघ्र ही निःसंदेह नाश करती है परंतु इसे पीनेसे बालक बूढ़े स्त्री कोमल स्वभावके पुरुष ( अमीर ) ये ग्लानिको प्राप्त होते हैं ( नफरत आजाती है ) और बलका भी इससे क्षय होता है ( इसका समय प्रभातहीका होता है ) ॥ ६४ ॥

## प्राग्भक्त ।

प्राग्भक्तं नाम यत्तु प्राग्भक्तस्योपयुज्यते ॥ ६५ ॥ शीघ्रं विपा-

कमुपयाति बलं न हि स्वादन्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति ।

प्राग्भक्तसेवितमथो बलमादधाति दद्याच्चैवृद्धांशिशुभीरुव-

रांगनाभ्यः ॥ ६६ ॥

प्राग्भक्त उसे कहते हैं जो भोजनके पहले दीजावे ॥ ६५ ॥ यह भोजनके पहले दीहुई औषध शीघ्र ही पचजाती है और बलको नाश नहीं करती और भोजनसे दबजानेके कारण बारबार मुँहसे नहीं निकलती और यह भोजनसे पहलेकी औषध बल देती है यह बालक बूढ़े डरपोक और स्त्रियोंको दनी चाहिये ॥ ६६ ॥

## अधोभक्त ।

अधोभक्तं नाम यद्भक्तांते पीयते ॥ ६७ ॥ पीतं यदन्नमुप-

युज्यते तदूर्ध्वकाये हन्याद्गदान्वहुविधांश्च बलं दधाति ॥ ६८ ॥

अधोभक्त उसे कहते हैं जो भोजन खाये पीछे पीई या खाई जावे ॥ ६७ ॥  
जो भोजन करके पीछे औषध पीई या खाई जाती है वह देहके ऊर्ध्वभागके  
अनेक प्रकारके रोग दूर करती है और बल देती है ॥ ६८ ॥

## मध्यभक्त ।

मध्येभक्तं नाम यन्मध्ये भक्तस्य पीयते ॥ ६९ ॥

मध्ये तु पीतमुपहृत्य विसारिभावाद्ये मध्यदेहमभिभूय  
भवंति रोगाः ॥ ७० ॥

मध्येभक्त उसे कहते हैं जो भोजनके बीचमें पीई या खाई जावे ॥ ६९ ॥  
भोजनके बीचमें उपयोग करी हुई औषध अति प्रसरण होनेसे रसमें मिलकर  
शरीरमें फैलनेसे मध्य देह ( धड़ ) में होनेवाले रोगोंको दूर करती है ॥ ७० ॥

## अंतराभक्त ।

अंतराभक्तं नाम यदंतरा पीयते पूर्वापरयोर्भक्तयोः ॥ ७१ ॥

हृद्यं मनोबलकरं त्वतिदीपनीयं पथ्यं च संभवति चांतरभक्त  
मेतत् ॥ ७२ ॥

अंतराभक्त उसे कहते हैं जो दोनों समयके भोजनोंके बीचमें पीई या  
खाई जावे ॥ ७१ ॥ यह अंतराभक्त हृदयको हित है मन ( दिल ) को ताकत  
देती है और अत्यंत दीपन होती है और पथ्य है ॥ ७२ ॥

## सभक्त ।

सभक्तं नामौषधेषु यत्साध्यते भक्तम् ॥ ७३ ॥ पथ्यं सभक्त-

मबलाबलयोर्हि नित्यं तद्वेषिणामपि तथां शिशुवृद्धयोश्च ७४ ॥

सभक्त उसे कहते हैं जिससे भोजन बनाया जावे ( भोजनके संग पकाई जावे  
या उसके काथादिमें भोजन बनावे ॥ ७३ ॥ यह सभक्त पथ्य है और स्त्रियों  
को निर्वलोंको औषधके द्वेषियोंको बालकोंको वृद्धोंको सदा देनी चाहिये ॥ ७४ ॥

( श्लो० ६७।६८ ) अत्र पीयते पीतं च निदर्शनमात्रम् । तेन पीतं अशितं लीढं इत्यादि  
सर्वप्रकारेणोपयुक्तं गृह्यते । यद्भोजनाति उपयुज्यते तदधोभक्तम् । अधोभक्तं यस्मादित्यर्थः



## सामुद्र ।

सामुद्रं नाम यद्भक्तस्यादावन्ते च पीयते ॥ ७५ ॥ दोषे द्विधा

प्रतिसृते तु समुद्रसंज्ञमाद्यन्तयोर्दशनस्य निषेव्यते तु ॥ ७६ ॥

सामुद्र उसे कहतेहैं जो भोजनके पहले और पीछे पीई खाई जावे ॥ ७५ ॥  
यह भोजनके आदि अंतमें उपयोग करी हुई सामुद्र संज्ञक औषध दोनों तरफ  
( ऊपर नीचेको ) प्रवृत्त हुए दोषोंको शांत करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ७६ ॥

मुहुर्मुहुर्नाम सभक्तमभक्तं वा यदौषधं मुहुर्मुहुरुपयु-

ज्यते ॥ ७७ ॥ श्वासे मुहुर्मुहुरति प्रसृते च कसे हिक्काव-

मीषु च वदंत्युपयोज्यमेतत् ॥ ७८ ॥

मुहुर्मुहु उसे कहतेहैं जो भोजन खाये विना या खाकर बारबार उपयोग  
की जावे ॥ ७७ ॥ यह श्वास रोगमें बढी हुई खाँसीमें हुचकीमें वमनमें  
उपयोग करना चाहिये ॥ ७८ ॥

ग्रासं ग्रासांतरं नाम यत्पिण्डं व्यामिश्रम् ॥ ७९ ॥

ग्रासांतरेषु विंतरेद्रमनीयधूमा-

ञ्छासादिषु प्रथितदृष्टगुणांश्च लेहान् ॥ ८० ॥

एवमेते दशौषधकालाः ॥ ८१ ॥

ग्रास और ग्रासांतर उन्हें कहतेहैं जो ग्रासके भांति मुँहमें रक्खे तथा  
ग्रासमें मिलाकर खावे ( इन्हें मुखमें कवलसा रखना ग्रास समझिये और  
ग्रासमें मिला मिलाकर या ग्रासके संग उपयोग करनेको ग्रासांतर समझिये )  
॥ ७९ ॥ यह वमनीय धूम अथवा श्वासादिकोंमें परीक्षा किये लेह इस भांति  
उपयोग किये जातेहैं ( या जैसे तृषामें मुँहमें द्रव्य रक्खे जातेहैं ) ॥ ८० ॥  
इस प्रकारसे ये दश औषधके समय वर्णन किये गये हैं ॥ ८१ ॥

( वक्तव्य ) ग्रास ग्रासांतरको एक मानों तो ऊपर लिखे ९ भेद होतेहैं  
इसीसे यह दशवाँ भेद ग्रास और ग्रासांतरके जुदा जुदा करनेसे होताहै  
और ठीक भी है कवल धारण करना ग्रासही है और ग्रास ग्रासमें औषध  
लेना ग्रासांतर है सो भेद प्रत्यक्ष है ही डल्लनमिश्रजीने भी यही भेद करके  
दश पूरे कियेहैं ॥

( वाक्य ७९ ) ग्रासमाह । यत्पिण्डं ग्रासं व्यामिश्रमिति कवलं व्यामिश्रमित्यर्थः ।  
ग्रासांतरमाह । ग्रासांतरं तु यद् ग्रासांतरेषु कवलांतरेषु इत्यर्थः । ( इति डल्लनः ) ।

विसृष्टे विष्मूत्रे विशदकरणे देहे च सुलवौ विशुद्धे चोद्वारे  
हृदि सुविमले वाते च सरति । तथाऽन्नश्रद्धायां क्षुद्रपगमे  
कुक्षौ च शिथिले प्रदेयस्त्वाहारो भवति भिषजा कालः  
स तु मृतः ॥ ८२ ॥

इत्युत्तरतन्त्रे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

जब दस्त और पेशाब खुलकर साफ आचुके इंद्रियें निर्मल हों शरीर  
हलका हो शुद्ध डकारें आवें हृदय भी हलका और शुद्ध हो अधोवायु ठीक  
सरता हो ( बंद न हो ) भूख लगी हुई हो अन्नमें श्रद्धा ( रुचि हो कुक्षि ठीली  
पड़ गई हो वैद्योंने ऐसे समयमें आहार भोजन देना ठीक कहा है और इसे ही  
भोजनका समय समझिये ॥ ८२ ॥

( वक्तव्य ) कई इसे आहारके समयको दशवाँ काल मानते हैं वे कहते हैं  
कि प्राग्भक्त मध्येभक्त सभक्त सामुद्रादि सब भोजनके ही आश्रय हैं इससे  
मुख्य भोजनका समय भी तो विचारना और ग्रहण करना चाहिये ।

इति श्रीसुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

## पंचषष्टितमोऽध्यायः ६५.

अथातस्तन्त्रयुक्तिनामाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहांसे अगाड़ी अब हम तन्त्रयुक्ति ( चिकित्साशास्त्रकी प्रयोजनीय युक्तियों-  
के विषय ) की अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

द्वात्रिंशत्तन्त्रयुक्तयो भवंति । तद्यथा । अधिकरणं योगः पदार्थो  
हेत्वर्थ उद्देशो निर्देश उपदेशोऽपदेशः प्रदेशोऽतिदेशोऽपवर्गो  
वाक्यशेषोऽर्थापत्तिर्विपर्ययः प्रसंग एकांतोऽनेकांतः पूर्वपक्षो  
निर्णयोऽनुमतं विधानमनागतावेक्षणमतिक्रान्तावेक्षणं संशयो  
व्याख्यानं स्वसंज्ञा निर्वचनं निदर्शनं नियोगो विकल्पः समु-  
च्चय उद्घामिति ॥ १ ॥

( वाक्य १ ) तन्त्रयुक्तय इति । त्रायते शरीरमनेनेति तन्त्रं चिकित्साशास्त्रं तस्य  
युक्तयः योजनाः तन्त्रयुक्तयः ( इति डल्लनः ) वाचस्पत्ये तु तनोति अर्थान् इति तन्त्रं  
शास्त्रं चिकित्साशास्त्रम् “ तनुविस्तारे ” एतस्माद्धातोप्लुप्त्यये कृते तन्त्रमिति सिद्धं  
तस्य युक्तयः तन्त्रयुक्तयः । युक्तिः अर्थावधारणे तत्साधकलिंगज्ञानादौ न्याये व्यवहारे  
अनुमाने च ( इति शब्दस्तोमः ) ।

तंत्रकी युक्तियां बत्तीस हैं जैसे १ अधिकरण २ योग ३ पदार्थ ४ हेत्वर्थ  
५ उद्देश ६ निर्देश ७ उपदेश ८ अपदेश ९ प्रदेश १० अतिदेश ११ अपवर्ग  
१२ वाक्यशेष १३ अर्थापत्ति १४ विपर्यय १५ प्रसंग १६ एकांत १७ अनेकांत  
१८ पूर्वपक्ष १९ निर्णय २० अनुमत २१ विधान २२ अनागतावेक्षण २३  
अतिक्रान्तावेक्षण २४ संशय २५ व्याख्यान २६ स्वसंज्ञा २७ निर्वचन २८  
निदर्शन २९ नियोग ३० विकल्प ३१ समुच्चय ३२ ऊह्य ॥ १ ॥

## तंत्र युक्तियोंका प्रयोजन ।

अत्रासां तंत्रयुक्तीनां किं प्रयोजनमित्युच्यते ।

वाक्ययोजनमर्थयोजनं च ॥ २ ॥

यहांपर इन तंत्र युक्तियोंका क्या प्रयोजन है इसपर कहते हैं कि एक तो वाक्ययोजन दूसरा अर्थयोजन ये दो प्रयोजन इन तंत्रयुक्तियोंसे हैं ( प्रयोजन यह है कि वाक्यके ठीक जोड़नेमें और अर्थके जोड़नेमें ये काम आतीहैं ) ॥ २ ॥

असद्वादिप्रयुक्तानां वाक्यानां प्रतिषेधनम् ।

स्ववाक्यसिद्धिरपि च क्रियते तंत्रयुक्तिः ॥ ३ ॥

व्यक्ता नोक्ताश्च ये ह्यर्था लीना ये चाप्यनिर्मलाः ।

लेशोक्ता ये क्वचित्तंत्रे तेषां चापि प्रसाधनम् ॥ ४ ॥

यथाम्बुजवनस्यार्कप्रदीपो वेदमनो यथा ।

प्रबोध्यस्य प्रकाशार्थास्तथा तंत्रस्य युक्तयः ॥ ५ ॥

( वा० २ ) वाक्ययोजनमर्थयोजनं चेति । वाक्यस्य असंबद्धस्य योजनं संबंधनं वाक्ययोजनम् । लीनस्य असंगतस्य चार्थस्य योजनं संगतीकरणं अर्थयोजनम् । तत्र कासांचित्तंत्रयुक्तीनां योगोद्देशनिर्देशादीनां वाक्ययोजनम् । कासांचिदधिकरणहेत्वर्थादीनां । अर्थयोजनमिति । ( नि० सं० )

( श्लो० ३ ) असद्वादिप्रयुक्तानामिति । असद्वादिनो हि प्रतिपक्षवादिनः एकाश्रयवादिनो वा । प्रतिषेधनं अपदेशादिभिस्तंत्रयुक्तिभिः परपक्षदूषणम् । स्ववाक्यसिद्धिः स्ववाक्यसाधनं निर्णयाख्यया तंत्रयुक्त्या ।

( श्लो० ४ ) व्यक्ताः नोक्ताः स्पष्टाः तथा न उक्ता ये अर्थाः । लीना असम्यग्दर्शिताः अनिर्मला गूढाः । लेशेन उक्ता अतिसूक्ष्मतया बीजरूपेण उक्ताः ।

असद्वादी ( मिथ्यावादी प्रतिपक्षी ) के कहे हुए वाक्योंका खंडन अपने ( सत्य ) वाक्योंका मंडन तंत्रयुक्तियोंसे ही किया जाता है ॥ ३ ॥ और जो अर्थ प्रगट रूपसे नहीं कहे तथा गूढ शब्दोंमें लीन हैं या निर्मल नहीं जाने जाते या कहीं ग्रंथमें लेशमात्र ( बीजमात्र बहुत ही सूक्ष्मतासे ) वर्णन करदिये इन सबकी सिद्धि इन तंत्रयुक्तियोंसे ही होती है ॥ ४ ॥ जैसे कमलोंके समूह को सूर्य और घरको ( अंधेरे घरको ) दीपक प्रकाशमान करता है उसी प्रकार प्रबोध्य ( जानने योग्य ) वाक्योंके अर्थप्रकाश करनेवाली ये तंत्रयुक्तियां हैं ( शास्त्रार्थ करनेमें ये बहुत ही काम आती हैं ) ॥ ५ ॥

## अधिकरण और भोगके लक्षण ।

यमर्थमधिकृत्योच्यते तदधिकरणम् । यथा रसं दोषं वा ॥ ६ ॥

जिस अर्थका अधिकार करके और अर्थोंका वर्णन किया जावे उसे अधिकारण कहते हैं जैसे रस अथवा दोष अर्थात् रसका अधिकार करके और बातें कही गईं या दोषको अधिकार करके या यों कहो कि रसके ग्रहणार्थ रस शब्द कहा गया ( कई जगह बिना कहे भी उसका ग्रहण किया जाता है ये सब अधिकरण ही होते हैं ) ॥ ६ ॥

येन वाक्यं युज्यते स योगः । यथा । तैलं पिबेच्चामृतवल्लि  
निर्वाहिस्त्राभयावृक्षकपिप्पलीभिः । सिद्धं बलाभ्यां च सदेव-  
दारु हिताय नित्यं गलगंडरोगी ॥ सिद्धं पिबेदिति प्रथमं व  
क्तव्ये तृतीयपादे सिद्धं प्रयुक्तमेवं दूरस्थानामपि पदानामे  
कीकरणं योगः ॥ ७ ॥

योग उसे कहते हैं जिससे वाक्य जोड़े जावें ( अर्थात् जिससे निकट या दूरके पदोंको जोड़कर वाक्यकी योजना की जावे ) जैसे चिकित्सास्थानके अठारहवें अध्यायका ४५ वें श्लोकमें ( ऐसा कहा है कि गलगंडरोगमें गिलोय नींबू हिंसा

( वा० ६ ) यमर्थमधिकृत्य अपरे अर्था अभिधीयते तदधिकरणसंज्ञं भवतीति । रसं दोषं वा इति । एतेनैतदुक्तं भवति रसं दोषं वा अधिकृत्योच्यते । उल्लेखाभावेऽपि अर्थजातमभिहितं तत्सर्वं तदधिकारे प्रतीयते । ( इति नि० सं० )

( वा० ७ ) येन वाक्यं युज्यते इति । तत्र व्यासोक्तानां संनिकृष्टविप्रकृष्टानां पदानां एकीकरणं योगः । ( इति ढल्लनः )

हरड़े कुड़ा पिप्पली दोनों खरेटी इनसे देवदारु सहित सिद्ध किया तैल पीवे इस (श्लोकमें) “तैलं सिद्धं पिबेत्” ऐसा प्रथम ही कहनाथा परंतु “तैलं पिबेत्” तो पहले पदमें और “सिद्धं” तिसरे पदमें कहागया इन दूरके पदोंका एक करना मिलाकर अर्थ समझना इसे योग कहतेहैं ॥ ७ ॥

## पदार्थ ।

यथोऽभिहितः सूत्रे पदे वा स पदार्थः। अपरिमिताश्च पदार्थाः ।  
यथा स्नेहस्वेदांजनेषु निर्दिष्टेषु द्वयोस्त्रयाणामर्थानामुपप-  
त्तिर्दृश्यते तत्र योऽर्थः पूर्वापरयोगसिद्धो भवति स ग्रहीतव्यो-  
यथा वेदोत्पत्तिं व्याख्यास्याम इत्युक्ते संदिह्यते बुद्धिः ।  
कतमस्य वेदस्यायमुत्पत्तिं विवक्षुरिति । ऋग्वेदादय-  
स्तुवेदास्तत्र पूर्वापरयोगमुपलभ्य विद विचारणे विद विं-  
त्येतयोश्च धात्वोरनेकार्थयोः प्रयोगः । पश्चात्प्रतिपत्तिर्भवति  
आयुर्वेदोत्पत्तिमयं विवक्षुरित्येवं पदार्थः ॥ ८ ॥

सूत्रमें या पदमें जिस अर्थका प्रतिपादन किया जावे उसे पदार्थ कहते हैं परं च पदार्थ ( पदोंके अर्थ ) बहुत होते हैं जैसे स्नेह स्वेद अंजन इन्हीं पदोंमें देखिये दो दो तीन तीन अर्थोंकी उपपत्ति दीखती ( अर्थात् दो दो तीन तीन अर्थ दिखाई देती ) है ( स्नेहसे घृत तैल वसा आदि बहुतोंका बोध हाता है स्वेदसे कैसा स्वेद अंजन स्रोतोऽंजन या रसांजन इत्यादि ) इनमेंसे जो अर्थ पूर्वापर योगके विचारसे सिद्ध हो वही ग्रहण करना चाहिये जैसे एक दृष्टांत है कि सूत्रस्थानमें पहले ही कहा है कि “वेदोत्पत्तिं व्याख्यास्यामः” इस वाक्यमें बुद्धिमें संदेह होता है कि ग्रंथकार कौनसे वेदकी उत्पत्ति कहना चाहते हैं वेद तो ऋग्वेदादिक हैं इसमें अब पूर्वापर योगके विचारनेसे जाना जाता है कि विद विचारणे या विद विंदति इन अनेकार्थक धातुओंका प्रयोग है ( अर्थात् जिससे जाना जावे ज्ञान हो वही वेद ) फिर निश्चय हुआ कि ग्रंथकार आयुर्वेद ( आयुके ज्ञानके वेदकी ) उत्पत्तिको वर्णन किया चाहते हैं वस यही पदार्थ ( निश्चितपदार्थ ) हुआ ॥ ८ ॥

## हत्वथ और उद्देश ।

यदन्यदुक्तमन्यार्थसाधकं भवति स हेत्वर्थः । यथा मृत्पिण्डोऽग्निः प्रक्षिद्यते तथा माषदुग्धप्रभृतिभिर्व्रणः प्रक्षिद्यते इति

॥ ९ ॥ समासकथनमुद्देशः । यथा शल्यमिति ॥ १० ॥

जो कहा हुआ वाक्य अन्य अर्थका साधक हो वह “ हेत्वर्थ ” कहलाता है जैसे मिट्टीका कच्चा ढेला पानीसे गीला होजाता है ( घुलने लग जाता है ) इसी प्रकार उड़द दूध आदिसे व्रण भी गीला होता है ॥ ९ ॥ संक्षेपसे जो वर्णन किया जावे उसे “ उद्देश ” कहते हैं जैसे शल्य ( अर्थात् शल्यके कहनेसे शल्य चिकित्सामात्रका बोध होता है ) ( इसमें शारीरक या आगंतुक ये प्रपंच नहीं ) ॥ १० ॥

## निर्देश उपदेश और अपदेश ।

विस्तरवचनं निर्देशः । यथा शारीरमागंतु चेति ॥ ११ ॥

एवमित्युपदेशः । यथा । तथा न जागृत्याद्रात्रौ दिवा स्वप्नं च वर्जयेत् ॥ १२ ॥ अनेन कारणेनेत्युपदेशः, यथोपदिश्यते मधुरेण श्लेष्माभिर्वर्द्धत इति ॥ १३ ॥

विस्तार पूर्वक जो वर्णन किया जावे उसे “ निर्देश ” कहते हैं जैसे शारीरक और आगंतुक ( अर्थात् शल्य दो प्रकारका होता है १ शारीरक २ आगंतुक ) यह शल्यका भेद विस्तारसे कहा गया ॥ ११ ॥ यह इसी प्रकारसे है या होता है या होना चाहिये इसे “ उपदेश ” कहते हैं जैसे रातको जागना नहीं चाहिये और दिनमें नहीं सोवे ॥ १२ ॥ इस कारणसे यह होता है इसे “ अपदेश ” कहते हैं जैसे कहते हैं कि मीठा खानेसे कफ बढ़ता है ( अर्थात् कफवृद्धिका कारण मधुर रस है ) ॥ १३ ॥

## प्रदेश और अतिदेश ।

प्रकृतस्यातिक्रान्तेन साधनं प्रदेशः । यथा देवदत्तस्यानेन शल्यमुद्धृतं तस्माद्यज्ञदत्तस्याप्ययमेवोद्धरिष्यतीति ॥ १४ ॥

प्रकृतस्यानागतेन साधनमतिदेशः । यथानेनास्यवायुरूद्धं मुपतिष्ठते तेनोदावर्तः स्यादिति ॥ १५ ॥

जहाँ प्रकृतका अतिक्रमण करके साधन किया जावे उसे “ प्रदेश ” कहते हैं जैसे इसने देवदत्तका शल्य निकाला ( या रोग दूर किया ) इससे यह यज्ञ-

दत्तकाभी शल्य निकाल देगा ( रोग दूर कर देगा ) ( यहां यज्ञदत्तका रोग दूर करना रूप जो प्रस्तुत है वह देवदत्तके रोगरूपी करणको अतिक्रमण करके साधन किया गया ॥ १४ ॥ और जहां प्रकृतका अनागत ( भविष्यत् ) से साधन किया जावे उसको “अतिदेश” कहते हैं जैसे अमुक कारणसे इसका वायु ऊर्द्धगामी होता है इससे इसे उदावर्त होगा यहाँ वायुका ऊर्द्धगमन प्रकृत है इसका साधन अगाड़ी होनेवाले उदावर्तसे होता है ॥ १५ ॥

## अपवर्ग और वाक्यशेष ।

अभिव्याप्यापकर्षणमपवर्गः । यथाऽस्वेद्या विषोपसृष्टा अन्यत्र कीटविषादिति ॥ १६ ॥ येन पदेनानुक्तेन वाक्यं समाप्यते स वाक्यशेषः । यथा शिरः पाणिपादपार्श्वपृष्ठो दूरोरसामित्युक्ते पुरुषग्रहणमपि गम्यते पुरुष एवोक्त इति ॥ १७ ॥ अभिव्याप्यमेंसे अपकर्षण करनेको “अपवर्ग” कहते हैं जैसे विषोपसृष्ट स्वेद्योग्य नहीं होते शिवाय कीड़ोंके विषवालोंके यहां विषोपसृष्ट अस्वेद्य यह वह व्यापक था इसमेंसे कीट विषवाले पृथक् किये गये ॥ १६ ॥ जहां विना कहे पदसे वाक्य समाप्त किया जावे उसे “वाक्यशेष” कहते हैं जैसे शिर हाथ पाँव पँसवाड़े पीठ पेट कहे गये इससे मनुष्यका ग्रहण होगया अर्थात् मनुष्य ( पुरुष शरीर ) कहा गया ऐसेही “तत्राव्यापन्नानामोषधीनामपां चोपयोगः” यहां “कार्यः” इस अनुक्त पदसे वाक्य समाप्त हुआ ॥ १७ ॥

## अर्थापत्ति और विपर्यय ।

यदकीर्तितमर्थादापद्यते सार्थापत्तिः, यथौदनं भक्ष्ये इत्युक्तेऽर्थापन्नं भवति नायं पिपासुर्यवागूमिति ॥ १८ ॥ यद्यत्राभिहितं तस्य प्रातिलोम्यं विपर्ययः, यथा कृशाल्पप्राणभरिवो दुश्चिकित्स्या इत्युक्ते विपरीतं गृह्यते दृढादयः सुचिकित्स्या इति ॥ १९ ॥

जो विनाही कहा हुआ अर्थसे जाना जावे उसे “अर्थापत्ति” कहते हैं जैसे किसी ने कहा मैं भात खाऊंगा तो इस कथनसे जाना गया कि यह यवागू पीनेका इच्छुक नहीं है ॥ १८ ॥ जो जहां कहा गया उसके विपरीतको “विपर्यय” कहते हैं जैसे किसीने कहा कि दुबले निर्बल डरपोक ये दुश्चिकित्स्य होते हैं तो



इसके विपरीत ग्रहणसे दृढ बलिष्ठ और निडर ये मुचिकित्स्य हैं ऐसा समझना ॥ १९ ॥

## प्रसंग ।

प्रकारांतरेण समापनं प्रसंगः, यथा प्रकारांतरितो योऽर्थोऽस कृदुक्तः समाप्यते स प्रसंगः । यथा पंचमहाभूतशरीरि समवायः पुरुषस्तस्मिन्क्रिया तदधिष्ठानमिति वेदोत्पत्ता-वभिधाय पुनरुक्तं यतोऽभिहितं पंचमहाभूतशरीरिसम-वायः पुरुष इति । स खल्वेवं कर्मपुरुषश्चिकित्साया-मधिकृतः ॥ २० ॥

प्रकारांतरसे जो समाप्त किया जावे तथा प्रकारांतरमें जो अर्थ बारबार कहा हुआ समाप्त किया जावे ( एक जगह कहकर दूसरी जगह फिर कहा जावे या कहकर वाक्य समाप्त किया जावे तो ) उसे “ प्रसंग ” कहते हैं जैसे पहले वेदोत्पत्ति अध्यायमें कहाकि पंचमहाभूत शरीरि ( जीव ) का समवाय पुरुष होता है और उसीमें क्रियाओंका अधिष्ठान होता है और अगाड़ी फिर ऐसा ही कहा कि पंचमहाभूत शरीरिका समवाय पुरुष होता है वही कर्म पुरुष चिकित्सामें अधिकार किया गया है ( यहां यह फिर प्रसंगसे कहागया इसे ही प्रसंग कहते हैं ॥ २० ॥

## एकांत और अनेकांत ।

सर्वत्र यदवधारणेनोच्यते स एकांतः ।

यथान्निवृद्धिरेच्यति सदनफलं वामयतीति ॥ २१ ॥

कचित्तथा कचिदन्यथेति यः सोऽनेकार्थः ।

यथा केचिदाचार्या ब्रुवते द्रव्यं प्रधानं

केचिद्भूतं केचिद्दीर्घं केचिद्विपाकमिति ॥ २२ ॥

( वा० २० ) यथा प्रकारांतरितो योर्थः इत्यत्र तथा प्रकारांतरितो योर्थ इति पाठांतरम् ।

( वा० २१ ) अवधारणेन अनन्यत्रिकल्पेन उच्यते स एकांतः । अवधारणे इति वा पाठांतरम् । अवधारः निर्धारः । निर्धारणे निश्चितत्वेन उच्यते स एकांतः ।

जो सर्वत्र निश्चयरूपसे कहा जावे वह “एकांत” कहलाताहै जैसे निशोथ विरेचन करतीहै और भैरवफल वमन कर्ताहै ॥ २१ ॥ कोई ऐसा कहे, और कोई अन्यथा ( और तरह ) वह “अनेकार्थ” कहलाताहै जैसे कोई आचार्य द्रव्यको प्रधान मानतेहैं कोई रसको प्रधान कहतेहैं कोई वीर्यको और कोई विपाकको प्रधान कहतेहैं ॥ २२ ॥

## पूर्वपक्ष और निर्णय ।

आक्षेपपूर्वकः प्रश्नः पूर्वपक्षः । यथा-कथं वातनिमित्ताश्चत्वारः प्रमेहा असाध्या भवन्तीति ॥ २३ ॥ तस्योत्तरं, निर्णयः यथा-शरीरं प्रपीड्य पेश्वार्द्धो गत्वा वसामेदोर्मज्जाविद्धं मूत्रं प्रसृजति वात एवमसाध्या वातजा इति । तथा चोक्तम् ।  
कृत्स्नं शरीरं निःपीड्य मेदोर्मज्जावसायुतः ।

अर्थः प्रकुप्यते वायुस्तेनासाध्यैस्तु वातजाः ॥ २४ ॥

आक्षेप पूर्वक जो प्रश्न किया जावे उसे “पूर्वपक्ष” कहतेहैं जैसे, क्यों वायुके चारों प्रमेह असाध्य होतेहैं ? ॥ २३ ॥ इसका उत्तर ( यथार्थ ) देना “निर्णय” कहाताहै जैसे वायु सब शरीरको निचोड़कर नीचे जाकर वसा चरबी और मज्जासे मिला मूत्र निकालताहै इससे वातज प्रमेह असाध्य होतेहैं कहा भी है कि समस्त देहको पीडन करके मेद वसा मज्जासे मिलकर नीचे वायु कुपित होताहै इसीसे वायुके प्रमेह असाध्य होतेहैं ( वायुके प्रमेह यों असाध्य होतेहैं कि प्रमेहकी चिकित्सा मुख्य शोषण है और शोषण किया वायुको बढ़ाती यह विरुद्धता पड़तीहै ) ॥ २४ ॥

## अनुमत और विधान ।

परमतमप्रतिषिद्धमनुमतम् ।

यथान्यो ब्रूयात्सप्त रसा इति ॥ २५ ॥

प्रकरणानुपूर्वाभिहितं विधानम् ।

यथा सक्थिमर्माण्येकादश प्रकरणानुपूर्वाभिहितानि ॥ २६ ॥

जहाँ पराये मतका निषेध नहीं किया जावे ( स्वीकार किया जावे ) उसे “अनुमत” कहतेहैं जैसे किसीने कहा कि सात रस होतेहैं और दूसरेने इसे

( वा० २५ ) अप्रतिषिद्धं स्वीकरणम् ।

मान लिया ( यही अनुमत हुआ ) ॥ २५ ॥ जो वात प्रकरणपूर्वक कही जावे उसे “ विधान ” कहते हैं जैसे सक्थि मर्म ग्यारह हैं उनका प्रकरणानुपूर्व वर्णन किया गया ॥ २६ ॥

## अनागतावेक्षण और अतिक्रांतावेक्षण ।

एवं वक्ष्यतीत्यनागतावेक्षणम् ।

यथा श्लोकस्थाने ब्रूयाच्चिकित्सितेषु वक्ष्यामीति ॥ २७ ॥

यत्पूर्वमुक्तं तदतिक्रांतावेक्षणम् ।

यथा चिकित्सितेषु ब्रूयाच्छ्लोकस्थाने यदीरितमिति ॥ २८ ॥

अगाड़ी इसे कहेंगे ( या ऐसा कहेंगे ) इसे “ अनागतावेक्षण ” कहते हैं जैसे श्लोकस्थानमें ( सूत्रस्थान या अन्यत्र ) कहा कि इस बातको चिकित्सास्थानमें कहेंगे ॥ २७ ॥ और जो बात पहले कही गई उसे “ अतिक्रांतावेक्षण ” कहते हैं जैसे चिकित्सास्थानमें कहा कि श्लोकस्थानमें यह बात हम कह चुके हैं ॥ २८ ॥

## संशय और व्याख्यान ।

उभयहेतुदर्शनं संशयः । यथा तलहृदयाभिघातः प्राणहरः ।

पाणिपादच्छेदनमप्राणहरमिति ॥ २९ ॥ तत्रातिशयोपवर्णनं

व्याख्यानम् । यथेह पंचविंशतिकः पुरुषोऽत्र व्याख्यायते

अन्येष्वायुर्वेदेषु भूतादिप्रकृत्यारब्धचिंता ॥ ३० ॥

जहां दो हेतु दीखें वह “ संशय ” कहाता है जैसे तलहृदयमें अभिघात प्राणहर होता है और हाथ पाँवोंमें अभिघात प्राणहर नहीं होता ( यहाँ अभिघातमें स्थानादि भेदसे प्राणहरत्वका संशय होता है ) ॥ २९ ॥ शास्त्रमें अतिशयसे वर्णन करना “ व्याख्यान ” कहलाता है जैसे इस ग्रंथमें पञ्चीसतत्त्वोंवाला पुरुष कहा है और अन्य आयुर्वेद ग्रंथोंमें भूतादि और प्रकृतिकेही आरंभसे चिंता करी है ॥ ३० ॥

## स्वसंज्ञा उदाहरण निर्वचन और निदर्शन ।

अन्यशास्त्रासामान्या स्वसंज्ञा ।

यथा मिथुनमिति मधुसर्पिषोर्ग्रहणम् ॥ ३१ ॥

( वा० २८ ) श्लोकस्थानं सूत्रस्थानम् ।

लोके प्रथितमुदाहरणम् ।

यथोष्णभयाच्छीतमनुधावति ॥ ३२ ॥

निश्चितं वचनं निर्वचनम् ।

यथायुर्विद्यतेऽस्मिन्ननेन वाऽऽयुर्विदतीति आयुर्वेदः ॥ ३३ ॥

दृष्टान्तेनार्थः प्रसाध्यते यत्र तन्निर्दर्शनम् ।

यथाग्निर्वायुना सहितः कोष्ठे वृद्धिं गच्छति ।

तथा वातपित्तकफदुष्टो व्रण इति ॥ ३४ ॥

अन्यशास्त्र ( व्याकरणादि ) से जो असामान्य ( अपनेही शास्त्रमें मान्य ) हो उसे "स्वसंज्ञा" कहतेहैं जैसे मिनुन कहनेसे ( वैद्यकमें ) शहद और घृतका ग्रहण होताहै । और जो लोकमें अतिप्रसिद्ध होताहै वह उदाहरण होताहै जैसे गरमीके भयसे शीतकी तरफ दौडताहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ निश्चित वचनको " निर्वचन " कहतेहैं जैसे आयु विद्यमान हो या जानीजावे जिसमें अथवा जिससे उसे आयुर्वेद कहतेहैं ॥ ३३ ॥ जहां दृष्टान्तसे अर्थ साधन किया जावे उसे " निर्दर्शन " कहतेहैं जैसे जिस भांति वायु सहित अग्नि को-ठेमें वृद्धिको प्राप्त होतीहै उसीतरह वात पित्त और कफसे दूषित व्रण वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥

## नियोग समुच्चय और विकल्प ।

इदमेव कर्तव्यमिति नियोगः । यथा पथ्यमेव भोक्तव्य-

मिति ॥ ३५ ॥ इदं चेदं चेति समुच्चयः । यथा मांसवर्गे एण-

हरिणलावतित्तिरिसारंगाः प्रधानमिति ॥ ३६ ॥ इदं वेति

विकल्पः । यथा रसौदनः सघृता यवागूर्वा ॥ ३७ ॥

यह ऐसेही करना चाहिये इसे " नियोग " कहतेहैं जैसे पथ्य ही भोजन करना चाहिये ॥ ३५ ॥ यह भी और यह भी इत्यादिको " समुच्चय " कहतेहैं ( बहुत पदार्थ एकत्र होनेको समुच्चय कहतेहैं ) जैसे मांसवर्गमें कालामृग हिरन लवा तीतर और सारंग ये प्रधान हैं ॥ ३६ ॥ यह अथवा यह ( दोनोंमेंसे कोईसा ) इसे " विकल्प " कहतेहैं जैसे मांसरस सहित भात, अथवा घृतयुक्त यवागू ( खावे ) ॥ ३७ ॥

## ऊह्य ।

यैदनिर्दिष्टं बुद्धिमता तदूह्यम् । यथाऽभिहितमन्नपानविधौ  
चतुर्विधं चान्नमुपदिश्यते । भक्ष्यं भोज्यं लेह्यं पेयमेवं चतु-  
र्विधे वक्तव्ये द्विविधमभिहितमत्रोह्यमिति । अन्नपाने विशिष्टे  
द्वयोर्ग्रहणे कृते चतुर्णामपि ग्रहणं भवति । किंचान्यत् ।  
अन्नेन भक्ष्यमवरुद्धं त्वन्नसाधर्म्यात् । पेयेन लेह्यं द्रवसाध-  
र्म्यात् । चतुर्विधश्चाहारः प्रायेण द्विविधः प्रसिद्ध इति॥३८॥

जो अनिर्दिष्ट बुद्धिमानोंकरके जानाजावे उसे ऊह्य कहते हैं ( अथवा  
जो बुद्धिमानोंकरके अनिर्दिष्ट है [प्रगट नहीं कहा] उसे ऊह्य कहिये जैसे अन्न-  
पान विधि यहां अन्नपान कहनेसे चारों प्रकारके भक्ष्य भोज्य लेह्य पेयकी  
समझना चाहिये यहां चार प्रकारका कहना योग्य था इसमें दो प्रकारका  
कहा और दो प्रकारका ऊह्य युक्तिसे जानना इसेही ऊह्य कहते हैं वस्तुतः  
अन्न पान दोनोंका ग्रहण करनेसे चारोंका ग्रहण होताहै क्योंकि अन्न कहनेसे  
भोज्य तो हैही पर भक्ष्यकाभी ग्रहण होताहै अन्नके साधर्म्य होनेसे और  
पेय कहनेसे लेह्यका ग्रहण भी होजाताहै द्रव पतले पानके साधर्म्यसे अस्तु,  
चार प्रकारका आहार प्रायः दोही भांतिका प्रसिद्ध है ॥ ३८ ॥

द्वात्रिंशद्युक्तयो ह्येतास्तंत्रसारगवेषणे ।

मया सम्यग्विनिहिताः शब्दन्यायार्थसंयुताः ॥ ३९ ॥

यो ह्येता विधिवद्वेत्ति दीपीभूतास्तु बुद्धिमान् ।

स पूजाहो भिषक्छेष्ट इति धन्वंतरेर्मतम् ॥ ४० ॥

इत्युत्तरतंत्रे पंचषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

ग्रंथका सारार्थ जाननेके निमित्त ये बत्तीस युक्तियां शब्द और न्यायार्थसे  
युक्त हमने यथायोग्य वर्णन कर दी हैं ॥ ३९ ॥ ग्रंथकार महर्षि सुश्रुतजी  
महाराज कहतेहैं कि जो इन दीपकके तुल्य बत्तीस युक्तियोंको विधिपूर्वक  
समझ जाताहै वह वैद्योंमें श्रेष्ठ होकर पूजाके योग्य होजाताहै ऐसा श्रीध-  
न्वंतरिजीका मत है ॥ ४० ॥

इति सुश्रुतसंहिताया भाषाटीकायामुत्तरतन्त्रे पंचषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

(श्लो० ३९) तंत्रसारगवेषणे । ग्रंथस्य सारार्थ ज्ञाननिमित्तं मया युक्तयो विनिहिताः ।

( श्लो० ४० ) दीपीभूतास्ता यो भिषक् विधिवद्वेत्ति स पूजाहो भवतीति धन्वंतरे-  
र्मतमित्याह सुश्रुतः ।

## षट्षष्टितमोऽध्यायः ६६.

अथातो दोषभेदविकल्पनामाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यहाँसे अगाड़ी अब हम दोषभेदविकल्पनामक अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ( अर्थात् वात पित्त कफ इन दोषोंके सान्निपातिक वृद्ध क्षीणादि भेदोंकी विकल्पनाका वर्णन करते हैं )-

### सुश्रुतऋषिका प्रश्न ।

अष्टांगायुर्वेदविदं दिवोदासं महामतिम् ।

छिन्नशास्त्रार्थसंदेहं सूक्ष्मार्गाधर्मिवोदधिम् ॥ १ ॥

विश्वामित्रसुतः श्रीमान्सुश्रुतः परिपृच्छति ।

द्विषष्टि दोषभेदा ये पुरस्तात्परिकीर्तिताः ॥ २ ॥

कति तत्रैकशो ज्ञेया द्विशो वाप्यथवा त्रिशः ॥ ३ ॥

अष्टांग आयुर्वेदके ज्ञाता शास्त्रार्थके संदेह दूरकरनेवाले परम बुद्धिमान् सूक्ष्म अर्थज्ञतामें समुद्रके समान अगाध ऐसे दिवोदास श्रीधन्वंतरिजी महाराजसे विश्वामित्रके पुत्र श्रीमान् सुश्रुत ऋषि पूछते भये कि, हे भगवन् ! जो पहले दोषोंके बासठ भेद उद्देशमात्रसे वर्णन किये उनमेंसे एक एकसे कितने और दोदोंसे मिलकर कितने और तीनोंसे मिलकर ( वृद्धिक्षय भेदसे ) कितने भेद क्योंकर होतेहैं ? ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ३ ॥

### धन्वंतरिजीका उत्तर ।

तस्यै तद्वचनं श्रुत्वा संशयच्छिन्महातपाः ।

प्रीतात्मा नृपशार्दूलः सुश्रुतायाहं तत्त्वतः ॥ ४ ॥

त्रयो दोषा धातवश्च पुंरीपं मूत्रमेवं च ।

देहं संधारयन्त्येते ह्यव्यापन्ना र संहिते ॥ ५ ॥

सुश्रुत ऋषिके इस वचनको सुनकर संशयके छेदन करनेवाले महातपस्वी राजाओंमें शार्दूल श्रीधन्वंतरिजी सुश्रुतके प्रति सचका सारांश कहते भये ॥ ४ ॥ कि हे सुश्रुत ! तीन दोष सात धातु मल और मूत्र ये निर्विकार शुद्ध और यथोचित हितकारक रसोंसे युक्त (योषित) होकर शरीरको धारण कर रहेहैं ।

पुरुषः षोडशकलः प्राणाश्चैकादशैव ये ।

रोगाणां तु सहस्रं यच्छतं विंशतिरेव च ॥ ६ ॥

शतं च पञ्च द्रव्याणां त्रिसप्तत्यधिकोत्तरम् ।

व्यासतः कीर्तितं तद्धि भिन्नदोषास्त्रयो गुणाः ।

द्विषष्टिधा वदन्त्येते भूयिष्ठमिति निश्चयः ॥ ७ ॥

पुरुष सोलह कलावाला है और इसमें ग्यारह प्राण हैं तथा एक हजार एकसौ बीस ( ११२० ) रोग हैं ॥ ६ ॥ और द्रव्य पांचसों तिहतर ( ५७३ ) हैं ये सब अपने अपने मौकेपर विस्तारसे कह दिये हैं और तीन दोष और तीन गुण हैं तथा ये दोष बासठ भेदवाले होते हैं इन्हें अगाड़ी कहेंगे ॥ ७ ॥

(वक्तव्य) सोलह कला कोई पञ्चमहाभूत और ग्यारह इंद्रिय इन्हें मानते हैं और कोई अंगप्रत्यंगोंको मानते हैं एकादश प्राण ये हैं अग्नि सोम वायु सत्त्व रजतम और पांच इंद्रियें रोगोंकी सब संख्या जो सब स्थानोंमें कहे गये हैं ११२० हैं और द्रव्य संग्रहणी आदि सूत्रस्थानकी अध्यायोंमें कहे हुए द्रव्य ५७३ हैं और दोषोंके भेद ६२ तथा एक भेद दोषोंकी समता ( स्वस्थता ) का त्रैसठवाँ है (वृद्ध वाग्भटने भी लिखा है कि “द्विषष्टि भेदा निर्दिष्टास्त्रिषष्टिः स्वास्थ्यकारणं” अर्थात् ६२ भेद दोषोंके कहे सबकी समानताका ६३ त्रैसठवाँ भेद स्वास्थ्यका कारण है ) ।

त्रिदोषोंके बासठ भेद ।

त्रयं एवं पृथक्दोषा द्विशो नव्वं समाधिकैः ।

त्रयोदशाधिकैकंद्विसममध्यैस्त्रिषष्टिः ॥

पञ्चाशदेवं तु सह भवन्ति क्षयमागतैः ॥ ८ ॥

( श्लो० ६ ) पुरुषः षोडशकल इति । कलाशब्दः पञ्चमहाभूतानि एकादशेन्द्रियाणीति । षोडशविकारवाचक इत्येके व्याचक्षते । अन्ये तु कलाशब्दमंगप्रत्यंगेषु आमनन्ति । तद्यथा शिरोऽग्निवापाणिपादपार्श्वपृष्ठोदरांसेत्यष्टांगानि चुबुकनासौष्ठ्रवर्णांगुष्ठांगुलिपाणिगुल्फाः प्रत्यंगानीति । अन्यैश्च कलाशब्दो गुणवाचकः पठितः । तेन पुरुषः षोडशगुण इति ( नि० सं० ) । एकादश प्राणा इति । अग्निः सोमो वायुः सत्त्वं रजस्तमः पञ्चेन्द्रियाणि भूतात्मेति ।



क्षीणमध्याधिकक्षीणक्षीणवृद्धैस्तथापरैः ।

द्वादशैव संमाख्यातास्त्रयो दोषा द्विषष्टिधा ॥ ९ ॥

तीन दोष तो पृथक् पृथक् और नौ दोषोंकी समता अधिकतासे ऐसे १२ ये हुये और एक दोष दो दोष तथा तीन दोषोंके समता मध्यता और उल्बणतासे १३ भेद ये हुए. ये सब मिलकर २५ भेद वृद्ध ( अर्थात् उल्बणताके ) ही हैं और इसी क्रमसे दोषोंकी क्षीणता ( क्षयता ) के भी २५ भेद होते हैं तब ये दोनों मिलकर ५० भेद हुये ॥ ८ ॥ और क्षीण मध्य अधिक क्षीण तथा क्षीण वृद्ध अधिक वृद्ध, १२ भेद इनके हुए ऐसे ये पूर्वोक्त ५० से मिलकर सब ६२ भेद होगये ( उन सबका उदाहरण विस्तार सहित हम परिशिष्टमें लिखेंगे और सब दोषोंकी समताकी त्रिसठवाँ भेद समझना चाहिये ) ॥ ९ ॥

मिश्रधातुमलैर्दोषा यात्यसंख्येयतां पुनः ।

तस्मात्प्रसंगं संयम्य दोषभेदविकल्पनैः ॥ १० ॥

रोगं विदित्वोपचरेद्भेदभेदैर्यथेरितैः ॥ ११ ॥

और धातुओं और मल आदिसे मिलकर इन दोषोंके असंख्य भेद होजाते हैं इसलिये प्रसंग ( मौका ) देखकर विचारकर दोषभेदोंकी विकल्पनासे रोगोंके निश्चय करके और पूर्वोक्त यथायोग्य रस भेदोंसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १० ॥ ११ ॥

भिषक्कर्ताऽथै कारणं रसां दोषास्तु कारणम् ।

कार्यमारोग्यमेवैकमनारोग्यमतोऽन्यथा ॥ १२ ॥

चिकित्साविषयमें वैद्य कर्ता है और रस कारण है दोष कारण और आरोग्य कार्य है और इसके विरुद्ध अनारोग्य ( बीमारी ) है ( अर्थात् वैद्य रसोंके द्वारा दोषोंको ठोक करके आरोग्यता करे ) ॥ १२ ॥

अध्यायानां तु षट्षष्ट्या ग्रथितार्थपदक्रमम् ।

एवमेतदशेषेण तंत्रमुत्तरमृद्धिमत् ॥ १३ ॥

स्पष्टगूढार्थविज्ञानमर्गाढं मंदचेतसाम् ।

यथाविधि यथाप्रश्रं भवतां परिकीर्तितम् ॥ १४ ॥

श्रीधन्वंतरिजी कहते हैं हे ऋषियो ! यह छःसठ अध्यायात्मक जिसमें अर्थ पदक्रम सब ग्रथित हैं ऐसा सम्पूर्ण ऋद्धिवाला उत्तरतंत्र जिससे गूढार्थ-

का स्पष्ट विज्ञान होता है और मंदबुद्धिवालोंको अगाढ़ है ( अर्थात् मंदबुद्धि-  
वालोंके भी समझमें आसक्ता है ) यथा विधि और जिस जिस भांति आपने  
प्रश्न किये उनके उत्तरके अनुसार हमने वर्णन किया है ॥ १३ । १४ ॥

सहोत्तरं त्वेतेदधीत्य सर्वं ब्राह्म्यं विधानेन यथोदितेन । न  
हीयतेऽर्थान्मनसोभ्युपेतादेतद्वचो ब्राह्म्यमतीव सत्यम् ॥१५॥

॥ इत्युत्तरतंत्रे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

समाप्तमिदमुत्तरतंत्रम् ॥

इस ब्राह्म्य ( ब्राह्म्यसंहिता के अनुसार ) संहिताको उत्तरतंत्र सहित  
समस्त यथोपदिष्ट विधानपूर्वक जो पढ़ता है उसके मनोवांछित अर्थोंकी  
कभी कमी नहीं रहती यह ब्रह्माजीका अत्यंत सत्य वचन है ॥ १५ ॥

## परिशिष्ट ।

दोषोंके सन्निपात संसर्गसे जो ६२ भेद ग्रंथमें कहे हैं उनका हम विस्तार  
पूर्वक वर्णन करते हैं—इनमें २५ भेद दोषोंकी वृद्धिसे और २५ क्षीणतासे तथा  
१२ वृद्धिक्षय मिलकर ये ६२ भेद होते हैं ।

### दोषोंकी वृद्धिके २५ भेद.

१ वातवृद्ध २ पित्तवृद्ध ३ कफवृद्ध ४ वातपित्तवृद्ध ५ वातकफवृद्ध  
६ पित्तकफवृद्ध ७ वातपित्तकफवृद्ध ८ वातहीनवृद्ध पित्तमध्य कफअधिक  
वृद्ध ९ वातहीन कफमध्य पित्तअधिकवृद्ध १० पित्तहीन वातमध्य कफ  
अधिक वृद्ध ११ पित्तहीन कफमध्य वात अधिकवृद्ध १२ कफहीन पित्तमध्य  
वात अधिकवृद्ध १३ कफहीन वातमध्य पित्त अधिकवृद्ध १४ वातातिवृद्ध  
१५ पित्तातिवृद्ध १६ कफातिवृद्ध १७ वातपित्तातिवृद्ध १८ वातकफाति  
वृद्ध १९ कफपित्तातिवृद्ध २० वातवृद्ध पित्तातिवृद्ध २१ पित्तवृद्ध वातातिवृद्ध  
२२ कफवृद्ध पित्तातिवृद्ध २३ पित्तवृद्ध कफातिवृद्ध २४ कफवृद्ध वातातिवृद्ध  
और २५ वातवृद्ध कफातिवृद्ध ऐसे ये वृद्धदोषोंके एक दो तीनकी सम मध्य  
और अधिक वृद्धिसे २५ भेद हुए ॥

### ऐसेही दोषोंकी क्षीणताके २५ भेद.

१ वातक्षीण २ पित्तक्षीण ३ कफक्षीण ४ वातपित्तक्षीण ५ वातकफक्षीण  
६ कफपित्तक्षीण ७ वातपित्तकफक्षीण ८ वात स्वल्पक्षीण पित्तमध्यक्षीण  
कफ अधिकक्षीण ९ वात स्वल्प कफमध्य पित्त अधिकक्षीण

१० पित्तस्वल्प वातमध्य कफ अधिकक्षीण ११ पित्तस्वल्प कफमध्य वात अधिकक्षीण १२ कफस्वल्प पित्तमध्य वात अधिकक्षीण १३ कफस्वल्प वात मध्य पित्त अधिकक्षीण १४ वातातिक्षीण १५ पित्तातिक्षीण १६ कफातिक्षीण १७ वातपित्तातिक्षीण १८ वातकफातिक्षीण १९ कफपित्तातिक्षीण २० वातक्षीण पित्तातिक्षीण २१ पित्तक्षीण वातातिक्षीण २२ कफक्षीण पित्तातिक्षीण २३ पित्तक्षीण कफातिक्षीण २४ कफक्षीण वातातिक्षीण और २५ वातक्षीण कफातिक्षीण ( इसप्रकार २५ भेद ये क्षीणतासे हुए ) ( ये और पूर्वोक्त वृद्धिके २५ मिलकर ५० भेद हुए ॥

### वृद्धिक्षयके १२ भेद ।

१ वातवृद्ध पित्तमध्य ( सम ) कफक्षीण २ पित्तवृद्ध वातसम कफक्षीण ३ कफवृद्ध पित्तसम वातक्षीण ४ कफवृद्ध वातमध्य पित्तक्षीण ५ वातवृद्ध कफ मध्य पित्तक्षीण ६ पित्तवृद्ध कफसम वातक्षीण ७ वातक्षीण पित्तकफवृद्ध ८ पित्तक्षीण वातकफवृद्ध ९ कफक्षीण वातपित्तवृद्ध १० वातपित्तक्षीण कफ वृद्ध ११ वातकफक्षीण पित्तवृद्ध १२ कफपित्तक्षीण वातवृद्ध. इसप्रकार १२ भेद ये वृद्धिक्षय मिलकर हुए. ये और पूर्वोक्त ५० मिलकर ६२ भेद सब दोषोंके वृद्धि और क्षय तथा वृद्धि क्षय भेदसे होगये. और जिसमें वायु पित्त कफ तीनों सम हों न कोई वृद्ध हों न क्षीण वह त्रेसठवाँ भेद स्वस्थ तंदुरुस्त मनुष्योंका समझे अर्थात् उपरोक्त ६२ भेदोंमेंसे कोईसा होगा उसीके अनुसार व्याधि होगी । और जिसके सब दोष समान होंगे उसके कोई व्याधि नहीं ऐसा जानना चाहिये ॥

### दोषोंकी वृद्धिक्षय ।

एको वृद्धः समश्चैकः क्षीणस्त्वेको यदा भवेत् ।

क्षीण एकः प्रवृद्धौ द्वौ क्षीणौ द्वौ वृद्धिमाँस्तथा ।

एक एव स्थितस्तत्र व्यक्तरूपेण देहिनः ॥ १ ॥

कभी एक दोष वृद्ध होता है एक सम और एक क्षीण होता है. कभी एक दोष क्षीण होता है और दो वृद्ध होते हैं और कभी दो दोष क्षीण होते हैं और एक वृद्ध होता है और कभी ऐसा होता है कि एकही दोष प्रगट ( उल्लेख ) रूपसे स्थित हो और दो सम हों ॥ १ ॥

### दोषोंकी वृद्धिक्षयादिके संक्षिप्त लक्षण ।

प्रवृद्धो मारुतः पित्तं प्रकृतिस्थं कफक्षये ।

गृहीत्वा स्थानतो यत्र यत्रांगेषु विसर्पति ॥ २ ॥

तत्र तत्र स्थिरो दाहः श्रमभेदौ बलक्षयः ।

क्षीणे पित्ते यदा वायुर्वृद्धावस्थः समः कफः ।

विदधाति तदा शूलं शैत्यमत्यंतगौरवम् ॥ ३ ॥

वृद्धं कफक्षये पित्तं प्रकृतिस्थं प्रभंजनम् ।

निरस्य च यथावद्धि दाहः शूलः प्रजायते ॥ ४ ॥

जब वायु बड़ा हुआ हो पित्त सम हो और कफ क्षीण हो तब उसे अपने स्थानसे ग्रहण करके जिस स्थानमें वह प्राप्त हो वहांही दाह शिथिलता भेद ( दर्द ) और बलक्षय होता है ॥ २ ॥ और पित्त क्षीण वायु वृद्ध और कफ सम हो तब शूल पैदा हो और शीत हो तथा अत्यंत भारीपन होवे ॥ ३ ॥ और यदि कफ क्षीण हो पित्त वृद्ध हो और वायु सम हो तो उस से बाहरकी तरफ प्रवर्त होवे और दाह तथा शूल होवे ॥ ४ ॥

वृद्धं वातक्षये पित्तं प्रकृतिस्थं यदा कफम् ।

निरुणद्धि तदा तस्य स्युस्तंद्रागौरवज्वराः ॥ ५ ॥

श्लेष्मा वृद्धो यदा वायुः समः पित्तपरिक्षये ।

निरुद्धः स्यात्तदा तस्य गौरवं शीतकज्वरे ॥ ६ ॥

कफानिलक्षये पित्तं प्रकृतिस्थं यदा बलि ।

निरुणद्धि तदा तस्य मृद्वग्नित्वं शिरोव्यथा ॥ ७ ॥

प्रलापो गुरुता तंद्रा निद्रा स्यात्तु मरुत्क्षये ।

ष्ठीवनं पित्तकफयोर्नखादीनां च पातनम् ॥ ८ ॥

कफपित्तेन संयुक्तो बलहानि भृशं क्षयम् ।

करोत्यपाकमरुचिं गौरवं गात्रसादताम् ॥ ९ ॥

वायुके क्षीण होनेमें पित्त बड़े और कफ समान रहे तो शरीरको रोंक दे तंद्रा भारीपन और ज्वर हो ॥ ५ ॥ कफ वृद्ध हो वायु सम हो पित्त क्षीण हो तो शरीरको रोंक दे भारीपन हो शीतज्वर ये सब हों ॥ ६ ॥ और यदि कफ वायु क्षीण हों और पित्त सम होकर बली हो तो अग्नि मृदु हो और क्षिरमें दर्द ॥ ७ ॥ और जो वायु क्षीण होजावे तो प्रलाप भारीपन तंद्रा

निद्रा और थूँकमें कफपित्तका आना और नखून गिरना ये लक्षण होते हैं ॥ ८ ॥  
और जो वह कफ पित्तसे संयुक्त हो तो बलकी हानि अतिक्षीणता परिपाक  
न होना अरुचि भारीपन और शरीरमें शिथिलता करता है ॥ ९ ॥

मारुतेन युतः श्लेष्मा हीनपित्तः सदा भवेत् ।

करोति मृदुतां वह्नेर्भुक्ते नान्नाभिलाषितः ॥ १० ॥

वेपनं गौरवं स्तंभः शैत्यतोदांस्तथा चिरात् ।

शुक्लत्वं च नखादीनां पारुष्यं वपुषोऽपि च ॥ ११ ॥

कुपितौ पित्तपवनौ परिक्षीणः कफो यदा ।

उद्वेष्टनं श्रमं तोदं कुरुते स्फोटनं तथा ॥ १२ ॥

यदि कफ वायुसे युक्त हो और पित्त हीन होजावे तो अग्निमें मृदुता करे  
और भोजनकी रुचि न हो ॥ १० ॥ कंफ भारीपन स्तंभ शीतता दरद न-  
खून आदिमें सपेदी होजावे और शरीरमें खरदरापन होजावे ॥ ११ ॥  
और जो पित्त और वायु कुपित हो और कफ क्षीण हो तो उद्वेष्टन श्रम तोद  
और स्फोटन ( हडफूटन ) ये व्याधियां होजावे ॥ १२ ॥

श्लेष्मा भिद्यते स्रोतांसि यदा पित्तानिलक्षये ।

चेष्टानाशं तदा कुर्यान्मूच्छां वाग्भंगमेव च ॥ १३ ॥

देहौजः संसयेत्पित्तं वातश्लेष्मक्षये तृषाम् ।

कुर्यादिन्द्रियदौर्बल्यं मूच्छां ग्लानिं क्रियाक्षमम् ॥ १४ ॥

मर्माणि पीडयन्वायुः श्लेष्मपित्तपरिक्षये ।

संज्ञाप्रणाशं कुरुते प्रकंपं विदधाति च ॥ १५ ॥

यदि पित्त और वायु ये क्षय होनेपर कफ स्रोतोंमें प्राप्त हो तो चेष्टाका  
नाश कर देवे और मूच्छा तथा वाणीको भंग करदेवे ॥ १३ ॥ और वायु  
कफके क्षीण होनेपर पित्त देह और ओजमें समाश्रित हो तो तृषा और इंद्रियों  
में दुर्बलता मूच्छा ग्लानि तथा क्रियाओंमें अक्षमप्रता ( कोई काम नहीं किया  
जाना इंद्रिय शिथिल होना ) ये लक्षण होते हैं ॥ १४ ॥ और यदि कफ पित्त

( श्लोक ११ ) मारुतेन युतः श्लेष्मा तथा हीनपित्तः श्लेष्मा च । अत्र मारुतेन युत  
श्रेत्तदा वह्नेर्मृदुतां करोति भुंक्ते अनभिलाषितश्च । तथा हीनपित्तः श्लेष्मा हीनं पित्तं  
यस्मिन् एवभूतः श्लेष्मा गौरवं वेपनं स्तंभादींश्च करोतीत्यर्थः ।

क्षीण हो जानेपर वायु मर्मस्थानोंको पीड़ित करे ( मर्मस्थानोंमें प्राप्त हो ) तो संज्ञानाश (मूर्च्छा बेहोशी) कर देवे तथा कंप करदे (शरीर काँपने लगे)॥१५॥

१ ( वक्तव्य ) वायु पित्त और कफ की वृद्धिक्षयके लक्षण पहले सूत्रस्थान की पंद्रहवें ( १५ ) अध्यायमें लिखे जाचुके हैं और मिश्रितके लक्षण संक्षेप से ये ऊपर लिखे गयेहैं इन्हें विचार कर चिकित्सा करनी चाहिये यही मुख्य प्रयोजन है ॥

२ ( वक्तव्य ) इस अध्यायमें जो श्रीधन्वतरिजीने कहा है कि, इस संहितामें ११२० रोग कहे हैं और ५७३ द्रव्य औषधादि हैं जिस पर रांगोंकी गणनाके कुछ श्लोक निबंधसंग्रहटीकामें लिखे हैं, परंतु न जाने क्या कारण है कि, बहुत जगह उनकी रोगसंख्या मूल संहिताकी रोगसंख्यासे नहीं मिलती, जैसे संहितामें क्लैव्य ६ प्रकारका लिखा है और इस गणनामें ४ प्रकारका इस प्रकारकी कई जगह गड़बड़है इससे हमने उन्हें यहाँ नहीं लिखा और उन का लिखना कुछ विशेष आवश्यक कभी नहीं था, क्योंकि संहितामें सब रोगोंकी गणना अपने अपने स्थानपर मौजूद हैही ॥

यद्यपि श्रीधन्वतरिजीने स्थूलतासे जितने रोग इस संहितामें लिखे हैं, तथा जितने द्रव्योंसे इसमें काम लिया है, उनकी गणनाकी संख्या मात्र बतादीहै, नहीं तो वास्तवमें विचार कर देखें तो रोगभी देशसमय और प्रकृति तथा दोषोंके अंशांश आदिके कारण असंख्य हैं तथा देश देशकी प्रकृति जल पवन तथा समय समयके उद्भिज्ज और जांतविक पदार्थोंकी न्यूनाधिकता तथा सूर्य चंद्र तारा पृथिवी पर्वत समुद्र इत्यादिके हेर फेरसे अनेकानेक व्याधियाँ नवीन तथा रूपान्तर प्राप्त भी हुआही करती हैं, जिनकी गणना और संख्या कदापि नहीं कहीं सकती और इसी प्रकार द्रव्य ( वस्तु औषधादि ) भी असंख्य हैं उनकीभी संख्या और गणना नहीं होसकती ॥

३(वक्तव्य) हमारा विचार था कि, टीकामें हरेक रोगके साथ डाक्टरी और यूनानीसे उसका पूरा विवेचन और यत्न लिखें, परंतु यह बात नहीं होसकी क्योंकि विवेचन उनका उनके मतसे प्रायः और ही और ढंगसे है और उनके विवेचन और यत्नका बहुधा मार्ग ही दूसराहै जो यहाँ लिखा जानेमें पूरा संबंधित नहीं होता इसीसे कुछ कहींरनाम मात्र डाक्टरी यूनानीसे लिख दियेहैं विशेष भेद और उनकी चिकित्सा विना उनकी विद्याके ग्रंथ पढ़े ठीक समझमें नहीं आसकती, इसीसे हमने उनका विस्तार बहुत नहीं लिखा और औषधें भी डाक्टरी यूनानीकी नहीं लिखीं इस कारणसे कि, विना उस क्रमसे रोगका

और औषधका पूर्ण तत्व पाये उपयोग करना ठीक नहीं होता है हां जितना कुछ हमने टीकामें डाक्टरी यूनानीका मत लिखा है और शारीरककी टीकाके साथमें डाक्टरी और यूनानी मतके शारीरकका संक्षेप वर्णन किया है वह इस समयके वैद्योंको बहुतही आवश्यक और उपयोगी है और इसी प्रकार गूढपदों और आशयों पर संस्कृत टिप्पणी तथा वक्तव्य और ग्रंथांतरकी आवश्यकीय बातें जाननेके लिये परिशिष्ट ये भी इसके पाठकोंके लिये अति उपयोगी और आनंदवर्द्धक होंगे ॥

अंतमें हमारा विनय है कि, यदि कहीं किसी प्रकारकी चूक या न्यूनता आदि रह गई हों तो उसे सज्जन महाशय क्षमा करे बल्कि पत्रद्वारा मुझे सूचना देने उनका कृतज्ञ हूंगा ॥

### पूर्तिः ।

दिल्लीप्रांते पुनीते स्फुरकनगरके वासमाकुर्वतैव शैलानारा-  
जधान्यां नरपतिसदसि प्राश्रितो राजवैद्यः । तेनेदं सुश्रुतस्य  
जनपदवचसा टीकया संयुतस्य पूर्तिं चागाच्छुभाय प्रभवतु  
भिषजामुत्तरं तंत्रमुख्यम् ॥ १ ॥ रसेषुनंदचन्द्रेन्दे चैत्र-  
शुक्लेऽष्टमे तिथौ । ग्रंथः सुटीकया पूर्तो मुरलीधरशर्मणा ॥  
॥ २ ॥ श्रेष्ठिना क्षेमराजेन सुविद्योद्धारकारिणा । स्वीये  
यंत्रेऽङ्कयित्वैव समानीतः प्रकाश्यताम् ॥ ३ ॥

दिल्लीप्रांत पवित्रदेशमें स्फुरक नगर ( फर्रुखनगर ) नामक ग्रामके निवासी जो शैलाना राजधानीमें यहांके महाराजाधिराजकी सभाके समाश्रित राज वैद्य हैं उनने यह सुश्रुतसंहिताकी उत्तम भाषाटीका बनाकर उसका श्रेष्ठ "उत्तर तन्त्र" समाप्त किया जो वैद्यजनोंको तथा सबको शुभदायक हो ॥ १ ॥ संवत् १९५६ के चैत्रशुक्ल ८ अष्टमीको सुंदरटीकासे युक्त यह ग्रंथ समाप्त हुआ ॥ २ ॥ जिसको संस्कृत विद्याके उद्धारक श्रीयुत सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीने निज " श्रीवेङ्कटेश्वर " छापखानेमें छापकर प्रकाशित किया ( शुभमिति ) ।

इति श्रीपंडितमुरलीधरशर्मराजवैद्यविरचित सुश्रुतसंहिताया सान्वयसटिप्प-  
णीकसपरिशिष्टभाषाटीकायामुत्तरतंत्रे पट्यष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

समाप्तोऽयं ग्रंथः शुभः ।

( श्लो० १ ) जनपदवचसा देशभाषया ।

निवेदक मुरलीधरशर्मा टीकाकार.



## सूचना ।

यदि किसी महाशयको किसी भारी रोगका निश्चय कराना और हो पूर्णतया निदान औषधी पूँछना हो तो हमे पत्रद्वारा पूरा हाल लिखे और १) एकरूपया फीसका पत्रके साथही भेज दे हम रोगका पूरा निदान औषधादि सब लिख भेजेंगे ॥

और यदि कोई प्रतिष्ठित महाशय किसी कठिन रोगको निदान चिकित्सा-दिके लिये कुछ दिनोंके वास्ते हमे बुलाना चाहें तो वह भी परस्पर पत्रव्यवहार से निश्चय होसकताहै ॥

तथा हमारे "आरोग्यसुधाकर" कार्यालयमें प्रायः सभी रोगोंकी सभी प्रकारकी सिद्ध औषधें मिलसकतीहैं जिन्हें आवश्यकता हो लिखें ॥

शुभचिंतक-

पंडित मुरलीधरशर्मा राजवैद्य,

मेनेजर "आरोग्यसुधाकर" फर्रुखनगर पंजाब.

पुस्तक मिलनेकापता-



"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना-( मुम्बई. )

# विक्रय्यपुस्तकोंकी संक्षिप्तसूची ।

## वैद्यकग्रंथाः ।

नाम.	की. रु. आ.
चरकसंहिता-भाषाटीका समेत ... ..	१०-०
हारीतसंहिता भाषाटीकासहित ... ..	३-०
अष्टांगहृदय ( वाग्भट्ट ) भाषाटीका अत्युत्तम वैद्यकग्रंथ-भिषग्वरों के देखने योग्य ... ..	८-०
भा. वप्रकाश भाषाटीका ... ..	८-०
रसरत्नाकर भाषाटीकासमेत समस्त रसादि मारण शोधन आदि ... ..	५-०
बृहन्निघंटुरत्नाकर भाषाटीका प्रथमभाग ... ..	३-०
बृहन्निघंटुरत्नाकर भाषाटीका द्वितीय भाग ... ..	३-०
बृहन्निघंटुरत्नाकर भाषाटीका तृतीय भाग ... ..	३-८
बृहन्निघंटुरत्नाकर भाषाटीका चतुर्थ भाग ... ..	२-८
बृहन्निघंटुरत्नाकर भाषाटीका पंचम भाग ... ..	६-०
बृहन्निघंटुरत्नाकर भाषाटीका छठवां भाग ... ..	५-०
बृहन्निघंटुरत्नाकर-सप्तम अष्टम भाग अर्थात् "शालिग्रामनिघंटुभूषण" ( अनेक देशदेशांतरीय संस्कृत, हिन्दी, बंगला, महाराष्ट्री, गौर्जरी द्राविडी, तैलंगी, औत्कली, इंग्लिश, लैटिन, फारसी, अरबी भाषाओं में सर्व औषधोंके नाम और गुणोंका वर्णन औषधियों के चित्रों समेत ... ..	८-०
कामरत्न योगेश्वर नित्यनाथप्रणीत भाषाटीकासमेत ... ..	१-१२
पथ्यापथ्य भाषाटीका ... ..	०-१२
शार्ङ्गधर निदानसह भाषाटीका पं० दत्तराम चौबे मथुरानिवासीका बनाया ... ..	३-०
चिकित्साखण्ड भाषाटीका प्रथमभाग ... ..	४-०
चिकित्साक्रमकल्पवल्ली संस्कृत काशिनाथकृत भिषग्वरोंके देखने योग्य ... ..	२-८
माधवनिदान उत्तम भाषाटीका ग्लेज ... ..	२-०
" रफ कागज ... ..	१-८
अंजननिदान भाषाटीका अन्वयसहित ... ..	०-८
हंसराज निदान भाषाटीकासहित ... ..	१-८
चर्याचिंद्रोदयभाषाटीका ( व्यंजन बनानेका ) ... ..	१-८
योगतरंगिणी ( बहुतही उत्तम ) ... ..	२-८

## जाहिरात ।

नाम.

राजवल्लभनिघंटु भाषाटीका	....	....	....	....	....
वैद्यकपरिभाषाप्रदीप भा० टी० ( वैद्योपयोगी औषधियोंकी योजनामें तोल, मान और बदला, तथा वर्ग, चूर्ण आदिकोंकी योजनाका वर्णन )	....	....	...	...	....
वैद्यरत्न भाषाटीका ( सर्वरोगोंकी चिकित्सा उत्तम प्रकारसे वर्णन की है )	...	....	...	....	.... ०-
वैद्यवल्लभ भाषाटीका ( चिकित्सा उत्तम )	....	....	....	....	०-६
द्रव्यगुणशतक भाषाटीका	....	..	..	..	०-६
द्रव्यगुण बड़ा भाषाटीका समेत	..	..	..	..	१-०
वीरसिंहावलोकन ज्योतिषशास्त्रादिकर्मविपाक चिकित्सा वर्णन	..	..	..	..	१-१२
योगचिंतामणि भाषाटीका दत्तरामचौबे कृत	..	..	..	..	१-४
तथा रफू कागजकी	..	..	..	..	१-०
लोलिंबराज वैद्यजीवन संस्कृतटीका और भाषाटीका	..	....	....	....	१-०
नाडीदर्पण ( नाड़ी देखनेमें अत्यंत उत्कृष्ट )	..	..	..	..	०-६
अनुपानदर्पण भाषाटीकासहित	....	....	.	....	०-१०
बालबोधपाकावली	....	....	....	....	०-२
कूटमुद्राराख्य सटीक	....	....	...	....	०-३
कालज्ञान भाषाटीका	....	...	...	...	०-३

संपूर्ण पुस्तकोंका बड़ा सूचीपत्र अलग है आधआनेका टिकट भेजनेसे मिलेगा.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-  
खेमराज श्रीकृष्णदास,  
“श्रीवेङ्कटेश्वर” छापाखाना-मुंबई.





